जीवराज जैन ग्रंथमाला, ग्रंथ १४

ग्रंथमाला-संपादक
प्रो० आ० ने० उपाध्ये व प्रो० हीरालाल जैन

श्री-रामचन्द्र-मुमुक्षु-विरचितं

पुण्यास्त्रवकथाकोशम्

आलोचनात्मक रीतिसे प्रस्तावना व परिशिष्ट आदि सहित

सम्पादक

प्रो० आ० ने० उपाध्ये
डीन, शिवाजी विद्यापीठ
कोल्हापुर

प्रो० हीरालाल जैन
जबलपुर विश्वविद्यालय
जबलपुर

और

पं० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
जैन सं० स० संघ, सोलापूर

प्रकाशक
गुलाबचन्द हिराचन्द दोशी
जैन संस्कृति संरक्षक संघ
सोलापूर

वीर नि० सं० २४९०] सन् १९६४ [विक्रम संवत् २०२०

मूल्य १० रु० मात्र

JĪVARĀJA JAINA GRANTHAMĀLĀ, No. 14

General Editors :
Dr. A. N. UPADHYE & Dr. H. L. JAIN

ŚRĪ-RĀMACANDRA-MUMUKṢU'S

PUṆYĀSRAVA-KATHĀKOŚA

Critically edited with Introductions, Appendices etc.

Prof. A. N. UPADHYE,
M. A., D. Litt.
Dean, Shivaji University,
Kolhapur.

Prof. H. L. JAIN,
M. A., LL. B., D. Litt.
Jabalpur University,
Jabalpur.

AND

Pt. BALCHANDRA, SIDDHANTA SHASTRI,
Jaina S. S. Sangha, Sholapur

Published by
Gulabchanda Hirachanda Doshi
Jaina Saṁskṛti Saṁrakṣaka Sangha
SHOLAPUR
1964

Price Rs. Ten only

First Edition; 1000 Copies

Copies of this book can be had direct from Jaina Saṁskṛti Saṁrakshaka Sangha, Santosha Bhavana, Phaltan Galli, Sholapur (India)

Price Rs. 10/- per copy, exclusive of postage

जीवराज जैन ग्रंथमालाका परिचय

सोलापूर निवासी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचन्दजी दोशी कई वर्षोंसे संसारसे उदासीन होकर धर्मकार्यमें अपनी वृत्ति लगा रहे थे। सन् १९४० में उनकी यह प्रबल इच्छा हो उठी कि अपनी न्यायोपार्जित संपत्तिका उपयोग विशेष रूपसे धर्म और समाजकी उन्नतिके कार्यमें करें। तदनुसार उन्होंने समस्त देशका परिभ्रमण कर जैन विद्वानोंसे साक्षात् और लिखित सम्मतियाँ इस बातकी संग्रह कीं कि कौनसे कार्यमें संपत्तिका उपयोग किया जाय। स्फुट मतसंचय कर लेनेके पश्चात् सन् १९४१ के ग्रीष्मकालमें ब्रह्मचारीजीने तीर्थक्षेत्र गजपन्था (नासिक) के शीतल वातावरणमें विद्वानोंकी समाज एकत्र की और ऊहापोहपूर्वक निर्णयके लिए उक्त विषय प्रस्तुत किया। विद्वत्सम्मेलनके फलस्वरूप ब्रह्मचारीजीने जैन संस्कृति तथा साहित्यके समस्त अंगोंके संरक्षण, उद्धार और प्रचारके हेतुसे 'जैन संस्कृति संरक्षक संघ' की स्थापना की और उसके लिए ३०००० तीस हजारके दानकी घोषणा कर दी। उनकी परिग्रहनिवृत्ति बढ़ती गयी, और सन् १९४४ में उन्होंने लगभग २,००,०००, दो लाखकी अपनी संपूर्ण संपत्ति संघको ट्रस्ट रूपसे अर्पण कर दी। इस तरह आपने अपने सर्वस्वका त्यागकर दिनांक १६-१-५७ को अत्यन्त सावधानी और समाधानसे समाधिमरणकी आराधना की। इसी संघके अन्तर्गत 'जीवराज जैन ग्रन्थमाला' का संचालन हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी ग्रन्थमालाका चौदहवाँ पुष्प है।

पुण्यास्रवकथाकोशम्

स्व. ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोशी
संस्थापक, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर

Table of Contents

General Editorial

The Jaina literature has been particularly rich in stories which have been utilised from earliest times for imparting ethical instructions to monks and laymen. These stories are, in the earliest strata of literature, narrated as in the Nāyādhammakahāo for conveying a moral lesson or indicated in the basic texts like the Ārādhanā and Uttarādhyayana for illustrating an ethical principle and later elaborated in the commentarial literature. In course of time, these stories came to be collected, for the benefit of the ordinary folk, to illustrate the advantages of practising religious vows and virtues. Thus, a large number of Kathākośas came to be compiled in different languages like Sanskrit, Prākrit and Apabhraṃśa and later, in some of the Modern Indian languages. Of these the Kathākośas of of Hariṣeṇa, Jineśvarasūri etc. have been published. Still, however, a greater bulk of them is known to exist, but has not seen the light of day.

The Puṇyāsravakathākośa of Rāmacandra Mumukṣu has a unique position in this branch of literature in so far as it illustrates the fruits accruing from the practice of the six duties of house-holders, in this and in the next world. This work has been very popular as seen from the number of Mss. available and from its translations attempted in different languages. Pt. Nathuram Premi's rendering of it in Hindi (first published in 1907) has popularised it in the Hindi-knowing world. But unfortunately the original Sanskrit text of Rāmacandra remained unpublished Of late, for the purposes of comparative study of ancient folklore, legends and religious stories, a demand for the original texts of such works has grown. And to meet this need, it was thought necessary to present an authentic text of the Puṇyāsravakathākośa It will be seen that in this edition, beside the Sanskrit text, a neat Hindi translation is added; and a number of problems connected with this Kathākośa and its author are discussed in the Introduction. To facilitate further studies useful Indices are added at the end.

We are grateful to the authorities of the Jīvarāja Jaina Granthamālā for undertaking to publish this work. It is very gratifying to note that Shriman Gulabchand Hirachand Doshi, the President of the J. S. S. Sangha, takes personal interest in all these publications. The scheme of publications is being enthusiastically pushed forward by Shriman Walchand Deochand and Shriman Manikchand Virachand to whom our best thanks are due.

Kolhapur
9-6-64

A. N. Upadhye

H. L. Jain

प्रधान सम्पादकीय

जैन साहित्यमें कथाओंका विशेष बाहुल्य है। ये कथाएँ प्राचीनतम कालसे मुनियों और गृहस्थोंको सदाचारका उपदेश देनेके लिए कही गयीं है। साहित्यके प्राक्कालीन स्तरमें कहीं कथाओंके आधारसे किसी नैतिक सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है, जैसे णायाधम्मकहाओ (ज्ञातधर्मकथा) नामक षष्ठ द्वादशांगमें, और कहीं किसी नैतिक व सैद्धान्तिक विवरणमें कथाओंका दृष्टान्त रूपसे संकेत मात्र कर दिया गया है, और फिर टीका-टिप्पण आदि व्याख्यात्मक रचनाओंमें उनका विस्तारसे वर्णन हुआ है, जैसे आराधना व उत्तराध्ययन सूत्रमें। कालान्तरमें जनसाधारणके हितार्थ धार्मिक गुणों और व्रतोंके पुण्यफलको उदाहृत करनेके लिए उन कथाओंका संग्रह किया जाने लगा। इस प्रकार प्राकृत, संस्कृत व अपभ्रंश, तथा पीछे अनेक वर्तमान-कालीन भाषाओंमें बहुत-से कथाकोश रचे गये। इनमें-से हरिषेण, जिनेश्वरसूरि आदि विरचित कथाकोश प्रकाशित हो चुके हैं। तथापि अधिकांश कथाकोश ऐसे हैं जिनके भाण्डारोंमें अस्तित्वका पता चल चुका है, किन्तु वे प्रकाशमें नहीं आये।

इस कथा-साहित्यमें रामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्यास्रव-कथाकोशका स्थान अद्वितीय है, क्योंकि उसमें श्रावकोंके छह धार्मिक कर्तव्योंके पालनका लौकिक व पारलौकिक पुण्यफल वर्णित है। इस ग्रन्थकी जो अनेक प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं, व जो विविध भाषाओंमें अनुवाद किये गये है, उनसे इसकी लोक-प्रियताका पता चलता है। हिन्दीमें जो पं० नाथूरामजी प्रेमी-द्वारा किया गया अनुवाद प्रकाशित हुआ (सन् १९०७ में) उससे हिन्दी-भाषी जगत्में इस ग्रन्थका अच्छा प्रचार हुआ है। किन्तु रामचन्द्र मुमुक्षुकृत मूल संस्कृत ग्रन्थ अप्रकाशित ही रहा। इधर कुछ कालसे प्राचीन कथा-कहानियों व धार्मिक आख्यानोंके तुलनात्मक अध्ययनके हेतु कथा-साहित्यात्मक मौलिक ग्रन्थोंकी माँग बढ़ रही है। इस माँगकी पूर्तिके लिए पुण्यास्रव-कथाकोशके एक प्रामाणिक संस्करणका प्रकाशन आवश्यक प्रतीत हुआ। प्रस्तुत संस्करणमें मूल संस्कृत पाठके अतिरिक्त स्वच्छ हिन्दी अनुवाद भी पाया जायगा, तथा प्रस्तावनामें ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता सम्बन्धी अनेक बातोंका विवेचन भी दिखाई देगा। इस विषयके विशेष अध्ययनकी सुविधाके लिए ग्रन्थके अन्तमें उपयोगी परिशिष्ट भी जोड़ दिये गये हैं।

इस ग्रन्थके प्रकाशनके लिए हम जीवराज जैन ग्रन्थमालाके अधिकारियोंके बहुत कृतज्ञ हैं। यह बड़े सन्तोषकी बात है कि जैन संस्कृति संरक्षक संघके अध्यक्ष श्री गुलाबचन्द हीराचन्दजी दोशी इन प्रकाशनोंमें वैयक्तिक रुचि रखते हैं। प्रकाशन-योजनाको गति प्रदान करनेमें श्रीमान् बालचन्द देवचन्दजी तथा श्रीमान् माणिकचन्द वीरचन्दजी बड़ा उत्साह रखते हैं जिसके लिए वे हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

कोल्हापुर
९-६-६४

आ० ने० उपाध्ये
ही० ला० जैन

INTRODUCTION

1. THE PUṆYĀSRAVA-KATHĀ-KOŚA

The Jinaratnakośa (Vol. I, H. D. Velankar, Poona 1944) records, under Puṇyāsrava, works by Rāmacandra Mumukṣu, by Nemicandragaṇi and by Nāgarāja, besides an anonymous one. The Puṇyāsrava or Puṇyāsrava-kathākośa (Pkk) of Rāmacandra Mumukṣu has been quite a popular work especially among the pious Jainas who have looked upon its study as fruitful and meritorious. The Mss. of this Sanskrit work are found in various parts of the country; and it is seen from the Jinaratnakośa that they are available in the Bhandarkar O. R. Institute, Poona; in the Lakṣmīsena Bhaṭṭāraka's Maṭha, Kolhapur; in in the Manekchanda Hirachanda Bhandara, Chowpatty, Bombay; etc. From the Kannaḍa Prāntīya Tāḍapatrīya Granthasūcī (ed. K. Bhujabali Shastri, Bhāratīya Jñānapīṭha, Benares 1958) it is noted that some Mss. of Pkk are found in the Jaina Maṭha, No. 712 and Jaina Bhavana, No. 73, at Moodbidri (Dt. S. K.). In the Rajasthānake Jaina-śāstrabhaṇḍārōkī Granthasūcī (RJG), Parts I-IV, Jaipur 1948-62, some Mss. of Pkk are noted: Part I, Āmera p. 102, Mahāvīra p. 195, and on p. 39f. the Praśasti is fully given; Part II, p. 21 (1 Ms. incomplete but dated Saṃvat 1473), p. 238 (3 Mss.), p. 376 (1 Ms.); and Part IV, p. 233. One Ms. is reported from the Strassburg Collection as well (Vienna Oriental Journal, Vol. II, 1897, pp. 279 f.). Some More Mss. of this work are found in Belgoḷ, Bombay, Mysore and other places. It is quite likely that some Mss. might be lying here and there in private collections also.

Further, the Pkk has attracted the attention of readers in such a way that from pretty early times its translations are prepared in different languages. A similar work in Kannaḍa, in the Campū style, possibly based on this Sanskrit text, was composed by Nāgarāja in A. D. 1331 (Kannaḍa Kavicarite, Vol. 1, Bangalore 1924, pp. 409-12). This Kannaḍa version is further translated into Marāṭhī Ovīs by Jinasena in Śaka 1743, i. e., 1821 A. D. I am given to understand that this Marāṭhī version is already printed and published. Some Old-Hindī versions of this are available: 1) One is prepared by Daulatarāmajī (saṃvat 1777, i. e., 1720); and Mss. of this work are found reported in the RJG noted above: Part II, p. 21; Part III, pp. 84, 226; Part IV, p. 233, It is stated that he used the Pkk of Pāṇḍe Jinadāsa, whose Old-Hindī Anuvāda as seen from a Ms. in the collection of the Laksmīsena Maṭha, Kolhapur, was composed at the time of Akbar. 2) Another is attributed to Jayacandra, Ibidem part I, Amera p. 102 (incomplete). 3) A third is composed by Ṭekacanda, Ibid. Part IV, p. 234. 4) And lastly, one more by Kisanasiṃha (Saṃvat 1773), Ibid. Part III,

p. 125. It is only after studying these Mss. one can definitely say how far and in what manner the work of Rāmacandra is used by them.

Lately, the Hindī translation of this Sanskrit text was prepared by Pt. Nathuram Premi and published thrice (Bombay 1907, 1916 and 1959). There is another Hindī translation by Paramanand Visharad (Calcutta 1937) as reported in the Prakāśita Jaina Sāhitya, Pannalal Jain Agrawal, Delhi 1958, p. 184.

2. Critical Apparatus

This edition of the Pkk is based on the following Mss.:

Ja—This Ms. belongs to Śrī D. J. Atiśaya Kṣetra Mahāvīrajī, Jaipur. It has 117 folios with 14 lines on each page and with some 39 letters in each line. It mentions neither the name of the copyist nor the date of copying. It is collated from p. 172 onwards in this edition.

Pa—This Ms. belongs to the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, No. 1081 of 1884-87. It measures 12 by 5½ inches. It has 140 folios with 11 lines on each page and with some 42-45 letters in each line. It is dated Saṁvat 1795 (-57 = 1738 A. D.). It was corrected at Savāī Jayapura by Merukīrti; and then, it was presented to his teacher Harṣakīrti by Gulābacandajī. The relevant concluding extract reads thus:

संवत् १७९५ माहमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ गुरुवासरे सवाइ जयपुरनगरे श्री नेमिनाथ चैत्यालये आचार्यजी श्री हर्षकीर्त्तिजी तत्सिष्य आचार्यं मेरुकीर्त्तिना स्वहस्तेन इदं ग्रन्थं सोधितं चिरंजीवि श्री गुलाबचंदजी भवसागोत्र लिषाप्य आचार्यं हर्षकीर्त्तये प्रदत्तं ॥

Pha—This Ms. belongs to D. J. Muni Dharmasāgara Granthabhaṇḍāra, Akaluj (Dt Sholapur) It contains 126 folios, each page having 14 lines and each line some 36-41 letters. It is written by Dharmasāgara, the disciple of Śāntisāgara, possibly in Saṁvat 2005, from a Ms. from Phaltan and dated Saṁvat 1896. The concluding *praśasti* runs thus:

इदं शास्त्रं लिखितं पूर्वग्रंथानुसारेण संवत् १८९६ फलटण आदिनाथमंदिरस्य ग्रंथस्य द्वितीय प्रति लिखित श्री निमगांवग्रामे श्री चंद्रप्रभजिनचैत्यालये पूर्वाचार्यान्वये श्री आचार्य श्री १०८ शांतिसागर महाराज शिष्य मुनिधर्मसागरेण स्वहस्तेन लिखितं ॥ यादृशं पुस्तकं दृष्टं तादृशं लिखितं मया। यच्छुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥ वीरसंवत् २४७५ शके २००५ आश्विनमासे कृष्णपक्षे तृतीयातिथौ सोमवासरेऽयं ग्रंथः समाप्तः ॥ भो भव्याः पठंतु शृण्वंतु प्रतिलिख्यं कुर्वंतु तैलाज्जलाद्रक्षां कुर्युः।

Ba—This Ms. was received from Dr. H. L. Jain, one of the Editors. It has 200 folios measuring 10 by 4½ inches. Each page has 10 lines with 30 to 35 letters in each line. It opens thus:

॥ ६० ॥ ऊँ नमो वीतरागाय ॥ ॥

and ends thus :

॥ समाप्तोऽयं पुण्याश्रवाभिधो ग्रन्थः ॥ छ ॥

It is dated Saṁvat 1559, and gives good many details about the donor of the Ms. who presented it to Hemacandra, the pupil of Ratnakīrti, disciple of Bhaṭṭāraka Jinacandra, the successor of Bhaṭṭāraka Śubhacandra. The original passage runs thus :

॥ अथ प्रशस्तिका लिख्यते ॥ संवत् १५५९ वर्षे भादवा सुदि ९ दिने ॥ श्रीमूलसंघे नंद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगछे कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचंद्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचंद्रदेवास्तत्सिष्य मुनि श्री रत्नकीर्त्तिदेवास्त· त्सिष्य मुनि श्री हेमचंद्रदेवास्तदाम्नाये षंडेलवालान्वये ॥ पा[पां]ड्यागोत्रे। साधुमाल्हा भार्या कोइल। पुत्र सा० पीथा। तद्भार्या होली तत्पुत्र सा० चाचा [वाचा]। नाल्हा। कमा। रत्नपाल। छाजू। वाजू। चाचाभार्या चौसिरि। तत्पुत्र सरवग। एतैः शास्त्रमिदं लेखयित्वा ज्ञानपात्राय मुनि श्री हेमचंद्राय भक्त्या विधिना प्रदत्तं॥ छ॥ ज्ञान [नं] वा ज्ञानदानेन निर्भयोभयदानतः। अन्नदानात् सुखी नित्यं। निर्व्याधी भेषजाद्भवेत् ॥ १ ॥ श्रीसंघे मंगलं भूयाद्दातुर्ज्ञा.नं प्रवर्द्धतां / पंडितैः पठ्यमानं तु। चिरं नंदतु पुस्तकं। मंगलं ॥ २ ॥

Śa—This Ms. belongs to Pt. Jinadāsa Śāstri, Sholapur. It measures 10 by 4½ inches. It has 119 folios. Each page has 14 lines and each line approximately 39-43 letters. It opens thus :

"ए ६० ॥ ॐ नमो श्री वीतरागाय ॥

and ends thus :

॥ समाप्तोयं पुण्याश्रवाभिधो ग्रंथः द्वितीयसूत्रेण सह प्रमाणमनुष्टुभां ॥

The date of the Ms. is not specified.

3. The Present Edition, Its Necessity : Sanskrit Text and Hindī Translation

The present edition of Pkk is a modest attempt to give a neat and authentic Sanskrit text based on the limited number of Mss. which are described above. One of the editors had experienced great difficulty in securing this work while taking a survey of Jain narrative literature (Bṛhat Kathākośa (Bkk) of Hariṣeṇa Singhi Jain Series, No. 17, Bombay 1943, Intro. p. 43). He was tempted, therefore, to have a usable edition of this text. The language and style of the Pkk are not so catching ; still it has been rendered into Hindī, Marāṭhī and Kannaḍa by virtue of its contents. Obviously a reliable edition of the Sanskrit text was felt necessary. This Kośa is a store-house of the didactic tales, intended for religious edification and moral instruction. Secondly, it contains many bits of social, cultural and religious information which have their own value. Thirdly, the stories in it do not stand in isolation but are linked up with similar stories elsewhere, with

parallel or identical motifs. Fourthly, though the tales are narrated in the pattern of Jaina ideology, they possess a good deal of folklore as their substratum. Fifthly, the author, as a rule, drafts these stories having in view some rule of conduct laid down in Jainism ; and one has to see to what extent and in what manner the ideal principles are adjusted to the practical conditions in life. In fact, it is an urgent desideratum that the rules of Śrāvakācāra are studied in the back-ground of such tales as are found in this Kathākośa. It has been rightly observed that the authors of the Śrāvakācāras of the mediaeval period have been mostly monks (of course, Āśādhara being an exception) ; and they have not portrayed society as it existed but rather as they would have wished to see it. 'The rich and varied Kathā literature', therefore, 'however artificial and shackled by conventions it may be, can add much to complete the picture whilst the epigraphical evidence remains still largely unexplored, (Dr. R. Williams : Jaina Yoga, Intro. p. xii, Oxford 1963). Sixthly, the Pkk has its own place in the vast range of Jaina collections of stories which have been reviewed by one of the editors (Bkk. Intro. pp. 17 ff.). Lastly, the language of this work is not of the type of classical Sanskrit, but presents a good many popular traits which are not without their linguistic significance. In view of these considerations the Sanskrit text is presented here as carefully as possible within the limits of the material supplied by the Mss.

Some editions of the Hindī translations of Pkk are printed and published, but they are not accompanied by the Sanskrit Text ; and naturally one could not judge what liberty the translators had taken in presenting the contents. The Hindī Anuvāda in the present edition is as literal as possible and at the same time quite readable by itself. All along the Pkk has been a popular work, and the present Hindī Anuvāda will be welcomed, it is hoped, by the readers. The slippery nature of the text has presented many difficult contexts. Still every attempt is made to give the rendering as faithfully as possible.

4. Jaina Narrative Literature and the Puṇyāsrava

A review of the narrative elements found in early Jaina literature, especially the strata of canonical and post- and pro-canonical works, is already taken (Bkk., Intro. pp. 6 ff.) in the back-ground of early Indian narrative literature. The monk and the house-holder are two facets of the religious individual which Jainism has tried to shape all along. The so-called Ārādhanā tales are exemplary biographies of ascetic heroes. Likewise there are available stories of pious house-holders and house-ladies or laymen and laywomen (*śrāvaka* and *śrāvikā*) whose lives could be worked out as examples of piety and religiousity, with special reference to their practice of six-fold duties : i) Devapūjā, worship of divinity ; ii) Gurūpāsti, devotion to Guru ; iii) Svādhyāya, study of scripture ; iv) Saṁyama, self-restraint ; v) Tapas, penance ; and vi) Dāna, religious donation.

It is possible to take stock, with typical examples, of the growth of later Jaina literature more or less from the seeds and hints found in earlier works. Attempt may be made here just to enumerate some broad types of narrative works giving their salient traits rather than entering into minor details about them.

"The material for the lives of 63 Śalākāpuruṣas (24 Tīrthaṅkaras, 12 Cakravartins, 9 Baladevas, 9 Vāsudevas and 9 Prativāsudevas) is found partly in the Kalpasūtra and, in its basic elements, in the Tiloyapaṇṇatti and Viśeṣāvaśyaka-bhāṣya as we have seen above. These lives have assumed a definite pattern, though the extent of details and descriptions etc. differ from author to author. It appears that some earlier works, like that of Kavi-Parameśvara have not come down to us ; but the works of Jinasena-Guṇabhadra and Hemacandra in Sanskrit, those of Śīlācārya and Bhadreśvara in Prākrit, of Puṣpadanta in Apabhraṁśa, of Cāmuṇḍarāya in Kannaḍa and the Śrīpurāṇa of an anonymous author in Tamiḷa are available besides the minor compositions of Āśādhara, Hastimalla etc. On account of their cosmographical and dogmatic details, intervening stories and moral preachings, they are worthily classed among the eminent Purāṇas and held in great authority.

In the second type we have the biographies of individual Tīrthakaras and other celebrated personalities of their times. We have seen how Nirvāṇakāṇḍa offers salutations to many an eminent soul commemorated in later literature. Most of the available biographies of Tīrthaṅkaras, whether in Prākrit, Sanskrit, Kannaḍa or Tamiḷa, admit the traditional details, but present them in an ornate style following the models of classical Kāvyas in Sanskrit : the lives of Supārśva and Mahāvīra depicted by Lakṣmaṇagaṇi (He narrates a number of substories illustrating the fruits of Samyaktva and of the Aticāras of twelve vows, and they almost eclipse the main current of the narrative.) and Guṇacandra in Prākrit, those of Dharmanātha and Candraprabha in Sanskrit by Haricandra and Vīranandi, and those of Ādinātha, Ajita and Śānti in Kannaḍa by Pampa, Ranna and H(P)onna are good examples. Jaina tradition puts Rāma and Kṛṣṇa as contemporaries of Munisuvrata and Neminātha ; and there are many works giving the Jaina version of the Indian legends about Rāma and Kṛṣṇa or cycles of tales associated with them. The Paümacariya of Vimala and the Padmacarita of Raviṣeṇa, even after making concession for the Jaina back-ground and outlook, *do give original and* important traits of the Rāma-legend, though they do not conceal their acquaintance with Vālmīki's Rāmāyaṇa. Due to the introduction Vidyādharas and their feats, these texts give a pleasant reading like a fairy tale in many portions. Kṛṣṇa Vāsudeva figures in Jaina literaturs quite prominently: the Ardha-māgadhī canon gives good bits of information about him and his clan ; he is an outstanding hero of his age, but the traces of deification, so overwhelmingly patent in the Mahābhārata, are conspicuously absent throughout these references. In early

Jaina works Pāṇḍavas are not as important as they appear to be in the Mahābhārata; and Kṛṣṇa, though not a divinity, is a brave and noble Kṣatriya hero. Perhaps this represents an earlier stage in the evolution of the Pāṇḍava legend which, in its enlarged and sectarian form, is available to us in the present-day Mahābhārata. The Vasudeva-carita attributed to Bhadrabāhu has not come down to us; but the Vasudevahiṇḍī of Saṅghadāsa, describing the peregrinations of Vasudeva and representing a fine Jaina counterpart of the Bṛhatkathā of Guṇāḍhya, is a memorable storehouse of a lot of heroic legends, popular stories, edifying narratives extended over many births, and sectarian and didactic tales. Many of the Ākhyānas, such as those of Cārudatta, Agaḍadatta, Pippalāda, Sagara princes, Nārada, Parvata, Vasu, Sanatkumāra etc., which are so popularly repeated in later literature, are already there in the Vasudevahiṇḍī nearly in the same form. The stories like that of Kaḍārapiṅga, who is well-known as a voluptuous character, can be traced back to this text; the motive remains the same, though the names associated with the story are different. The Harivaṁśapurāṇa of Jinasena in Sanskrit and those of Svayambhū and Dhavala in Apabhraṁśa share a good deal of common ground with the Vasudevahiṇḍī. Jinasena's text, it is remarkable, presents many details which can be more fittingly relegated to a work dealing with the lives of 63 Śalākāpuruṣas. Under this type may be included hundreds of Jaina works, in prose or poetry, in various languages: some of them deal with the lives of individual religious heroes such as Jīvandhara, Yaśodhara, Karakaṇḍu, Nāgakumāra and Śrīpāla; then there are edifying tales of pious house-holders and ladies that devoted their life to the observance of certain vows and religious practices; there are short biographies of ascetic heroes well-known in early literature; and lastly, there are tales of retribution, illustrating the rewards of good and bad acts here and elsewhere. What matter in these stories are the motives and the doctrinal preachings. Some heroes are drawn from earlier literature, some from popular legends, and some names may be even imaginary: the setting, however, given to all these is legendary. This category includes many Kathās, Akhyānas and Caritas in Sanskrit, Prākrit or Apabhraṁśa; their authors mind only the narration of the events and their style is epical. There are some notable examples like the Gadyacintāmani, Tilakamañjarī, Yaśastilakacampū etc. which are fine specimens of high poetic ability and ornate expression. It is an essential qualification of a Jaina monk that he should be able to narrate various stories; naturally many Jaina monks, gifted with poetic inclinations, have richly contributed to this branch.

The third type marks an interesting path in Indian literature: it is the religious tale presented in a romantic form. The Taraṅgavatī of Pādalipta in Prākrit is lost; but its later epitome, the Taraṅgalolā, shows that it might have possessed engrossing literary qualities. Then there is the Samarāiccakahā which is a magnificent prose romance composed by the poetic and literary genius of

Haribhadra almost from a string of traditional names to illustrate how Nidāna, or remunerative hankering, involves the soul into long Saṁsāra. The Upamitibhavaprapañcā kathā of Siddharṣi is an elaborate allegory worked out with much skill and care, and can be put under this type. Sometimes imaginary tales have been made an excuse for attacking the other religions, their doctrines and mythology. This tendency is explicitly seen as early as the Vasudevahiṇḍī, but the ways adopted there are straightforward. Haribhadra's Dhūrtākhyāna and the Dharmaparīkṣās of Hariṣeṇa, Amitagati and Vṛttavilāsa have shown how skilfully the incredible legends of Hindu mythology could be ridiculed through an imginary tale.

The fourth type is represented by semi-historical Prabandhas etc. After lord Mahāvīra, there flourished patriarchs, remarkable saints, outstanding authors, royal patrons and merchant-princes who served the cause of Jaina church in different contexts and centuries. The succeeding generations of teachers have not allowed all these to fall into oblivion. We see how Nandīsūtra offers salutations to eminent patriarchs ; Harivaṁśa and Kathāvalī mention the various teachers after Mahāvīra ; and the hymns like the Ṛṣimaṇḍala enumerate the names of saints : all these elements have given rise to a large mass of literature in later centuries, and the Pariśiṣṭaparvan, Prabhāvakacarita and Prabandhacintāmaṇi are the typical examples. Like the great teachers, the Jaina holy places also are glorified in works like the Tīrthakalpa. It is true that the historian has to glean out facts from their legendary associations.

The last type is represented by compilations of stories or the Kathākośas. We have seen how some of the canonical texts, Niryuktis, Paiṇṇas, Ārādhanā texts etc. refer to illustrative and didactic stories, exemplary legends and ascetic tales. Other texts like the Uvaesamālā, Upadeśapada etc. do continue this tendency. This required the commentators to supply these stories in full : sometimes older Prākrit stories are preserved in Sanskrit commentaries ; and at times the commentators themselves wrote these stories, based on earlier material, in Sanskrit either in prose or verse or in a mixed style. This has made some of the commentaries huge repositories of tales ; and we know how rich in stories are the various commentaries on the Āvaśyaka, Uttarādhyayana etc. These stories have got a definite moral purpose to be propagated, and as such teachers and preachers could use them independently, without any specific context, throughout their discourses. There have been the Jaina recensions like the Pañcākhyāna which were the forerunners of the Pañcatantra. This gradually led to small and big compilations of Kathās which could be conveniently used as source-books for constant reference. Many teachers could narrate them in their own way keeping intact, as far as possible, the purpose and the frame of the story. Consequently we have today in Jaina collections a large number of Mss. called

Kathākośas. Many of them are anonymous compositions, and very few of them are critically inspected in comparison with others of that class. Works like the Kumārapālapratibodha are nothing but collections of stories meant for a specific purpose. Individual stories from these collections are available separately also. As distinguished from these didactic tales, there are some stories associated with Vratas or the religious and ritualistic practices; and a good tale is composed to glorify the fruit of Vratas and the persons who achieved it. In later days they have lost all literary flavour and become mechanical and prosaic narratives which are often preserved in collections also.

In all the above types of works, excepting some of the semihistorical Prabandhas, certain traits specially attract our attention, because they are not quite normal and not found in such an abundance in other branches of Indian literature. Pages after pages are devoted to the past and future lives; and the vigilant and omnipotent law of Karman meticulously records their pious and impious deeds whose consequences no one can escape. Whenever there is an opportunity, religious exhortations are introduced with dogmatical details and didactic discourses. The tendency of introducing stories-in-stories is so prevalent that a careful reader alone can keep in mind the different threads of the story. Illustrative tales are added here and there, being usually drawn from folk-tales and beast-fables; and at all the contexts the author shows remarkable insight into the workings of human mind. The spirit of asceticism is writ large throughout the text; and almost as a rule every hero retires from the world to attain better status in the next life." (Bkk, Intro., pp. 35 f.).

It is necessary and interesting to note that Śrāvakācāras also refer to certain exemplary stories. "The Ratnakaraṇḍaka of Samantabhadra mentions Añjanacora, Anantamati, Uddāyana, Revatī, Jinendrabhakta, Vāriṣeṇa, Viṣṇu and Vajra to illustrate how the eight limbs of Samyaktva, *niḥśaṅkā* etc., were worthily possessed by them respectively (I. 19-20). (The Yaśastilakacampū (Śaka 881) 6th Āśvāsa, also gives these stories. The Dharmāmṛta (in Kannaḍa) of Nayasena (A. D. 1112) gives stories associated with Samyaktva, Vratas etc.) Then Mātaṅga, Dhanadeva, Vāriṣeṇa, Nīlī and Jaya are known for their perfect observance of the five Aṇuvratas; and Dhanaśrī, Satyaghoṣa, Tāpasa, Ārakṣaka and Śmaśru-navanīta are noted for their five sins (III. 18-9). Lastly, the names of Śrīṣeṇa, Vṛṣabhasena and Kauṇḍeśa are mentioned as typical donors (IV. 28). Vasunandi in his Uvāsayajjhayaṇa (I have used an edition which gives Prākrit text and Hindi Translation. The face page is gone; possibly it was published from Devaband by Babu Surajbhan Vakil) illustrates the eight Aṅgas of Samyaktva with almost the same names as those given by Samantabhadra: he gives Jinadatta for Jinendrabhakta and in addition mentions the names of their towns also (verse Nos. 52-5). Vasunandi illustrates the consequences of the seven Vyasanas by appealing to the following stories: Due to gambling the king

Yudhiṣṭhira lost his kingdom and had to dwell in the forest for a period of twelve years; Yādavas perished by drinking foul wine when they were thirsty while sporting in the garden; the demon Baka of Ekacakra, being addicted to flesh-eating, lost his kingdom and went to hell after death; that intelligent Cārudatta, because of his contact with a prostitute, lost his wealth and suffered a good deal in the foreign country; the sovereign Brahmadatta went to hell on account of his sin of hunting; Śrībhūti was punished and he wandered miserably in Saṁsāra, because he repudiated a deposit; the lord of Laṅkā, though a semi-sovereign and a king of Vidyādharas, went to hell, because he kidnapped another's wife; and Rudradatta of Sāketa, being addicted to all the seven Vyasanas, went to hell and wandered long in Saṁsāra (verse Nos. 125-33).

These texts by themselves give very little information about these names, and it is for the commentators to supply the details. Prabhācandra, for instance, has given the stories to make the references of the Ratnakaraṇḍaka intelligible. Most of these stories, it is clear, are moral lessons; some of them are found in later Kathākośas; and the fate of the heroes and heroines in the story leaves a definite imprint on the pious readers. If they suffer by their sins, the reader is expected to abstain from similar acts; and if they reach happiness by their pious acts, the reader becomes a confirmed believer in those virtues." (Bkk., Intro. pp. 34 f).

Aldous Huxley (Science, Liberty and Peace, p. 51) has righly observed thus: 'Pragmatically human beings know pretty well what is good for them, and have developed myths and fairy tales, proverbs and popular philosophies, behaviour patterns and moralities, in order to illustrate and embody their findings about life.'

The Pkk belongs to the last type, namely, the compilations of stories or the Kathākośas. Its title is quite significant of its contents and objectives. It aims at narrating tales the reading of which is likely to lead to the influx of meritorious Karman. It is well-known that according to Jainism the activities of mind, speech and body of the individual create a sort of inward vibrations which are either auspicious or inauspicious, or good or bad. The auspicious or the good ones lead to and absorb the influx of Puṇya, and the inauspicious or the bad ones to that of Pāpa. For one's Puṇya or Pāpa, no one excepting oneself is responsible so far as one's destiny here and elsewhere is concerned. This uncompromising and undiluted Karma philosophy is an important characteristic of Jainism which makes a man or woman absolutely self-reliant and inescapably self-responsible for all that he or she thinks, speaks or acts. There is no intervention here of any supernatural hand to make or mar an individual's destiny or to bestow favour or frown as a result of propitiation or offence. This is obvious in almost all Jaina tales. If, now and then, some subordinate deities are made to take part in these

3

stories, that looks like just a concession made to hereditory customs and regional cults.

5. The Puṇyāsrava : Format and Contents

The Pkk is divided into 6 Sections, having a total of 56 stories. The first Five Sections have got 8 stories (*aṣṭaka*, see pp. 61, 95, 137, 161, 335) in each (Nos. 12-13 should be treated as one story : elsewhere, however, the two opening verses, Nos. 21-22, 26-27, 36-37 and 44-45 are intended for two stories. The number of opening verses is 57, as mentioned by the author himself (p. 337), but the stories are 56.) and the Sixth or the last Section has 16 stories. These Sections give tales of outstanding men and women well-known for the practice of six-fold duties noted above. In earlier works these duties are enumerated thus : Deva-sevā (or -pūjā), Gurūpāsti, Svādhyāya, Saṁyama, Tapas and Dāna (See Somadeva's Yaśastilaka-Campū, N. S. Press, Bombay 1903, Kāvyamālā 70, p. 414 ; Padmanandi's Pañcaviṁśati, Sholapur 1963, Upāsaka-saṁskāra 6, pp. 128-37) Rāmacandra Mumukṣu, however, uses slightly modified terms: Pūjā, Pañcanamaskāra-Mantra, Śrutopayoga, Śīla, Upavāsa and Dāna.

The tales in the First Section illustrate the religious benefit of performing pūjā. The object of *pūjā* basically is to express one's devotion to the divinity, not to ask for anything from the god, but to develop in oneself the great qualities with which the divinity, namely, the Arhat is invested. The pūjā leads to Puṇya. In the third story, for instance, even a frog carrying a lotus for the worship of Mahāvīra, though killed on the way under the foot of the royal elephant, is born in heaven. A story like this is narrated to induce the house-holder to devote himself to the *pūjā*. In this section the Puṣpāñjali-pūjā is elaborated.

The Second Section illustrates the religious benefit accruing from the recitation of the *pañcanamaskāra-mantra* (Oṁ : ṇamo ara(i)haṁtāṇam/ṇamo siddhāṇam/ṇamo āiriyāṇam/ṇamo uvajjhāyāṇam/ṇamo loe savvasāhūṇam). This *mantra* has a great religious value in Jainism ; and later on, it has come to have great importance in Dhyāna, in rituals and in Tāntric practices. Though the title verses are numbered two, 12-13, they represent only one story.

The Third section illustrates the religious benefit of the study of Jaina scriptures. The 'study' is used here in a broad sense. It covers even hearing and recitation of scriptural instructions ; and it is effective even in the case of animals.

The fourth Section presents stories which glorify *śīla* or chastity. A householder is expected to observe the highest degree of fidelity to the wedded life. This rule holds good both for men and women.

The Fifth Section glorifies through its stories the religious fruit of fasts or fasting in general. Fasting or *upavāsa* is one of the six external penances ; and it is prescribed not only for the monk but also for the house-holder.

The Sixth or the last Section glorifies through its stories the fruits of Dāna or religious gifts given to the worthy. It contains 16 stories in all.

The make-up and pattern of these tales need some observations. Every story opens with a verse (in one case, two verses) which gives a broad outline of the contents of the story narrated by way of illustration. Whether the opening verses belong to the author himself or are inherited by him from some earlier source is a question easy to be raised but rather difficult to be categorically answered as far as our present knowledge of the text is concerned. The conclusion of a Section is rounded with a benedictory verse, generally in a longer metre, glorifying the topic covered. The stories are all narrated in prose apparently simple but often in an involved style with plenty of emboxing of stories in stories, some covering past and some future lives. The details of the tales become often complicated. Here and there some verses in Sanskrit and Prākrit stand quoted in the prose.

6. On the Sources of the Puṇyāsrava

It is interesting to study the sources of the various tales in this Pkk. Many of them like the tales of Karakaṇḍu (6), Śreṇika (8), Cārudatta (12-3), Dṛḍhasūrya (16), Sudarśana (17), Yama-muni (20), Jayakumāra-Sulocanā (26-7), Sītā (29), Nīlī (32), Nāgakumāra (34), Rohiṇī (36-7), Bhadrabāhu-Cāṇakya (38), Siṃṣeṇa (42), Vajrajaṅgha 43), Bhāmaṇḍala (51) etc. are all well-known in Jaina narrative literature. These stories do not narrate the career of any one individual in one life-time but they narrate the lives of different souls in a number of births, which have resulted from a particular Karman, pious or impious, in thought, word or deed. Naturally the titles of these tales (which vary from source to source) depend on the particular life chosen and the particular context of the Karman of which the results are illustrated.

The way in which these stories are elaborated requires a thorough study of the various threads and limbs of different tales, marking where they first occur and how in different strata of Jaina literature they go on developing and absorbing more and more details. (See, for instance, the Intro. of R. Williams to his 'Two Prākrit Versions of the Maṇipati-carita, London 1959). It is not intended here to work out all the details, but only the basic sources will be broadly indicated.

In certain places the author of the Pkk himself specifies some of the sources, mentioning the name of the work but not of the author of it. In the story of Bhūṣaṇa-vaiśya (No. 5), Rāmāyaṇa is mentioned (p. 15). The specific references to *jala-keli*, arrival of Deśabhūṣaṇa and Kulabhūṣaṇa and the narration of the *bhavāntara* possibly indicate that he has in view the Padmacarita of Raviṣeṇa, Parvan 83 etc. In another story (15) the Padmacarita is mentioned (p. 82): how an elephant which was caught in deep mud was enlightened by a

Vidyādhara with the instruction of *pañca-namaskāra* and came to be born in due course as Sītā, the wife of Rāma whose Svayaṁvara etc. are elaborated in the Padmacarita. This context can be spotted in Raviṣeṇa's work (Padmacarita, vols. I-III, Bhāratīya Jñānapīṭha, Benares 1958-9) Parvan 106, verses 135 ff.

In two stories, Nos. 7 and 43, the author tells us that they are well-known in the Ādipurāṇa which is obviously the first part of the Mahāpurāṇa (also mentioned in the latter story, see pp. 29,238,282) of Jinasena-Guṇabhadra (Bhāratīya Jñānapīṭha, vols. I-III, Benares 1951). The context of the story No. 7 is traced at Parvan 6, 105 ff. and that of No. 43 at Parvan 4, 133 ff.

There are many other stories the threads of which can be traced to the Mahāpurāṇa (Mp). Here only some broad references can be noted. Those who intend to pursue the study in details may find them useful. For No. 1, see Mp, 46-256 ff. (note the minor differences in names) ; No. 11, see Mp, 45-153 ff. ; No. 14, see Mp, 73, especially verses 98 ff. ; No. 23, see Mp, 46-268 ff ; Nos. 26-7, see Mp, 47-259 ff. ; No. 28, see Mp, 46-297 ff. ; No. 41, see partly Mp, 46-348 ff. ; No. 52, see Mp, 71-384 ff. ; No. 53, see Mp, 72-415 ff. ; No. 54, see Mp, 71-429 ff. ; No. 55, see Mp, 71-42 ff. It is obvious, therefore, that our author has used the Mahāpurāṇa in contexts more than one.

In the story No. 8, which gives the biography of king Śreṇika, the author tells us that it is adapted in short from the Karṇāṭa-ṭīkā on the Ārādhanā of Bhrājiṣṇu (?), It means that he is indebted to the Kannaḍa commentary of the Ārādhanā. Can the name of the author be Bhrājiṣṇu ? : or perhaps an obscure reading ! It has been already suggested by Prof. D. L. Narasimhachar (See his Intro. to the Kannaḍa Sukumāracaritaṃ of Śāntināthakavi, p. lxxx, Shimoga 1954) that this might be a reference to the Kannaḍa text, Vaḍḍārādhane, Banglore 1949, (see Bkk., Intro. pp. 63 ff.). The story of Śreṇika, however, is not found in the present text of the Vaḍḍārādhane. This story is found in the Bkk, No. 55 ; but the details require more critical scrutiny.

It is highly probable, as suggested by Prof. D. L. Narasimhachar, that Rāmacandra Mumukṣu had before him the Kannaḍa Vaḍḍārādhane, and possibly also some additional Prākrit sources. Some striking contexts may be noted here. The Prākrit quotation *pecchaha* etc. is found both in the Vaḍḍārādhane (p. 79) and also in the Pkk (p. 223) ; and some ideas in the proximity have much similarity. Then on the next page of the Kannaḍa Vaḍḍārādhane we have the expressions '*bolaha bolaha*' etc. which are very close to the similar passage in the Pkk on p. 223. Other contexts of such close similarity can be detected ; but the question of direct or indirect borrowal remains undecided as long as all the sources of the Vaḍḍārādhane are not known to us.

The stories Nos. 12-3 are said to have been derived from the Cārudatta-caritra (p. 65). It cannot be ascertained whether the reference is to any work

of that name or just to the biography of Cārudatta in general which is handled by various authors in their works. The story of Cārudatta is found in the Bkk of Hariṣeṇa and still earlier in the Harivaṁśa of Jinasena (Bhāratīya Jñānapīṭha, Varanasi 1962). The quotation *akṣrasyāpi* etc. given on p. 74 is identical with Harivaṁśa, 21.156. That clearly shows that our author has the Harivaṁśa-purāṇa before him while drafting this story.

In the story Nos. 21 and 22 their source is given as Sukumāra-carita about which we do not know much. The contents of the story, however, can be compared with those in the story No. 126 (see verses 53 ff.) in the Bkk. In Kannaḍa there is one Sukumāra-carita (Karṇāṭaka Saṅgha, Shimoga 1954) of Śāntinātha (A D. 1060). As our author is acquainted with the Kannaḍa language, it cannot be ruled out that he used some Kannaḍa works also; and it is interesting that he gives the title Sukumāra- and not Sukumāla-carita.

Coming to stories Nos. 36 and 37, the author mentions Rohiṇī-caritra as the source. Many works dealing with the career of Rohiṇī are available in Sanskrit, Prākrit and Apabhraṁśa (Jinaratnakośa, pp. 333 f.) Because there is a Rohiṇī-vrata attended by religious austerities and rituals, the story is quite popular. One version of it has been already translated into English by H. Johnson in 'Studies in Honour of M. Bloomfield, New Haven 1930. This story occurs in the Bkk, No. 57, but in the Pkk some more details are there. The quotation from the Śakunaśāstra found in Pkk on p. 209 also occurs in the Bkk, p. 110.

The story No. 38, according to the author, was included in the Bhadrabāhu-caritra. The biography of Bhadrabāhu is found in many Kathākośas and also in independent works of which the well-known is that by Ratnanandi (later than Saṁvat 1527) already in print (H. Jacobi : ZDMG, vol. 38, Leipzig 1884, also Jaina Bhāratī Bhavana, Benares 1911). In the same story, a slightly different story of Cāṇakya Bhaṭṭāraka is said to have been derived from Ārādhanā. In this connection it may be noted that the story of Bhandrabāhu Bhaṭṭāra, No. 6, and that of Cāṇakya, No. 18, are found in the Kannaḍa Vaḍḍārādhane with which our author seems to be acquainted. Two stories corresponding to these are also found in the Bkk of Hariṣeṇa, Nos. 131 and 143.

At the end of the story No. 42, which gives the tale of Śrīṣeṇa, the author tells us that he would not repeat the details here because they are already narrated by him in the Śānticarita composed by himself. Though some works of this title are reported (Jinaratnakośa, pp. 379 ff.), Rāmacandra's work has not come to light so far. For this story, see also the Mahāpurāṇa, 62-340 ff.

In the story No. 43 the authors mentions the Samavasaraṇagrantha as the source (p. 272) for some of the details elaborated by him.

The stories Nos. 44-5 the author proposes to narrate in short, because they occur in the Sulocanācarita. Some texts of this name are known (Jinaratnakośa, p. 477), and the story is found in the Mahāpurāṇa also, Parvan 46.

It is already seen how our author, Rāmacandra Mumukṣu, knows the Padmacarita (Pc) ; and some of the stories given by him have parallel contexts in the Pc. They may be just listed here without going into the details. The tales of Sugrīva (9), Vāli (18), Prabhāmaṇḍala have some common details with the Pc. No. 29 has its source in the same work, namely, Pc, Parvan 95. The story of Vajrakarṇa (31) has its correspondence in Pc, 33-130 ff. For No. 47, see Pc, 5-135 ff. ; Nos. 48-9, see Pc, 5-58 and 104 ; No. 50, see Pc. 31-4 ff. Nos. 48-51 have their contexts in the Pc, because they are all connected with the cycle of Rāma Tale.

Our author, it is already noted, quotes a verse from the Harivaṁśa of Jinasena. Some tales of his have their counterparts in the Harivaṁśa (Hv) : No. 10, see Hv, 18 29 f. ; No. 39, see Hv, 60-42 f. ; Nos. 52-55, see Hv, 60-56 f., 87 f., 97 f., 105 f.

There are some other stories in this Pkk the parallels for which are found in the Bkk. : Nos. 6, 16, 17, 20 and 25 may be compared with Bkk Nos. 56, 62, 60, 61 and 127.

The stories Nos. 32 and 33 are apparentlly those the chief characters of which are enumerated in the Ratnakaraṇḍaka Śrāvakācāra (III-18). These stories are given by Prabhācandra in his Sanskrit commentary on that work (Māṇikachandra D. J. Granthamālā, No. 24, Bombay 1935) ; and they are almost identical with the stories in the Pkk. The prima facie inference is that Prabhācandra being a commentator is just reproducing these stories from the Pkk. Moreover in minor details the tales in the commentary show better drafting here and there. Of course, the possibility of both of them being indebted to some earlier Kathākośa is not ruled out.

Thus as far as detected, besides some of the individual sources mentioned by the author, the main sources for the Pkk are the Padmacarita of Raviṣeṇa, Harivaṁśa of Jinasena, Mahāpurāṇa of Jinasena-Guṇabhadra and possibly the Bṛhatkathakośa of Hariṣeṇa. The episodes are mostly connected with the cycles of tales of Śalākāpuruṣas like Rāma and Kṛṣṇa and religious heroes mentioned in the Bhagavatī Ārādhanā round which, possibly based on its earlier commentaries, have grown a number of Kathākośas (Bkk., Intro. pp. 55 ff.). It is possible that many more sources for the stories can be detected in due course and thus enable us to ascertain the position of Rāmacandra's work among the various Kathākośas.

7. The Puṇyāsrava : Cultural Data etc.

As usual the sotories in this Pkk have plenty of references to Jaina dogmatical details. The Kevalin plays an important part in narrating the past lives and the future career of the souls. The motif of *jāti-smaraṇa* often occurs. Jaina technical terms are scattered all over the text. The Vidyādharas are freely introduced in these stories, and there are references to a number of miraculous Vidyās. Short folk-tales get introduced here and there (p. 53 f.). Among the Vratas the Puṣpāñjali (4) and Rohiṇīvrata (37) deserve attention ; and we get full details about the 16 dreams (p. 223), Six Periods of Time (pp. 257 f.), possibly based on the Harivaṁśa from which some verses (7-166 f.) are quoted, and about the Samavasaraṇa (p. 272). Eminent historical kings like Śreṇika, Candragupta, Aśoka, Bindusāra etc. and outstanding personalities like Bhadrabāhu and Cāṇakya etc. along with reference to contemporary schisms in the Jaina church find mention in different contexts (pp 219, 227, 229 f.).

The Pkk is one of the important links in the complicated network of Jaina narrative literature. Whether the work is later or earlier is not so important, because these tales, as a rule, go back to some or the other earlier source in Prākrit, Sanskrit and Kannaḍa. Though good many works of this type are published, many more are still lying in Mss. It is an urgent necessity, therefore, that individual stories are picked up for extensive study from its earliest to the latest form. The Jaina literature, as a whole, has to be kept in view ; and extraneous influence and accretions are never ruled out : in fact, these stories have to be studied ultimately as a part of Indian literature. Some time they may even disclose motifs and contexts of world-wide currency. Such a study alone will enable us to mark the various stages in their growth and to detect if there are any motives for the changes introduced and the details added or omitted.

8. Observations on the Language of the Puṇyāsrava

A phase of popular or colloquial Sanskrit (to be distinguished from Classical Sanskrit), as available in the works of a number of Jaina authors, for the present mostly from Western India, has come to be labelled 'Jaina Sanskrit'. The linguistic and philological back-ground of the language and the exact connotation of the term are already discussed by one of the editors (Intro. to the Bṛhat Kathākośa, pp. 94 ff.). Lately, in continuation of earlier studies in this regard, Dr. B. J. Sandesara and Shri J. P. Thaker have brought out a systematic study "Lexicographic Studies in 'Jaina Sanskrit'" (M. S. University Oriental Series, No. 5, Journal of the Oriental Institute, Baroda, December 1958, Vol. VIII, No. 2 ff. See also 'Lexicographical addenda Rājaśekharasūri's Prabandhakośa' by J. Deleu in the Turner Jubilee Volume, Indian Linguistics, 1959 ; also Maurer : Aspects of Jaina Sanskrit, Brahma Vidyā, XXVI, 3-4, Dec. 1963) drawing their

material from the Prabandhacintāmaṇi of Merutuṅga (A. D. 1305), Prabandhakośa of Rājaśekharasūri (A. D. 1349) and Purātana-prabandha-saṃgraha (a compilation of earlier texts) etc. It would be wrong to suppose that 'Jaina Sanskrit' is a general name given to the Sanskrit language as handled by Jaina authors; for, there are many Jaina authors like Samantabhadra, Pūjyapāda, Haribhadra etc. whose Sanskrit is quite classical. So, when the term 'Jaina Sanskrit' is used, we have a specific class of works in view. The authors of these works are addressing a wider public than just the elite and learned. Their sources, direct and indirect, are very often works written in Prākrit dialects which naturally affect their idiom. Secondly, they want to write in a popular style, and as such they often take liberty with grammatical niceties. Thirdly, their simple Sanskrit gets influenced by the contemporary, spoken Modern Indo-Āryan. Lastly, as to their vocabulary, some Deśī words get easy entry there; and middle and Modern Indo-Āryan words are garbed under Sanskrit sounds: they are either hyper-Sanskritic or back-formations. Almost all these tendencies are detected in the Pkk of Rāmacandra Mumukṣu. Besides his Prākritic heritage, it is not unlikely that he is influenced by the Kannaḍa idiom as well, here and there.

A scrutiny of the various readings of the Pkk shows that often *y* and *j*, *ṣ* and *kh* get interchanged in some places. Saṃdhi is often optional with the author: in fact, no attention seems to have been paid to observing Saṃdhi rules which are so rigorously observed in classical Sanskrit. Different Mss. show different degrees of strictness in adhering to them: that means that the copyists also have taken liberty with Saṃdhi while copying the text. Some of the lapses of expression could have been easily corrected. The editors, however, have preserved the text as agreed upon by the Mss. without any attempt to force the readings into any pattern of grammatical rules. Here the narration of the story and its moral are more important than the nicety of expression. The following study is only selective and illustrative and not exhaustive.

bhūyoktavān (75.14) is a wrong Saṃdhi. A few words show other than normal genders: here *dṛṣad laddhaḥ*, *m*, but in fact *f*; here *vṛttāntam* (156.7), *n*, but in fact *m*; here *kaivalyo* (270 13), *m*, but in fact *n*; *śata* and *sahasra* are used in *m*, instead of *n* (277, 278, 302 etc.).

Somaśarmā is the feminine base of Somaśarman (51.12); the other form Somaśarmaṇī (52.1) is also found. *gacchatī* for *gacchantī* (94.9) shows an indifferent use of the base.

Coming to Declensional forms, *pateḥ* is used for *patyuḥ* (154.2, 193.14 etc.), *rājasya* for *rājñaḥ* (196.5), *me* stands for *aham* (319. 13) and *imā* for *iyam* (165.5).

The author does not make the subtle distinction between Imperfect, Perfect and Aorist: perhaps any of them would be just past tense for him. In some places Passive is used for the Active Participle: *praṇatau* for *praṇatavantau*

(73.5), *uktaḥ* for *uktavān* (140.12) Sometimes Primitive for Causal : *ājñātau* for *ājñāpitau* (147.7); Active for Passive : *ākrośate* for *ākruśyate* (181.10). Unsanctioned Gerundive forms are met with : *tirobhūtvā* (100.10) for *tirobhūya*, *namaskṛtvā* (102.6) for *namaskṛtya*, *saṃsthitvā* (291.3) for *saṃsthāya* ; *vikurvya* cf. *viuvviūṇa* in Prākrit.

Turning to Syntax, Nom. sing. *upavāso* stands for Acc. sing. *upavāsam* (130. 12)—Acc. *hasta-saṃjñām* for Instr. sing. *hasta-saṃjñayā vyabodhi* (55.4), and (*asinā*) *śiro* for Loc. sing. *śirasi hanti sma* (143.4).—Instr. *Madanamañjūṣayā* for Loc. sing. *Madanamañjūṣāyāṃ putro jātaḥ* (14.7).—Abl. *sarvebhyaḥ* (146.9) for Instr. pl. *sarvaiḥ* (*remāte*).—Gen. for Dat. : *Sītāyāḥ* (102.6) for *Sītāyai praṇāmaḥ kṛtaḥ* ; *Nāgakumārasya* (164.14) for *Nāgakumārāya ādeśaṃ dehi* ; *prabhoḥ* (178.8) for *prabhave samarpitau* ; *tasya* (184.12) for *tasmai kathayati sma*.—Gen. for Instr. *Vajrajaṅghasya* (147.5) for *Vajrajaṅghena militau* (see also pp. 189.12, 200.7).—Loc. for Acc. *śākhāyām* (100.10) for *śākhām avalmbya* ; *gaṅgāyāṃ* (53.5) for *gaṅgāṃ calitaḥ* ; *śālāyāṃ* (199.10) for *śālāṃ viveśa*.—Loc. for Instr. : *maddhaste* (91.5) for *maddhastena mā mriyasva* ; etc. In some places there is seen the laxity of the use cases, for instance, *tayā bhakṣane* (136.8), *divya-bhogān cikrīḍa* (124-12) ; *Ayodhyā-bāhye* (302.12). Some confusion in the use of numbers also is seen in some places : *tau kāviti pṛṣṭayoḥ* for *pṛṣṭe* (148.2) ; *sā rājatanayā ca paṭhitā* for *paṭhite* (8.14).

There is some slackness here and there in the agreement of the subject and the predicate due to the use of the subject in the Nom. or Instr. Some compounds are awkwardly expressed, besides many of them falling under the category of *sāpekṣa* compounds, for instance, *jāta-devāgamam* (18.4), *Bandhudattena gatavaṇijo* (193.9). Instances of tautology are not wanting : *ati-bahu* (191.13), *paraṃ kiṃtu* (200.3).

The lexical material in this text is quite rich ; and a few words of interest may be noted here :

अतिव्याप्तिः f. (115.9), an all-embracing rule, proclamation.
अर्धराजः (17.12), a semiking.
असिपञ्जर (60.4), a guarded room.
आक्षेपः (274.6), anger.
आरतिउद्धरण (124.7), waving of the lighted lamp.
उदरपूर (220.10), stomachful.
उपटोल (59.10), hindrance. (?)
कचार (223.12), mud, dunghill.
कर्मसठ (54.2), workshop.
काष्ठशूलः (70.6), a wooden pike, cot (?).
कुटुम्बिन् (318.10), a peasant.
कुण्डलिका (300.8), a ring.
क्षीराहारी (115.7), a cowherd.
खेद्, also खेट् (32.8, 319.3) to drive the plough.

गद्दिका (111.10), a cotton bed.
गिञ्जाइक (302.12), aquatic worm.
ग्रहण (68,13), mortgage.
ग्रहणक (111-9), an ornament.
ग्रामकूटक (314.5), village headman.
घटिका (227.9), a fold.
चन्द्रकवेध्य (211.7), a kind of target.
चारि (166.2), fodder, grass.
चीरण (34.6), a chopped piece.
जलूका (205.7), a leech.
झकटक (304.4), quarrel, struggle.
झम्पन (317.4), covering, upper layer.
झाड, झाट (228.9), a tree.
डालं (32.9), a hook or branch.
दवरक (34.14), thread.
दशार्ध (100.9), a push by the five-fingered hand (?).
दानार्थं (213.13), to receive some gift.
देशान्तरिन् (325.10), a foreigner.
देशिक (18.11), a traveller.
धरणक (83.13), arrest.
धर्महस्त (112.11), solemn promise (?).
नैरन्तर्य (187.2), getting food without *antarāya*.
पट्टिका (169.7), turban.
पत्रपत्रिका (319.2), plate and cup (made of leaves).
पिट्टारक (43 6), a box, casket.
पिल्लक (112.7), young one.
पुटपुटिका (288.9), whisper (?).
पुष्पक (88.10), conveyance, palanquin.
पूरिका (253.8), thin fried bread made of wheat (*purī*).
पूरिकादिविक्रयी (253.8), sweetmeats vendoı.
पेटिका (125.9), box.
पोट्टल (क) (110.9), package.
पोत, पोत्त, पोत्थ (316.7), cloth, cloth-bag,
प्राणहिता (158.7), shoes.
प्राघूर्णक (101.4), a guest.
प्रातिहार्य (83.13), the duty of a Pratihārī
भृतिभाव (25.5), state of subordination.
माट (65.3), a sector of the house.
मालिक (23.9), a gardener.

मूलिका (69.5), a bundle of faggots.
रसवती (156.11), food.
वट्ट (215.14), a cup.
वण्ठ (316 9), servant, attendant.
वर्कर (112 8), joke.
वर्तुल(लि) क (287.11), a cup, cf. *baṭṭala* in Kannaḍa
वर्षवर्धनदिन (293.13), Birth-day.
विमुच्य (78.2), having camped (?).
शालक (330.5), brother-in-law.
शालिका (113.4), sister-in-law.
शिलाकर्मिन् (26.13), stone cutter.
शुद्धि (69.10), news.
शौल्किक (63.13), tax-collector.
समुद्धीर्य (41.4), having consoled, given courage.
संपन्न (307.2) born.

This list can be further supplemented. As noted above, some of them are derived from Prākrit and Deśī stock ; some are back-formations from Middle Indo-Āryan ; and some have special shade of meaning.

9. The Puṇyāsrava of Nāgarāja and its Relation with Rāmacandra's Text

The Puṇyāsrava of Nāgarāja (R. Narasimhacharya : Karṇāṭaka-kavicharite, Vol. I, Bangalore 1924, pp. 409 f.) is a Kannaḍa poem in the Campū form (showing an admixture of prose and verse) composed in a dignified poetic style. Nāgarāja gives some details about himself, his predecessors and the occasion of the composition of this work. He belongs to Kauśika-gotra. The name of his father is Viveka-Viṭṭaladeva who was a *jina-śāsana-dīpaka,* and lived in in Seḍimba (mod. Seḍam, for some details about it, see P. B. Desai : Jainism in in South India and some Jaina Epigraphs, Sholapur 1957, pp. 197 ff.), a prosperous town with a number of new temples of Jina (caitya-gṛha). His mother was Bhāgīrathi, his brother Tipparasa and his teacher, Anantavīrya who is styled *munīndra.* In the colophons he calls himself Māsivāḷada Nāgarāja. He has a number of titles : Sarasvatī-mukhatilaka, Kavi-mukha-mukura, Ubhaya-kavitā-vilāsa etc. He mentions in the opening verses Vīrasena, Jina(sena), Siṁhaṇaṁdi, Gṛddhapiṁcha, Kōṁḍkumda, Guṇabhadra, Pūjyapāda, Samantabhadra, Akalaṁka, Kumārasena (the leader of the Sena-gaṇa), Dharasena and Anantavīrya. He draws inspiration from earlier Kannaḍa poets like Paṁpa, Bandhuvarma, Ponna, Ranna, Gajāṁkuśa, Guṇavarma, Nāgacandra etc. He speaks so significantly about Paṁpa and other Kannaḍa poets (the extracts being quoted from a transcript belonging to the library of the Jīvarāja Jaina Granthamālā) :

पसरिप कन्नडकोडेयनोर्वने सत्कविपंपनावगं
वसुधेगे चक्रियंतमरभूमिगे वासवनंते संततं ।
रसेगुरगेंद्रनंते गगनक्के वररविर्यंते धात्रियोळ्
पेसपेडेविर्द्दनीगळ मगींगे तद्दीयवचोविळासमं ॥ १६ ॥
होन्नुगनोजे पंपन रसमोप्पुव काव्यद्दरीतियावगं
रन्नन लंधवेत्त पोसमातु गजांकुशनर्थगौरवं ।
मुन्निन बंधुवर्मगुणवर्मर जाण्नुडि नागचंद्रन-
त्युन्नतिवेत्त देशि नेळसिक्के मदीयकथाप्रबंधदोळ् ॥ ·

It is for the benefit of the people of Sagara and at the behest of his Guru Anantavīrya, he tells us, he rendered into Kannaḍa this work from Sanskrit in the śaka year 1253, i. e., A. D. 1331. He further adds that one Āryasena revised his composition into better attraction :

तवराजद सिरियंतिरे
सविर्य सालिङ्डुवुदखिळबुधततिगेल्लं ।
किवियोळ् नागेंद्रन निज-
कवितेय कन्नडनुडिय बेडगिणु गडणं ॥३१॥
ऎंदिं सगरद विनेया
वृंदं कोंडाडि पेळ्वुदेने कंनरदिं ।
मंदमतियप्प ना मन-
दंदें पेळल्के वोलिदु पुण्याश्रवमं ॥३२॥
मुन्नं संस्कृतदिंद-
त्युन्नतिवेत्तिरलु केळ्दु सगरद नगरं ।
कन्नडिसेने नागेंद्रं
कन्नडिसिदनोलिदु नोडि पुण्याश्रवमं ॥३३॥
विनयनिधि नागराजं-
गनुपमगुणनिधियनंतवीर्यव्रतिपं ।
मनमोलिदु पेळ्द तेरदिं
जनहितमं पेळ्वेनोलिदु पुण्याश्रवमं ॥३४॥

The following verses come at the end of the work :

श्रुतवार्धियार्यसेन—
व्रतिपति कोंडाडि तिर्दि कन्नडदोळ्वं ।
प्रतिवादिसिदनेनल्की-
कृति पेर्मेयनांतुदें वुदेनच्चरिये ॥
इदरिं सगरद नगर-
क्कुदितोदितपुण्यवागे पुण्याश्रवमं ।
चदुरकवि नागराजं
मृदुबंधरसोक्तियिंमनंबुगे पेळ्दं ॥

पुरशरयुग्मचंद्रपरिसंख्ये शकाब्दमद्यागे वत्सरं
सरसिजनाभगर्भमळवद्विरलाब्धिजदष्टमियोळ् ।
बेरसिरे शुक्रवारमिगे रोहिणीतारेयोळी प्रबंध वि-
स्तरमडेयित्तु भाविसे विनयजनोद्धरणैककारणं ॥

In his own words Nāgarāja's work contains the tales of ancient personalities who reached, in due course, heavens and liberation after becoming famous in their practice of the house-holders' duties, viz., *deva-pūjā, gurūpāsti, svādhyāya, saṁyama, dāna* and *tapas*.

Nāgarāja does not mention the name of the author of the Sanskrit Puṇyāsrava which served as the basis of his Kannaḍa Kāvya. As noted above, there are not many Sanskrit texts of the title Puṇyāsrava which have come down to us. On comparing the contents of the works of Rāmacandra and Nāgarāja, and as Nāgarāja definitely says that he is following the earlier Sanskrit work, we can believe that Nāgarāja has before him the Pkk of Rāmacandra. With the help of a transcript of Nāgarāja's Campū, a major portion of it is studied side by side with Rāmacandra's text. The number of the stories in both the works is the same; and their order too is identical. The grouping of the tales assigning them to six duties of the lay-followers is common to both. In places there are even identical expressions. The introductory verses of the stories, which are found both in the Sanskrit and Kannaḍa texts, are very close in their contents and expressions. Rāmacandra's object is just to narrate the stories without any special attention either to his poetic style or to grammatical niceties. But Nāgarāja is a gifted author with remarkable mastery over Kannaḍa expression. He narrates all the details (with minor changes in proper names here and there, and that too rarely) of Rāmacandra as they are but picks up occasions and contexts to add poetic descriptions which give a flavour to his composition. In fine, he is anything but prosaic unlike his model Rāmacandra. His Kannaḍa verses have a polish and lucidity. His prose has an unhindered flow, and is well suited to narrate the events in the manner of Rāmacandra. Some of the Prākrit quotations of Rāmacandra (p. 105) are retained by him, but the Sanskrit ones (pp. 32, 74 etc.) are often put into suitable Kannaḍa verses.

Nāgarāja's performance is so arresting as a Kāvya that one might even feel that it is Rāmacandra, who knows Kannaḍa because he has used some Kannaḍa sources (p. 61), that is rewriting his stories from this Kannaḍa poem. But this hypothesis has to be ruled out for various reasons: i) Nāgarāja plainly tells us that he has used an earlier Sanskrit work. ii) Rāmacandra has mentioned his sources, more than once, both in Sanskrit and Kannaḍa; and, if he had used Nāgarāja's work, he would have also mentioned this, his major source. iii) Rāmacandra shows a typical originality in mentioning the six topics which are duly adopted by Nāgarāja adjusting his wording to the one used by Somadeva (in his

Yaśastilakacampū) and Padmanandi (in his Pañcaviṁśati) in Karṇāṭaka. iv) Rāmacandra has mentioned some of his sources very significantly, especially so are his references to Ārādhanā-karṇāṭa-ṭīkā (p. 61) and to *his own* Śānticarita (p. 238). But when one looks to these contexts in Nāgarāja's Campū, it is found that his references are very casual, if at all specifically found there. v) Rāmacandra quotes a verse (p. 74), traced to the Harivaṁśa of Jinasena, in the story of Cārudatta. In the corresponding context, Nāgarāja just renders it into a Kannaḍa verse. This would be an impossible situation, if Rāmacandra were to follow Nāgarāja's work.

Rāmacandra divides his work, as noted above, into Six Sections, corresponding to the Six Topics ; and he has eight stories in the first Five Sections and sixteen stories in the Sixth Section. Nāgarāja is quite aware of the topical grouping of the stories, but somehow the Kāvya form of his work has tempted him to elaborate his descriptions and required him to divide his work into Āśvāsas. This has forced him to upset the natural grouping of the stories corresponding to the Sections of the work according to the topics. The serial numbers of 12 Āśvāsas (in which the Campū is divided) and of the stories included in them may be noted here :

Āśvāsa I : Story Nos. 1-4 ; II : 5-7 ; III : 8 ; IV : 9-15 ; V : 16-20 ; VI : 21-25 ; VII : 26-34 ; VIII : 35-37 ; IX : 38-43 ; X : 43 (concluded) ; XI : 44-50 ; and XII : 51-57.

From this enumeration, it is obvious that the Aṣṭaka grouping of stories by Rāmacandra stands intact only in the first three Āśvāsas but gets disturbed in the rest of the work. The story No. 43 extends over two Āśvāsas, IX and X. Rāmacandra never worried about the length of his tales and the consequent bulk of his Aṣṭaka or Ṣoḍaśaka, because, in his plan, all of them had to go together, according to the topic with which they were related. But Nāgarāja possibly wanted to make his Āśvāsas of suitable size ; and that has led to his odd distribution of stories in different Āśvāsas.

Any way, it must be said to the credit of Nāgarāja that he brought out a fine Kannaḍa Campū superseding the prosaic format of his model.

10. RĀMACANDRA MUMUKṢU : THE AUTHOR.

Rāmacandra Mumukṣu gives very little information about himself. In the colophons he calls himself the *śiṣya* of Keśavanandi who is styled *divya-muni*. This Keśvanandi, according to the concluding praśasti (p. 337), belonged to the Kundakundānvaya ; and his gifts and equipments are recorded by Rāmacandra in verse No. 1. He was like sun to the lotuses in the form of *bhavyas* or liberable souls. He observed rules of self-restraint. He was a lion to the elephant in the form of cupid. He was a thunderbolt to the mountains in the form of Karmas. He possessed divine intelligence. He was saluted by great saints and kings. He

had crossed the ocean of learning. And he was well-known. Rāmacandra was his pious pupil; he studied grammar from the great saint Padmanandi who was very famous and a lion to the disputant-elephants. Rāmacandra composed this Puṇyāsrva with 57 verses giving the outline of the contents of the stories. The extent of this work is 4500 *granthas*. This much information is available from the first three verses of the Praśasti.

There are six verses more, but one feels like suspecting that they are a later addition. Their contents are as below: In the well-known Kundakundānvaya there was the famous leader of the Deśi-gaṇa, the chief of the Saṃgha, namely, Padmanandi, who was endowed with three jewels (*tri-rātnikaḥ*). He was succeeded by Mādhavanandi Paṇḍita whose characteristics are expressed by *śleṣa* and who is compared with Mahādeva. He was the leader of the *gaṇa*. He was pleasing and famous. His pupil was Vasunandi-sūri who was an expert in the Siddhānta-śāstra, who observed fasts extending over months and who wes eminent among the learned. Vasunandi's successor-pupil was Mauli (Mauni ?) who enlightened the Bhavyas, who was worshipped by gods, and who was kind to all the living beings. He was succeeded by Śrī-Nandi-sūri who was endowed various arts, who was a Digambara and who was worshipped by bands of monks. He was like the full moon in the sky; and he was gifted with the knowledge of the various systems of thought (Cārvāka, Bauddha etc.,) and of different branches of learning.

This part of the *praśasti*, verses 4-9, was perhaps added later in some Ms. of the Puṇyāsrava. It is quite likely that this Padmanandi is identical with the one mentioned in verse No. 2 under whom Rāmacandra Mumukṣu had studied grammar or correct use of words; and these verses give his spiritual genealogy which stands thus Padmanandi>Mādhavanandi>Vasunandi>Mauli>Śrīnandi. Vasunandi who was an expert in Siddhānta-śāstra reminds us of Vasunandi Saiddhānta, the author of the commentary on the Mūlācāra, who is more than once referred to by Āśādhara (A. D. 1243). But it is not safe to identify any of these authors merely from the similarity of names, because the same name was borne by a number of Jaina teachers at different times and even at the same time.

Rāmacandra Mumukṣu is a well-read author, and he has used both Sanskrit and Kannaḍa sources. It cannot be definitely said from what part of the country he hailed: he knew Kannaḍa and that much is certain. He has drawn his details from a number of works like the Harivaṁśa, Mahāpurāṇa, Bṛhatkathākośa etc. After this text is published, it should be possible for scholars to detect many other sources. It appears from his own statement that he had composed one more work, the Śāntināthacarita (p. 238) which is not so far traced. There is one Dharmaparīkṣā attributed to Rāmacandra Muni who calls himself a *śiṣya* of Padmanandi. It cannot be definitely said that this Rāmacandra Muni is

identical with Rāmacandra Mumukṣu (Jaina Grantha Praśasti Saṃgraha, Part I, Delhi 1954, p. 33). Rāmacandra's mastery of Sanskrit grammar is not quite thorough ; and his style and expression show a good bit of looseness and lapses. Some of his traits remind us of the style of medieval and post-medieval authors from Gujarat and adjecent country. May be that some of these he has inherited from his Prākrit and Kannaḍa sources from which possibly he adopted some of his details.

Rāmcandra has not mentioned the date of his Pkk ; so we can only try to put some broad limits to his age. From the sources used by him, he is definitely later than Jinasena, the author of Harivaṁśa (A. D. 783), Jinasena-Guṇabhadra, the authors of the Mahāpurāṇa (c. 897 A. D.) and possibly the Bṛahatkathākośa of Hariṣeṇa (A D. 931-32). This means that he is to be assigned to a date later than A. D. 932. It has been noted above that Nāgarāja who is indebted to Rāmacandra's Pkk completed his Kannaḍa Campū in 1331 A. D. So Rāmacandra must have completed his Pkk between 931 and 1331 A. D. In this connection two more points may be taken into account. If Vasunandi's identity proposed above turns out to be valid, then Rāmacandra is earlier than Āśādhara (c. middle A. D.). Secondly, the first impression has been that Prabhācandra, the commentator of the Ratnakaraṇḍaka, is indebted to the Pkk, so Rāmacandra has to be assigned to a period earlier than Prabhācandra who belongs to the middle of the c. 12th century A. D. (See Ātmānuśāsana, Sholapur 1961, Intro. p. 12). The above definite limits can be brought nearer and the probabilities ascertained, if any of the teachers mentioned in the Praśasti are precisely identified and if the relation of this Pkk is worked out with other Kathākośas, especially that of Prabhācandra (c. close of the 11th century A. D., see Bkk, Intro. pp. 60 f.) the dates of which are already known.

प्रस्तावना

(१) पुण्यास्रव-कथाकोश

जिनरत्नकोश (भाग १, एच० डी० वेलणकरकृत, पूना, १९४४) में रामचन्द्र मुमुक्षु, नेमिचन्द्र गणि और नागराजकृत पुण्यास्रव कथाकोशका उल्लेख है, तथा एक और इसी नामका ग्रन्थ है जिसके कर्ताका निर्देश नहीं। रामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्यास्रव या पुण्यास्रव-कथाकोश एक लोकप्रिय रचना है, विशेषतः उन धार्मिक जैनियोंके बीच जो उसके स्वाध्यायको फलदायी और पुण्यकारक मानते हैं। इस ग्रन्थकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ देशके विविध भागोंमें पायी गयी हैं। जिनरत्नकोशके अनुसार उसकी प्रतियाँ भण्डारकर ओ० रि० इन्स्टीटयूट, पूना; लक्ष्मीसेन भट्टारक मठ, कोल्हापुर, माणिकचन्द हीराचन्द भण्डार, चौपाटी, बम्बई; इत्यादि संस्थाओंमें विद्यमान हैं। कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची (सम्पा० के० भुजबलिशास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, १९५८) में पुण्यास्रवकी कुछ प्रतियाँ मूडबिद्रीके जैनमठमें, तथा राजस्थानके जैन शास्त्र भण्डारोंकी ग्रन्थसूचीमें जयपुर व आमेरके भण्डारोंमें उनके अस्तित्वका उल्लेख है। बेलगांव, बम्बई, मैसूर आदि स्थानोंमें भी इसकी प्रतियाँ पायी जाती हैं, तथा स्ट्रासबर्ग (जर्मनी) के संग्रहमें भी इसकी एक प्रति है। अन्य वैयक्तिक संग्रहोंमें भी विविध स्थानोंपर उनके पाये जानेकी सम्भावना है।

पुण्यास्रवकी ओर पाठकोंका आकर्षण भी विशेष रहा है, जिसके फलस्वरूप अनेक भाषाओंमें उसके अनुवाद हुए। सन् १३३१ में नागराज कवि द्वारा चम्पूरीतिसे इसका कन्नड़में रूपान्तर किया गया जिसका मराठी ओवीमें अनुवाद जिनसेनने सन् १८२१ में किया। हिन्दीमें पुण्यास्रवके पाडे जिनदासकृत, दौलतरामकृत (सन् १७२०) जयचन्द्रकृत, टेकचन्द्रकृत और किसनसिंहकृत (सन् १७१६) अनुवाद या उनके उल्लेख पाये जाते हैं। इन अनुवादोंका अध्ययन कर यह देखनेकी आवश्यकता है कि उनमें रामचन्द्र मुमुक्षुकी प्रस्तुत रचनाका कहाँतक अनुसरण किया गया है। वर्तमानमें पं० नाथूरामजी प्रेमीके अनुवादकी तीन आवृत्तियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं (सन् १९०७, १९१६ और १९५९)। एक अन्य हिन्दी अनुवाद परमानन्द विशारदकृत भी प्रकाशित हुआ है (कलकत्ता, १९३७)।

(२) प्रस्तुत संस्करणकी आधारभूत प्रतियाँ

पुण्यास्रव-कथाकोशका प्रस्तुत संस्करण निम्न पाँच प्राचीन प्रतियोंके आधारसे किया गया है और उनके पाठान्तर दिये गये हैं।

ज – यह प्रति दि० जै० अतिशय क्षेत्र, महावीरजी, जयपुर, की है जिसमें लेखक व लेखनकालका उल्लेख नहीं है। प्रस्तुत संस्करणमें इसके पाठान्तर पृ० १७२ से आगे ही लिये जा सके हैं।

प – यह प्रति भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, की है। वह सन् १७३८ में लिखी गयी थी, तथा सवाई जयपुरमें मेरुकीर्ति-द्वारा शुद्ध की गयी व गुलाबचन्दजी-द्वारा अपने गुरु हर्षकीर्तिको भेंट की गयी थी।

फ – यह प्रति दि० जै० मुनि धर्मसागर ग्रन्थभण्डार, अकलूज, (जि० शोलापुर) की है। इसे शान्तिसागरके शिष्य धर्मसागरने सम्भवतः संवत् २००५ में, संवत् १८९६ में की गयी फलटणकी प्रतिपर-से लिखी थी।

ब – यह प्रति संवत् १५५९ की है और वह भट्टारक शुभचन्द्रके उत्तराधिकारी भट्टा० जिनचन्द्रके

प्रशिष्य व रत्नकीर्तिके शिष्य हेमचन्द्रको दान की गयी थी। यह प्रति ग्रन्थमालाके एक सम्पादक डॉ० हीरालाल जैन-द्वारा प्राप्त हुई।

श – यह प्रति जिनदास शास्त्री, शोलापुर, की है। इसमें उसके लेखन-काल आदिकी कोई सूचना नहीं है।

उपर्युक्त पाँचों प्रतियोंका विशेष विवरण व उनकी प्रशस्तियोंका मूल पाठ अँगरेजी प्रस्तावनामें पाया जायेगा।

(३) प्रस्तुत संस्करण : उसकी आवश्यकता : संस्कृत पाठ और हिन्दी अनुवाद

पुण्यास्रव-कथाकोशके प्रस्तुत संस्करणमें उपर्युक्त पाँच प्राचीन प्रतियोंके आधारसे उसका एक स्वच्छ और प्रामाणिक संस्कृत पाठ उपस्थित करनेका प्रयत्न किया गया है। ग्रन्थमाला सम्पादकोंमें-से एक (डा० आ० ने० उपाध्ये) जब अपने हरिषेणकृत बृहत्-कथाकोशकी प्रस्तावनाके लिए जैन कथा-साहित्यका सर्वेक्षण कर रहे थे, तब उन्हें इस ग्रन्थको प्राप्त करनेमें बड़ी कठिनाईका अनुभव हुआ। तभी उन्हें इस ग्रन्थका एक उपयोगी संस्करण तैयार करनेकी भावना उत्पन्न हुई। इस ग्रन्थकी भाषा और शैली विशेष आकर्षक नहीं हैं. तो भी विषयके महत्त्वके कारण उसके हिन्दी, मराठी और कन्नडमें अनुवाद हुए हैं। यह कथाकोश धर्म और सदाचार सम्बन्धी उपदेशात्मक कथानकोंका भण्डार है। उसमें सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक दृष्टिसे अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाओंका समावेश है। इसके कथानक असम्बद्ध नहीं हैं; किन्तु उनका सम्बन्ध अन्यत्र समान घटनात्मक कथाओंसे पाया जाता है। ये कथाएँ यद्यपि जैन आदर्शोंके ढाँचेमें ढली हैं, तथापि उनका मौलिक स्वरूप लोकाख्यानात्मक है। सामान्यत. ग्रन्थकर्तांने जैन धर्मके नियमोंको दृष्टिमें रखकर इन कथाओंको उनका वर्तमान रूप दिया है। अतः यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि ग्रन्थकर्ताने आदर्श नियमोंको कहाँतक व किस प्रकार जीवनकी व्यावहारिक परिस्थितियोंके अनुकूल बनाया है। यथार्थतः इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि इस कथाकोशकी पार्श्वभूमिमें श्रावकाचार सम्बन्धी नियमोंका अध्ययन किया जाय। मध्यकालीन श्रावकाचार-कर्ताओंके सम्बन्धमें एक यह बात कही जाती है कि (आशाधरको छोड़ शेष सब मुनि ही थे) सबने समाजका यथार्थ प्रतिबिम्बन न करके उसका वाञ्छनीय आदर्श रूप उपस्थित किया है। ऐसी परिस्थितिमें यह विपुल और विविध कथा-साहित्य बहुत कुछ कृत्रिम और परम्पराओंसे निबद्ध होनेपर भी, शिलालेखादि प्रमाणोंके अभावमें यथार्थताके चित्रको पूर्ण करनेमें सहायक हो सकता है। इस दृष्टिसे विशाल जैन कथासाहित्यमें पुण्यास्रव कथाकोशका अपना एक विशेष स्थान है। इस ग्रन्थकी भाषा भी टकसाली संस्कृत नहीं है, किन्तु उसमें जन-भाषाकी अनेक विलक्षणताएँ हैं जिनका भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे महत्त्व है। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए इस ग्रन्थके संस्कृत पाठको उपलब्ध सामग्रीकी सीमाके भीतर यथाशक्ति सावधानीपूर्वक प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया गया है।

पुण्यास्रवके जो हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं उनके साथ मूल संस्कृत पाठ नहीं दिया गया। अतएव कहा नहीं जा सकता कि वे अनुवाद कहाँतक ठीक-ठीक मूलानुगामी हैं। प्रस्तुत अनुवाद यथासम्भव मूलसे शब्दशः मेल खाता हुआ एवं स्वतन्त्रतासे भी पढ़ने योग्य बनानेका प्रयत्न गया किया है।

(४) जैन कथा-साहित्य और पुण्यास्रव

हरिषेणकृत बृहत्कथाकोशकी प्रस्तावनामें प्राचीन जैन साहित्यमें उपलब्ध कथात्मक तत्त्वोंका सिंहावलोकन कराया जा चुका है। आराधना सम्बन्धी कथाओंमें मुनियोंके एवं श्रावकाचार सम्बन्धी आख्यानोंमें श्रावक-श्राविकाओं (जैन गृहस्थों) के आदर्श चरित्र वर्णित पाये जाते हैं। इनमें विशेषतः देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान, इन छह धार्मिक कृत्योंका महत्त्व बतलाया गया है। उत्तरकालीन धार्मिक कथाओंके विस्तारका इतिहास संक्षेपतः निम्न प्रकार है।

तिलोयपण्णत्ति, कल्पसूत्र एवं विशेषावश्यकभाष्यमें त्रेषठशलाका पुरुषों अर्थात् २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, और ९ प्रतिवासुदेव, इन महापुरुषोंके जीवन चरित्र सम्बन्धी नामों और घटनाओंके संकेत पाये जाते है। क्रमशः इन चरित्रोंने रीतिबद्ध स्वरूप धारण किया। कवि परमेश्वर आदि कुछ प्राचीन कथालेखकोंकी कृतियाँ हमे अनुपलब्ध है, तथापि जिनसेन-गुणभद्र एवं हेमचन्द्रकृत त्रिषष्ठि-पुराण संस्कृतमें, व शीलाचार्य तथा भद्रेश्वरकृत प्राकृतमे, पुष्पदन्तकृत अपभ्रंशमे, चामुण्डरायकृत कन्नडमे और अज्ञातनामा कविकृत श्रीपुराण तमिलमे अब भी प्राप्त है। इन बृहत्पुराणोंके अतिरिक्त आशाधर, हस्तिमल्ल आदि कृत संक्षिप्त रचनाएँ भी उपलब्ध है। इनमे जो लोक-रचना एवं धार्मिक सिद्धान्त व अवान्तर कथाओंका विवरण सम्मिलित पाया जाता है उनसे वे बहुमान्य पुराणोंकी कोटिमे गिनी जाती है।

दूसरी श्रेणीमें प्रत्येक तीर्थंकर व उनके समकालीन विशेष महापुरुषोंके वैयक्तिक चरित्र है। निर्वाण-काण्डमे अनेक महापुरुषोंको नमस्कार किया गया है जिनके चरित्र पश्चात्-कालीन रचनाओंमे वर्णित है। प्राकृत, संस्कृत, कन्नड व तमिलमे वर्णित तीर्थंकरोंके चरित्रोंमे परम्परागत विवरण होते हुए भी अलंकारिक काव्यशैलीका अनुकरण पाया जाता है। प्राकृतमे लक्ष्मणगणिकृत सुपार्श्व तीर्थंकरके चरित्रमें सम्यक्त्व व बारह व्रतोंके अतिचारके दृष्टान्त रूप इतनी अवान्तर कथाएँ आयी है कि उनसे मूल कथाकी धारा कहीं-कही विलुप्त-सी हो गयी है। उसी प्रकार गुणचन्द्रकृत प्राकृत महावीरचरित्र भी है, तथा संस्कृतमें हरिश्चन्द्रकृत धर्मनाथचरित्र व वीरनन्दिकृत चन्द्रप्रभचरित्र, एवं कन्नडमे पम्प, रन्न व पोन्न कृत आदिनाथ, अजितनाथ व शान्तिनाथके चरित्र। जैन परम्परानुसार राम मुनिसुव्रत तीर्थंकरके, एवं कृष्ण नेमिनाथके समकालीन थे। अतएव इनके चरित्र व तत्सम्बन्धी कथाएँ अनेक जैन ग्रन्थोंमे वर्णित है। विमलसूरिकृत पउमचरियं (प्राकृत), रविषेणकृत पद्मचरित (संस्कृत), व स्वयंभूकृत पउमचरिउ (अपभ्रंश) मे राम सम्बन्धी आख्यानोंका रोचक समावेश है। कृष्णवासुदेव सम्बन्धी अनेक उल्लेख अर्धमागधी आगमोंमे भी पाये जाते है। यद्यपि वहाँ उन्हे ईश्वरका अवतार नही माना गया, तथापि वे अपने युगके एक विशेष महापुरुष स्वीकार किये गये है। पाण्डवोंके भी उल्लेख आये है, किन्तु वैसे प्रमुख रूपमे नही जैसे महाभारतमे। भद्रबाहुकृत वासुदेव चरित-का उल्लेख मिलता है, किन्तु यह ग्रन्थ अभीतक प्राप्त नही हो सका। संघदासकृत वसुदेवहिंडी (प्राकृत) मे वसुदेवके परिभ्रमणके अतिरिक्त अवान्तर कथाओंका भण्डार है। यह रचना गुणाढ्यकृत बृहत्कथाके समतौल है, और उसमे चारुदत्त, अगडदत्त, पिप्पलाद, सगरकुमार, नारद, पर्वत, वसु, सनत्कुमार आदि प्रसिद्ध कथा-नायकोंके आख्यानोंकी भरमार है। संस्कृतमे जिनसेनकृत हरिवंशपुराण तथा स्वयंभू व धवलकृत अपभ्रंश पुराणोंमे वसुदेवहिंडीसे मेल खाती हुई बहुत-सी सामग्री है। अनेक भाषाओंमे सैकड़ो गद्य व पद्यात्मक जैन रचनाएँ है जिनमे जीवंधर, यशोधर, करकडु, नागकुमार, श्रीपाल आदि धार्मिक नायकोंके चरित्र वर्णित है, धार्मिक व्रत-उपवासादिके सुफल तथा सुकृत-दुष्कृत्योंके अच्छे बुरे परिणाम बतलाये है। इनमे-के कुछ नायक पौराणिक हैं, कुछ लोक-कथाओंसे लिये गये है और कुछ काल्पनिक भी है। गद्यचिन्तामणि, तिलकमञ्जरी, यशस्तिलकचम्पू आदि कथा, आख्यान, चरित्र आदि रचनाएँ आलंकारिक शैलीके उत्कृष्ट उदाहरण है। जैन मुनिका यह एक विशेष गुण है कि वह अपने धार्मिक उपदेशोंको कथाओं-द्वारा स्पष्ट और रोचक बनावे। स्वभावतः काव्यप्रतिभा-सम्पन्न अनेक जैन मुनियोंने कथा-साहित्यको परिपुष्ट करनेमे अपना विशेष योगदान दिया है।

कथाओंकी तृतीय श्रेणी भारतीय साहित्यकी एक विशेष रोचक धाराका प्रतीक है। यह है रोमांचक रूपमें प्रस्तुत धार्मिक कथा। इस श्रेणीकी उल्लिखित प्रथम रचना थी पादलिप्तकृत तरंगवती (प्राकृत) जो अब मिलती नही है। किन्तु उसके उत्तरकालीन संस्करण तरंगलोलासे ज्ञात होता है कि उस पूर्ववर्ती कथामे बड़े चित्ताकर्षक साहित्यक गुण थे। उसके पश्चात् कवित्व और साहित्यके अतिशय प्रतिभावान् लेखक हरिभद्रकृत समराइच्चकहा है जिसे उन्होंने परम्परागत नामावलीके आधारसे प्राकृत मद्यकथाके रूपमें निदानके दुष्परिणामोंको बतलानेके लिए लिखा। इसी शैलीकी सिद्धर्षिकृत उपमिति-भव-प्रपंच-कथा है जो संस्कृत

यत्नमें प्रतीकात्मक रीतिसे कुशलता और सावधानीपूर्वक लिखी गयी है। कुछ ऐसी काल्पनिक कथाएँ भी लिखी गयीं जिनमें अन्य धर्मों व उनके सिद्धान्त और पुराणपर कटाक्ष किये गये हैं। यह प्रवृत्ति वसुदेवहिंडीमें भी प्रत्यक्ष दिखाई देती है; किन्तु हरिभद्रकृत धूर्ताख्यान और हरिषेण, अमितगति तथा वृत्तविलासकृत धर्म-परीक्षामें इस बातके उदाहरण हैं कि वैदिक परम्पराकी कुछ पौराणिक वार्ताएँ किस प्रकार चतुराईसे व्यंग्यात्मक कल्पित आख्यानों-द्वारा अप्राकृतिक और असम्भव सिद्ध करके खण्डित की जा सकती है।

कथाओंकी चतुर्थ श्रेणी अर्ध-ऐतिहासिक प्रबन्धों आदिकी है। भगवान् महावीरके पश्चात् अनेक सुविख्यात आचार्य, साधु, कवि, सम्राट् एवं सेठ-साहूकार हुए जिन्होंने भिन्न-भिन्न काल व नाना परिस्थितियोंमें जैन धर्मकी रक्षा और उन्नति की। इन स्मृतियोंकी रक्षा लेख-बद्ध रचनाओं-द्वारा की गयी। नन्दिसूत्रमें प्रमुख आचार्योंकी वन्दना की गयी है। हरिवंश और कथावलिमें महावीरके पश्चात् आचार्य-परम्पराका निर्देश किया गया है; तथा ऋषिमण्डल आदि स्तोत्रोंमें साधुओंकी नामावलियाँ पायी जाती हैं। पश्चात्कालीन शतियोंमें उपर्युक्त सामग्रीके आधारपर परिशिष्ट पर्व, प्रभावक-चरित, प्रबन्धचिन्तामणि आदि अनेक साहित्यिक प्रबन्ध लिखे गये तथा जैन तीर्थोंका महत्त्व प्रकट करनेवाले तीर्थकल्प आदि ग्रन्थ रचे गये। हाँ, यह आवश्यक है कि इनमें-से काल्पनिक वृत्तान्तोंको पृथक् करके शुद्ध ऐतिहासिक तथ्योंका संकलन विशेष सावधानीसे ही किया जा सकता है।

कथा-साहित्यकी अन्तिम श्रेणी कथाकोशोंकी है। निर्युक्तियों, प्रकीर्णकों, आराधना-पाठों आदिके उपदेशात्मक दृष्टान्तोंकी परम्पराको उपदेशमाला, उपदेशपद आदि रचनाओंमें आगे बढ़ाया गया और टीका-कारोंने उन दृष्टान्तोंको पल्लवित कर कथाओंका रूप दिया, एवं स्वयं भी कथाएँ रचकर सम्मिलित की। इस प्रकार ये टीकाएँ कथाओंके भण्डार बन गये जिसके उदाहरण आवश्यक व उत्तराध्ययन आदिपर लिखी गयी टीकाएँ और भाष्य हैं। इन कथाओंका अपना नैतिक उद्देश्य है, जिसके कारण उपदेश उन्हें स्वतन्त्रतासे अपने भाषणों और प्रवचनोंमें उपयोग करने लगे। पंचतन्त्र-जैसी लोकप्रिय रचनाओंका मूलाधार जैन पंचा-ख्यान आदि सिद्ध होते हैं। इस क्रममें छोटे-बड़े कथा-संग्रहोंकी परम्परा चल पड़ी, जिसके फल-स्वरूप अनेक कथाकोश तैयार हुए। इनमें-से कितनोंके तो कर्ताओंके नाम भी अज्ञात हैं; और बहुत थोड़े ऐसे हैं जिनका आलोचनात्मक व तुलनात्मक रीतिसे अवलोकन किया गया हो। कुमारपाल-प्रतिबोध आदि रचनाएँ कथाओंके संग्रह ही हैं जिनका अपना एक विशेष उद्देश्य है। इन संग्रहोंमें-से अनेक कथायें पृथक्-पृथक् भी उपलभ्य हैं। शुद्ध नैतिक उपदेशात्मक कथाओंसे भिन्न ऐसी भी कथाएँ हैं जिनमें व्रत-उपवास आदि धार्मिक आचरणों व क्रियाकाण्डोंका महत्त्व बतलाया गया है। कालान्तरमें यही तत्त्वप्रधान हो गया है, और कथाकोश साहित्यिक गुणोंसे वंचित होकर यान्त्रिक धार्मिक आख्यान मात्र बन गये।

पूर्वोक्त अर्ध-ऐतिहासिक प्रबन्धोंको छोड़कर उक्त समस्त श्रेणियोंके कथा-ग्रन्थोंमें कुछ लक्षण विशेष रूपसे हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, क्योंकि वे भारतीय साहित्यकी अन्य शाखाओंमें प्रायः नहीं पाये जाते। इन कथाओंमें पूर्व जन्मके वृत्तान्तोंकी बहुलता है जिनके द्वारा सत् और असत् कर्मोंके पुण्य व पापमय परिणामोंकी अनिवार्यता स्थापित की गयी है। जहाँ कहीं भी अवसर मिला धार्मिक उपदेशोंका संक्षेप या विस्तारपूर्वक समावेश किया गया है। कथाके भीतर कथाओंका ऐसा गुँथाव पाया जाता है कि एक कुशल पाठक ही उनके पृथक्-पृथक् सन्दर्भ-सूत्रोंको चित्तमें सुरक्षित रख सकता है। लोक-कथाओं व पशु-सम्बन्धी आख्यानोंसे दृष्टान्त ले लिये गये हैं; और पद-पदपर कथाकार मानवीय मानसिक वृत्तिकी गहरी जानकारी प्रकट करता है। कथाका सर्वांग संन्यासकी भावनासे व्याप्त है और प्रायः प्रत्येक कथा-नायक अन्तमें संसारसे विरक्त होकर मुनिदीक्षा ले अपने अगले जीवनको अधिक प्रशस्त बनानेका प्रयत्न करता है।

श्रावकाचारोंमें भी दृष्टान्तात्मक कथाओंका समावेश पाया जाता है। समन्तभद्र कृत रत्नकरण्डश्राव-काचारमें सम्यक्त्वके निःशंकादि आठ अंगोंके दृष्टान्त रूप अंजनचोर, अनन्तमति, उदायन, रेवती, जिनेन्द्रभक्त,

वारिषेण, विष्णु और वज्रका नामोल्लेख किया गया है। यशस्तिलक चम्पू (संस्कृत, शक ८८१), धर्मामृत (कन्नड, ई० ११११२) आदि ग्रन्थोंमें भी ये कथानक वर्णित हैं। पाँच अणुव्रतोंके विधिवत् पालन करनेवाले मातंग, धनदेव, वारिषेण, नीली और जयके नाम प्रसिद्ध हैं; एवं तत्सम्बन्धी पंच पापोंके लिए धनश्री, सत्यघोष, तापस, आरक्षक और श्मश्रु-नवनीतके उदाहरण विख्यात हैं। अन्ततः श्रीषेण, वृषभसेन और कौण्डेश, दानदाताओंमें यशस्वी गिनाये गये हैं। (र० क० श्रा० १, १९-२०, ३, १८-१९, ४, २८) वसुनन्दि आचार्यने अपने उपासकाध्ययनमें सम्यक्त्वके आठ अंगोंके उदाहरण पूर्वोक्त प्रकार ही दिये हैं; केवल जिनभक्तके स्थानपर जिनदत्त नाम कहा है, तथा उक्त भक्तोंके निवास-नगरोंके नाम भी दिये हैं (५२ आदि)। वसुनन्दिने सात व्यसनोंके उदाहरण इस प्रकार दिये हैं। द्यूतके कारण युधिष्ठिरने अपना राज्य खोया और बारह वर्ष तक वनवासका दुःख भोगा। वनक्रीडाके समय मद्य पीकर यादवोंने अपना सर्वनाश कर डाला। एकचक्र निवासी बक मांसकी लोलुपताके कारण राज्य खोकर मृत्युके पश्चात् नरकको गया। बुद्धिमान चारुदत्तने भी वेश्यारत होकर अपनी समस्त सम्पत्ति खो डाली, और प्रवासमें बहुत दुःख भोगा। आखेटके पापसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नरकको गया। न्यासको अस्वीकार करनेके पापसे श्रीभूतिने दण्ड पाया और दुःखपूर्वक संसार-परिभ्रमण किया। परस्त्रीका अपहरण करके विद्याधरोंका राजा व अर्धचक्री लंकाधिपति रावण नरकको गया। तथा साकेत निवासी रुद्रदत्तने सप्तव्यसनासक्त होकर नरकगति पायी और दीर्घकाल तक संसार परिभ्रमण किया।

उपर्युक्त ग्रन्थोंमें उन उदाहरणस्वरूप उल्लिखित व्यक्तियोंका वृतान्त बहुत कम पाया जाता है। उनका कथा-विस्तार करना टीकाकारोंका काम था। जैसे रत्नकरण्डकके उल्लेखोंको कथाओंका रूप उसके टीकाकार प्रभाचन्द्रने दिया। इनमें-से कुछ कथाएँ कथाकोशोंमें सम्मिलित पायी जाती हैं। उनमें निहित पाप-पुण्यके परिणामोंसे शिक्षा लेकर पाठक या श्रावकसे यह अपेक्षा की जाती है कि वह दुराचारसे भयभीत होकर सदाचारी और धर्मिष्ठ बने। पुरानी कहावत है "हित अनहित पशु-पक्षी जाना।" अतः कोई आश्चर्य नहीं जो विवेकी पुरुषोंने अनुभवनके आधारसे नाना प्रकारकी उपदेशात्मक कथाओं, आख्यायिकाओं व कहावतों आदिकी रचना की।

पुण्यास्रव-कथाकोश इसी अन्तिम श्रेणीकी रचना है। विषयकी दृष्टिसे उसका नाम सार्थक है। जैनधर्मानुसार प्रत्येक प्राणीकी मानसिक, वाचिक व कायिक क्रियाओं-द्वारा शुभ व अशुभ, पुण्य व पाप रूप आन्तरिक संस्कार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अपने पुण्य-पाप-द्वारा उत्पन्न सुख-दुःखके लिए स्वयंको छोड़ अन्य कोई उत्तरदायी नहीं है। जैनधर्मके इस अनिवार्य कर्म-सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक पुरुष व स्त्री अपने मन, वचन व कायकी क्रियाके लिए पूर्णतः आत्मनिर्भर और स्वयं उत्तरदायी है। व्यक्तिके भाग्य-विधानमें अन्य किसी देव या मनुष्यका हाथ नहीं। समस्त जैन कथाओंका प्रायः यही सारांश है। यदि कहीं यत्र-तत्र किन्हीं देवी-देवताओंके योगदानका प्रसंग लाया गया है तो केवल परम्परागत लोक-मान्यताओं व क्षेत्रीय धारणाओंका तिरस्कार न करनेकी दृष्टिसे।

(५) पुण्यास्रव: उसका स्वरूप और विषय

पुण्यास्रव कथाकोशमें कुल छप्पन कथाएँ हैं जो छह अधिकारोंमें विभाजित हैं। प्रथम पाँच खण्डोंमें आठ-आठ कथाएँ हैं और छठे खण्डमें सोलह। १२-१३ वीं कथाओंको एक समझना चाहिए। अन्यत्र जहाँ दो प्रारम्भिक श्लोक आये हैं, जैसे २१-२२, २६-२७, ३६-३७, ४४-४५, वहाँ वे दो कथाओंसे सम्बद्ध हैं। इस प्रकार प्रारम्भिक पद्योंकी संख्या ५७ है, जिसका उल्लेख स्वयं ग्रन्थकर्ताने किया है (पृ० ३३७)। किन्तु कथाएँ केवल ५६ हैं। इन कथाओंमें उन पुरुषों व स्त्रियोंके चरित्र वर्णित हैं जिन्होंने पूर्वोक्त देवपूजा आदि गृहस्थोंके छह धार्मिक कृत्योंमें विशेष ख्याति प्राप्त की।

प्रथम अष्टककी कथाओंमें देवपूजासे उत्पन्न पुण्यके उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। पूजाका मूल उद्देश्य

देवके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करना और अर्हन्तके गुणोंको स्वयं अपनेमें विकसित करना है, न कि देवसे कोई भिक्षा माँगना। उदाहरणार्थ, तीसरी कथामें कहा गया है कि एक मेण्डक भी भगवान् महावीरकी पूजा-के लिए कमल ले जाता हुआ मार्गमें राजाके हाथी-द्वारा कुचला जाकर मरनेके पश्चात् स्वर्गमें देव हुआ। ऐसी कथाका उद्देश्य यही है कि प्रत्येक गृहस्थको अपनी गति सुधारनेके लिए देवपूजा करना चाहिए। इस खण्डमें विशेषत: पुष्पाजलि पूजाका विस्तारसे विधान किया गया है।

दूसरे अष्टकमें 'णमो अरहंताणं' आदि पचनमस्कार मन्त्रोच्चारणके पुण्यकी कथाएँ है। इस मन्त्रका जैन धर्ममें बड़ा महत्त्व है और उत्तरकालमें ध्यान, क्रियाकाण्ड एवं तान्त्रिक प्रयोगोंमें उसका विशेष महत्त्व बढ़ा। यद्यपि प्रारम्भिक श्लोकोंपर दो क्रमांक है (१२-१३), तथापि उनकी कथा एक ही है।

तृतीय अष्टकमें स्वाध्यायके पुण्यकी कथाएँ हैं। स्वाध्यायसे तात्पर्य केवल जैन शास्त्रोंके पठनसे नहीं है, किन्तु उनके श्रवण व उच्चारणसे भी है, और पशु-पक्षियोंको भी उसका पुण्य होता है।

चतुर्थ अष्टकमें शीलके उदाहरण वर्णित है। गृहस्थोंमें पुरुषोंको अपनी पत्नीके प्रति एवं पत्नीको पतिके प्रति पूर्णत: शीलवान होना चाहिए।

पंचक अष्टकमें पर्वोंपर उपवासोंका पुण्य बतलाया गया है। उपवास छह बाह्य तपोंमें-से एक है, और उसका पालन मुनियों और गृहस्थोंको समान रीतिसे करना चाहिए।

छठे खण्डमें पात्र-दानका महत्त्व वर्णित है। इस खण्डमें दो अष्टक अर्थात् सोलह कथाएँ है।

इन कथाओंके गठन और शैलीपर भी कुछ ध्यान दिया जाना योग्य है। प्रत्येक कथाके प्रारम्भिक एक श्लोक (एक स्थानपर दो श्लोकों) में कथाके विषयका संकेत कर दिया गया है, और अन्तिम श्लोक (जो प्राय: लम्बे छन्दमें रहता है) आशीर्वादात्मक और विषयकी प्रशंसायुक्त होता है। प्रारम्भिक पद्य स्वयं ग्रन्थकार-द्वारा रचित है, या पीछे जोड़ गये है, इसका निर्णय करना वर्तमान प्रमाणों-द्वारा असम्भव है। कथाएँ गद्यमें वर्णित है, और गद्यकी भाषा ऊपरसे तो सरल दिखाई देती है, किन्तु बहुधा जटिल हो गयी है। कथाओंके भीतर उपकथाओंके समावेशकी बहुलता है। इन कथाओंमें भूत और भावी जन्मान्तरोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है जिससे कथावस्तुमें जटिलता आ गयी है। यत्र-तत्र संस्कृत व प्राकृतके कुछ पद्य अन्यत्रसे उद्धृत पाये जाते है।

(६) पुण्यास्रवके मूल स्रोत

इस ग्रन्थकी कथाओंके आदि स्रोतोंकी खोज भी चित्ताकर्षक है। करकण्डु (६), श्रेणिक (८), चारुदत्त (१२-१३) दृढ़सूर्य (१६), सुदर्शन (१७) यममुनि (२०), जयकुमार-सुलोचना (२६-२७), सीता (२९), नीली (३२) नागकुमार (३४), रोहिणी (३६-३७), भद्रबाहु-चाणक्य (३८), श्रीषेण (४२), वज्रजंघ (४३), भामण्डल (५१), आदिकी कथाएँ जैन साहित्यमें सुप्रसिद्ध हैं। इन कथाओंमें नायकके केवल एक जन्मका चरित्रमात्र वर्णित नहीं है, किन्तु अनेक जन्म-जन्मान्तरोंका, जिनमें उनके मन, वचन व काय सम्बन्धी शुभ या अशुभ कर्मोंके फलोंकी परम्परा पायी जाती है। जिस क्रमसे इन कथाओंका विस्तार हुआ है, एवं उनमें प्रचित घटनाओंका समावेश किया गया है उसको पूर्णरूपसे समझने-समझानेके लिए समस्त साहित्यकी छानबीन करना आवश्यक है। अध्ययनकी इस परिपाटीके लिए आर० विलियम्स कृत टू प्राकृत वर्सन्स ऑफ़ दि मणिपति-चरित (लन्दन, १९५९) की प्रस्तावना देखने योग्य है। यहाँ उस प्रकारसे क्रम-बद्ध विस्तार-वर्णन करनेका विचार नहीं है, केवल मूलस्रोतोंका सामान्य संकेत करनेका प्रयत्न किया जाता है।

कहीं-कहीं स्वयं पुण्यास्रवकारने अपने कुछ स्रोतोंका निर्देश कर दिया है। उदाहरणार्थ, भूषण वैश्यकी कथा (५) में रामायणका उल्लेख है। वहाँ जो जल-केलि, देशभूषण और कुलभूषणके आगमन तथा भवान्तरोंका वर्णन आया है, उससे प्रतीत होता है कि कर्ताकी दृष्टि रविषेण कृत पद्मचरित, पर्व ८३ आदि-

पर है (पृ० ८२) । १५वीं कथामें पद्मचरितका स्पष्ट उल्लेख है (पृ० ८२) । यहाँ जो कीचड़में फँसे हुए हाथीको एक विद्याधर-द्वारा दिये गये पंच-नमोकार मन्त्रका और उसके प्रभावसे हाथीके नामकी पत्नी सीताका जन्म धारण करने व स्वयंवर आदिका वर्णन आया है उससे रविषेण कृत पद्मचरित, पर्व १०६ आदिका अभिप्राय स्पष्ट है ।

७वीं और ४३वीं कथाओंमें आदिपुराणका (और ४३वींमें महापुराणका भी, पृ० २९, २३८, २८२) उल्लेख है, जिससे उनके मूलस्रोतका पता जिनसेन कृत आदिपुराण पर्व ६, १०५ आदि एवं पर्व ४, १३३ आदिमें चल जाता है । और भी अनेक कथाओंके सूत्र उसी महापुराणमें पाये जाते हैं । जैसे —

पुण्य० कथा	महापुराण
१	४६–२५६ आदि
११	४५–१५३ आदि
१४	७३ (विशेषतः पद्य ९८ आदि)
२३	४६–२६८ आदि
२६–२७	४७–२५९ आदि
२८	४६–२९७ आदि
४१	४६–३४८ आदि
५२	७१–३८४ आदि
५३	७२–४१५ आदि
५४	७१–४२९ आदि
५५	७१–४२ आदि

इनसे स्पष्ट है कि पुण्यास्रवकारने अपने अनेक प्रसंगोंपर महापुराणका उपयोग किया है ।

आठवी कथा राजा श्रेणिककी है जिसमें कहा गया है कि वह भ्राजिष्णु (?) कृत आराधनाकी कर्नाट टीकासे संक्षेपतः ली गयी है । प्रोफेसर डी० एल० नरसिंहाचारका अनुमान है कि यहाँ अभिप्राय कन्नड वड्डाराधनासे हो सकता है । किन्तु उसके उपलभ्य संस्करणमें श्रेणिककी कथा नहीं पायी जाती । यह कथा बृहत्कथाकोश (५५) में है । विशेष अनुसन्धान किये जानेकी आवश्यकता है । सम्भव है पुण्यास्रव-कारके सम्मुख कन्नड वड्डाराधना भी रही हो, तथा और भी अन्य प्राकृत रचनाएँ । इसके प्रमाणमें कुछ प्रसंगोंपर ध्यान दिया जा सकता है । प्राकृत उद्धरण 'पेच्छह' आदि कन्नड वड्डाराधना (पृ ७९) में भी है और पुण्यास्रव (पृ० २२३) में भी । उसीके आस-पासकी कुछ अन्य बातोंमें भी समानता है । वड्डाराधनाके अगले पृष्ठपर "बोलह, बोलह" आदि उक्तियाँ हैं जो पुण्यास्रव (पृ० २२३) के पाठसे मेल खाती हैं । और भी ऐसे समान प्रसंग खोजे जा सकते हैं । किन्तु जबतक वड्डाराधनाके समस्त स्रोतोंका पता न चल जाये, तबतक साक्षात् या परोक्ष अनुकरणका प्रश्न हल नहीं किया जा सकता ।

१२–१३वीं कथाएँ चारुदत्त-चरित्रसे ली कही गयी हैं (पृ० ६५) । कहा नहीं जा सकता कि यहाँ अभिप्राय उस नामके किसी स्वतन्त्र ग्रन्थसे है, या अनेक ग्रन्थोंमें प्रसंग-वश वर्णित चरित्रसे । चारुदत्तकी कथा हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (पृ० ६५) में भी आयी है, और उससे भी प्राचीन जिनसेन कृत हरिवंशपुराणमें भी । "अक्षरस्यापि" आदि अवतरण (पृ० ७४) हरिवंश २१–१५६ से अभिन्न है । इससे स्पष्ट है कि इस कथाको लिखते समय पुण्यास्रवकारके सम्मुख जिनसेनकृत हरिवंशपुराण रहा है ।

२१–२२वीं कथाओंमें उनका आधार सुकुमार-चरित कहा गया है । किन्तु इस ग्रन्थके विषयमें विशेष कुछ ज्ञात नहीं है । तथापि इस कथाका बृहत्कथाकोशकी १२६वी कथा (पद्य ५३ आदि) से तुलना की जा सकती है । कन्नड़में एक शान्तिनाथ (ई० १०६०) कृत सुकुमारचरित है (कर्नाटक संघ, शिमोग,

१९५४)। आश्चर्य नहीं जो पुण्यास्रवकारने कुछ कन्नड़ रचनाओंका भी उपयोग किया हो। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि उन्होंने सुकुमालचरित नहीं, किन्तु सुकुमारचरित नाम कहा है।

३६–३७वीं कथाओंका आधार, स्वयं कर्ताके कथनानुसार, रोहिणीचरित्र है। इस नामकी संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंशमें अनेक रचनाएँ है (देखिए जिनरत्नकोश)। यह कथा खूब लोक-प्रचलित भी है, क्योंकि उसमें धार्मिक विधि-विधान सम्बन्धी रोहिणी-व्रतका माहात्म्य बतलाया गया है। इसका एक संस्करण अँगरेजी-में भी अनुवादित हो चुका है (देखिए एच० जान्सनका लेख : स्टडीज इन आनर ऑफ ए० ब्लूम्फील्ड, न्यू हेवेन, १९३०)। यह कथा बृहत्कथाकोश (५७) में भी है। किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थकी कथामे उसका कुछ अधिक विस्तार पाया जाता है। इस कथामे जो शकुन-शास्त्रका उद्धरण आया है वह बृहत्कथाकोशमें भी है।

३८वीं कथा, ग्रन्थकारके मतानुसार, भद्रबाहुचरित्रमें थी। भद्रबाहुका जीवन-चरित्र अनेक कथाकोशोंमें पाया जाता है और रत्ननन्दिकृत (संवत् १५२७ के पश्चात्) एक स्वतन्त्र ग्रन्थमे भी। इसी कथामें उससे कुछ भिन्न चाणक्य भट्टारकको कथाके सम्बन्धमें कहा गया है कि वह "आराधना" से ली गयी है। इस प्रसंगमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि भद्रबाहुभट्टार (६) और चाणक्य (१८) की कथाएँ कन्नड़ वड्डाराधने-में भी है और ऊपर कहे अनुसार, इस ग्रन्थसे प्रस्तुत ग्रन्थकार सम्भवतः परिचित थे। ये दोनों कथाएँ बृहत्कथाकोश (१३१ और १४३) मे भी हैं।

४२वीं कथा श्रीषेणकी है जिसके अन्तमें ग्रन्थकारने कहा है कि वे उसका विशेष विवरण यहाँ नही देना चाहते, क्योंकि वह उन्ही-द्वारा विरचित शान्तिचरितमें दिया जा चुका है। इस नामके यद्यपि अनेक ग्रन्थ ज्ञात है (देखिए जिनरत्नकोश), तथापि रामचन्द्र मुमुक्षुकी यह रचना अभीतक प्रकाशमें नहीं आयी। इस कथानकके लिए महापुराण ६२–३४० आदि भी देखने योग्य है।

४३वी कथामें उसके कुछ विवरणका आधार समवसरण ग्रन्थ कहा गया है। (पृ० २७२)।

४४–४५वीं कथाओंके सम्बन्धमे कर्ताने कहा है कि वे संक्षेपमे कही जा रही है, क्योंकि वे "सुलोचना-चरित" मे आ चुकी है। इस नामकी कुछ रचनाएँ ज्ञात है (देखिए जिनरत्नकोश)। यह कथा महापुराण, पर्व ४६ मे भी आयी है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि ग्रन्थकार रामचन्द्र मुमुक्षु रविषेण कृत पद्मचरितसे सुपरिचित है; सुग्रीव, बालि प्रभाण्डल आदिकी कथाएँ रामकथासे सम्बन्धित है। और प्रस्तुत कथाओंके अनेक प्रसंग उस ग्रन्थसे मेल खाते हैं जो इस प्रकार है :–

पुण्य० कथा	पद्मचरित
२९	पर्व ९५
३१ वज्रकर्ण	,, ३३–१३० आदि
४७	,, ५–१३५ आदि
४८–४९	,, ५–५८ व १०४
५०	,, ३१–४ आदि

ऊपर कहा जा चुका है कि पुण्यास्रवमें एक श्लोक जिनसेन कृत हरिवंशपुराणसे उद्धृत किया गया है इस ग्रन्थसे भी कुछ कथाओंका मेल बैठता है। जैसे –

पुण्य० कथा	हरिवंश पु०
१०	१८–१९ आदि
३९	६०–४२ आदि
५२–५५	६०–५६, ८७, ९७, १०५ आदि

हरिषेण कृत बृहत्कथाकोशसे मेल रखनेवाली अनेक कथाओंका उल्लेख ऊपर आ चुका है। कुछ और कथाओंका मेल इस प्रकार है –

पुण्य० कथा	बृ० क० कोश
६	५६
१६	६२
१७	६०
२०	६१
२५	१२७

३२–३३वीं कथाओंके नायक वे ही है जिनके नाम रत्नकरण्डक श्रावकाचार, ३–१८ में आये हैं। इनकी कथाएँ प्रायः जैसीकी तैसी प्रभाचन्द्रकृत संस्कृत टीकामें आयी है। अनुमानतः टीकाकारने ही उन्हें कथाकोशसे ली होंगी, और उन्होंने उन्हें अधिक सौष्ठवसे भी प्रस्तुत किया है। किन्तु यह भी सम्भव है कि उक्त दोनों ग्रन्थकारोंने उन्हें स्वतन्त्रतासे किसी अन्य ही प्राचीन कथाकोशसे ली हों।

इस प्रकार जहाँ तक पता चलता है, प्रस्तुत कथाकोशके स्रोत, उसमें उल्लिखित ग्रन्थोंके अतिरिक्त रविषेण कृत पद्मचरित, जिनसेन कृत हरिवंश पुराण, जिनसेन-गुणभद्र कृत महापुराण और सम्भवतः हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश रहे है। इसके उपाख्यान बहुधा राम, कृष्ण आदि शलाका पुरुषो सम्बन्धी कथाचक्रोंसे, अथवा भगवती आराधनामें निर्दिष्ट धार्मिक पुरुषोंसे सम्बद्ध पाये जाते है, जिनके विषयमें प्राचीन टीकाओके आधारसे सम्भवत. अनेक कथाकोश रचे गये है। सम्भव है धीरे-धीरे प्रस्तुत कथाओंके और भी आधारोंका पता चले जिनसे अनेक प्राप्य कथाकोशोंके बीच रामचन्द्र मुमुक्षुकी प्रस्तुत रचनाके स्थानका ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जा सके।

(७) पुण्यास्रव : उसके सांस्कृतिक आदि तत्त्व

जैसा कि बहुधा पाया जाता है, पुण्यास्रवकी कथाओंमें जैन धर्म और सिद्धान्त सम्बन्धी बहुत-सा विवरण आया है। पात्रोंके भूत और भावी जन्मान्तरोका वर्णन करनेमें केवल ज्ञानी मुनियोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। जातिस्मरणकी घटना बहुलतासे आयी है। जैन पारिभाषिक शब्द सर्वत्र बिखरे हुए है। विद्याधरों और उनकी चमत्कारी विद्याओके उल्लेख बारंबार आते है। छोटे-छोटे लौकिक उपाख्यान यत्र-तत्र समाविष्ट किये गये हैं, जैसे पृ० ५३ आदिपर। व्रतोंमें पुष्पांजलि (४) और रोहिणी (३७) व्रत प्रमुखतासे आये हैं। सोलह स्वप्नोंका पूरा विवरण मिलता है (पृ० २३२) और उसी प्रकार कालके छह युगोंका (पृ० २५७) जो सम्भवतः हरिवंश पुराणपर आधारित है। समवसरणका वर्णन भी है (पृ० २७२)। श्रेणिक, चन्द्रगुप्त, अशोक, बिन्दुसार आदि ऐतिहासिक सम्राटों एवं भद्रबाहु, चाणक्य आदि महापुरुषों, तथा तत्कालीन संघ-भेदोंके उल्लेख नाना सन्दर्भोंमें आये है (पृष्ठ २१९, २२७; २२९ आदि)।

जैन कथा साहित्यकी जटिल शृंखलामें पुण्यास्रव कथाकोशकी कड़ी अपना विशेष महत्त्व रखती है। रचना भले ही पूर्वकी हो या पश्चात्‌की, किन्तु ये कथाएँ अति प्राचीन प्राकृत, संस्कृत और कन्नडके मूल स्रोतोंसे प्रवाहित हैं, इसमें सन्देह नहीं। कथाकोश अनेक प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु अनेकों अभी भी लिखित रूपमें अप्रकाशित पड़े हैं। यह बहुत आवश्यक है कि एक-एक कथाको लेकर आदिसे अन्त तक उसके विकासका अध्ययन किया जाय। इस कार्यमें जैन साहित्यको दृष्टिमें रखते हुए बाह्य प्रभावकी उपेक्षा नहीं की जाना चाहिए। अन्ततः तो इन कथाओंका भारतीय साहित्यकी धारामें ही अध्ययन करना योग्य है। हो सकता है कि इन कथाओंमें कहीं न केवल भारतीय, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व विश्वव्यापी कथा-तत्त्वोंका पता चल जाय। इसी प्रकारके अध्ययनसे इन कथाओंके क्रम-विकासका ठीक-ठीक परिज्ञान हो सकता

है और यह भी जाना जा सकता है कि यहाँ जो जोड़-तोड़ व परिवर्तन किये गये है उनका यथार्थ उद्देश्य क्या है।

(८) पुण्यास्रवकी भाषा

साहित्यिक संस्कृत भाषाके जिस लोक-प्रचलित रूपको अनेक जैन लेखकोंने, विशेषतः पश्चिम भारतमें, अपनाया, उसे जैन संस्कृत नाम दिया गया है। इस नामकी क्या सार्थकता है व उसकी भाषा-शास्त्रीय पार्श्वभूमि क्या है, इसका विचार बृहत्कथाकोशकी प्रस्तावना (पृ० ९४ आदि) मे किया जा चुका है। अभी-अभी डा० बी० जे० सांडेसरा और श्री जे० पी० ठाकरने इस विषयके समस्त अध्ययनका विधिवत् उपसंहार किया है। इसके लिए उन्होंने सामग्री ली है मेरुतुंग कृत प्रबन्धचिन्तामणि (सन् १३०५), राजशेखर सूरि कृत प्रबन्धकोश (सन् १३४९), और पुरातन प्रबन्ध-संग्रहसे। इस आधार पर यह कहना असत्य होगा कि जैन लेखकों द्वारा प्रयुक्त संस्कृतकी सामान्य संज्ञा 'जैन संस्कृत' है, क्योंकि समन्तभद्र, पूज्यपाद, हरिभद्र आदि अनेक ऐसे जैन लेखक हुए हैं जिनकी संस्कृत भाषा पूर्णतः शास्त्रीय है। अतः 'जैन संस्कृत' से अभिप्राय केवल कुछ सीमित लेखकों द्वारा प्रयुक्त भाषासे ही हो सकता है। इन लेखकोंको अपनी बात सुशिक्षित वर्ग तक ही सीमित न रखकर अधिक विस्तृत जन-समुदाय तक पहुँचाना था, और उनकी रचनाओंके प्रत्यक्ष व परोक्ष आधार बहुधा प्राकृत भाषाओंके ग्रन्थ थे। अतः उनकी संस्कृत लौकिक बोलियोंसे प्रभावित हो, यह स्वाभाविक है। दूसरी बात यह भी है कि ये लेखक लोक-प्रचलित शैली मे लिखना चाहते थे, अतः उन्होंने संस्कृत व्याकरणके कठोर नियमोंका पालन करना आवश्यक नहीं समझा। उनकी सरल संस्कृत तत्कालिक आधुनिक बोलियोंसे प्रभावित हुई। उसमें देशी शब्दोका भी समावेश हुआ, एवं मध्यकालीन और अर्वाचीन शब्दोंको संस्कृतकी उच्चारण-विधिके अनुरूप बनाकर प्रयोग कर लिया गया। ये प्रायः सभी प्रवृत्तियाँ पुण्यास्रवकथाकोशमें भी पायी जाती है। रामचन्द्र मुमुक्षु प्राकृतके उत्तराधिकारी भी थे, और संभवतः उनपर यत्र-तत्र कन्नड शैलीका भी प्रभाव पडा था।

पुण्यास्रवकथाकोशके पाठान्तरोंसे स्पष्ट है कि बहुधा य और ज, तथा ष और ख का परस्पर विनिमय हुआ है। ग्रन्थकार संधिके नियमोंका विकल्पसे ही पालन करते है, कठोरतासे नही। इस विषयमे जो पाठान्तर पाये जाते है उनसे अनुमान होता है कि प्रतिलेखकोंने भी अपनी स्वच्छन्दता बर्ती है। प्रस्तुत संस्करणमे प्राचीन प्रतियोंको मान्यता दी है, और शब्दरूपोको बलपूर्वक व्याकरणके चौखटेमे बैठानेका प्रयत्न नहीं किया गया। यहाँ शब्द-सौष्ठवकी अपेक्षा ग्रन्थकारका ध्यान कथा और उसके सारांशकी ओर अधिक रहा है।

व्याकरणकी दृष्टिसे अशुद्ध प्रयोगोंके कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं :—

भूयोक्तवान् (७५, १४) में संधि अशुद्ध है। दृशद् बद्धः, वृत्तान्तम् (१५६-७), कैवल्यो (२७०-१३) शत और सहस्र (२७७, २७८, ३०२ आदि) मे लिंग-प्रयोग ठीक नहीं है। सोमशर्मन्के स्त्रीलिंग रूप सोमशर्मा (५१, १२) और सोमशर्मणी (५२-१) पाये जाते हैं। गच्छन्ती के लिए गच्छती (९४-९) प्रयुक्त हुआ है। कारक रचनाकी दृष्टिसे पतेः (१५४-२, १९३-१४ आदि), राजस्य (१९६-५), मे (३१९-१३) व इमा (१६५-५) विचारणीय हैं। भूतकालसंबंधी तीन लकारोके प्रयोगमें तो भेद नहीं ही है, किन्तु उक्तवान् के लिए उक्तः (१४०-१२) व आज्ञापितौ के लिए आज्ञातौ (१४७-७), आक्रोश्यते-के लिए आक्रोशते (१८१-१०) तथा तिरोभूत्वा (१००-१०), नमस्कृत्वा (१०९-६), संस्थित्वा (२९१-३) ध्यान देने योग्य हैं।

कारक विभक्तियोंके अनियमित प्रयोग हैं – उपवासो (१३०-१२) हस्त-संज्ञाम् (१४३-४), मदनमञ्जूषया (१४-७), सर्वेभ्यः (१४६-९), सीतायाः (१०२-६), वज्रजंघस्य (१४७-८) शाखायाम् (१००-१०), गंगायाम् (५३-५) मद्हस्ते (९१-४), तथा भक्षणे (१३६-८), दिव्यभोगान् (१२४-

१२), अयोध्याबाह्ये (३०२-१२), पृष्ठयोः (१४२-२), पठिता (८-१४) यहाँ प्रयुक्त कारक विभक्तियों-के स्थानपर नियमानुसार अन्य विभक्तियाँ अपेक्षित थी।

इनके अतिरिक्त यत्र-तत्र कर्ता और क्रियामें वैषम्य, समासकी अनियमितता, द्विरुक्ति आदि भी देखे जाते हैं।

अनेक शब्द ऐसे आये है जो उच्चारण व अर्थकी दृष्टिसे संस्कृत में प्रचलित नही पाये जाते। कुछ प्राकृतसे आये हैं, और कुछ देशी है। (शब्द-सूची अँगरेजी प्रस्तावनामे देखिए)

(९) नागराज कृत पुण्यास्रव और उसका रामचन्द्र मुमुक्षुकी कृतिसे संबन्ध

नागराज कृत पुण्यास्रव (कर्णाटक कवि चरिते, १, बंगलोर, १९२४) कन्नड़ भाषाका एक चम्पू काव्य है। नागराजने स्वयं अपना, अपने पूर्वजोका तथा अपनी काव्य रचनाका कुछ परिचय दिया है। वे कौशिक-गोत्रीय थे, पिताका नाम विवेक विट्ठलदेव था जो 'जिनशासन-दीपक' थे और वे सेडिम्ब (सेडम) के निवासी थे जहाँ अनेक नये 'जिनचैत्य-गृह' थे। उनकी माता भागीरथी, भ्राता तिप्परस और गुरु अनन्तवीर्य मुनीन्द्र थे। ग्रंथकी पुष्पिकाओंमें उन्होने अपनेको मामिवाल्द नागराज कहा है, एवं सरस्वती-मुखतिलक, कवि-मुख-मुकुर, उभय-कविता-विलास आदि उपाधियाँ भी प्रकट की हैं। ग्रन्थके आदिमें उन्होने वीरसेन, जिनसेन, सिंहनन्दि, गृद्धपिछ, कोण्डकुण्ड, गुणभद्र, पूज्यपाद, समन्तभद्र, अकलंक, कुमारसेन (सेनगणाधीश) धरसेन और अनन्तवीर्यका उल्लेख किया है। उन्होने पम्प, बन्धुवर्म, पोन्न, रन्न, गजांकुश, गुणवर्म, नागचन्द्र आदि पूर्ववर्ती कन्नड़ कवियोसे प्रोत्साहन पाया था। पम्प आदि कन्नड कवियोंके विषयमे उनका कथन महत्वपूर्ण है। (कन्नड़ अवतरण अंग्रेजी प्रस्तावनामे देखिए)।

नागराजने नगरके लोगोंके हितार्थ अपने गुरु अनन्तवीर्यकी आज्ञासे शक १२५३ (ई० १३३१) में प्रस्तुत ग्रन्थको संस्कृतसे कन्नडमे रूपान्तर किया। उन्होंने यह भी कहा है कि उनकी कृतिको आर्यसेनने सुधारकर अधिक चित्ताकर्षक बनाया। (मूल अवतरण अंगरेजी प्रस्तावनामें देखिये।

नागराजके स्वयं कथनानुसार उनकी रचनामें उन प्राचीन महापुरुषोंकी कथायें कही गयी है जिन्होंने गृहस्थोंके षट् कर्मों – देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, दान और तपका पालन करनेमे यश और अन्ततः मोक्ष प्राप्त किया।

नागराजने अपने मौलिक संस्कृत पुण्यास्रवके कर्ताका नाम नहीं बतलाया। किन्तु जब हम नागराजके कथनको ध्यानमें रखकर रामचन्द्र मुमुक्षुकी कृतिसे उसका मिलान करते है, तब इस बातमें सन्देह नही रहता कि नागराजने अपना कन्नड़ पुण्यास्रव इसी संस्कृत ग्रन्थके आधारसे लिखा है। दोनोंमे कथाओंकी संख्या समान है, और उनका क्रम भी वही है। षट् कर्मोंके अनुसार कथाओंका वर्गीकरण भी दोनोंमे एक-सा है। कही-कहीं उक्तियोंमे भी समानता है। दोनोंमे कथाओंके प्रारम्भिक पद्य, शब्द और अर्थ दोनो दृष्टिओंसे बहुत कुछ समता रखते है। किन्तु जहाँ रामचन्द्र मुमुक्षुका ध्येय बिना काव्य और व्याकरणादिके गुणोकी ओर ध्यान दिये कथा-वर्णन मात्र है, वहाँ नागराज कन्नड़ भाषाके सिद्धहस्त कवि है। अतः उनकी रचनामे भाषा, शैली व कवित्वका विशेष सौष्ठव पाया जाता है। उन्होने रामचन्द्र मुमुक्षुके कुछ प्राकृत उद्धरण तो जैसेके तैसे ले लिए है (पृ० १०५), किन्तु संस्कृत अवतरणों (पृ० ३२, ७४, आदिको बहुधा कन्नड़ पद्योंमें परिवर्तित किया है।

नागराजकी रचनाको देखते हुए ऐसा भी विचार उठ सकता है कि रामचन्द्र मुमुक्षुने ही उसका आधार लिया हो, विशेषतः जबकि उन्होंने कन्नडके कुछ स्रोतोंका उपयोग किया है (पृ० ६१)। किन्तु यह सम्भावना निम्न कारणोंसे ठीक नहीं जँचती। एक तो नागराजने स्पष्ट ही कहा है कि उन्होंने एक पूर्ववर्ती संस्कृत पुण्यास्रवका आधार लिया है। दूसरे रामचन्द्रने एकाधिक स्थानोंपर अपने मूलाधारोंका निर्देश

किया है, जिनमें संस्कृतके ग्रन्थ हैं और कन्नडके भी। अतः कोई कारण नहीं कि वे यदि नागराजकी कृतिका इतना अधिक उपयोग करते तो उसका निर्देश न करते। तीसरे, रामचन्द्रने अपने छह विषय निर्धारित करनेमें अपनी विशेष मौलिकता बतलाई है, और नागराजने उसका अनुकरण मात्र किया है, जिसमें उन्होंने सोमदेवके यशस्तिलकचम्पू व पद्मनन्दि कृत पंचविंशतिके अनुसार कुछ शब्दभेद कर लिया है। चौथे, रामचन्द्रने अपने आधारभूत ग्रन्थोंका बहुत स्पष्टतासे उल्लेख किया है, जिनमें आराधना – कर्नाटक टीका व स्वयं कृत शान्तिचरितका वैशिष्ट्य है, जबकि उन्हीं सन्दर्भोंमें नागराजके चम्पूके उल्लेख, यदि हैं भी तो बहुत अनियमित। और पाँचवें, जहाँ रामचन्द्रने हरिवंश पुराणका एक श्लोक उद्धृत किया है (पृ० ७४) वहाँ नागराजने उस श्लोकका सीधा कन्नड अनुवाद कर डाला है। यदि रामचन्द्रने नागराजकी कृतिका आधार लिया होता तो उनका उक्त श्लोकको उद्धृत करना असम्भव था। पहले बतला आये हैं कि रामचन्द्रने अपनी कृतिको अपने छह विषयोंके अनुसार छह खण्डोंमें विभाजित किया है, तथा प्रथम पाँच खण्डोंमें आठ-आठ कथायें हैं और छठे खण्डमें सोलह। नागराजको इस वर्गीकरणकी अच्छी तरह जानकारी है। तथापि उन्होंने जिस चम्पू काव्यरूपमें अपनी कृतिको ढाला है उसकी आवश्यकतानुसार उन्होंने बारह आश्वासोंकी योजना की है जिनमें कथाओंका समावेश निम्न प्रकार है :–

आश्वास	पुण्य० कथा
१	१–४
२	५–७
३	८
४	९–१५
५	१६–२०
६	२१–२५
७	२६–३४
८	३५–३७
९	३८–४३
१०	४३ (अन्तिम भाग)
११	४४–५०
१२	५१–५८

यहाँ प्रथम तीन आश्वासोंमें रामचन्द्रकी कथाओंका एक अष्टक पूर्ण हुआ है। आगे नागराजके वर्णनकी घटा-बढ़ी अनुसार आश्वासोंमें कथाओंकी संख्याका कोई नियम नहीं रहा। ४३वी कथा दो आश्वासोंमें फैल गयी है। तथापि यह मानना पड़ेगा कि नागराजने अपने आदर्शभूत कथाकोशकी नीरस शैलीसे ऊपर उठकर एक श्रेष्ठ कन्नड़ चम्पू काव्यकी सृष्टि की है।

(१०) ग्रन्थकार रामचन्द्र मुमुक्षु

रामचन्द्र मुमुक्षुने स्वयं अपने विषयकी बहुत कम जानकारी दी है। पुष्पिकाओंमें कहा गया है कि वे 'दिव्यमुनि केशवनन्दि' के शिष्य थे। अन्तिम प्रशस्तिके अनुसार (पृ० ३३७) ये केशवनन्दि कुन्दकुन्दान्वयी थे। उनकी प्रशंसामें कहा गया है कि वे भव्य रूपी कमलोंको सूर्यके समान थे, संयमी थे, मदनरूपी हाथीको सिंहके समान थे, कर्मरूप पर्वतोंके लिए वज्र थे, दिव्य-बुद्धि थे, बड़े-बड़े साधुओं और नरेशों द्वारा वन्दित थे, ज्ञानसागरके पारगामी थे और बहुत विख्यात थे। उनके धर्मिष्ठ शिष्य थे रामचन्द्र जिन्होंने महायशस्वी, वादीभसिंह महामुनि पद्मनन्दिसे व्याकरण शास्त्रका अध्ययन किया। रामचन्द्रने इस पुण्यास्रवकी रचना की, तथा ५७ श्लोकोंमें कथाओंका सारांश दिया। रचनाका ग्रन्थाग्र ४५०० है। यह सब जानकारी प्रशस्तिके

प्रथम तीन पद्योंसे प्राप्त होती है।

प्रशस्तिके अन्तिम छह श्लोक पीछेसे जोड़े गये प्रतीत होते हैं। उनमें कहा गया है कि सुविख्यात कुन्दकुन्दान्वयमें देशीगणके प्रसिद्ध संघाधिपति पद्मनन्दि हुए जो रत्नत्रयसे भूषित थे। उनके उत्तराधिकारी हुए माधवनन्दि पण्डित जो महादेवके सदृश गणनायक, शिव और प्रसिद्ध थे। उनके शिष्य वसुनन्दि सूरि सिद्धान्त-शास्त्र-विशारद, मासोपवासी, विद्वत्श्रेष्ठ थे। वसुनन्दिके पट्टशिष्य हुए मौलि (मौनि ?) जो भव्य-प्रबोधक, देव-वन्दित और सब जीवोंके प्रति दयालु थे। उनके पट्टपर श्रीनन्दि सूरि विराजमान हुए जो विविध कलाओंमें कुशल, साधुवृन्द-वन्दित दिगम्बर थे। वे आकाशमें पूर्णचन्द्रके समान, तथा चार्वाक, बौद्ध आदि नाना दर्शनों व शास्त्रोंके ज्ञाता थे।

प्रशस्तिका यह भाग पुण्यास्रवकी कुछ प्रतियोंमें जोड़ा गया जान पड़ता है। बहुत सम्भव है कि इस भागमें उल्लिखित पद्मनन्दि और ऊपर पद्य दोमें उल्लिखित रामचन्द्रके व्याकरण-गुरु एक ही हों। इस प्रशस्ति-खण्ड परसे रामचन्द्र मुमुक्षुकी गुरुपरम्परा निम्न प्रकार सिद्ध होती है :–पद्मनन्दि, माधवनन्दि, वसुनन्दि, मौलि (या मौनि), श्रीनन्दि। सिद्धान्तशास्त्रके ज्ञाता वसुनन्दिके उल्लेखसे हमें मूलाचार-टीकाके कर्ता वसुनन्दि सैद्धान्तिकका स्मरण आता है, जिनका आशाधर (ई० १२३४) ने अनेक बार उल्लेख किया है। किन्तु नामसाम्य मात्रपरसे किन्हीं आचार्योंका एकत्व स्थापित करना उचित नहीं है, क्योंकि वही नाम भिन्न कालमें, एवं एक ही कालमें भी, अनेक जैन आचार्योंका पाया जाता है।

रामचन्द्र मुमुक्षु एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार हैं। उन्होंने संस्कृत और कन्नड दोनों भाषाओंकी रचनाओंका उपयोग किया है। निश्चयसे तो नहीं कहा जा सकता कि वे देशके किस भागके निवासी थे, किन्तु यह निश्चित है कि वे कन्नड भाषा जानते थे। उन्होंने अनेक ग्रन्थोंका उपयोग किया, जैसे हरिवंश पुराण, महापुराण, बृहत्कथाकोश आदि। इस ग्रन्थके प्रकाशित हो जानेपर विद्वान् पाठक संभवतः अन्य अनेक मूल स्रोतोंका पता लगा सकेंगे। ग्रन्थकारके स्वयं कथनानुसार उन्होंने एक और ग्रन्थ शान्तिनाथचरित (पृ० २३) की रचना की थी, किन्तु इस ग्रन्थका अभी तक पता नहीं चला। एक धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थ पद्मनन्दिके शिष्य रामचन्द्र मुनिकृत कहा जाता है, किन्तु निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि रामचन्द्र मुनि और रामचन्द्र मुमुक्षु एक ही हैं (जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, भाग १, दिल्ली, १९५४, पृ० ३३)। रामचन्द्रका संस्कृत व्याकरणका ज्ञान परिपूर्ण नहीं था। उनकी शैली और मुहावरोंमें बहुत शैथिल्य व स्खलन पाये जाते हैं। उनकी शैलीके कुछ लक्षण हमें मध्य और मध्योत्तर कालीन गुजरात व उसके आसपासके लेखकोंकी शैलीका स्मरण कराते हैं। हो सकता है कि इनमेंके कुछ लक्षण उन्हें उनके प्राकृत और कन्नड स्रोतोंसे प्राप्त हुए हों।

रामचन्द्र मुमुक्षुने अपने लेखनकालका कोई निर्देश नहीं किया। अतः हम केवल स्थूल कालावधि ही नियत करनेका प्रयत्न कर सकते हैं। उन्होंने हरिवंश, महापुराण और बृहत्कथाकोशका उपयोग किया था, अतएव निश्चय ही वे सन् ७८३, ८९७ व ९३१-३२ से पाश्चात्कालीन हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि रामचन्द्र मुमुक्षुकी कृतिके आधारसे नागराजने अपना कन्नड चम्पू सन् १३३१ में पूर्ण किया था। इस सम्बन्धमें दो और बातोंपर ध्यान देना योग्य है। यदि पूर्वोक्त वसुनन्दिके एकत्वकी बात सिद्ध हो जाती है तो रामचन्द्र आशाधर (१३वीं शतीके मध्य) से पूर्ववर्ती ठहरेंगे। दूसरे, यदि हमारा यह अनुमान ठीक है कि रत्नकरण्डकके टीकाकार प्रभाचन्द्रने वे कथायें रामचन्द्रकी इस कृतिसे ली हैं, तो रामचन्द्र प्रभाचन्द्र (१२वीं शतीका मध्य) से भी पूर्व कालीन सिद्ध होते हैं। ये कालावधियाँ और भी सन्निकट आ जाँय यदि पुण्यास्रवकी प्रशस्तिमें उल्लिखित आचार्योंमें-से किसीका एकत्व व काल-निर्णय हो सके, तथा पुण्यास्रव कथा-कोशका अन्य कथाकोशों, और विशेषतः प्रभाचन्द्र कृत कथाकोशसे पूर्वापरत्वका सम्बन्ध स्थापित किया जा सके।

विषयानुक्रमणिका

पुण्यास्त्रवकथाकोशम्

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

श्री-रामचन्द्र-मुमुक्षु-विरचितं

पुण्यास्रवकथाकोशम्

श्रीवीरं जिनमानम्य वस्तुतत्त्वप्रकाशकम् ।
वक्ष्ये कथामयं ग्रन्थं पुण्यास्रवाभिधानकम् ॥

[१]

तद्यथा । वृत्तम् ।

पुष्पोपजीवितनुजे वरबोधहीने
जाते प्रिये प्रथमनाकपतेर्गुणाढ्ये ।
श्रीजैनगेहकुतपं भुवि पूजयन्त्यौ
नित्यं तनो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥१॥

अस्य वृत्तस्य कथा । तथाहि—जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहे वत्सकावतीविषयस्यार्यखण्डे सुसीमानगराधिपतिः सकलचक्रवर्ती वरदत्तनामा ऋषिनिवेदकेन विज्ञप्तः—हे देव, अस्य नगरस्य बाह्यस्थितगन्धमादनगिरौ शिवघोषतीर्थंकरसमवसृतिः स्थितेति श्रुत्वा सपरिवारस्तत्र गत्वा जिनं पूजयित्वा गणधरादीनभिवन्द्य स्वकोष्ठे उपविष्टः । तावत्तत्र द्वे देव्यौ प्रधानदेवैरानीय सौधर्मेन्द्रस्य 'हे देव, तव देव्याविमे' इति समर्पिते दृष्ट्वा चक्रवर्तिना तीर्थ-

वस्तुके यथार्थ स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले श्री वीर जिनेन्द्रको नमस्कार करके मैं पुण्यास्रव नामक इस कथास्वरूप ग्रन्थको कहता हूँ ॥

वह इस प्रकारसे । वृत्त— पुष्पोंसे आजीविका करनेवाले (माली)की दो लड़कियाँ सम्यग्ज्ञानसे रहित हो करके भी श्रीजिनमन्दिरकी देहरीकी पूजा करनेके कारण प्रथम स्वर्गके इन्द्रकी गुणोंसे विभूषित वल्लभाएँ हुईं । इसीलिए मैं जिनेन्द्र प्रभुकी निरन्तर पूजा करता हूँ ॥१॥

इस वृत्तकी कथा— जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें वत्सकावती देशके भीतर स्थित आर्यखण्डमें सुसीमा नामकी नगरी है। उसका अधिपति वरदत्त नामका सकल चक्रवर्ती (छहों खण्डोंका स्वामी) था । किसी एक दिन ऋषिनिवेदक (ऋषिके आगमनकी सूचना देनेवाला) ने उससे प्रार्थना की कि हे देव ! इस नगरके बाह्य भागमें जो गन्धमादन पर्वत है उसके ऊपर शिवघोष तीर्थंकरका समवसरण स्थित है । इस शुभ समाचारको सुनकर उस वरदत्त चक्रवर्तीने परिवारके साथ वहाँ जाकर जिनदेवकी पूजा की । तत्पश्चात् वह गणधर आदिकी वंदना करके अपने कोठेमें बैठ गया । उसी समय वहाँ प्रधान देवोंने दो देवियोंको लाकर सौधर्म इन्द्रसे यह कहते हुए कि हे देव ! ये आपकी देवियाँ हैं, उन्हें उसके लिए समर्पित कर दिया । यह देखकर चक्रवर्तीने

करः पृष्ट इमे पश्चात्किमित्यानीते इति। तीर्थकृदाह— इदानीमुत्पन्ने। केन पुण्यफलेनेति चेच्छृणु। अत्रैव नगरे मालाकारिण्यावेकमातृके कुसुमावतीपुष्पलतासंज्ञे[1] पुष्पकरण्डकवनात् पुष्पाणि गृहीत्वा गृहमागच्छन्त्यौ मार्गस्थजिनालयस्य देहलिकां नित्यमेकैकेन कुसुमेन पूजयन्त्यौ[2] अद्य तत्र वने सर्पदष्टे मृत्वेमे देव्यौ संपन्ने। इति श्रुत्वा सर्वे पूजापरा बभूवुरिति ॥१॥

[२]

सम्यक्त्वबोधचरणैः खलु वर्जितो ना
स्वर्गादिसौख्यमनुभूय वियच्चरेशः।
पूजानुमोदजनिताद् भवति[3] स्म पुण्या-
न्नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥२॥

अस्य वृत्तस्य कथा। तथाहि— लङ्कानगर्यां राक्षसकुलोद्भवो महाराक्षसनामा वियच्चरराजो मनोहरोद्यानं जलक्रीडार्थं गतः सरोवरगतकमले[4] मृतं षट्पदमेकमवलोक्य सवैराग्यस्तत्र भ्रमन् कंचन मुनिं दृष्ट्वा पृष्टवान्— हे मुनिनाथ, मम पुण्यातिशयकारणं कथयेति। कथयति स्म यतिः[5]— अत्रैव भरते सुरम्यदेशस्थपौदनेशकनकरथेन जिनपूजा कारितेति। तत्र तदा त्वं देशान्तरी भद्रमिथ्यादृष्टिः प्रीतिंकरनामा स्थितोऽसि। पूजानुमोदेन जनितपुण्येनायुरन्ते

तीर्थंकर प्रभुसे पूछा कि इन्हें पीछे क्यों लाया गया है। इसके उत्तरमें तीर्थंकरने कहा कि वे इसी समय उत्पन्न हुई हैं। वे किस पुण्यके फलसे उत्पन्न हुई हैं,यह यदि जानना चाहते हो तो उसे मैं कहता हूँ, सुनो। इसी नगरमें कुसुमावती और पुष्पलता नामकी दो मालाकारिणी (मालीकी कन्यायें) थीं जो एक ही मातासे उत्पन्न हुई थीं। वे पुष्पकरण्डक वनसे पुष्पोंको ग्रहण करके घर आते समय मार्गमें स्थित जिनभवनकी देहरीकी एक एक पुष्पसे प्रतिदिन पूजा किया करती थीं। आज उस वनमें पहुँचनेपर उन्हें सर्पने काट लिया था, इससे मरणको प्राप्त होकर वे ये देवियाँ उत्पन्न हुई हैं। इस वृत्तान्तको सुनकर सब जन पूजामें तत्पर हो गये ॥१॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे रहित मनुष्य पूजाके अनुमोदनसे उत्पन्न हुए पुण्यके प्रभावसे स्वर्गादिके सुखको भोगकर विद्याधर राजा हुआ है। इसलिये मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभुकी पूजा करता हूँ ॥२॥

इस वृत्तकी कथा इस प्रकार है— लंका नगरीके भीतर राक्षसकुलमें उत्पन्न हुआ एक महाराक्षस नामक विद्याधरोंका राजा था। वह मनोहर उद्यानमें जलक्रीड़ाके लिये गया था। वहाँ उसने सरोवरमें स्थित कमलके भीतर मरे हुए एक भ्रमरको देखा। इससे उसे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने वहाँ घूमते हुए किसी मुनिको देखकर पूछा— हे मुनीन्द्र ! मेरे पुण्यके अतिशयका कारण कहिये। मुनिने उसके पुण्यातिशयका कारण इस प्रकार कहा— इसी भरत क्षेत्रके भीतर सुरम्य देशमें स्थित एक पौदन नामका नगर है। उसका स्वामी कनकरथ था। उसने जिनपूजा करायी थी। वहाँ प्रीतिंकर नामसे प्रसिद्ध भद्र मिथ्यादृष्टि तुम देशान्तरसे आकर स्थित थे। उस पूजाकी

१. श ०मेकेन। २. ब ०नापूजयतां। ३. श जनिता भवति। ४. फ श ०गतः कमले। ५.प कथयति यतिः।

मृत्वा यक्षो जातोऽसि। पुण्डरीकिण्यां मुनिवृन्ददावाग्निजनितोपसर्गं निवार्यायुरन्ते तनुं त्यक्त्वा पुष्कलावतीविषयस्थविजयार्धवासिवियच्चरराजतडिल्लङ्घश्रीप्रभयोः पुत्रो मुदितो भूत्वा कौमारे दीक्षितोऽसि। अमरविक्रमवियच्चरेशश्रियमालोक्य कृतनिदानः समाधिना सनत्कुमारस्वर्गेऽमरो भूत्वा आगत्य त्वं जातोऽसि इति श्रुत्वा स्वपुत्राभ्याममरराक्षसभानुराक्षसाभ्यां राज्यं दत्त्वा मुनिर्भूत्वा मोक्षं गत इति ॥२॥

[३]

भेको विवेकविकलोऽप्यजनिष्ट नाके
दन्तैर्गृहीतकमलो जिनपूजनाय।
गच्छन् सभां गजहतो जिनसन्मतेः स
नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥३॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डे मगधदेशस्थराजगृहनगरेशः श्रेणिकः ऋषिनिवेदकेन विज्ञप्तः— हे देव, वर्धमानस्वामिसमवसरणं विपुलाचले स्थितमिति श्रुत्वानन्देन तत्र गत्वा जिनं पूजयित्वा गणधरप्रभृतियतीनभिवन्द्य स्वकोष्ठे उपविष्टो यावद्धर्मं शृणोति तावज्जग-

अनुमोदना करनेसे उत्पन्न हुए पुण्यके प्रभावसे तुम आयुके अन्तमें मरकर यक्ष उत्पन्न हुए थे। इस पर्यायमें तुमने पुण्डरीकिणी नगरीके भीतर मुनिसमूहके ऊपर वनाग्निसे उत्पन्न हुए उपसर्गको दूर किया था। इससे तुम आयुके अन्तमें शरीरको छोड़कर पुष्कलावती देशके भीतर स्थित विजयार्ध पर्वतके ऊपर निवास करनेवाले विद्याधरराज तडिल्लंघके मुदित नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। उसकी (तुम्हारी) माताका नाम श्रीप्रभा था। उस पर्यायमें तुमने कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ले ली थी। तत्पश्चात् तप करते हुए तुमने अमरविक्रम नामक विद्याधर नरेशकी विभूतिको देखकर निदान किया था— उसकी प्राप्तिकी इच्छा की थी। इससे तुम समाधिपूर्वक मरणको प्राप्त होकर प्रथम तो सनत्कुमार कल्पमें देव उत्पन्न हुए थे और फिर वहाँसे च्युत होकर तुम (महाराक्षस विद्याधर) हुए हो। इस पूर्व वृतान्तको सुनकर महाराक्षस अपने अमरराक्षस और भानुराक्षस पुत्रोंको राज्य देकर मुनि हो गया एवं मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥२॥

विवेक (विशेष ज्ञान) से रहित जो मेंढक जिनपूजाके अभिप्रायसे दाँतोंके मध्यमें कमल-पुष्पको दबाकर सन्मति (वर्धमान) जिनेन्द्रकी समवसरणसभाको जाता हुआ मार्गमें हाथीके पैरके नीचे पड़कर मर गया था वह स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ था। इसलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभुकी पूजा करता हूँ ॥३॥

इसकी कथा— इसी आर्यखण्डमें मगध देशके भीतर राजगृह नामका नगर है। किसी समय उसका शासक श्रेणिक नरेश था। एक दिन ऋषिनिवेदकने आकर श्रेणिकसे निवेदन किया कि हे देव ! विपुलाचल पर्वतके ऊपर वर्धमान स्वामीका समवसरण स्थित है। इस बातको सुनकर श्रेणिकने वहाँ जाकर आनन्दसे जिन भगवानकी पूजा की और तत्पश्चात् वह गणधरादि मुनियोंकी वन्दना करके अपने कोठेमें बैठ गया। वह वहाँ बैठकर धर्मश्रवण कर ही रहा था कि इतनेमें एक देव लोकको आश्चर्यान्वित करनेवाली विभूतिके साथ समवसरणमें आकर उपस्थित हुआ। उसकी

१. प विजयच्चरराज°, फ वियच्चरराजा°।

दाश्चर्यविभूत्या मण्डूकाङ्कितमुकुटध्वजोपेतो देवः समायातः। तं दृष्ट्वा साश्चर्यहृदयः श्रेणिकः पृच्छति स्म गणेशम्— अयं किमिति पश्चादागतः केन पुण्यफलेन देवोऽभूदिति। गणभृदाह– अत्रैव राजगृहे श्रेष्ठी नागदत्तः श्रेष्ठिनी भवदत्ता। श्रेष्ठी निजायुरन्ते आर्तेन मृत्वा निजभवन-पश्चिमवाप्यां मण्डूको जातो निजश्रेष्ठिनीं विलोक्य जातिस्मरो जज्ञे। तन्निकटे यावदागच्छति तावत्सा पलाय्य गृहं प्रविष्टा। स रटन् सरसि स्थितः।[1] एवं यदा यदा तां पश्यति तदा तदा सन्मुखमागच्छति तदा तदा सा नश्यति। तयैकदागतोऽवधिबोधः सुव्रतनामा मुनिः पृष्टः कः स भेक इति। मुनिनोक्तं नागदत्तश्रेष्ठीति श्रुत्वा तया स्वगृहं नीत्वा तदुचितप्रतिपत्त्या धृतः। श्रीवीरनाथवन्दनानिमित्तं त्वया कारितानन्दभेरीनिनादाज्जिनागमनं ज्ञात्वा स भेको दन्तैः कमलं गृहीत्वा अत्रागच्छन् मार्गे तव गजपादेन हतः स देवोऽभूदिति श्रुत्वा भेकोऽपि पूजानुमोदेन देवो जातो मनुजः किं न जायते ॥३॥

[४]

विप्रस्य देहजचरापि[2] सुरो बभूव
पुष्पाञ्जलेर्विधिमवाप्य ततोऽपि चक्री।
मुक्तश्च दिव्यतपसो विधिमाविधाय[3]
नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥४॥

ध्वजा और मुकुटमें मेंढकका चिह्न था। उसको देखकर श्रेणिकके हृदयमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने गणधरसे पूछा कि हे भगवन्! यह देव पीछे क्यों आया है और वह किस पुण्यके फलसे देव हुआ है। गणधर बोले— इसी राजगृह नगरमें एक नागदत्त नामका सेठ था। उसकी पत्नीका नाम भवदत्ता था। वह सेठ अपनी आयुके अन्तमें आर्त ध्यानके साथ मरकर अपने ही भवनके पश्चिम भागमें स्थित बावड़ीमें मेंढक उत्पन्न हुआ था। उसे वहाँ अपनी पत्नीको देखकर जाति-स्मरण हो गया। वह जब तक उसके समीपमें आता था तब तक वह भागकर घरके भीतर चली जाती थी। वह शब्द करते हुए उस बावड़ीके भीतर स्थित होकर उक्त प्रकारसे जब जब भवदत्ता-को देखता तब तब उसके निकट आता था। परन्तु वह डरकर भाग जाती थी। भवदत्ताने एक समय उपस्थित हुए सुव्रत नामक अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा कि वह मेंढक कौन है। मुनिने कहा कि वह नागदत्त सेठ है। यह सुनकर वह उसे अपने घर ले गई। वहां उसने उसे उसके योग्य आदर-सत्कारके साथ रक्खा। तुमने जो श्री महावीर जिनेन्द्रकी वन्दनाके लिये आनन्दभेरी करायी थी उसके शब्दको सुनकर और उससे जिनेन्द्रके आगमनको जानकर वह मेंढक दाँतोंसे कमलपुष्पको लेकर यहाँ आ रहा था। वह मार्गमें तुम्हारे हाथीके पैरके नीचे दबकर मरणको प्राप्त होता हुआ यह देव हुआ है। इस वृत्तान्तको सुनकर यह विचार करना चाहिए कि जब पूजाकी अनुमोदनासे मेंढक भी देव हो गया तब भला मनुष्य क्या न होगा— वह तो मुक्तिको भी प्राप्त कर सकता है ॥३॥

पुष्पांजलिकी विधिको प्राप्त करके—पुष्पांजलि व्रतका परिपालन करके—भूतपूर्व ब्राह्मणकी पुत्री पहिले देव हुई, फिर चक्रवर्ती हुई, और तत्पश्चात् दिव्य तपका अनुष्ठान करके मुक्तिको भी प्राप्त हुई। इसलिये मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभुकी पूजा करता हूँ ॥४॥

---

१. क सरसि स्थितः स च मण्डूकः तत्रैव स्थितः एवं। २. प ०वरमपि ब ०वरापि, श ०चरोपि। ३. श विध॰।

अस्य कथा— जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहे सीतानदीदक्षिणतटयां मङ्गलावतीविषये रत्नसंचयपुरेशो वज्रसेनो देवी जयावती। सा चैकदा प्रासादोपरिमभूमौ सखीजनपरिवृता दिव्यासने उपविष्टा दिशमवलोकयन्ती जिनेन्द्रालयात् पठित्वा निर्गतसुकुमारबालकान् विलोक्य 'मम कदा पुत्रो भविष्यति' इति विचिन्त्य दुःखेनाश्रुपातं कुर्वती स्थिता। कयाचित्सख्या भूपतेर्निवेदितम्—'देव, जयावती देवी रुदती तिष्ठति' इति श्रुत्वा राजा तत्र गत्वा तां विलोक्यार्धासने उपविश्य स्वोत्तरीयेणाश्रुप्रवाहं विलोपयन् पृच्छति स्म देवीं दुःखकारणम्। सा न कथयति। तदा कयाचित्सख्योक्तं परपुत्रान् दृष्ट्वा दुःखिता बभूवेति। देवी पुत्रार्थिनीति श्रुत्वा राजा आह[1]— हे देवि, एहि यावत्तावज्जिनं पूजयितुमिति दुःखं विस्मारयितुं[2] जिनालयं नीता तेन। जिनं पूजयित्वा ज्ञानसागरमुमुक्षुं च वन्दित्वा धर्मश्रुतेरनन्तरं[3] राजा पृच्छति स्म तस्या देव्याः पुत्रो भविष्यति न वेति। ततो मुनिरुवाच— षट्खण्डाधिपतिश्चरमाङ्गपुत्रो[4] भविष्यतीति[5]। ततः संतुष्टौ दम्पती गृहं गतौ। ततः कतिपयदिनैस्तनुजोऽजनिष्ट। तस्य रत्नशेखर इति नाम कृत्वा सुखेन स्थितौ मातापितरौ। स च वृद्धिंगतः सप्तवर्षानन्तरं तज्जिनालये जैनोपाध्यायान्तिके पठितुं समर्पितः। कतिपयदिनैः सकलशास्त्रविद्यासु कुशलो जातो युवा च। एकदा चैत्रोत्सवे वनं जलक्रीडार्थं गतः। जलक्रीडानन्तरं तत्र मणिमण्डपस्थे[6]

इसकी कथा— जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें स्थित सीता नदीके तटपर मंगलावती देशके अन्तर्गत रत्नसंचयपुर है। उसके राजाका नाम वज्रसेन और उसकी पत्नीका नाम जयावती था। वह एक समय महलके ऊपर छतपर सखीजनोंके साथ दिव्य आसनपर बैठी हुई दिशाका अवलोकन कर रही थी। इतनेमें कुछ सुकुमार बालक पढ़ करके जिनालयसे बाहर निकले। उनको देखकर वह 'मुझे कब पुत्र होगा' इस प्रकार चिन्तातुर होती हुई दुःखसे आँसुओंको बहाने लगी। किसी सखीने इस बातकी सूचना करते हुए राजासे निवेदन किया कि हे देव! रानी जयावती रुदन कर रही है। इस बातको सुनकर राजा अन्तःपुरमें गया। उसने वहाँ अर्धासनपर बैठते हुए देवीको रुदन करती हुई देखकर अपने दुपट्टासे उसके अश्रुप्रवाहको पोंछा और दुःखके कारणको पूछा। परन्तु उसने कुछ नहीं कहा। तब किसी सखीने कहा कि यह दूसरोंके पुत्रोंको देखकर दुखी हो गई है। रानी पुत्रकी अभिलाषा करती है, यह सुनकर राजाने उससे कहा कि हे देवि! आओ जिनपूजाके लिये चलें। इस प्रकार वह दुःखको भुलानेके लिये उसे जिनालयमें ले गया। वहाँ राजाने जिन भगवान्‌की पूजा की और फिर ज्ञानसागर मुमुक्षुकी वन्दना करके धर्मश्रवण करनेके पश्चात् उसने उनसे पूछा कि इस देवीके पुत्र होगा या नहीं। मुनि बोले— इसके छह खण्डोंका स्वामी (चक्रवर्ती) चरमशरीरी पुत्र होगा। इससे सन्तुष्ट होकर वे दोनों पति-पत्नी घर वापिस गये। तत्पश्चात् कुछ ही दिनोंमें उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका रत्नशेखर नाम रखकर माता और पिता सुखपूर्वक स्थित हुए। वह क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर जब सात वर्षका हो गया तब उसे पढ़नेके लिये जिनालयमें जैन उपाध्यायके पास भेजा गया। वह थोड़े ही दिनोंमें समस्त शास्त्रविद्याओंमें प्रवीण हो गया। अब वह जवान हो गया था। एक दिन वह वसन्तोत्सवमें जलक्रीड़ा करनेके लिये वनमें गया। जलक्रीड़ाके पश्चात् वह मणिमय मण्डपमें स्थित अनुपम सिंहासनपर

१. ब 'आह' नास्ति। २. श विस्मरियितुं। ३. श श्रुतेनन्तरं। ४. प श षट्‌खंडाधिपति०। ५. श भविष्यति इति तः। ६. प मंडपास्थ।

विचित्रसिंहासने आसितो विलासिनीकृतनृत्यं पश्यन् यदा तदा कश्चिद्विद्याधरो गगने गच्छं-स्तस्योपरि विमानागते तत्रावतीर्णः। इतरेतरदर्शनेन परस्परस्नेहं गतौ। तत उचितसंभाषणानन्तरमेकासने उपविष्टौ। ततो रत्नशेखरेणोक्तं 'कस्त्वं कस्मादागतोऽसि तव दर्शनेन मम प्रीतिः प्रवर्तते' इति। खेचरो ब्रूते— शृणु हे मित्र, अत्रैव विजयार्धे दक्षिणश्रेण्यां सुरकण्ठपुरेश-जयधर्मविनयावत्योः[२] पुत्रोऽहं मेघवाहनः सकलविद्यासनाथः। मम पिता मह्यं राज्यं दत्त्वा दीक्षितः। स्वेच्छाविहारं गच्छन् त्वां दृष्टवानहमिति[३] प्रतिपाद्य तं पृष्टवान् खेचरस्त्वं क इति। रत्नशेखरः कथयति— एतद्रत्नसंचयपुरेशवज्रसेनजयावत्योः तनुजोऽहं[४] रत्नशेखरनामेति कथिते[५] तौ सखित्वं गतौ। ततो रत्नशेखरेणोक्तं मेरुजिनालयदर्शने मे वाञ्छा वर्तते इति। इतरेणोक्तं तर्हि कुरु विमानारोहणं यावस्तत्रेति। तेनोक्तं— स्वसाधितविद्यया गन्तुमिच्छामि। ततः खेचरेण मन्त्रो दत्तः, इमं जपेति[६]। तदनु परिजनं विसृज्य तमेवोत्तरसाधकं[७] विधाय यावज्जपति तावत् पञ्चशतविद्याः समागत्य भणन्ति स्म प्रेषणं प्रयच्छेति। ततो दिव्यविमान-मारुह्यार्धतृतीयद्वीपेषु स्थितजिनालयान् पूजयित्वा स्वविषयविजयार्धवासिसिद्ध[८]कूट-मागतौ जिनं पूजयित्वा तन्मण्डपे यावदुपविश्य स्थितौ तावत्तत्र[९] विजयार्धदक्षिणश्रेणिस्थ-रथनूपुरेशविद्युद्वेगसुखकारिण्योः पुत्री मदनमञ्जूषा स्वविलासिनीसहिता जिनं द्रष्टुं समा-

बैठकर जब वेश्याके नृत्यको देख रहा था तब कोई विद्याधर आकाशमार्गसे जाता हुआ उसके ऊपर विमानके आनेपर वहाँ नीचे उतरा। वे दोनों एक दूसरेको देखकर परस्परमें स्नेहको प्राप्त हुए। तब समुचित सम्भाषणके बाद वे दोनों एक आसनपर बैठे। पश्चात् रत्नशेखरने पूछा— तुम कौन हो और किस कारणसे यहाँ आये हो, तुमको देखकर मुझे प्रीति उत्पन्न हो रही है। विद्याधर बोला सुनो— हे मित्र ! इसी विजयार्ध पर्वतके ऊपर दक्षिण श्रेणिमें सुरकण्ठपुर है। उसका स्वामी जयधर्म है। उसकी पत्नीका नाम विनयावती है। इन दोनोंका मैं मेघवाहन नामका पुत्र हूँ जो समस्त विद्याओंका स्वामी है। मेरा पिता मुझे राज्य देकर दीक्षित हो चुका है। मै स्वेच्छासे विहार करता हुआ जा रहा था कि तुम्हें देखा। इस प्रकार कहकर विद्याधरने उससे पूछा कि तुम कौन हो। रत्नशेखर बोला— मैं इस रत्नसंचयपुरके अधीश्वर वज्रसेनका रत्नशेखर नामक पुत्र हूँ। मेरी माताका नाम जयावती है। इस प्रकार कहनेपर उन दोनोंमें मित्रता हो गई। पश्चात् रत्नशेखरने कहा कि मैं मेरु पर्वतके ऊपर स्थित जिनालयोंके दर्शन करना चाहता हूँ। इसपर मेघवाहनने कहा कि तो फिर विमानमें बैठो और चलो वहाँ चलें। उसने कहा कि मैं अपने द्वारा सिद्ध की गई विद्याके बलसे वहाँ जाना चाहता हूँ। तब विद्याधरने उसे मंत्र दिया और कहा कि इसका जाप करो। तत्पश्चात् वह सेवक-समूहको छोड़कर और उसीको उत्तम साधक करके जब तक उसका जाप करता है तब तक पाँच सौ विद्याओंने उपस्थित होकर यह कहा कि हमें आज्ञा दीजिये। तब वे दोनों दिव्य विमानमें बैठकर गये और अढ़ाई द्वीपोंके भीतर स्थित जिनालयोंकी पूजा करके अपने देशमें स्थित विजयार्ध पर्वतवासी सिद्धकूटके ऊपर आ गये।

वहाँ जिन भगवान्की पूजा करके वे उसके मण्डपमें बैठे ही थे कि इतनेमें वहाँ विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें स्थित रथनूपुरके राजा विद्युद्वेग और रानी सुखकारिणीकी पुत्री मदन-

१. फ प्रदेशो। २. प विनयवत्योः, श विनयावत्योः। ३. श दृष्टवान् ऽहमिति। ४. फ ब वज्रसेन-तनुजोऽहं, श वज्रसेनजयावत्यो तनुजोहं। ५. श कथितो। ६. ब जपेत्। ७. ब ०त्तरं साधकं। ८. फ विजयार्द्धं वा सिद्ध०। ९. प तन्मंडपे यावदुपविश्य स्थितौ तौ द्वौ तावत्तत्र, फ यावत्तन्मंडपे उपविश्य स्थितौ तावत्तत्र।

गता तं दृष्ट्वातिविह्वलीबभूव। तद् वृत्तान्तमाकर्ण्य तत्पित्रा तत्रागत्य मित्रेण सार्धं स्वगृहमानीतः। तत्रत्याशेषविद्याधरकुमारभयेन तत्स्वयंवरः कृतः। तया तस्य माला निक्षिप्ता। तदा सर्वे वियच्चराः क्रुद्धाः स्वमन्त्रिवचनमुल्लङ्घ्य कदनोद्यता जाताः। तथापि मन्त्रिवचनेन संधानाय तन्निकटमजितनामानं दूतं प्रेषयामासुः। स गत्वा रत्नशेखरं विज्ञप्तवान्— हे भूमिप, धूमशेखरप्रभृतिखेचरराजैस्त्वदन्तिकं प्रस्थापितोऽहम्। ते सर्वेऽपि त्वयि स्निह्यन्ति वदन्ति च खेचरेन्द्रकन्यामस्माकं समर्प्य रत्नशेखरः सुखेनास्तामिति। तस्मात् कन्यां तेषां समर्पयेति श्रुत्वा मेघवाहनमुखमवलोक्योक्तवान्— अनया धिया तवेश्वराणां शिरांसि कबन्धेषु न तिष्ठन्ति। याहि, रणाङ्गणे स्थातुं तेषां निरूपयेति विसर्जितो दूतः। तस्मात्ते सर्वमवधार्य रणावनौ स्थिताः। तेषां स्थितिं विलोक्य रत्नशेखरमेघवाहनौ विद्यया चातुरङ्गं विधाय विद्युद्वेगेन सार्धमाजिरङ्गे स्थितौ। खेचरैर्भृत्यवर्गो योद्धुं निरूपितो[3] रत्नशेखरेणापि। ततो यथोचितं भृत्यवर्गौ[4] युद्धं चक्रतुः। बृहद्वेलायां खेचरपदातिर्नष्टा, तथाश्वारोहा रथिका योधाश्च। स्वसैन्यभङ्गवीक्षणात् क्रुद्धैर्वियच्चरैर्मुख्यैः समस्तैर्वेष्टितो रत्नशेखरः। ततो निजहस्तस्थितकोदण्डविसर्जितबाणमुख्यैर्बहून् जघान। ततोऽनेकविद्याबाणा विसर्जितास्तैः। तान्

मंजूषा अपनी विलासिनियों (सखियों) के साथ जिनदर्शनके लिये आई। वह उसको देखकर अतिशय विह्वल (कामपीड़ित) हो गई। उस वृत्तान्तको सुनकर उसका पिता वहाँ आया और मित्रके साथ उसे (रत्नशेखरको) अपने घरपर ले गया। उसने वहाँ रहनेवाले समस्त विद्याधर कुमारोंके भयसे उसका स्वयंवर किया। मदनमंजूषाने रत्नशेखरके गलेमें माला डाल दी। तब सब विद्याधर क्रुद्ध होते हुए अपने मन्त्रियोंके वचनका उल्लंघन करके युद्धके लिये तत्पर हो गये। फिर भी उन लोगोंने मंत्रियोंके कहनेसे सन्धिके निमित्त रत्नशेखरके पास अजित नामक दूतको भेज दिया। उसने जाकर रत्नशेखरसे निवेदन किया कि हे राजन्! धूमशेखर आदि विद्याधर राजाओंने मुझे आपके पासमें भेजा है। वे सब ही आपसे स्नेहपूर्वक कहते हैं कि विद्याधरकन्याको हमें देकर रत्नशेखर सुखपूर्वक रहे। इसलिये आप उन्हें कन्याको दे दें। इस बातको सुनकर मेघवाहनके मुखकी ओर देखते हुए रत्नशेखरने उससे कहा कि इस दुर्बुद्धिसे तुम्हारे स्वामियोंके शिर धड़ोंमें रहनेवाले नहीं हैं। जाओ और उनसे रणाङ्गणमें स्थित होनेके लिये कह दो। इस प्रकार कहकर रत्नशेखरने दूतको वापिस कर दिया। दूतसे वे इस सबको सुन करके युद्धभूमिमें उपस्थित हो गये। उनको युद्धभूमिमें स्थित देखकर रत्नशेखर और मेघवाहन विद्याके बलसे चतुरंग सेनाको निर्मित करके विद्युद्वेगके साथ युद्धभूमिमें आ डटे। विद्याधरोंने भृत्यवर्गको (सेनाको) युद्धके लिये आज्ञा दी। तब रत्नशेखरने भी अपने भृत्यवर्गको युद्ध करनेकी आज्ञा दी। तब यथायोग्य दोनों ओरका भृत्यसमूह युद्ध करने लगा। इस प्रकार बहुत कालके बीतनेपर विद्याधरोंकी सेना (पदाति) नष्ट हो गई तथा अश्वारोही व रथारोही सुभट भी नष्ट हो गये। अपनी सेनाको नष्ट होते देखकर क्रोधको प्राप्त हुए मुख्य समस्त विद्याधरोंने रत्नशेखरको वेष्टित कर लिया। तब उसने अपने हाथमें स्थित धनुषसे मुख्य बाणोंको छोड़कर बहुत-से विद्याधरोंको प्राणरहित कर दिया। इससे उन विद्याधरोंने रत्नशेखरके ऊपर अनेक विद्याबाण छोड़े। उनको

१. ब दृष्टुमागता। २. प धूमशिख, श धूमशिखर। ३. श ०वर्गं योद्धुं निरूपितौ। ४. श ब भृत्यवर्गो।

प्रतिविद्याबाणैर्विनिर्जितवानुक्तवांश्च[1]— अद्यापि मम सेवां कृत्वा सुखेन तिष्ठथेति। ततो वरवस्तूपायनेन शरणं प्रविष्टाः। तदनु जगदाश्चर्यविभूत्या समस्तैः सार्धं पुरं प्रविष्टः सुमुहूर्ते कन्यां परिणीतवांश्च। कियन्ति दिनानि तत्र स्थितो मातापित्रोर्दर्शनोत्कण्ठितोऽभूत्। ततो वियच्चरराजैः श्वशुरेण वनितया मित्रेण च विमानमारुह्य नभोऽङ्गणं व्याप्य स्वपुरमागतः। तदागमं ज्ञात्वा पिता सपरिवारः सन्मुखं ययौ, तं दृष्ट्वा सुखी बभूव। पुरं प्रविश्य मातरं प्रणम्यागतवियच्चराणां प्राघूर्णक्रियां विधाय कतिपयदिनैस्तान् विसर्ज्य सुखेन स्थितः।

एकदा घनवाहनमञ्जूषाभ्यां मेरुं गत्वा तत्रत्यजिनालयान् पूजयित्वा एकस्मिन् जिनालये यावत्तिष्ठति तावद् गगनेऽमितगति-जितारिनामानौ चारणाववतीर्णौ। तौ वन्दित्वोपविश्य धर्मश्रुतेरनन्तरं पृष्टवान्— मम पुण्यातिशयहेतुं मेघवाहनमदनमञ्जूषयोरुपरि मोहस्य च कथयेति। कथयति यतिनाथस्तथाहि— अत्रैव भरते आर्यखण्डस्थमृणालनगर्यां शंभवनाथतीर्थान्तरे राजाजनि जितारिर्देवी कनकमाला पुरोहितः श्रुतकीर्तिस्तद्ब्राह्मणी बन्धुमती पुत्री प्रभावती। सा राजतनया च जैनपण्डितासमीपे पठिता। एकदा बन्धुमत्या सह सं[2] पुरोहितः स्ववासक्रीडाभवनं[3] क्रीडितुं गतः। क्रीडावसाने निद्रिता सा। भ्रमितुं गतः। बन्धुमती शरीरगतसौरभासक्तागतेन सर्पेण दष्टा मृता। सा तेनागत्यालपिता यदा न वक्ति तदा

प्रतिपक्षभूत विद्याबाणोंसे जीतकर रत्नशेखर बोला कि तुम लोग अब भी मेरी सेवा करके सुखपूर्वक रह सकते हो। तब वे विद्याधर उत्तम वस्तुओंको भेंट करके रत्नशेखरके शरणमें जा पहुँचे। तत्पश्चात् वह जगत्को आश्चर्यान्वित करनेवाली विभूतिको लेकर सबके साथ नगरमें प्रविष्ट हुआ। उसने शुभ मुहूर्तमें मदनमंजूषाके साथ विवाह कर लिया। फिर कुछ दिन वहाँ रहकर उसे अपने माता-पिताके दर्शनकी उत्कण्ठा हुई। तब वह विद्याधर राजाओं, ससुर, पत्नी और मित्रके साथ विमानमें बैठकर आकाशको व्याप्त करता हुआ अपने पुरमें आ गया। उसके आगमनको जानकर पिता परिवारके साथ सन्मुख आया और उसको देखकर सुखी हुआ। रत्नशेखरने पुरमें प्रवेश करके माताको प्रणाम किया। तत्पश्चात् साथमें आये हुए विद्याधरोंका अतिथिसत्कार करके उसने कुछ दिनोंमें उन्हें वापिस कर दिया। इस प्रकार वह सुखसे स्थित होकर कालको बिताने लगा।

एक समय उसने मेघवाहन और मदनमंजूषाके साथ मेरु पर्वतके ऊपर जाकर वहाँके जिनालयोंकी पूजा की। पश्चात् वह किसी एक जिनालयमें बैठा ही था कि इतनेमें आकाशसे अमितगति और जितारि नामक दो चारण ऋषि अवतीर्ण हुए। उनकी वन्दना करके उसने धर्मश्रवण किया और फिर उनसे अपने पुण्यातिशय तथा मेघवाहन व मदनमंजूषाविषयक मोहके कारणके कहनेकी प्रार्थना की। मुनिराजने उसका निरूपण इस प्रकारसे किया— इसी भरत क्षेत्रके भीतर आर्यखण्डमें स्थित मृणाल नगरीमें शम्भवनाथ तीर्थंकरके तीर्थकालमें जितारि राजा हुआ है। उसकी पत्नीका नाम कनकमाला था। इस राजाके श्रुतकीर्ति नामका पुरोहित था जिसके बन्धुमती नामकी ब्राह्मणी (पत्नी) और प्रभावती नामकी पुत्री थी। वह पुरोहितपुत्री और राजपुत्री दोनों ही एक जैन पण्डिताके समीपमें पढ़ी थीं। एक दिन वह पुरोहित बन्धुमतीके साथ क्रीड़ा करनेके लिये अपने निवासस्थानके क्रीड़ाभवनमें गया था। वहाँ वह क्रीड़ाके अन्तमें सो गई थी। पुरोहित घूमनेके लिये बाहर निकल गया था। बन्धुमतीके शरीरमें स्थित सुगन्धिके कारण वहाँ एक सर्प आया और

१. ब ०वानुक्तवाश्च, श ०श्चवानुक्तवानश्च। २. क 'स' नास्ति। ३. क स्ववनक्रीडा०।

दुःखी बभूव महाशोकं च कृतवान्। संस्कारयितुं च न प्रयच्छति। यदा निद्रापरवशो[1]ऽभूत्तदा संस्कारिता। तथापि स शोकं न त्यजति। तदा पुत्र्या मुनिसमीपं नीतस्तेन संबोधितः सन् दिगम्बरोऽभूत्। मन्त्रवादपठनेन[2] चारित्रेऽचलो जातः। विद्यासिद्धिनिमित्तं मन्त्रजपने पुष्पादिकं दातुं पुत्री गिरिगुहामानीता। तया दत्तप्रसवादिना मन्त्रजापं प्रकुर्वतोऽनेकविद्याः सिद्धाः। तद्बलेन पुरं विधाय स्त्र्यादिकांश्च[3] भोगान् भुञ्जन्तं[4] पुत्री[5] संबोधयति। तदा स वदति— पुत्रि, मां मा संबोधयेति। तथापि सा न तिष्ठति। तदा तेन विद्ययाटव्यां त्याजिता। सा धर्मभावनया[6] तत्र स्थिता[7]। पुनस्तेनावलोकिनी प्रस्थापिता। सा तां वदति स्म— हे प्रभावति, यत्र ते प्रतिभाति तत्र ते नयामीति[8]। तयोक्तम् 'कैलासं नय'। नीतां तत्र संस्थाप्य विद्या गता। सा सर्वान् जिनालयान् पूजयित्वा संस्तुत्यैकस्मिन् जिनालये यावत्तिष्ठति तावत् पद्मावती तत्रागता। देवमभिवन्द्य यावन्निर्गच्छति तावत् कन्यां दृष्ट्वा पृष्टवती का त्वमिति। सा यावदात्मवृत्तान्तं कथयति तावद् देवाः सर्वे समागुः। तान् विलोक्य कन्यया पृष्टा यक्षी 'हे देवि, किमिति देवाः समागताः' इति। तयोक्तम् 'अद्य भाद्रपदशुक्लपञ्चमीदिनं प्रवर्तते। अस्मिन् पुष्पाञ्जलेर्विधानं विद्यते। तत्कर्तुं समा-

उसने उसे काट लिया। इससे वह मर गई। जब पुरोहित वापिस आया तो उसने उसे बुलाया, परन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। इससे वह दुखी होकर अतिशय शोकसंतप्त हुआ। वह अविवेकसे मृत शरीरको संस्कारके लिये भी नहीं देता था। ऐसी अवस्थामें जब वह निद्राके अधीन हुआ तब कहीं बन्धुमतीके मृत शरीरका दाहसंस्कार किया गया। फिर भी उसने शोकको नहीं छोड़ा। तब उसकी पुत्री प्रभावती उसे मुनिके समीपमें ले गई। मुनिके द्वारा समझानेपर वह दिगम्बर (मुनि) हो गया। परन्तु मंत्रवादके पढ़नेसे वह चारित्रके परिपालनमें अस्थिर हो गया। वह विद्याओंको सिद्ध करनेके लिये मंत्रजापमें पुष्पादिकोंको देनेके निमित्त पुत्रीको पर्वतकी गुफामें ले आया। उसके द्वारा दिये गये पुष्पादिसे वह मंत्रोंका जप करने लगा। इस प्रकारसे उसे अनेक विद्याएँ सिद्ध हो गई थीं। उसने विद्याके बलसे एक नगर तथा स्त्री आदिको बनाया। वहाँ रहकर वह भोगोंको भोगने लगा। जब पुत्रीने उसे समझानेका प्रयत्न किया तब वह बोला कि हे पुत्री! तू मुझे समझानेका प्रयत्न मत कर। फिर भी वह रुकती नहीं है—समझाती ही है। तब उसने उसे विद्याके द्वारा गहन वनमें छुड़वा दिया। वह वहाँ धर्म-भावनाके साथ स्थित रही। फिर उसने अवलोकिनी विद्याको भेजा। उसने वहाँ जाकर उससे कहा कि हे प्रभावती! जहाँ तुझे अच्छा प्रतीत होता हो वहाँ मैं तुझे ले चलती हूँ। प्रभावतीने कहा कि कैलाश पर्वतपर ले चल। विद्या उसे कैलाश पर्वतपर ले गई और वहाँ स्थापित करके वापिस चली गई। उसने वहाँ सब जिनालयोंकी पूजा और स्तुति की। तत्पश्चात् वह एक जिनालयमें बैठी ही थी कि इतनेमें वहाँ पद्मावती आई। उक्त देवी जिनेन्द्रकी वन्दना करके जैसे ही वहाँसे निकली वैसे ही कन्याको देखकर पूछती है कि तुम कौन हो। वह जब तक अपने वृत्तान्तको कहती है तब तक सब देव वहाँ जा पहुँचे। उनको देखकर कन्याने यक्षीसे पूछा कि हे देवी! ये देव किस लिए आये हैं। यक्षीने कहा कि आज भाद्रपद शुक्ला पंचमीका दिन है। इसमें पुष्पाञ्जलि व्रतका विधान है। उसे करनेके लिए वे देव यहाँ आये हैं। कन्याने

१. श निद्रावरवशो। २. फ मंत्रवादं पठते। ३. फ स्त्रियादिकं च, श वस्त्रादिकं च। ४. प भुंजुंतं। ५. प फ पुत्रीं। ६. श भावनाया। ७. फ तत्रास्थिता। ८. अतोऽग्रे प श प्रत्योः 'यतो मे गुरुरादेशो' इत्यधिकः पाठोऽस्ति।

याताः' इति। तर्हि तत्स्वरूपं मे प्रतिपादय। प्रतिपाद्यते, शृणु। तथाहि— हे कन्ये, भाद्रपदाश्विनकार्तिकमार्गशिरपुष्यमाघफाल्गुनचैत्रमासानां मध्ये कस्यचिन्मासस्य शुक्लपञ्चम्याम् उपवासपूर्वकं पूर्वाह्णं[1] प्रारभ्य यामे यामे चतुर्विंशतितीर्थकरप्रभृतीनाम्[2] अभिषेकं पूजां विधाय चतुर्विंशतितण्डुलपुञ्जकान् जिनाग्रे कृत्वा[3] यक्षिदेव्याः द्वादशपुञ्जान् कृत्वा[4] प्रदक्षिणीकुर्वन् तीर्थकरनामपूर्वकं पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्। कथम्। तथाहि—

त्रिदशराजपूजितं वृषभनाथमूर्जितम्। कनककेतकैर्यजे भवविनाशकं जिनम् ॥१॥
अजितनामधेयकं भुवनभव्यसौख्यकम्। विदितचम्पकैर्यजे भव० ॥२॥
सकलबोधसंयुजं[5] तमिह संभवं यजे। सुरभिसिन्दुवारकैर्भव० ॥३॥
वरगुणौघसंयुजं[6] तमभिनन्दनं यजे। बकुलमालया सदा भव० ॥४॥
सुमतिनामकं परैः सुरभिवृक्षपुष्पकैः। वरगणाधिपं यजे भव० ॥५॥
त्रिभुवनस्य वल्लभं विदितमम्बुजप्रभम्। नवसिताम्बुजैर्यजे भव० ॥६॥
भुवि सुपार्श्वनामकं रहितघातिकर्मकम्[7]। बहु यजे हि पाटलैर्भव० ॥७॥
[8]विहितमुक्तिसौख्यकैः सुरभिनागचम्पकैः। वरशशिप्रभं यजे भव० ॥८॥
सकलसौख्यकारकैः सुशतपत्रदामकैः। सुविधिनामकं यजे भव० ॥९॥

कहा— तो उस व्रतका स्वरूप मेरे लिए बतलाइए। यक्षीने कहा— बतलाती हूँ, सुनो। हे कन्ये! भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशिर, पुष्य, माघ, फाल्गुन और चैत्र इन मासोंके मध्यमें किसी भी मासकी शुक्ल पंचमीके दिन उपवासपूर्वक पूर्वाह्न कालसे प्रारम्भ करके प्रत्येक प्रहरमें चौबीस तीर्थंकरों आदिके अभिषेक व पूजाको करके चौबीस तंदुलपुंजोंको जिनेन्द्रोंके आगे करके तथा बारह पुंजोंको यक्षिदेवीके आगे करके प्रदक्षिणा करते हुए तीर्थंकरोंके नामनिर्देशपूर्वक पुष्पांजलिका क्षेपण करे। वह किस तरहसे करे, इसका स्पष्टीकरण करते हैं—

जो वृषभनाथ जिनेन्द्र इन्द्रोंसे पूजित, तेजस्वी (या अतिशय बलशाली) और संसारके विनाशक हैं उनकी मैं कनक (चम्पा या पलाश) व केतकीके फूलोंसे पूजा करता हूँ ॥१॥ मैं लोकके समस्त भव्य जीवोंको सुख देनेवाले एवं संसारके नाशक अजित नामक जिनेन्द्रकी विदित चम्पक पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥२॥ मैं यहाँ केवलज्ञानसे संयुक्त होकर संसारको नष्ट करनेवाले उन सम्भवनाथ जिनेन्द्रकी सुगन्धित सिन्दुवारक (श्वेतपुष्प) पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥३॥ जो अभिनन्दन जिनेन्द्र उत्तमोत्तम गुणोंके समूहसे सहित तथा संसारके नाशक हैं उनकी मैं बकुलपुष्पोंकी मालासे पूजा करता हूँ ॥४॥ जो सुमति जिनेन्द्र चातुर्वर्ण्य संघ (अथवा गणधरों) के अधिपति होकर संसारके नाशक हैं उनकी मैं उत्कृष्ट सुरभि वृक्षके फूलोंसे पूजा करता हूँ ॥५॥ कमलके समान कान्तिवाले जो पद्मप्रभ जिनेन्द्र तीन लोकके प्रिय एवं संसारके नाशक हैं उनकी मैं उत्तम श्वेत कमलोंके द्वारा पूजा करता हूँ ॥६॥ जो सुपार्श्व नामक जिनेन्द्र लोकमें घातिया कर्मोंसे रहित होकर संसारके नाशक हैं उनकी मैं पाटल पुष्पोंसे बहुत पूजा करता हूँ ॥७॥ मैं मुक्तिसुखको करनेवाले सुगन्धित नागचम्पक फूलोंसे उत्कृष्ट चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रकी पूजा करता हूँ। वे जिनेन्द्र संसारके नाशक हैं ॥८॥ मैं समस्त सुखको उत्पन्न करनेवाले उत्तम कमलपुष्पोंकी मालाओंसे संसारके नाशक सुविधि

१. पूर्वाह्ले। २. प श प्रभृतीना। ३. श जिनाकृत्वा। ४. प श द्वादशपुञ्जकान् प्र०। ५ प संयुजे, फ संयुते। ६. प संयुजे, फ संयजे। ७. श घात। ८. श विहृत।

प्रचुरभृङ्गसंचरैर्विकचनीलकैरवैः । जगति शीतलं यजे भव० ॥१०॥
विबुधचित्तनन्दनं क्षितिपविष्णुनन्दनम् । कुवलयैर्यजे विभुं भव० ॥११॥
अरुणपद्मकान्तिकं सुगुणवासुपूज्यकम् । प्रवरकुन्दकैर्यजे भव० ॥१२॥
विपुलसौख्यसंयुजं विमलनामकं यजे । प्रवरमेरुपुष्पकैर्भव० ॥१३॥
वरचरित्रभूषकं नुतमनन्तनामकम् । कनकपद्मकैर्यजे भव० ॥१४॥
निखिलवस्तुबोधकं विदितधर्मनामकम् । नवकदम्बकैर्यजे भव० ॥१५॥
भुवनवर्तिकीर्तिकं[2] परमशान्तिनामकम् । विचकिलैर्यजे[3] सदा भव० ॥१६॥
तिलकपुष्पदामकैः प्रचुरपुण्यकारकैः । जगति कुन्थुमायजे भव० ॥१७॥
अरमनङ्गवर्जितं सकलभव्यवन्दितम् । कुरबकेतकैर्यजे[4] भव० ॥१८॥
तमिह मल्लिनामकं त्रिजगदीशनाथकम् । कुटजपुष्पकैर्यजे[5] भव० ॥१९॥
गुणनिधिं च सुव्रतं यमनियमसुव्रतम्[6] । सुमुचकुन्दकैर्यजे भव० ॥२०॥
भुवि नमिं सुनामकं भवपयोधिपोतकम् । विमलकुन्दकैर्यजे[7] भव० ॥२१॥
शशिकरौघकीर्तिदं विशदनेमिनामकम् । तमरविन्दकैर्यजे भव० ॥२२॥

(पुष्पदन्त) जिनेन्द्रकी पूजा करता हूँ ॥९॥ मैं बहुत-से भौरोंके संचारसे संयुक्त ऐसे विकसित नील कमलोंके द्वारा संसारके नाशक शीतल जिनेन्द्रकी पूजा करता हूँ ॥१०॥ मैं देवोंके चित्तको आनन्दित करनेवाले राजा विष्णुके पुत्र श्री श्रेयांस जिनेन्द्रकी कुमुदपुष्पोंसे पूजा करता हूँ । वे भगवान् संसारके नाशक हैं ॥११॥ जो वासुपूज्य जिनेन्द्र लाल कमलके समान कान्तिवाले और संसारके नाशक हैं उन उत्तमोत्तम गुणोंसे संयुक्त वासुपूज्यकी मैं उत्तम कुन्दपुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥१२॥ जो विमल जिनेन्द्र निर्मल सुखसे सहित और संसारके नाशक हैं उनकी मैं उत्तम मेरुपुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥१३॥ जो देवादिकोंसे स्तुत अनन्त जिनेन्द्र उत्तम चारित्रसे विभूषित एवं संसारके नाशक हैं उनकी मैं चम्पक और कमल पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥१४॥ जो जिनेन्द्र 'धर्म' इस नामसे जाने गये हैं (प्रसिद्ध हैं), समस्त वस्तुओंके जानकार (सर्वज्ञ) और संसारके नाशक हैं उनकी मैं नवीन कदम्ब वृक्षके फूलोंसे पूजा करता हूँ ॥१५॥ जिनकी कीर्ति लोकमें विस्तृत है तथा जो संसारके नाशक हैं उन उत्कृष्ट शान्तिनाथ नामक जिनेन्द्रकी विचकिल पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥१६॥ मैं लोकमें संसारदुःखके नाशक कुन्थु जिनेन्द्रकी अतिशय पुण्यको करनेवाले तिलक पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥१७॥ जो अर जिनेन्द्र कामसे रहित, समस्त भव्य जीवोंसे वंदित एवं संसारके नाशक हैं उनकी मैं कुरवक और केतकी पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥१८॥ जो मल्लि नामक जिनेन्द्र यहाँ तीन लोकके स्वामियोंके— इन्द्र, धरणेन्द्र एवं चक्रवर्तियोंके— अधिपति हैं उनकी मैं कुटज पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥१९॥ जो सुव्रत जिनेन्द्र गुणोंके भण्डार होकर यम, नियम व उत्तम व्रतोंसे सहित तथा संसारका नाश करनेवाले हैं उनकी मैं सुन्दर मुचकुन्द पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥२०॥ जो उत्तम नामवाले नमि जिनेन्द्र संसाररूप समुद्रसे पार होनेके लिए नावके समान होकर उक्त संसारका नाश करनेवाले हैं उन नमि जिनेन्द्रकी मैं निर्मल कुन्द पुष्पोंके द्वारा पूजा करता हूँ ॥२१॥ मैं कमल-पुष्पोंके द्वारा उन नेमिनाथ जिनेन्द्रकी पूजा करता हूँ जो कि चन्द्रकी किरणोंके समूहके समान निर्मल कीर्तिके देनेवाले, पवित्र और संसारके नाशक हैं ॥२२॥ जो उत्कृष्ट पार्श्व नामक जिनेन्द्र

१ प श विबुद्धचित्त । २. श भुवनकीर्तिकीर्तिकं । ३. क विचिकिलै० । ४. क कुरवकैर्यजे । ५. श पुष्पकैर्जजे । ६. प जमनियमसुव्रतम्, क वरविनेयसुव्रतम् । ७. क विमलगोज्जकै० ।

प्रवरपार्श्वनामकं हरितवर्णदेहकम् । सुकणवीरकैर्यजे भव० ॥२३॥
सुभगवर्धमानकं[1] विबुधवर्धमानकम् । स्तवकपुष्पकैर्यजे भव० ॥२४॥
इति विश्वलतान्तगणेन जिनं विगताखिलदोषसमूहमहम् ।
वरमुक्तिसुखाय सदा सुयजे परिशुद्धशरीरवचोमनसा ॥२५॥

इति अमुना प्रकारेण[2] पञ्चदिनानि यावत् रात्रावपि जागरणपूर्वकमेव कृत्वा द्वितीयाह्ने यामद्वयं तथा प्रवृत्य[3] पारणायां चतुर्विंशतियतीन् व्यवस्थाप्य न लभेत चेत् पञ्च[4] एकं च, सभर्तृपुण्याङ्गनाद्वयस्य भोजनवस्त्रादिकं दत्त्वैकैकं मातुलिङ्गं देयम् । एवं चतुर्दिनानि पुष्पाञ्जलिं विधाय नवम्यामुपवासं कृत्वा तथैवाभिषेकादिकं चरमाञ्जलिः कर्तव्यः । उक्तप्रकारेण पुष्पाणि न लभेत चेत् पञ्चप्रकारैः[5] पुष्पाञ्जलिं कुर्यात् । एवं त्रिवर्षैरुद्यापने[6][7] चतुर्विंशतिप्रतिमाः कारयित्वा जिनालयेभ्यो दद्यादृषिभ्यः पुस्तकादिकं चातुर्वर्णाय[8] यथाशक्त्या भोजनादिकं देयम्, [9]पटहझल्लरीकलशभृङ्गारारार्तिक[10]धूपदहनचन्द्रोपकं ध्वजचामरादिकं देयम् । एतत्फलेन[11] स्वर्गादिसुखं लभेत । अथ नोद्यापनादौ शक्तिः,[12] तर्हि पञ्च वर्षाणि सुवर्णवर्णतण्डुलान्[13] पुष्पाञ्जलिसंकल्पेन क्षिपेत्, तत्फलं प्राप्नुयादित्युक्ते कन्ययोक्तम्— मयायं विधि-

हरितवर्ण शरीरके धारक तथा संसारके नाशक हैं उनकी मैं उत्तम कणवीर पुष्पोंके द्वारा पूजा करता हूँ ॥२३॥ जो सुन्दर वर्धमान जिनेन्द्र देवोंके द्वारा अभ्युदयको प्राप्त तथा संसारके नाशक हैं उनकी मैं स्तवक पुष्पोंसे पूजा करता हूँ ॥२४॥ इस प्रकारसे मैं उत्तम मोक्षको प्राप्त करनेके लिए समस्त दोषसमूहसे रहित जिनेन्द्र देवकी पवित्र मन, वचन और कायसे सब पुष्पोंके समूहसे निरन्तर पूजा करता हूँ ॥२५॥

इस प्रकार पाँच दिन तक रात्रिमें भी जागरणपूर्वक ही करके दूसरे दिन दो प्रहर तक उसी प्रकारसे प्रवृत्ति करके पारणाके समय चौबीस मुनियोंकी व्यवस्था करे, यदि चौबीस मुनि प्राप्त न हों तो पाँच मुनियोंकी अथवा एक मुनिकी व्यवस्था करे तथा दो पवित्र सधवा स्त्रियोंको भोजन वस्त्रादि देकर एक-एक मातुलिंग फल देवे । इस प्रकार चार दिन पुष्पांजलिको करके नवमीके दिन उपवास करता हुआ उसी प्रकारसे अभिषेकादिपूर्वक अन्तिम अंजलिको करे । उक्त प्रकारसे यदि पुष्पोंको न प्राप्त कर सके तो पाँच प्रकारोंसे पुष्पांजलिको करे । इस प्रकार तीन वर्षोंमें उद्यापन करते समय चौबीस जिनप्रतिमाओंको कराकर जिनालयोंके लिए देवे, ऋषियोंके लिए पुस्तकादिको देवे; चातुर्वर्ण संघके लिए शक्तिके अनुसार भोजन आदिको देवे; तथा पटह, झालर, कलश, आरार्तिक, धूपदहन, चंदोवा, ध्वजा और चामर आदिको देवे । इस व्रतके फलसे स्वर्गादिका सुख प्राप्त होता है । यदि उद्यापनादि विषयक शक्ति न हो तो पाँच वर्ष तक पुष्पांजलिके संकल्पसे सुवर्णके समान वर्णवाले तन्दुलोंका क्षेपण करे और उसके फलको प्राप्त करे ।

इस प्रकार यक्षीके कहनेपर कन्याने कहा कि मैं इस विधिको ग्रहण करती हूँ । तब उस

१. फ °वर्द्धनामकं । २. ब–प्रतिपाठोऽयम् । प फ श अमुना पंचप्रकारेण । ३. ब प्रवृत्या । ४. प लभेत्पंचेत्पंच, फ लभेते चेत् पंच, श न लभत्पंचेत्पच । ५. फ प्रकाराणि । ६. फ लभेत् पंच । ७. प श तृभिर्वर्षे उद्यापने, ब त्रिभिर्व्वर्षैरुद्यापने । ८. फ ब चातुर्वर्ण्याय । फ दद्याः रिषिभ्यः । फ 'पडह……देयम्' इत्येतन्नास्ति । ९. प श पडह । १०. ब–प्रतिपाठोऽयम् । प फ श भृङ्गारार्त्तिक । ११. फ एतत्फले । १२. प श शक्ति । १३. प श सुवर्णतंदुलान् ।

गृह्यते। तयोक्तम्— गृहाण, मनुजानां प्रकाशयेति। तदनु पञ्चदिनानि पद्मावत्या[1] तथा चकार। गतेषु देवेषु पद्मावत्यानीय मृणालपुरे धृता सा। पुण्यप्रभावतः प्राणिनां किं किं न संपद्यते। ततः सा विप्रपुत्री भूतिलकजिनालयं प्रविष्टा देवमभिवन्द्य त्रिभुवनस्वयंभुवमृषिं च तत्समीपे दीक्षां ययाचे। तेनोक्तम्—भद्रं कृतम्, त्रिदिनान्येव तवायुरिति। ततो दीक्षां विभृत्य पुष्पाञ्जलिविधिं प्रकाशयन्ती[2] स्थिता। इतो जनकेन सा क्व कथं तिष्ठतीत्यवलोकिनी प्रेषिता[3]। तया स्वरूपे निरूपिते आत्मसमाना[4] कर्तुं उपसर्गादिना तपोविनाशार्थं विद्याः प्रेषिता नयेन तपोविनाशं कर्तुमशक्ता उपसर्गं कर्तुं लग्नाः। तथाप्यचलचित्ता धर्मध्यानेन स्थिता। व्रतप्रभावेन धरणेन्द्रः पद्मावतीसमेतः समायातः। तमवलोक्य नष्टा विद्याः। समाधिना तनुं तत्याज, अच्युतकल्पे पद्मावर्तविमाने पद्मनाभनामा महर्द्धिको देवोऽजनि। स्वपितुः संबोधनार्थं जगदाश्चर्यविभूत्यागत्य पितरं संबोध्य स्वगुरोरन्ते दीक्षां ग्राहितवान् स्वगुरुं च पूजयित्वा स्वर्गलोकं च गत्वा विभूत्या स्थितः। श्रुतकीर्तिरपि समाधिना तत्रैव स्वर्गे प्रभासविमाने प्रभासनामा देवोऽभूत्। तत्र पद्मनाभस्य पट्टमहादेवीषु बह्वीषु गतासु काचित् पद्मिनीदेवी[5] जाता। तस्मादागत्य पद्मनाभदेवस्त्वं जातोऽसि। प्रभासो मेघवाहनो

यक्षीने कहा कि ग्रहण कर और मनुष्योंके मध्यमें उसे प्रकाशित कर। तत्पश्चात् पद्मावतीके साथ उसने पाँच दिन तक वैसा ही किया। पश्चात् देवोंके चले जानेपर पद्मावतीने लाकर उसे (प्रभावतीको) मृणालपुरमें पहुँचा दिया। ठीक है, पुण्यके प्रभावसे प्राणियोंको कौन कौन-सी सम्पत्ति नहीं प्राप्त होती है? सब ही अभीष्ट सम्पत्ति प्राप्त होती है। पश्चात् वह ब्राह्मणकन्या भूतिलक जिनालयके भीतर गई। वहाँ उसने जिनेन्द्रदेव तथा त्रिभुवन स्वयम्भू ऋषिकी वन्दना करके उनके समीप दीक्षाकी प्रार्थना की। ऋषिने कहा— तूने बहुत अच्छा किया, अब तेरी तीन दिनकी ही आयु शेष है। तब वह दीक्षाको धारण करके पुष्पाजलिकी विधिको प्रकट करती हुई स्थित रही।

इधर पिताने वह कहाँ और किस प्रकार है, यह ज्ञात करनेके लिए अवलोकिनी विद्याको भेजा। उस अवलोकिनी विद्यासे उसके वृत्तान्तको जानकर पुरोहितने उसे अपने समान करनेके लिए उपसर्ग आदिके द्वारा तपसे भ्रष्ट करनेके विचारसे विद्याओंको भेजा। किन्तु जब वे विद्यायें उसे नीतिपूर्वक भ्रष्ट न कर सकीं तब उन सबने उसके ऊपर उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। फिर भी प्रभावती स्थिरचित्त रहकर धर्मध्यानसे स्थित रही। तब व्रतके प्रभावसे पद्मावतीके साथ वहाँ धरणेन्द्र आया। उसको देखकर विद्याएँ भाग गईं। प्रभावती समाधिपूर्वक शरीरको छोड़कर अच्युत स्वर्गमें पद्मावर्त विमानके भीतर पद्मनाभ नामक महर्द्धिक देव हुई। तब वह (पद्मावतीका जीव) अपने पिताको सम्बोधित करनेके लिए संसारको आश्चर्यचकित करनेवाली विभूतिके साथ वहाँ आया। उसने पिताको सम्बोधित करके उसे अपने गुरुके पासमें दीक्षा ग्रहण करा दी। पश्चात् वह अपने गुरुकी पूजा करके स्वर्गलोक वापिस चला गया और वहाँ विभूतिके साथ रहने लगा। श्रुतकीर्ति भी समाधिके प्रभावसे उसी सोलहवें स्वर्गमें प्रभास विमानके भीतर प्रभास नामक देव हुआ। वहाँ पद्मनाभ देवकी बहुत-सी अग्र देवियोंके मरणको प्राप्त हो जानेपर कोई पद्मिनी नामकी देवी उत्पन्न हुई। उक्त स्वर्गसे आकर पद्मनाभ देव तुम उत्पन्न हुए हो, प्रभास

१. क पद्मावत्यां। २. क प्रकाशयती। ३. क °लोकिनीविद्यां प्रेषिता, श °लोकनी प्रेषिता। ४. प श आत्मसमानं। ५. श पद्मनी।

ऽजनि। पद्मिनी मदनमञ्जूषा जातेति स्नेहकारणं श्रुत्वा पुष्पाञ्जलिविधानं गृहीत्वा मुनीन् नत्वा स्वपुरमागतः। पुष्पाञ्जलिविधानं कुर्वन् स्थितः।

अथास्थानगतस्य भूपतेर्वनपालेन कमलं दत्तम्। तत्र मृतभ्रमरमालोक्य वैराग्याद्रत्नशेखराय राज्यं दत्त्वा राजसहस्रेण यशोधरमुनिसमीपे दीक्षां बभार। इतो रत्नशेखरायुधागारे चक्रमुत्पन्नम्। षट्खण्डवसुमतीं प्रसाध्य स्वपुरमागतः। पितुः कैवल्यवार्तामाकर्ण्य सपरिजनो वन्दितुं गतः। वन्दित्वागत्य मेघवाहनं खेचरेशं कृत्वा राज्यं कुर्वतो मदनमञ्जूषया कनकप्रभनामा पुत्रो जातः। नवनवतिलक्ष-नवनवतिसहस्र-नवशत-नवनवतिपूर्वाणि राज्यं कृत्वा तत्रोल्कापातमवलोक्य वैराग्यं गतः। ततः कनकप्रभाय राज्यं दत्त्वा मेघवाहनादिबहुभिः क्षत्रियैस्त्रिगुप्तमुनिनिकटे दीक्षितः केवलमुत्पाद्य मोक्षं गतो मेघवाहनोऽपि। मदनमञ्जूषादयस्तपसा यथोचितस्वर्गे पुण्यानुसारेण देवादयो जाता इति सकृज्जिनपूजया द्विजनन्दना एवंविधभूतिभाजनमभून्नित्यं जिनपूजया किं प्रष्टव्यम् ॥४॥

[५]

वैश्यात्मजो विगतधर्ममनाः सुमूढो
रागी सदा जगति भूषणरूढनामा।

देव मेघवाहन उत्पन्न हुआ है, और पद्मिनी देवी मदनमंजूषा उत्पन्न हुई है। इस प्रकार स्नेहके कारणको सुनकर और पुष्पांजलिके विधानको ग्रहण करके मुनियोंको प्रणाम करता हुआ वह रत्नशेखर अपने नगरमें वापिस आ गया। तत्पश्चात् वह पुष्पांजलिके विधानको करता हुआ स्थित हो गया।

किसी समय जब राजा दरबारमें स्थित था तब उसे वनपालने आकर एक कमल-पुष्प दिया। उसमें मरे हुए भ्रमरको देखकर राजा विरक्त हो गया। उसने रत्नशेखरको राज्य देकर एक हजार राजाओंके साथ यशोधर मुनिके समीपमें दीक्षा धारण कर ली। इधर रत्नशेखरकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वह छह खण्डरूप समस्त पृथिवीको जीतकर अपने नगरमें वापिस आ गया। जब उसने पिताके केवलज्ञान उत्पन्न होनेकी बात सुनी तब वह कुटुम्बीजन एवं भृत्यवर्गके साथ उनकी वन्दना करनेके लिए गया। वन्दनाके पश्चात् वह वापिस आया और मेघवाहनको विद्याधरोंका राजा बनाकर राज्य करने लगा। कुछ समयके पश्चात् उसके मदनमंजूषा पत्नीसे कनकप्रभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। निन्यानबै लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्व तक राज्य करके वह रत्नशेखर वहाँ बिजलीके पातको देखकर वैराग्यको प्राप्त हुआ। इससे वह कनकप्रभके लिए राज्य देकर मेघवाहन आदि बहुत-से राजाओंके साथ त्रिगुप्त मुनिके निकटमें दीक्षित हो गया और केवलज्ञानको उत्पन्न करके मोक्षको प्राप्त हुआ। मेघवाहन भी मोक्षको प्राप्त हुआ। मदनमंजूषा आदि तपके प्रभावसे अपने अपने पुण्यके अनुसार यथायोग्य स्वर्गमें देवादिक उत्पन्न हुए। इस प्रकार जब वह पुरोहितकी पुत्री एक बार जिन पूजाके प्रभावसे इस प्रकारकी विभूतिका भाजन हुई तब भला निरन्तर की जानेवाली जिनपूजाके प्रभावसे क्या पूछना है? अर्थात् तब तो प्राणी उसके प्रभावसे यथेष्ट सुख प्राप्त करेगा ही ॥४॥

संसारमें भूषण इस नामसे प्रसिद्ध जो वैश्यपुत्र धर्माचरणसे रहित, अतिशय मूर्ख और

१. क मदनमंजूषा सार्कं कनकप्रभानामः।

देवोऽभवत्स जिनपूजनचेतसैव
नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥५॥

अस्य कथा। तथाहि[1]— रामायणे रामो रावणं निहत्य पुनरयोध्यामागतः सन् भरता-योक्तवान्— यदभीष्टं पुरं तद् गृहाण। भरतेनोक्तम्— महाप्रसादः[2], त्रिलोकशिखरमभीष्टं, तद् गृह्यते। रामेणोक्तम्— कियत्कालं राज्यं कृत्वा मया सह तद् गृहाण। भरतेनोक्तम्— वारद्वय-मन्तरितम्, अत इदानीमेव गृह्यते, इति गच्छन् लक्ष्मीधरेण धृतः। रामेणोक्तम्— मम चित्त-वृत्त्या गन्तव्यमिति स्थापितः। रागवर्धननिमित्तं जलकेली प्रारब्धा। भरतोऽन्तःपुरेण विलासिनीजनेन च क्रीडितुं प्रेषितः। स गत्वा सरोवरेऽनुप्रेक्षां भावयन् स्थितः। जनेन सहा-गमनसमये स्तम्भमून्मूल्य रामलक्ष्मीधरावुल्लंघ्य निर्गतत्रिजगद्भूषणेन राज्यप्रासादमूल-स्तम्भेन भरतमेलापकमवलोक्य मारयितुमागतेन स्त्र्यादिजनस्योत्पादितभयेन भरतसंत्रासादुप-शान्तचित्तेन निजस्कन्धमारोप्य पुरं प्रवेशितः। तदनु लोकाश्चर्यं जातम्। स च हस्ती तद्दिन-मादिं कृत्वा कवलं पानीयं[3] च न गृह्णाति। तत्परिचारकैरागत्य राघवाय निवेदितम्। चतुर्भि-रपि गत्वा संबोधितोऽपि किंचिदपि नाभ्युपगच्छति। रामादयः सचिन्ता बभूवुः। एवं त्रिषु दिनेषु गतेषु ऋषिनिवेदकेनागत्य विज्ञप्तः— देशभूषणसमवसरणं भवत्पुण्योदयेन महेन्द्रोद्याने

रागी था वह केवल जिनपूजामें मन लगानेसे ही देव हुआ है। इसीलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा करता हूँ ॥५॥

इसकी कथा— रामायण (पद्मचरित) में जब रामचन्द्र रावणको मारकर अयोध्या नगरीमें वापिस आये तब उन्होंने भरतसे कहा कि जो नगर तुम्हें अभीष्ट हो उसे ग्रहण करो। यह सुन-कर भरतने कहा कि हे महाभाग ! मुझे तीन लोकका शिखर (सिद्धक्षेत्र) अभीष्ट है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ। तब रामने कहा कि कुछ समय राज्य करके उसे मेरे साथ ग्रहण करना। इसपर भरतने कहा कि इस कार्यमें मुझे दो बार विघ्न उपस्थित हुआ है। अतएव अब मैं उसे इसी समय ग्रहण करना चाहता हूँ। यह कहकर भरत जानेको उद्यत हो गया। तब उसे लक्ष्मणने पकड़ लिया। राम बोले कि हे भरत, तुम्हें मेरे मनके अनुसार चलना चाहिए— मेरी आज्ञा मानना चाहिए, ऐसा कह कर उन्होंने भरतको दीक्षा ग्रहण करनेसे रोक दिया। उन्होंने भरतको अनुरक्त करनेके लिए जलक्रीड़ाकी योजना करते हुए भरतको अन्तःपुर और विलासिनीजनके साथ क्रीड़ाके निमित्त भेज दिया। वह जाकर सरोवरके ऊपर बारह भावनाओंका चिन्तन करता हुआ स्थित रहा। जन समु-दायके साथ यात्राके समयमें त्रिलोकमण्डन हाथी खम्भेको उखाड़कर तथा राम-लक्ष्मणको लांघकर वहाँ आ पहुँचा। राज्यरूप प्रासादका मूल स्तम्भभूत वह हाथी भरतके निमित्तसे आयोजित इस मेलाको देखकर मारनेके लिए आया। इससे स्त्री आदि जनोंको बहुत भय उत्पन्न हुआ। किन्तु भरतके द्वारा पीड़ित होकर उसका मन शान्त हो गया। उसने भरतको अपने कन्धेपर बैठाकर नगरमें पहुँचाया। यह देखकर लोगोंको बहुत आश्चर्य हुआ। उस दिनसे उस हाथीने खाना-पीना छोड़ दिया। तब उसकी परिचर्या करनेवाले सेवक जनोंने आकर इसकी सूचना रामचन्द्रको दी। तब उसे रामचन्द्र आदि चारों ही भाइयोंने जाकर समझाया। किन्तु उसने खाना-पीना आदि कुछ भी स्वीकार नहीं किया। इससे रामादिको बहुत चिन्ता हुई। इस प्रकार तीन दिन बीत गये। इस बीचमें ऋषिनिवेदकने आकर रामचन्द्रसे निवेदन किया कि आपके पुण्योदयसे महेन्द्र उद्यानमें

१. प फ श 'तथाहि' नास्ति, ब-प्रतौ त्वस्ति। २. फ महाप्रसाद !। ३. श कवलपानीयं।

स्थितमिति। निधानं प्राप्तनिर्धना[1] इव हृष्टाः सपरिजनेन वन्दितुं गताः। वन्दित्वा स्वकोष्ठे उपविष्टाः। पदार्थावबोधनान्तरं भगवान् पद्मेन पृष्टः— भरतसंत्रासानन्तरं[2] त्रिजगद्भूषणस्य कोपाकरणे कवलादिपरिहरे[3] किं कारणमिति। भगवतोक्तं[4]— जातिस्मरणम्। तर्हि भवसंबन्धिनिरूपणे[5] महाप्रसादः। मुनिरुभयोर्भवान्तरमाह—

अस्यामयोध्यायां क्षत्रियसुप्रभप्रह्लादिन्योरपत्ये सूर्योदयचन्द्रोदयौ जातौ। सह वृषभस्वामिना प्रव्रजितौ[6] मरीचिना सह नष्टौ। बहुभयान् तिर्यग्गतौ परिभ्रम्य कुरुजङ्गलदेशे हस्तिनापुरेशहरिपतिमनोहर्योश्चन्द्रोदयः कुलंकरनामा पुत्रोऽभूत्। श्रीदामानाम्नीं राजपुत्रीं परिणीतवान्। तत्प्रधानविश्वावस्वग्निकान्त्योः[7] सूर्योदयो मूढश्रुतिनामा[8] पुत्रोऽभूत्। कुलंकरो राज्ये, इतरः प्राधान्ये स्थितः। एकदा तापसान् पूजयितुं गच्छता कुलंकरेणाभिनन्दनभट्टारकानभिवन्द्य धर्ममाकर्ण्य व्रतानि गृहीतानि। मुनिनोक्तम्— शृणु वृत्तान्तमेकम्। तव पितामहो रगस्यनामा[9] तापसत्वेन मृत्वा तापसाश्रमसमीपे शुष्ककाष्ठकोटरे सर्पत्वमापन्नः, इति निरूपिते तं च तथाविधमवलोक्य दृढव्रती बभूव। तानि च दृढव्रतानि मूढश्रुतिना नाशितानि। तावुभौ

देशभूषण केवलीका समवसरण (गन्धकुटी) स्थित है। यह सुनकर जैसे निर्धन मनुष्य अकस्मात् निधिको पाकर हर्षित होते हैं वैसे ही वे सब हर्षको प्राप्त हुए। उन्होंने परिवारके साथ जाकर केवलीकी वन्दना की। पश्चात् वे अपने कोठेमें बैठ गये। धर्मश्रवणके पश्चात् रामचन्द्रने पूछा कि हे भगवन्! भरतसे पीड़ित होकर त्रिलोकमण्डन हाथीने क्रोधके परित्यागके साथ ही भोजन-पानादिका भी परित्याग किस कारणसे किया है। भगवान् बोले— उसने जातिस्मरणके कारण वैसा किया है। यह सुनकर रामचन्द्रने प्रार्थना की कि भगवन्! तब तो मुझे उसके भवोंके निरूपण करनेकी कृपा कीजिए। तब मुनिने उन दोनोंके भवोंका निरूपण इस प्रकार किया—

इसी अयोध्यापुरीमें क्षत्रिय सुप्रभ और उसकी पत्नी प्रह्लादिनीके सूर्योदय और चन्द्रोदय नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। वे दोनों वृषभ जिनेन्द्रके साथ दीक्षित होकर मरीचिके साथ भ्रष्ट हो गये। इस कारण उन्होंने बहुत भवों तक तिर्यंच गतिमें परिभ्रमण किया। तत्पश्चात् उनमेंसे चन्द्रोदय कुरुजांगल देशके भीतर हस्तिनापुरके स्वामी हरिपति और उसकी पत्नी मनोहरीके कुलंकर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका विवाह श्रीदामा नामकी राजपुत्रीके साथ सम्पन्न हुआ। उक्त राजाके जो विश्वावसु नामक प्रधान था उसकी पत्नीका नाम अग्निकान्ति (अग्निकुण्डा) था। सूर्योदय इन दोनोंके मूढश्रुति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुलंकर राजपदपर और दूसरा (मूलश्रुति) प्रधानके पदपर प्रतिष्ठित हुआ। एक समय कुलंकर तापसोंकी पूजा करने जा रहा था। मार्गमें उसे अभिनन्दन भट्टारकके दर्शन हुए। उसने वन्दनापूर्वक उनसे धर्मश्रवण करके व्रतोंको ग्रहण किया। मुनिने उससे कहा कि एक वृत्तान्त सुनो— तुम्हारा रगस्य(?) नामका पितामह तापस स्वरूपसे मरकर तापसोंके आश्रमके समीपमें सूखे काष्ठके कोटरमें सर्प पर्यायको प्राप्त हुआ है। इस वृत्तान्तको सुनकर कुलंकर वहाँ गया और उसने अपने पितामहको मुनिके कहे अनुसार ही वहाँ सर्प पर्यायमें देखा। इससे वह ग्रहण किये हुए अपने व्रतोंमें अधिक दृढ़ताको प्राप्त हुआ। उसके

१. ब प्राप्तानिर्द्धना। २. फ पृष्टेर्भरतसंत्रासनंतरा। ३. प श कोपकारणे कवलादिपरिहारेण, ब कोपकारणे कवलादिपरहारे। ४. फ भगवानोक्तं। ५. फ ०मंबंधिनिरूपने मे महा०। ६. ब प्राप्रजितौ। ७. ब विश्ववस्वग्निकाडयोः। ८. मूलश्रुति०। ९. प श महोरगस्यनामा, फ ०महोरेम्यनामा ब ०महोरगम्यनामा।

जारासक्तया श्रीदामया मारितौ। शशकनकुलौ मूषकमयूरौ सर्पसारंगौ गजदर्दुरौ [जातौ]। तद्गजपादेन मृत्वा वारत्रयं दर्दुरो दर्दुर एव जातः। तद्गजपादेनैव[1] मृत्वा कुर्कुटको [कुक्कुटोऽ] भूत्। गजो मार्जारो जातः। अनन्तरं कुर्कटो[2] जातः। कुर्कटकः[3] काकैर्भक्षितो मृत्वा शिशुमारोऽभूत्। कुक्कर्कटो[4] मत्स्य-इत्यादिषु भ्रमित्वा राजगृहे विप्रवह्वाश-उलूकयोः[5] मूढश्रुतिरागत्य विनोदनामा पुत्रोऽभूत्। इतरस्तदनुजो रमणः। स च विद्यार्थी देशान्तरं गतः। विद्यापारगो भूत्वागत्य रात्रौ स्वपुरं प्राप्य यक्षागारे स्थितः। नारायणदत्तजारासक्ता[6] विनोदभार्या समिधा संकेतवशात्तत्रागत्य तेन सह जल्पन्ती स्थिता। तत्पृष्ठतः आगतेन विनोदेन अयमेव जार इति स्वभ्राता हतः। सा स्वगृहमानीता। तया सोऽपि हतः। चतुर्गतिं परिभ्रम्यैकदा महिषौ भिल्लौ[7] [महिष-भल्लौ] अग्निना मृतौ भिल्लौ तदनु हरिणौ जातौ। तयोर्माता वनचरेण मारिता। तौ जीवन्तौ धृत्वा नीतौ पोषितौ वृद्धिं गतौ विमलनाथसर्वज्ञं वन्दित्वागच्छता स्वयंभूतिनार्धराजेन[8] द्रव्यं दत्त्वा स्वगृहमानीतौ। देवतागृहार्चननिकटे बद्धौ। तत्र रमणचरो हरिण उपशान्तचेतसा मृत्वा दिवं गतः। इतरस्तिर्यग्गतौ भ्रान्त्वा पल्लवदेशकाम्पिल्ये धनदत्त-

उन दृढ़ व्रतोंको मूढश्रुतिने नष्ट करा दिया। उन दोनोंको जार पुरुषमें आसक्त होकर श्रीदामाने मार डाला। इस प्रकार मर करके वे क्रमसे खरगोश और नेवला, चूहा और मयूर, सर्प और सारंग (हरिण) तथा हाथी और मेंढक हुए। मेंढक उस हाथीके पैरके नीचे दबकर मरा और तीन बार मेंढक ही हुआ। फिर वह उस हाथीके पैरसे ही मरकर मुर्गा हुआ और वह हाथी बिलाव हुआ। तत्पश्चात् वह केंकड़ा हुआ। उस केंकड़ेको कौओंने खा डाला। इस प्रकारसे मरकर वह (मूढ़श्रुति) शिशुमार (हिंस्र जलजन्तु) हुआ। और कुर्कट मत्स्य हुआ। इस प्रकारसे परिभ्रमण करके मूढश्रुतिका जीव राजगृह नगरमें ब्राह्मण बह्वाश और उसकी पत्नी उलूका (उल्का) इनके विनोद नामक पुत्र हुआ। दूसरा (कुलंकर) रमण नामक उसका लघु भ्राता हुआ। वह (रमण) विद्याध्ययनकी इच्छासे देशान्तरमें जाकर विद्याका पारगामी (अतिशय विद्वान्) हुआ। तत्पश्चात् वह देशान्तरसे वापिस आकर रात्रिमें अपने नगरके पास किसी यक्ष मन्दिरमें ठहर गया। इसी समय विनोदकी पत्नी समिधा नारायणदत्त जारमें आसक्त होकर संकेतके अनुसार वहाँ आई और उससे वार्तालाप करती हुई स्थित हो गई। उसके पीछे उसका पति विनोद भी वहाँ आया। उसने 'यही जार है' ऐसा समझ करके अपने भाईको मार डाला। पश्चात् वह उसे (पत्नीको) घर लाया। पत्नीने उसे (विनोदको) भी मार डाला। पश्चात् वे दोनों (विनोद और रमण) चारों गतियोंमें परिभ्रमण करते हुए भैंसा और भील [भालु] हुए जो अग्निमें जलकर मरणको प्राप्त हुए। फिर वे भील तत्पश्चात् हरिण हुए। उनकी माताको भीलने मार डाला था, परन्तु इन दोनोंको वह जीवित ही पकड़कर घर ले गया था। उसने इन दोनोंका पोषण करके वृद्धिंगत किया। एक समय स्वयंभूति राजा विमलनाथ जिनेन्द्रकी वन्दना करके वापिस आ रहा था। उसने इन्हें देखा और तब वह भीलको धन देकर उन्हें अपने घर ले आया। उसने उन्हें देवालयार्चनके निकट बाँध दिया। वहाँ भूतपूर्व रमणका जीव हिरण शान्तचित्त होकर मरणको प्राप्त हुआ और स्वर्गमें गया। दूसरा (विनोदका जीव) तिर्यंचगतिमें परिभ्रमण करके पल्लव देशके अन्तर्गत काम्पिल्य नगरमें धनदत्त

१. प ब श 'तद्गजपादेन''''मार्जारो जातः' इत्येतावान् पाठो नोपलभ्यते। २. प कर्कटो, फ ब कक्कूटो कुर्कुटो, श कुर्कटो। ३. प कर्कटकः, फ कर्कुटकः, ब कक्कूटकः श. कुक्कटकः। ४. ब कुर्क्कुटो। ५. फ विप्रबह्वासनुलकयोः। ६. श नारायणदत्ताजाराशक्ता। ७. क महिषो भिल्लंछो, श महिषो भिलो। ८. फ °नाथराजेन।

नामा वणिग्भूत्, तद्भार्या धारिणी, तयोः स स्वर्गादागत्य भूषणनामा पुत्रोऽभूत्। तस्य च मुनिदर्शनतपश्चरणादेशभयात्पित्राष्टादशकोटिद्रव्येश्वरेण सर्वतोभद्रमाटे स्थापितः। स कुमार इव तत्र तिष्ठति स्म। श्रीधरभट्टारककेवलपूजार्थं जातदेवागमं दृष्ट्वा जातिस्मरो भूत्वा गूढवेषेण निर्गत्य समवसरणं[2] गच्छन् श्रान्तो मध्ये उपविष्टः। तच्छरीरसौगन्ध्यासक्त्यागतेन[3] सर्पेण भक्षितो मृत्वा माहेन्द्रं[4] गतः। पिता तिर्यग्गतिसमुद्रं प्रविष्टः।

माहेन्द्रादागत्य[5] पुष्करार्धद्वीपे चन्द्रादित्यपुरेशप्रकाशयशोमाधव्योर्जगद्द्युतिनामा पुत्रो जातः। सत्पात्रदानेन देवकुरुषूत्पन्नः। ततः स्वर्गे जातः। तस्मादागत्य जम्बूद्वीपापरविदेहनन्द्यावर्तपुरेशसकलचक्रवर्त्यचलवाहनहरिण्योः अभिरामनामा पुत्रो जातः। चतुःसहस्रान्तःपुराधीशोऽपि विरागो पित्रा तपश्चरणे निषिद्धोऽपि गृहे दुर्द्धरमणुव्रतं परिपाल्य ब्रह्मोत्तरे जातः। स धनदत्तः भ्रान्त्वा पोदने[6] वैश्य-अग्निमुखशकुनयोर्मृदुमतिपुत्रो जातः। स च न पठति सप्तव्यसनाभिभूतश्च जनोद्दाहात्पित्रा[7] निःसारितः। देशान्तरे पठितो युवा च भूत्वागत्य देशिकवेषेण गृहं प्रविष्टः। पानीयं पाययन्त्या मात्रा रुदितम्। तेन किं कारणमिति पृष्टया तव सदृशः[8]

नामका वैश्य हुआ। इसकी पत्नीका नाम धारिणी (वारुणी) था। इन दोनोंके वह (रमणका जीव देव) आकर भूषण नामक पुत्र हुआ। उसके पिताने— जो कि अठारह करोड़ द्रव्यका स्वामी था —उसे मुनिदर्शन और तपश्चरणके आदेशके भयसे सर्वतोभद्र माटपर स्थापित किया। वह कुमारके समान वहाँ स्थित रहा। किसी समय उसने श्रीधर भट्टारकके केवलज्ञानकी पूजाके निमित्त जाते हुए देवोंको देखा। इससे उसे जातिस्मरण हो गया। वह गुप्तरूपसे निकलकर समवसरणको जा रहा था कि थककर बीचमें बैठ गया। उसके शरीरकी सुगन्धिमें आसक्त होकर एक सर्प वहाँ आया और उसने उसे काट लिया। वह मरकर माहेन्द्र स्वर्गमें गया। उसका पिता धनदत्त तिर्यंच-गतिरूप समुद्रमें प्रविष्ट हुआ।

तत्पश्चात् माहेन्द्र स्वर्गसे आकर वह पुष्करार्ध द्वीपके भीतर चन्द्रादित्यपुरके अधिपति प्रकाशयश और उसकी पत्नी माधवीके जगद्द्युति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर वह सत्पात्रदानके प्रभावसे देवकुरु (उत्तम भोगभूमिमें) और तत्पश्चात् स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। वहाँसे च्युत होकर जम्बूद्वीपके अपरविदेहगत नन्द्यावर्त पुरके अधीश्वर सकल चक्रवर्ती अचलवाहन और रानी हरिणीके अभिराम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह चार हजार (४०००) स्त्रियोंका स्वामी होकर भी विरक्त रहा। उसे तपश्चरणके लिए पिताने रोक दिया था, इसीलिए वह घरमें रहकर ही दुर्धर अणुव्रतका परिपालन करता हुआ ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देव हुआ। वह धनदत्तका जीव परिभ्रमण करके पोदनपुरमें वैश्य अग्निमुख और शकुनाके मृदुमति नामक पुत्र हुआ। उसने सात व्यसनोंमें आसक्त होकर कुछ पढ़ा नहीं था। लोगोंके उलाहनोंसे संतप्त होकर पिताने उसे घरसे निकाल दिया। तब देशान्तरमें जाकर उसने विद्याध्ययन किया। अब वह युवा हो गया था। वह पथिकके वेशमें आकर घरके भीतर प्रविष्ट हुआ। उसकी माँ उसे पानी पिलाते हुए रो पड़ी। उसने उसके रोनेका कारण पूछा। उत्तरमें उसने कहा कि तुम्हारे समान मेरा एक पुत्र देशान्तरमें गया है। 'वह मैं ही हूँ' इस प्रकार

१. क ०दर्शनात्तप०। २. फ समवसृतिं। ३. क सौगंध्यासक्तागतेन। ४. ब महेन्द्रं। ५. ब महेन्द्रादागत्य। ६. ब पौदने। ७. ब जनोद्दाहात्०। ८. ब भवादृशः।

पुत्रैको देशान्तरं गतः। तेनाहमेवेत्युक्त्वा प्रत्यये पूरिते पित्रा द्वात्रिंशत्कोटिद्रव्यस्य स्वामी कृतः। तद्द्रव्यं वसन्त-अमरारमणाभ्यां[1] च वेश्याभ्यां भक्षितम्। तदनुचौर्येण प्रवर्तते[2] स्म। एकदा शशाङ्कपुरं गतः। एकस्यां रात्री राजभवनं प्रविश्य शय्यागृहं प्रविष्टः। तस्मिन्नेव दिने तदधीशनन्दिवर्धनराजेन शशाङ्कमुखभट्टारकपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य विरक्तेन रात्री राज्ञी प्रतिबोध्यते—प्रातर्मया तपश्चरणं गृह्यते, त्वया दुःखं न कर्तव्यमिति। तदाकर्ण्य मृदुमतिरपि प्रव्रजितः। द्वादशे वर्षे एकाकी[3] विहर्तुं लग्नः।

प्रस्तावेऽत्रापरं वृत्तान्तम्। आलोकनगरे बाह्यपर्वतस्योपरि गुणसागरभट्टारकः चातुर्मासिकप्रतिमायोगेन स्थितः। प्रतिज्ञासमाप्तौ देवागमे पुराश्चर्यं जातम्। गगनेन[4] गतो भट्टारको जनैर्न दृष्टः। चर्यार्थमागतं मृदुमतिं दृष्ट्वा अयमेव स इति पूजितः। सोऽपि मौनेन स्थितः। अस्मिन्नवसरे तिर्यग्गतिनामकर्मोपार्ज्य ब्रह्मोत्तरं गतः। तत्रोभयोर्मेलापकः स्नेहश्च जातः। तस्मादागत्याभिरामो भरतोऽभूदितरो हस्तीति जातिस्मरणकारणं श्रुत्वा साश्चर्यो वैराग्यपरायणो भूत्वा भरतो रामादिभिः क्षमितव्यं विधाय प्रव्रजितवान्। केकय्यपि[5] त्रिशतराजपुत्रीभिः पृथिवीमत्यर्यिकानिकटे दीक्षिता। गजोऽपि विशिष्टं श्रावकधर्मं गृहीतवान्, देशमध्ये परिभ्रमन् प्रासुकाहारं जलं च गृहीत्वा दुर्धरानुष्ठानं कृत्वा

कहकर जब उसने इस बातका विश्वास करा दिया तब पिताने उसे बत्तीस करोड़ द्रव्यका स्वामी बना दिया। उस सब द्रव्यको वसन्तरमणा और अमररमणा नामकी दो वेश्याओंने खा डाला। तत्पश्चात् वह चोरी करनेमें प्रवृत्त हो गया। किसी एक दिन वह शशांकपुरमें जाकर राजभवनके शयन-गृहमें प्रविष्ट हुआ। उसी दिन उक्त पुरका स्वामी नन्दिवर्धन राजा शशांकमुख भट्टारकके पासमें धर्मको सुनकर विषय-भोगोंसे विरक्त होता हुआ रात्रिमें रानीको समझा रहा था कि मैं कल प्रातःकालमें जिन-दीक्षाको ग्रहण करूँगा, तुम्हें इसके लिए दुखी नहीं होना चाहिए। इसको सुनकर मृदुमति भी विरक्त होकर दीक्षित हो गया। वह बारहवें वर्षमें एकाकी विहारमें संलग्न हुआ।

इस बीचमें यहाँ एक दूसरी घटना घटित हुई— आलोक नगरमें बाह्य पर्वतके ऊपर गुणसागर भट्टारक चातुर्मासिक प्रतिमायोगसे स्थित थे। प्रतिज्ञा (चातुर्मास) की समाप्ति होनेपर देवोंके आनेसे नगरमें आश्चर्य हुआ। गुणसागर मुनीन्द्र आकाश-मार्गसे विहार कर गये थे। इसलिए वे लोगोंके देखनेमें नहीं आये। इसी समय वहाँ मृदुमति आहारके निमित्त आये। उनको देखकर लोगोंने यह समझकर कि ये वे ही मुनीन्द्र हैं उनकी पूजा की। वे भी मौनपूर्वक स्थित रहे। इससे वे तिर्यग्गति नामकर्मको उपार्जित करके ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें गये। वहाँ परस्पर मिलकर उन दोनोंमें स्नेह उत्पन्न हुआ। वहाँसे आकर अभिरामका जीव भरत और दूसरा (मृदुमति) हाथी हुआ है। इस प्रकार हाथीके जातिस्मरणके कारणको सुनकर आश्चर्यको प्राप्त हुए भरतको बहुत वैराग्य हुआ। उसने रामचन्द्रादिसे क्षमा-याचना करके दीक्षा ले ली। केकयी भी तीन सौ राजपुत्रियोंके साथ पृथ्वीमती आर्यिकाके निकटमें दीक्षित हो गई। हाथीने भी विशिष्ट श्रावकधर्मको ग्रहण किया। वह देशमें परिभ्रमण करता हुआ प्रासुक आहार और जलको लेता था। इस प्रकारसे वह दुर्धर अनुष्ठानको करके ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें गया। उस देशमें रहनेवाले मनुष्य 'यह देव

१. प ब श वसंतडमरा०। २. फ चौर्येऽप्यप्रवर्त्तते, ब चौर्येण प्रवर्त्तति। ३. प श ०वर्षे एकाकी फ० ०वर्षेरेकाकी। ४. फ गगने। ५. फ कैकापि, प कैकय्यपि, श कैकयापि।

प्रश्नोत्तरं गतः। तद्देशवर्तिनो जना देवोऽयमेतन्माहात्म्याद्रोगादिकमस्मिन् देशे न जातमिति तद्बिम्बं विधाय पूजयितुं लग्नाः। स विनायकोऽभूत् भरतभट्टारकः संयमफलेन चारणाद्यनेकर्द्धिसंयुक्तो विहृत्य केवलमुत्पाद्य निर्वाणं गतः इति भूषणो यदि जिनपूजनचेतसैवंविधं विभवं लभयते[1] स्म नित्यं जिनपूजकस्य किं प्रष्टव्यमिति ॥५॥

[६]

गोपो विवेकविकलो मलिनोऽशुचिश्च
राजा बभूव सुगुणः[2] करकण्डुनामा।
दृष्ट्वा जिनं भवहरं स सरोजकेन
नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥६॥

अस्य वृत्तस्य कथा[3] श्रेणिकस्य गौतमस्वामिना यथा कथिताचार्यपरम्परयागता[4] संक्षेपेण कथ्यते। अत्रैवार्यखण्डे कुन्तलविषये तेरपुरे[5] राजानौ नीलमहानीलौ जातौ। श्रेष्ठी वसुमित्रो भार्या वसुमती तद्गोपालो धनदत्तः। तेनैकदाटव्यां भ्रमता सरसि सहस्रदलकमलं दृष्टं गृहीतं च। तदा नागकन्या प्रकटीभूय तं वदति सर्वाधिकस्येदं प्रयच्छेति। तदनु स कमलेन सह गृहमागत्य श्रेष्ठिनं तद्वृत्तान्तं निरूपितवान्। तेन राज्ञो भाषितम्। राज्ञा गोपालेन श्रेष्ठिना च सह सहस्रकूटजिनालयं गत्वा जिनमभिवन्द्य सुगुप्तमुनिं च ततो [राज्ञा] पृष्टो मुनिः कः सर्वोत्कृष्टः इति। तेन जिनो निरूपितः। श्रुत्वा गोपालो जिनाग्रे स्थित्वा हे सर्वोत्कृष्ट, कमलं गृहाणेति देवस्योपरि निक्षिप्य गतः।

है, इसके माहात्म्यसे इस देशमें रोगादि नहीं उत्पन्न हुए हैं' ऐसा मानकर उसकी मूर्ति बनाकर पूजामें तत्पर हो गये। वह विनायक (गणेश) हुआ। भरत भट्टारक संयमके प्रभावसे चारण आदि अनेक ऋद्धियोंसे सम्पन्न होते हुए केवलज्ञानको उत्पन्न करके मुक्तिको प्राप्त हुए। इस प्रकार भूषणने जब जिनपूजामें मन लगाकर इस प्रकारके विभवको प्राप्त किया तब जिनभगवान्की पूजा करनेवाले श्रावकका क्या पूछना है ? वह तो महाविभवको प्राप्त करेगा ही ॥५॥

वह विवेकसे रहित ग्वाला मलिन और अपवित्र होकर भी कमल पुष्पके द्वारा संसारके नाशक जिन भगवान्की पूजा करके उत्तम गुणोंसे युक्त करकण्डु नामक राजा हुआ है। इसलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभुकी पूजा करता हूँ ॥६॥

गौतम स्वामीने इस कथाको जिस प्रकार श्रेणिकके लिए कहा था उसी प्रकार आचार्यपरम्परासे आई हुई उसको यहाँ मैं संक्षेपसे कहता हूँ। इसी आर्यखण्डके भीतर कुन्तल देशमें स्थित तेरपुरमें नील और महानील नामक दो राजा थे। वहाँ वसुमित्र नामका एक सेठ था। उसकी पत्नीका नाम वसुमती था। उसके धनदत्त नामका एक ग्वाला था। एक समय उस ग्वालाने वनमें घूमते हुए तालाबमें सहस्रदल कमलको देखकर उसे ले लिया। तब नागकन्याने प्रगट होकर उससे कहा कि जो सबसे अधिक हो उसके लिए यह कमल देना। तत्पश्चात् उसने कमलके साथ घर आकर इस वृत्तान्तको सेठसे कहा। सेठने उस वृत्तान्तको राजासे कहा। तब राजाने सेठ और ग्वालाके साथ सहस्रकूट जिनालयमें जाकर जिन भगवान्की और तत्पश्चात् सुगुप्त मुनिकी वंदना की। पश्चात् राजाने मुनिसे पूछा कि हे साधो! लोकमें सर्वश्रेष्ठ कौन है। मुनिने कहा कि सर्वश्रेष्ठ जिन

१. श लभ्यते। २. फ ब सगुण.। ३. ब अतोऽग्रे 'तद्यथा' इत्येतदधिकं पदमस्ति। ४. ब -प्रतिपाठोऽयम्। प, श परंपरायामागता, फ परंपरायागतो। ५. श भेरपुरे।

अत्रापरं वृत्तान्तम् । तथाहि— श्रावस्तिपुर्यां श्रेष्ठी सागरदत्तो भार्या नागदत्ता । द्विजसोमशर्मणोऽनुरक्तां तां ज्ञात्वा श्रेष्ठी दीक्षितो दिवं गतः । तस्मादागत्याङ्गदेशे चम्पायां राजा वसुपालो देवी वसुमती, तयोः पुत्रो दन्तिवाहननामा जातः । एवं स वसुपालो यावत्सुखेनास्ते तावत्कलिङ्गदेशे दन्तिपुरे[1] राजा बलवाहनस्तेन[2] यः सोमशर्मा जारो मृत्वा[3] भ्रान्त्वा तत्र कलिङ्गदेशे दन्तिपुराटव्यां नर्मदातिलकनामा हस्ती जातः स बलवाहनेन[4] धृत्वा वसुपालाय प्रेषितः । स तत्र तिष्ठति । सा नागदत्ता मृत्वा भ्रमित्वा च ताम्रलिप्तनगर्यां वणिग्[5] वसुदत्तस्य भार्या नागदत्ता जाता । सा द्वे सुते लेभे धनवतीं[6] धनश्रियं च । धनवती नागालन्दपुरे[7] वैश्यधनदत्तधनमित्रयोः पुत्रेण धनपालेन परिणीता । धनश्रीर्वत्सदेशे[8] कौशाम्बीपुरे वसुपालवसुमत्योः पुत्रेण श्रेष्ठिना वसुमित्रेण परिणीता, तत्संसर्गेण जैनी बभूव । नागदत्ता पुत्रीमोहेन धनश्रीसमीपं गता । तया मुनिसमीपं नीता, अणुव्रतानि ग्राहिता[9] । ततो बृहत्पुत्रीसमीपं गता । तया बौद्धभक्ता कृता । लब्ध्या[10] वारत्रयमणुव्रतानि ग्राहिता । धनवत्या नाशितानि । चतुर्थवारे दृढा बभूव । कालान्तरे मृत्वा तत्कौशाम्बीशवसुपालवसुमत्योः पुत्री जाता । कुदिने जातेति मञ्जूषायां स्वनामाङ्कितमुद्रिकादिभिर्निक्षिप्य यमुनायां प्रवाहितां गङ्गां मिलित्वा पद्मद्रहे

हैं। इसे सुनकर ग्वालाने जिन भगवान्‌के आगे स्थित होकर 'हे सर्वोत्कृष्ट ! इस कमलको ग्रहण कीजिए' ऐसा निवेदन करते हुए उसे जिन भगवान्‌के ऊपर रख दिया और वहाँसे वापिस चला गया।

यहाँ दूसरा एक वृत्तान्त घटित हुआ । वह इस प्रकार है— श्रावस्तीपुरीमें एक सागरदत्त नामक सेठ था । इसकी पत्नीका नाम नागदत्ता था । वह सोमशर्मा नामक ब्राह्मणसे अनुराग रखती थी । इस बातको ज्ञात करके सेठने जिनदीक्षा ले ली । वह मरकर स्वर्गमें देव हुआ । वहाँसे आकर वह चम्पापुरीमें राजा वसुपालके वसुमती रानीसे दन्तिवाहन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । इस प्रकारसे वह वसुपाल राजा जब तक सुखपूर्वक स्थित है तब तक कलिंग देशके भीतर स्थित दन्तिपुरके राजा बलवाहनने नर्मदातिलक नामक जिस हाथीको पकड़कर उपर्युक्त वसुपाल राजाके लिए भेंट किया था वह नागदत्ताका जार (उपपति) सोमशर्मा ब्राह्मण था जो मर करके परिभ्रमण करता हुआ उस कलिंग देशके अन्तर्गत दन्तिपुरके गहन वनमें इस हाथीकी पर्यायमें उत्पन्न हुआ था । वह हाथी वसुपाल राजाके यहाँ स्थित था । वह नागदत्ता मर करके संसारमें परिभ्रमण करती हुई ताम्रलिप्त नगरीमें वैश्य वसुदत्तकी पत्नी नागदत्ता हुई। उसके धनवती और धनश्री नामकी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। उनमें धनवतीका विवाह नागालन्दपुरवासी वैश्य धनदत्त और उसकी पत्नी धनमित्राके पुत्र धनपालके साथ सम्पन्न हुआ तथा दूसरी धनश्रीका विवाह वत्स देशके अन्तर्गत कौशाम्बीपुरके निवासी वसुपाल और वसुमतीके पुत्र सेठ वसुमित्रके साथ सम्पन्न हुआ था । उसके संसर्गसे वह (धनश्री) जैन धर्मका पालन करनेवाली हो गई । नागदत्ता पुत्रीके मोहसे धनश्रीके पास गई । धनश्री उसे मुनिके समीप ले गई । वहाँ उसने उसको अणुव्रत ग्रहण करा दिये । तत्पश्चात् वह बड़ी पुत्रीके पास गई । उसने (बड़ी पुत्रीने) उसे बौद्धभक्त बना दिया । छोटी पुत्रीने उसे तीन बार अणुव्रत ग्रहण कराये, परन्तु धनवतीने उन्हें नष्ट करा दिया । चौथी बार वह अणुव्रतोंमें दृढ़ होती हुई कालान्तरमें मरणको प्राप्त होकर कौशाम्बी नगरीके स्वामी वसुपाल और रानी वसुमती-

---

१ ब दन्तपुरे । २. प श बलवाहनः अपुत्रीकस्तेन । ३. फ मारयित्वा । ब अतोऽग्रेऽग्रिम 'मृत्वा' पदपर्यन्तः पाठः स्खलितोऽस्ति । ४. प बलवाहने, श बलवाहनो । ५. श वणिज । ६. श धनवति । ७. फ नागनंदपुर । ८. प श धनश्री वत्स० । ९. फ गृहीतानि । १०. प श लब्वी ।

पतितां कुसुमपुरे कुसुमदत्तमालाकारेण दृष्ट्वा स्वगृहमानीय स्ववनिताकुसुममालायाः समर्पिता। तया च पद्मद्रहे लब्धेति पद्मावतीसंज्ञया वर्धिता । युवतिर्जाता। केनचिद्दन्तिवाहनस्य तत्स्वरूपं कथितम्। तेन तत्र गत्वा तद्रूपं दृष्ट्वा मालाकारः पृष्टः— सत्यं कथय कस्येयं पुत्रीति। तेन तदग्रे निक्षिप्ता मञ्जूषा। तत्रस्थितनामाङ्कितमुद्रादिकं वीक्ष्य तज्जातिं ज्ञात्वा परिणीता। स्वपुरमानीतातिवल्लभा जाता। कियत्काले गते तत्पिता स्वशिरसि पलितमालोक्य तस्मै राज्यं दत्त्वा तपसा दिवं गतः।

पद्मावती चतुर्थस्नानानन्तरं स्ववल्लभेन सह सुप्ता स्वप्ने सिंहगजादित्यान् स्वप्नानद्राक्षीत्। राज्ञः स्वप्ने निरूपिते तेनोक्तम्— सिंहदर्शनात्प्रतापी गजदर्शनात्क्षत्रियमुख्यो रविदर्शनात्प्रजाम्भोजसुखाकरः पुत्रो भविष्यतीति। संतुष्टा सुखेन स्थिता। इतस्तेरपुरे स[1] गोपालः सशैवलद्रहे[2] तरितुं प्रविष्टः सन् शेवालेन[3] वेष्टितो मृत्वा पद्मावतीगर्भे स्थितः। तन्मृतिं परिज्ञाय संस्कार्य श्रेष्ठी सुगुप्तमुनिनिकटे तपसा दिवं गतः। इतः पद्मावत्या दोहलको जातः। कथम्। मेघाडम्बरे चपलाकुले वृष्टौ सत्यां स्वयमङ्कुशं गृहीत्वा पुरुषवेषेण द्विपं चटित्वा पृष्ठे राजानं

की पुत्री हुई। उसे कुदिनमें (अशुभ मुहूर्तमें) उत्पन्न हुई जानकर अपने नामकी मुद्रिका आदिके साथ पेटीमें रक्खा और यमुनाके प्रवाहमें बहा दिया था। वह गंगाके प्रवाहमें पड़कर पद्मद्रहमें जा गिरी। उसे देखकर कुसुमपुरमें रहनेवाला कुसुमदत्त नामक माली अपने घरपर ले आया और अपनी पत्नी कुसुममालाको सौंप दिया। वह चूँकि पद्मद्रहमें प्राप्त हुई थी अतएव कुसुममालाने उसको पद्मावती नाम रखकर वृद्धिंगत किया। वह कुछ समयमें युवती हो गई। किसी मनुष्यने दन्तिवाहन राजासे उसके रूपकी चर्चा की। राजाने वहाँ जाकर उसके सुन्दर रूपको देखा। उसने मालीसे पूछा कि यह पुत्री किसकी है, सत्य बतलाओ। मालीने राजाके सामने वह पेटी रख दी। उसने पेटीमें स्थित नामांकित मुद्रिका आदिको देखकर और इससे उसके जन्मविषयक वृत्तान्तको जानकर उसके साथ विवाह कर लिया। वह उसे अपने नगरमें ले आया। उक्त पद्मावती राजाके लिए अतिशय प्यारी हुई। कुछ समय बीतनेपर दन्तिवाहनका पिता अपने शिरपर श्वेत बालको देखकर विरक्त हो गया। उसने दन्तिवाहनको राज्य देकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वह मरकर तपके प्रभावसे स्वर्गमें जाकर देव हुआ।

पद्मावती चतुर्थस्नानके पश्चात् अपने पतिके साथ सोयी थी। उसने स्वप्नमें सिंह, हाथी और सूर्यको देखा। तत्पश्चात् उसने इन स्वप्नोंके सम्बन्धमें राजासे निवेदन किया। राजाने कहा— देवि ! तेरे सिंहके देखनेसे प्रतापी, हाथीके अवलोकनसे क्षत्रियोंमें मुख्य और सूर्यके दर्शनसे प्रजाजनोंरूप कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाला पुत्र होगा। इसको सुनकर पद्मावती सन्तुष्ट होकर सुखपूर्वक स्थित हुई। इधर तेरपुरमें वह धनदत्त ग्वाला तैरनेके लिए काई सहित तालाबके भीतर प्रविष्ट हुआ। वह काईसे वेष्टित होकर मृत्युको प्राप्त होता हुआ पद्मावतीके गर्भमें आकर स्थित हुआ। ग्वालाके मरणको जानकर वसुमित्र सेठने उसके मृत शरीरका दाह-संस्कार किया। तत्पश्चात् वह सुगुप्त मुनिके पासमें दीक्षित होकर तपके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्त हुआ। उधर पद्मावतीको यह दोहल (सातवें मासमें होनेवाली इच्छा) उत्पन्न हुआ कि जब आकाश मेघोंसे व्याप्त हो, बिजली चमक रही हो, तथा वृष्टि भी हो रही हो; ऐसे समयमें मैं स्वयं अंकुशको ग्रहण करके पुरुषके वेषमें हाथीके ऊपर चढ़ूँ और पीछे राजाको बैठाकर दोनों नगरके बाहर भ्रमण करें। उसने

१. श इतस्तेर स। २. प सशिवाल, फ शशिवाल,ब सिवाल, श ससिवाल। ३. फ सेवालेन, ब सैवालेन।

गृहीत्वा पत्तनाद् बहिर्भ्रमाव इति । तत्स्वरूपे राज्ञः कथिते तेन स्वमित्रवायुवेगखेचरेण मेघाडम्बरादिकं कारयित्वा नर्मदातिलकद्विपमलंकृत्वा राज्ञी स्वयं च समारुह्य परिजनेन पुरान्निर्गतौ। स च गजोऽङ्कुशमुल्लङ्घ्य पवनवेगेन गन्तुं लग्नः। सर्वोऽपि जनः स्थितः। महाटव्यां वृक्षशाखामादाय राजा स्थितः। स्वपुरमागत्य हा पद्मावति तव किमभूदिति महाशोकं कृतवान्। विबुधैः संबोधितः।

इतः स हस्ती नानाजनपदानुल्लङ्घ्य दक्षिणं गत्वा श्रान्तो महासरसि प्रविष्टो जलदेवतया समुत्तार्य तटे उपवेशिता सा। अत्रावसरे[1] तत्रागतेन [2]भट्टनाममालाकारेण रुदती संबोधिता— हे भगिनि, एहि मद्गृहमित्युक्ते तयोक्तं 'कस्त्वम्'। तेनोक्तं मालिकोऽहमिति। ततो हस्तिनापुरे स्वगृहे मद्भगिनीयमिति स्थापिता। तस्मिन् क्वापि गते तद्वनितया मारिदत्तया निर्घाटिता पितृवने पुत्रं प्रसूता। तदा मातङ्गेन तस्याः प्रणम्योक्तं—मत्स्वामिनी त्वमिति। तयोक्तं 'कस्त्वम्'। स आह— अत्रैव विजयार्धे दक्षिणश्रेण्यां [3]विद्युत्प्रभपुरेशविद्युत्प्रभविद्युल्लेखयोः सुतोऽहं बालदेवः। स्ववनिताकनकमालया दक्षिणं क्रीडार्थं गच्छतो मम रामगिरौ वीरभट्टारकस्योपरि न गतं[4] विमानम्। क्रुद्धेन मया तस्योपसर्गः कृतः। पद्मावत्या तं निवार्य मम-

इस दोहलकी सूचना राजाको की। तब राजाने अपने मित्र वायुवेग विद्याधरके द्वारा मेघसमूह आदिकी रचना करायी। तत्पश्चात् नर्मदातिलक हाथीको सुसज्जित करके उसके ऊपर रानी और स्वयं भी (दोनों) चढ़कर सेवक जनके साथ नगरके बाहर निकले। वह हाथी अंकुशकी परवाह न करके वायुवेगसे शीघ्र गमनमें उद्यत हुआ। इस कारण सब सेवक जन पीछे रह गये। राजा महावनमें एक वृक्षकी शाखाको पकड़कर स्थित रह गया। पश्चात् वह नगरमें आकर 'हा ! पद्मावती, तेरा क्या हुआ होगा' इस प्रकार पश्चात्ताप करने लगा। तब विद्वानोंने उसे सम्बोधित किया।

इधर वह हाथी अनेक देशोंको लाँघकर दक्षिणकी ओर गया और थककर किसी महा सरोवरके भीतर प्रविष्ट हुआ। उस समय जलदेवताने पद्मावतीको हाथीके ऊपरसे उतारकर तालाबके किनारेपर बैठाया। इस अवसरपर वहाँ एक भट नामक माली आया। उसने रोती हुई देखकर उससे कहा कि हे बहिन ! आ, मेरे घरपर चल। ऐसा कहनेपर पद्मावतीने उससे पूछा कि तुम कौन हो। उसने कहा कि मैं माली हूँ। तत्पश्चात् उसने उसे हस्तिनापुरके भीतर अपने घरमें 'यह मेरी बहिन है' ऐसा कहकर स्थापित किया। पश्चात् मालीके कहीं बाहर जानेपर उसकी पत्नी मारिदत्ताने उसे घरसे निकाल दिया। तब उसने वहाँसे निकलकर और श्मशानमें जाकर पुत्रको उत्पन्न किया। उस समय किसी चण्डालने आकर उसे प्रणाम किया और कहा कि तुम मेरी स्वामिनी हो। पद्मावतीने उससे पूछा कि तुम कौन हो। उत्तरमें उसने कहा कि मैं इसी विजयार्ध पर्वतके ऊपर दक्षिण श्रेणिमें स्थित विद्युत्प्रभ पुरके स्वामी विद्युत्प्रभ और विद्युल्लेखाका बालदेव नामक पुत्र हूँ। मैं अपनी पत्नी कनकमालाके साथ दक्षिणमें क्रीड़ा करनेके लिए जा रहा था। मेरा विमान रामगिरि पर्वतके ऊपर स्थित वीर भट्टारकके ऊपरसे नहीं जा सका। इससे क्रोधित होकर मैंने उक्त वीर भट्टारकके ऊपर उपसर्ग किया। पद्मावती देवीने उसको दूर करके मेरी विद्याओंको नष्ट कर

१. ब -प्रतिपाठोऽयम्, प फ श सा। अवसरे। २. फ ब भट। ३. फ श 'विद्युत्प्रभपुरेश' नास्ति। ४. ब -प्रतिपाठोऽयम्, प फ श उपरितनगत।

विद्याच्छेदः कृतः। तदनु मया सा प्रणम्योपशान्ति नीता। ततो हे स्वामिनि, मम विद्याप्रसादं कुर्वित्युक्ते तयोक्तं— हस्तिनागपुरे पितृवने यं द्रक्ष्यसि[1] बालं तद्राज्ये तव विद्याः सेत्स्यन्ति, याहीत्युक्ते सोऽहं मातङ्गवेषेणेमं रक्षन् स्थित इति। तदनु संतुष्टया बालः समर्पितः, त्वं वर्धयैनमिति। ततस्तेन काञ्चनमालाया समर्पितः। स च करयोः कण्डूयुक्त इति करकण्डुनाम्ना पालयितुं लग्ना। सा पद्मावती गान्धारी या ब्रह्मचारिणी[2] तामाश्रिता। तया सह गत्वा समाधिगुप्तमुनिं[3] दीक्षां याचितवती। तेनाभाणि— न दीक्षाकालः प्रवर्तते। पूर्वं वारत्रयं यद् व्रतं खण्डितं तत्फलेन त्रिर्दुःखमासीत्। तदुपशमे पुत्रराज्यं वीक्ष्य तेन सह तपो भविष्यतीत्युक्ते संतुष्टा पुत्रं विलोक्य ब्रह्मचारिणीनिकटे स्थिता। स बालस्तेन सर्वकलाकुशलः कृतः।

तौ खेचर-करकण्डू पितृवने यावत्तिष्ठतस्तावज्जयभद्र-वीरभद्राचार्यौ समागतौ। तत्र नर-कपाले मुखे लोचनयोश्च वेणुत्रयमुत्पन्नमालोक्य केनचिद्यतिनोक्तमाचार्यं प्रति 'हे नाथ, किमिदं कौतुकम्।' आचार्योऽवदद्योऽत्र राजा भविष्यति तस्याङ्कुशच्छत्रध्वजदण्डाः स्युरिति श्रुत्वा केनचिद्विप्रेणोन्मूलिता। तस्मात्करकण्डुना गृहीताः।

कियद्दिनेषु तत्र बलवाहनो नाम राजाऽपुत्रको मृतः। परिवारेण विधिना हस्ती राज्ञो-

---

दिया। तत्पश्चात् मैंने प्रणाम करके उसे शान्त किया। उससे मैंने प्रार्थना की कि हे देवि! कृपाकर मेरी विद्याओंको मुझे वापिस कर दीजिए। इसपर उसने कहा कि जा, हस्तिनापुरके श्मशानमें तू जिस बालकको देखेगा उसके राज्यमें तेरी विद्याएँ तुझे सिद्ध हो जावेंगी। वही मैं बालदेव विद्याधर चाण्डालके वेषमें इसकी रक्षा करता हुआ यहाँपर स्थित हूँ। उसके यह कहनेपर पद्मावतीने सन्तुष्ट होकर 'इसको तुम वृद्धिंगत करो' कहकर उस बालकको उसे दे दिया। तत्पश्चात् उसने उसे अपनी पत्नी काञ्चनमाला (कनकमाला) को दे दिया। वह बालक चूँकि दोनों हाथोंमें कण्डु (खाज) से संयुक्त था, अतएव उसका करकण्डु नाम रखकर वह भी उसके परिपालनमें संलग्न हो गई। उधर पद्मावती गान्धारी नामकी जो ब्रह्मचारिणी थी उसके आश्रयमें चली गई। पश्चात् उसने उक्त ब्रह्मचारिणीके साथ जाकर समाधिगुप्त मुनिसे दीक्षाकी प्रार्थना की। तब मुनि बोले— अभी दीक्षाका समय नहीं आया है। तुमने जो तीन बार व्रतको खण्डित किया है उसके फलसे तुम्हें तीन बार दुःख हुआ। व्रतभंगसे उत्पन्न पापके उपशान्त होनेपर पुत्रके राज्यको देखकर उसके साथ तेरा तप होगा। इसको सुनकर पद्मावतीको बहुत सन्तोष हुआ। तब वह पुत्रको देखकर ब्रह्मचारिणीके समीपमें स्थित हो गई। बालदेवने उस बालकको समस्त कलाओंमें निपुण कर दिया।

इधर वह विद्याधर और करकण्डु ये दोनों श्मशानमें ही स्थित थे कि वहाँ जयभद्र और वीरभद्र नामक दो आचार्य उपस्थित हुए। वहाँ किसी मनुष्यके कपालमें एक मुखमेंसे और दो दोनों नेत्रोंमेंसे इस प्रकार तीन बाँस उत्पन्न हुए थे। इनको देखकर किसी मुनिने आचार्यसे पूछा कि हे नाथ! यह कौन-सा कौतुक है। आचार्य बोले कि यहाँ जो मनुष्य राजा होगा उसके ये तीन बाँस अंकुश, छत्र और ध्वजाके दण्ड होंगे। इस मुनिवचनको सुनकर किसी ब्राह्मणने उन्हें उखाड़ लिया। उस ब्राह्मणसे उन्हें करकण्डुने ले लिया।

कुछ दिनोंमें वहाँ बलवाहन नामक राजाकी मृत्यु हुई। वह पुत्रसे रहित था। इसलिए

---

१. प यं द्रक्ष्यशि, फ यद्रक्षसि, श यद्रक्ष्यसि। २. फ ब्रह्मचारिणीं। ३. फ श समाधिगुप्ति। ४. फ ततो। ५. प श यावत्तिष्ठतिस्ताव०।

ऽन्वेषणार्थं मुक्तस्तेन च करकण्डुरभिषिच्य स्वशिरसि व्यवस्थापितः। ततः परिजनेन राजा कृतो बालदेवस्य विद्यासिद्धिरभूत्। स तं नत्वा तस्य तन्मातरं समर्प्य विजयार्धं गतः। करकण्डुः प्रतिकूलानुन्मूल्य राज्यं कुर्वन् स्थितः। तत्प्रतापं श्रुत्वा दन्तिवाहनेन तदन्तिकं दूतः प्रेषितः। स गत्वा तं विज्ञप्तवान्—त्वया मत्स्वामिनो दन्तिवाहनस्य भृतिभावेन राज्यं कर्तव्यमिति। कुपित्वा करकण्डुनोक्तम्—रणे यद् भवति तद् भवतु, याहीति विसर्जितः। स स्वयं प्रयाणं दत्त्वा चम्पाबाह्ये स्थितः[1]। दन्तिवाहनोऽप्यतिकौतुकेन सर्वबलान्वितो निर्गतः। उभयबले संनद्धे व्यूहप्रतिव्यूहक्रमेण स्थिते तदवसरे पद्मावती गत्वा स्वभर्तुः स्वरूपं निरूपितवती। ततो गजादुत्तीर्य संमुखमागतः पिता, पुत्रोऽपि। उभयोर्दर्शनं[2] नमस्काराशीर्वाददानं च जातम्। मातापितृभ्यां जगदाश्चर्यविभूत्या [सः] पुरं प्रविष्टः। पित्राष्टसहस्रकन्याभिर्विवाहं स्थापितः। तस्मै राज्यं समर्प्य पद्मावत्या भोगाननुभवन् स्थितो दन्तिवाहनः।

राज्यं कुर्वतस्तस्य मन्त्रिभिरुक्तम्—हे देव, त्वया चेरमपाण्ड्यचोलाः साधनीया इति। ततस्तेषां उपरि गच्छन् तेरपुरे स्थित्वा तदन्तिकं दूतं प्रेषितवान्। तेन गत्वागतेन[3] तदौद्धत्ये विज्ञप्ते[4] रोषात्तत्र गत्वा युद्धावनौ स्थितः। तेऽपि मिलित्वागत्य महायुद्धं चक्रुर्दिनावसाने[5]

परिवारने राजाके अन्वेषणार्थ विधिपूर्वक हाथीको छोड़ा। उसने करकण्डुका अभिषेक करके उसे अपने सिरपर स्थापित किया। तब परिवारने उसे राजा बनाया। उस समय बालदेवकी वे नष्ट विद्याएँ सिद्ध हो गईं। अब बालदेवने उसको नमस्कार करके उसकी माताको समर्पित कर दिया और वह विजयार्धपर चला गया। करकण्डु शत्रुओंको नष्ट करके निष्कण्टक राज्य करने लगा। उसके प्रतापको सुनकर दन्तिवाहनने उसके पास अपने दूतको भेजा। उसने जाकर करकण्डुसे निवेदन किया कि आप हमारे स्वामी दन्तिवाहनके सेवक होकर राज्य करें। इसे सुनकर करकण्डुने क्रोधित होकर दूतसे कहा कि जाओ, युद्धमें जो कुछ होना होगा सो होगा; ऐसा कहकर उसने उस दूतको वापिस कर दिया। साथ ही वह स्वयं प्रस्थान करके चम्पापुरके बाहर पड़ाव डालकर ठहर गया। इधर दन्तिवाहन राजा भी अतिशय कौतूहलके साथ समस्त सेनासे सुसज्जित होकर नगरके बाहर निकल पड़ा। दोनों ओरकी सेनाएँ तैयार होकर व्यूह और प्रतिव्यूहके क्रमसे स्थित हो गईं। इसी समय पद्मावतीने जाकर अपने पतिसे वस्तुस्थितिका निरूपण किया। तब पिता (दन्तिवाहन) हाथीसे नीचे उतरकर पुत्र (करकण्डु)के सामने आया और उधर पुत्र भी पिताके सामने आया। दोनोंमें एक दूसरेको देखकर पुत्रने पिताको प्रणाम किया और पिताने उसको आशीर्वाद दिया। फिर करकण्डु विश्वको आश्चर्यचकित करनेवाली विभूतिसे संयुक्त होकर माता-पिताके साथ पुरमें प्रविष्ट हुआ। पश्चात् पिताने उसका आठ हज़ार कन्याओंके साथ विवाह कराया। फिर दन्तिवाहन उसे राज्य देकर पद्मावतीके साथ भोगोंका अनुभव करने लगा।

इधर करकण्डु जब राज्य करने लगा तब मन्त्रियोंने उससे कहा कि हे देव! आपको चेरम, पाण्ड्य और चोल देशोंको अपने अधीन करना चाहिए। तब वह उनके ऊपर आक्रमण करनेके विचारसे गया और तेरपुरमें ठहर गया। वहाँसे उसने उपर्युक्त राजाओंके पास दूतको भेजा। उस दूतने जाकर वापिस आनेपर जब उक्त राजाओंकी उद्धतताका निरूपण किया तब करकण्डुको बहुत क्रोध आया। इसीलिए वह वहाँ जाकर युद्धभूमिमें स्थित हो गया। वे राजा भी मिल करके

---

१. प श °बाह्ये मुत्का स्थितः ब बाह्ये मुक्ता स्थितः। २. फ उभयोर्दर्शननम°। ३. प श गत्वा दूतेन गतेन। ४. फ विज्ञप्तैः। ५. प चक्रतुः दि°, श चक्रतुर्वि°।

उभयबलं स्वस्थाने स्थितम् । द्वितीयदिनेऽतिरौद्रे[1] संग्रामे जाते स्वबलभङ्गं वीक्ष्य कोपेन करकण्डुर्महायुद्धं कृत्वा त्रीनपि बबन्ध । तन्मुकुटे पादं न्यसन्[2] तत्र जिनबिम्बानि विलोक्य 'मिच्छामि' इति[3] भणित्वा यूयं जैना इत्युक्ते तैरोमिति[4] भणिते, हा हा निकृष्टोऽहं जैनानामुपसर्गं कृतवानिति पश्चात्तापं कृत्वा क्षमां कारिता[5] तैः । स्वदेशं गच्छन् तेरसमीपे विमुच्य स्थितः ।

तत्र[6] दौवारिकैरन्तःप्रवेशिताभ्यां धाराशिवभिल्लाभ्यां विज्ञप्तो राजा—देवास्माद्दक्षिणस्यां दिशि त्रिगव्यूत्युत्तरे[8] पर्वतस्योपरि धाराशिवं नाम पुरं तिष्ठति सहस्रस्तम्भजिनालयं च तस्योपरि[9] पर्वतमस्तके वल्मीकं च । तत् श्वेतो हस्ती पुष्करेण जलं कमलं च गृहीत्वागत्य त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य जलेन सिक्त्वा अरविन्देन[10] पूजयित्वा प्रणमतीति [श्रुत्वा करकण्डुना] ताभ्यां तुष्टिं दत्त्वा तत्र गत्वा जिनं समभ्यर्च्य वल्मीकं पूजयन्तं हस्तिनं वीक्ष्य तत् खनितम् । तत्र स्थितां मञ्जूषामुत्पाट्य रत्नमयपार्श्वनाथप्रतिमां वीक्ष्य हृष्टः । तल्लयणेऽर्गलदेवसंज्ञया[11] स्थापितवांश्च । मूलप्रतिमाग्रे ग्रन्थिं विलोक्य विरूपको दृश्यते इति शिलाकर्मिणं बभाणेमं

आये और घोर युद्ध करने लगे । सूर्यास्त होनेपर दोनों ओरकी सेना अपने स्थानमें ठहर गई । दूसरे दिन भी अतिशय भयानक युद्धके होनेपर अपनी सेनाके दबावको देखकर करकण्डुने क्रुद्ध होकर महान् युद्ध किया और उन तीनों राजाओंको बाँध लिया । फिर उसने उनके मुकुटपर पैर रखते हुए जब जिनप्रतिमाओंको देखा तब 'तस्स मिच्छामि [तस्स मिच्छा मे दुक्कडं]' अर्थात् उसका मेरा यह दोष मिथ्या हो, यह कहकर उसने आत्मनिन्दा करते हुए उनसे पूछा कि आप जैन हैं क्या ? उत्तरमें जब उन्होंने यह कहा कि हाँ हम लोग जैन हैं तब उसने कहा हा ! हा ! मैं बहुत निकृष्ट हूँ, मैंने जैनोंके ऊपर उपसर्ग किया है, इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए उसने उनसे क्षमा करायी । तत्पश्चात् स्वदेशको वापिस आता हुआ वह तेरपुरके समीपमें पड़ाव डालकर ठहर गया ।

उस समय वहाँ धारा और शिव नामक दो भील आये जिन्हें द्वारपाल भीतर ले गये । उन्होंने राजासे निवेदन किया कि हे देव ! यहाँसे दक्षिण दिशामें तीन कोशके ऊपर स्थित पर्वतके ऊपर धाराशिव नामका नगर है और सहस्रस्तम्भ जिनालय है । उक्त पर्वतके शिखरपर एक सर्पकी बाँवी है । वहाँ एक श्वेत हाथी सूँड़में जल और कमलको लेकर आता है व तीन प्रदक्षिणा करता है । फिर वह उसे जलसे अभिषेक करके कमल-पुष्पसे पूजा करता हुआ प्रणाम करता है । यह सुनकर करकण्डुने उन दोनों भीलोंको पारितोषिक दिया । तत्पश्चात् उसने वहाँ जाकर जिन भगवान्की पूजा करके बाँवीकी पूजा करते हुए उस हाथीको देखा । उसने उक्त बाँवीको खुदवाया । उसके भीतर स्थित पेटीको तोड़कर उसमें स्थित रत्नमय पार्श्वनाथ जिनेन्द्रकी प्रतिमाका दर्शन करके वह बहुत हर्षित हुआ । उस लयन (पर्वतस्थ पाषाणमय गृह) में उसने उक्त मूर्तिको अर्गल देवके नामसे स्थापित किया । मूल प्रतिमाके आगे गाँठको देखकर उसने यह विचार करते हुए कि वह यहाँ विकृत दीखती है, शिल्पीको उसे तोड़ डालनेके लिए कहा ।

---

१. प श दिने इति रौद्रे । २. फ न्यसत् । ३. प्रतिषु विलोक्य तस्स मिच्छामीति । ४. प तैरोमिति, श तेराहुर्जमिति । ५. फ कारिताः । ६. श तत्रा । ७. फ धराशिव, श धरोशिव । ८. फ त्रिगव्यूत्यन्तरे । ९. फ जिनालयणं च तस्यो°, श जिनालयं तस्यो° । १०. फ सीत्कारविंदेन । ११. फ तल्लयणार्गलदेव ।

स्फोटयेति । तेनोक्तं जलसिरेयं जलपूरो निःसरिष्यतीति । तथापि स्फोटितम् । तदनु निर्गतं जलम् । राजादीनां निर्गमने संदेहोऽभूत् । ततो राजा दर्भशय्यायां द्विविधसंन्यासेन स्थितः ।

नागकुमारः प्रत्यक्षीभूय वक्तुं लग्नः । कालमाहात्म्येन रत्नमयी[1] प्रतिमा रक्षितुं न शक्यते इति मया जलपूर्णं लयनं [कृतम्] । ततस्त्वया जलापनयनार्थाग्रहो न कर्तव्य इति महताग्रहेण दर्भशय्याया उत्थापितो राजा । ततस्तं पृच्छति स्म— केनेदं लयनं कारितं, तथा वल्मीकमध्ये प्रतिमा केन स्थापितेति । नागकुमारः प्राह— अत्रैव विजयार्धे उत्तरश्रेण्यां नभस्तिलकपुरे राजानौ अमितवेगसुवेगौ अत्रार्यखण्डे जिनालयान् वन्दितुमागतौ मलयगिरौ रावणकृतजिनगृहानपश्यताम्[2] । वन्दित्वा तत्र परिभ्रमन्तौ[3] पार्श्वनाथप्रतिमां लुलोकाते[4] । तां मञ्जूषायां निक्षिप्य गृहीत्वेमं पर्वतमागतौ । अत्र मञ्जूषां व्यवस्थाप्य क्वापि गतौ । आगत्य यावदुत्थापयतस्तावन्नोत्तिष्ठति[5] मञ्जूषा । गत्वा तेरपुरे अवधिबोधिं महामुनिं पृष्टवन्तौ मञ्जूषा किमिति नोत्तिष्ठतीति । तैरवादीयं मञ्जूषा लयणस्योपरि लयणं कथयति । अयं सुवेगोऽपध्यानेन मृत्वा गजो भूत्वा तां मञ्जूषां यदा करकण्डुस्तामुत्पाटयिष्यति[6] तदा गजः संन्यासेन दिवं यास्यति इति प्रतिमास्थिरत्वमवधार्येदं लयणं केन कारितमिति पृष्टो मुनिः कथयति— विजयार्धदक्षिण-

शिल्पीने कहा कि यह जलकी नाली है, इसके तोड़नेसे जलका प्रवाह निकलेगा । परन्तु यह सुन करके भी करकण्डुने उसे तुड़वा दिया । तत्पश्चात् उससे जलका प्रवाह निकल पड़ा । राजा आदिको उक्त जल-प्रवाहसे निकलनेमें सन्देह हुआ । तब राजा दो प्रकारके संन्यासको धारण करके कुशासनपर स्थित हो गया ।

तब वहाँ नागकुमार देव प्रगट होकर इस प्रकार कहने लगा— कालके प्रभावसे इस रत्नमयी प्रतिमाकी रक्षा नहीं की जा सकती है, इसलिए मैंने इस लयनको जलसे परिपूर्ण किया है । अतएव आपको इस जलके नष्ट करनेका आग्रह नहीं करना चाहिए । इस प्रकार कहकर नागकुमारने राजाको बहुत आग्रहके साथ उस कुशासनके ऊपरसे उठाया । तत्पश्चात् उसने नागकुमारसे पूछा कि इस लयनको किसने बनवाया है तथा बाँवीके बीचमें प्रतिमाको किसने स्थापित किया है । नागकुमार बोला— इसी विजयार्ध पर्वतके ऊपर उत्तर श्रेणिमें नभस्तिलक नामका नगर है । वहाँके राजा अमितवेग और सुवेग इस आर्यखण्डमें जिनालयोंकी वन्दना करनेके लिए आये थे । उन्होंने मलयगिरिके ऊपर रावणके द्वारा बनवाये गये जिन-भवनोंको देखा । तब उन दोनोंने उक्त जिन-भवनोंकी वन्दना करके वहाँ परिभ्रमण करते हुए पार्श्वनाथकी प्रतिमाको देखा । वे उक्त प्रतिमाको पेटीमें रखकर और उसे साथमें लेकर इस पर्वतके ऊपर आये । यहाँ उस पेटीको रखकर वे कहीं दूसरे स्थानमें गये । वापिस आकर जब उन्होंने उसे उठाया तो वह पेटी नहीं उठी । तब उन्होंने तेरपुरमें जाकर अवधिज्ञानी मुनिसे पेटीके न उठनेका कारण पूछा । उन्होंने कहा कि यह पेटी लयनके ऊपर लीन होनेको कहती है । यह सुवेग अपध्यानसे मरकर हाथी होगा और फिर जब करकण्डु उस पेटीको तुड़वावेगा तब वह हाथी संन्यासपूर्वक मरणको प्राप्त होकर स्वर्गमें पहुँचेगा । इस प्रकार प्रतिमाकी स्थिरताको जानकर उन्होंने पुनः मुनिराजसे पूछा कि इस लयनको किसने निर्मित कराया है । उत्तरमें मुनिराज बोले— विजयार्धकी दक्षिण श्रेणिमें रथनूपुर नामका नगर है । वहाँ

१. श रत्नमयीं । २. क गृहान् पश्यतां । ३. श तत्र भ्रमन्तौ । ४. ब-प्रतिपाठोऽयम् । क ललोकंते तां-प श लुलोकते तां । ५. प ब श यावदुच्चायतस्ताव° । ६. ब करकंडुभूपस्ता° ।

श्रेण्यां रथनूपुरे राजानौ नीलमहानीलौ जातौ। संग्रामे शत्रुभिः कृतविद्याच्छेदावशेषितौ तावि[1] कारितवन्तौ। विद्याः प्राप्य विजयार्धं गतौ तपसा दिवं गताविति निशम्य तौ दीक्षितौ। ज्येष्ठो ब्रह्मोत्तरं गत इतर आर्तेन हस्ती जातस्तेन देवेन संबोधितः सन् जातिस्मरो भूत्वा सम्यक्त्वं व्रतानि चादाय तां पूजयितुं लग्नः। यदा कश्चिदिमां खनति तदा शक्त्या[2] संन्यासं गृहाणेति प्रतिपाद्य देवो दिवं गतः। त्वयोत्पाटिते सति हस्ती संन्यासेन तिष्ठति। त्वं पूर्वमत्रैव गोपालो जिनपूजया राजा जातोऽसि इति तं संबोध्य नागकुमारो नागवापिकां गतः।

तृतीयदिने गत्वा राज्ञा तस्य हस्तिनो धर्मश्रवणं[3] कृतम् [कारितम]। सम्यक्परिणामेन तनुं विसृज्य सहस्रारं गतो हस्ती। करकण्डुः स्वस्य मातुरर्गलस्य च नाम्ना[4] लयणत्रयं कारयित्वा[5] प्रतिष्ठां च, तत्रैव स्वतनुजवसुपालाय स्वपदं वितीर्य स्वपितृनिकटे चेरमादि[6] क्षत्रियैश्च दीक्षां बभार, पद्मावत्यपि। करकण्डुर्विशिष्टं तपो विधायायुरन्ते संन्यासेन[7] वितनुर्भूत्वा सहस्रारं गतः। दन्तिवाहनादयः स्वस्य पुण्यानुरूपं स्वर्गलोकं गता इति जिनपूजया गोपालोऽप्येवंविधो जज्ञेऽन्यः किं न स्यादिति ॥६॥

नील और महानील राजा राज्य करते थे। शत्रुओंने युद्धमें उनकी समस्त विद्याओंको नष्ट कर दिया था। तब निःशेष होकर उन्होंने इस लयनका निर्माण कराया था। तत्पश्चात् वे अपनी उन विद्याओंको फिरसे प्राप्त करके विजयार्धपर वापिस चले गये और पश्चात् वे दीक्षित होकर तपके प्रभावसे स्वर्गमें पहुँचे। मुनिके द्वारा प्ररूपित इस वृत्तान्तको सुनकर वे दोनों (अमितवेग और सुवेग) दीक्षित हो गये। उनमें बड़ा (अमितवेग) ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें गया और दूसरा (सुवेग) आर्त्तध्यानसे मरकर हाथी हुआ। वह उक्त देवसे संबोधित होकर जातिस्मरणको प्राप्त हुआ। तब उसने सम्यक्त्वके साथ व्रतोंको ग्रहण कर लिया और फिर वह उसकी पूजा करनेमें संलग्न हो गया। जब कोई इसको खोदे तब तुम शक्तिके अनुसार सन्यासको ग्रहण कर लेना, इस प्रकार समझा करके उपर्युक्त देव स्वर्गमें वापिस चला गया। तदनुसार तुम्हारे द्वारा उसके खोदे जानेपर उक्त हाथीने संन्यास ग्रहण कर लिया है। तुम पूर्वमें यहींपर ग्वाला थे जो जिन-पूजाके प्रभावसे राजा हुए हो। इस प्रकार संबोधित करके वह नागकुमार नागवापिकाको चला गया।

तीसरे दिन करकण्डु राजाने जाकर उस हाथीको धर्मश्रवण कराया। इससे वह हाथी निर्मल परिणामोंसे मरकर सहस्रार स्वर्गमें गया। करकण्डुने अपने, अपनी माताके और अर्गल देवके नामसे तीन लयन (पर्वतवर्ती पाषाणगृह) बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा करायी। फिर उसने वहींपर अपने पुत्र वसुपालको राज्य देकर चेरम आदि राजाओंके साथ अपने पिताके समीपमें दीक्षा धारण कर ली। उसके साथ ही पद्मावतीने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। करकण्डुने विशेष तपश्चरण किया। आयुके अन्तमें वह संन्यासपूर्वक मरणको प्राप्त होकर सहस्रार स्वर्गमें गया। दन्तिवाहन आदि भी अपने-अपने पुण्यके अनुसार स्वर्गलोकको गये। इस प्रकार जिनपूजाके प्रभावसे जब ग्वाला भी इस प्रकारकी विभूतिसे संयुक्त हुआ है तब दूसरा विवेकी जीव क्या न होगा? वह तो मोक्षसुखको भी प्राप्त कर सकता है ॥६॥

१. फ °छेदावतोषितौ ताविदं। २. ब -प्रतिपाठोऽयम्। प फ श तदाशक्त्या। ३. फ धर्माधर्मश्रवणं। ४. प स्वस्य मातुरर्गलादवस्यवनाम्ना फ स्वमातुर्बालदेवस्य च नाम्ना। ५. श कारित्वा। ६. ब स्वपित्रा पार्श्वे वेरमादि फ स्वपितृनिकटे चौरमादि ब स्वपित्रा चेरमादि श स्वपित्रा पार्श्वे चरमादि। ७. श संन्यासे।

[७]

नानाविभूतिकलितो व्रतवर्जितोऽपि
चक्री सकृज्जिनपतिं परिपूज्य भक्त्या।
संजातवानवधिबोधयुतो धरित्र्यां
नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥७॥

अस्य कथा—जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकणीपुरे राजा यशोधरस्तीर्थंकरकुमारः वैराग्यस्य किंचिन्निमित्तं प्राप्य वज्रदन्ततनुजाय राज्यं दत्त्वा स्वयं निःक्रमणकल्याणमवाप। वज्रदन्तमण्डलेश्वर एकदास्थानस्थो दुकूलध्वजहस्ताभ्यां पुरुषाभ्यां विज्ञप्तः, देव आयुधागारे चक्रमुत्पन्नमिति एकेन, इतरेण यशोधरभट्टारकस्य केवलमुत्पन्नमिति श्रुत्वा द्वाभ्यां तुष्टिं दत्त्वा सकलजनेन समवसृतिं जगाम। जिनशरीरदीप्तिं विलोक्याभ्यर्चितानन्तरं अधिकंविशुद्धिपरिणामजनितपुण्येन तदैवावधियुक्तो बभूव षट्खण्डं प्रसाध्य सुखेन राज्यं कृतवानित्यादिपुराणे प्रसिद्धेयं कथा ॥७॥

[८]

संबद्धसप्तमधरानिजजीवितोऽपि
श्रीश्रेणिकः स च विधाय समर्च्य[1] पुण्यम्।
वीरं जिनं जगति तीर्थंकरत्वमुच्चै-
र्नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥८॥

जो चक्रवर्ती अनेक प्रकारकी विभूतिसे सहित और व्रतोंसे रहित था वह भक्तिपूर्वक एक बार ही जिनेन्द्रकी पूजा करके पृथिवीपर अवधिज्ञानसे संयुक्त हुआ। इसलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभुकी पूजा करता हूँ ॥७॥

इसकी कथा— जम्बूद्वीपके भीतर पूर्वविदेहमें पुष्कलावती देश है। उसके अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुरीमें यशोधर नामक तीर्थंकरकुमार राजा थे। किसी वैराग्यके निमित्तको पाकर उन्हें संसार व भोगोंसे विरक्ति हो गई। तब उन्होंने वज्रदन्त नामक पुत्रको राज्य देकर स्वयं दीक्षा धारण कर ली। उस समय देवोंने उनके दीक्षाकल्याणकका महोत्सव किया। एक दिन राजा वज्रदन्त सभाभवन (दरबार) में विराजमान था। तब वहाँ अपने हाथोंमें वस्त्रयुक्त ध्वजाको लेकर दो पुरुष उपस्थित हुए। उनमेंसे एकने राजासे प्रार्थना की कि हे देव ! आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है। दूसरेने निवेदन किया कि यशोधर भट्टारकके केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। यह सुनकर राजा वज्रदन्त उन दोनोंको पारितोषिक देकर समस्त जनोंके साथ समवसरणमें गया। जब उसने जिन भगवान्‌के शरीरकी कान्तिको देखकर उनकी पूजा की तब परिणामोंमें अतिशय निर्मलता होनेसे उसके जो पुण्य उत्पन्न हुआ उससे उसी समय उसे अवधिज्ञानकी प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् वह छह खण्डोंको जीतकर सुखपूर्वक राज्य करने लगा। यह कथा आदिपुराणमें प्रसिद्ध ही है ॥७॥

जिस श्रेणिक राजाने पूर्वमें सातवें नरककी आयुका बन्ध कर लिया था उसने पीछे श्री वीर जिनेन्द्रकी पूजा करके लोकमें अतिशय पवित्र तीर्थंकर प्रकृतिको बाँध लिया है। इसलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभुकी पूजा करता हूँ ॥८॥

---

१. प स च विधा समर्च्य, क स स विधाप समर्च्य।

अस्य कथा—अत्रैवार्यखण्डे मगधदेशे राजगृहे राजा उपश्रेणिकः। तस्मै एकदा[1] प्रत्यन्तवासिपूर्ववैरिणा सोमशर्मराजेन मायया सखित्वं गतेन दुष्टाश्वः प्रेषितः। बाह्यालिं गतो[2] राजा अजानन् तं चटितस्तेन महाटव्यां निक्षिप्तः। तत्र च पल्लीमध्यस्थितेन भ्रष्टराज्येन यमदण्डक्षत्रियेण स्वगृहं नीत उपश्रेणिकः। तस्य विद्युन्मतीदेव्याश्चोत्पन्नां तिलकावतीमद्राक्षीत् याचितवांश्च। तेनोक्तम्—यदि मम पुत्र्याः पुत्राय राज्यं ददासि तदा दीयते, नान्यथेति। ततस्तेनाभ्युपगम्य परिणीता, तया सह स्वपुरमागतः[3]। तस्याश्चिलातीपुत्रनामा[4] पुत्रोऽजनि। तमादिं कृत्वा तस्य पञ्चशतपुत्राः सन्ति। राज्ञोऽपरा देवी[5] इन्द्राणी पुत्रः श्रेणिकोऽतिरूपवान्।

एकदा राज्ञा नैमित्तिकः पृष्टः एकान्ते, कस्य मत्पुत्रस्य राज्यं स्यादिति। तेन कथ्यते—कुमारेभ्यः प्रत्येकं शर्कराघटे दत्ते योऽन्येन धारयित्वा सिंहद्वारं नाययिष्यति, तथा नूतनं घटं तृणबिन्दुजलेन यः पूरयिष्यति, तथा सर्वकुमाराणामेकपङ्क्तौ पायसभोजनेषु मुक्तेषु श्वसु[6] यस्तान् निवार्य भोक्ष्यते, तथा नगरदाहे सिंहासनादिकं निःसारयिष्यति तस्य स्यान्नान्यस्येति।

एकदा राजभवनान्तः शर्कराघटेषु दत्तेषु चिलातीपुत्रादिभिः स्वयं गृहीत्वा सिंहद्वार-

इसी आर्यखण्डमें मगध देशके भीतर राजगृह नगर है। वहाँपर राजा उपश्रेणिक राज्य करता था। एक समय उसके लिए म्लेच्छ देशमें रहनेवाले पूर्वके शत्रु सोमशर्मा राजाने कपटसे मित्रताका भाव प्रकट करते हुए एक दुष्ट घोड़ेको भेजा। बाह्य वीथीमें गये हुए राजा उपश्रेणिकने इस बातको नहीं जाना और वह उसके ऊपर सवार हो गया। उक्त घोड़ेने उसे ले जाकर एक भीषण वनमें छोड़ दिया। वहाँ भील बस्तीमें स्थित यमदण्ड क्षत्रिय, जिसे कि राज्यसे भ्रष्ट कर दिया गया था, उपश्रेणिकको अपने घरपर ले गया। वहाँ उसने यमदण्डकी पत्नी विद्युन्मतीसे उत्पन्न हुई तिलकावती पुत्रीको देखकर उसकी याचना की। यमदण्डने कहा कि यदि मेरी पुत्रीके पुत्रके लिए तुम राज्य दो तो मैं उसे तुम्हारे लिए दे सकता हूँ, अन्यथा नहीं। तब उपश्रेणिकने इस बातको स्वीकार कर उसके साथ विवाह कर लिया और फिर उसको साथमें लेकर अपने नगरमें वापिस आ गया। उसके चिलातीपुत्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उसको आदि लेकर उपश्रेणिकके पाँच सौ पुत्र थे। राजाकी दूसरी देवी इन्द्राणी थी। उसके अतिशय सुन्दर श्रेणिक नामका पुत्र था।

एक समय राजाने एकान्तमें किसी ज्योतिषीसे पूछा कि मेरे पुत्रोंमें राजा कौन-सा पुत्र होगा उत्तरमें ज्योतिषीने कहा कि प्रत्येक राजपुत्रके लिए शक्करका घड़ा देनेपर जो उसे दूसरेके ऊपर धराकर सिंहद्वारपर लिवा ले जायगा, जो मिट्टीके नये घड़ेको तृणबिन्दुओंके जलसे (ओसबिन्दुओंसे) पूरा भर देगा, जो सब कुमारोंकी एक पंक्तिमें खीरको परोसकर कुत्तोंके छोड़नेपर उनके बीचमें स्थित रहकर उन्हें रोकता हुआ उसे खावेगा, तथा जो नगरके प्रज्वलित होनेपर सिंहासन आदिको निकालेगा; वह पुत्र राजा होगा, अन्य नहीं।

एक समय राजभवनके मध्यमें शक्करके घड़ोंके देनेपर चिलातीपुत्र आदिने उन्हें स्वयं ले जाकर सिंहद्वारपर स्थित अपने-अपने पुरुषोंके लिए समर्पित किया। परन्तु श्रेणिक किसी दूसरेके

१. प श तस्मादेकदा। २. फ बाह्योलिंगतो। ३. प ब तया स्वपुर, फ तयास्वपुर। ४. फ नाम। ५. फ राज्ञो देवी। ६. फ भोजने मुक्तेषु श्वषु।

स्थितैः[1] स्वपुरुषाणां समर्पिताः। श्रेणिकः केनचित् ग्राहयित्वा स्वपुरुषहस्ते दापितवान्। एकदा कुमारानाहूयोक्तवान् राजा तृणबिन्दुजलघटमेकैकमा[2]नयन्त्विति। ततः प्रातरेकैकं घटमध्यक्षेण सह गृहीत्वा[3]न्योन्यं यथा न पश्यति तथा सतृणप्रदेशं गताः। हस्तेन जलमादाय नूतनघटे निक्षिपन्ति तत्तत्रैव[4] शुष्यति। सर्वेऽपि रिक्ता आगताः। श्रेणिको वस्त्रं सान्द्रं तृणस्योपरि प्रसार्य संगृहीतजलं घटे निःपीडय पूरयित्वा गृहीत्वागत्य राज्ञो दर्शितवान्। एकदा सर्वेभ्यः पायसं भोक्तुं परिविष्टं श्वानश्च मुक्तास्तैर्भोजनभाजनानि वेष्टितानि। सर्वे कुमारास्तान् त्यक्त्वा नष्टाः। श्रेणिकः सर्वाणि संगृह्य एकैकं श्वभ्यो निक्षिपन् भुक्तवान्। अन्यदा नगरदाहे सिंहासनादिकं निःसारितवानिति सर्वाणि चिह्नानि तस्यैव मिलितानि। ततस्तं राज्यार्हं विज्ञाय गूढवेषधारिपञ्चशतसहस्रभटैर्मातापितृभ्यामसन्तमपि दोषं व्यवस्थाप्य देशान्निर्घाटितः।

एकाकी गच्छन् नन्दिग्रामे सभामण्डपं प्रविष्टः। तत्र वयोज्येष्ठमिन्द्रदत्तनामानं वैश्यमपश्यदुक्तवांश्च। माम, एहि मया सह ब्राह्मणान्तिकमित्युभावपि तदन्तिकं गत्वा आवां राजपुरुषौ राजकार्येण गच्छन्तावास्वहे इति[5] भोजनादिकं दीयतामित्युक्ते तैरवादीदिदमग्रहारं

ऊपर धराकर ले गया और उसे अपने पुरुषके हाथमें दिलाया। एक दिन राजाने कुमारोंको बुलाकर यह कहा कि तृणबिन्दुओं (ओसबिन्दुओं) के जलसे भरे हुए एक-एक घड़ेको लावो। तब प्रातःकालमें वे कुमार अध्यक्ष (निरीक्षक) के साथ एक-एक घड़ा लेकर ऐसे तृणयुक्त प्रदेशमें गये जहाँ कि कोई एक दूसरेको न देख सके। वहाँ वे हाथसे उस जलको लेकर नवीन घड़ेमें रखने लगे, किन्तु वह उसी समय सूख जाता था। इस प्रकार वे अन्तमें सब ही खाली हाथ वापिस आये। परन्तु श्रेणिकने सघन वस्त्रको घासके ऊपर फैलाकर और फिर जलसे परिपूर्ण उस वस्त्रको निचोड़कर उक्त जलसे घड़ेको भर लिया। पश्चात् उसने उसको लाकर राजाको दिखलाया। एक समय सब कुमारोंको खानेके लिए खीर परोसी गई, साथ ही कुत्तोंको भी छोड़ा गया। उन कुत्तोंने भोजनके पात्रोंको घेर लिया। तब सब कुमार उन पात्रोंको छोड़कर भाग गये। किन्तु श्रेणिकने उन सब पात्रोंका संग्रह करके और उनमेंसे एक-एक प्रत्येक कुत्तेको देकर अपने पात्रमें स्थित खीरका स्वयं उपभोग किया। दूसरे दिन नगरके अग्निसे प्रज्वलित होनेपर श्रेणिकने सिंहासन आदि (छत्र-चामरादि) को बाहिर निकाला। इस प्रकार ज्योतिषीके द्वारा निर्दिष्ट वे सब चिह्न उस श्रेणिकके ही पाये गये। इससे उसको ही राज्यके योग्य जानकर माता-पिताने गुप्त वेषको धारण करनेवाले पाँच लाख सुभटोंके साथ अविद्यमान भी दोषको उसमें विद्यमान बतलाकर—कुछ दोषारोपण करके—उसे देशसे निकाल दिया।

वह वहाँसे अकेला निकलकर नन्दिग्रामके भीतर सभामण्डपमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने अवस्थामें अपनेसे बड़े किसी इन्द्रदत्त नामक वैश्यको देखकर कहा कि हे मामा! मेरे साथ ब्राह्मणोंके पास आओ। इस प्रकार उन दोनोंने ब्राह्मणोंके पास जाकर उनसे कहा कि हम दोनों राजपुरुष हैं और राजाके कार्यसे जाते हुए यहाँ उपस्थित हुए हैं, हम दोनोंको भोजन आदि दो। यह सुनकर ब्राह्मणोंने कहा कि यह सर्वमान्य अग्रहार है, इसलिए यहाँ राजपुरुषोंको पीनेके लिए

---

१. ब -प्रतिपाठोऽयम्। प श द्वारे स्थितैः स्व० फ द्वारे स्थितं स्व स्व०। २. फ विंदुजलमेकैकं घटमा०। ३. प श अध्यक्षेण संगृहीत्वा। ४. फ श तत्तदेव। ५. फ गच्छतामावामिति ब गच्छंतावस्वहे इति।

सर्वमान्यमिति राजपुरुषाणां जलमपि पातुं न दीयते यातं[1] युवामिति। ततो जठराग्नेर्भगवतो मठं गतौ। तेन भोजनं कारितौ। श्रेणिकः स्वधर्मं ग्राहितः। ततो द्वितीयदिने मार्गे गच्छता[2] श्रेणिकेनोक्तम्—हे माम, जिह्वारथं चटित्वां याव इति। इतरो ग्रहिलोऽयमिति मत्वा न किमपि वदति। ततोऽग्रे जलं विलोक्य प्राणहिते परिहितवान्, वृक्षतले छत्रं धृतवान्, भृतं ग्राममवेक्ष्य मामायं ग्रामो भृत उद्वस इति पृष्टवान्, कमपि पुरुषं स्वस्त्रीमाताडयन्तं विलोक्य बद्धां मुक्तां चेमामयं ताडयतीति[3] पृष्टवान्, कमपि नरं मृतं वीक्ष्यायं मृत इदानीं पूर्वं वेति[4] पृष्टवान्, पक्वं शालिक्षेत्रं दृष्ट्वास्य फलमस्य स्वामी भुक्तवान्[5] भोक्ष्यतीति पृष्टवान्, क्षेत्रे हलं खेटयन्तं[6] नरं विलोक्य हलस्य कियन्ति डालानीति पृष्टवान्, बदरीवृक्षमवेक्ष्यास्य कियन्तः कण्टका इति पृष्टवान्। तथा चोक्तम्—

जिह्वारथं प्राणहितातपत्रकुग्रामनार्यो[7] मृतकं च शालीन्।
डालं च कोलद्रुमकण्टकांश्च पृष्टः कुमारेण पथीन्द्रदत्तः ॥१॥ इति।

एतेषु प्रश्नेषु इन्द्रदत्तो वेणातडागं नाम स्वपुरं प्राप्तवान्। बहिस्तडागतटे वृक्षतले तं धृत्वा स्वं गृहं गतः। स्वतनुजया नन्दश्रिया प्रणम्य पृष्टः—हे तात, किमेकाकी आगतोऽसि केनचित्सार्धं वा। तेनोक्तं—मया सहैकोऽतिरूपवान् युवा च ग्रहिलः[8] समायातः। कीदृशं

पानी भी नहीं दिया जाता है, अतएव तुम दोनों यहाँसे चले जाओ। तत्पश्चात् वे भगवान् जठराग्नि (बुद्धगुरु) के मठमें गये। उसने उन्हें भोजन कराया और फिर श्रेणिकको अपना धर्म ग्रहण कराया। तत्पश्चात् दूसरे दिन आगे जाते हुए श्रेणिकने कहा कि हे मामा ! हम दोनों जिह्वा-रथपर चढ़कर चलें। इसपर इन्द्रदत्तने उसे पागल समझकर कुछ नहीं कहा। इसके आगे जानेपर श्रेणिकने जलको देखकर जूतोंको पहिन लिया, वृक्षके नीचे पहुँचकर छत्रीको धारणकर लिया, परिपूर्ण ग्रामको देखकर उसने पूछा कि हे मामा ! यह ग्राम परिपूर्ण है अथवा उजड़ा हुआ है, किसी पुरुषको अपनी स्त्रीको ताड़ित करते हुए देखकर उसने यह पूछा कि वह बँधी हुई स्त्रीको ताड़ित कर रहा है या छूटी हुई को, किसी मरे हुए मनुष्यको देखकर उसने पूछा कि वह अभी मरा है या पूर्वमें मरा है, पके हुए धानके खेतको देखकर उसने पूछा कि इस खेतके स्वामीने इसके फलको खा लिया है या उसे भविष्यमें खावेगा, खेतमें हलको चलाते हुए मनुष्यको देखकर उसने पूछा कि हलके कितने डाल हैं, तथा बेरीके वृक्षको देखकर उसने पूछा कि इसके कितने काँटे हैं। वैसा ही कहा भी है—

जिह्वारथ, जूता, छत्री, कुग्राम, स्त्री, मृत मनुष्य, धान, हलका डाल और बेरी वृक्षके काँटे; इनके सम्बन्धमें श्रेणिक कुमारने मार्गमें इन्द्रदत्तसे प्रश्न किये ॥१॥

इन प्रश्नोंके चलते हुए इन्द्रदत्त वेणातडाग नामक अपने गाँवमें पहुँच गया। वह उसे गाँवके बाहिर तालाबके किनारे वृक्षके नीचे बैठाकर अपने घर चला गया। वहाँ अपनी पुत्री नन्दश्रीने प्रणाम करके उससे पूछा कि हे तात ! क्या आप अकेले आये हैं अथवा किसीके साथमें। उत्तरमें उसने कहा कि मेरे साथ एक अतिशय सुन्दर पागल युवक आया है। जब पुत्रीने उससे

---

१. प श यावां श् यावो। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श दिनमग्रे गच्छता। ३. श ताडयंतीति। ४. फ पूर्वं मृत इदानीं चेति। ५. ब स्वामीदं भुक्तवान्। ६. ब खेटयंतं। ७. ब -प्रतिपाठोऽयम्। श पत्रं। ८. ब -प्रतिपाठोऽयम्। श ग्रथिलः।

तद्ग्रहिलत्वमिति पृष्टे[1] सर्वं तद् वृत्तान्तं निरूपितं तेन[2]। श्रुत्वा तयोक्तम्—स ग्रहिलो न भवति। कथमिति चेत् शृणु। यदकस्मान्मामेत्युक्तवान्, भागिनेयो मान्यो भवतीत्यभिप्राये-[3]णोक्तवान्। जिह्वारथः कथाविनोदः। जले कण्टकादिकं न दृश्यत इत्युपानहौ[4] परिदधाति। काकादिविष्ठाभयेन[5] वृक्षतले छत्रं धारयते[6]। तद्ग्रामे युवां भुक्तवन्तौ नो वा। यदि भुक्तवन्तौ तदा भृतोऽन्यथोद्वस[7] इति। नारी यदा संगृहीता तदा मुक्तां ताडयति, परिणीतां च[8] बद्धामिति। यो मृतः स गुणवान् चेदिदानीं मृतोऽन्यथा पूर्वमेव। शालिक्षेत्रं यदि ऋणं गृहीत्वा कृतं तदा तत्फलं भुक्तम्। नो चेत् भोक्ष्यते। हलस्य द्वे डाले। बदर्या द्वौ कण्टकाविति।

नन्दश्रिया तदभिप्रायं व्याख्याय स क्व तिष्ठतीति पृष्टे तडागतटे तिष्ठतीत्युक्ते सा स्वसखीं दीर्घनखीं निपुणमतीसंज्ञां नखेन तैलं गृहीत्वा तदन्तिकं प्रेषितवती। तया गत्वा स पृष्टः—इन्द्रदत्तश्रेष्ठिना सह त्वमागतोऽसि। तेन ओमित्युक्ते तर्हि तत्सुता नन्दश्री कन्या, तयेदं तैलं प्रेषितमिदमभ्यज्य स्नात्वा गृहमागच्छेत्युक्ते तैलं वीक्ष्य पादेन गर्तं विधाय जलेन

फिर पूछा कि उसका पागलपन कैसा है तब उसने मार्गकी उपर्युक्त सब घटनाओंको कह सुनाया। उनको सुनकर नन्दश्रीने कहा कि वह पागल नहीं है। वह पागल कैसे नहीं है, इसे सुनिये—उसने अकस्मात् जो आपको मामा कहकर सम्बोधित किया है उससे उसका यह अभिप्राय था कि भानजा आदरके योग्य होता है। जिह्वारथपर चढ़कर चलनेसे उसका अभिप्राय यह था कि हम परस्पर कुछ कथावार्ता करते हुए चलें, जिससे कि मार्गमें थकावटका अनुभव न हो। जलके भीतर चूँकि काँटे आदिको नहीं देखा जा सकता है अतएव वह जलमेंसे जाते हुए जूतोंको पहिन लेता है। कौवा आदिका विष्ठा ऊपर न गिरे, इस विचारसे वह वृक्षके नीचे जाकर छत्ता लगा लेता है। उस गाँवमें तुम दोनोंने भोजन किया अथवा नहीं किया? यदि भोजन कर लिया है तो वह गाँव परिपूर्ण है, अन्यथा वह ऊजड़ ही है। जिस स्त्रीको वह मार रहा था वह यदि उसकी रखेली थी तब तो वह मुक्त स्त्रीको मार रहा था, और यदि वह उसकी विवाहिता थी तो वह बद्ध स्त्रीको मार रहा था। जो मनुष्य मर गया था वह यदि गुणवान् था तब तो समझना चाहिए कि वह अभी मरा है, परन्तु यदि वह गुणहीन था तो उसे पूर्वमें भी मरा हुआ ही समझना चाहिये। धानके खेतको यदि किसानने कर्ज लेकर किया था तब तो उसका फल खाया जा चुका समझना चाहिये; और यदि उसे कर्ज लेकर नहीं किया गया है तो उसका फल भविष्यमें खाया जावेगा, यह समझना चाहिए। हलके दो डाल होते हैं। बेरीके दो-दो मिले हुए काँटे होते हैं।

इस प्रकार नन्दश्रीने श्रेणिकके अभिप्रायकी व्याख्या करके पितासे पूछा कि वह कहाँ है। उत्तरमें इन्द्रदत्तने कहा कि वह तालाबके किनारे बैठा है। यह सुनकर उसने अपनी निपुणमती नामकी दीर्घ नखवाली दासीको नखमें तेल लेकर उसके पास भेजा। दासीने जाकर उससे पूछा कि इन्द्रदत्त सेठके साथ तुम आये हो क्या। उत्तरमें जब उसने कहा कि 'हाँ' तब निपुणमतीने उससे कहा कि इन्द्रदत्तके एक नन्दश्री नामकी कन्या है, उसने यह तेल भेजकर कहलाया है कि इस तेलको लगाकर और स्नान करके मेरे घरपर आओ। यह सुनकर श्रेणिकने तेलकी ओर देखा। फिर पाँवसे एक गड्ढा करके और उसे पानीसे भरकर उससे कहा कि तेलको यहाँ रख दो। तदनुसार

---

१. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श तद्ग्रथिलत्वं पृष्टे। २. फ सर्वं तद्वृत्तं निवेदितवान् तेन। ३. ब- प्रतिपाठोऽयम्। प श मान्यो भवतीत्युक्तवान् अभि० फ मान्यो भविष्यतीत्यभि०। ४. ब इति पानहौ। ५. प श वृष्टयाभयेन। ६. फ छत्रं धृत इति ब छत्रं धरते। ७. ब भृती नान्यथो०। ८. फ 'च' नास्ति।

पूरित्वात्र तैलं निक्षिपेत्युक्ते सा तत्र निक्षिप्य गच्छन्ती पृष्टा तद्गृहं क्वेति। सा कर्णौ प्रदर्श्य गता। स स्नात्वा तदभ्यज्य[1] केशादिकं स्निग्धं कृत्वा नगरं प्रविष्टस्तालद्रुमालंकृतं गृहं गतः। तावत् सा द्वारे पङ्कं कारयामास। तस्योपरि लघुपाषाणान् धरते[2] स्म। स तान् वीक्ष्य तत्र प्रविश्य बहुकर्दमपादः प्राङ्गणे[3] उपविष्टः। तयातिस्तोकं जलं प्रस्थापितम्। पादौ प्रक्षाल्यान्तः प्रविशेति[4]। स जलदर्शनाद्विस्मितो वेणुचीरणं[5] गृहीत्वा पङ्कमपसार्य जलेन पादौ सार्द्रौ कृत्वा स्तोकं जलं पुनः समर्पितवान्। ततोऽत्यासक्तया तयान्तः प्रवेशितो भणितश्चास्माकं प्राघूर्णको भव। स बभाणाद्य परान्नं न भुञ्जाम[6]। मद्धस्ते[7] द्वे षोडषिके तण्डुलास्तिष्ठन्ति, तैर्यद्यष्टादशभक्ष्यादिर्युक्तभोजनं कोऽपि ददाति तदा भुज्यते, नान्यथा। ततः सा तान् जग्राह, तत्पिष्टेनापूपाश्च कारिता[ः]। निपुणमती व्यक्रीणीत। विटजनस्तस्यै अपूपग्रहणव्याजेन बहु द्रव्यं दत्तवान्। तेन द्रव्येण सा तथा तस्य भोजनमदात्। ततः सकषायपूगीफलभागान् स्वल्पपर्णबहुचूर्णोपेतान् ताम्बूलानदात्। स तान् चर्वन् कषायं परित्यजन् चूर्णेन विचित्रं चित्रमलिखत्[9]। पत्रयोग्यपूगीफलं सावशेषं पत्रं चखाद। तदनु सातिहृष्टानेकप्रदेशवक्रं सच्छिद्रं प्रवालं तदग्रे धृतं दवरकश्च। दवरकाग्रे गुडं विलिप्य यावत्तत् प्रविशति तावत्तच्छिद्रे प्रवेश्य

वह तेलको रखकर जब वापिस जाने लगी तब श्रेणिकने उससे पूछा कि नन्दश्रीका घर कहाँपर है। उत्तरमें वह कानोंको दिखलाकर वापिस चली गई। तब श्रेणिकने स्नान किया और फिर उस तेलको लगाते हुए बालों आदिको स्निग्ध करके वह नगरमें जा पहुँचा। वहाँ वह तालवृक्षसे सुशोभित घरको देखकर उसके भीतर चला गया। इस बीचमें नन्दश्रीने वहाँ कीचड़ कराकर उसके ऊपर छोटे पत्थरोंको डलवा दिया था। वह उनको देखकर कीचड़के भीतर प्रविष्ट हुआ। इससे उसके पाँवोंमें बहुत-सा कीचड़ लग गया था। वह उसी अवस्थामें आंगनमें जाकर बैठ गया। नन्दश्रीने पाँव धोनेके लिए बहुत ही थोड़ा जल रखकर उससे कहा कि पाँवोंको धोकर भीतर आओ। उस जलको देखकर श्रेणिकको बहुत आश्चर्य हुआ। उसने बांसके चीरनको लेकर पहिले उससे कीचड़को दूर किया, फिर जलसे पाँवोंको गीला करके बचे हुए थोड़े-से जलको वापिस दे दिया। तत्पश्चात् नन्दश्री अतिशय अनुरक्त होकर उसे भीतर ले गई और उससे अपने अभ्यागत होनेको कहा। उत्तरमें उसने कहा कि मैं आज दूसरेके अन्नको न खाऊँगा। मेरे हाथमें बत्तीस चावल स्थित हैं। उनसे यदि कोई अठारह भोज्य आदि पदार्थोंसे संयुक्त भोजन देता है तो मैं उसे खाऊँगा, अन्यथा नहीं। इसपर नन्दश्रीने उन चावलोंको ले लिया और उनके आटेसे पुए बनाये। उनको निपुणमतीने ले जाकर बेच दिया। जार पुरुषोंने पुओंके बहानेसे उसे बहुत-सा धन दिया। इस धनसे नन्दश्रीने श्रेणिकको उसके कहे अनुसार अठारह भोज्य पदार्थोंसे संयुक्त भोजन करा दिया। तत्पश्चात् उसने उसे पान खानेके लिए छोटा पान और बहुत चूना तथा कत्थाके साथ सुपाड़ीके टुकड़ोंको दिया। तब वह कषायरसको थूकते हुए उन्हें चबाने लगा। साथ ही उसने चूनाके चूर्णसे अनुपम चित्र बनाया। जब पानके योग्य सुपाड़ी शेष रही तब उसने ताम्बूलपत्रको खाया। पश्चात् नन्दश्रीने अतिशय हर्षित होकर अनेक स्थानमें कुटिल छेदयुक्त प्रवाल (मूँगा) और धागेको उसके सामने रक्खा। तब श्रेणिकने धागेके अग्रभागमें गुड़को लपेटकर जितना जा सका उतना उसे प्रवालके छेदमें डाल दिया। पश्चात् उसे चीटियोंके स्थानमें रख दिया। वहाँ

१. प श तदभ्यक्तके॰ ब तदा भ्युज्य। २. फ श धारते। ३. ब प्रधाक्षणे। ४. ब प्रविश्योति। ५. फ ब चीवरं। ६. फ ब श भुंजीय। ७. ब मद्धस्वे [स्ते]। ८. फ ब भक्ष्यादि। ९. ब॰ मलैखीत्।

स पिपीलिकाप्रवेशे धृतवान्। पिपीलिकाभिराकृष्टो दवरकः। ततः सगुणं प्रवालं तस्या[1] दत्तवान्।

ततोऽत्यासक्ता पितरं बभाण शीघ्रं विवाहं कुर्विति। ततस्तत्पितुः प्रार्थनावशात् सानुरागबुद्ध्या च तां परिणीतवान् श्रेणिकः सुखेन स्थितः। कतिपयदिनैस्तस्या गर्भोऽभूद्दोहलकश्च सप्तदिनान्यभयघोषणारूपस्तमप्राप्नुवन्ती क्षीणशरीरा जाता। तच्चित्तं कथमपि विभिद्य श्रेणिकश्चिन्ताप्रपन्नो वेन्नानदीतटे[2] गत्वा स्थितस्तदवसरे तदधीशवसुपालस्य[3] हस्ती स्तम्भमुन्मूल्य राजादीनुल्लङ्घ्य निर्गतः श्रेणिकेन वशीकृतः। तं चटित्वा पुरं प्रविश्य हस्ती बद्धस्तुष्टेन राज्ञाभीष्टं याचस्वेत्युक्तेऽभिमानित्वादहंकारित्वाच्च न किमपि याच्यते[4]। तदेन्द्रदत्तेनोक्तम्—देवास्य सप्तदिनान्यभयघोषणावाञ्छा विद्यते, तां प्रयच्छेति याचिता प्राप्ता च। ततस्तस्या अभयकुमारनामा पुत्रो बभूव। तमक्षरादिविद्यासु शिक्षयन् सुखेन स्थितः श्रेणिकः।

इतो राजगृहे उपश्रेणिकश्चिलातीपुत्राय राज्यं दत्त्वा मृतिमुपजगाम। स चान्याये प्रवर्तितुं लग्नः। ततः प्रधानैः श्रेणिकस्य विज्ञापनापत्रं प्रस्थापितं राज्यार्थं शीघ्रमागम्यतामिति[5]। ततः श्वशुरस्य स्वरूपं निवेद्य सपुत्रीपुत्रश्च पश्चादागच्छेति[6] गमनोत्सुकोऽभूद्यदा तदा

चींटियोंने उस धागेको खींचकर उसके दूसरी ओर पहुँचा दिया। बस फिर क्या था ? श्रेणिकने धागेसे संयुक्त प्रवाल मणि नन्दश्रीके लिए दे दिया।

तत्पश्चात् नन्दश्रीने श्रेणिकके ऊपर अत्यन्त आसक्त होकर उसके साथ शीघ्र ही विवाह कर देनेके लिए पितासे कहा। तब श्रेणिकने उसके पिताकी प्रार्थनासे तथा स्वयं अनुरागयुक्त होनेसे नन्दश्रीके साथ विवाह कर लिया। फिर वह वहाँ सुखपूर्वक रहने लगा। कुछ दिनोंमें नन्दश्रीके गर्भ रह गया। उस समय उसे सात दिन जीवहिंसा न करनेकी घोषणारूप दोहल उत्पन्न हुआ। उक्त दोहलकी पूर्ति न हो सकनेसे उसका शरीर उत्तरोत्तर कृश होने लगा। तब श्रेणिक किसी प्रकारसे उसके दोहलको ज्ञात करके चिन्तातुर हुआ। वह व्याकुल होकर वेन्ना (कृष्णवेणा) नदीके किनारे जाकर स्थित था। इसी समय उस पुरके राजा वसुपालका हाथी खम्भेको उखाड़ कर राजा आदिको लाँघता हुआ वहाँ जा पहुँचा। श्रेणिकने उसे वशमें कर लिया। वह उसके ऊपर चढ़कर नगरमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ पहुँचकर उसने हाथीको बाँध दिया। इससे राजाको बहुत प्रसन्नता हुई। उसने श्रेणिकसे अभीष्ट वरकी याचना करनेके लिए कहा। परन्तु अभिमानी और अहंकारी होनेसे श्रेणिकने राजासे कुछ भी याचना नहीं की। तब इन्द्रदत्तने कहा कि हे राजन्! इसकी इच्छा है कि नगरमें सात दिन तक अभयकी घोषणा की जाय। उसे स्वीकार करके वैसी घोषणा करा दीजिए। राजाने इसे स्वीकार करके नगरमें सात दिन तक अभयकी घोषणा करा दी। पश्चात् नन्दश्रीके अभयकुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रेणिकने उसे अक्षरादि विद्याओंमें शिक्षित किया। इस प्रकार श्रेणिक वहाँ सुखसे स्थित था।

उधर राजगृहमें उपश्रेणिक राजा चिलातीपुत्रको राज्य देकर मृत्युको प्राप्त हुआ। वह चिलातीपुत्र अन्याय मार्गमें प्रवृत्त हो गया। तब मंत्रियोंने श्रेणिकके पास विज्ञप्तिपत्र भेजकर उससे राज्य कार्यके निमित्त शीघ्र आनेकी प्रार्थना की। इस वृत्तान्तको श्रेणिकने अपने ससुरसे कहा। फिर वह 'आप अपनी पुत्री (नन्दश्री) और पुत्रीपुत्र (अभयकुमार) के साथ हमारे यहाँ पीछे आवें'

१. ब तस्य। २. प वेत्रानदीतटे फ वेणानदीतटे ब वैण्णानदीतटे। ३. श वसुधापालस्य। ४. ब याचते। ५. फ ब शीघ्रमार्गतव्यमिति। ६. फ ब निवेद्य पुत्र्या नप्ता च पश्चात्।

पञ्चशतसहस्रभटाः प्रकटीभूतास्तैः श्वसुरदत्तभृत्यैश्च[1] कतिपयदिनै राजगृहमवाप। तदागमनं परिज्ञाय[2] चिलातीपुत्रो नष्ट्वा दुर्गमाश्रितः[3]। श्रेणिको राजाजनि। राज्ये स्थिरे जाते नन्दिग्राम-ग्रहणार्थं भृत्यान् प्रेषितवान् यदा, तदा प्रधानैः किमित्युक्ते स एकग्रामो मया विनाश्यते। तस्योपरि वैरमस्तीति। तर्हि दोषं व्यवस्थाप्य विनाशनीय इति तैरुक्तस्तत्र[4] मेषः प्रस्थापितो-ऽस्य यथेष्टं ग्रासो दातव्यः, कृशः पुष्टश्च भवति चेद्युष्मान् विनाशयामीति। तदागमनेन ब्राह्मणा दुःखिता जातास्तदैवेन्द्रदत्तः सपरिवारस्तत्र प्राप्तः। तद्वृत्तान्तं विज्ञायाभयकुमारेण समुद्धीरिताः। व्याघ्रद्वयमध्ये बद्धो यदि पुष्टो भवति तौ समीपे क्रियेते, यदि कृशस्तदा दूरं विधीयेते इति तन्मान एव कतिपयदिनैस्तस्य दर्शितः। ततोऽभयकुमारस्य पादयोर्लग्नाः विप्राः, यावदस्माकं शान्तिर्भवति तावत्त्वयात्र स्थातव्यमिति। प्रतिपन्नं तेन। अन्यदा विप्राणा-मादेशो दत्तः कर्पूरवापिका आनेतव्येति। अभयकुमारोपदेशेन तत्समीपवर्तिनः कस्यचिदु-क्तश्चोदन्तो[5] राज्ञो निद्रावसरः कथनीय इति। ग्रामे यावन्तो बलीवर्दा महिषाश्च तेषां युगकन्ध-राणां मालां कृत्वा राजगृहाद् बहिः स्थिताः। तन्निद्रावसरे तूर्यादि[6]निनादैरन्तः प्रविष्टा[7] देव[8],

इस प्रकार ससुरसे कहकर जब राजगृह जानेके लिए उत्सुक हुआ तब वे गुप्त पाँच लाख सुभट प्रगट हो गये। इस प्रकार वह इन सुभटों और ससुरके द्वारा दिये गये सेवकोंके साथ कुछ दिनोंमें राजगृह नगरमें जा पहुँचा। उसके आगमनको जानकर चिलातीपुत्र भागकर दुर्गके आश्रित हुआ। तब श्रेणिक राजा हो गया। राज्यके स्थिर हो जानेपर जब श्रेणिकने नन्दिग्रामको ग्रहण करनेके लिए सेवकोंको भेजा तब मन्त्रियोंके पूछनेपर उसने कहा कि उस एक गाँवको मुझे नष्ट करना है, उसके ऊपर मेरी शत्रुता है। इसपर मन्त्रियोंने कहा कि जब उसे नष्ट ही करना है तो कुछ दोषा-रोपण करके नष्ट करना चाहिए। तब श्रेणिकने वहाँ एक मेढ़ेको भेजकर यह सूचना करायी कि इसे इसकी रुचिके अनुसार घास दिया जाय। परन्तु यदि वह दुर्बल अथवा पुष्ट हुआ तो मैं आप लोगोंको नष्ट कर दूँगा। इस प्रकार की राजाज्ञाको पाकर नन्दिग्रामके ब्राह्मण दुःखी हुए। इसी समय वहाँ परिवारके साथ इन्द्रदत्त आ पहुँचा। उपर्युक्त राजाज्ञाके वृत्तान्तको जानकर अभय-कुमारने उन ब्राह्मणोंको धैर्य दिलाया, उसने उक्त मेढ़ेको दो व्याघ्रोंके बीचमें बाँध दिया। यदि वह पुष्ट होता दिखता तो उन व्याघ्रोंको उसके कुछ समीप कर दिया जाता था और यदि वह दुर्बल होता दिखता तो उक्त व्याघ्रोंको कुछ दूर कर दिया जाता था। इस प्रकार कुछ दिनों तक उसके शरीरका प्रमाण उतना ही दिखलाया गया। इससे वे ब्राह्मण अभयकुमारके चरणोंमें गिर गये। उन सबने अभयकुमारसे प्रार्थना की कि जब तक हम लोगोंका उपद्रव दूर नहीं होता है तब तक आप यहीं रहें। अभयकुमारने इसे स्वीकार कर लिया। दूसरी बार राजाने ब्राह्मणोंको कर्पूर-वापीके लानेकी आज्ञा दी। तब अभयकुमारके उपदेशसे राजाके समीपवर्ती किसी मनुष्यसे यह वृत्तान्त कहकर उससे श्रेणिकके सोनेके समयको बतला देनेके लिए कहा। गाँवमें जितने बैल और भैंसा थे उनकी युगग्रीवाओंकी माला बनाकर वे ब्राह्मण वहाँ गये और राजप्रासादके बाहिर स्थित हो गये। पश्चात् वे राजाके सोनेके समयमें वादित्रोंके शब्दोंके साथ राजप्रासादके भीतर प्रविष्ट

---

१. फ तैः स्वसुरेंद्रदत्त ब तैः स्वसुरदत्त° प श तैः श्वसुरदत्त°। २. फ परिज्ञात्वा। ३. प °पुत्र दृष्ट्वा दुर्ग° ब पुत्रो नष्टादुर्ग्र° श पुत्रस्तं दृष्ट्वा दुर्ग°। ४. प तैरुक्तौ फ तैरुक्तैः ब तैरुक्त श तैरुक्तो। ५. प चोदत्तो ब चोदत्तो। ६. प तुर्यादि श भूर्यादि। ७. प श °रंतरं प्रविष्टा। ८. श देहेव।

वापिका आनीतेति कथिते निद्रालुना तेन तत्रैव मुञ्चतेत्युक्ते बलीवर्दान् गृहीत्वा गताः। राज्ञा पृष्टे तत्रैव मुक्तेत्युक्तम्। अन्यदा हस्ती अस्य[1] गौरवप्रमाणं प्रतिपादनीयमिति प्रस्थापितः। अभयकुमारेण तडागे वहित्रं निक्षिप्य हस्ती प्रवेश्य निःसारितः। तत्प्रमाणास्तत्र पाषाणा निक्षिप्ताः। तानूर्ध्वमानेन प्रमीय तद्गुरुत्वं कथितम्। अन्यदा खदिरसारभूतं हस्तप्रमाणं काष्ठं प्रेषितवानस्याधस्तनोपरितनांशौ कथनीयाविति। तज्जले निक्षिप्य तौ परिज्ञाय निरूपितौ। अन्यदा तिलाः प्रेषिताः, येन केनचिन्मानेन तिलान् गृहीत्वा तन्मानप्रमाणमेव तैलं दातव्यमिति। दर्पणतले तिलान् गृहीत्वा तैलं दत्तम्। अन्यदादेशो दत्तो द्विपदचतुष्पदनालिकेरक्षीरं विहाय भोजनयोग्यं क्षीरमानेतव्यमिति क्षीरग्रहणावसरे शालिकणिशानि निःपीड्य घटान्तरितं कृत्वा तत्क्षीरं[2] प्रेषितम्। अन्यदादेशो दत्तो एक एव कुक्कुटोऽस्मदग्रे योद्धव्य इति तस्य दर्पणं प्रदर्श्य तद्बिम्बेनैव योधितः। अन्यदादेशो दत्तो वालुकावेष्टनमानेतव्यमिति वालुकां गृहीत्वा राजनिकटं गत्वोक्तवन्तो हे देव, भवद्भाण्डागारस्थं तद्वेष्टनं प्रदर्शनीयं येन तत्प्रमाणं कुर्म इति। अस्मद्भाण्डारे नास्ति तर्हि क्वापि नास्तीति वचनेन जित्वा गतः। अन्यदादेशो

हुए। उन लोगोंने राजासे निवेदन किया कि हे देव! हम लोग कर्पूरवापीको ले आये हैं। इसे सुनकर राजाने नींदकी अवस्थामें कहा कि उसको वहींपर छोड़ दो। यह सुनकर वे बैलोंको लेकर वापिस चले गये। फिर जब राजाने उनसे पूछा तो उन लोगोंने कह दिया कि आपकी आज्ञानुसार हमने उसको वहीं छोड़ दिया है। तीसरी बार श्रेणिकने एक हाथीको पहुँचाकर उसके शरीरका प्रमाण (वजन) बतलानेकी आज्ञा दी। तब अभयकुमारने तालाबमें एक नावको रखकर उसके भीतर हाथीको प्रविष्ट कराया और पश्चात् उसे निकाल लिया। हाथीके साथ उस नावको गहरे पानीमें ले जाकर उसका जितना अंश पानीमें डूबा उसको चिह्नित कर दिया। फिर नावमेंसे उस हाथीको नीचे उतारकर उसमें पत्थरोंको रक्खा। उपर्युक्त चिह्न प्रमाण नावके डूबने तक जितने पत्थर नावमें आये उन सबको तौलकर तत्प्रमाण हाथीके शरीरका प्रमाण निर्दिष्ट करा दिया। चौथी बार श्रेणिकने एक हाथ प्रमाण खैरकी सारभूत लकड़ीको भेजकर उसके नीचे और ऊपरके भागोंको बतलानेकी आज्ञा दी। तब उसको पानीमें डालकर उन दोनों भागोंको ज्ञात किया और श्रेणिकको बतला दिया। पाँचवीं बार उसने तिलोंको भेजकर यह आज्ञा दी कि जिस किसी मानसे तिलोंको ले करके उस मानके प्रमाण ही तेल दो। तब दर्पणतलके प्रमाण तिलोंको लेकर तत्प्रमाण तेल समर्पित कर दिया गया। छठी बार ब्राह्मणोंको यह आज्ञा दी गई कि द्विपद (मनुष्य), चतुष्पद (गाय-भैंस आदि) और नारियलके दूधको छोड़कर भोजनके योग्य दूधको लाओ। इस आज्ञाकी पूर्तिके लिए दूधके ग्रहणके समय धानके कणोंको पेरकर और उसे घड़ेके भीतर करके वह दूध श्रेणिके पास भेज दिया गया। सातवीं बार उन्हें यह आदेश दिया गया कि हमारे आगे एक ही मुर्गेको लड़ाओ। तब उस मुर्गेको दर्पण दिखलाते हुए उसके प्रतिबिम्बके साथ ही लड़ाकर उक्त आदेशकी पूर्ति कर दी गई। आठवीं बार जब उन्हें बालुके वेष्टनको लानेकी आज्ञा दी गई तब वे बालुको लेकर राजाके पास गये और उससे कहा कि हे देव! आप अपने भाण्डागारमें स्थित बालुके वेष्टनको दिखलाइए, जिससे कि हम उसके बराबर इसे तैयार कर दें। यह सुनकर जब राजाने कहा कि हमारे भाण्डागारमें वह नहीं है तब उन ब्राह्मणोंने कहा कि तो फिर वह कहीं

---

१. क 'अस्य' नास्ति। २. क पटांतरितं कृत्वा तत्क्षीरे ब पट्टांतरितं कृत्वा तत् क्षीर-।

दत्तो घटस्थकूष्माण्डमानेतव्यमिति लघु तत्फलं घटे निक्षिप्य वर्धयित्वा दत्तम् । अन्यदा राज्ञा प्रत्युपायदायकपरिज्ञानार्थं विचक्षणाः प्रेषिताः । तानागच्छतो बहिर्जम्बूवृक्षस्योपरिस्थितोऽभयकुमारोऽपश्यत् । अमीभिर्मा कोऽपि वदत्विति[1] सर्वे बटुका निवारिताः[2] । तैरागत्य वृक्षतले उपविश्य कुमारस्योक्तमस्मभ्यं जम्बूफलानि देहीति । तेनोक्तमुष्णानि[3] दीयन्ते शीतलानि वा[4] । तैरुक्तमुष्णानि[4] प्रयच्छेति, ततः पक्वानि गृहीत्वा ईषद्धस्ते मर्दयित्वा वालुकामध्ये निक्षिप्तानि । वालुकाः फूत्कुर्वतस्तानवलोक्य[5] कुमारोऽभणत् 'दूरेण फूत्कुर्वन्त्वन्यथा श्मश्रूणि उपप्लुष्यन्ति[6] ।' ततस्ते लज्जिताः[7] शीतलानि याचयित्वा व्याघुट्य गत्वा राज्ञस्तत्स्वरूपं कथितवन्तः । ततोऽन्यदादेशो दत्तस्तत्रत्यबालकैर्मार्गमुन्मार्गं शकटाद्यारोहणमहोरात्रं च वर्जयित्वागन्तव्यमिति । ततः शकटोनामकेषु शिक्यानि बन्धयित्वा तेषु प्रविश्याभयकुमारादयः संध्यावसरे राजानमपश्यन् । तदुक्तम्—

> मेषश्च वापी करिकाष्ठतैलं क्षीराण्डजं[8] वालुकवेष्टनं च ।
> घटस्थकूष्माण्डफलं शिशूनां दिवानिशावर्जसमागमं च ॥२॥

भी सम्भव नहीं है, यह कहकर वे वापिस चले गये । नवमी बार राजा श्रेणिकने उन्हें यह आज्ञा दी कि घड़ेमें रखकर कुम्हड़ाको लाओ । तब उन्होंने एक छोटे-से कुम्हड़ाके फलको घड़ेके भीतर रखकर वृद्धिंगत किया और फिर उसे राजाको समर्पित कर दिया ।

इसके पश्चात् राजाने प्रत्युपाय देनेवाले (उक्त समस्याओंके हल करनेका उपाय बतानेवाले) मनुष्यको ज्ञात करनेके लिए चतुर पुरुषोंको नन्दिग्राम भेजा । उस समय अभयकुमार गाँवके बाहिर एक जामुनके वृक्षपर चढ़ा हुआ था । उसने उनको आते हुए देखकर सब बालकोंसे कहा कि इनके साथ कोई वार्तालाप न करे, इस प्रकार कहकर उसने समस्त बालकोंको उनसे बात-चीत करनेसे रोक दिया । तत्पश्चात् राजाके द्वारा भेजे हुए वे चतुर पुरुष वहाँ आकर उक्त जामुन वृक्षके नीचे बैठ गये । वहाँ उन्होंने अभयकुमारसे कहा कि हमारे लिए कुछ जामुनके फल दो । इसपर अभयकुमारने उनसे पूछा कि गरम फल दिये जाँय या शीतल । उत्तरमें उन्होंने गरम फल देनेके लिए कहा । तब अभयकुमारने पके हुए फलोंको लेकर और उन्हें कुछ हाथसे मसलकर वालुके मध्यमें रक्खा, उन फलोंको पाकर जब वे उनके ऊपरकी धूलको फूँकने लगे तब उन्हें ऐसा करते हुए देखकर अभयकुमारने कहा कि दूरसे फूंको, अन्यथा दाढ़िया जल जावेंगी । इससे लज्जित होकर उन्होंने उससे शीतल फलोंकी याचना की । तत्पश्चात् वापिस जाकर उन लोगोंने यह सब वृत्तान्त राजासे कह दिया । उसे सुनकर राजाने दूसरे दिन उन्हें यह आदेश दिया कि नन्दिग्रामके बालक मार्ग, कुमार्ग और गाड़ी आदि सवारी तथा दिन-रात्रिको छोड़कर यहाँ उपस्थित हों । तब अभयकुमार आदिने गाड़ी आदिके अक्षोंमें सीकोंको बाँधकर और उनके भीतर प्रविष्ट होकर सन्ध्याके समयमें राजाके दर्शन किये । वही कहा है—

मेढ़ा, वापी, हाथी, लकड़ीका टुकड़ा, तेल, दूध, मुर्गा, बालुवेष्टन, घड़ेमें स्थित कुम्हड़ाका फल और दिन व रातको छोड़कर बालकोंका आगमन; इतने प्रश्नोंका समाधान करके राजाज्ञाकी आज्ञाके पालन करनेका आदेश नन्दिग्रामके उन ब्राह्मणोंको दिया गया था ॥२॥

१. फ वदंत्विति । २. प वटुकानिबारिताः, फ वटुकानि निवारिताः ब वाटुका निवारिताः । ३. श अतोऽग्रेऽग्रिम 'मुष्णाणि' पर्यन्तः पाठः स्खलितोऽस्ति । ४. फ ब च । ५. फ फुत्कुर्वन्त त- । ६ फ स्मश्रुण्यपष्णुष्यन्ति, ब स्मश्रुण्युपश्यनुन्ति । ७. फ लक्षिताः । ८. श क्षीरांबुजं ।

कर्तव्यमिति। ततः पितापुत्रयोः संयोग इति तेन तद्ग्रामस्याभयदानं दापितम्। ततो राज्ञा नन्दश्रियो महादेवीपट्टो बद्धो। अभयकुमारस्य च युवराजपट्टः। जठराग्निं राजगुरुं[1] कृत्वा वैष्णवं धर्मं प्रकाशयन् सुखेन स्थितः।

अत्र कथान्तरम्। तथाहि— अत्रैक इभ्यः[2] समुद्रदत्तस्तस्य द्वे भार्ये वसुदत्ता वसुमित्रा च। कनिष्ठायाः पुत्रोऽस्ति। उभे अपि तं क्रीडयतः स्तनं च पाययतः। मृते श्रेष्ठिनि तयोर्विवादोऽजनि मम पुत्र इति। राजापि तं निवर्तयितुं न शक्नोति। अभयकुमारोऽपि बहुप्रकारैस्तच्छेदयन्नपि यदा न जानाति[3] तदा बालं भूमौ निक्षिप्य छुरिकामाकृष्य तस्योपरि[4] व्यवस्थाप्योभाभ्यामर्धमर्धं पुत्रस्य ग्राह्यमित्युक्ते मात्रोदितमस्यै[5] समर्पय देवाहमवलोक्य तिष्ठामीति। ततस्तन्मातरं परिज्ञाय तस्यै[6] समर्पितः।

अन्यदायोध्यानगरे कश्चित्कुटुम्बी बलभद्रः, तद्वनितां[7] रूपवतीं भद्रसंज्ञां[8] विलोक्य ब्रह्मराक्षसस्तत्कुटुम्बीवेषेण गृहं प्रविष्टस्तया गतिभङ्गेन ज्ञात्वा द्वारं दत्तमपवरकस्य। इतरोऽप्यागतः। तदा गोत्रस्य विस्मयोऽभूत्। [9]संकेतादिकमुभावपि कथयतः। कोऽपि भेदयितुं न शक्नोति। तदा अभयकुमारान्तिकमागतौ सभामध्ये। दृष्टि-स्वर-गतिभङ्गेन भेदयितुमशक्तः

तत्पश्चात् पिता और पुत्रका मिलाप हो जानेसे अभयकुमारके द्वारा उस नन्दिग्रामको अभयदान दिलाया गया। पश्चात् राजाने नन्दश्रीको महादेवीका और अभयकुमारको युवराजका पट्ट बाँधा। वह जठराग्निको राजगुरु बनाकर वैष्णव धर्मका प्रचार करता हुआ सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

यहाँ दूसरा एक कथानक है जो इस प्रकार है— यहाँ एक समुद्रदत्त नामका एक धनी था। उसके दो स्त्रियाँ थीं— वसुदत्ता और वसुमित्रा। छोटी पत्नीके एक पुत्र था। उसको वे दोनों ही खिलातीं और स्तनपान करातीं थीं। सेठके मर जानेपर उन दोनोंमें पुत्रविषयक विवाद उत्पन्न हुआ— वसुदत्ता कहती कि पुत्र मेरा है और वसुमित्रा कहती कि नहीं, वह पुत्र मेरा है। राजा भी इस विवादको नष्ट नहीं कर सका। अभयकुमारने भी अनेक प्रकारसे इस रहस्यको जाननेका प्रयत्न किया, किन्तु जब वह भी यथार्थ बातको नहीं जान सका तब उसने बालकको पृथिवीपर रखकर एक छुरी उठायी और उसे उस बालकके ऊपर रखकर उन दोनोंसे कहा कि मैं इस बालकके बराबर-बराबर दो टुकड़े कर देता हूँ। उनमेंसे तुम दोनों एक-एक टुकड़ा ले लेना। इसपर बालककी जननीने कहा कि हे देव! ऐसा न करके बालकको इसे ही दे दें। मैं उसको देखकर ही सुखी रहूँगी। इससे अभयकुमारने बालककी यथार्थ माताको जानकर पुत्रको उसके लिए दे दिया।

किसी समय अयोध्या नगरमें एक बलभद्र नामका किसान रहता था। एक समय उसकी भद्रा नामकी सुन्दर स्त्रीको देखकर बलभद्रके वेषमें उसके घरके भीतर ब्रह्मराक्षस प्रविष्ट हुआ। तब भद्राने गतिके भंगसे जानकर घरका (या शयनागारका) द्वार बन्द कर लिया। इतनेमें दूसरा (बलभद्र) भी आ गया। तब कुटुम्बीजनको आश्चर्य हुआ, क्योंकि संकेत आदिको वे दोनों ही बतलाते थे। इस रहस्यको कोई भी नहीं जान पा रहा था। तब वे दोनों अभयकुमारके पास सभाके

१. प श जठराग्निराज-। २. फ अत्रैकेभ्यः। ३. प जदा न यानाति, फ यदा न यावति, ब यदा न यानालि। ४. श विवस्थाप्य। ५. फ मात्रोदितास्यै श मात्रोदितामस्यै। ६. प ब परिज्ञाय तस्यैव श परिज्ञाया स्यैव। ७. श सद्वनितां। ८. फ रुद्रा संज्ञां। ९. फ संकेतादपिक-।

सभुभावप्यवरकान्तः प्रवेश्य द्वारं दत्त्वा उक्तवान्—यः कुञ्चिकाविवरेण निःसरति स गृह-स्वामी भवतीति। ततो निर्गतो ब्रह्मराक्षसः। इतरो न शक्नोति। ततस्तस्य समर्पिता इति प्रसिद्धिं गतोऽभयकुमारः।

अत्रान्या कथा। अयोध्यायां भरतनामा चित्रकः पद्मावतीमाराधयन् यद्रूपं[1] मनसि विचिन्त्य लेखनी पटे ध्रियते तद्रूपं[2] स्वयमेव भवत्विति वरो याचितवांश्च। लब्ध्वानेकदेशेषु स्वविद्यां प्रकाशयन् सिन्धुदेशे वैशालीपुरं गतः। तत्र राजा चेटको देवी सुभद्रा पुत्र्यः सप्त—प्रियकारिणी मृगावती जयावती सुप्रभा ज्येष्ठा चेलिनी चन्दना। तत्र लेखिनीमवलम्बितवान्। राज्ञोऽग्रे सर्वे चित्रकारा[3] जिताः। ततो राज्ञा तस्मै वृत्तिर्दत्ता[4]। कन्यानां रूपाणि विलेख्य द्वारेऽविलम्ब्य धृतानि विलोक्य जनेन नमस्कृत्य स्वयं विलेख्य[5] स्वस्वद्वारेऽवलम्बितानि। ताः सप्तमातृकाः जाताः। तासु चतसृणां विवाहो जातः। तिस्रः कन्याः माटे स्थिताः। तत्र चेलिन्या निर्ग्रन्थरूपं मनसि धृत्वा पटे[6] लेखिनी धृता तेन[7]। तदनु यथावद्रूपं बभूवाङ्गे विद्यमानस्तिलोऽपि तत्रासीत्। तं दृष्ट्वानेन कन्याशीलं विनाशितमिति रुष्टो राजा। केनचिद्भरताय निवेदितं तव राजा कुपित इति।

मध्यमें आये। वह भी दृष्टि, स्वर और गतिके भेदसे उनमें भेद नहीं कर सका। तब उसने उन दोनोंको ही घरके भीतर करके द्वार बन्द कर दिया और कहा कि जो कुञ्चिका (चाबी) के छेदसे बाहिर निकलता है वह घरका स्वामी समझा जावेगा। तब ब्रह्मराक्षस उस कुञ्चिकाके छेदसे बाहिर निकल आया। परन्तु दूसरा (बलभद्र) नहीं निकल सका। इसलिए अभयकुमारने भद्राको उसके लिए (बलभद्रके लिए) समर्पित कर दिया। इस प्रकारसे अभयकुमार प्रसिद्ध हो गया।

यहाँ दूसरी एक कथा है—अयोध्यापुरीमें एक भरत नामका चित्रकार था। उसने पद्मावतीकी उपासना करते हुए उससे ऐसे वरकी याचना की कि मैं जिस रूपका विचार कर लेखनीको पटके ऊपर धरूँ वह रूप स्वयं हो जावे। इस वरको पाकर वह अनेक देशोंमें अपनी विद्याको प्रकाशित करता हुआ सिन्धुदेशस्थ वैशाली नगरमें पहुँचा। वहाँका राजा चेटक था। उसकी पत्नीका नाम सुभद्रा था। इनके ये सात पुत्रियाँ थीं—प्रियकारिणी, मृगावती, जयावती, सुप्रभा, ज्येष्ठा, चेलिनी और चन्दना। भरत चित्रकारने वहाँ लेखनीका अवलम्बन लेकर इस विद्यामें राजाके समक्ष सब चित्रकारोंको जीत लिया। तब राजाने उसे वृत्ति (आजीविका) दी। उसने उससे कन्याओंके रूपोंको लिखाकर उन्हें द्वारके ऊपर लटकवा दिया। उनको देखकर प्रजाजनने नमस्कारपूर्वक उन्हें स्वयं लिखाकर अपने-अपने द्वारके ऊपर टँगवा दिया। इस प्रकार वे सात मातृका प्रसिद्ध हो गई थीं। उनमें चार कन्याओंका विवाह हो चुका था। शेष तीन कन्याएँ माट (घर) में स्थित थीं—कुँवारी थीं। वहाँ उक्त चित्रकारने मनमें चेलिनीके निर्वस्त्र (नग्न) रूपका विचारकर पटपर अपनी लेखनीको रक्खा। तब तदनुसार जैसा उसका रूप था पटपर अंकित हो गया। यहाँ तक कि उसके गुप्त अंगपर जो तिल था वह भी चित्रपटमें अंकित हो गया था। उसे देखकर राजाको यह विचार हुआ कि इसने कन्याके शीलको नष्ट किया है। अतएव उसको चित्रकारके ऊपर अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ। किसीने जाकर भरत चित्रकारसे यह कह दिया कि तुम्हारे ऊपर राजा रुष्ट हो गया है। इससे वह वहाँसे भाग गया।

१. फ ब °माराधयद्रूपं श °माराधयत् यद्रूपं। २. फ लेखनीपटे तद्रूपं। ३. राज्ञाग्रे सर्वे चित्रकारान्। ४. फ तस्यै वृत्ति दत्ता ब तस्यैव वृत्तिर्दत्ता। ५ फ ब विलिख्य। ६. फ पट। ७. श लेखिनी ता।

ततः स पलाय्य राजगृहे श्रेणिकस्य तद्रूपमदर्शयत्[1]। स तद्वीक्षणात् सचिन्तोऽजनि— कथं सा प्राप्यते, स जैनं विहायान्यस्य स्वतनुजां न प्रयच्छति, युद्धे च विषम[2] इति। अभयकुमारः पितृभक्त्या तं समुद्धीर्य स्वयं सार्थाधिपो भूत्वा तत्र जगाम। चेटकमहाराजं वीक्ष्य संभाष्य च तस्यातिप्रियोऽजनि। राजभवनान्तिके आवासं ययाचे। तत्र तिष्ठन् जैनत्वेन गुणेन चातिप्रसिद्धोऽभूत्। कन्यात्रयाग्रे श्रेणिकरूपं प्रशंसयामास। तास्तद्वासकास्तं[3] प्रार्थिरे, अस्मान् तं प्रति नयेति। स स्वावासात्तत्र सुरङ्गामकार्षीत्[4]। तेनाकर्षणावसरे चन्दना अवादीन्मुद्रिका[5] विस्मृता मया, ज्येष्ठावदत् हारो मयेति द्वे अपि व्याघुटयेते[6]। स चेलिन्या तस्मान्निर्जगाम पुरादपि, दिनान्तरे राजगृहं समाययौ। श्रेणिकोऽर्धपथान्महाविभूत्या[7] तां पुरमवीविशत्सुमुहूर्ते अवीवरदग्रमहिषीं चकार।

तथा भोगाननुभवन् स्वधर्मं तस्या अचीकथत्[8]। तथापि सा जिनधर्मं नात्यजत्। एकदा जठराग्निरागत्य तदग्रेऽभणत्—हे देवि, क्षपणका मृत्वा सुरलोके क्षपणका एव भवन्तीति[9]। तयावादि कथं त्वयाबोधीदम्। सोऽवदद्विष्णुर्मतिमदात्तयाबोधि[10] मया। एवं तर्हि

उसने वहाँसे राजगृहमें जाकर वह रूप राजा श्रेणिकको दिखलाया। उस रूपको देखकर श्रेणिकको उसके प्राप्त करनेकी चिन्ता उत्पन्न हुई। श्रेणिक विचार करने लगा कि वह (राजा चेटक) जैनको छोड़कर दूसरेके लिए अपनी कन्या नहीं दे सकता है। उधर युद्धमें उसको जीतना अशक्य है। तब पितृभक्त अभयकुमारने पिताको धैर्य दिलाया और वह स्वयं व्यापारियोंके संघका स्वामी बनकर वैशाली जा पहुँचा। वहाँ जाकर वह चेटक महाराजसे मिलकर और उनसे सम्भाषण करके उनका अतिशय प्रेमपात्र बन गया। उसने चेटकसे राजभवनके पास ठहरनेके लिए स्थान देनेकी प्रार्थना की। तदनुसार स्थान प्राप्त करके वहाँ रहता हुआ वह जैनत्व गुणसे अतिशय प्रसिद्ध हो गया। उसने चेटक राजाकी अविवाहित तीन कन्याओंके समक्ष श्रेणिकके रूपकी खूब प्रशंसा की। श्रेणिकके विषयमें अनुरक्त होकर उन कन्याओंने उससे श्रेणिकके पास ले चलनेकी प्रार्थना की। इसके लिए अभयकुमारने वहाँ अपने निवासस्थानसे लगाकर एक सुरंग बनवायी। अभयकुमार जब इस सुरंगसे उन तीनोंको ले जा रहा था तब चन्दना बोली कि मैं मुँदरी भूल आयी हूँ और ज्येष्ठा बोली कि मैं हारको भूल आयी हूँ। इस प्रकार वे दोनों वापिस हो गईं। तब अभयकुमार चेलिनीके साथ वहाँसे निकल पड़ा और कुछ ही दिनोंमें वैशालीसे राजगृह आ गया। श्रेणिकने चेलिनीको आधे मार्गसे महा विभूतिके साथ नगरमें प्रविष्ट कराया और शुभ मुहूर्तमें उसके साथ विवाह करके उसे पटरानी बना दिया।

वह उसके साथ भोगोंका अनुभव करता हुआ उसे अपने धर्मके विषयमें कहने लगा। तो भी उसने जिनधर्मको नहीं छोड़ा। एक दिन जठराग्निने आकर उससे कहा कि हे देवी! क्षपणक (दिगम्बर) मर करके स्वर्गलोकमें क्षपणक (दरिद्र) ही होते हैं। यह सुनकर चेलिनीने उससे कहा कि यह तुमने कैसे जाना है। उत्तरमें उसने कहा कि मुझे विष्णुने बुद्धि दी है, उससे मैं यह सब जानता हूँ। यह सुनकर चेलानी बोली कि यदि ऐसा है तो आप

१. फ ब तद्रूपमदीदर्शन्। २. फ युद्धे तद्दुर्गातिविषम। ३. श तास्तद्दासकत्या सं०। ४. फ सुरंगमाकार्षी ब सुरंगमाकाषी०। ५. प श चंदनावावदी० ब चंदना अवदी०। ६. प श व्याजघुटतु: फ व्याघुट्यते ब व्याघुटतु। ७. प श श्रेणिकोर्द्धपथमहा० ब श्रेणिकोर्द्धपथा महा०। ८. ब तस्याचीकथं। ९. फ क्षपणा एव भवतीति ब क्षपणा एव भवन्तीति श क्षपका एव भवंतीति। १०. प ०द्विष्णुर्म्मतिमदात्तथाबोधि।

ममालये श्वो युष्माभिर्भोक्तव्यमभ्युपगतं तेन। अपराह्णे तान् सर्वानाहूयोपवेशिताः। तेषामेकैकामुपानहमपनीय सूक्ष्मांशान् कृत्वा अन्ने निक्षिप्य तेषामेव भोक्तुं दत्ताः। तैश्च भुक्त्वा गच्छद्भिरेकैका प्राणहिता न दृष्टा। तदा देवी पृष्टा। साब्रवीत्— ज्ञानेन ज्ञात्वा गृह्णन्तु। न तथाविधं ज्ञानमस्ति तर्हि दिगम्बरगतिं कथं जानीध्वे। न जानीमः, प्राणहिता दापय। साभणत् 'भवद्भिरेव भक्षिताः कस्माद्दापयामि'। तत्रैकेन छर्दितम्। तत्र चर्मखण्डानि विलोक्य ललज्जिरे, स्वावासं जग्मुः।

अन्यदा राजा अभाणीत्[1]—देवि, मदीया गुरवो यदा ध्यानमवलम्बन्ते तदात्मानं विष्णुभवनं नीत्वा तत्र सुखेनासते। [तयोक्तम्–] तर्हि तद्ध्यानं पुराद्बहिर्मण्डपे मे दर्शय यथा त्वद्धर्मं स्वीकरोमि। ततस्तन्मण्डपे वायुधारणं विधाय सर्वे तस्थुः। स तस्या अदर्शयत्। सा तान् वीक्ष्य सख्या मण्डपे अग्निमदीपयत्[2]। तस्मिन् प्रज्वलिते तेऽनश्यन्। राजा तस्या रुष्टोऽवदच्च—यदि भक्तिर्नास्ति तर्हि किमेतान् मारयितुं तवोचितमिति। सावोचत्—देव, शृणु कथानकमेकम्। वत्सदेशे कौशाम्ब्यां राजा वसुपालो देवी यशस्विनी श्रेष्ठी सागरदत्तो भार्या वसुमती। अन्योऽपि श्रेष्ठी समुद्रदत्तो वनिता सागरदत्ता। श्रेष्ठिनौ परस्परस्नेह-

---

कल मेरे घरपर आकर भोजन करें। उसने इसे स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन चेलिनीने उन सबको बुलाकर महलके भीतर बैठाया। तत्पश्चात् उसने उनमेंसे हर एकका एक-एक जूता लेकर उसके अतिशय सूक्ष्म भाग किये और उनको भोजनमें मिलाकर उन सभीको खिला दिया। भोजन करके जब वे वापिस जाने लगे तब उन्हें अपना एक-एक जूता नहीं दिखा। इसके लिए उन्होंने चेलिनीसे पूछा। उत्तरमें चेलिनीने कहा कि ज्ञानसे जानकर उन्हें खोज लीजिए। इसपर उन लोगोंने कहा कि हमको वैसा ज्ञान नहीं है। यह सुनकर चेलिनी बोली कि तो फिर दिगम्बर साधुओंकी परलोकवार्ता कैसे जानते हो? इसके उत्तरमें साधुओंने कहा कि हम नहीं जानते हैं, हमारे जूतोंको दिलवा दो। तब चेलिनीने कहा उनको तो आप लोगोंने ही खा लिया है, मैं उन्हें कहाँसे दिला सकती हूँ? इसपर उनमेंसे एक साधुने वमन कर दिया। उसमें सचमुचमें चमड़ेके टुकड़ोंको देखकर लज्जित होते हुए वे अपने स्थानपर चले गये।

दूसरे दिन किसी समय राजाने चेलिनीसे कहा कि हे देवी! जब मेरे गुरु ध्यानका आश्रय लेते हैं तब वे अपनेको विष्णुभवनमें ले जाकर वहाँ सुखपूर्वक रहते हैं। यह सुनकर चेलिनीने कहा कि तो फिर आप नगरके बाहिर मण्डपमें मुझे उनका ध्यान दिखलाइए। इससे मैं आपके धर्मको स्वीकार कर लूँगी। तत्पश्चात् वे सब गुरु उस मण्डपके भीतर वायुका निरोध करके बैठ गये। श्रेणिकने यह सब चेलिनीको दिखला दिया। तब चेलिनीने उन्हें देखकर सखीके द्वारा मण्डपमें आग लगवा दी। अग्निके प्रदीप्त होनेपर वे सब वहाँसे भाग गये। इससे क्रोधित होकर राजाने उससे कहा कि यदि तुम्हारी उनमें भक्ति नहीं थी तो क्या उनके मारनेका प्रयत्न करना तुम्हें योग्य था। उत्तरमें चेलिनीने श्रेणिकसे कहा कि हे देव! एक कथानकको सुनिए—वत्स देशके भीतर कौशाम्बी नगरीमें वसुपाल नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम यशस्विनी था। इसी नगरीमें एक सागरदत्त नामका सेठ रहता था, इसकी पत्नीका नाम वसुमती था। वहींपर दूसरा एक समुद्रदत्त नामका भी सेठ था उसकी पत्नीका नाम सागर-

---

१. ब राजा राज्ञी अभाणीत् क राजा अभणीत् श राजा राज्ञी अभणीत्। २. ब अग्निमदीदयत् श अग्निमदापयन्।

स्नेहवर्धं वाग्निबन्धं चक्रतुः। आवयोः पुत्रपुत्र्योरन्योन्यं विवाहेन भवितव्यमिति प्रतिपन्नमुभाभ्याम्। सागरदत्तवसुमत्योः सर्पः पुत्रो वसुमित्रनामाजनि इतरयोर्नागदत्ता[1] पुत्री। समुद्रदत्तस्तस्या वसुमित्रस्य च विवाहं चकार[2]। एकदा नागदत्तां यौवनवतीं[3] वीक्ष्य तन्माता-रोदीत् मम[4] पुत्र्याः कीदृशो वरोऽभवदिति[5]। तनुजापृच्छत् 'हे मातः, किमिति रोदिषि'। तयोक्तम् 'तवेशं वीक्ष्य रोदिमि'। तनुजा आलपीत्—ममेशो दिवा पिट्टारके सर्पो भूत्वास्ते, रात्रौ दिव्यपुरुषो भूत्वा भोगान्मया सह भुनक्ति। तर्हि तस्मान्निर्गते पिट्टारकं[6] मह्यं देहीत्युक्ते तयादत्त। इतरया दग्धस्ततः स पुरुष एव भूत्वा स्थित इति। एतेऽपि शरीरे दग्धे तत्रैव तिष्ठन्तीति मयैतत् कृतमिति[7]। राजा मनसि कोपं निधाय तूष्णीं स्थितः। 'अन्यदा पापर्द्धिं गच्छन् आतापनस्थं[8] यशोधरमुनिं विलोक्य[9] कुक्कुरान् मुमोच[10]। प्रणम्य स्थितान्[11] विलोक्य तत्कण्ठे मृतसर्पो बद्धस्तदवसरे सप्तमावनौ आयुर्बद्धम्[12]। चतुर्थदिने रात्रौ देव्याः कथितवांस्तयाभाणि विरूपकं कृतमात्मानं दुर्गतौ निक्षिप्तवान् इति। सोऽभणत् 'त्यक्त्वा किं

दत्ता था। इन दोनोंने परस्परके स्नेहको स्थिर रखनेके लिए ऐसा वाग्-निश्चय किया कि हम दोनोंके जो पुत्र और पुत्री हो उनका परस्पर विवाह कर दिया जाय। इसे उन दोनोंने स्वीकार कर लिया। पश्चात् सागरदत्त और वसुमतीके वसुमित्र नामका सर्प पुत्र उत्पन्न हुआ तथा अन्य (समुद्रदत्त और सागरदत्ता) दोनोंके नागदत्ता नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। तब पूर्व प्रतिज्ञानुसार समुद्रदत्तने नागदत्ता और वसुमित्रका परस्परमें विवाह कर दिया। एक समय नागदत्ता पुत्रीको यौवनवती देखकर उसकी माता (सागरदत्ता) 'मेरी पुत्रीको कैसा वर मिला है' यह सोचकर रो पड़ी। तब नागदत्ताने उससे पूछा कि हे माँ! तू क्यों रोती है। उसने उत्तर दिया कि मैं तेरे पतिको देखकर रोती हूँ। यह सुन पुत्रीने कहा कि मेरा स्वामी दिनमें सर्प होकर पिटारेमें रहता है और रातमें दिव्य पुरुषके रूपमें मेरे साथ भोगोंको भोगता है। यह सुनकर सागरदत्ता बोली कि तो फिर जब तेरा पति उस पिटारेमेंसे निकले तब तू उस पिटारेको मेरे हाथमें दे देना। तदनुसार पुत्रीने वह पिटारा माँको दे दिया। तब सागरदत्ताने उसे अग्निमें जला दिया। इससे अब वह (वसुमित्र) दिन-रात पुरुषके ही स्वरूपमें रहने लगा। इसी प्रकार हे स्वामिन्! ये आपके गुरु भी शरीरके जल जानेपर उसी विष्णुभवनमें रहेंगे, ऐसा विचारकर मैंने भी यह कार्य किया है। यह चेलिनीका उत्तर सुनकर राजाके मनमें अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ। परन्तु उसे चुप रहने पड़ा।

किसी दूसरे समय राजा श्रेणिक शिकारके लिए जा रहा था। मार्गमें उसे आतापनयोगमें स्थित यशोधर मुनि दिखायी दिये। उन्हें देखकर उसने उनके ऊपर कुत्तोंको छोड़ दिया। वे कुत्ते प्रणाम करके मुनिके पासमें स्थित हो गये। उन्हें इस प्रकार स्थित देखकर श्रेणिकने मुनिके गलेमें मरा हुआ सर्प डाल दिया। इस समय राजा श्रेणिकने इस कृत्यसे सातवीं पृथिवीकी आयुका बन्ध कर लिया। इस वृत्तान्तको श्रेणिकने चौथे दिन रात्रिमें चेलिनीसे कहा। तब चेलिनीने श्रेणिकसे कहा कि आपने इस कुकृत्यको करके अपनेको दुर्गतिमें डाल दिया है। इसपर श्रेणिकने

१. श इतरोयोनागं। २. ब -प्रतिपाठोऽयम्। प श समुद्रदत्तस्य वसुमित्रस्य च विवाहं चकार, फ समुद्रदत्तसागरदत्तयोस्तस्य वसुमित्रस्य विवाहं चकार। ३. श यौवनमतीं। ४. प श वीक्ष्यरोदीन्मम। ५. फ वरो भवति। ६. ब- प्रतिपाठोऽयम्। प पेट्टारकं फ पिट्टरकं श पिदारकं। ७. फ कृत इति। ८. प श गच्छता [आ] तापनस्थं। ९. प श विलुलोके। १०. कुक्कुरान्। ११. ब- प्रतिपाठोऽयम्। प फ श स्थित्वा तान्। १२. फ बद्धभावादवसरे (अर्थसूचकटिप्पणेनानेन भवितव्यम्) सप्तमोऽवनौ आयुर्बंध।

गन्तुं न शक्नोति[1]। तया जल्पितम्—महामुनयस्तथा न यान्ति। तर्हीदानीमेव यावोऽवलोकयितुम्। तदानेकदीपिकाप्रकाशेनानेकभृत्यादिभिर्ययतुस्तथैवेक्षांचक्राते। तत्र उष्णोदकेन शरीरं प्रक्षाल्य समभ्यर्च्य तत्पदसेवां कुर्वाणावासतुः। सूर्योदये प्रदक्षिणीकृत्य देवी बभाण—हे संसृतिसागरोत्तारक, उपसर्गो यतो हस्तावुत्थाप्य[1] गृहाण। ततो हस्तावुद्धृत्योपविष्टो मुनिः, ताभ्यां प्रणतः, उभयोर्धर्मवृद्धिरस्त्विति[2] उक्तवान्। ततस्तेन चिन्तितम्—अहोऽद्वितीया क्षमा मुनेरिति[3]। स्वशिरश्छेदयित्वास्य पादौ पूजयामीति मनसि धृतम् तेन। ततो मुनिर्बभाण—हे राजन्, विरूपकं चिन्तितं त्वया। कथम्। इत्थमिति[4]। राजा जजल्प 'कथमिदं ज्ञातम्'। देवी बभाण—किमिदं कौतुकमालोकि त्वया[5], स्वातीतभवान् पृच्छ[6]। ततो विज्ञापयांचकारावनिपालो भो प्रभो, कोऽहंऽपूर्वजन्मनि कथयेति। अब्रवीकथन्मुनिपस्तथाहि—

अत्रैवार्यखण्डे सूरकान्तदेशे प्रत्यन्तपुरे राजा मित्रस्तत्पुत्रः सुमित्रः। प्रधानपुत्रः सुषेणस्तं राजतनुजो जलक्रीडावसरेऽतिस्नेहेन वापिकायां निमज्जयति। तस्य महासंक्लेशो भवति। कालान्तरेण सुमित्रो राजासीत्तद्भयेन सुषेणस्तापसो बभूव। एकदा आस्थानगतः सुमित्रः सुषेणमपश्यन् कमपि पृष्टवान् सुषेणः क्वेति। स्वरूपे निरूपिते तत्र जगाम तत्पादयो-

---

कहा कि क्या वे उसे (सर्पको) अलग करके नहीं जा सकते हैं। चेलिनीने उत्तर दिया कि महामुनि ऐसा नहीं किया करते हैं। अच्छा चलो, हम दोनों इसी समय वहाँ जाकर देखें। तब वे दोनों अनेक दीपकोंको लेकर बहुत-से सेवकोंके साथ वहाँ गये। उन्होंने वहाँ मुनिको उसी अवस्थामें स्थित देखा। तब उन दोनोंने मुनिके शरीरको गरम जलसे धोया और फिर पूजा करके उनके चरणोंकी आराधना करते हुए वहाँ बैठ गये। जब प्रातःकालमें सूर्यका उदय हुआ तब चेलिनीने मुनिकी प्रदक्षिणा करके कहा कि हे संसार रूप समुद्रसे पार उतारनेवाले साधो! अब उपसर्ग नष्ट हो चुका है, हाथोंको उठाकर ग्रहण कीजिए। तब मुनि महाराज दोनों हाथोंको उठाकर बैठ गये। फिर दोनोंने मुनिराजको प्रणाम किया और उन्होंने उन दोनोंको 'धर्मवृद्धिरस्तु' कहकर आशीर्वाद दिया। यह देखकर श्रेणिकने विचार किया कि मुनिकी क्षमा अद्वितीय व आश्चर्यजनक है, और अपने शिरको काटकर इनके चरणोंकी पूजा करूँ, ऐसा उसने मनमें विचार किया। तत्पश्चात् मुनि बोले कि हे राजन्! तुमने अयोग्य विचार किया है। राजाने पूछा कि कैसा विचार। उत्तरमें मुनिराजने कहा कि तुमने अपने शिरको काटनेका विचार किया है। तब श्रेणिकने फिरसे पूछा कि आपने यह कैसे जाना है। इसपर चेलिनीने राजासे कहा कि इसमें आपको कौन-सा कौतुक दिखता है, अपने अतीत भवोंको पूछिए। तब राजाने मुनीन्द्रसे प्रार्थना की कि हे प्रभो! मैं पूर्व जन्ममें कौन था, यह कहिए। उत्तरमें मुनिराज इस प्रकार बोले—

इसी आर्यखण्डमें सूरकान्त देशके भीतर प्रत्यन्त(सूरपुर)पुरमें मित्र नामका राजा राज्य करता था। उसके सुमित्र नामका एक पुत्र था। राजा मित्रके मन्त्रीके भी एक पुत्र था। उसका नाम सुषेण था। इसको राजकुमार सुमित्र जलक्रीड़ाके समय बड़े स्नेहसे बावड़ीमें डुबाता था, परन्तु इससे उसको बहुत संक्लेश होता था। कुछ समयके पश्चात् सुमित्र राजा हो गया। उसके भयसे सुषेण तपस्वी हो गया। एक समय सभा-भवनमें स्थित सुमित्रने सुषेणको न देखकर किसीसे पूछा कि सुषेण कहाँ है। पश्चात् उससे सुषेणके वृत्तान्तको जानकर वह

---

१. प श हस्तावुच्चाप्य ब हस्तावुच्चार्य। २. क उभयाद्धर्म°। ३. प श मुनिरिति। ४. चिंतयन् त्वया कथमिच्छसीति। ५. क त्वयं। ६. प श पृष्टः ब पृच्छः।

लग्नस्तपस्त्याज्यमिति । तेन कथमपि न त्यक्तम् । तदा मम गृह एव भिक्षां गृहाणेति प्रार्थितोऽभ्युपजगाम । स मासोपवासपारणायां तद्गृहमाययौ । राजा व्यग्रस्तं[1] नापश्यत् । द्वितीय-तृतीयपारणयोरपि[2] । निःशक्तं गच्छन्तं तं कश्चिद्दृष्ट्वा ललाप च—निकृष्टो राजा स्वयमस्मै भिक्षां न ददाति ददतो निवारयतीति मारितस्तेनायमिति श्रुत्वा कोपेन भिक्षुः किमप्यनवधारयन्[3] पाषाणलग्नपादः पपात ममार व्यन्तरदेवो जज्ञे । राजा तन्मृतिं विज्ञाय तापसोऽजनि जीवितान्ते व्यन्तरदेवोऽपि बभूव[4] । ततश्च्युत्वा त्वमासीरितरोऽस्याश्चेलिन्याः कुणिकाख्यो[5] नन्दनः स्यादिति निरूपिते जातिस्मरोऽजनि जजल्प च 'जिन एव देवो दिगम्बरा[6] एव गुरवो अहिंसालक्षण एव धर्मः' इत्युपशमसद्दृष्टिरभवीत्[7] । अन्तर्मुहूर्ते[8] मिथ्यात्वमाश्रित्य सुखेन स्थितः ।

अन्यदा त्रयो मुनयो देवीभवनं[9] चर्यार्थं समागुः,[10] राजा बभाणीद्देवि[11] मुनीन् स्थापय । उभौ सन्मुखमीयतुस्तत्र देव्या[12] त्रिगुप्तिगुप्तास्तिष्ठन्त्वित्युक्ते त्रयोऽपि व्याघुट्योद्याने[13] तस्थुः[14] ।

वहाँ गया और सुषेणके पैरोंको पकड़कर उससे तपका त्याग करनेको कहा। परन्तु उसने किसी भी प्रकारसे तपको नहीं छोड़ा। तब उसने उससे अपने घरपर ही भिक्षा लेनेकी प्रार्थना की। इसे उसने स्वीकार कर लिया। तदनुसार वह एक मासके उपवासको समाप्त करके पारणाके लिए सुमित्रके घरपर आया। परन्तु कार्यान्तरमें व्यग्र होनेसे राजा उसे नहीं देख सका। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी पारणाके समय भी उसे आहार नहीं प्राप्त हुआ। इससे वह अशक्त होकर वापिस जा रहा था। उसको देखकर किसीने कहा कि देखो राजा कैसा निकृष्ट है। वह स्वयं भी इसके लिए भोजन नहीं देता है और दूसरे दाताओंको भी रोकता है। इस प्रकारसे तो वह उसकी मृत्युका कारण बन रहा है। इसे सुनकर साधुको अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ, तब वह विमूढ होकर कुछ भी नहीं सोच सका। इसी क्रोधावेशमें उसका पाँव एक पत्थरसे टकरा गया। इससे वह गिरकर मर गया और व्यन्तर देव उत्पन्न हुआ। राजाको जब उसके मरनेका समाचार ज्ञात हुआ तब वह तापस हो गया। वह भी आयुके अन्तमें मरकर व्यन्तरदेव हुआ। फिर वहाँसे च्युत होकर तुम हुए हो। सुषेणका जीव व्यन्तरसे च्युत होकर इस चेलिनीके कुणिक नामका पुत्र होगा। इस प्रकारसे मुनिके द्वारा प्ररूपित अपने पूर्व भवके वृत्तान्तको जानकर श्रेणिकको जाति-स्मरण हो गया। वह कह उठा कि जिन ही यथार्थ देव हैं, दिगम्बर ही यथार्थ गुरु हैं, और अहिंसा रूप धर्म ही सच्चा धर्म है। इस प्रकारसे वह उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया। तत्पश्चात् वह अन्तर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सुखपूर्वक स्थित हुआ।

किसी समय तीन मुनि आहारके निमित्त चेलिनीके घरपर आये। तब राजाने चेलिनीसे कहा कि हे देवी ! मुनियोंका प्रतिग्रह (पडिगाहन) करो। पश्चात् वे दोनों जाकर मुनियोंके सम्मुख गये। उनमें चेलिनीने कहा कि हे तीन गुप्तियोंके परिपालक मुनीन्द्र ! ठहरिए। ऐसा कहनेपर वे तीनों वापिस उद्यानमें चले गये। तब राजाने चेलिनीसे पूछा कि हे देवी ! वे ठहरे क्यों नहीं।

१. प राजा विग्रस्तं, फ राज्याविग्रहः तं। २. ब -प्रतिपाठोऽयम्। श द्वितीयपारणयोरपि। ३. फ ०नवधारयत् प श ०नावधारयन्। ४. फ 'बभूव' नास्ति। ५. फ कुणिकाख्य श कुलिकाख्यो। ६. श दिगम्बर। ७. प श ०रवोभूत्। ८. फ अन्तर्मुहूर्त्त°, ब श अन्तरमुहूर्ते। ९. श देवीदेवीभवनं। १०. श समागु। ११. ब बभाणी देवी श बभाणीद्देवी। १२. ब -प्रतिपाठोऽयम् श देव्याः। १३. प श व्याघुटयत्याने। १४. फ तत्थः।

राज्ञा किमिति न स्थिता इति देवी पृष्टा। सा वदत्तानेव पृच्छावः[1], एहि तवेति। तत्र अस्मतु-र्वन्दनानन्तरं राजा पृच्छति स्म धर्मघोषमुनिम्। स आह—अस्माकं मनोगुप्तिर्न स्थिता। कथमिति चेत् कलिङ्गदेशे दन्तिपुरे[2] राजा धर्मघोषो देवी लक्ष्मीमती। स केनचिन्निमित्तेन दिगम्बरो भूत्वा कौशाम्ब्यां चर्यार्थं प्रविष्टो राजमन्त्रिगरुडस्य भार्यया स्थापितः। चर्याकरणा-वसरे हस्तात्सिक्थं[3] भूमौ पतितम्। तदवलोकयन् तदङ्गुष्ठमद्राक्षीत् लक्ष्मीमत्या अङ्गुष्ठसम इति स्वपत्नीं सस्मारेत्यन्तरायं[4] चकार। ते वयं विहरन्तोऽत्राजग्मिम। त्वद्देव्या त्रिगुप्तिगुप्तास्ति-ष्ठन्त्विवत्युक्ते अस्माकं तदा मनोगुप्तिर्नष्टेति[5] न स्थिताः। श्रुत्वा समाश्चर्यचेतोऽबोभवीत्[6]।

ततो जिनपालमुनिं पप्रच्छ 'यूयं किमिति न स्थिताः'। स आह—भूमितिलकनगरे राजा प्रजापालो देवी धारिणी। सुता वसुकान्ता[7] कौशाम्ब्याधिपचण्डप्रद्योतनेन याचिता। स नादात्। इतरस्तवेतत्पुरं विवेष्ट[8]। तदा दुर्गसंलग्नवने जिनपालमुनि[9]र्ध्यानेनास्थाद्वन-पालाद्विबुध्य प्रजापालः सानन्दो वन्दितुमैत्[10]। वन्दनानन्तरं कोऽप्यवदत्—हे मुने, राज्ञो अभयप्रदानं प्रयच्छेति। ततस्तत्पुण्येन कयाचिद्देवतयोक्तं माभैषीरिति। ततो विभूत्या पुरं प्रविष्टः। ततस्तं जैनं मत्वा चण्डप्रद्योतनो व्याघुटितः। तत इतरस्तदन्तिकं विशिष्टान् प्रस्था-

---

इसपर चेलिनीने उत्तर दिया कि चलो वहाँ जाकर उन्हींसे पूछें। तब वे दोनों वहाँ गये। वन्दना करनेके पश्चात् राजा श्रेणिकने धर्मघोष मुनिसे उसके विषयमें प्रश्न किया। उत्तरमें मुनि बोले कि हमारे मनोगुप्ति नहीं थी। वह इस प्रकारसे—कलिंग देशके अन्तर्गत दन्तिपुरमें धर्मघोष नामका राजा (मैं) राज्य करता था। रानीका नाम लक्ष्मीमती था। वह किसी निमित्तसे दिगम्बर मुनि होकर आहारके लिए कौशाम्बी पुरीमें गया। वहाँ उसका पडिगाहन राजमन्त्री गरुड़की पत्नीने किया। आहारके समय हाथमेंसे पृथिवीपर गिरे हुए ग्रासकी ओर दृष्टिपात करते हुए उसने गरुड़की पत्नी-के अँगूठेको देखा। उसे देखकर उसको 'यह लक्ष्मीमतीके अँगूठेके समान है' इस प्रकार अपनी पत्नीका स्मरण हो आया। इससे उसने (मैंने) अन्तराय किया। वे हम लोग विहार करते हुए यहाँ आये हैं। तुम्हारी पत्नीने 'तीन गुप्तियोंके परिपालक' कहकर हमारा पडिगाहन किया था। परन्तु उस समय हमारी मनोगुप्ति नष्ट हो चुकी थी। इसी कारणसे हम वहाँ नहीं रुके। इस वृत्तान्तको सुनकर राजा श्रेणिकको बहुत आश्चर्य हुआ।

तत्पश्चात् श्रेणिकने जिनपाल मुनिसे पूछा कि आप क्यों नहीं रुके। वे बोले—भूमि-तिलक नगरमें प्रजापाल नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम धारिणी था। इन दोनोंके एक वसुकान्ता नामकी पुत्री थी, जिसे कौशाम्बीके राजा चण्डप्रद्योतनने माँगा था। परन्तु प्रजापालने उसे पुत्रीको नहीं दिया। तब चण्डप्रद्योतनने आकर उसके नगरको घेर लिया। उस समय दुर्गसे लगे हुए वनमें जिनपाल मुनि ध्यानसे स्थित थे। प्रजापाल राजा वनपालसे इस शुभ समाचारको जानकर आनन्दपूर्वक उनकी वन्दनाके लिए गया। वन्दनाके पश्चात् किसीने कहा कि हे साधो! राजाके लिए अभयदान दीजिए। तब उसके पुण्यके प्रभावसे किसी देवताने कहा कि भयभीत मत हो। तत्पश्चात् वह विभूतिके साथ पुरमें प्रविष्ट हुआ। इससे चण्डप्रद्योत उसे जिनभक्त जानकर वापिस चला गया। तब प्रजापालने उसके वापिस हो जानेका कारण ज्ञात

---

१. प पृष्टाव:। २. प श दन्तपुरे। ३. फ हस्ताच्छिक्ती। ४. फ सस्मरेत्यंतरायं श संस्मारेत्यंतरायां। ५. प गुप्ति नष्ट इति फ गुप्तिर्नतिष्ठेति श गुप्तिनष्टे इति। ६. प ससास्वर्यचित्तो अवोभवीत् श ससाश्चर्य-चित्तोऽवोभवीत्। ७. श धारिणी सुकांता। ८. प श इतरस्तत्पुरं तदा विवेष्टो। ९. प ब श जिनपालि। १०. फ वंदितुमेत्य आगतः ब वंदितुमैयागत्तः श वंदितुमेत्।

पयामास किमिति व्याघुटसे[1] इति। सोऽवोचत् जैनेन सह न युयुधे इति व्याघुटे[2]। इतरस्तज्जैनत्वमवबुध्यान्तः प्रवेश्य पुत्रीमदत्त[3]। एकदा चण्डप्रद्योतनः स्ववनितान्तिकेऽवदत्तव पितरं यदि तदा जैनं न जानाम्यनर्थं[4] करिष्ये। तयावादि मम पितुर्जिनपालभट्टारकैरभयप्रदानं दत्तमित्यनर्थो न स्यात्। एवं तर्हि तान् वन्दामहे इति तया वन्दितुमगात्। वन्दित्वा जगाद—समपरिणामयतीनां कस्यचिदभयप्रदानं कस्यचिद्विनाशचिन्तनं किमुचितम्। ते मौनेन स्थिताः। वसुकान्तयोक्तं मे पितुः पुण्येन दिव्यध्वनिर्निःसृत इत्यमीषां दोषो नास्ति। एहीति भवनं नीतः, तया सुखेन स्थितः। तेऽमी वयम्। तदा वाग्गुप्तिर्नष्टेति[6] न स्थिता इति।

ततो हृष्टो भूपः मणिमालिनं पृष्टवान्। स आह—मणिवतदेशे[7] मणिवतनगरे राजा मणिमाली भार्या गुणमाला पुत्रो मणिशेखरः। राज्ञः केशान् देव्या विलक्षयन्त्या देव्या[8] पलितमालोक्योदितम् 'यमदूतः समागतः' इति। राज्ञा क्वेत्युक्ते सा[9] तं प्रदर्शयामास। ततो मणिशेखरं राज्ये नियुज्य बहुभिरदीक्षत। सोऽपि सकलागमधरो भूत्वोज्जयिन्याः पितृवने

करनेके लिए उसके पास अपने विशिष्ट पुरुषोंको भेजा। उनसे चण्डप्रद्योतनने कहा कि मैं जैनके साथ युद्ध नहीं करता हूँ, इसीलिए वापिस आ गया हूँ। तब प्रजापाल राजा जैन जानकर उसे भीतर ले गया और फिर उसने उसे अपनी पुत्री दे दी। एक समय चण्डप्रद्योतनने अपनी पत्नीके समीपमें स्थित होकर उससे कहा कि यदि मैंने तुम्हारे पिताको उस समय जैन न जाना होता तो अनर्थ कर डालता। इसपर पत्नीने कहा कि मेरे पिताको जिनपालि भट्टारकने अभयदान दिया था, इसलिए अनर्थ नहीं हो सकता था। तब चण्डप्रद्योतन बोला कि यदि ऐसा है तो चलो उनकी वन्दना करें। इस प्रकार वह पत्नीके साथ उनकी वन्दना करनेके लिए गया। वन्दना करनेके पश्चात् वह बोला कि जब साधुजन शत्रु और मित्र दोनोंमें समताभाव धारण करते हैं तब उनको किसीके लिए अभय प्रदान करना और किसीके विनाशकी चिन्ता करना उचित है क्या? उसके इस प्रकार पूछनेपर वे मौन-से स्थित रहे। तब वसुकान्ताने कहा कि मेरे पिताके पुण्योदयसे दिव्य ध्वनि निकली थी, इसमें इनका कोई दोष नहीं है। चलो, इस प्रकार कहकर वह चण्डप्रद्योतनको घर ले गई। फिर वह उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगा। वे ये हम ही हैं। हे राजन्! उस समय हमारी वचनगुप्ति नष्ट हो चुकी थी, इसीलिए हम आहारार्थ आपके घर नहीं रुके।

तत्पश्चात् राजा श्रेणिकने हर्षित होकर मणिमाली मुनिसे पूछा। वे बोले—मणिवत देशके भीतर मणिवत नगरमें मणिमाली नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम गुणमाला और पुत्रका नाम मणिशेखर था। किसी समय रानी गुणमाला राजाके बालोंको सँभाल रही थी। तब उसे उनमें एक श्वेत बाल दीख पड़ा। उसे देखकर उसने राजासे कहा कि यमका दूत आ गया है। वह कहाँ है, ऐसा राजाके पूछनेपर उसने उसे दिखला दिया। इससे राजाको विरक्ति हुई। तब उसने मणिशेखरको राज्य देकर बहुत-से राजाओंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। एक समय वह समस्त आगमका ज्ञाता होकर उज्जयिनीके श्मशानमें मृतकशय्यासे स्थित था। इतनेमें

१. ब व्याघोटसे। २. फ युधे इति व्याघोटो, ब युद्धे इति व्याघोटे। ३. ब °मदत्ता। ४. ब यदि न जैनं तदा जानाम्यनर्थं। ५. प श मौनेनास्तुर्व्वसु०। ६. प श वाग्गुप्तिर्न तिष्ठतीति फ वागुप्तिर्नष्टेति। ७. ब 'मणिवतदेशे' नास्ति। ८. श देव्या विरलयन्त्या। ९. फ. राज्ञोक्तेति सा।

मृतकशय्यया अस्थात् । तावत्तत्र कश्चित्सिद्धो वेतालविद्यासिद्ध्यर्थं नर-कपाले क्षीरं तन्दुलांश्च गृहीत्वा तत्र नरमस्तकचुल्ल्यां रन्धुं समायातः । चौरमस्तकद्वयं मुनिमस्तकं मेलयित्वा रन्धनावसरे शिरासंकोचेन मुनेर्हस्तो मस्तकोपरि समायातः । पतितं कपालं दुग्धेनाग्निर्गतः । सोऽपि पलायितः । सूर्योदये[1] मुनिनिर्वेदकेन जिनदत्तश्रेष्ठिनः कथितम् । तेन आनीय स्ववसतिकायां व्यवस्थाप्य वैद्यो भेषजं पृष्टः । सोऽवोचत् सोमशर्मभट्टगृहे लक्षमूलं[2] तैलमस्ति । तेन दग्धो नीरोगो भवेत् । ततोऽगाच्छ्रेष्ठी तद्भार्यां तुंकारीं तैलं ययाचे[3] । सा बभाणोपरि-भूमौ तत्तैलघटा आसते[4] । तत्रैकं गृहाण । श्रेष्ठी तं वण्ठस्य[5] हस्ते ददानो निक्षिप्तवान्[6] । तयोक्तमपरं गृहाण । तथा तमपि, तृतीयमपि । ततः श्रेष्ठी[7] भीतिं जगाम । तदनु सा बभाषे 'मा भैषीर्यावत्प्रयोजनं तावद् गृहाण' । ततो घटमेकं प्रस्थाप्य श्रेष्ठी तामपृच्छत् 'हे मातः, स्फुटितेषु घटेषु कोपः किमिति न विहितः' इति । ततोऽजल्पत्सा श्रेष्ठिन्,कोपफलं भुक्तं मया । कथम् । तथाहि—

आनन्दपुरे द्विजः शिवशर्मा भार्या कमलश्रीः 'पुत्रा अष्टौ' अहं च भट्टा नाम पुत्री । यदा मां कोऽपि 'तुं'[8] भणति तदा महदनिष्टं भवति । पित्रा पुरे आज्ञा दापिता भट्टां मा कोऽपि 'तुं'

वहाँ कोई सिद्ध (मन्त्रसिद्धि सहित) पुरुष वेताल विद्याको सिद्ध करनेके लिए मनुष्यकी खोपड़ीमें दूध और चावलोंको लेकर आया । उसे मनुष्यके मस्तकरूप चूल्हेपर खीर पकानी थी । उसने दो चोरोंके मस्तकोंके साथ मुनिके मस्तकको मिलाकर और उसे चूल्हा बनाकर उसके ऊपर उसे पकाना प्रारम्भ कर दिया । इस अवस्थामें शिराओं (नसों) के सिकुड़नेसे मुनिका हाथ मस्तकपर आ पड़ा । इससे वह खोपड़ी नीचे गिर गई और दूधके फैल जानेसे आग भी बुझ गई । तब वह (सिद्ध) भाग गया । प्रातःकालमें सूर्यका उदय हो जानेपर किसी मुनिनिर्वेदकने इस उपसर्गका समाचार जिनदत्त सेठसे कहा । सेठने उन्हें लाकर अपने घरपर रक्खा और औषधके लिए वैद्यसे पूछा । वैद्यने उत्तर दिया कि सोमशर्मा भट्टके घरमें लक्षमूल तेल है । इससे जला हुआ मनुष्य नीरोग हो जाता है । तत्पश्चात् जिनदत्त सेठने सोमशर्माके घर जाकर उसकी पत्नी तुंकारीसे तेलकी याचना की । वह बोली कि ऊपरके खण्डमें उस तेलके घड़े स्थित हैं, उनमेंसे एक घड़ेको ले लो । सेठ उसे लेकर सेवकके हाथमें दे रहा था कि वह नीचे गिरकर फूट गया । तब उसने कहा कि दूसरा ले लो । परन्तु इस प्रकारसे वह दूसरा और तीसरा घड़ा भी नष्ट हो गया । तब सेठको भय उत्पन्न हुआ । तत्पश्चात् वह बोली कि डरो मत, जब तक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है तब तक उसे ग्रहण करो । तब जिनदत्तने एक घड़ेको भेजकर उससे पूछा कि हे माता ! घड़ोंके फूट जानेपर तुमने क्रोध क्यों नहीं किया । उसने उत्तर दिया कि हे सेठ ! मैं क्रोधका फल भोग चुकी हूँ । वह इस प्रकारसे—

आनन्दपुरमें शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्रीका नाम कमलश्री था । उनके आठ पुत्र और भट्टा नामकी एक पुत्री मैं थी । जब कोई मुझे 'तू' कहता तब बड़ा अनिष्ट (अनर्थ) होता । इसीलिए पिताने नगरमें यह घोषणा करा दी कि भट्टाको कोई 'तू' न कहे ।

१. क सूर्योद्गते ब सूर्योद्गमे । २. क लक्षमूल्य° ब लक्षमूल° । ३. क तुंकारीं ततो तैलं ययाचे श तुंकारीं तैलं याचे । ४. क आसतः । ५. क कंठस्य । ६. क ददानोऽतिक्षिप्तवान् श ददानो निक्षिप्तवान् । ७. क तमपि द्वितीयं तृतीयमपि ततः श्रेष्ठी ब तथा तमपि पतितः श्रेष्ठी । ८. क तु ।

भणत्विति । ततस्तुंकारीति[1] नाम जातम् । कोपशीलां मां न कोऽपि परिणयति । अनेन सोमशर्मणाहमियं[2] न त्वंकरोमीति[3] व्यवस्थाप्य परिणीयात्रानीता, तथैव पालयति । एकदा नाटयमवलोकयन् स्थितः सोमशर्मा बृहद्रात्रावागत्य हे प्रिये, द्वारमुद्घाटयेत्यब्रवीत् । कोपेन मया नोद्घाटितम् । ततो बृहद्वेलायां तुंकार-इत्युक्तवान्[4] । ततः कोपेनाहं निर्गता पत्तनादपि । चौरैराभरणादिकं संगृह्य भिल्लराजस्य समर्पिता । स मे शीलं खण्डयन् वनदेवतया निवारितस्तेनापि सार्थवाहस्य समर्पिता । सोऽपि मे शीलं खण्डयितुं न शक्तः, कृमिरागकंबलद्वीपमनैषीत्पारसकुलस्य व्यक्रैषीच्च । स पक्षे पक्षे शिरामोचनेन मे रुधिरं वस्त्ररञ्जनार्थं गृह्णाति लक्षमूलतैलाभ्यङ्गेन शरीरपीडां च निवारयति । एवं दुःखानि सहमाना तत्रोषिताहम् । अथ यो मे भ्राता धनदेवः स उज्जयिनीशेन तत्र पारसराजसमीपं प्रेषितः । स कृतराजकार्यो मां विलोक्य मोचयित्वानीय सोमशर्मणः समर्पितवान् । जिनमुनिसमीपे कोपनिवृत्तिव्रतं चागृह्णतं [चागृह्णाम्][5] । ततः कोपो न विधीयते इति ।

तेन तैलेन स मुनिं निर्व्रणं कृतवान् । स तत्रैव वर्षाकालयोगमग्रहीत् । श्रेष्ठी जिनपुत्रकुबेरदत्तभयेन रत्नपूर्णं ताम्रकलशमानीय मुनिविष्टरनिकटे पूरयित्वा वधानो गर्भगृहस्थेन पुत्रेण दृष्टः । पुत्रेणैकदा मुनौ पश्यति स कलशोऽन्यत्र धृतः । योगं निवर्त्य मुनिर्जगाम ।

इससे मेरा नाम 'तुकारी' प्रसिद्ध हो गया । क्रोधी स्वभाव होनेसे मेरे साथ कोई भी विवाह करनेके लिए उद्यत नहीं होता था । इस सोमशर्मा ब्राह्मणने 'मैं इसे तू कह करके न बुलाऊँगा' ऐसी व्यवस्था करके मेरे साथ विवाह कर लिया और फिर वह मुझे यहाँ ले आया । पूर्व निश्चयके अनुसार वह मेरे साथ कभी 'तू'का व्यवहार नहीं करता था । एक दिन वह नाटक देखनेके लिए गया और बहुत रात बीत जानेपर घर वापिस आया । उसने आकर कहा कि हे प्रिये ! द्वारको खोलो । परन्तु क्रोधके वश होकर मैंने द्वारको नहीं खोला । इस प्रकारसे जब बहुत समय बीत गया तब उसने मुझे 'तू' कहकर बुलाया । बस फिर क्या था, मैं क्रोधित होकर नगरसे बाहिर निकल गई । तब चोरोंने मेरे आभरणादिकोंको छीनकर मुझे एक भीलोंके स्वामीको दे दिया । वह मेरे सतीत्वको नष्ट करनेके लिए उद्यत हो गया । तब उसे वनदेवताने निवारित किया । उसने भी मुझे एक व्यापारीको दे दिया । वह भी मेरे सतीत्वको भ्रष्ट करना चाहता था, परन्तु कर नहीं सका । तब उसने मुझे कृमिरागकम्बल द्वीपमें ले जाकर किसी पारसीको बेच दिया । वह प्रत्येक पखवाड़ेमें मेरी धमनियोंको खींचकर वस्त्र रंगनेके लिए रुधिर निकालता और लक्षमूल तेलको लगाकर शरीरकी पीड़ाको नष्ट किया करता था । इस प्रकार दुःखोंको सहन करती हुई मैं वहाँ रह रही थी । कुछ समय पश्चात् मेरा जो धनदेव नामका भाई था उसे उज्जयिनीके राजाने वहाँ पारसके राजाके पास भेजा था । उसने राजकार्यको करके जब मुझे यहाँ देखा तब किसी प्रकार उससे छुड़ाकर सोमशर्माके पास पहुँचा दिया । पश्चात् मैंने जैन मुनिके समीपमें क्रोधके त्यागका नियम ले लिया । यही कारण है जो अब मैं क्रोध नहीं करती हूँ ।

तत्पश्चात् जिनदत्त सेठने उस तेलसे मुनिके घावोंको ठीक कर दिया । मुनिने वहाँपर ही वर्षायोग (चातुर्मासका नियम)को ग्रहण कर लिया । उधर सेठने अपने पुत्र कुबेरदत्तके भयसे रत्नोंसे परिपूर्ण एक ताँबेके घड़ेको लाकर मुनिके आसनके समीपमें भूमिके भीतर गाड़ दिया । जिस समय सेठ उक्त घड़ेको गाड़कर रख रहा था उस समय उसे कुबेरदत्तने गर्भगृहके भीतर स्थित रहकर देख

१. प श न त्वंकारीति । २. प श °मित्थं । ३. फ त्वंकरोति व्यवस्थाया परिणीयात्रानीत, ब न करोमीति व्यवस्थया परिणीयात्रानीता । ४. फ त्वंकारमयीत्युक्तवान्, ब तुंकामुईत्युक्तवान् । ५. फ चागृह्णतां, ब च गृह्णं ।

श्रेष्ठी कलशमपश्यन् मुनिनिवर्तनार्थं सर्वत्र भृत्यान् प्रस्थापितवान्[1] स्वयमप्येकस्मिन् मार्गे लग्नः विलोक्य व्याघोटितवान्[2] उक्तवांश्च 'कथामेकां कथय'। मुनिरुवाच 'त्वमेव कथय'। ततः स्वाभिप्रायं सूचयन् कथयति—

वाराणस्यां जितशत्रुराजस्य वैद्यो धनदत्तो भार्या धनदत्ता पुत्रौ धनमित्रधनचन्द्रौ पित्रा पाठयतापि नापठताम्। मृते पितरि तज्जीवितमन्येन[3] गृहीतम्। ततस्तावभिमानेन चम्पायां शिवभूतिपार्श्वे पठनाम्। स्वनगरमागच्छन्तौ वने लोचनपोडापीडितं व्याघ्रमद्राक्षिष्टाम्। कनिष्ठेन[4] निवारितोऽपि ज्येष्ठस्तल्लोचनयोरौषधमदात्तदैव पोडानिवृत्तौ स एव भक्षितस्तेनेति। किं तस्योचितमिदम्। मुनिर्बभाण 'नोचितम्'।१। शृणु मत्कथाम्— हस्तिनापुरे विश्वसेनो नाम राजा। तस्मै केनचिद्वणिजा वलिपलितविनाशकमाम्रस्य बीजं दत्तम्। तेन वनपालाय समर्पितम्। तेन चोप्तम्[5]। तद्वृक्षे फलमायातं,[6] खे गृध्रे सर्पं गृहीत्वा गच्छति सति विषबिन्दुः फलस्योपरि पतितः। ततस्तदूष्मणा फलं पक्वं वनपालकेन राज्ञः समर्पितं, तेन युवराजस्य। तद्भक्षणात् ममार कुमारः। ततो राजा तं[7] तरुं खण्डयामासेति। अन्यदोषे किं तस्य तत्खण्डन-

लिया था। पश्चात् पुत्रने मुनिके देखते हुए एक दिन उस घड़ेको निकालकर दूसरे स्थानमें रख दिया। इधर चातुर्मासको समाप्त कर मुनि अन्यत्र चले गये। उधर सेठको जब वह घड़ा वहाँ नहीं दिखा तब उसने मुनिको लौटानेके लिए सेवकोंको भेजा तथा वह स्वयं भी एक मार्गसे उनके अन्वेषणार्थ गया। उसने उन्हें देखकर लौटाया और एक कथा कहनेके लिए कहा। तब मुनि बोले कि तुम ही कोई कथा कहो। तब सेठ अपने अभिप्रायको सूचित करते हुए कथा कहने लगा—

वाराणसी नगरीमें एक जितशत्रु नामका राजा राज्य करता था। उसके यहाँ एक धनदत्त नामका वैद्य था। उसकी पत्नीका नाम धनदत्ता था। इनके धनमित्र और धनचन्द नामके दो पुत्र थे। उन्हें पिताने पढ़ाया भी, परन्तु वे पढ़े नहीं। इससे पिताके मरनेपर उसकी आजीविकाको किसी दूसरेने ले लिया। तब उन्होंने अभिमानके वशीभूत हो चम्पापुरीमें जाकर शिवभूतिके पास पढ़ना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् विद्याध्ययन करके जब वे अपने नगरके लिए वापिस आ रहे थे तब मार्गमें उन्हें नेत्र-पीड़ासे पीड़ित एक व्याघ्र दिखा। तब छोटे भाईके रोकनेपर भी बड़े भाईने उस व्याघ्रके नेत्रोंमें औषधिका उपयोग किया। इससे उसकी नेत्रपीड़ा नष्ट हो गई। परन्तु उसने उसीको खा लिया। क्या उसे अपने उपकारीको खाना उचित था? मुनिने उत्तरमें कहा कि नहीं, उसको ऐसा करना उचित नहीं था॥१॥

अब मेरी कथाको सुनो— हस्तिनापुरमें विश्वसेन नामका राजा राज्य करता था। उसके लिए किसी व्यापारीने एक आमका बीज दिया जो कि बलि (झुर्रियों) और पलित (श्वेत बालों) को नष्ट करके जवानीको स्थिर रखनेवाला था। राजाने उसे मालीको दिया और उसने उसे बगीचेमें लगा दिया। उस वृक्षमें फलके आनेपर आकाशमें एक गीध सर्पको लेकर जा रहा था। उस सर्पके विषकी एक बूँद उक्त फलके ऊपर गिर गई। उसकी गर्मीसे वह फल पक गया। तब वनपालने ले जाकर उसे राजाको दिया और राजाने उसे युवराजको दे दिया। युवराज उसे खाकर तत्काल मर गया। इस कारण राजाने उस वृक्षको कटवा डाला। इस प्रकार दूसरेके दोषसे राजाको उसका कटवाना क्या उचित था? सेठने उत्तर दिया कि नहीं॥२॥

---

१. फ भृत्यान्प्रस्थापितवान्। २. प श व्याघुटितवान्। ३. श तज्जीवनमन्येन। ४. प श कनिष्ठेनानि°। ५. प चोवं। ६ श फलंऽयाते। ७. फ 'तं' नास्ति।

मुचितम् । श्रेष्ठी अभणत् 'न' ।२। अहं[2] कथयामि— गङ्गापूरेण गच्छन् लघुकलभो विश्वभूतितापसेन दृष्टः । आकृष्टः पोषितो[3] लक्षणयुक्तो बभूव । श्रेणिकस्तमग्रहीत् । अङ्कुशघातादिकमसहिष्णुः पलाय्य[4] तदावासं प्रविशंस्तापसेन[5] निवारितः सन् कुपितस्तममीरत[6] । किं तस्य तदुचितम् । मुनिरब्रवीत् 'न' ।३। मुनिः कथयति— चम्पायां वेश्या देवदत्ता शुकं पुपोष[7] । सा आदित्यवारदिने वर्तुलिके[8] मद्यं निधायान्तः प्रविष्टा । तदवसरे अन्या काचिदागत्य तत्र विषं चिक्षेप । देवदत्तागत्य यदा पास्यति[9] तदा तन्मरणभीत्या शुकोऽकिरत्[10] । स तया मारितः । एतदपरीक्षितं[11] तस्याः कर्तुमुचितम् । श्रेष्ठिनोक्तं 'न' ।४। श्रेष्ठी कथयति—वाराणस्यां[12] वैश्यः सुवर्णव्यवहारी वसुदत्तस्तुन्दोदर आपणे पोत्तं[13] संहृत्य गमनोद्यतोऽभूत् । तदवसरे चौरः पलायमानस्तदुदरमाश्रितः । तेन वस्त्रेण पिहितस्तलवराः श्रेष्ठिन उदरमीदृशमिति तूष्णीं गताः । स च चौरः तत्पोत्तं गृहीत्वा गतः इति । तस्यैतत्कर्तुमुचितम् । मुनिरब्रवीत् 'न'।५। मुनिः कथयति[15]— चम्पायां द्विजसोमशर्मणो द्वे भार्ये सोमिल्ला सोमशर्मा च । सोमिल्लायाः पुत्रोऽजनि ।

मैं कहता हूँ गंगाके प्रवाहमें एक हाथीका बच्चा बहता हुआ जा रहा था। उसे किसी विश्वभूति नामके तापसने देखा। उसने प्रवाहमेंसे निकालकर उसका पालन-पोषण किया। तत्पश्चात् जब वह उत्तम लक्षणोंसे संयुक्त हुआ तब उसे श्रेणिक राजाने ले लिया। परन्तु वहाँ जाकर वह अंकुशके ताड़न आदिको सहन नहीं कर सका। इसीलिए वहाँसे भागकर वह तापसके आश्रममें प्रविष्ट होना चाहता था, परन्तु तापसने उसे आश्रमके भीतर प्रविष्ट नहीं होने दिया। इससे क्रोधित होकर उसने उक्त तापसको मार डाला। क्या उसे ऐसा करना उचित था ? मुनिने उत्तरमें कहा कि नहीं ॥३॥

मुनि कहते हैं—चम्पापुरीमें एक देवदत्ता नामकी वेश्या थी। उसने एक तोता पाला था। रविवारके दिन वेश्या कटोरीमें मद्यको रखकर चली गई। इतनेमें किसी दूसरी स्त्रीने आकर उसमें विष मिला दिया। तोतेने सोचा कि जब देवदत्ता आकर उसे पीवेगी तो वह मर जावेगी। इस भयसे तोतेने उस मद्यको बिखेर दिया। इससे क्रोधित होकर वेश्याने उसे मार डाला। इसकी परीक्षा न करके वेश्याका क्या उसे मार डालना उचित था ? सेठने उत्तर दिया— नहीं, उसका वैसा करना उचित नहीं था ॥४॥

सेठ कहता है— वाराणसी नगरीमें वसुदत्त नामका एक सुवर्णका व्यवहार करनेवाला (सराफ़)वैश्य था। उसका पेट बड़ा था। एक दिन वह दूकानसे वस्त्र (थैली) में सुवर्णादिको रखकर घर जानेके लिए उद्यत हुआ। इसी समय एक चोर भागता हुआ उसके पेटकी शरणमें आया। सेठने उसे वस्त्रसे छुपा लिया। कोतवाल यह सोचकर कि सेठका पेट ही ऐसा है, चुप-चाप चले गये। तत्पश्चात् वह चोर सेठकी उस थैलीको लेकर चल दिया। क्या उस चोरको वैसा करना योग्य था ? मुनिने उत्तर दिया कि नहीं ॥५॥

मुनि कहते हैं—चम्पा पुरीमें सोमशर्मा ब्राह्मणके सोमिल्ला और सोमशर्मा नामकी दो स्त्रियाँ थीं। उनमें सोमिल्लाके एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वहाँ एक भद्र बैल था। लोग उसे घास

१. फ श्रेष्ठी भणत् नोचितं, ब श्रेष्ठ्यं भगत्त्वा । २. श न ॥२॥ श्रेष्ठी । अहं । ३ श आकृष्ट पोषितो । ४. फ °मसहित्वुः पलाय, ब °मसहिष्णुः पलाय्य । ५. फ ब प्रविश्यंस्तापसेन । ६. फ कुपितः म तम° ब निवारितः कुपितः सन् तम° । ७. फ पपोषीत् । ८. श वर्त्तुलके । ९. फ ब पश्यति । १०. प शुको अकिरन्, ब श शुको किरन् । ११. फ इत्यपरिक्षतं । १२. श वाणारस्यां । १३. प श प्रोत्तं । १४. फ यतिनोक्तं नाह, ब यतिनोक्तं न । १५. ब शृणु मत्कथा ।

तत्रैको वृषभो भद्रो जनस्तस्य[1] ग्रासं ददाति। सोमशर्मणो गृहद्वारे उपविष्टः। सोमशर्मया स बालः तस्य शृङ्गे प्रोतो मृतः। तत्प्रभृति सर्वैर्वृषभोऽवज्ञातः। स च चिन्तया क्षीणो बभूव। एकदा जिनदत्तश्रेष्ठिभार्यायाः परपुरुषदोषो[2] जनेन धृतः। सा आत्मशुद्ध्यर्थं दिव्यगृहे तप्त-फालधारणार्थं स्थिता। तेन[3] वृषभेन स फालः दन्तैराकृष्टः[4], शुद्धोऽभूदिति। निर्दोषस्य जनेन किमवज्ञातुमुचितम्। जिनदत्तोऽवदत् 'न'[5] ।६। श्रेष्ठी कथयति[6]—पद्मरथनगराधिपवसुपालेन अयोध्याधिपजितशत्रोर्निकटं कश्चिद्विप्रो राजकार्यार्थं प्रेषितः। स महाटव्यां तृषितो मूर्च्छितो वृक्षतले पतितः। तस्य वानरेण जलं दर्शितम्। स च जलमपिबत्। तदग्रे जलं स्यान्न स्यादिति विचिन्त्य[7] तं मर्कटं मारितवान्। तच्चर्मणः खल्लिकां[8] जलेनापूर्यानैषीदिति[9]। किं तस्य तन्मा-रणमुचितम्। मुनिरवदत् 'न'।७। यतिः कथयति—कौशाम्ब्यां द्विजः सोमशर्मा भार्या कपिला अपुत्रा। द्विजेन[10] वने नकुलपिल्लको[11] दृष्टः, आनीय कपिलायाः समर्पितः। तया च शिक्षितो भणितं करोति। कतिपयदिनैः तस्याः पुत्र आसीत्तं हिन्दोलके शयानं[12] तस्य समर्प्य बहिस्

खिलाया करते थे। वह एक दिन सोमशर्माके घरके द्वारपर बैठा था। सोमशर्मा (सोमिल्लाकी सौत) ने ईर्ष्यावश उस पुत्रको इस बैलके सींगमें पो दिया। इससे वह मर गया। तबसे समस्त जन उस बैलका तिरस्कार करने लगे। वह चिन्तासे कृश हो गया। एक समय जिनदत्त सेठकी पत्नीके विषयमें लोगोंने पर-पुरुषसे सम्बन्ध रखनेका दोषारोपण किया। तब वह आत्मशुद्धिके निमित्त तपे हुए फाल (हलके नीचे स्थित पैना लोहा) को धारण करनेके लिए दिव्य गृहमें स्थित हुई। उस तपे हुए फालको उक्त बैलने दाँतोंसे खींच लिया। इस प्रकारसे उसने आत्म-शुद्धि प्रगट कर दी। इस तरह जो बैल सर्वथा निर्दोष था उसका जनोंके द्वारा तिरस्कार करना क्या उचित था ? जिनदत्तने कहा कि उन्हें वैसा करना उचित नहीं था ॥६॥

सेठ बोला—पद्मरथ नगरमें वसुपाल नामका राजा था। उसने राजकार्यके लिए किसी ब्राह्मणको अयोध्याके राजा जितशत्रुके पास भेजा। वह किसी महावनमें जाकर प्याससे व्याकुल होता हुआ मूर्च्छित होकर एक वृक्षके नीचे पड़ गया। वहाँ उसे एक बन्दरने जलको दिखलाया। तब उसने जलको पी लिया। फिर उसने विचार किया कि क्या जाने आगे जल मिलेगा अथवा नहीं। बस, इसी विचारसे उसने उस बन्दरको मारकर उसके चमड़ेकी मशक बना ली और उसे जलसे भरकर साथमें ले गया। उक्त ब्राह्मणको क्या उस बन्दरका मारना उचित था ? मुनिने उत्तरमें कहा कि नहीं ॥७॥

मुनि बोले—कौशाम्बी पुरीमें एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था। उसके कपिला नामकी स्त्री थी जो पुत्रसे रहित थी। किसी दिन ब्राह्मणको वनमें एक नेवलेका बच्चा दिखा। उसने उसको लाकर कपिलाको दे दिया। उसने उसको शिक्षित किया। वह उसके संकेतके अनु-सार कार्य किया करता था। कुछ दिनोंके बाद कपिलाके पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन कपिलाने पुत्रको पालनेमें सुलाकर नेवलेके संरक्षणमें किया और स्वयं वह बाहर जाकर चावलोंको कूटने

---

१. फ जनास्तस्य। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श भार्यायाः पुरुष। ३. स्थितास्तेन। ४. प फ ब स्थिता। स फालस्तेन दंतैः। ५. फ जिनदत्ताऽवदत् ॥६॥ ब जिनदत्तोवदत् ॥६॥ ६. प फ ब अहं कथयामि। ७ ब-प्रति-पाठोऽयम्। प श स्यादिति विधि विचिन्त्य, फ स्यादिति चिन्त्य। ८. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श खल्लिकाया। ९. फ नैषादिति। १०. फ अपुत्रद्विजेन। ११. फ नकुलापिल्लको। १२. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श शयनं।

तण्डुलान् खण्डयन्ती स्थिता। नकुलो बालस्याभिमुखमागच्छन्तमहिं विलोक्याचखण्ड[1]। तद्रक्तलिप्तं स्वमुखं तस्या अदर्शयत्[2]। सा 'अनेन पुत्रो हतः' इति मत्वा तं मुशलेन व्याजघानेति[3]। किमविचारितं तस्याः कर्तुमुचितम्। सोऽवोचत् 'न'॥८॥ श्रेष्ठी कथयति[4]— कश्चिद् वृद्धो ब्राह्मणो वेणुयष्टौ स्वर्णं निक्षिप्य गङ्गायां[5] चलितः। केनचिद् बटुकेन यष्टिर्लक्षिता। तदनु सह चचाल। कुम्भकारशालायां सुषुपतुः[6]। प्रातः कियदन्तरं गत्वा बटुकोऽब्रवीददत्ता तृणशलाका मस्तके लग्ना आयातपापं[7]मर्जनिष्ट। तत्रैव निक्षिप्य आगमिष्यामि इति व्यावृतो वृद्ध एकस्मिन् ग्रामे यजमानगृहे स्वयं बुभुजे, तस्य च स्थलं चकार। एकस्मिन् मठे तस्थौ। रात्रावागतो बटुको भोक्तुं प्रस्थापितः। कुक्कुराश्च[8] भविष्यन्तीति[9] न याति[10]। स तन्निवारणार्थं[11] यष्टिं ददौ। स चादाय जगामेति। किं तस्येत्थमुचितम्। यतिरभणत् 'न'[12] ॥९॥ शृणु मत्कथाम्[13]। कौशाम्ब्यां राजा[14] गन्धर्वानीकस्तत्सुवर्णकारोऽङ्गारदेवनामा। स चैकदा राजकीयं मणिपद्मरागं[15] संस्कारार्थं स्वगृहमानिनाय। तदा कश्चिन्मुनिश्चर्यार्थमाययौ। स स्थापयामास

लगी। उस समय एक सर्प बालककी ओर आ रहा था। नेवलने सर्पको बालककी ओर आता हुआ देखकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। ज्योंही कपिलाने नेवलेके मुखको सर्पके रक्तसे सना हुआ देखा त्योंही उसने यह सोचकर कि इसने बालकको खा लिया है, मूसलके आघातसे उसे मार डाला। क्या बिना विचारे ही कपिलाको निरपराध नेवलेका मार डालना उचित था? सेठने कहा कि नहीं ॥८॥

सेठ बोला— कोई एक बूढ़ा ब्राह्मण बाँसकी लाठीके भीतर सुवर्णको रखकर गंगा नदीकी ओर जा रहा था। किसी बालकने उसे लाठीमें सुवर्ण रखते हुए देख लिया। तत्पश्चात् वह भी उसके साथ चलने लगा और वे दोनों रातमें किसी कुम्हारकी शालामें सो गये और प्रातःकालके होनेपर वहाँसे आगे चल दिये। कुछ मार्ग चलनेके पश्चात् बालक बोला कि मेरे माथेपर चिपटकर एक बिना दी हुई तृणकी शलाई चली आयी है। यह तो चोरीका पाप हुआ है। इसलिए मैं उसे वहींपर रखकर वापिस आता हूँ। ऐसा कहकर वह वापिस चला गया। तब वृद्ध ब्राह्मणने किसी गाँवमें पहुँचकर एक यजमानके घरपर स्वयं भोजन किया और उक्त बालकके लिए भी भोजनका स्थल कर दिया— उसे भी भोजन करा देनेके लिए कह दिया। फिर वह एक मठमें ठहर गया। जब रातमें वह बालक वापिस आया तब ब्राह्मणने उसे उक्त यजमानके घरपर भोजनके लिए भेजना चाहा। परन्तु वह 'मार्गमें कुत्ते होंगे' यह कहकर वहाँ जानेको तैयार नहीं हुआ। तब ब्राह्मणने कुत्तोंसे आत्मरक्षा करनेके लिए उसे लाठी दे दी। उसे लेकर वह चल दिया। क्या उस बालकको ऐसा करना उचित था? मुनिने उत्तरमें कहा कि नहीं ॥९॥

तत्पश्चात् मुनि बोले कि मेरी कथाको सुनो— कौशाम्बी नगरीमें गन्धर्वानीक नामका राजा राज्य करता था। उसके यहाँ एक अंगार देव नामका सुनार था। वह एक दिन राजाके पास-से पद्मराग मणिको शुद्ध करनेके लिए अपने घरपर ले आया। उस समय कोई एक मुनिचर्याके

१. फ °मागच्छन्नहिं विलोक्याचरखडन् ब आगच्छन्तमहिं विलोक्य चखंडन्। २. फ ब तस्यादर्शन्। ३. फ व्याघ्रातेति। ४. फ म्वस्य वदंतोऽहं ब्रुवे। ब सोवदीन् ॥८॥ अहं ब्रुवे। ५. श गंगाया। ६. फ शुषपतुः। ७. फ आयातपाप°, ब लग्नायात्पाप°। ८. फ तत्कुक्कुराश्च, श कुकुराश्च। ९. ब तिष्ठतीति। १०. फ यामि। ११. श तान्निवारणार्थं। १२. फ यतिरभण, ब यतिरभणत् ॥९॥ १२. श यतिः कथयति ॥ शृणु ब श्रृणु। कौ° मत्कथं कौ°। १४. फ 'राजा' नास्ति। १५. प मणीं पद्मराग-फ मणिं पद्मदाग- ब मणिं पद्मरागं।

कर्ममठसमीपे उपावीविशत्[1]। तं मणिं मयूरो जगार। तमपश्यन् सुवर्णकारो मुनिं मणिं ययाचे। स ध्यानेनास्थात्। स दूरस्थो मुनये काष्ठं मुमोच। तच्च तमस्पृशन् मयूरगले लग्नम्। तदा मुखान्मणिरुच्चचाल। तं विलोक्य राज्ञः समर्प्य दिदीक्षे इति। किं तस्येत्थं कर्तुमुचितम्। श्रेष्ठिनोक्तं 'न'॥१०॥ श्रेष्ठी कथयति[2]— कश्चित्पुरुषोऽटव्यामटन् गजमालुलोके, भयात्तरुमारुरोह। गजस्तमलभमानो जगाम। स तस्मादुत्तीर्य गच्छन् भेर्यै[3] काष्ठमवलोकयतां तक्ष्णामदीदर्शत्[4] इति। तस्येदं किमुचितम्। यतिरवोचत् 'न'॥११॥ यतिः कथयति[5]— द्वारावत्या नारायणो नृपस्तमेकदा ऋषिनिवेदको विज्ञापयामास[6] 'मेदर्जमुनिरागत्योद्याने[7] स्थितः' इति श्रुत्वा विष्णुर्जगाम ववन्दे। तं व्याधितं[8] विलोक्य राजा स्ववैद्यं पप्रच्छ। स च रालकपिष्टपृक्तप्रयोगमची[9]कथत्। अन्यस्थापकानिवार्य राजा रुक्मिणीगृहे रालकपिष्टपिण्डकान् ददौ। स नीरोगोऽजनि। राज्ञा पृष्टेन कर्मणामुपशमे[10] नीरोगोऽभवमिति भणिते वैद्यः कोपमुपजगाम, कालान्तरे

लिए उसके घरपर आये। उसने पड़िगाहन करके उन्हें कर्ममठ (प्रयोगशाला) के समीपमें बैठाया। इतनेमें उस मणिको मयूर निगल गया। तब मणिको न देखकर सुनारने मुनिके ऊपर सन्देह करते हुए उनसे उस मणिको दे देनेके लिए कहा। इस उपसर्गको देखकर मुनि ध्यानस्थ हो गये। तब क्रुद्ध होकर सुनारने दूरसे मुनिको एक लकड़ी मारी। वह लकड़ी मुनिको न छूकर उस मयूरके गलेमें जा लगी। उसके आघातसे मयूरके गलेसे वह मणि निकल पड़ा। उसको देखकर सुनारने उसे उठा लिया और जाकर राजाको दे दिया। इस घटनासे विरक्त होकर सुनारने दीक्षा ग्रहण कर ली। बताओ कि उस सुनारको ऐसा करना योग्य था क्या? सेठ बोला कि नहीं, उसका वैसा करना अनुचित था ॥१०॥

सेठ कहता है— किसी पुरुषने वनमें घूमते हुए एक हाथीको देखा। उसे देखकर वह भयसे वृक्षके ऊपर चढ़ गया। इससे वह हाथी उसे न पाकर वापिस चला गया। फिर वह उस वृक्षके ऊपरसे उतरकर जा रहा था कि इसी समय उसने भेरीके लिए लकड़ीको खोजते हुए किसी बढ़ईको देखा। तब उसने उक्त लकड़ीके योग्य उसी वृक्षको दिखलाया। ऐसा करना क्या उसके लिए उचित था। उत्तरमें मुनिने कहा कि नहीं ॥११॥

मुनि कहते हैं— द्वारावती नगरीमें नारायण (कृष्ण) राजा राज्य करता था। एक दिन ऋषि-निवेदकने आकर राजासे निवेदन किया कि मेदर्ज मुनि (ज्ञानसागर) आकर उद्यानमें विराजमान हैं। इस शुभ समाचारको सुनकर कृष्णने जाकर उक्त मुनिराजकी वन्दना की। पश्चात् उसने मुनिके शरीरको व्याधिग्रस्त देखकर अपने वैद्यसे पूछा। उसने मुनिकी व्याधिको दूर करनेके लिए रालकपिष्टपृक्त प्रयोग (?) बतलाया। तब कृष्णने अन्य पडिगाहनेवाले दाताओंको रोककर स्वयं रुक्मिणीके घरपर मुनिराजके लिए रालकपिष्ट पिण्डोंको दिया। इससे मुनिका शरीर नीरोग हो गया। तत्पश्चात् किसी समय कृष्णके पूछनेपर मुनिने कहा कि कर्मोंके उपशान्त हो जानेसे मैं रोग रहित हो गया हूँ। यह सुनकर वैद्यको मुनिके ऊपर बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। वह समयानुसार मरकर

१. फ मयूरोऽजगारा। २ प अह कथयिष्यामि, फ ब अहं कथयामि। ३. फ गच्छत्। यें यें काष्ठ°। ४. प °मवलोकयता तक्षा तमदीदर्शन इति श °मवलोकयंता तक्ष्णां समदर्शयन् इति। ५. प ब वयं ब्रूमः, फ वयं ब्रुमः। ६. फ ब विज्ञप्तः। ७. फ मेदजमुनिरागतोद्याने, ब मेदजमुनिरागत्योद्याने, श मेदर्ज मुनिरागतोद्याने। ८. श व्याधितं। ९ फ रालकपिष्टः प्रोक्तं प्रयोग°। १०. प श कर्मणा उपशमे।

ममार वानरोऽटव्यां जज्ञे । तत्र मुनिः पल्यङ्केन ध्याने स्थितस्तं स वानरस्तीक्ष्णकाष्ठेन जङ्घायां विव्याध । तच्छरीरनिर्ममत्वं विलोक्योपशान्तिमितः[1] काष्ठमुत्पाट्यौषधेन निर्व्रणं चकार । वनकुसुमैः पूजयित्वोपसर्गो गत इति हस्तसंज्ञां व्यबोधि[2] । ततस्तेन हस्तावुद्धृतौ[3] । कपिस्तं प्रणम्याणुव्रतान्याददौ इति । वैद्यस्याविचारितकरणं किमुचितम् । जिनदत्तोऽवदत् 'न' ।१२। अहं च[4] कथयामीति श्रेष्ठिना भणिते कुबेरदत्तस्तं कलशं[5] पितुरग्रेऽनिक्षिपदवदच्च[6] — एहि मुने, वने मे दीक्षां प्रयच्छेति । उक्तं च—

विज्जो तावससेट्ठो वाणर बडुओ तहेव वणहत्थी ।
अंबगसुंडगवसहो मुंगुस्सो[7] चेव मणि साहू ॥३॥ इति

ततः पिता वैराग्यमगमत् । उभौ दीक्षां प्रपन्नौ[8] विहरन्तावासते । ते वयं[9] मणिमालिनस्तदा कायगुप्तिर्न स्थितेति[10] निशम्य राजा वेदकसद्दृष्टिरभूत् ।

कतिपयदिनैश्चेलिन्या गर्भसंभूतावचाच्यो दोहलकोऽजनि । तदप्राप्तावतिं[11] क्षीणशरीरां

वनमें बन्दर उत्पन्न हुआ । उस वनमें उक्त मुनिराज पल्यङ्क आसनसे ध्यानमें स्थित थे । उनको देखकर बन्दरको जातिस्मरण हो गया । तब उसने मुनिकी जंघाको एक तीक्ष्ण लकड़ीके द्वारा विद्ध कर दिया । इतनेपर भी मुनिके हृदयमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं हुआ । शरीरके विषयमें उनकी इस प्रकारकी निर्ममत्व बुद्धिको देखकर उक्त बन्दरकी क्रोधवासना शान्त हो गई । तब उसने मुनिकी जंघामेंसे उस लकड़ीको निकाल लिया और औषधके प्रयोगसे उनके घावको भी ठीक कर दिया । फिर उसने वनके फूलोंसे मुनिकी पूजा करके हाथके संकेतसे यह जतलाया कि उपसर्ग नष्ट हो चुका है । तब मुनिराजने दोनों हाथोंको ऊपर उठाया । तत्पश्चात् बन्दरने उन्हें प्रणाम करके उनसे अणुव्रतोंको ग्रहण किया । इस प्रकारसे उस वैद्यको क्या ऐसा अविचारित कार्य करना योग्य था । जिनदत्तने कहा कि नहीं ॥१२॥

तत्पश्चात् 'मैं भी कहता हूँ', इस प्रकार जिनदत्त सेठ बोला ही था कि इतनेमें कुबेरदत्तने उस घड़ेको पिताके सामने रख दिया और उनसे बोला कि हे मुने ! वनमें चलिए और मुझे दीक्षा दीजिए । कहा भी है—

धनके लोभसे होनेवाले अनर्थके विषयमें वैद्य, तापस, सेठ, बन्दर, बटुक, वनका हाथी, आम्रफल, सुंडग, वृषभ, मुंगूस तथा मणि व साधु; इनके आख्यान कहे गये हैं ॥३॥

इससे पिताको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ । तब उन दोनोंने दीक्षा ग्रहण कर ली और विहार करने लगे । वही मैं मणिमाली हूँ । वे ही हम विहार करते हुए यहाँ आये हैं । मुझमें कायगुप्ति स्थिति नहीं थी, इसीलिए हे श्रेणिक ! हम वहाँ नहीं रुके । इस सब वृत्तान्तको सुनकर राजा श्रेणिक वेदकसम्यग्दृष्टि हो गया ।

कुछ दिनोंके पश्चात् चेलिनीके गर्भ धारण करनेपर अनिर्वचनीय दोहल उत्पन्न हुआ । उसकी पूर्ति न हो सकनेसे चेलिनीका शरीर अतिशय कृश हो गया । उसको कृश देखकर श्रेणिकने

१. प मतः । २. प ब श त्रिबोध, फ विबे धात् । ३. फ हस्तावुधृतौ श हस्ताबुद्धतौ । ४. प फ ब 'च' नास्ति । ५. श 'कलशं' नास्ति । ६. फ निक्षिप्यावदच्च, ब क्षिपदवदच्च । ७. श मुंगस्सो । ८ प प्रपणौ । ९. प श वासते ते वयं, फ °बासते वयं, ब वासातौ ते वयं । १०. फ °स्तदैव कायगुप्तिर्न स्थितेति । ११. फ तदप्राप्तवानिति ।

राजा महाग्रहेणापृच्छत्तदावदद्देवी[1] हे नाथ, ते वक्षःस्थलं विदार्य रुधिरास्वादने पापिष्ठाया वाञ्छा वर्तते इति चित्रमयस्वरूपे तद्वाञ्छां पूरितवान् राजा। सा पुत्रं लेभे। तन्मुखमवलोकनार्थं राजन्युपस्थिते बालस्तं वीक्ष्य बद्धभ्रुकुटिर्लोहिताक्षो[2] दष्टाधरश्चासीत् स्वस्य दुःपरिणतिं चकार। राज्ञो रुष्ट इति देव्युद्यानेऽतित्यजद्राज्ञानीय[3] धात्र्याः समर्पितः कुणिकनामा[4] वर्धितुं लग्नः। क्रमेण वारिषेण-हल्ल-विहल्ल-जितशत्रुनामानः[5] पञ्च पुत्रा अजनिषत[6]। षष्ठे गर्भे दोहलको जातः। कथम्। हस्तिनमारुह्य प्रावृषि सति भ्रमिष्यामीति। तदप्राप्त्या कृशदेहां नृपालोऽपृच्छत्। सा स्वरूपमवदत्। राजा ग्रीष्मे कथं वाञ्छां पूरयामीति सचिन्तोऽबोभवीत्। अभयकुमारो वृष्ट्यादिकं करिष्यामीति प्रेषणं प्राप्य रात्रौ व्यन्तरादिकमवलोकयितुं श्मशानं जगाम। वटतलेऽनेकदीपप्रकाशे धूपधूमाकृष्टबहुव्यन्तरे सुगन्धिकुसुमैर्जपन्तं पुरुषमुद्विग्नमद्राक्षीत्, कस्त्वं किं जपसीति पृष्टवांश्च। स आह— विजयार्धोत्तरश्रेणौ गगनवल्लभपुरेशोऽहं पवनवेगो जिनालयवन्दनार्थं मन्दरमयाम्। तत्र[7] वालकापुरेशविद्याधरश्चक्रवर्तितनुजा[8] समायाता[9]। तद्दर्शनेन शतखण्डजातकामबाणमना अहं तामादाय दक्षिणमेतद्भरतस्योपरि गच्छन्

बहुत आग्रहसे इसका कारण पूछा। तब चेलिनीने कहा कि हे नाथ! मुझ पापिष्ठाकी इच्छा तुम्हारे वक्षस्थलको विदीर्ण करके रक्तके पीनेकी है। यह सुनकर श्रेणिकने चित्रमय स्वरूपमें उसकी इच्छाको पूर्ण किया— अपने वक्षस्थलको चीरकर रक्तदान किया। समयानुसार उसने पुत्रको प्राप्त किया। उसके मुखको देखनेके लिए जब श्रेणिक वहाँ पहुँचा तब बालकने उसको देखकर भृकुटियोंको कुटिल करते हुए लाल नेत्रोंको करके अपने अधरोष्ठको काट लिया। इस प्रकारसे उसने अपने शरीरकी दुष्टतापूर्ण प्रवृत्ति की। यह राजाके ऊपर रुष्ट है, ऐसा जानकर चेलिनीने उसे वनमें छोड़ दिया। परन्तु जब यह बात राजाको मालूम हुई तब उसने लाकर उसे धायको दे दिया। कुणिक नामको धारण करनेवाला वह बालक क्रमशः वृद्धिंगत होने लगा। तत्पश्चात् क्रमसे चेलिनीके वारिषेण, हल्ल, विहल्ल और जितशत्रु नामके पुत्र हुए; इस प्रकार उसके पाँच पुत्र हुए। छठी बार जब उसके गर्भ रहा तब उसे हाथीके ऊपर चढ़कर वर्षाकालमें घूमनेका दोहल उत्पन्न हुआ। इस दोहलकी पूर्ति न हो सकनेसे चेलिनीका शरीर कृश हो गया। उसे कृश देखकर श्रेणिकने उससे इसका कारण पूछा। तब उसने अपनी वह इच्छा प्रगट कर दी। यह जानकर राजाको बहुत चिन्ता हुई। कारण यह कि ग्रीष्म कालमें उसके उपर्युक्त दोहल (हाथीके ऊपर चढ़कर वर्षाकालमें विहार करना) की पूर्ति करना कठिन था। तब अभय कुमार 'मैं वृष्टि आदिको करूँगा' यह कहते हुए राजाकी आज्ञा लेकर रात्रिमें व्यन्तरोंके अन्वेषणार्थ श्मशानमें गया। वहाँ उसने वट वृक्षके नीचे अनेक दीपोंके प्रकाशमें बहुत पुष्पोंसे जप करते हुए किसी उद्विग्न पुरुषको देखा। उसके जपके समय वहाँ धूपके धुएँसे बहुत-से व्यन्तर आकृष्ट हुए थे। अभयकुमारने उससे पूछा कि तुम कौन हो और क्या जपते हो। वह बोला— विजयार्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणिमें गगनवल्लभ नामका एक नगर है। मैं उसका राजा हूँ। नाम मेरा पवनवेग है। मैं जिनालयोंकी वन्दना करनेके लिए मन्दर पर्वतपर गया था। उस समय वहाँ बालकापुरके स्वामी विद्याधर चक्रवर्तीकी पुत्री आयी थी। उसके देखनेसे मेरा मन कामबाणसे विद्ध हो गया। इसी-

---

१. फ °ग्रहेण पृच्छंस्तदा°, श °गृहेणापृच्छन् तदा°। २. फ बद्धभृकुटिलोहिताक्षो, श वर्धभ्रूकुटिलोहिताक्षो°। ३. फ राज्ञी रुष्टा इति देव्युद्याने (°ब दिग्युद्यानेति°) तत्यजद्राजानीय। ४. फ ब °नाम्ना। ५. फ °नामानं। ६. प फ अजनिषतः ब अजनिषनं। ७. प मंदरमयत् तत्र फ मन्दरमयास्तत्र श मंदरमयं तत्र। ८. श विद्याधरश्चक्रवर्ति। ९. श जातः।

तत्सखीभ्योऽवधार्य कोपेन चक्री पृष्ठे लग्नोऽहं तेन युद्धवान् । स मे विद्यां छेदयित्वा तां नीतवानहं भूमिगोचरो भूत्वात्रास्थाम्[1] । द्वादशवर्षानन्तरं मे एतन्मन्त्रजपने पुनर्विद्याः सेत्स्यन्तीति उपदेशोऽस्ति । द्विर्जपनेऽपि न सिद्धा इत्युद्विग्नो गृहं गन्तुमिच्छामीति । अभयकुमारोऽवदत्तं 'मन्त्रं कथय' । कथिते तस्मिन् यत्तत्राक्षरं[2] न्यूनं तन्निक्षिप्य जपेत्युवाच । स जपन्[3] ततः सिद्धविद्यस्तं[4] ननाम[5] । ततस्तेन तत्सर्वमचीकरत्[6] कुमारस्ततः सा गजकुमारनामानं पुत्रमसूत दिनान्तरैर्मेघकुमारमपीति सप्तपुत्रमाताजनि चेलिनी सुखेनातिष्ठत्[7] ।

एकदा ऋषिनिवेदकेन विज्ञप्तो राजा देव, श्रीवर्धमानस्वामिसमवसरणं विपुलाचलेऽस्थादिति । सकलजनेन सह पूजयितुमियाय, पूजयित्वा तद्विभूत्यातिशयविलोकनादधिकविशुद्ध्या क्षायिकसद्दृष्टिर्बभूव तीर्थकरत्वं च चिचार्य[8] ।

तदनु गौतमं पप्रच्छाभयकुमारपुण्यातिशयहेतुं गजकुमारस्य च । स आह–वेणातटाकपुरे द्विजो रुद्रदत्तो गङ्गायां गच्छन् एकस्मिन् ग्रामे रात्रौ वसतिकायां श्रावकान्तिके भोजनं

लिए मैं उसको लेकर इस दक्षिण भरत क्षेत्रके ऊपरसे जा रहा था । उधर वह विद्याधरोंका स्वामी पुत्रीकी सखियोंसे यह ज्ञात करके क्रोधसे मेरे पीछे लग गया । तब मुझे उसके साथ युद्ध करना पड़ा । वह मेरी विद्याको नष्ट करके अपनी पुत्रीको ले गया । विद्याके नष्ट होनेसे मैं भूमिगोचरी होकर आकाशमार्गसे जानेमें असमर्थ हो गया । तबसे मैं यहाँपर स्थित हूँ । बारह वर्षके पश्चात् इस मन्त्रके जपनेपर मेरी विद्याएँ फिरसे सिद्ध हो जावेंगी, यह उपदेश है । परन्तु दो बार जपनेपर भी वे विद्याएँ सिद्ध नहीं हुई हैं । इससे क्षुब्ध होकर मैं घर जानेकी इच्छा कर रहा हूँ । इस वृत्तान्तको सुनकर अभयकुमारने उससे उस मन्त्रको बतलानेके लिए कहा । तब उसने वह मन्त्र अभय कुमारके लिए बतला दिया । उस मन्त्रमें जो कम अक्षर था उसको रखकर अभयकुमारने उसे फिरसे जपनेके लिए कहा । तदनुसार उसके फिरसे जपनेपर पवनवेगकी वे सब विद्याएँ सिद्ध हो गईं । इस प्रकार विद्याओंके सिद्ध हो जानेपर पवनवेगने अभयकुमारको प्रणाम किया । तत्पश्चात् अभयकुमारने पवनवेगकी सहायतासे वह सब (चेलिनीके दोहलाकी पूर्ति) किया । इसके बाद चेलिनीने गजकुमार नामक पुत्रको उत्पन्न किया । फिर उसने कुछ दिनोंके पश्चात् मेघकुमार नामक पुत्रको भी जन्म दिया । इस प्रकार चेलिनी सात पुत्रोंकी माता होकर सुखपूर्वक स्थित हुई।

एक समय ऋषिनिवेदकने आकर राजासे निवेदन किया कि हे देव ! विपुलाचलके ऊपर श्री वर्धमान स्वामीका समवसरण स्थित हुआ है । तब श्रेणिक समस्त जनके साथ वर्धमान जिनेन्द्रकी पूजा करनेके लिए वहाँ गया और उनकी पूजा करके तथा अलौकिक विभूतिको देख करके अतिशय दर्शनविशुद्धिके होनेसे वह क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया । उस समय उसने तीर्थंकर प्रकृतिको भी संचित कर लिया ।

पश्चात् श्रेणिकने अभयकुमार और गजकुमारके अतिशय पुण्यके विषयमें गौतम गणधरसे प्रश्न किया । उन्होंने उत्तरमें कहा कि वेणातटाकपुरमें रुद्रदत्त नामका एक ब्राह्मण था । वह गंगा जाते हुए रात्रिमें किसी एक गाँव (उज्जयिनी)के भीतर वसतिकामें ठहर गया । उसने वहाँ श्रावक (अर्हद्दास) के पास भोजनकी याचना की । तब श्रावकने कहा कि रात्रिमें भोजन

१. फ ऽत्रास्थ । २. फ कथितेति विस्मिन्त तत्राक्षरं, ब कथिते तस्मिन् यत्तदक्षरं । ३. फ स चायां जपीत्, ब जंजपीनि । ४. फ विद्यास्तं । ५. प नमाम । ६. श ०मचीकरन् । ७. फ ०सुखेनावतिष्ठन् । ८. प श विचाय, फ चियाय ।

ययाचे। तेन च रात्रौ नोचितमिति धर्मश्र[श्रा]वणं कृतम्[1]। स जैनो भूत्वा संन्यासेन सौधर्मं गतः। तस्मादागत्याभयकुमारो जातः। इदानीं गजकुमारस्य भवानाह— तथाह्येकस्मिन्नरण्ये[2] सुधर्मनामामुनिर्ध्यानेनास्थात्। तत्र च भिल्लपल्ल्यामतिदारुणभिल्लस्तदरण्येऽग्निमदाद्भट्टारकः समाधिनाच्युतमगात्। भिल्लस्तत्कलेवरं दृष्ट्वा कृतपश्चात्ताप आयुरन्ते[3] तत्रारण्ये महान् हस्ती जातः, नन्दीश्वरद्वीपात्स्वर्गं गच्छताच्युतनिवासिनादर्शि। तदनु स सुरो दिगम्बरवेषेण तदागमनमार्गे ध्यानेन स्थितः। तं विलोक्य हस्ती जातिस्मर आसीत् प्रणतवांश्च। धर्मश्रवणानन्तरं गृहीतसकलश्रावकव्रतः समाधिना सहस्रारं गत्वागत्य गजकुमारोऽभूदिति निशम्याभयकुमारादयो दीक्षां[4] दधुर्नन्दश्रीश्च। राजा यदभीष्टं तत्सर्वमाकर्ण्य चेलिन्या स्वपुरं विवेश। महामण्डलेश्वरविभूत्या तस्थौ।

एकदा सौधर्मेन्द्रो निजसभायां सम्यक्त्वस्वरूपं निरूपयन् देवैः पृष्टः किमीदृग्विधः[6] सम्यक्त्वाधारो नरो भरतेऽस्ति नो[7] वा। स कथयति श्रेणिकस्तथाविधो विद्यते, इति निशम्य द्वौ देवौ तत्परीक्षणार्थं अत्रोत्तीर्णौ। तत्पापर्द्धिगमनपथि नद्यामेको दिगम्बरवेषेण जालं निक्षि-

करना योग्य नहीं है। इस प्रकार वह धर्मको सुनकर जैन हो गया। तत्पश्चात् संन्यासपूर्वक मरणको प्राप्त होकर वह सौधर्म स्वर्गको प्राप्त हुआ और फिर वहाँसे च्युत होकर अभयकुमार हुआ है। अब गजकुमारके भवोंको कहते हैं जो इस प्रकार हैं— एक वनमें सुधर्म नामके मुनि ध्यानसे स्थित थे। इस वनके भीतर भीलोंकी वस्तीमें एक अत्यन्त भयानक भील था। उसने उक्त वनमें आग लगा दी। तब वहाँ स्थित सुधर्म मुनि समाधिपूर्वक प्राणोंको छोड़कर अच्युत कल्पमें देव हुए। भीलने जब मुनिके मृत शरीरको देखा तब उसे पश्चात्ताप हुआ। वह आयुके अन्तमें मरणको प्राप्त होकर उसी वनके भीतर विशाल हाथी हुआ। पूर्वोक्त सुधर्म मुनिका जीव वह अच्युतकल्पवासी देव नन्दीश्वर द्वीपसे स्वर्गको वापिस जा रहा था। तब उसने जाते हुए उस हाथीको देखा। तत्पश्चात् वह दिगम्बर वेषको धारण करके उक्त हाथीके आनेके मार्गमें ध्यानसे स्थित हो गया। उसे उस अवस्थामें स्थित देखकर हाथीको जातिस्मरण हो गया। तब उसने उसे प्रणाम किया। फिर उसने धर्मको सुनकर श्रावकके समस्त व्रतोंको धारण कर लिया। अन्तमें वह समाधिपूर्वक मरकर सहस्रार स्वर्गमें गया और फिर वहाँसे आकर गजकुमार हुआ है। इस प्रकार अपने पूर्वभवोंके वृत्तान्तको सुनकर अभयकुमार आदिके साथ नन्दश्री (अभयकुमारकी माता) ने भी दीक्षा धारण कर ली। राजा श्रेणिकको जो भी अभीष्ट था वह सबको सुनकर वह चेलिनीके साथ अपने नगरमें वापिस आया और महामण्डलेश्वरकी विभूतिके साथ स्थित हुआ।

किसी समय सौधर्म इन्द्र अपनी सभामें सम्यक्त्वके स्वरूपका निरूपण कर रहा था। तब देवोंने उससे पूछा कि क्या इस प्रकारके सम्यक्त्वका धारक कोई मनुष्य भरत क्षेत्रमें है या नहीं। इसके उत्तरमें सौधर्म इन्द्रने कहा कि हाँ, उस प्रकारके सम्यक्त्वका धारक वहाँ राजा श्रेणिक विद्यमान है। यह सुनकर दो देव उसकी परीक्षा करनेके लिए यहाँ आये। उनमेंसे एक देव तो राजा श्रेणिकके शिकारके लिए जानेके मार्गमें स्थित एक नदीपर दिगम्बरके वेषमें जालको फैलाकर

१. प (अस्पष्टमस्ति), फ °श्रवणकृतं, ब श्रवण कृतं। २. फ तथा हि कस्मिन्नरण्ये। ३. प श आयुरन्तेन। ४. श °कुमारादयो यो दीक्षा। ५. फ बभ०। ६. श किमीदृग्वेधः। ७. फ ब सम्यक्त्वाधारो भरते विद्यते नो। ब प्रतिपाठोऽयम्। श विद्यतेति।

पक्षस्थादन्य आर्यिकारूपेण[1] तेनाकृष्टमत्स्यान् करण्डके निक्षिपन् चासीत् । तथा तद्युगलं ददर्श राजा ननाम, जजल्प च 'किं विधीयते' इति । धर्मवृद्ध्यनन्तरं कृतकयतिरब्रवीदस्या गर्भसंभूतौ मत्स्यमांसवाञ्छाजनि, एतदर्थं मत्स्याकर्षणं विधीयते । भूयो बभाणैतेन वेषेण नोचितम् । मायावी अभणदेवं प्रघट्टकोऽजनि, किं क्रियते । तथापि दिगम्बराणामनुचितम् । यतिरब्रवीत्[2]–प्रघट्टकं प्राप्य सर्वेऽपि[3] मादृशा एव । राज्ञाभाणि[4]–त्वं सद्दृष्टिरपि न भवसि, निकृष्टोऽसि । स बभाण–मया किमसत्यमुक्तं यावत्त्वं[5] मां प्रत्येवं वदसि । परमं[6]यतीनां गालिप्रदानात्त्वमेवं[7] न जैनो वयं जैना एव । राजावदत्संवेगादिसम्यक्त्वलक्षणाभावात्कथं जैनोऽसि अप्रभावनाशीलत्वाच्च । किंतु यद्यनेन वेषेणैवं करिष्यसि[8] त्वमेव जानासि । मायाविनोक्तं 'किं करिष्यसि' । दर्शनोपद्रोलकारकत्वाद्दिगम्बरो न भवसीति गर्दभारोहणं कारयिष्यामीति गृहमानीतौ । मन्त्रिण ऊचुः— देव, एवंविधस्य नमस्कारकरणे दर्शनातिचारः किं न भवति । स बभाणायं वेषधारी जैन इति मत्वा मयानामीति[9] दर्शनातिचारो नास्ति, चारित्रातिचारो भवति यदि मे चारित्रं स्यादिति[10] । तस्य दृढत्वदर्शनाद्धृष्टौ[11] सुरौ प्रकटीभूतां[12] [भूतौ] तं

बैठ गया और दूसरा आर्यिकाके रूपमें वहींपर स्थित होकर उसके द्वारा पकड़ी गई मछलियोंको टोकरीमें भरने लगा । राजा श्रेणिकने उस अवस्थामें स्थित उक्त युगलको देखकर नमस्कार किया । तत्पश्चात् उसने उनसे पूछा कि आप क्या कर रहे हैं ? उत्तरमें धर्मवृद्धि देनेके पश्चात् वह कृत्रिम मुनि बोला कि इसके गर्भावस्थामें मछलियोंके मांसकी इच्छा उत्पन्न हुई है । इसके लिए मैं मछलियोंको पकड़ रहा हूँ । श्रेणिकने तब फिरसे कहा कि इस वेषमें ऐसा कार्य करना उचित नहीं है । इसपर वह मायावी मुनि बोला कि प्रयोजन ही ऐसा उपस्थित हो गया है, मैं क्या करूँ ? तब श्रेणिकने कहा कि फिर भी दिगम्बर साधुओंको ऐसा करना योग्य नहीं है । यह सुनकर मुनिने उत्तर दिया कि प्रयोजनको पाकर सब ही मेरे समान हो जाते हैं । इसपर राजा बोला कि तुम सम्यग्दृष्टि भी नहीं हो, निकृष्ट हो । वह बोला कि क्या मैंने असत्य कहा है जो तुम मेरे प्रति इस प्रकार कह रहे हो । उत्तम ऋषियोंको गाली देनेके कारण तुम ही जैन नहीं हो, हम तो जैन ही हैं । राजा बोला कि जब तुममें सम्यग्दर्शनके लक्षणभूत संवेगादि भी नहीं हैं तब तुम कैसे जैन हो सकते हो । क्या कोई जैन इस वेषमें जैनधर्मकी अप्रभावना करा सकता है ? यदि तुम मुनिके इस वेषमें इस प्रकारका अकार्य करोगे तो तुम ही जानो । तब मायावी देवने पूछा कि क्या करोगे ? सम्यग्दर्शनके विराधक होनेसे चूँकि तुम दिगम्बर नहीं हो सकते हो, इसीलिए मैं तुम्हारा गर्दभारोहण कराऊँगा । इस प्रकार कहकर श्रेणिक उन दोनोंको अपने घरपर ले आया । उस समय मन्त्रियोंने श्रेणिकसे पूछा कि हे देव ! इस प्रकारके भ्रष्ट मुनिके लिए नमस्कार करनेमें क्या सम्यग्दर्शन सदोष नहीं होता है ? श्रेणिकने उत्तर दिया कि यह वेषधारी जैन है, यह समझ करके मैंने उसे नमस्कार किया है; इसलिए ऐसा करनेसे सम्यग्दर्शन सातिचार नहीं होता है । हाँ, यदि मुझमें चारित्र होता तो चारित्रका अतिचार अवश्य हो सकता था, सो वह है नहीं । इस प्रकारसे जब उक्त देवोंने श्रेणिककी दृढ़ताको देखा तब उन्होंने हर्षित होकर अपने यथार्थ स्वरूपको

१. प निक्षिपत्तस्थादन्य अर्जिका°, श निक्षिप्पन्यस्थादन्यदर्जिका° । २. फ ब यतिरवद् । ३. फ सर्वेऽप्य । ४. प श राजाभाणि, ब राज्ञाभणि । ५. फ यावत्ते । ६. फ वदसि ममं परम । ७. फ त्वामेव । ८. फ अतोऽग्रेऽग्रिम'करिष्यसि'पर्यन्तः पाठस्त्रुटितोऽस्ति । ९. प फ मया ननामीति । १०. प फ चारित्रं न स्यादिति । ११. प श दृढदर्शना° । १२. ब प्रकटीव्यभूता ।

नेमतुर्गङ्गोदकेन दम्पती सुप्तवतुर्दिविजलोकवस्त्राभरणैः पूजयामासतुः स्वर्गं जग्मतुश्च। एवं सुरपूजितः श्रेणिकः कुणिकाय राज्यं दत्त्वा सुखेन तिष्ठामीति मत्वा तं राजानं चकार। स च महताग्रहेण मातरं निवार्य तमेवासिपञ्जरे निक्षिप्तवान्। अलवणकाञ्जिककोद्रवान्नं च भोक्तुं दापयति दुर्वचनानि च भणति। एवं दुःखानि सहमानोऽस्थात्। अन्यदा भोक्तुमुपविष्टस्य कुणिकस्य भाजने तत्पुत्रो मूत्रितवान्। स मूत्रोदनमपसार्य मातरं[1] पृष्टवान् मत्तोऽन्यः किमीदृग्विधोऽपत्यमोहवान् विद्यते। सा बभाण—त्वं किं मोहवान्। शृणु तव पितुर्मोहं बाल्ये तवाङ्गुलौ दुर्गन्धरसादियुक्तो व्रण आसीत्। केनाप्युपायेन सुखं नास्ति यदा तदा त्वत्पिताङ्गुलिं स्वमुखे निक्षिप्य आस्ते। इति श्रुत्वोक्तवान् हे मात, उत्पन्नदिने मां त्यक्तवानिति किमीदृग्विधोऽपत्यमोह इति। तयाभाणि मया त्यक्तोऽसि, तेनानीतोऽसि राजापि कृतोऽसि[2]। तस्येत्थं कर्तुं तवोचितमिति[3] श्रुत्वा स आत्मानं[4] निन्दित्वा मोचयितुं यावदागच्छति[5] तावत्तं विरूपकाननं विलोक्यान्यदपि किंचिदयं करिष्यतीति मत्वा श्रेणिकोऽसिधारासु पपात[6] ममार, प्रथमनरके जज्ञे। कुणिकोऽतिदुःखं चकार तत्संस्कारं च। तन्मुक्तिनिमित्तं ब्राह्मणादिभ्योऽग्रहारादिकं

प्रकट कर दिया। फिर उन दोनोंने उसे नमस्कार करके चेलिनीके साथ उन दोनोंका गंगाजलसे अभिषेक किया। तत्पश्चात् स्वर्गलोकके वस्त्राभरणोंसे उनकी पूजा करके वे स्वर्गको वापिस चले गये। इस प्रकार देवोंसे पूजित होकर श्रेणिकने, कुणिकके लिए राज्य देकर मैं सुखपूर्वक रहूँगा, इस विचारसे उसे राजा बना दिया। तब कुणिकने माताके बाधक होनेपर उसे अतिशय आग्रहसे रोककर पिताको ही असिपंजर (कटघरा) में रख दिया। वह उसके लिए नमकके बिना कांजिक और कोदोंका भोजन खानेके लिए दिलाता तथा दुर्वचन बोलता था। इस प्रकारसे दुखको सहता हुआ श्रेणिक उस कटघरेमें स्थित रहा। किसी समय जब कुणिक भोजनके लिए बैठा था तब उसके पुत्रने भोजनके पात्रमें मूत दिया। उस समय कुणिकने मूत्रयुक्त भोजनको अलग करके शेषको खाते हुए मातासे पूछा कि मुझको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा पुत्रप्रेमी है क्या? उत्तरमें चेलनाने कहा कि तू कितना मोहवाला है, अपने पिताके पुत्रमोहको सुन—बाल्यावस्थामें तेरी अंगुलिमें दुर्गन्धित पीव आदिसे संयुक्त एक घाव हो गया था। वह किसी भी उपायसे ठीक नहीं हुआ। इससे तू बहुत दुखी था। तब तेरे पिताने उस अंगुलिको अपने मुँहमें रखकर तुझे सुखी किया था। यह सुनकर कुणिकने मातासे कहा कि हे माता! क्या यही पुत्रमोह है जो कि मुझे उत्पन्न होनेके दिन ही छोड़ दिया गया था? चेलनाने कहा कि तेरा परित्याग मैंने किया था, राजा तो तुझे वहाँसे उठाकर वापिस लाये थे। इतना ही नहीं, उन्होंने तुझे राजा भी बनाया। ऐसे पुत्रस्नेही पिताके विषयमें तुझे ऐसा अयोग्य व्यवहार करना उचित है क्या? यह सुनकर कुणिकने अपनी आत्मनिन्दा की। फिर वह पिताको बन्धनमुक्त करनेके लिए उनके पास पहुँचा। किन्तु जब श्रेणिकने उसे मलिन मुखके साथ अपनी ओर आते हुए देखा तो यह सोचकर कि अब और भी यह कुछ करेगा, वह तलवारकी धारपर गिर पड़ा और मर करके प्रथम नरकमें उत्पन्न हुआ। इस दुर्घटनासे कुणिकको बहुत दुख हुआ। उसने श्रेणिकके अग्निसंस्कारको करके उसकी मुक्तिके निमित्त ब्राह्मणादिके लिए अग्रहारादि दिया। माता चेलिनीके समझानेपर भी जब उसने जैन मतको

१. प ब °मपसार्य भुक्तं मातरं, क °मपसार्य तु भुक्त्वा मातरं। २. क राजापि वृद्धिं कृतोऽसि। ३. फ भवानुचितमिति। ४. क आत्मनो। ५. क यदा गच्छति। ६. क °सिधारामुपयातः।

ददौ। मात्रा संबोधितोऽपि जैनमतं नाभ्युप गच्छति। तदा सा वर्धमानस्वामिसमवसरणे स्वभगिनीचन्दनार्यानिकटे दीक्षिता समाधिना दिवि देवो जातः। अभयकुमारादयो यथायोग्यां गति[1] ययुः। एवं श्रेणिकः सप्तमावनौ बद्धायुरपि[2] सकृज्जिनं विलोक्य पूजयित्वावाप्तसम्यक्त्वप्रभावेन[3] तीर्थकरत्वमुपार्ज्याग्रे[4] यद्यत्रैव भरते आदितीर्थकरः स्यात्तदान्यो भव्यो दर्शनपूर्वकव्रतधारी जिनपूजकः किं त्रिलोकस्वामी न स्यात्। भ्राजिष्णोराराधना[5]-कर्णाटटीकाकथितक्रमेणोल्लेखमात्रं कथितेयं कथा इति ॥८॥

भुक्त्वा स्वर्गसुखं हृषीकविषयं दीर्घं मनोवाञ्छितं
भूत्वा तीर्थकरास्ततो[6] नतसुराश्चक्राधिपा भोगिनः।
क्षीरोदामलकीर्तिबोधनिधयो मुक्तौ[7] भजन्ते सुखं
ये पूजाफलवर्णनाष्टकमिदं भव्याः पठन्त्यादरात्[8] ॥

॥ इति पुण्यास्रवाभिधानग्रन्थे केशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यरामचन्द्रमुमुक्षुविरचिते पूजाफलवर्णनाष्टकं[9] समाप्तम् ॥१॥

[६]

वृषो हि वैश्योदितपञ्चसत्पदः
सुखं स भुक्त्वा दिविजं नृलोकजम्।
बभूव सुग्रीवसुनामधेयक-
स्ततो[10] वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिनाः ॥१॥

स्वीकार नहीं किया तब चेलिनीने वर्धमान जिनेन्द्रके समवसरणमें अपनी बहिन चन्दना आर्यिकाके निकटमें दीक्षा धारण कर ली। वह समाधिपूर्वक शरीरको छोड़कर स्वर्गमें देव हुई। अभयकुमार आदि यथायोग्य गतिको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे श्रेणिकने सातवें नरककी आयुको बाँध करके भी जब एक बार जिनेन्द्रका दर्शन व पूजन करके प्राप्त हुए सम्यक्त्वके प्रभावसे तीर्थङ्कर प्रकृतिको भी बाँध लिया और भविष्यमें इसी भरत क्षेत्रके भीतर प्रथम तीर्थङ्कर होनेवाला है तब दूसरा कोई भव्य जीव यदि सम्यग्दर्शनके साथ व्रतोंको धारण करके जिनेन्द्रकी पूजा करता है तो वह क्या तीनों लोकोंका स्वामी न होगा? अवश्य होगा। यह कथा भ्राजिष्णुकी आराधना कर्णाटक टीकामें वर्णित क्रमके अनुसार उल्लेख मात्रसे कही गई है।

जो भव्य जीव पूजाके फलको बतलानेवाले इस अष्टक (आठ कथाओं) को पढ़ते हैं वे इच्छानुसार बहुत काल तक स्वर्ग सम्बन्धी इन्द्रिय-सुखको भोग करके तत्पश्चात् तीर्थङ्कर होते हुए देवोंसे पूजित चक्रवर्तीके भी सुखको भोगते हैं और अन्तमें क्षीरसमुद्रके समान निर्मल कीर्ति एवं ज्ञानरूप निधिसे संयुक्त होकर मोक्ष सुखको भोगते हैं ॥८॥

इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनिके शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु, विरचित पुण्यास्रव नामक ग्रन्थमें पूजाफलका बतलानेवाला अष्टक समाप्त हुआ ॥१॥

जो एक बैलकी पर्यायमें अवस्थित था उसने सेठके द्वारा उच्चारित पंचनमस्कार मन्त्रको सुनकर स्वर्गलोक और मनुष्यलोकके सुखको भोगा। पश्चात् वह सुग्रीव नामका राजा हुआ। इसीलिए हम उस पंचनमस्कार मंत्रके विषयमें दृढ़श्रद्धानी होते हैं ॥१॥

१. फ गत्यं। २. प श बद्धायुरिति। ३. फ °त्वा वाप सस्य सम्यक्त्वा, ब °त्वा प्राप्तसम्यक्त्व। ४. फ °मुपार्जाग्रे, ब °मुपार्य्यग्रे, श °मुपार्योग्रे। ५. प भ्राजिष्लोराधना, ब भ्राजिष्लोराधना, श भाजिष्ण्वोराधना। ६. श तीर्थकरस्ततो। ७. ब युक्ता। ८. फ °मिदं तत्पठदत्यादरात्। ९. सर्वास्वेव प्रतिषु 'पुण्याश्रवाभि°' पाठोऽस्ति। १०. ब फलव्यावर्णना°। ११. ब धीयकस्ततो।

अस्य कथा— अत्रैव भरतेऽयोध्यायां राजानौ राम-लक्ष्मीधरौ स्वपुरबहिःस्थितमहेन्द्रोद्यानवासिनः[1] सकलभूषणकेवलिनो वन्दितुमीयतुः समर्च्य वन्दित्वोपविविशतुः। धर्मश्रुतेरनन्तरं विभीषणोऽप्राक्षीत् केन पुण्यफलेन सहस्राक्षौहिणीबलाधीशो रामप्रियः सुग्रीवोऽजनीति। आह देवः— अत्रैव भरते श्रेष्ठपुरे राजा छत्रच्छायो देवी श्रीदत्ता, श्रेष्ठी पद्मरुचिरधिगमसद्दृष्टिश्चैत्यालयाद् गृहमागच्छन् मार्गे युद्ध्वा पतितं वृषभमद्राक्षीत्। तस्मै पञ्चनमस्कारान् ददौ। तत्फलेन छत्रच्छाय-श्रीदत्तयोर्नन्दनो वृषभध्वजनामा व्यजनिष्ट राज्येऽस्थात्। एकदा गजारूढो नगरे लीलया परिभ्रमन् वृषभपतनस्थानमपश्यन्मूर्च्छितो जातिस्मरो भूत्वा तूष्णीं स्वभवनमियाय, तत्पुरुषपरिज्ञानार्थं अतिविचित्रं जिनभवनमकार्षीत् तत्रैकदेशे पतितवृषभरूपं पञ्चनमस्कारकथकरूपसहितं च। तत्रैकं विचक्षणपुरुषमस्थापयत् 'य इमं विस्मितोऽवलोकयति[1] स मत्सकाशे आनेतव्यः' इति। तथावलोकितं पद्मरुचिं तदन्तिकं[2] संनिनाय। राजा तमपृच्छत् किमिति तं वृषभं विलोक्य विस्मितोऽसि। स आह-मया पतितवृषभस्य पञ्चनमस्कारा दत्ताः। स क्वोत्पन्न इति तद्दर्शनात्तं स्मृत्वावलोकितवानहमिति निरू-

इसकी कथा— इसी भरत क्षेत्रके भीतर अयोध्या पुरीमें राजा राम और लक्ष्मण राज्य करते थे। एक समय वहाँ सकलभूषण केवली आकर नगरके बाहिर महेन्द्र उद्यानमें स्थित हुए। राम और लक्ष्मण उनकी वन्दनाके लिए गये। उन्होंने उनकी पूजा व वन्दना करके धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् विभीषणने पूछा कि हे भगवन्! हजार अक्षौहिणी प्रमाण सेनाका स्वामी सुग्रीव किस पुण्यके फलसे रामका स्नेहभाजन हुआ है। केवली बोले— इसी भरत क्षेत्रके भीतर श्रेष्ठपुर नामक नगरमें छत्रछाय नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम श्रीदत्ता था। वहाँ एक पद्मरुचि नामका सेठ रहता था। वह अधिगमसम्यग्दृष्टि था। एक दिन उसे चैत्यालयसे घर वापिस आते हुए मार्गमें एक बैल दिखा। वह किसी अन्य बैलसे लड़ते हुए गिरकर मरणोन्मुख हुआ था। सेठने उसे इस अवस्थामें देखकर पंचनमस्कार-मंत्र दिया। उसके फलसे वह राजा छत्रछाय और रानी श्रीदत्ताके वृषभध्वज नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। समयानुसार वह राजपदपर प्रतिष्ठित हुआ। एक समय वह हाथीके ऊपर चढ़कर नगरमें घूमते हुए उस स्थानपर पहुँचा जहाँ कि पूर्वोक्त बैल गिरकर मरणको प्राप्त हुआ था। उस स्थानको देखते ही उसे जातिस्मरण हो जानेसे मूर्छा आ गई। सचेत होनेपर वह चुपचाप अपने भवनमें पहुँचा। उसने उक्त बैलको पंचनमस्कार मंत्र देनेवाले पुरुषको ज्ञात करनेके लिए वहाँ एक अनुपम जिनभवन बनवाया। इसके भीतर एक स्थानमें उसने पंचनमस्कार मन्त्रको देते हुए पुरुषके साथ उस बैलकी मूर्ति बनवाकर वहाँ एक विद्वान् पुरुषको नियुक्त कर दिया। उसे उसने यह जतला दिया कि जो पुरुष इस मूर्तिको आश्चर्यके साथ देखे उसे मेरे पास ले आना। तदनुसार वह पद्मरुचिको देखकर उसे राजाके पास ले गया। राजाने उससे पूछा कि उस बैलको देखकर आपको आश्चर्य क्यों हो रहा था। सेठने कहा कि मैंने एक गिरे हुए बैलको पंचनमस्कार मंत्र दिया था। न जाने वह कहाँ उत्पन्न हुआ है। इसको देखनेसे मुझे उसका स्मरण हो आया है। इसीलिए मैं उसे आश्चर्यके साथ देख रहा था। इस प्रकार सेठके कहनेपर उसे वृषभध्वजने

१. क विस्मितो विलोकयति। २ क पद्मरुचिस्तदन्तिकं।

पिते तेनात्मसमः कृतः। स वृषभध्वजः उभयगतिसुखमनुभूय सुग्रीवोऽभूत्, पद्मरुचिः परंपरया राम आसीत् इति पशुरपि तत्प्रभावेनैवंविधोऽभवदन्यः किं न स्यात् ॥१॥

[१०]

कपिश्च संमेदगिरौ स चारणै-
र्विबोधितः[1] पञ्चपदैर्द्विलोकजम्।
सुखं स भुक्त्वा भवति स्म केवली
ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः ॥२॥

अस्य कथा—अत्रैव भरते सौरीपुरे राजान्धकवृष्टिः। तत्पुरबाह्यस्थगन्धमादननगे ध्यानस्थस्य सुप्रतिष्ठितमुनेः सुदर्शनाभिधो देवो दुर्धरोपसर्गमकरोत्तदा स मुनिरभवत्केवली। अन्धकवृष्टिस्तं पूजयित्वाभिवन्द्य पृच्छति स्म भवदुपसर्गस्य किं कारणमिति। स आह-सर्वज्ञः। तथाहि— जम्बूद्वीपभरते कलिङ्गदेशनिवासिकाञ्चीपुरे वैश्यो सुदत्तसूरदत्तौ वाणिज्येन बहु द्रव्यं समुपार्ज्य स्वपुरप्रवेशे क्रियमाणे शौल्किक[2]भयाद् बहिरेकत्रोभाभ्यां द्रव्यं भूमिक्षिप्तं पूर्णम्। केनचिद् दृष्ट्वोत्खन्य[3] गृहीतम्। तन्निमित्तं परस्परं युद्ध्वा मृतौ प्रथमनरके जातौ। ततो मेषौ बभूवतुः, तथैव युद्ध्वा मृतौ। गङ्गातटे वृषभौ भूत्वा तथैव मृतौ। संमेदे मर्कटौ

अपने समान कर लिया। वह भूतपूर्व बैलका जीव वृषभध्वज दोनों गतियों (मनुष्य और ईशान-कल्पवासी देव) के सुखको भोगकर सुग्रीव हुआ है और पद्मरुचि सेठ परम्परासे राम हुआ है। इस प्रकार जब उस मंत्रके प्रभावसे पशु भी ऐसी उत्तम अवस्थाको प्राप्त हुआ है तब अन्य मनुष्योंके विषयमें क्या कहा जाय ? वे तो उत्तम सुखको भोगेंगे ही ॥२॥

सम्मेद पर्वतके ऊपर चारण ऋषियोंके द्वारा प्रबोधको प्राप्त हुआ वह बन्दर चूँकि पंच-नमस्कार मंत्रके प्रभावसे दोनों लोकोंके सुखको भोगकर केवली हुआ है, अतएव हम उस पंचनमस्कार मंत्रमें अधिष्ठित होते हैं ॥२॥

इसी भरत क्षेत्रके भीतर सौरीपुरमें राजा अन्धकवृष्टि राज्य करता था। एक समय इस नगरके बाहिर गन्धमादन पर्वतके ऊपर सुप्रतिष्ठित मुनि ध्यानमें स्थित थे। उनके ऊपर किसी सुदर्शन नामक देवने घोर उपसर्ग किया। इस भीषण उपसर्गको जीतकर उक्त मुनिराजने केवल-ज्ञानको प्राप्त कर लिया। यह जानकर अन्धकवृष्टिने वहाँ जाकर उनकी पूजा और वन्दना की। तत्पश्चात् उसने उनके ऊपर किये गये इस उपसर्गके कारणको पूछा। केवली बोले — जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रके भीतर कलिंग देशमें एक कांचीपुर नगर है। उसमें सुदत्त और सूरदत्त नामके दो सेठ रहते थे। उन्होंने बाहिर जाकर व्यापारमें बहुत-सा धन कमाया। जब वे वापिस आये और अपने नगरमें प्रवेश करने लगे तब उन दोनोंने कर(टैक्स)ग्राहक अधिकारीके भयसे उस सब धनको एक स्थानमें भूमिके भीतर गाड़ दिया। उक्त धनको गाड़ते हुए उन्हें किसीने देख लिया था। सो उसने भूमिको खोदकर उस सब धनको निकाल लिया। तत्पश्चात् जब वह धन उन्हें वहाँ नहीं मिला तब वे एक-दूसरेके ऊपर सन्देह करके उसके निमित्तसे लड़ मरे। इस प्रकार मरकर वे प्रथम नरकमें नारकी उत्पन्न हुए। वहाँसे निकलकर वे मेंढ़ा हुए और उसी प्रकार परस्परमें लड़कर मरणको प्राप्त हुए। फिर वे गंगा नदीके किनारेपर बैल हुए और पूर्वके

१. फ सुचारणैर्विबोधितः। २. फ शुल्क। ३. फ ब °भ्यां पूर्णं कलसं निक्षिपंतौ केन चिदृष्ट्वोऽन्यगृहीतं, ब °भ्यां पूर्णकलसं निक्षिपंतौ केनचिद्दृष्ट्वोत्खन्य।

जातौ तथैव युद्धे च[1] सुदत्तचरमर्कटो मृतः। इतरः कण्ठगतासुर्यावदास्ते तावत्सुरगुरुदेवगुरुचारणाभ्यां दृष्टः। तदनु[2] तत्प्रतिपादितपञ्चनमस्कारफलेन सौधर्मे चित्राङ्गदनामा देवो जातः। ततः काञ्चीपुरेशाजितसेनसुभद्रयोः समुद्रदत्तो नाम पुत्रो जातः। तदनु तपसाहमिन्द्रः। ततः पौदनपुरेशसुस्थिर-लक्ष्मणयोः[4] सुप्रतिष्ठोऽहं जातः[5]। इतरश्चिरं भ्रमित्वा सिन्धुतटे-तापसमृगायणविशालयोर्गौतमो भूत्वा पञ्चाग्न्यादितपसा ज्योतिर्लोके सुदर्शनो जातः। क्वापि गच्छतो ममोपरि विमानागतेः[6] कृतोपसर्ग इति प्रतिपादनानन्तरं[7] सुदर्शनः सम्यक्त्वं जग्राह। पञ्चनमस्कारतो मर्कटोऽप्येवंविधोऽभूदित्येतत्फलं किं वर्ण्यते ॥२॥

[११]

नृपालपुत्री व्यजनिष्ट वल्लभा
शचीपतेर्धातुजरादिवर्जिता।
सुलोचनापादितपञ्चसत्पदा
ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः ॥३॥

अस्य कथा—वाराणस्यां राजा अकम्पनो राज्ञी सुप्रभा पुत्री सुलोचनातिजैनी सर्वकलाकुशला सुखेनास्ते यावत्तावद्विन्ध्यपुरे अकम्पनस्य सखा राजा विन्ध्यकीर्तिर्जाया

समान ही लड़कर मृत्युको प्राप्त हुए। तत्पश्चात् वे सम्मेदपर्वतपर बन्दर हुए। पहिलेके ही समान उन्होंने फिर भी आपसमें युद्ध किया। इस युद्धमें सुदत्तका जीव जो बन्दर हुआ था वह तो तत्काल मर गया। परन्तु दूसरा (सूरदत्तका जीव) मरणासन्न था। उसे इस मरणोन्मुख अवस्थामें देखकर सुरगुरु और देवगुरु नामके चारण ऋषियोंने पंचनमस्कार मंत्र सुनाया। उसके प्रभावसे वह मरकर सौधर्म स्वर्गमें चित्रांगद नामका देव उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर वह कांचीपुरके राजा अजितसेन और रानी सुभद्राके समुद्रदत्त नामका पुत्र हुआ। फिर वह तपके प्रभावसे अहमिन्द्र हुआ। पश्चात् वहाँसे च्युत होकर पौदनपुरके राजा सुस्थिर और रानी लक्ष्मणाके मैं सुप्रतिष्ठित नामका पुत्र हुआ हूँ। दूसरा (सुदत्तका जीव) चिर काल तक परिभ्रमण करके सिन्धु नदीके किनारेपर तापस मृगायण और विशालाके गौतम नामका पुत्र हुआ था जो पंचाग्नि तपके प्रभावसे ज्योतिर्लोकमें सुदर्शन देव हुआ है। वह कहींपर जा रहा था। उसका विमान जब मेरे ऊपर आकर रुक गया तब उसने वह उपसर्ग किया है। इस प्रकार केवलीके द्वारा प्रतिपादन करनेपर उस सुदर्शन यक्षने सम्यग्दर्शनको ग्रहण कर लिया। जब उस पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावसे बन्दर भी इस प्रकारकी विभूतिको प्राप्त हुआ है तब भला उसके फल का वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है ? उसका फल अनिर्वचनीय है ॥२॥

राजा विन्ध्यकीर्तिकी पुत्री विजयश्री सुलोचनाके द्वारा सुनाये गये पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावसे सप्त धातुओं एवं जरा आदिसे रहित इन्द्रकी प्रियतमा (इन्द्राणी) हुई थी। इसीलिए हम उस पंचनमस्कार मंत्रमें अधिष्ठित होते हैं ॥

इसकी कथा इस प्रकार है— वाराणसी नगरीमें अकम्पन नामक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम सुप्रभा था। उनके सुलोचना नामकी पुत्री थी जो अतिशय जिनभक्त एवं समस्त कलाओंमें कुशल होकर सुखसे स्थित थी। इधर विन्ध्यपुरमें अकम्पनका एक मित्र विन्ध्यकीर्ति

१ ब 'च' नास्ति। २. फ दृष्टः सुरदत्तचरः। तदनु। ३. प श पुरेश्वरः' ब पुरेशुर। ४. श लक्षणयोः। ५. फ अतोऽग्रे 'सुदर्शनो जातः' पर्यन्तः पाठस्त्रुटितो जातः। ६. फ विमानगते, श विमानगतेः। ७. श इति पादनानंतरं।

प्रियङ्गुश्रीः पुत्री विजयश्रीः पित्रानीय सुलोचनायाः कलादिषु प्रौढां कुर्विति समर्पिता। तत्र तिष्ठन्ती[1] सुलोचनायाः[2] कन्यामाट[3]प्राग्देशस्थोद्यानं पुष्पाणि चेतुं जगाम। कालोरगेण ग्रस्ता सुलोचनया दत्तपञ्चपदप्रभावेन गङ्गाकूट[4]निवासिनी गङ्गादेवी जाता सुलोचनामपूपुजत् इति[5] ॥३॥

[१२-१३]

अजो हि देवोऽजनि दिव्यविग्रहः
सुराङ्गनापादितचारुभोगकः।
स चारुदत्तार्पितपञ्चसत्पद-
स्ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः ॥४॥
रसेन[6] दग्धः पुरुषो हि कल्पकेऽ-
भवत्सुकान्तारमणः सुनिर्मलः।
स चारुदत्तोदितपञ्चसत्पद-
स्ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः ॥५॥

अनयोर्वृत्तयोः कथा[7] चारुदत्तचरित्रे विद्यते इति तत्प्रतिपाद्यते[8]। तथाहि— जम्बूद्वीपभरतेऽङ्गदेशे चम्पाया राजा विमलवाहनः, देवी विमलमती[9], श्रेष्ठी भानुर्भार्या देविला। सा

राजा था। उसकी पत्नीका नाम प्रियंगुश्री था। उनके एक विजयश्री नामकी पुत्री थी। उसके पिता विन्ध्यकीर्तिने उसे लाकर कलाओंमें कुशल करनेके लिए सुलोचनाको सौंप दिया। तब विजयश्री वहाँ सुलोचनाके पास रहने लगी। एक दिन वह सुलोचनाके कन्यागृहके पूर्व भागमें स्थित उद्यानमें फूलोंको चुननेके लिए गई थी। वहाँ उसे काले सर्पने डस लिया था। तब उसे मरणासन्न देखकर सुलोचनाने पंचनमस्कारमन्त्र सुनाया। उसके प्रभावसे वह गंगाकूटके ऊपर रहनेवाली गंगादेवी हुई। उसने आकर सुलोचनाकी पूजा की ॥३॥

वह बकरा, जिसे कि मरते समय चारुदत्तने पंचनमस्कारमन्त्र दिया था, उक्त मन्त्रके प्रभावसे देव होकर दिव्य शरीरसे सहित होता हुआ देवांगनाओंसे प्राप्त सुन्दर भोगोंका भोक्ता हुआ। इसलिए हम उस पंचनमस्कारमन्त्रमें अधिष्ठित होते हैं ॥४॥

इसी प्रकार वह रससे दग्ध (रसकूपमें पड़ा हुआ) पुरुष भी, जिसे कि चारुदत्तने पंचनमस्कारमन्त्र दिया था, उक्त मन्त्रके प्रभावसे स्वर्गमें सुन्दर देवांगनाओंका स्वामी निर्मल देव हुआ। इसीलिए हम उस पंचनमस्कारमन्त्रमें अधिष्ठित होते हैं ॥५॥

इन दो वृत्तोंकी कथा चारुदत्तचरित्रमें है। उसको यहाँपर कहा जाता है— जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रमें अंगदेशके भीतर चम्पा नगरी है। वहाँपर विमलवाहन नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम विमलमती था। वहाँ एक भानु नामका सेठ रहता था। उसकी पत्नी-

१. प तिष्ठति। २. फ श सुलोचनया ब सुलोचनाया। ३. फ. कन्यामाटः। ४. फ गंगातट। ५. फ° मपूपूजदिति प श°मपूजन् ('इति' नास्ति)। ६. फ श्लोकोऽयं तत्र नास्ति। ७. ब कथे। ८. प वृत्तयोः कथे चारुदत्तचरिते एवोत्पद्यते। इति। तद्यथा तत्प्रतिपाद्यते श वृत्तयोः कथा ॥ चारुदत्तचरिते एवोत्पद्यते ॥ इति तद्यथा ॥ तत्प्रतिपाद्यते ॥ ९. 'देवी विमलमती' इति ब-प्रतावस्ति, श-प्रतौ नास्ति।

पुत्रार्थिनी यक्ष-यक्षीः[1] पूजयति। एकदा सुमतिनामदिगम्बरमुख्येन दृष्ट्वोक्तम्[2]— हे[3] पुत्रि, तवोत्तमपुत्रो भविष्यति, कुदेवपूजया मा सम्यक्त्वं विराधयेति। ततः कतिपयदिनैस्तनयश्चारुदत्तोऽजनि। स च प्रधानपुत्रैर्हरिशिख-गोमुख-वराहक-परंतपोमरुभूतिभिः सह वृद्धः। पुरबाह्येऽग्निमन्दर[4]गिरौ यमधरमुनिः शिवं प्राप्तः। तत्र प्रतिवर्षं मार्गशीर्षे यात्रा भवति। तत्र राजादिभिर्गच्छन्निश्चारुदत्तो व्याघोटितः[5]। स च मित्रैर्नदीतटस्थोपवनं क्रीडार्थं गतः। तत्र परिभ्रमता कदम्बशाखिनि कीलितो मूर्च्छां प्रपन्नः पुरुषो दृष्टः[6]। खेटस्योपरिस्थितदृष्टिभावेन[8] ज्ञात्वा चारुदत्तः खेटं शोधयित्वा गुटिकात्रयमपश्यत्। तत्र कीलोच्छेदिनीप्रभावेन विगतकीलनः[7] संजीविनीसामर्थ्येनोन्मूर्च्छितः व्रणसंरोहणीप्रभावेन विगतव्रणश्च कृतः सन्[8] चारुदत्तं प्रणम्यावदत्— शृणु, हे भव्योत्तम, विजयार्धदक्षिणश्रेणौ शिवमन्दिरपुरेश-महेन्द्रविक्रममत्स्ययोः सुतोऽहममितगतिः धूमसिंह-गोरिमुण्डमित्राभ्यां सह ह्रीमन्तपर्वतं गतः। तत्र हिरण्यरोमनामक्षत्रियतापसतनुजा निर्जितामराङ्गनारूपविभवा[9] सुकुमारिकानाम्नी दृष्टा याचिता विवाहिता च[10] मया। तामुद्वीक्ष्य धूमसिंह आसक्तान्तरङ्गो हरणार्थं

का नाम देविला था। उसके कोई पुत्र नहीं था। इससे वह पुत्रप्राप्तिकी अभिलाषासे यक्ष-यक्षियोंकी पूजा किया करती थी। एक समय सुमति नामक दिगम्बराचार्यने उसे यक्ष-यक्षियोंकी पूजा करते हुए देखकर कहा कि हे पुत्री! तेरे उत्तम पुत्र होगा। तू कुदेवोंकी पूजा करके सम्यग्दर्शनकी विराधना मत कर। तत्पश्चात् कुछ दिनोंमें उसके चारुदत्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह हरिशिख, गोमुख, वराहक, परंतप और मरुभूति इन प्रधानपुत्रोंके साथ वृद्धिगत हुआ। इसी नगरके बाहिर स्थित अग्निमन्दर पर्वत (अथवा अग्निदिशागत मन्दर) के ऊपर यमधर मुनि मुक्तिको प्राप्त हुए थे। वहाँ प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष मासमें यात्रा भरती है। इस यात्रामें चारुदत्त भी जाना चाहता था। परन्तु वहाँ जाते हुए राजा आदिने उसे वापिस कर दिया। तब वह मित्रोंके साथ नदीके तटपर स्थित एक उपवनमें क्रीड़ा करनेके लिए चला गया। वहाँ घूमते हुए उसे कदम्ब वृक्षसे कीलित होकर मूर्छाको प्राप्त हुआ एक पुरुष दिखा। उसकी दृष्टि ढालके ऊपर स्थित थी। इससे चारुदत्तने अनुमान करके उस ढालको तलाशा। उसमें उसे तीन औषधकी बत्तियाँ (या गोलियाँ) दिखीं। उनमें जो कीलोंको नष्ट करनेवाली औषधि थी उसके प्रभावसे चारुदत्तने उसकी कीलोंको दूर किया, संजीवनी औषधके सामर्थ्यसे उसने उसकी मूर्च्छाको नष्ट किया, तथा व्रणसंरोहिणी औषधके पयोगसे उसने उसको घावरहित कर दिया। तब वह चारुदत्तको नमस्कार करके बोला कि हे श्रेष्ठ भव्य! मेरी बात सुनिये— विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें शिवमन्दिर नामका एक नगर है। वहाँ महेन्द्रविक्रम नामका राजा राज्य करता है। रानीका नाम मत्स्या है। उन दोनोंका मैं अमितगति नामका पुत्र हूँ। मैं धूमसिंह और गोरिमुण्ड मित्रोंके साथ ह्रीमन्त पर्वतके ऊपर गया था। वहाँपर मैंने हिरण्यरोम नामक एक क्षत्रिय तापसकी कन्याको देखा। वह सुकुमारिका नामकी बालिका अपनी सुन्दरतासे देवांगनाओंके भी रूपको तिरस्कृत करती थी। मैंने उसके लिए उक्त तापससे याचना की। उसने उसका विवाह मेरे साथ कर दिया। सुकुमारिकाको देखकर धूमसिंहका मन उसके विषयमें आसक्त हो गया। वह उसका अप-

१. श यक्षयक्षी ब यक्षं यक्षी। २. फ दिगंबरमुनिना दृष्ट्वोक्तः। ३. श हि। ४. फ ब श मंदिर। ५. प व्याघोटितं फ व्याघुटितः ब व्याघोटितः। ६. फ दृष्ट। ७. फ कीलनं। ८. फ स तु। ९. श विभावा। १०. फ याचिता विवाहि च।

प्रवर्तते। अहं न जाने। तया सहात्र क्रीडितुमागतः प्रमत्तावस्थायां मां कीलयित्वा तां[1] गृहीत्वा गतः। इदानीमेव तां मोचयामि। तं नत्वा गतः।

कतिपयदिनैश्चारुदत्तस्य मातुलसिद्धार्थसुमित्रयोस्तनयया[2] मित्रवत्या विवाहः कृतः। स कलादिगुणकाव्यचिन्तया[3] कालं निर्वाहयति[4]। एकदा प्रातरेवागतया[5] सुमित्रया ह्यःकृतविलेपनादिभिः[6] सह तनुजां दृष्ट्वोक्तम्-- पुत्रि, किं भर्त्रा सह न सुप्ताऽसि येन विलेपनादिकं तथैव तिष्ठति। तयोक्तम्-- कदाचिन्मम चिन्तामपि न करोति, सर्वदा किंचिदनुमानयन्नेव तिष्ठति[7]। तदनु सुमित्रया देविला भणिता-- तव पुत्रः पठितमूर्खः स्त्रियो वार्तामपि न करोति।' देविलया स्वदेवररुद्रदत्तायोक्तं[8] चारुदत्तो यथा भोगलालसो भवति तथा कर्तव्यमिति। तदनु तेन वसन्तमालायाः पुत्री वसन्ततिलका रूपलावण्यादिगुणगर्विता, सा[9] संकेतं ग्राहिता 'चारुदत्तम् आनयामि यथा जानासि तथा वशीकुरु' इति। अनन्तरं तद्गृहं नीतः। उपवेशनानन्तरं सारैः क्रीडा प्रारब्धा। अनन्तरं पानीये याचिते मतिमोहनचूर्णोपेतं तोयं पायितम्[10]। तदनु विह्वलितमतिर्जातः। तया सह हर्म्यस्योपरिभूमौ रन्तु लग्नः। षड्वर्षैः[11] षोडशकोटिद्रव्ये भक्षिते पुत्रस्य दुर्व्यसनं समीक्ष्य श्रेष्ठी दीक्षितः। अपर-

हरण करनेमें प्रवृत्त था। परन्तु मुझे इसका ज्ञान नहीं था। मैं सुकुमारिकाके साथ क्रीड़ा करनेके लिए यहाँ आया था, वह प्रमादकी अवस्थामें मुझे यहाँ कीलित करके उसे ले गया है। अब मैं उसे इसी समय जाकर छुड़ाता हूँ। इस प्रकार कहकर और उसे नमस्कार करके वह अमितगति विद्याधर वहाँसे चला गया।

कुछ दिनोंके पश्चात् चारुदत्तका विवाह उसके मामा सिद्धार्थ और सुमित्राकी पुत्री मित्रवतीके साथ कर दिया गया। चारुदत्तका सारा समय कला आदि गुणों और काव्यके चिन्तनमें बीतता था। एक दिन सुमित्रा प्रातःकालमें अपनी पुत्री मित्रवतीके पास आयी। तब उसने पुत्रीके द्वारा कलके दिन किये गए चन्दनलेपनादिको ज्योंका त्यों शरीरमें स्थित देखकर उससे पूछा कि हे पुत्री! तू क्या पतिके साथ नहीं सोयी थी, जिससे कि विलेपन आदि तेरे शरीरमें जैसेके तैसे स्थित हैं? पुत्रीने उत्तर दिया कि पति मेरी चिन्ता भी नहीं करता है, वह तो सदा कुछ अनुमान करता हुआ ही-- शास्त्रीय विचार करता हुआ ही-- स्थित है। तत्पश्चात् सुमित्राने देविलासे कहा कि तुम्हारा लड़का पढ़ा हुआ मूर्ख है। वह स्त्रीकी बात भी नहीं करता है। तब देविलाने अपने देवर रुद्रदत्तसे कहा कि जिस प्रकारसे चारुदत्त विषयभोगाभिलाषी बने वैसा तुम प्रयत्न करो। यह सुनकर रुद्रदत्तने वसन्तमालाकी पुत्री वसन्ततिलकाको, जिसे कि अपने रूप-लावण्यादि गुणोंका गर्व था, संकेत किया कि मैं चारुदत्तको लाता हूँ, तुम उसे जैसे समझो वैसे वशमें करना। तत्पश्चात् वह चारुदत्तको उसके घरपर ले गया। वहाँ बैठानेके पश्चात् उसने गोटोंसे क्रीड़ा (द्यूतक्रीड़ा) प्रारम्भ की। पश्चात् चारुदत्तके द्वारा पानीके माँगनेपर उसे बुद्धिको भ्रान्त करनेवाले मोहनचूर्णसे संयुक्त पानी पिलाया गया। उसे पीकर चारुदत्तकी बुद्धिमें भ्रान्ति उत्पन्न हो गई। तब वह वसन्ततिलकाको ऊपरके खण्डमें ले जाकर उसके साथ रमण करनेमें लग गया। इस प्रकार वहाँ रहते हुए चारुदत्तको छह वर्ष हो गए। इस बीचमें उसके घरसे सोलह करोड़ प्रमाण द्रव्य वसन्तमालाके घर पहुँच गया। चारुदत्तको इस प्रकारसे दुर्व्यसनासक्त देखकर उसके पिताने दीक्षा

१. फ 'तां' नास्ति। २. फ तनया। ३. ब सकलगुणकाव्य। ४. फ सकलागुणकथाचिंतयां कालं निर्वाटयति। ५. फ प्रातरेव गतया। ६. फ सुमित्रया ह्यकृतिलेप० प श सुमित्रया बाह्यःकृताविलेप०। ७. फ किंदनुमानप्रमाणादियत्नेन तिष्ठति। ८. फ रुद्रदत्तस्य प्रोक्तं। ९. फ गुणवर्त्तितासां। १०. फ ब पायितः। ११. फ षड्वर्षे।

षड्वर्षैः[1] षोडशकोटिद्रव्ये गते द्वादशसहस्रहिरण्यस्य स्वावासो ग्रहणं निक्षिप्तः। तस्मिन्नपि गते स्नुषाया आभरणानि निक्षिप्तानि गृहीत्वा प्रेषितानि। तानि[2] वसन्तमालया[3] पुनः प्रेषितानि। तदनु पुत्र्यै प्रतिपादितम्— इमं गतद्रव्यं त्यक्त्वान्यत्र सधने[4] रतिं कुरु। एवमेव ननु[5] वेश्याशास्त्रम्। उक्तं च—

धनमनुभवन्ति वेश्या न पुनः पुरुषं कदापि धनहीनम्[6]।
धनहीनकामदेवेऽपि[7] प्रीतिं बध्नन्ति नो वेश्याः[8] ॥१॥ इति[9]।

तयोक्तमिह जन्मन्ययमेव भर्ता, अन्ये जातानुजाता[10] इति। मातुश्चित्तं परिज्ञाय सा तं कदाचिदपि न त्यजति। कुट्टिन्यैकदा[11] दत्तनिद्रावर्धनद्रव्यान्वितहारं भुक्त्वा सुप्तौ दम्पती। तत्र चारुदत्तो निरलंकारो निर्वस्त्रं कृत्वार्धरात्रौ[12] कम्बलेन बन्धयित्वा पुरीषगर्तायां निक्षेपितः[13]। तत्र गूथभक्षकसूकरस्पर्शे सति वसन्ततिलके अपसरेति वदन् तलवरैः दृष्टः। कस्त्वमिति उत्थापितस्तैः परिज्ञाय निन्दितः। अनन्तरं स्वावासं गतः। दौवारिकैर्निर्घाटितः सन् वदति किमिदं मम गृहं न भवति। तैरुक्तं ग्रहणं निक्षिप्तम्। तर्हि मम माता

ले ली। तत्पश्चात् दूसरे छह वर्षोंमें उसके यहाँ चारुदत्तके घरसे सोलह करोड़ प्रमाण द्रव्य और भी पहुँच गया। तब बारह हजार सुवर्णमुद्राओंमें अपने निवासगृहको गहना रखना पड़ा। जब यह भी द्रव्य वसन्तमालाके घरमें पहुँच गया तब चारुदत्तकी माताने पुत्रवधूके रखे हुए आभरणोंको लेकर वसन्तमालाके यहाँ भेजा। उन्हें वसन्तमालाने फिरसे भेज दिया— वापिस कर दिया। तत्पश्चात् उसने पुत्रीसे कहा कि अब चारुदत्तका धन समाप्त हो चुका है, अतः इसको छोड़कर तू किसी दूसरे धनी पुरुषसे अनुराग कर। कारण कि वेश्याका सिद्धान्त इसी प्रकारका है। कहा भी है—

वेश्यायें धनका अनुभव किया करती हैं, वे धनसे हीन पुरुषका उपभोग कभी भी नहीं करती हैं। धनसे रहित हुआ पुरुष साक्षात् कामदेवके समान भी क्यों न हो, परन्तु उसके विषयमें वेश्यायें अनुराग नहीं किया करती हैं ॥१॥

माताके इन वाक्योंको सुनकर उसने कहा कि इस जन्ममें मेरा यही पति है, अन्य सब पुरुष मेरे लिये पुत्र व छोटे भाइयोंके समान हैं। अब वह माताके दुष्ट अभिप्रायको जानकर चारुदत्तको कभी भी नहीं छोड़ती थी। एक दिन वसन्तमाला वेश्याने उन दोनोंके लिये नींदको बढ़ानेवाली औषधसे संयुक्त भोजन दिया। उसे खाकर वे दोनों सो गए। तब वसन्तमालाने आधी रातमें चारुदत्तको वस्त्राभूषणोंसे रहित करके कम्बलमें लपेटा और पाखानेमें फिकवा दिया। वहाँ विष्ठाभक्षी शूकरका स्पर्श होनेपर चारुदत्त बोला कि हे वसन्ततिलके! दूर हो, [मुझे अभी नींद आ रही है]। इस प्रकार बड़बड़ाते हुए देखकर कोतवालोंने 'तुम कौन हो' यह पूछते हुए उसे पाखानेसे बाहिर निकाला। पश्चात् उन लोगोंने उसकी इस परिस्थितिको जानकर बहुत निन्दा की। तब चारुदत्त अपने घरको गया। जब उसे द्वारपालोंने उस घरसे निकल जानेको कहा तब वह बोला कि क्या यह मेरा घर नहीं है? उत्तरमें उन लोगोंने कहा कि यह घर गहने

---

१. फ षड्वर्षे। २. प श आभरणानि निक्षिप्तानि तानि ब आभरणानि गृहीत्वा प्रेषितानि तानि। ३. प वसन्तमालाया फ वसन्तमालायाः। ४. फ सधनेन। ५. फ एवं ननु। ६. फ 'धनहीनं' नास्ति। ७. फ कामदेवोऽपि। ८. प श बध्नाति नो वेश्या। ९. फ इत्यादि ब इति निशम्य। १०. फ जातानुजा। ११. फ कुट्टिन्येकदा दत्ता। १२. फ निर्वस्त्रश्च कृत्वार्द्धरात्रे ब निर्वस्त्रश्च कृत्वार्द्धरात्रौ। १३. फ निक्षिपितः।

कास्ते । तैर्निरूपिते तत्र गतः । तदवस्थां दृष्ट्वा[1] मातृ-भार्ये दुःखिते बभूवतुः । कृतस्नानो मातुलेन भणितो 'मदीयं द्रव्यं षोडशकोटिस्तिष्ठति तद् गृहीत्वा व्यवहर[2] ।' तेनाभाणि[3], देशान्तरे व्यवहारप्रवृत्तिरिति निर्गतः, मोहात् सिद्धार्थोऽपि । गच्छन्तावलकादेशे[4] सीमावतीनदीतट्यां मूलिकां[5] गृहीत्वा स्वयमेव मस्तकेन पलाशपुरे वृषभध्वजस्य गृहकोणे स्थित्वा विक्रीय उत्पन्नद्रव्येण कर्पासं संगृह्य[6] बलीवर्दान् पूरयित्वा कंजकनामनायकेन सह गच्छतः । किरातैर्बलीवर्दा गृहीताः कर्पासश्च दग्धः[7] । मलयगिरौ[8] रत्नान्युपार्ज्यागमनसमये[9] भिल्लैर्गृहीतानि । अनु प्रियङ्गुवेलापत्तनं गतौ भानोर्मित्रेण सुरेन्द्रदत्तेन द्वीपान्तरं नीतौ । द्वादशाब्दैर्बहुद्रव्येणागमने स्फुटितं जलयानपात्रम् । प्रमादफलकेन निर्गतौ चारुदत्तसिद्धार्थौ । चारुदत्तस्य शुद्धिमजानन् सिद्धार्थः स्वपुरं गतः । चारुदत्त उदुम्बरावतीग्रामे सिद्धार्थशुद्धिं प्राप्तः ।

अनन्तरं सिन्धुदेशे संवरिग्रामे पितुरष्टादशकोटिद्रव्यं स्थितम् । तद् गृहीत्वा जीर्णोद्धारपूजाद्यर्थं दत्तम् । तद्दानगुणमाकर्ण्य परीक्षणार्थं वीरप्रभयक्षो मनुष्यवेषेण वसतौ क[क्व]णन्[10] स्थितः । देवं द्रष्टुमागतचारुदत्तेन[11] भणितं किमर्थं क[क्व]णसि ।

रखा हुआ है । तब उसने पूछा कि तो मेरी माता कहाँपर रहती है ? इस प्रकार उनसे माताके स्थानको ज्ञातकर वह वहाँ गया । उसकी इस दयनीय अवस्थाको देखकर माता और पत्नीको बहुत दुःख हुआ । तत्पश्चात् स्नान आदि कर लेनेपर चारुदत्तके मामाने उससे कहा कि मेरे पास सोलह करोड़ प्रमाण द्रव्य है, उसको लेकर तू व्यवहार कर । इसके उत्तरमें वह 'मैं देशान्तरमें जाकर व्यवसाय करूँगा' यह कहते हुए देशान्तरको चला गया । तब मोहवश सिद्धार्थ भी उसके साथ गया । इस प्रकार जाते हुए उन दोनोंने अलका देशस्थ सीमावती नदीके किनारेसे लकड़ियोंके गट्ठोंको लिया और उन्हें स्वयं ही शिरके ऊपर रखकर पलाशपुरमें पहुँचे । उन्होंने वहाँ वृषभध्वज सेठके घरके एक कोनेमें स्थित होकर उनको बेच दिया । इससे जो द्रव्य मिला उससे उन्होंने कपासका संग्रह किया । फिर वे उसे बैलोंके ऊपर रखकर कंजक नामक नायकके साथ आगे गये । मार्गमें भीलोंने उनके बैलोंको छीनकर कपासको जला दिया । पश्चात् उन दोनोंने मलय पर्वतके ऊपर पहुँचकर रत्नोंको प्राप्त किया । आते समय भीलोंने उनके इन रत्नोंको भी छीन लिया । फिर वे प्रियंगुवेला पत्तनको गये । वहाँसे उन्हें भानु (चारुदत्तका पिता) का मित्र सुरेन्द्रदत्त द्वीपान्तरमें ले गया । वहाँसे बारह वर्षोंमें जब वे बहुत-से धनके साथ वापिस आ रहे थे तब मार्गमें उनका जहाज नष्ट हो गया । तब चारुदत्त और सिद्धार्थ दोनों लकड़ीके पटियेका सहारा लेकर समुद्रके बाहिर निकले । तत्पश्चात् सिद्धार्थको चारुदत्तका पता न लगनेसे वह अपने नगरको वापिस चला गया । इधर जब चारुदत्त उदुम्बरावती गाँवमें पहुँचा तब उसे सिद्धार्थका वृत्तान्त मालूम हुआ ।

पश्चात् चारुदत्त सिन्धु देशके अन्तर्गत संवरिग्राममें गया । वहाँ उसके पिताका जो अठारह करोड़ प्रमाण द्रव्य स्थित था उसे लेकर उसने जीर्णोद्धार और पूजा आदिके निमित्त अर्पित कर दिया । उसके दानगुणको सुनकर वीरप्रभ यक्ष परीक्षा करनेके लिये मनुष्यके वेषमें आया और करुणाक्रन्दन करते हुए जिनालयमें स्थित हो गया । उस समय चारुदत्त वहाँ देवदर्शनके लिये

१. ब–प्रतिपाठोऽयम् । श कोटितिष्ठति । २. फ व्यवहरः । ३. श तेन । ४. ब–प्रतिपाठोऽयम् । प श ०वलोकदेशे, फ०वालोकदेशे, श०वलोकादेशे । ५. प श तद्या मूलिकां फ तटघा मूलिकां । ६. ब–प्रतिपाठोऽयम् । प फ श गृह्य । ७. प श दग्धा । ८. प श मलयागिरौ । ९. ब०न्युपार्ज्य गमन । १०. प कर्णन् । ११. ब–प्रतिपाठोऽयम् । श०मागतः चारुदत्तेन ।

सोऽवदत्— शूलव्यथा महती वर्तते। मनुष्याणां पार्श्वखण्डेन सेकः कर्तव्यः। तच्च दुष्प्रापम्। त्वं महात्यागी प्रयच्छेत्युक्ते छुरिकया प्रलूय दत्ते साश्चर्यं यक्षेण पूजितः निर्व्रणश्च कृतः। ततः स परिभ्रमन् राजगृहं गतः। तत्र विष्णुदत्तैकदण्डिना[1] भणितम्— अत्र किंयदन्तरे रसकूपस्तिष्ठति, तस्माद्रस आकृष्यश्चेद् बहुद्रव्यं भवति। तेनाभाणि 'आकृष्यत एव प्रदर्शय'। ततस्तपस्विना तत्तटे काष्ठशूल आताडितः। तत्र वरत्रां बद्ध्वा चारुदत्तो बन्धयित्वा हस्ते तुम्बकं दत्त्वा उत्तारितश्चारुदत्तो रसतुम्बकं वरत्रायां बन्धयन् केनचिदुक्तः—निकृष्टस्तपस्वी[2], अहमनेन निक्षिप्तः त्वमपीति। चारुदत्तेनोक्तम्[3] 'कस्त्वम्'। उज्जयिन्या वणिक्पुत्रोऽहं गतद्रव्यः अनेन रसं गृहीत्वा निक्षिप्तः रसेनार्धदग्धदेहः कण्ठगतप्राणस्तिष्ठामि। चारुदत्तेन रसतुम्बकं बन्धयित्वा द्वितीयवारे दृषद् बद्धः। तेन कियदन्तरे वरत्राकृष्य छेदिता। चारुदत्तेन स वणिक् पृष्टः 'अस्ति मम कोऽपि निःसरणोपायः'। स कथितवान्— अत्रैका गोधा रसं[4] पातुमागच्छति, तत्पुच्छं धृत्वा निर्गच्छेति। श्रुत्वा चारुदत्तो हृष्टः तस्मै पञ्चनमस्कारान् दत्त्वा तथैव तत्पुच्छं धृत्वा यावद् गच्छति तावदग्रे मार्गः संकीर्णोऽभूत्। तदनु गोधां मुक्त्वान्तराले

आया था। उसने उससे पूछा कि तुम क्यों रो रहे हो? उसने उत्तर दिया कि मुझे शूलकी पीड़ा बहुत हो रही है। उसे दूर करनेके लिये मनुष्यके पार्श्वभागसे सेक करना पड़ता है। परन्तु वह दुर्लभ है। तुम महादानी हो, मेरे लिये उसका दान करो। यह कहनेपर चारुदत्तने छुरीसे काटकर अपना पार्श्वभाग उसे दे दिया। यह देखकर यक्षको बहुत आश्चर्य हुआ। उसने चारुदत्तकी पूजा करके उसके घावको भी ठीक कर दिया। तत्पश्चात् चारुदत्त घूमता हुआ राजगृह नगरमें पहुँचा। वहाँ विष्णुदत्त नामके किसी एकदण्डी तपस्वीने उससे कहा कि यहाँसे कुछ दूर एक रसका कुआँ है। उसमेंसे यदि रसको निकाला जाय तो बहुत-सा द्रव्य प्राप्त हो सकता है। तब चारुदत्तने उससे कहा कि रसको खींचकर दिखलाओ। इसपर तपस्वीने उसके किनारेपर काष्ठशूल (मचान) को आहत किया। फिर उसको रस्सीसे बाँधकर और उसपर चारुदत्तको बैठाकर उसके हाथमें तूँबड़ीको देते हुए उसे रसकूपके भीतर नीचे उतारा। चारुदत्त जब उस रसतूँबड़ीको रस्सीमें बाँध रहा था तब किसी अज्ञात मनुष्यने उससे कहा कि वह तपस्वी निकृष्ट है, इसने मुझे यहाँ फेंक दिया और तुम्हें भी फेंक दिया। चारुदत्तने उससे पूछा कि तुम कौन हो? उत्तरमें उसने कहा कि मैं उज्जयिनीका एक निर्धन वैश्यपुत्र हूँ। इस तपस्वीने रसको लेकर मुझे यहाँ पटक दिया। रससे मेरा शरीर अधजला हो गया है। अब मैं मरना ही चाहता हूँ। यह सुनकर चारुदत्तने पहिले रसतूँबीको रस्सीमें बाँधा और तत्पश्चात् दूसरी बार उसमें पत्थरको बाँधा। तब तपस्वीने कुछ दूर उस रस्सीको खींचकर बीचमें ही काट डाला। फिर चारुदत्तने उस वैश्यसे पूछा कि इसमेंसे मेरे बाहिर निकलनेका कोई उपाय है क्या? तब वैश्यने बतलाया कि यहाँ एक गोह रस पीनेके लिये आती है, तुम उसकी पूँछको पकड़कर निकल जाना। यह सुनकर चारुदत्तको बहुत हर्ष हुआ। उसने उस मरणोन्मुख वैश्यको पंचनमस्कारमंत्र दिया। तत्पश्चात् वह उस गोहकी पूँछको पकड़कर बाहिर आ रहा था, परन्तु आगे चलकर मार्ग संकुचित हो गया था। तब वह गोहकी पूँछको

---

१. फ ब विष्णुमित्र। २. फ केचिन आह धूर्त्तदुष्टस्तपस्वी, ब केनचिदुक्तं निकृष्टस्तपस्वी। ३. तेनोक्तं
४. फ गोधरसं।

एकत्वादि भावयन् स्थितः। तावत्तत्राजाश्चरन्त्यः स्थिताः। तत्रैकाजायाः पादस्तत्र प्रविष्टः। स तेन धृतः। अजाकोलाहलमाकर्ण्य तद्रक्षकैः खन्यमाने शनैः खनन्त्वित्युक्तम्। तदनु साश्चर्यैः खनित्वा आकृष्टः। ततो गच्छन्नरण्ये ऽजगरमुल्लङ्घ्य गतः। अरण्यमहिषौ[1] मारयितुमागतौ[2]। तदा तरुमारूढः। ततो गच्छन्नदीतट्यामङ्गविषयादागतरुद्रदत्त-हरिशिखादीनां[3][4] मिलितः[5]।

ततः सप्तापि श्रीपुरं गताः। प्रियदत्तेन मज्जनादिना प्रीणिताः पाथेयं च दत्तम्। तद्द्रव्येण काचवलयान् गृहीत्वा गान्धारविषये विक्रीताः। केनचिद्रुद्रदत्तायोपदेशो दत्तः— छागानारुह्याजापथेन गत्वाग्रेतनपर्वतमस्तके चर्मभस्त्रिकान्तः प्रविश्य तन्मुखे स्यूते भेरुण्डा मांसस्तूपा[6] इति मत्वा रत्नद्वीपं नयन्ति भक्षणार्थम्, यदा भूमौ स्थापयन्ति तदा छुरिकया तां विदार्य तत्र रत्नानि ग्राह्याणीति। ततोऽजान् गृहीत्वा अजपथमागताः। तत्र चारुदत्तेनावादि यूयं तिष्ठताहं मार्गमवलोक्यागच्छामि। चतुरङ्गुलरुन्द्रोभयपार्श्वे रसातलावधित्रुटितपर्वतमार्गेण गत्वा यावदागच्छति तावत्तस्य किमिति बृहद्वेला लग्नेति रुद्रदत्तादयोऽपि तन्मार्गेण गच्छन्तोऽन्तराले मिलिताः। चारुदत्तेन भणितमन्यायः कृतः। इदानीं मया

छोड़कर एकत्वादि भावनाओंका चिन्तन करता हुआ मध्यमें ही स्थित रह गया। उस समय वहाँ कुछ बकरियाँ चर रही थीं। उनमेंसे एक बकरीका पैर उस बिलके भीतर घुस गया। चारुदत्तने उसे पकड़ लिया। तब बकरीके कोलाहलको सुनकर उसके रक्षक आये और वहाँकी जमीन खोदने लगे। इस समय चारुदत्तने उनसे धीरेसे खोदनेके लिए कहा। इसे सुनकर उन लोगोंको आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने धीरेसे खोदकर चारुदत्तको बाहिर निकाला। तत्पश्चात् वनके भीतरसे जाता हुआ वह चारुदत्त एक अजगरको लाँघकर चला गया। इसी बीचमें दो जंगली भैंसा उसको मारनेके लिये आये। तब वह एक वृक्षके ऊपर चढ़ गया। फिर उसपरसे उतरकर वह नदीके किनारेसे आगे जा रहा था कि उसे अंगदेशसे आये हुए चाचा रुद्रदत्त और हरिशिख आदि मित्र मिल गये।

वहाँसे वे सातों श्रीपुरमें गये। वहाँ प्रियदत्तने उन्हें स्नानादिके द्वारा प्रसन्न करके मार्गके लिए पाथेय (नाश्ता) भी दिया। उन लोगोंने उसके द्रव्यसे कांचकी चूड़ियोंको लेकर उन्हें गान्धार देशमें बेच दिया। वहाँपर किसीने रुद्रदत्तको यह उपदेश दिया— तुम लोग बकरोंपर सवार होकर अजामार्गसे (बकरेके जाने योग्य संकुचित मार्गसे) आगेके पर्वतशिखरपर जाओ। वहाँपर चमड़ेकी मसकें बनाकर उनके भीतर स्थित होते हुए मुँहको सी देना। उनको भेरुण्ड पक्षी मांसके ढेर समझकर खानेके लिए रत्नद्वीपमें ले जावेंगे। वे जैसे ही उन्हें भूमिके ऊपर रक्खें वैसे ही छुरीसे काटकर तुम सब उनके भीतरसे बाहिर निकल आना। इस प्रकारसे रत्नद्वीपमें पहुँच करके तुम सब वहाँसे रत्नोंको प्राप्त कर सकोगे। इस उपदेशके अनुसार वे बकरोंको ले करके अजामार्गमें आ पहुँचे। वहाँ चारुदत्तने रुद्रदत्त आदिसे कहा कि आप लोग यहींपर बैठें, मैं आगेके मार्गको देखकर वापिस आता हूँ। यह कहकर चारुदत्त चार अंगुलमात्र विस्तृत एवं दोनों पार्श्वभागोंमें पाताल तक टूटे हुए मार्गसे जाकर वापिस आ ही रहा था कि रुद्रदत्तादि भी 'चारुदत्तको इतनी देर क्यों हुई' यह सोचकर उसी मार्गसे आगे चल दिये, उनका मिलाप चारुदत्तसे मार्गके मध्यमें हुआ। तब चारुदत्तने कहा कि आप लोगोंने यह योग्य नहीं किया है,

१. क ०मुल्लंध्यतः ततोऽरण्य। २. प महिषो। ४. क विषयादागतः। ४. प श हरिसिषादीनां। ५. प मिलतः। ६. ब मांसभूपा श मांससूपा। ७. श रुद्रो०।

व्याघुट्यते चेन्मम पतनं[1] युष्माभिश्चेद् युष्माकम्, किं क्रियते। ऊचुस्ते वयं विगतपुण्या मृताश्चेत् किम्, त्वं चिरजीवी भवेति। स बभाण— अहमेको मृतश्चेत् किम्, यूयं गच्छतेति[2] पदाङ्गुलीर्भूमौ[3] प्रस्थाप्य शक्तिं कृत्वा छागोऽवाङ्मुखः कृतः। तं चटित्वा भूधरमारुह्य छागान्[4] बन्धयित्वा तरुतले चारुदत्तः सुप्त्वा यावदुत्तिष्ठति तावद्रुद्रदत्तेन षट् छागा मारिताः। चारुदत्तस्य छागं मारयन् रुद्रदत्तः चारुदत्तेन निन्दितः। तस्मै पञ्चनमस्कारा दत्ताः।

सर्वे भस्त्रिकाप्रवेशं कृत्वा यावत्तिष्ठन्ति तावद् भेरुण्डास्तान् गृहीत्वा गताः। चारुदत्तं गृहीत्वा गतभेरुण्ड एकाक्षः अन्यैः कदर्थितः समुद्रमध्ये भस्त्रिकां निक्षिप्य तान् भेरुण्डान् पलाययित्वा पुनर्गृहीतवान्। एवं चतुर्थे वारे रत्नद्वीपस्थरत्नपर्वतचूलिकायां व्यवस्थाप्य भक्षयितुमुद्यमं यावत्करोति तावन्निर्गतश्चारुदत्तः। अन्ये अन्यत्र नीताः। चारुदत्तेन भ्रमता गुहास्थो मुनिरालोक्य वन्दितः। धर्मवृद्ध्यनन्तरं मुनिरुवाच— कुशलोऽसि[5] चारुदत्त। तदा तेन साश्चर्येण भणितम्—क्व भगवता दृष्टोऽहम्। सोऽहममितगतिविद्याधरो भार्यां मोचयित्वा बहुकालं राज्यानन्तरं दीक्षितवान् इति स्वरूपं निवेदितं तेन। अत्रान्तरे

इस समय यदि मैं वापिस होता हूँ तो मेरा पतन निश्चित है और यदि आप लोग वापिस होते हैं तो आपका पतन निश्चित है। अब क्या किया जाय ? तब उन लोगोंने चारुदत्तसे कहा कि हम लोग पुण्यहीन हैं, अत एव यदि हम मर जाते हैं तो हानि नहीं है। किन्तु तुम पुण्यात्मा हो। अतः तुम चिरजीवी होओ। यह सुनकर चारुदत्त बोला कि मेरे एकके मरनेसे कितनी हानि हो सकती है ? कुछ भी नहीं। अत एव आप लोग आगे जावें। यह कहकर चारुदत्तने पाँवकी अँगुलियोंको भूमिमें स्थिर स्थापित करके बलपूर्वक अपने बकरेको लौटाया। फिर उसके ऊपर चढ़कर वह पर्वतके ऊपर पहुँच गया। पश्चात् रुद्रदत्त आदि भी उस पर्वतके ऊपर पहुँच गये। उन सबने बकरोंको वहींपर बाँध दिया। उस समय चारुदत्त वहाँ एक वृक्षके नीचे सो गया। इस बीचमें रुद्रदत्तने छह बकरोंको मार डाला। तत्पश्चात् वह चारुदत्तके बकरेको मार ही रहा था कि इतनेमें चारुदत्त जाग उठा। उसने इस दृश्यको देखकर रुद्रदत्तकी बहुत निन्दा की। पश्चात् उसने उसे पंचनमस्कारमन्त्र दिया।

फिर वे सब मसकोंके भीतर प्रविष्ट होकर स्थित हो गये। इतनेमें भेरुण्ड पक्षी आये और उन मसकोंको लेकर उड़ गये। चारुदत्तको लेकर जो भेरुण्ड पक्षी उड़ा था वह एकाक्ष (काना) था। अन्य पक्षियोंके द्वारा पीड़ा पहुँचानेपर उसकी चोंचसे चारुदत्तकी भस्त्रा समुद्रमें जा गिरी। तब उसने अन्य पक्षियोंको भगाकर उसको फिरसे उठा लिया। इस क्रमसे वह चौथी बारमें उसे लेकर रत्नद्वीपके भीतर स्थित रत्नपर्वतके शिखरपर पहुँच गया। जैसे ही वह उसे वहाँ रखकर खानेके लिए उद्यत हुआ वैसे ही चारुदत्त उसे फाड़कर बाहिर निकल आया। अन्य पक्षी उन भस्त्राओंको दूसरे स्थानमें ले गये। चारुदत्तने घूमते हुए एक गुफामें विराजमान मुनिराजको देखकर उनकी वंदना की। धर्मवृद्धि देनेके पश्चात् मुनिराज बोले कि हे चारुदत्त, कुशल तो है। इससे चारुदत्तको आश्चर्य हुआ। उसने मुनिराजसे पूछा कि भगवन् ! आपने मुझे कहाँ देखा है ? उत्तरमें मुनिराज बोले कि मैं वही अमितगति विद्याधर हूँ जिसको तुमने छुड़ाया था। उस समय मैंने धूमसिंहसे अपनी पत्नीको छुड़ाकर बहुत समय तक राज्य किया।

१. ब श पत्तनं। २. फ ब गच्छंरिवति। ३. प ब श पदांगुली भूमौ। ४. फ चटित्वा भूधरमारुह्यागताः। छागान्। ब चटित्वा गत्वा भूधरमारुह्य छागं। ५. ब कुशल्यसि।

तत्पुत्रौ सिंहग्रीव-वराहग्रीवौ सविमानौ तं वन्दितुमागतौ। वन्दित्वोपवेशने क्रियमाणे यतिनोक्तं चारुदत्तस्य इच्छाकारं कुरुतमिति। कृते तस्मिन् कोऽयमिति पृष्टे कथित-स्वरूपो मुनिः।

अस्मिन् प्रस्तावे द्वौ कल्पवासिनौ चारुदत्तं प्रणतावनन्तरं मुनिम्। सिंहग्रीवेण गृहस्थस्य प्रथमं नमस्कारकरणं[1] किमिति पृष्टे तत्र छागचरदेव आह— वाराणस्यां विप्रसोमशर्मसोमिलयोरपत्ये भद्रा सुलसा च शास्त्रमदगर्विते कुमार्यावेव परिव्राजके बभूवतुः। तत्प्रसिद्धिमाकर्ण्य याज्ञवल्क्यनामा मौतिको वादार्थी वाराणसीं गतः। वादे जितया सुलसया सह सुखेन स्थितः। पुत्रप्रसूत्यनन्तरमेव पिप्पलतरोरधो निक्षिप्य गतौ मातापितरौ। भद्रया स बालः पिप्पलादनामा वर्धितः पाठितश्च। तेनैकदा भद्रा पृष्टा किमिति ममेदं नामेति। तया स्वरूपे निरूपिते स तत्र गत्वा पितरं वादे जित्वा स्वरूपं निरूपितवान्। तदाहं पिप्पलादशिष्यो वाग्वलिः नाम गुरूक्तशास्त्र[2]-समर्थनार्थं वादे रौद्रध्याने सति नरकं गतः। ततोऽजो जातः षड्वारान् यज्ञ एव हुतः। सप्तमे वारे टक्कदेशेऽजो जातश्चारुदत्त[दत्त]पञ्चनमस्कारफलेनाहं सौधर्मे जातः। इतरोऽप्य-

तत्पश्चात् जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकारसे मुनिराजने चारुदत्तको अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाया। इस बीचमें वहाँ उनके सिंहग्रीव और वराहग्रीव नामके दो पुत्र विमानसे मुनिराजकी वंदना करनेके लिए आये। वंदना करनेके पश्चात् वे बैठ ही रहे थे कि मुनिराजने उनसे चारुदत्तको इच्छाकार करनेके लिए कहा। तब इच्छाकार करनेके पश्चात् उन्होंने मुनिराजसे पूछा कि ये कौन हैं? इसपर मुनिराजने पूर्व वृत्तान्तको सुनाकर चारुदत्तका परिचय कराया।

इस प्रस्तावमें दो स्वर्गवासी देवोंने आकर पहिले चारुदत्तको और तत्पश्चात् मुनिराजको नमस्कार किया। इस विपरीत क्रमको देखकर सिंहग्रीवने उनसे मुनिके पूर्व गृहस्थको नमस्कार करनेका कारण पूछा। उत्तरमें भूतपूर्व बकरेका जीव, जो देव हुआ था, इस प्रकारसे बोला—
वाराणसी नगरीमें ब्राह्मण सोमशर्मा और सोमिलाके भद्रा और सुलसा नामकी दो कन्यायें थीं। उन्हें अपने शास्त्रज्ञानका बहुत अभिमान था। उन दोनोंने कुमार अवस्थामें ही संन्यास ले लिया था। उनकी कीर्तिको सुनकर याज्ञवल्क्य नामका तापस उनसे विवाद करनेकी इच्छासे वाराणसी पहुँचा। उसने शास्त्रार्थमें सुलसाको जीत लिया। तब वह उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगा। कुछ समयके पश्चात् जब उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ तब वे दोनों उसे पीपलके वृक्षके नीचे रखकर चले गये। तब भद्राने उस पुत्रको पिप्पलाद नाम रखकर वृद्धिंगत किया और पढ़ाया भी। एक दिन बालकने भद्रासे अपने पिप्पलाद नामके सम्बन्धमें पूछा। तब भद्राने उसे पूर्व वृत्तान्त सुना दिया। उसे सुनकर वह वहाँ गया। उसने अपने पिताको वादमें जीतकर उससे अपना वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय मैं उस पिप्पलादका वाग्वली नामका शिष्य था। मैं शास्त्रार्थमें गुरुके कहे हुए शास्त्रोंका समर्थन किया करता था। इस प्रकार रौद्रध्यानसे मरकर मैं नरकमें पहुँचा। फिर वहाँसे निकलकर मैं छह बार बकरा हुआ और यज्ञमें ही मारा गया। सातवीं बार मैं टक्क देशमें बकरा हुआ और चारुदत्तके द्वारा दिये गये पञ्चनमस्कारमन्त्रके प्रभावसे फिर सौधर्म स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ हूँ।

---

१. प श कारणं। २. ब वाग्वलिः गुरुकुशास्त्र।

भाणीद्रसकूपमध्यवर्तिने मह्यं दत्तपञ्चनमस्कारफलेनाहमपि तत्रैव जातः इत्युभयोरप्ययमेव गुरुः। कृतोपकारस्मरणार्थं प्रथमतोऽस्य नमस्कार इति। तथा चोक्तम्—

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्धस्य[1] पदस्य वा।
दातारं विस्मरन् पापी किं पुनर्धर्मदेशिनम्[2] ॥२॥ इति[3]

ततश्चारुदत्तादेशेन देवाभ्यां रुद्रदत्ताद्य आनीतास्ततो देवाभ्यां भणितं यावदिष्टं तावद् द्रव्यं दास्यावः। यामश्चम्पाम्। तौ निवार्य सिंहग्रीवेण स्वपुरं नीतः, तत्रानेकविद्याः साधितवान्। द्वात्रिंशद्विद्याधरकन्याः परिणीताः। ततः सिंहग्रीवेणोक्तं मत्पुत्री[4] गन्धर्वसेना 'यो वीणावाद्येन मां जयति स भर्ता' इति कृतप्रतिज्ञा, स्वपुरं नीत्वा वीणाप्रवीणाय भूपाय प्रयच्छेति समर्पिता। ततश्चारुदत्तोऽनूनद्रव्येण[5] सिंहग्रीवादिखगैः स्ववनिताभी[6] रुद्रदत्तादिभिश्च स्वपुरमागतः। स्वावासो मोचितः। वसन्ततिलका 'चारुदत्तस्य गतिर्मे गतिः' इति प्रतिज्ञया स्थिता[7]। सापि प्रिया बभूव इति। चारुदत्तो बहुकालं सुखमनुभूय केनचि-

---

दूसरा देव भी बोला कि मैं रसकूपके मध्यमें पड़कर जब मरणासन्न था तब चारुदत्तने मुझे पञ्चनमस्कारमन्त्र दिया था। उसके प्रभावसे मैं भी उसी सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ हूँ। इस प्रकारसे हम दोनोंका ही यह गुरु है। इसीलिए हम दोनोंने इसके द्वारा किये गये उस महान् उपकारके स्मरणार्थ पहिले उसे नमस्कार किया है। कहा भी है—

जो जीव एक अक्षर, आधे पद अथवा पूरे एक पदके प्रदान करनेवाले गुरुको भूल जाता है— उसके उपकारको नहीं मानता है— वह पापी है। फिर भला ज धर्मोपदेशक गुरुको भूलता है उसके विषयमें क्या कहा जाय ? वह तो अतिशय पापी होगा ही ॥२॥

तत्पश्चात् वे दोनों देव चारुदत्तकी आज्ञासे रुद्रदत्त आदिको ले आये। फिर उन दोनोंने कहा कि जितना द्रव्य आपको अभीष्ट हो उतना द्रव्य हम देंगे। चलिये हमलोग चम्पापुर चलें। तब सिंहग्रीव उन दोनों देवोंको रोककर चारुदत्तको अपने पुरमें ले गया। वहाँ उसने अनेक विद्याओंको सिद्ध करके बत्तीस विद्याधर कन्याओंके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् सिंहग्रीवने चारुदत्तसे कहा कि मेरे गन्धर्वसेना नामकी एक पुत्री है। उसने यह प्रतिज्ञा की है कि जो पुरुष मुझे वीणा बजानेमें जीत लेगा वह मेरा पति होगा। अत एव आप इसे अपने नगरमें ले जाकर जो राजा वीणावादनमें प्रवीण हो उसे दे दें। यह कहकर सिंहग्रीवने उसे चारुदत्तके लिए समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् चारुदत्त बहुत द्रव्यको लेकर सिंहग्रीवादि विद्याधरों, अपनी पत्नियों और रुद्रदत्तादिकोंके साथ अपने नगरमें वापिस आया। तब उसने अपने निवासभवनको, जो कि गहने रखा हुआ था, छुड़ा लिया। वसन्तमाला वेश्याकी पुत्री वसन्ततिलका, जिसने यह प्रतिज्ञा ले रक्खी थी कि जो अवस्था चारुदत्तकी होगी वही अवस्था मेरी भी होगी, उसे भी चारुदत्तने अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लिया। इस प्रकार चारुदत्तने बहुत समय तक सुखका अनुभव किया। पश्चात् उसने किसी निमित्तको पाकर बहुतोंके साथ जिन-

---

१. फ पदार्थस्य (ह० पु० २१, १२६)। २. ब °देशनं। ३. ब 'इति' नास्ति। ४. श मत्पुरी। ५. फ °दत्तस्तेन द्रव्येण। ६. फ श वनिताभि। ७. श प्रतिज्ञायास्थिता।

भिमित्तेन बहुभिर्दीक्षितः संन्यासेन तनुं विहाय सर्वार्थसिद्धिं जगामेति । एवं मिथ्यादृष्टिनर-तिरश्चोऽपि पञ्चपदफलेन स्वर्गं भवन्ति[1] चेत्सद्दृष्टेः[2] किं वक्तव्यम्[3] ॥४-५॥

[१४]

फणी सभार्यो भुवि दग्धविग्रहः
प्रबोधितोऽभूद्धरणः सरामकः ।
स पञ्चभिः पार्श्वजिनेशिनां[4] पदै-
स्ततो[5] वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः ॥६॥

अस्य कथा— वाराणस्यां राजाश्वसेनो देवी ब्रह्मदत्ता पुत्रस्तीर्थंकरकुमारः पार्श्वनाथः । स एकदा हस्तिनमारुह्य पुरबाह्ये यावत् परिभ्रमति तावदेकस्मिन् प्रदेशे पञ्चाग्निं साधयंस्तापसोऽस्थात् । तं विलोक्य कश्चिद् भृत्योऽवदद्देवायं विशिष्टं तपः करोतीति । कुमारोऽब्रवीत्, अज्ञानिनां तपः संसारस्यैव हेतुरिति श्रुत्वा भौतिको जन्मान्तरविरोधात् कोपाग्न्युद्दीपीकृतान्तरङ्गो[6]ऽभणत्-- हे कुमार, कथमहमज्ञानीति । ततो हस्तिन उत्तीर्य कुमारस्तत्समीपे भूयोक्तवान् – यदि त्वं ज्ञानी तर्ह्यस्मिन् दह्यमाने काष्ठे किमस्तीति कथय । सोऽब्रवीन्न किमप्यस्ति । तर्हि[7] स्फोटय । ततोऽपि[प्य]स्फोटयत्[8] । तदन्ते अर्धदग्धं कण्ठगतासुफणियुगमस्थात्[9] । तस्मै पञ्चनमस्कारान् ददौ नाथस्त[10]त्फलेन तौ धरणेन्द्रपद्मावत्यौ जाते[11] ।

दीक्षा ग्रहण कर ली । अन्तमें वह संन्यासपूर्वक शरीरको छोड़कर सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जब पंचनमस्कारमन्त्रके प्रभावसे मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्च भी स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं तब भला सम्यग्दृष्टि मनुष्यके विषयमें क्या कहा जाय ? उसे तो स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त होगा ही ॥४॥

जिस सर्पका शरीर सर्पिणीके साथ अग्निमें जल चुका था वह पार्श्व जिनेन्द्रके द्वारा दिये गये पंचनमस्कार मन्त्रके पदोंके प्रभावसे प्रबोधको प्राप्त होकर उस सर्पिणी (पद्मावती) के साथ धरणेन्द्र हुआ । इसीलिए हम उन पंचनमस्कारमन्त्रके पदोंमें अधिष्ठित होते हैं ॥५॥

इसकी कथा— वाराणसी नगरीमें राजा अश्वसेन राज्य करता था । उसकी पत्नीका नाम ब्रह्मदत्ता था । इन दोनोंके पार्श्वनाथ नामक तीर्थंकर कुमार पुत्र उत्पन्न हुआ । वह किसी समय हाथीके ऊपर चढ़कर घूमनेके लिए नगरके बाहर गया था । वहाँ एक स्थानपर कोई तापस पंचाग्नि तप कर रहा था । उसको देखकर किसी सेवकने भगवान् पार्श्वनाथसे कहा कि हे देव ! यह तापस विशिष्ट तप कर रहा है । इसे सुनकर तीर्थंकर कुमारने कहा कि अज्ञानियोंका तप संसारका ही कारण होता है । कुमारके इस कथनको सुनकर जन्मान्तरके वैरसे तापसका हृदय क्रोधरूप अग्निसे उद्दीप्त हो उठा । वह बोला कि हे कुमार ! मैं अज्ञानी कैसे हूँ ? तब कुमारने हाथीके ऊपरसे उतरकर और उसके पास जाकर उससे फिरसे कहा कि यदि तुम ज्ञानवान् हो तो यह बतलाओ कि इस जलती हुई लकड़ीके भीतर क्या है । इसपर तापसने कहा कि इसके भीतर कुछ भी नहीं है । तब पार्श्व कुमारने उससे उस लकड़ीको फोड़नेके लिए कहा । तदनुसार तापसने उस लकड़ीको फोड़ भी डाला । उसके भीतर अधजला होकर मरणोन्मुख हुआ एक सर्पयुगल स्थित था । तब पार्श्व तीर्थंकर कुमारने उक्त युगलके लिए पंचनमस्कारपदोंको दिया । उसके प्रभावसे वे

१. ब-प्रतिपाठोऽयम् । श स्वर्गो भवति । २. प-सदृष्टे क सद्दृष्टिः । ३. ब किं पृष्टव्यं । ४. प जिनेशिता, क ब जिनेशिना । ५. क यदि ततो । ६. क कोपाग्न्योद्दीपीकृतांतरो । ७. क सोऽब्रवीत् तत्किमपि नास्ति । कुमारोक्तः । तर्हि । ८. क स्फुटयन् ब स्फुटन् । ९. ब-प्रतिपाठोऽयम् । श °गतायुर्फणियुग । १०. ब-प्रतिपाठोऽयम् । श नागस्त° । ११. ब जात्ये ।

राजावादीत्— सुनिश्चितदोषस्य तस्य शास्तिं करिष्यामि, त्वं खेदं मा कुर्विति संबोध्य तं गृहं प्रेष्य तस्य दोषं निश्चित्य गर्दभारोहणादिकं विधाय कमठो निर्धाटितः। स च गत्वा भूताद्रौ तापसो भूत्वा शिलोद्धरणं तपः कर्तुं लग्नः। इतरस्तच्छास्तिविधानेऽतिदुःखी बभूव। मरुभूतिस्तच्छुद्धिमवाप्य राजानं विज्ञप्तवान्—देव, कमठः तपः कुर्वन्नास्ते, गत्वा विलोक्यागच्छामीति। नृपोऽपृच्छत् 'किंरूपं तपः स करोति'। सोऽवोचद्भौतिकरूपम्। तर्हि मागमः त्वमिति राज्ञा[1] निषिद्धोऽप्येकाकी जगाम। तं विलोक्याभणत्— हे तात, मया निषिद्धेनापि राज्ञा यद् विहितं तत्सर्वं क्षन्तव्यमिति पादयोः पपात। तदा कमठस्त्वयैव सर्वं विहितमिति भणित्वा शिलां तन्मस्तकस्योपरि निक्षिप्यामारयत्तम्। स मृत्वा कूर्चनामसल्लकी-वने वज्रघोषनामा[2] महान् हस्ती जातः। इतरस्तापसैर्निर्धाटितः सन्[3] भिल्लानां मिलित्वा चोरयन् ग्राम्यैर्हतः। तत्रैव वने कुक्कुटसर्पोऽजनि। राज्ञैकदावधिज्ञानिनं मुनिं पप्रच्छ 'मन्त्री किमिति नागतः' इति। तेन स्वरूपं निरूपितं निशम्य पुरं प्रविश्य कियत्कालं राज्या-नन्तरमभ्रं विलीनमभिवीक्ष्य[4] दीक्षितः सकलागमधरो भूत्वा पूर्वोक्तकूर्चकवने वेगावती-

है ? दुष्टके वचनको ग्रहण न करें। यह सुनकर राजा बोला कि कमठका अपराध निश्चित है, मैं उसके लिए दण्ड दूंगा, इसके लिए तुम्हें खिन्न न होना चाहिए। इस प्रकारसे सम्बोधित करके राजाने मरुभूतिको घर भेज दिया और फिर कमठके अपराधको निश्चित करके उसे गर्दभारोहण आदि कराया तथा अपने राज्यसे निर्वासित कर दिया। तब कमठ भूताचल पर्वतके ऊपर गया और वहाँ तापस होकर शिलोद्धरण (शिलाको उठाकर) तपके करनेमें प्रवृत्त हो गया। उस समय मरुभूति उसको दण्डित किये जानेके कारण अतिशय दुःखी हुआ। उसे जब कमठका समाचार मिला तब उसने राजासे प्रार्थना की कि हे देव! कमठ तपश्चरण कर रहा है, मैं जाता हूँ और उससे मिलकर वापिस आता हूँ। तब राजाने उससे पूछा कि वह किस प्रकारका तप कर रहा है ? उत्तरमें मरुभूतिने कहा कि वह भौतिक रूप (भूतिको लगाकर किया जानेवाला) तपको कर रहा है। तब तुम उसके पास मत जाओ, इस प्रकार राजाके रोकनेपर भी मरुभूति उसके पास अकेला चला गया। वहाँ कमठको देखकर मरुभूतिने कहा कि हे पूज्य! मेरे रोकनेपर भी राजाने जो कुछ किया है उस सबके लिए क्षमा कीजिये। यह कहता हुआ वह उसके चरणोंमें गिर गया। फिर भी कमठने यह कहते हुए कि वह सब तूने ही किया है, उसके मस्तकपर शिलाको पटककर उसे मार डाला। वह इस प्रकारसे मरकर कूर्च नामक सल्लकी-वनमें वज्रघोष नामका विशाल हाथी हुआ। उधर जब कमठने शिला पटककर अपने भाईको मार डाला तब दूसरे तापसोंने उसे आश्रमसे निकाल दिया। फिर वह भीलोंके साथ मिलकर चोरी करने लगा। तब ग्रामीण जनोंने उसे मार डाला। वह इस प्रकारसे मरकर उसी वनमें कुक्कुट सर्प हुआ। उधर मरुभूति जब वापिस नहीं आया तब राजा अरविन्दने किसी समय अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा कि मंत्री मरुभूति क्यों नहीं आया है। उत्तरमें मुनिराजने जो उसके मरनेका वृत्तान्त कहा उसे सुनकर राजा नगरमें वापिस आ गया। तत्पश्चात् उसने कुछ समय और भी राज्य किया। एक समय वह देखते-देखते ही नष्ट हुए मेघको देखकर दीक्षित हो गया। वह समस्त श्रुतका पारगामी हुआ। किसी समय वह पूर्वोक्त कूर्चक वनमें वेगावती नदीके किनारे एक

१. श त्वमति राजा। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श वज्रघोषो नाम। ३. क ब स। ४. ब विलीनमवीक्ष्य।

नदीतीरे शिलातले उपविष्टः। तन्नदीतीरे विमुच्य[1] स्थितसुगुप्तगुप्तसार्थाधिपती[3] धर्ममाकर्णय-न्तावूषतुर्यदा[4] तदा स हस्ती तच्छिबिरं विनाश्य भट्टारकस्याभिमुखोऽभूत्। तं विलोक्य जातिस्मरो भूत्वा तं ननाम[5]। तेन दत्तसकलश्रावकव्रतानि प्रतिपालयन् कायक्लेशेन क्षीण-शरीर उदकं पीत्वा गतेषु द्विपेषु विध्वंसितोदकपानार्थं वेगावतीं प्रविशन् कर्दमे पतितः। गृहीतसंन्यासो भावनया यदास्ते तावत्स कुक्कुटसर्पो विलोक्य तं चखाद। मृत्वा सहस्रारे स्वयंप्रभविमाने शशिप्रभनामा महर्द्धिको देवोऽभूत्। कुक्कुटसर्पः पारंपर्येण धूमप्रभां गतः।

स देवोऽवतीर्यात्रैव[6] पुष्कलावतीविषये विजयार्धे त्रिलोकोत्तमपुरेशविद्युन्मतिविद्यु-न्मालयोः सहस्ररश्मिनामा तनुजोऽजनि। कौमारे समाधिगुप्तमुनिसंनिधौ दीक्षित आगमधरो भूत्वा हिमवद्गिरौ ध्यानेनातिष्ठत्। स कुक्कुटसर्पचरो जीवो धूमप्रभाया निःसृत्य तत्र[7] गिरा-वजगरोऽभूत्तेन गिलितो मुनिरच्युते[8] पुष्करविमाने विद्युत्प्रभनामा देव आसीत्। अजगरः परंपरया[9] तमःप्रभां गतः। स देव आगत्य जम्बूद्वीपापरविदेहे पद्माविषये अश्वपुरेश-वज्रवीर्यविजययोः वज्रनाभनामपुत्रोऽभूद्राज्येऽस्थात्सकलचक्री च जातः, क्षेमंकरमुनिसमीपे दीक्षितः। तमःप्रभाया निःसृत्याजगरचरो जीवोऽटव्यां कुरङ्गनामा भिल्लो जातः। पापर्द्ध्यर्थं

शिलाके ऊपर ध्यानस्थ बैठा था। उसी नदीके किनारेपर सुगुप्त और गुप्त नामके दो व्यापा-रियोंके स्वामी पड़ाव डालकर स्थित थे। वे दोनों जब मुनिराजके समीपमें धर्मश्रवण कर रहे थे तब वह हाथी उनके शिविरको नष्ट करके मुनीन्द्रके सन्मुख आया। उनको देखकर उसे जाति-स्मरण हो गया। तब उसने उन्हें नमस्कार किया। फिर उसने मुनिराजके द्वारा दिये गये श्रावकके समस्त व्रतोंको धारण किया। इन व्रतोंका पालन करते हुए कायक्लेशके कारण उसका शरीर कृश हो गया था। एक दिन वह पानी पीकर बहुत-से हाथियोंके चले जानेपर उनके द्वारा विलोडित (प्रासुक) पानीको पीनेके लिए वेगावती नदीके भीतर प्रविष्ट हुआ। वहाँ वह कीचड़में फँस गया। जब उसमेंसे उसका बाहिर निकलना असम्भव हो गया तब उसने संन्यास ग्रहण कर लिया। इसी बीचमें वह कुक्कुट सर्प वहाँ आया और उसे देखकर काट लिया। तब वह मरकर सहस्रार स्वर्गके अन्तर्गत स्वयंप्रभ विमानमें शशिप्रभ नामका महर्द्धिक देव हुआ। वह कुक्कुट सर्प परम्परासे धूमप्रभा पृथिवी (पाँचवाँ नरक) में गया।

वह देव स्वर्गसे च्युत होकर यहींपर पुष्कलावती देशके अन्तर्गत विजयार्ध पर्वतस्थ त्रिलोकोत्तम पुरके स्वामी विद्युन्मति और विद्युन्मालाके सहस्ररश्मि नामका पुत्र हुआ। उसने कुमार अवस्थामें ही समाधिगुप्त मुनिके निकट दीक्षा ले ली थी। वह आगमका ज्ञाता होकर किसी समय हिमालय पर्वतके ऊपर ध्यानमें स्थित था। उधर वह कुक्कुट सर्पका जीव धूमप्रभा पृथिवीसे निकलकर उसी पर्वतके ऊपर अजगर हुआ था। उससे भक्षित होकर वे मुनिराज अच्युत स्वर्गके अन्तर्गत पुष्कर विमानमें विद्युत्प्रभ नामक देव हुए। वह अजगर परम्परासे तमःप्रभा पृथिवीको प्राप्त हुआ। उक्त देव अच्युत स्वर्गसे च्युत होकर जम्बूद्वीपके अपर विदेहमें पद्मा देशके अन्तर्गत अश्वपुरके अधीश्वर वज्रवीर्य और विजयाके वज्रनाभ नामका पुत्र हुआ। वह क्रमशः राज्य पदपर प्रतिष्ठित होकर चक्रवर्ती हुआ। पश्चात् समयानुसार उसने क्षेमंकर मुनिके समीपमें दीक्षा धारण कर ली। इधर तमःप्रभा पृथिवीसे मिकलकर वह अजगरका जीव वनमें कुरंग नामक

---

१. फ °तीरे सिबिरं विमुच्य। २. श स्थितः। ३. फ सुगुप्तसार्थाधिपति श सुगुप्तगुप्तसार्थाधिपति। ४. ब °माकर्ण्य बभूवतु यदा। ५. प श तन्ननाम। ६. फ ब देव आगत्यात्रैव। ७. श °सत्र। ८. ब-प्रति-पाठोऽयम्। श गभितोऽच्चनि०। ९. फ अजगरपरंपरया श अजगरंपराया।

भ्रमता तेन वज्रनाभमुनिर्ध्यानस्थो विद्धः समाधिना मध्यमग्रैवेयकसुभद्रविमाने जातो भिल्लः सप्तमावनौ। ततोऽवतीर्याहमिन्द्रोऽयोध्यापुरे वज्रबाहुप्रभंकर्योः सुत आनन्दनामा जातो महामण्डलेश्वरश्च, सागरदत्तमुनिसमीपे दीक्षितः षोडशभावनाः संभाव्य तीर्थकृत्त्वमुपार्ज्य क्षीरवने प्रतिमायोगं दधौ। भिल्लो नरकान्निःसृत्य तत्रारण्ये सिंहोऽजनि। तेन स मुनिर्मारितः सन्[1] लान्तवेन्द्रोऽभूत्। सिंहो धूमप्रभां गतः। लान्तवेन्द्रो गर्भावतरणकल्याणपुरःसरवैशाख-कृष्णद्वितीयायां ब्रह्मदत्तायाः गर्भे स्थितः, पुष्यकृष्णैकादश्यां जज्ञे प्रियङ्गुश्यामवर्णः नव-हस्तोत्सेधः शतवर्षायुः। त्रिंशद्वर्षकुमारकाले सति पिता तद्विवाहार्थं पञ्चशतकन्या आनयामास[2]। पुष्य[3]कृष्णैकादश्यां ता[4] विलोक्य वैराग्यं जगाम। विमलाभिधानां[5] शिबिकामारुह्य पुरान्निःक्रान्तस्तपो गृहीत्वाष्टोपवासपूर्वकं राजसहस्रैकेण[6] अश्ववने निःक्रान्तोऽष्टमोप-वासानन्तरं चर्यार्थं प्रविष्टः[7] कस्यचित् राज्ञो भवने क्षीरान्नेन पारणां चकार। चातुर्मासं तपो विधाय तत्रैव वने देवदारुवृक्षतले शिलापट्टे[8] ध्यानस्थितो यदा तदा स सिंहो नरकान्निःसृत्य भ्रमित्वा महीपालपुरेशनृपालतनुजो ब्रह्मदत्ताया भ्राता महीपालसंज्ञोऽभूद्राज्येऽस्थात्।

भील हुआ था। उसने शिकारके निमित्त घूमते हुए उन ध्यानस्थ वज्रनाभ मुनिको विद्ध किया—बाणसे आहत किया। इस प्रकार समाधिसे मरणको प्राप्त होकर वे मुनिराज मध्यम ग्रैवेयकके अन्तर्गत सुभद्र विमानमें उत्पन्न हुए। और वह भील सातवीं पृथिवीमें जाकर नारकी हुआ। अहमिन्द्र देव ग्रैवेयक विमानसे च्युत होकर अयोध्यापुरीमें वज्रबाहु और प्रभंकराके आनन्द नामका पुत्र हुआ। वह महामण्डलेश्वरकी लक्ष्मीको भोगकर सागरदत्त मुनिके पासमें दीक्षित हो गया। उसने दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तन करके तीर्थंकर प्रकृतिको बाँध लिया। वह एक दिन क्षीरवनके भीतर प्रतिमायोगको धारण करके स्थित था। उधर वह भूतपूर्व भीलका जीव नरकसे निकलकर उसी वनमें सिंह हुआ था। उसने उन मुनिराजको मार डाला। इस प्रकारसे शरीरको छोड़कर वे मुनिराज लान्तव स्वर्गमें इन्द्र हुए। और वह सिंह मरकर धूमप्रभा पृथिवीमें नारकी हुआ। लान्तवेन्द्र गर्भावतरण कल्याणमहोत्सवपूर्वक वैशाख कृष्णा द्वितीयाके दिन ब्रह्मदत्ताके गर्भमें स्थित हुआ। उसने पौष कृष्णा एकादशीके दिन पार्श्वनाथ तीर्थंकरके रूपमें जन्म लिया। पार्श्वनाथके शरीरका वर्ण प्रियंगु पुष्पके समान श्याम और ऊँचाई उनकी सात हाथ थी। उनकी आयु सौवर्षकी थी। तीस वर्ष प्रमाण कुमारकालके बीत जानेपर पिता उसके विवाहके लिए पाँच सौ कन्याओं-को लाये। उन कन्याओंको देखकर वे पौष कृष्णा एकादशीके दिन वैराग्यको प्राप्त हुए। तब वे विमला नामकी पालकीपर चढ़कर नगरके बाहिर गये। उन्होंने अश्ववनमें पहुँचकर एक हजार राजाओंके साथ तीन उपवासपूर्वक दीक्षा ग्रहण कर ली। तीन उपवासके पश्चात् वे आहारके निमित्त किसी राजाके भवनमें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने खीरको लेकर पारणा की। एक समय चातुर्मासिक तपको करके वे भगवान् उसी वनमें देवदारु वृक्षके नीचे एक शिलाके ऊपर ध्यानस्थ होते हुए विराजमान थे। उधर वह सिंहका जीव नरकसे निकलकर परिभ्रमण करता हुआ महीपालपुरके राजा नृपालका पुत्र और ब्रह्मदत्ता (भगवान्की माता) का भाई हुआ

---

१ फ ब स तु। २. ब कन्या आनयामास। ३. प श पुष्ये। ४. ब तां। ५. फ श °भिधानं। ६. ब शिबिकामारुह्याष्टोपवासपूर्वकं राजसहस्रेण। ७. ब 'अष्टमोपवासानन्तरं चर्यार्थं प्रविष्टः' इत्येतावान् पाठो नास्ति। ८. ब °पट्टे प्रतिमायोगमध्यास्थदा।

स्ववल्लभावियोगेन तापसोऽपि जातो यो हि युगलं दग्धवान्। स मृत्वा संवरनामा ज्योतिष्कसुरोऽजनि। स तं लुलोके, पूर्ववैरं स्मृत्वा घोरोपसर्गः कृतः।[1] आसनकम्पात् धरणेन्द्रपद्मावत्यौ समागतौ[2]। धरणो मुनेरुपरि फणामण्डपं चकार। देवी फणामण्डपस्योपरि छत्रमधत्त। तदा स मुनिश्चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां संवरोपसर्गजयात् केवली जज्ञे। तत्समवसरणविभूतिदर्शनात् पञ्चशततापसा दीक्षांचक्रुः। संवरः सम्यक्त्वं जग्राह। बहवः क्षत्रियाः श्रावकाः दीक्षिताश्च जाताः। पित्रादयः समर्च्य ववन्दिरे। श्रीपार्श्वनाथः केवली[3] श्रीधरप्रभृतिभिर्दशभिर्गणधरैः[4] १० षष्ठ्युत्तरपञ्चशतपूर्वधरैः ५६० नवशतोत्तरनवसहस्रशिक्षकैः ९९०० चतुःशतोत्तरपञ्चसहस्रावधिज्ञानिभिः ५४०० एकसहस्रकेवलिभिः १००० तावद्भिरेव वैक्रियर्द्धिभिः १००० सप्तशतपञ्चाशदधिकमनःपर्ययधरैः[5] ७५० षट्शतवादिभिः ६०० सुलोचनाप्रभृतिपञ्चत्रिंशत्सहस्रार्यिकाभिः[6] ३५००० एकलक्षश्रावकजनैः[7] १००००० त्रिलक्षश्राविकाभिः ३००००० असंख्यातकोटिदेवदेवीभिस्तिर्यग्भिश्च चतुर्मासहीनसप्ततिवर्षाणि विहृत्य संमेदशिखरमारुह्य मासमेकं योगनिरोधं विधाय शुक्लध्यानमवलम्ब्य श्रावणशुक्लसप्तम्यां मुक्तिमियायेति क्रूरात्मानौ सर्पावपि तन्माहात्म्येन देवगतिमलभेताम्, सद्दृष्टेः किं प्रष्टव्यम् ॥६॥

था। उसका नाम महीपाल था। यह जब राजाके पदपर स्थित था तब उसकी प्रिय पत्नीका वियोग हो गया था। इस इष्टवियोगको न सह सकनेके कारण वह तापस हो गया था। इसीने उस सर्पयुगलको पंचाग्नि तप करते हुए दग्ध किया था। वह मरकर संवर नामका ज्योतिषी देव हुआ था। उसने जब भगवान् पार्श्वनाथको वहाँ ध्यानस्थ देखा तब पूर्व वैरका स्मरण करके उनके ऊपर भयानक उपसर्ग किया। उस समय आसनके कम्पित होनेसे धरणेन्द्र और पद्मावती वहाँ आ पहुँचे। तब धरणेन्द्रने मुनिके ऊपर अपने फणको मण्डपके समान कर लिया और पद्मावतीने उस फणरूप मण्डपके ऊपर छत्रको धारण किया। इस प्रकारसे वे मुनीन्द्र संवर देवके द्वारा किये गये उस उपसर्गको जीतकर चैत्र कृष्णा चतुर्थीके दिन केवलज्ञानको प्राप्त हुए। पार्श्वनाथ जिनेन्द्रके समवसरणकी विभूतिको देखकर पाँच सौ तापस जैन धर्ममें दीक्षित हो गये। स्वयं उस संवर ज्योतिषीने सम्यग्दर्शनको ग्रहण कर लिया था। तथा बहुत-से क्षत्रिय (राजा) श्रावक और मुनि हो गये। पिता अश्वसेन आदिने भगवान्‌की पूजा करके वंदना की। पार्श्वनाथ जिनेन्द्रने श्रीधर आदि दस (१०) गणधरों, पाँच सौ साठ (५६०) पूर्वधरों, नौ हजार नौ सौ (९९००) शिक्षकों, पाँच हजार चार सौ (५४००) अवधिज्ञानियों, एक हजार (१०००) केवलियों, उतने (१०००) ही विक्रियाऋद्धिधारकों, सात सौ पचास (७५०) मनःपर्ययज्ञानियों, छह सौ (६००) वादियों, सुलोचना आदि पैंतीस हजार (३५०००) आर्यिकाओं, एक लाख (१०००००) श्रावकजनों, तीन लाख (३०००००) श्राविकाओं तथा असंख्यात करोड़ देव-देवियों व तिर्यंचोंके साथ चार मास कम सत्तर वर्ष तक विहार किया। तत्पश्चात् सम्मेदशिखरपर चढ़कर एक मास प्रमाण आयुके शेष रह जानेपर उन्होंने योगनिरोध किया और फिर शुक्लध्यानका आश्रय लेकर श्रावणशुक्ला सप्तमीके दिन मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकारसे जब क्रूर स्वभाववाले सर्प और सर्पिणीने भी उस पंचनमस्कारमंत्रके माहात्म्यसे देवगतिको प्राप्त कर लिया तब भला सम्यग्दृष्टि जीवका क्या पूछना है? वह तो स्वर्ग-मोक्षको प्राप्त करेगा ही ॥५॥

१. ब लुलोके तदुपसर्गं च प्रारब्धवान्। तदासनकंपात्। २. ब-समागते। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श °नाथकैवल्यं। ४. फ ब प्रभृतिनवभिर्गणधरैः ५. ब पंचाशदुत्तरसप्तशतमनःपर्ययज्ञानिभिः। ६. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श °स्तार्यिकादिभिः। ७. ब श्रावकैः।

[१५]

प्रपङ्कमग्ना करिणी सुदुःखिता
वियच्चरासादितपञ्चसत्पदा।
भवान्तरे सा भवति स्म जानकी
ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः ॥७॥

अस्य कथा— अस्मिन् भरते यक्षपुरे राजा श्रीकान्तः देवी मनोहरी। तत्र वणिक् सागरदत्त-रत्नप्रभयोः पुत्री गुणवती। तत्रैवान्यो वणिक् नयदत्तो भार्या नन्दना तत्सुतौ धनदत्तवसुदत्तौ। सा धनदत्ताय किल दातव्या। पुरेशेन मह्यमेव दातव्येत्याज्ञादायि। तं वने रन्तुं गतं वसुदत्तो जघान। तद्भृत्यैरितरोऽपि हतः। उभावपि कुरङ्गौ बभूवतुः। स धनदत्तो देशान्तरं जगाम। सा आर्तेन मृत्वा कुरङ्गी जाता। तन्निमित्तं तौ युद्ध्वा मम्रतुः। ततो वनसूकरावास्ताम्, सा सूकरी बभूव। तौ तथा मृतिमुपजग्मतुः हस्तिनौ जातौ। सा करिणी जाता। तत्रापि तथा मृत्वा महिषौ मर्कटौ कुरवकौ[1] अविकावित्यादिजन्मसु बभ्रमतुः[2]। सापि तदा तदा तज्जातीया स्त्री भवति स्म। तौ तथा च मम्रतुश्च।

एकदा गङ्गातटे करिणी जाता[3] कर्दमे मग्ना। कण्ठगतप्राणावसरे तस्याः[4] सुरङ्गनामविद्याधरः[रेण] पञ्चनमस्कारा दत्ता। तत्फलेन मृणालपुरेशशम्भोर्मन्त्रिश्रीमूर्ति-सरस्वत्योर्वेदवतीसंज्ञा[5] पुत्री जाता। सा चर्यार्थमागतमुनेरपवादमवदत्[6] पितृभ्यां[7] निवारिता। दिना-

जो हथिनी अतिशय गहरे कीचड़में फँसकर अत्यन्त दुखित थी वह विद्याधरके द्वारा दिये गये पंचनमस्कारमंत्रके पदोंके प्रभावसे भवान्तरमें राजा जनककी पुत्री सीता हुई। इसीलिए हम उन पंचनमस्कारपदोंमें अधिष्ठित होते हैं॥ ७॥ इसकी कथा—

इस भरतक्षेत्रके अन्तर्गत यक्षपुरमें श्रीकान्त नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम मनोहरी था। इसी नगरमें एक सागरदत्त नामका वैश्य था। उसकी पत्नीका नाम रत्नप्रभा था। इन दोनोंके गुणवती नामकी एक पुत्री थी। उसी नगरमें नयदत्त नामका एक दूसरा भी वैश्य रहता था। इसकी पत्नीका नाम नन्दना था। इनके धनदत्त और वसुदत्त नामके दो पुत्र थे। वह गुणवती इस धनदत्तके लिये दी जानेवाली थी। परन्तु राजाने आज्ञा दी कि वह मेरे लिए ही दी जाय। एक दिन जब राजा श्रीकान्त वनमें क्रीड़ार्थ गया था तब वसुदत्तने उसे मार डाला। इधर श्रीकान्तके सेवकोंने वसुदत्तको भी मार डाला। वे दोनों मरकर हिरण हुए। तब वह धनदत्त देशान्तरको चला गया। इससे वह गुणवती आर्त्त ध्यानसे मरकर हिरणी हुई। उसके निमित्तसे वे दोनों हिरण परस्परमें लड़कर मरे और वनके शूकर हुए। हिरणी मरकर शूकरी हुई। वे दोनों इसी प्रकारसे फिर भी मरणको प्राप्त होकर हाथी हुए और वह शूकरी हथिनी हुई। फिर भी उसी प्रकारसे वे दोनों मरकर क्रमशः भैंसा, बंदर, कुरवक (सारस?) और मेंढा इत्यादि पर्यायोंको प्राप्त हुए। वह हथिनी भी उस-उस कालमें उन्हींकी जातिकी स्त्री हुई। फिर वे दोनों उसी प्रकारसे मरणको प्राप्त हुए। एक समय वह गुणवतीका जीव गंगाके किनारे हथिनी हुआ। यह हथिनी कीचड़में फंसकर मरणासन्न हो गई। उस समय उसे सुरंग नामके विद्याधरने पंच-नमस्कारमंत्र दिया। उसके प्रभावसे वह मृणालपुरके राजा शम्भुके मंत्री श्रीभूतिकी पत्नी सरस्वतीके वेदवती नामकी पुत्री हुई। किसी समय एक मुनिराज चर्याके लिए आये। वेदवतीने उनकी

१. ब कुरकौ। २. श चभ्रमतुः। ३. फ श जाताः। ४. श प्राणावसतस्याः। ५. प श शंबोर्मन्त्री° ब शंबोर्मन्त्रि°। ६. फ °मागतः मुने° श °मागतामुने°। ७. प °रपवादस्पितृभ्यां।

न्तरैस्तस्याः गलरोगोऽभूज्जनेनोक्तं मुनिनिन्दनतोऽभूदिति। तदा व्रतानि जग्राह। सा शम्भुना[1] याचिता। स मिथ्यादृष्टिरिति श्रीभूतिर्नादात्तदा तेन हतो दिवं गतः। सा मत्पिता त्वया हत इति जन्मान्तरैः ते विनाशहेतुर्भविष्यामीति तपसा दिवं गता। ततोऽवतीर्यात्रैव भरते दारुण-ग्रामे विप्रसोमशर्मज्वालयोस्तनुजा सरसाभिधा जाता। अतिविभूतिना परिणीता। जारेणैकेन देशान्तरं जगाम। मार्गे मुनिं ददर्श निनिन्द च। तत्पापेन तिर्यग्गतावाट। कदाचिच्चन्द्र-पुरेशचन्द्रध्वज-मनस्विन्योश्चित्रोत्सवाजनि। मन्त्रिपुत्रकपिलेन सह देशान्तरमियाय। तमपि त्यक्त्वा विदग्धनगरेशकुण्डलमण्डितस्य प्रिया बभूव। पूर्वजन्मसंस्कारेण गृहीतश्रावकव्रता ततः सीता जाता। तत्स्वयंवरादिकं पद्मचरिते ज्ञातव्यमिति। मूढापि हस्तिनी तत्फलेनैवंविधा-सीत्, किमन्यो भूतिभाग् न स्यात् ॥७॥

[१६]

सुदुःखभाराक्रमितश्च[2] तस्करो
जलाशयोच्चारितपञ्चसत्पदः।
तथापि देवोऽजनि भूरिसौख्यक-
स्ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः ॥८॥

निन्दा की। तब माता पिताने उसे इस निन्द्य कार्यसे रोका। कुछ दिनोंके पश्चात् उसे गलेका रोग उत्पन्न हुआ। उसे जन-समुदायने मुनिनिन्दाका फल प्रगट किया। तब उसने व्रतोंको ग्रहण कर लिया। राजा शम्भुने उसे श्रीभूतिसे अपने लिए मांगा। परन्तु श्रीभूतिने मिथ्यादृष्टि होनेके कारण उसके लिए अपनी कन्या नहीं दी। इससे क्रुद्ध होकर राजाने उसे मार डाला। वह मरकर स्वर्गको प्राप्त हुआ। इधर वेदवतीने राजासे कहा कि तुमने चूंकि मेरे पिताको मार डाला है, इसीलिए मैं जन्मान्तरोंमें तुम्हारे विनाशका कारण बनूँगी। इस प्रकारसे खिन्न होकर उसने तपको स्वीकार कर लिया। उसके प्रभावसे वह स्वर्गको प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर वह इसी भरत क्षेत्रके अन्तर्गत दारुण ग्राममें ब्राह्मण सोमशर्मा और ज्वालाके सरसा नामकी पुत्री हुई। उसका विवाह अतिविभूतिके साथ कर दिया गया था। परन्तु वह एक जार (व्यभिचारी) पुरुषके साथ देशान्तरको चली गई। मार्गमें उसने मुनिको देखकर उनकी निन्दा की। इस पापसे उसे तिर्यञ्चगतिमें परिभ्रमण करना पड़ा। किसी समय वह चन्द्रपुरके स्वामी चन्द्रध्वज और मनस्विनीके चित्रोत्सवा नामकी पुत्री हुई। वह मंत्रीके पुत्र कपिलके साथ देशान्तरमें चली गई। फिर उसको भी छोड़ करके वह विदग्धपुरके राजा कुण्डलमण्डितकी प्रिया हो गई। तत्पश्चात् पूर्वजन्मके संस्कारसे उसने श्रावकके व्रतोंको ग्रहण कर लिया। अन्तमें वह सीता हुई। उसके स्वयंवर आदिका वृत्तान्त पद्मचरित्रसे जानना चाहिए। इस प्रकार जब अज्ञान हथिनी भी पंचनमस्कारमंत्रके प्रभावसे उक्त वैभवको प्राप्त हुई है तब फिर दूसरा कौन उसके प्रभावसे वैभवशाली न होगा? सब ही उसके प्रभावसे यथेष्ट वैभवको प्राप्त कर सकते हैं ॥७॥

जो दृढ़सूर्य चोर शूलीके दुःसह दुखसे अतिशय व्याकुल होकर यद्यपि जलपानकी आशासे ही पंचनमस्कारमंत्रके पदोंका उच्चारण कर रहा था, फिर भी वह उसके प्रभावसे देव पर्यायको प्राप्त करके अतिशय सुखका भोक्ता हुआ। इसीलिए हम उन पंचनमस्कारमंत्रके पदोंमें अधिष्ठित होते हैं ॥८॥

१. प श शंबुना ब शांबुना। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श क्रमतश्च।

अस्य कथा। तथा हि— उज्जयिनीनगर्यां राजा धनपालो राज्ञी धनमती। वसन्तोत्सवे तस्या राज्ञ्या[1] दिव्यं हारमवलोक्य वसन्तसेनागणिकया चिन्तितं किमनेन विना जीवितेनेति गृहे गत्वा शय्यायां पतित्वा स्थिता सा। रात्रौ दृढसूर्यचौरेणा[2]गत्य पृष्टा 'किं प्रिये, रुष्टासि'। तयोक्तं— तव न रुष्टा। किंतु यदि राज्ञीहारं मे ददासि तदा जीवामि, नान्यथेति। तां समुद्धीर्य रात्रौ हारं चोरयित्वा निर्गतो हारोद्योतेन यमपाशकोट्टपालेन धृतो राजवचनेन शूले प्रोतः। प्रभाते धनदत्तश्रेष्ठी चैत्यालये गच्छन् तेन भणितो दयालुस्त्वं तृषितस्य मे जलपानं देहि। तस्योपकारमिच्छता भणितं श्रेष्ठिना द्वादश-वर्षैरद्य मे गुरुणा महाविद्या दत्ता। जलमानयतः सा मे विस्मरति। यद्यागतस्य तां मे कथयसि तदा आनयामि जलम्। तेनोक्तमेवं करोमि। ततः श्रेष्ठी पञ्चनमस्कारांस्तस्य कथ-यित्वा गतः। दृढसूर्यस्तानुच्चारयन् मृत्वा च सौधर्मे देवो जातः। हेरिकै[3] राज्ञः कथितं देव, धनदत्तश्रेष्ठी चौरसमीपं गत्वा किंचिन्मन्त्रितवान्। श्रेष्ठिगृहे तस्य द्रव्यं तिष्ठतीति पर्यालोच्य राज्ञा श्रेष्ठिधरणकं गृहरक्षणं चाज्ञातम्। तेन देवेनागत्य प्रातिहार्यकरणार्थं श्रेष्ठि-

इसकी कथा— उज्जयिनी नगरीमें राजा धनपाल राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम धनमती था। किसी दिन वसन्तसेना वेश्याने वसन्तोत्सवके अवसरपर उस रानीके दिव्य हारको देखकर यह विचार किया कि इसके विना जीना व्यर्थ है। इस प्रकारसे दुखी होकर वह घर वापिस पहुँची और शय्याके ऊपर पड़ गई। रात्रिमें जब दृढ़सूर्य चोर उसके पास आया तब उसने उसे खिन्न देखकर पूछा कि हे प्रिये! तुम क्या मेरे ऊपर रुष्ट हो गई हो? तब उसने कहा कि मैं तुम्हारे ऊपर रुष्ट नहीं हुई हूँ। किन्तु मैं रानीके दिव्य हारको देखकर उसकी प्राप्तिके लिए व्याकुल हो उठी हूँ। यदि तुम उस हारको लाकर मुझे देते हो तो मैं जीवित रह सकती हूँ, अन्यथा नहीं। यह सुनकर दृढ़सूर्य उसे आश्वासन देकर उस हारको चुरानेके लिए गया। वह उस हारको चुराकर वापिस आ ही रहा था कि हारके प्रकाशमें उसे यमपाश कोतवालने देखकर पकड़ लिया। तत्पश्चात् वह राजाकी आज्ञानुसार शूलीपर चढ़ा दिया गया। वह मरनेवाला ही था कि उसे प्रभात समयमें वहाँसे चैत्यालयको जाते हुए धनदत्त सेठ दिखा। तब उसने धनदत्तसे कहा कि हे दयालु! मैं प्याससे अतिशय पीड़ित हूँ। कृपाकर मुझे जल दीजिए। उसकी उस मरणासन्न अवस्थाको देखकर सेठने उसके हितकी इच्छासे कहा कि मेरे गुरुने मुझे बारह वर्षोंमें आज ही एक महामंत्र दिया है। यदि मैं जल लेनेके लिए जाता हूँ तो उसे भूल जाऊँगा। हाँ, यदि तुम मेरे वापिस आने तक उसका उच्चारण करते रहो और तब मुझे कह दो तो मैं जल लेनेके लिए जाता हूँ। तब चोरने कहा कि मैं तब तक उसका उच्चारण करता रहूँगा। तत्पश्चात् सेठ उसे पंचनमस्कारमंत्रके पदोंको कहकर चला गया। इधर दृढ़सूर्य उक्त मंत्रके पदोंका उच्चारण करते हुए मरणको प्राप्त होकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। उस समय चोरके पास धनदत्त सेठको कुछ कहते हुए देखकर गुप्तचरोंने राजासे निवेदन किया कि हे देव! धनदत्त सेठ चोरके पास जाकर कुछ मन्त्रणा कर रहा था। यह समाचार पाकर राजाको सन्देह हुआ कि सेठके घरमें दृढ़सूर्यके द्वारा चुराया हुआ द्रव्य विद्यमान है। इसीलिए उसने राजपुरुषोंको सेठके पकड़ लाने और उसके घरपर पहरा देनेकी आज्ञा दी। तब उपर्युक्त देव

१. प ब 'राज्ञ्या' नास्ति। २. श दृढसूर्यपुरचौरेणा°। ३. श हैरिकै। ४. फ चाज्ञाते तेन देवं° श चाज्ञातं ने देवं°।

गृहद्वारे लकुटधरपुरुषरूपं धृत्वा तद्गृहे प्रविशन्तो राजपुरुषा निवारिताः। हठात्प्रविशन्तो लकुटेन मायया मारिताः। एवं वृत्तान्तमाकर्ण्य राज्ञा येऽन्ये बहवः प्रेषितास्तेऽपि तथा मारिताः। बहुबलेन कोपाद्राजा स्वयमागतः। तद्बलं समस्तं तथैव मारितम्। राजा नश्यं-स्तेन भणितो यदि श्रेष्ठिनः शरणं प्रविशसि तदा रक्षामि, नान्यथेति। ततः श्रेष्ठिन्[1], रक्ष रक्षेति ब्रुवाणो राजा वसतिकायां श्रेष्ठिसमीपं गतः। श्रेष्ठिना च[3] कस्त्वं किमर्थमेतत् कृतमिति पृष्टः। ततः श्रेष्ठिनः प्रणम्य तेन कथितं सोऽहं दृढसूर्यो भवत्प्रसादात्सौधर्मे महर्द्धिको देवो जातः। तव प्रातिहार्यार्थमेतत् कृतम्। एवं मरणे अन्यचेतसापि तदुच्चारणे चोरोऽपि देवोऽभूदन्यो विशुद्धितस्तदुच्चारणे स्वर्गादिभाजनं किं न स्यादिति ॥८॥

[१७]

किमद्भुतं यद्भवतीह मानवः पदैः समस्तैर्गुणसौख्यभाजनम्।
विवेकशून्यः सुभगाख्यगोपकः सुदर्शनोऽभूत्प्रथमाद्धि सत्पदात् ॥९॥

अस्य कथा। तथाहि— अत्रैव भरते अङ्गदेशे चम्पापुरे राजा धात्रीवाहनो देवी

आकर सेठके घरकी रक्षा करनेके लिए दण्डधारी पुरुष (पहरेदार) के वेषको धारण करके उसके घरके द्वारपर स्थित हो गया। उसने राजाके द्वारा भेजे गये उन राजपुरुषोंको सेठके घरके भीतर जानेसे रोक दिया। जब वे बलपूर्वक सेठके घरके भीतर जानेको उद्यत हुए तब उसने उन्हें मायासे दण्डके द्वारा आहत किया। इस वृत्तान्तको सुनकर राजाने जिन अन्य बहुत-से राजपुरुषोंको वहाँ भेजा उन्हें भी उसने उसी प्रकारसे मार डाला। तब क्रुद्ध होकर राजा स्वयं ही वहाँ बहुत-सी सेना लेकर आ पहुँचा। तब देवने उसकी उस समस्त सेनाको भी उसी प्रकारसे मार गिराया। जब राजा भागने लगा तब देवने उससे कहा कि यदि तुम सेठकी शरणमें जाते हो तो तुम्हें छोड़ सकता हूँ, अन्यथा नहीं। तब राजा जिनमन्दिरमें सेठके पास गया और बोला कि हे सेठ ! मेरी रक्षा कीजिए। तब सेठने उस वेषधारी देवसे पूछा कि तुम कौन हो और यह उपद्रव तुमने किस लिए किया है ? इसपर सेठको प्रणाम करके देवने कहा कि मैं वही दृढ़सूर्य चोर हूँ जिसे कि आपने मरते समय पंचनमस्कारमंत्र दिया था। मैं आपके प्रसादसे सौधर्म स्वर्गमें महा ऋद्धिका धारक देव हुआ हूँ। मैंने यह सब आपकी रक्षाके निमित्त किया है। इस प्रकार वह चोर भी जब अन्यमनस्क हो करके भी उस मन्त्रोच्चारणके प्रभावसे स्वर्गसुखका भोक्ता हुआ है तब अन्य जन विशुद्धिपूर्वक उसका उच्चारण करनेसे क्यों न स्वर्गादिके सुखको प्राप्त करेंगे ? अवश्य प्राप्त करेंगे ॥८॥

यदि मनुष्य यहाँ पंचनमस्कारमंत्र सम्बन्धी समस्त पदोंके उच्चारणसे गुण एवं सुखका भाजन होता है तो इसमें क्या आश्चर्य है ? देखो, जो शुभग नामका ग्वाला विवेकसे रहित था वह भी उक्त मंत्रके केवल एक प्रथम पद (णमो अरिहंताणं) के ही उच्चारणसे सुदर्शन सेठ हुआ है ॥९॥

उसकी कथा इस प्रकार है— इसी भरत क्षेत्रके भीतर अंग देशके अन्तर्गत एक चम्पापुर नगर है। वहाँ धात्रीवाहन नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम अभयमती था। इसी

---

१. फ नश्यंस्तेन। २. ब–प्रतिपाठोऽयम्। प फ श श्रेष्ठि। ३. ब 'च' नास्ति।

अभयमती श्रेष्ठी वृषभदासो भार्या जिनमती तद्गोपालः सुभगनामा[1]। स चैकदा वनाद् गृहमागच्छन्नरण्ये चतुःपथेऽस्तमनसमये शीतकाले ध्यानेन स्थितं कंचनजिनमुनिमद्राक्षीत्, चिन्तयति स्मानेन शीतेनायं रात्रौ कथं जीविष्यति इति गृहं गत्वा काष्ठानि कृशानुं चादाय तत्समीपं जगाम। तत्राग्निसंधुक्षणेन तच्छीतबाधां निराकुर्वन् रात्रौ तत्रैवोषितः। सूर्योदये स मुनिर्हस्तावुद्धृत्य तं चात्यासन्नभव्यमुद्वीक्ष्य[2] तस्मै उपदेशमदत्त[3]। कथम्। गमनादिक्रियासु प्रथमतस्त्वया 'णमो अरहंताणं' भणितव्यमिति। स्वयं 'णमो अरहंताणं' इति भणित्वा गगनेनागात्। तथा तद्गमनदर्शनात्तन्मन्त्रे तस्य महती श्रद्धा बभूव तथैव भोजनादिक्रियासु प्रवर्तते च। तमेकदा श्रेष्ठी पप्रच्छ— त्वं किमिति सर्वत्र 'णमो अरहंताणं' इति भणसीति। स तस्य स्वरूपमचीकथत्। तदा श्रेष्ठी तं प्रशंसितवान् सुग्रासादिकं च दापयामास।

एकदाटव्यां तस्य कश्चिदकथयत्ते महिष्यो गङ्गापरतीरं[4] गता इति। तन्निवर्तनार्थं यदा तत्र झम्पामादत्तं[5] तदा तत्रस्थतीक्ष्णकाष्ठेनोदरे विद्धः। तत्र 'णमो अरहंताणं' भणन् निदानं चकार, एतन्मन्त्रमाहात्म्येन श्रेष्ठिपुत्रो भविष्यामीति मृत्वा जिनमतीगर्भेऽस्थात्। तदा स्वप्ने सुदर्शनमेरुं कल्पतरुं सुरगृहं सागरं वह्निं चापश्यत्। भर्तुः कथिते सोऽवोचत् यावो

पुरमें एक वृषभदास नामका सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम जिनमती था। सेठके यहाँ एक सुभग नामका ग्वाला था। एक दिन वह ग्वाला वनसे घरके लिए वापिस आ रहा था। वहाँ उसे वनमें चौराहेपर एक दिगम्बर मुनि दिखायी दिये। उस समय सूर्य अस्त हो चुका था और समय शीतका था। ऐसे समयमें भी वे मुनि ध्यानमें स्थित थे। उन्हें देखकर उस ग्वालेने विचार किया कि ये ऐसे शीतकालमें रात्रिके समय कैसे जीवित रह सकेंगे ? यही विचार करता हुआ वह घर गया और वहाँसे लकड़ियों व आगको लेकर मुनिराजके पास फिरसे आया। उसने अग्निको जलाकर उनकी शीतबाधाको दूर किया और स्वयं रात्रिमें उन्हींके पास रहा। प्रातःकाल होनेपर जब सूर्यका उदय हुआ तब उन मुनि महाराजने अपने दोनों हाथोंको उठाकर उस आसन्न भव्यकी ओर दृष्टिपात किया। उन्होंने उसे निकटभव्य जानकर यह उपदेश दिया कि तुम गमनादि कार्योंमें प्रथमतः 'णमो अरहंताणं' इस मंत्रको बोला करो। तत्पश्चात् वे स्वयं भी 'णमो अरहंताणं' कहते हुए आकाशमार्गसे चले गये। इस प्रकारसे मुनिको जाते हुए देखकर उस ग्वालेकी उक्त मंत्रवाक्यके ऊपर दृढ़ श्रद्धा हो गई। तबसे वह भोजनादि समस्त कार्योंमें उक्त मंत्रवाक्यके उच्चारणपूर्वक ही प्रवृत्त होने लगा। उसकी ऐसी प्रवृत्तिको देखकर एक दिन सेठने पूछा कि तू समस्त कार्योंके प्रारम्भमें 'णमो अरहंताणं' क्यों कहता है ? तब उसने सेठसे उस पूर्व वृत्तान्तको कह दिया। तब सेठने उसकी बहुत प्रशंसा की। वह उसके लिए उत्तम ग्रास आदि (भोजनादि) देने लगा।

एक दिन वनमें किसीने उस ग्वालेसे कहा कि तेरी भैंसे गंगाके उस पार चली गई हैं। यह सुनकर वह भैंसोंको वापिस ले आनेके विचारसे गंगामें कूद पड़ा। वहाँ उसका पेट एक पैनी लकड़ीसे विध गया। वहाँ उसने 'णमो अरहंताणं' मंत्रका उच्चारण करते हुए यह निदान किया कि मैं इस मंत्रके प्रभावसे सेठका पुत्र हो जाऊँ। तदनुसार वह मरकर जिनमतीके गर्भमें स्थित हुआ। उस समय जिनमतीने स्वप्नमें सुदर्शनमेरु, कल्पवृक्ष, देवभवन, समुद्र और अग्निको

१. श शुभगनामा। २. ब °मुदीक्ष। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। प फ श तस्मादुपदेश°। ४. प श पार। ५. फ ब झम्पामदत्त श सम्पामादत्त।

वसतिकां तत्र मुनिं पृच्छाव इति। ततस्तत्र गत्वा जिनं पूजयित्वा संतुष्टुवतुर्मुनिं सुगुप्तं ववन्दाते। तदनु श्रेष्ठी तमपृच्छत् स्वप्नफलम्। सोऽकथयत् गिरिदर्शनेन धीरोऽमरद्रुमावलोकाल्लक्ष्मीनिवासस्त्यागी च सुरगृहदर्शनात्सुरवन्द्यः सागरावलोकाद् गुणरत्नाधारो[1] वह्निविलोकनाद्दग्ध[2]कर्मेन्धनश्च पुत्रोऽस्या भविष्यतीति श्रुत्वा संतुष्टौ स्वगृहे सुखेन तस्थतुस्ततः पुष्यशुक्लचतुर्थ्यां पुत्रो जज्ञे। सुदर्शनाभिधानेन पुरोहितपुत्रकपिलेन सह वर्धितुं लग्नः।

तदा तत्रापरो वैश्यः सागरदत्तो वनिता सागरसेना। स वृषभदासं प्रति बभाण[3] यदि मम पुत्री स्यात् सुदर्शनाय दास्यामीति। ततस्तयोर्मनोरमानाम्नी तनुजा आसीदिति। रूपवती सापि वर्धमानाऽस्थात्। एकदा शास्त्रास्त्रविद्याप्रगल्भो युवा च सुदर्शनो मित्रादियुक्तः स्वरूपातिशयेन जनान् मोहयन् राजमार्गे क्वापि गच्छन् सुशृङ्गारां सखीजनादिवृतां मनोरमां जिनगृहं गच्छन्तीमद्राक्षीत्। आसक्तो बभूव, व्याघृत्य स्वगृहं जगाम, शय्यायां पतित्वास्थात्। तदवस्थां विलोक्य पितरावपृच्छतां किमिति तवेयमवस्थेति। यदा स न कथयति तदा कपिलभट्टं पृष्टवन्तौ। तेन मनोरमादर्शनकारणमिति कथिते तद्याचनार्थं सागरदत्तगृहे गमनोद्यतोऽभूद् वृषभदासो यावत्सुदर्शनाद्विरहाग्निदग्धगात्रा मनोरमापि व्याघृत्य स्वगृहं गत्वा

देखा। जब उसने पतिसे इन स्वप्नोंके विषयमें कहा तब सेठने कहा कि चलो जिनमन्दिर चलकर उनका फल मुनिराजसे पूछें। तब वे दोनों जिनमन्दिर गये। वहाँ उन्होंने जिन भगवान्की पूजा और स्तुति करके सुगुप्त मुनिकी वन्दना की। तत्पश्चात् सेठने मुनिराजसे उक्त स्वप्नोंका फल पूछा। उत्तरमें मुनिराजने कहा कि मेरुके देखनेसे धीर, कल्पवृक्षके देखनेसे सम्पत्तिशाली होकर दानी, देवभवनके दर्शनसे देवोंके द्वारा वंदनीय, समुद्रके दर्शनसे गुणरूप रत्नोंकी खानि, तथा अग्निके देखनेसे कर्मरूप इन्धनको जलानेवाला; ऐसा इस जिनमतीके पुत्र होगा। यह सुनकर वे दोनों सन्तुष्ट होकर अपने घर आये और सुखपूर्वक स्थित हुए। तत्पश्चात् पौष शुक्ला चतुर्थीके दिन जिनमतीके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। वह पुरोहितपुत्र कपिलके साथ उत्तरोत्तर वृद्धिगत होने लगा।

उपर्युक्त नगरमें एक सागरदत्त नामका दूसरा वैश्य रहता था। उसकी पत्नीका नाम सागरसेना था। उसने वृषभदास सेठसे कहा कि यदि मेरे पुत्री होगी तो मैं उसे सुदर्शनके लिए प्रदान करूँगा। तत्पश्चात् सागरदत्त और सागरसेनाके एक मनोरमा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। वह सुन्दर कन्या भी उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होने लगी। एक दिन शास्त्र व शस्त्र विद्यामें विशारद युवक सुदर्शन अपनी अत्यधिक सुन्दरतासे लोगोंके मनको मोहित करता हुआ मित्रादिकोंके साथ राजमार्गसे कहीं जा रहा था। उस समय मनोरमा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर सखीजनों आदिके साथ जिनमन्दिरको जा रही थी। उसे देखकर सुदर्शन आसक्त हो गया। तब वह लौटकर घर वापिस चला गया और शय्याके ऊपर पड़ गया। उसकी इस अवस्थाको देखकर माता पिताने इसका कारण पूछा। परन्तु उसने उसका कुछ उत्तर नहीं दिया। तब उन्होंने कपिल भट्टसे पूछा। उसने इसका कारण मनोरमाका देखना बतलाया। यह सुनकर वृषभदास सेठ मनोरमाको मांगनेके लिए सागरदत्त सेठके घर जानेको उद्यत हो गया। इतनेमें सागरदत्त सेठ स्वयं ही वृषभदासके घर आ पहुँचा। उसके आनेका कारण यह था कि जबसे मनोरमाने भी सुदर्शनको देखा था तभीसे उसका

१. प फ रत्नधरो। २. प श विलोकाद्दग्ध। ३. श दासं प्रबभाण।

शय्यायां पपात। तदवस्थाहेतुं विबुध्य तावत्सागरदत्त एव तद्गृहमायात्। सुदर्शनपिता-पृच्छत् किमिति तवात्रागमनमिति। सोऽवादीत् मम पुत्र्या तव पुत्रस्य विवाहं कुर्विति वक्तुमागत इति। ततो वृषभदासो मदिष्टमेव चेष्टितं त्वयेति भणित्वा श्रीधरनामानं ज्योतिर्विदमप्राक्षीत् विवाहदिनम्। ततस्तेन निरूपितम्। वैशाखशुक्लपञ्चम्यां विवाहोऽभूत्तयोरन्योन्यासक्तभावेन सुखमन्वभूतां[1] सुकान्तनामानं तनुजं चालभेताम्। एकदा नानादेशान् विहरन् समाधिगुप्तनामा परमयतिः संघेन सार्धमागत्य तत्पुरोद्यानेऽस्थात्। ऋषिनिवेदकाद्विबुध्य राजादयो वन्दितुमीयुर्वन्दित्वा धर्ममाकर्ण्य श्रेष्ठी सुदर्शनं राज्ञः समर्प्य दिदीक्षे[2], जिनमत्यपि। आयुरन्ते समाधिना दिवं ययतुः। इतः सुदर्शनः सुकान्तं विद्याः सुशिक्षयन् सर्वजनप्रियो भूत्वा सुखेनास्थात्।

तद्रूपातिशयं निशम्य कपिलभट्टवनिता कपिलासक्तचित्ता वर्तते। एकदा कपिले क्वापि याते सुदर्शनस्तद्गृहनिकटमार्गेण क्वापि गच्छन् कपिलया दृष्टो विज्ञातश्च। तदनु सखीं बभाण अमुं केनचिदुपायेनानयेति। तदनु सा तदन्तिकं जगाम अवदच्च— हे सुभग, त्वन्मित्रस्य महदनिष्टं वर्तते, त्वं तद्वार्तामपि न पृच्छसीति। सोऽभणदहं न जानाम्यन्यथा किं

शरीर सुदर्शनके वियोगसे सन्तप्त हो रहा था। वह भी घर वापिस जाकर शय्यापर लेट गई थी। उसकी इस दुरवस्थाके कारणको जान करके ही सागरदत्त वहाँ पहुँचा था। उसे अपने घर आया हुआ देखकर सुदर्शनके पिताने पूछा कि आपका शुभागमन कैसे हुआ? उत्तरमें उसने कहा कि आप मेरी पुत्रीके साथ अपने पुत्रका विवाह कर दें, यह निवेदन करनेके लिए मैं आपके यहाँ आया हूँ। यह सुनकर वृषभदासने उससे कहा कि यह कार्य तो आपने मेरे अनुकूल ही किया है। तत्पश्चात् उसने श्रीधर नामक ज्योतिषीसे विवाहके मुहूर्तको पूछा। उसने विवाहका मुहूर्त बतला दिया। तदनुसार वैशाख शुक्ला पंचमीके दिन उन दोनोंका विवाह सम्पन्न हो गया। वे दोनों परस्परमें अनुरक्त होकर सुखका अनुभव करने लगे। कुछ समयके पश्चात् उन्हें सुकान्त नामक पुत्रकी भी प्राप्ति हुई। एक दिन अनेक देशोंमें विहार करते हुए समाधिगुप्त नामक महर्षि संघके साथ आकर चम्पापुरके बाहर उद्यानमें स्थित हुए। ऋषिनिवेदकसे इस शुभ समाचारको ज्ञात करके राजा आदि उनकी वंदना करनेके लिए गये। उन सबने मुनिराजकी वंदना करके उनसे धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् वृषभदास सेठने विरक्त होकर अपने पुत्र सुदर्शनको राजाके लिए समर्पित किया और स्वयं दिनदीक्षा ग्रहण कर ली। जिनमतीने भी पतिके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वे दोनों आयुके अन्तमें समाधिके साथ मरकर स्वर्गको प्राप्त हुए। इधर सुदर्शनने सुकान्तको अनेक विद्याओंमें सुशिक्षित किया। वह अपने सद्व्यवहारसे समस्त जनताका प्रिय बन गया था। इस प्रकारसे उसका समय सुखपूर्वक बीत रहा था।

इधर कपिल ब्राह्मणकी पत्नी कपिलाका चित्त सुदर्शनके अनुपम रूप-लावण्यको सुनकर उसके विषयमें आसक्त हो गया था। एक समय कपिल कहीं बाहर गया था। उस समय सुदर्शन उसके घरके पाससे कहीं जा रहा था। कपिलाने उसे देखकर जब यह ज्ञात किया कि यह सुदर्शन है तब उसने अपनी सखीसे कहा कि किसी भी उपायसे उसे यहाँ ले आओ। तदनुसार वह सुदर्शनके पास जाकर बोली कि हे सुभग! आपके मित्रका महान् अनिष्ट हो रहा है और आप उसकी बात भी नहीं पूछते हैं। तब सुदर्शनने कहा कि मुझे

१. प सुखमन्वसुतं श सुखमभूतां। २. श दिदिक्षे।

तमवलोकयितुं नागच्छामीति। ततस्तद्गृहं जगाम, मन्मित्रं क तिष्ठतीति चाप्राक्षीत्। साकथयदुपरिभूमौ तिष्ठति। त्वमेवैकाकी गच्छ तदन्तिकमिति। ततो मित्रादिकं तलभूमावेव व्यवस्थाप्य स्वयमेकाकी तत्र जगाम। तत्र सा पल्यङ्कस्योपरि हंसतूले सुप्ता स्थिता। तद्वृत्त-मजानन् सुदर्शनस्तत्तूलिकातले उपविश्योक्तवान् 'हे मित्र, तव किमनिष्टं प्रवर्तते' इति। सा तद्धस्तं[1] धृत्वा स्वकुचयोर्व्यवस्थाप्य बभाण मां तव संगाप्राप्त्या म्रियमाणां दयालुस्त्वं रक्षेति। स जजल्प षण्डकोऽहं बही[2] रम्य इति[3] निशम्य सा तं विरज्य मुमोच। ततः स्वगृहे सुखेनातिष्ठत्।

एकदा वसन्तोत्सवे राजादय उद्यानं जग्मुरभयमती सकलान्तःपुरपरिवृता स्वसखी-कपिलया पुष्पकमारुह्य गच्छन्ती रथारूढां सुकान्तं पुत्रं स्वोत्सङ्गे उपवेश्य गच्छन्तीं[4] मनोरमां लुलोके अवदच्च कस्येयं सुपुत्री[5] कृतार्थेति। कयाचिदुक्तं सुदर्शनस्य प्रिया मनोरमा सुकान्त-पुत्रमातेति। श्रुत्वाभयमत्याऽवादि धन्येयमीदृग्विधपुत्रमातेति। कपिलयोच्यते केनचिन्मम निरूपितं सुदर्शनो नपुंसक इति तस्य कथं पुत्रोऽभवदिति। देव्युवाचैवंविधः पुण्याधिकः स किं षण्डो भवति। दुष्टेन केनचित्तन्निरूपितमिति। पुनस्तया यथार्थनिरूपिते देव्योक्तं

यह ज्ञात नहीं है, अन्यथा मैं उसे देखनेके लिए अवश्य आता। तत्पश्चात् वह उसके घर गया। वहाँ पहुँचकर उसने पूछा कि मेरा मित्र कहाँ है ? सखीने कहा कि वह ऊपर है। आप अकेले ही उसके पास चले जाइए। तब वह मित्रादिकोंको नीचे ही बैठाकर स्वयं अकेला ऊपर गया। वहाँ कपिला पलंगके ऊपर श्रेष्ठ गादीपर पड़ी हुई थी। उसकी कुटिलताका ज्ञान सुदर्शनको नहीं था। इसीलिए उसने उस गादीके ऊपर बैठते हुए पूछा कि हे मित्र! तुम्हारा क्या अनिष्ट हो रहा है ? तब कपिलाने उसके हाथको खींचकर अपने स्तनोंके ऊपर रखते हुए कहा कि मैं तुम्हारे संयोगके बिना मर रही हूँ। तुम दयालु हो, अतः मुझे बचाओ। यह सुनकर सुदर्शनने उससे कहा कि मैं केवल बाहर देखनेमें ही सुन्दर दिखता हूँ, परन्तु पुरुषार्थसे रहित (नपुंसक) हूँ। अतएव तुम्हारे साथ रमण करनेके योग्य नहीं हूँ। यह सुनकर सुदर्शनकी ओरसे विरक्त होते हुए उसने उसे छोड़ दिया। तब वह अपने घर आकर सुखपूर्वक स्थित हो गया।

एक बार वसन्तोत्सवके समय राजा आदि नगरके बाहर उद्यानमें गये। साथमें रानी अभयमती भी समस्त अन्तःपुरसे वेष्टित होकर अपनी सखी कपिलाके साथ पालकीमें (अथवा रथमें) बैठकर गई। जब वह जा रही थी तब उसे मार्गमें अपने सुकान्त पुत्रको गोदमें लेकर रथसे जाती हुई मनोरमा दिखी। उसने पूछा कि यह सुन्दर पुत्रवाली किसकी सुपुत्री है ? इसका जीवन सफल है। तब किसी स्त्रीने कहा कि यह सुदर्शन सेठकी वल्लभा मनोरमा है और वह उसका पुत्र सुकान्त है। यह सुनकर अभयमती बोली कि यह धन्य है जो ऐसे उत्तम पुत्रकी माता है। तब कपिला बोली कि 'मुझसे तो किसीने कहा है कि सुदर्शन नपुंसक है, उसके पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ है ? उत्तरमें अभयमतीने कहा कि इस प्रकारका पुण्यशाली पुरुष कैसे नपुंसक हो सकता है ? किसीने दुष्ट अभिप्रायसे वैसा कहा होगा। तब उसने उससे अपना पूर्वका यथार्थ वृत्तान्त कह दिया। यह सुनकर अभयमतीने कहा कि तुम्हें उसने धोखा दिया है। इसपर

१. ब–प्रतिपाठोऽयम्। प फ श तद्धस्तं। २. फ श न हि। ३. ब पंडकोह् बही रम्यैति। ४. फ ब श गच्छती। ५. ब सपुत्रा।

वञ्चितासि तेन त्वम्। तयोक्तं वञ्चिता अहं ब्राह्मण्यविदग्धा,[1] त्वं सर्वोत्कृष्टा। त्वत्सौभाग्यं तदनुभवने सफलं नान्यथा। देव्योच्यते 'अनुभूयते एवान्यथा म्रियत' इति प्रतिज्ञायोद्यानं जगाम। तत्र जलक्रीडानन्तरं स्वभवनमागत्य शय्यायां पपात। तद्धात्र्या पण्डितयाभाषि पुत्रि, किमिति सचिन्तासि। तया कथिते स्वरूपे पण्डितयोक्तं विरूपकं चिन्तितं त्वया। किमित्युक्ते स एकपत्नीव्रतोऽन्यनारीवार्तामपि न करोति। किं च, तव भवनं संवेष्ट्य सप्तप्राकारास्तिष्ठन्तीति तदानयनमपि दुर्घटं तथोचितमपि न भवतीति। देव्या भण्यते यदि तत्संगो न स्यात्तर्हि मरणं किं न[2] स्यादिति तदाग्रहं विबुध्य पण्डिता तां समुद्धीर्य कुम्भकारगृहं ययौ। पुरुषप्रमाणानि सप्तपुरुषप्रतिबिम्बानि कारयति स्म। प्रतिपद्रात्रावेकं[3] तत् स्वस्कन्धमारोप्य राज्ञीभवनं प्रविशन्ती द्वारपालकेन निषिद्धा। ततोऽभाणि तया ममापि किं राज्ञीगृहप्रवेशनिषेधो[4]ऽस्ति। तैरवादीयत्यां वेलायाम् अस्ति। हठात्प्रविशन्ती निर्लोठिता। तदा सा तदपीपतदवदच्चाद्य राज्ञी उपोषितास्य मृण्मयकामस्य पूजां विधाय जागरं करिष्यत्ययं च त्वया भग्न इति प्रातः सकुटुम्बस्य नाशं करिष्यामीति। ततः स भीतः सन् तत्पादयोर्लग्नोऽभणदद्य प्रभृति ते चिन्तां न करिष्यामि क्षमां कुर्विति। ततः स्वगृहं गता। दिनक्रमेणाने-

---

कपिलाने कहा कि मैं मूर्ख ब्राह्मणी ठगायी गयी हूँ और तुम सर्वोत्कृष्ट हो, तुम्हारे सौभाग्यको मैं तभी सफल समझूँगी जब कि तुम उसके साथ भोग भोग सको, अन्यथा मैं उसे विफल ही समझूँगी। तब अभयमतीने कहा कि मैं यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि या तो सुदर्शनके साथ विषय-सुखका अनुभव ही करूँगी, अन्यथा प्राण दे दूँगी। यह प्रतिज्ञा करके वह उद्यानमें पहुँची और वहाँ जल-क्रीड़ा करनेके पश्चात् महलमें आकर शय्याके ऊपर पड़ गई। तब उसकी पण्डिता धायने पूछा कि हे पुत्री! तू सचिन्त क्यों है? इसपर उसने अपनी उस प्रतिज्ञाका समाचार पण्डितासे कह दिया। उसे सुनकर पण्डिताने कहा कि तूने अयोग्य विचार किया है। कारण यह कि सुदर्शन सेठ एकपत्नीव्रतका पालक है, वह अन्य स्त्रीकी बात भी नहीं करता है। दूसरी बात यह कि तेरे भवनको वेष्टित करके सात कोट स्थित हैं, अतएव उसका यहाँ लाना भी दुःसाध्य है। इसके अतिरिक्त वैसा करना उचित भी नहीं है। यह सुनकर अभयमतीने कहा कि यदि सुदर्शन सेठका संयोग नहीं हो सकता है तो मेरा मरण अनिवार्य है। जब पण्डिताने उसके इस प्रकारके आग्रहको देखा तब वह उसे आश्वासन देकर कुम्हारके घर गई। वहाँ उसने कुम्हारसे पुरुषके बराबर पुरुषकी सात मूर्तियाँ बनवायीं। तत्पश्चात् वह प्रतिपदाकी रातको उनमेंसे एक मूर्तिको अपने कंधेपर रखकर अभयमतीके भवनमें जा रही थी। उसे द्वारपालने भीतर जानेसे रोक दिया। तब पण्डिताने उससे पूछा कि क्या मेरे लिए भी रानीके महलमें जाना निषिद्ध है? तब उसने कहा कि हाँ, इतनी रात्रिमें तेरा भी वहाँ जाना निषिद्ध है। इतनेपर भी जब वह न रुकी और हठपूर्वक भीतर प्रविष्ट होने लगी तब उसने उसे बलपूर्वक रोकनेका प्रयत्न किया। इसपर वह वहाँ गिर गई और बोली कि आज रानीका उपवास था, उसे इस मिट्टीके कामदेवकी पूजा करके रात्रिजागरण करना था। इसे तूने फोड़ डाला है। अब प्रातःकालमें तुझे कुटुम्बके साथ नष्ट कराऊँगी। यह सुनकर वह भयभीत होता हुआ उसके पैरोंपर गिर गया और बोला कि मुझे क्षमा कर, आजसे मैं तेरी चिन्ता नहीं करूँगा— तुझे महलके भीतर जानेसे न रोकूँगा। तब वह घर चली गई। दिनानुसार (दूसरे, तीसरे आदि दिन) उसने इसी

---

१. क ब्राह्मण्यवदग्धा श ब्राह्मणविदग्धा। २. ब तर्हि किं मरणं न। ३. ब प्रतिपदिनरात्रावेकं। ४. क श निषिद्धो।

नैव विधिनान्यानपि द्वारपालान् वशीचकार। सुदर्शनोऽष्टम्यां कृतोपवासोऽस्तमनसमये श्मशाने रात्रौ[1] प्रतिमायोगेनास्थात्। रात्रौ तत्र पण्डिता जगामावादीच्च धन्योऽसि त्वं यदभयमती तवानुरक्ता बभूवागच्छ तया दिव्यभोगान् भुङ्क्ष्वेत्यादिनानावचनैश्चित्तविक्षेपेऽप्यक्षोभो यदा तदा तमुत्थाप्य स्वस्कन्धमारोप्यानीय तच्छय्यागृहे चिक्षेप। अभयमती बहुप्रकारस्त्रीविकारैस्तच्चित्तं चालयितुं न शक्ता, उद्विज्य पण्डितां प्रत्यवददमुं तत्रैव निक्षिपेति। सा बहिः प्रभातावसरं निरीक्ष्य बभाण—प्रत्यूषं जातं नेतुं नायाति, किं क्रियते। ततः शय्यागृह एव कायोत्सर्गेण तं व्यवस्थाप्याभयमती स्वदेहे नखक्षतान् कृत्वा पूत्कारं व्यधात् मे शीलवत्याः शरीरमनेन विध्वंसितमिति। ततः केनचिद्राज्ञः कथितं सुदर्शन एवं कृतवानिति। तेन भृत्यानामादेशो दत्तस्तं पितृवने मारयेति। ततस्ते केशग्रहेणाकृष्य तं तत्र निम्युरुपवेश्य शिरोहननाय येनासिना कृतो घातः स तत्कण्ठे[2] हारो बभूव। अन्यान्यपि मुक्तप्रहरणानि व्रतप्रभावेन पुष्पादिरूपैः परिणामितानि। ततः कश्चित् यक्षः आसनकम्पात् तदुपसर्गमवबुध्यागत्य भृत्यान् कीलितवान्। तदाकर्ण्य सुदर्शनेनैव मन्त्रेण कीलिता इति मत्वा रुष्टेन राज्ञान्येऽपि प्रेषिताः। तेऽपि तेन कीलिताः। ततोऽतिबहुबलेन राजा स्वयं

तरीकेसे अन्य द्वारपालोंको भी अपने वशमें कर लिया। इधर सुदर्शन सेठ अष्टमीका उपवास करके सूर्यास्त हो जानेपर रात्रिके समय स्मशानमें प्रतिमायोगसे स्थित (समाधिस्थ) था। उस समय रातमें पण्डिता वहाँ गई और उससे बोली कि तुम धन्य हो जो अभयमती तुम्हारे ऊपर अनुरक्त हुई है, तुम चलकर उसके साथ दिव्य भोगोंका अनुभव करो। इस प्रकारसे पण्डिताने अनेक मधुर वचनोंके द्वारा उसे आकृष्ट किया, परन्तु वह जब निश्चल ही रहा तब उसने उसे उठाकर अपने कन्धेपर रख लिया और फिर महलमें लाकर अभयमतीके शयनागारमें छोड़ दिया। तब अभयमतीने उसके समक्ष अनेक प्रकारकी स्त्रीसुलभ कामोद्दीपक चेष्टाएँ कीं, परन्तु वह उसके चित्तको विचलित करनेमें समर्थ नहीं हुई। अन्तमें उद्विग्न होकर उसने पण्डितासे कहा कि इसे ले जाकर वहींपर छोड़ आओ। पण्डिताने जो बाहर दृष्टिपात किया तो प्रातःकाल हो चुका था। तब उसने कहा कि इस समय सबेरा हो चुका है, अब उसे ले जाना सम्भव नहीं है, क्या किया जाय ? यह देखकर अभयमती किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। अन्तमें उसने उसे शयनागारमें ही कायोत्सर्गसे रखकर अपने शरीरको नखोंसे नोंच डाला। फिर वह चिल्लाने लगी कि इसने मुझ शीलवतीके शरीरको क्षत-विक्षत कर डाला है। तब किसीने जाकर राजासे कह दिया कि सुदर्शनने ऐसा अकार्य किया है। तब राजाने सेवकोंको आज्ञा दी कि इसे स्मशानमें ले जाकर मार डालो। तदनुसार वे उसके बालोंको खींचकर उसे स्मशानमें ले गये। फिर वहाँ बैठा करके उन्होंने उसके शिरको काटनेके लिए जिस तलवारका वार किया वह उसके गलेमें जाकर हार बन गई। इस प्रकारसे और भी जितने प्रहार किये गये वे सब ही उसके व्रतके प्रभावसे पुष्पादिकोंके स्वरूपसे परिणत होते गये। तब कोई यक्ष अपने आसनके कम्पित होनेसे उसके उपसर्गको ज्ञात करके वहाँ आ पहुँचा। उसने उन राजपुरुषोंको कीलित कर दिया। यह समाचार सुनकर राजाने समझा कि सुदर्शनने ही उन्हें मंत्रके द्वारा कीलित कर दिया है। इससे उसे बहुत क्रोध आया। तब उसने दूसरे कितने ही सेवकोंको भेजा। किन्तु उन्हें भी उसने कीलित कर दिया। तत्पश्चात् राजा स्वयं ही बहुत-सी सेनाके साथ निकल पड़ा। उधर मायावी यक्ष भी चतुरंग

१. ब रात्रि०। २. ब सोऽसिस्तत्कण्ठे।

निर्गत इतरोऽपि मायया चातुरङ्गं बलं विधाय व्यूह-प्रतिव्यूहक्रमेण रणरङ्गेऽस्थात्। तदनु उभयोः सेनयोर्जगच्चमत्कारकारी संग्रामोऽजनि। बृहद्वेलायामुभयबलमप्यावर्तते स्म। तदोभयोर्मुख्ययोर्हस्तिनावन्योन्यं संमुखीभूतौ। तत्र देवोऽवोचदहं देवोऽतिप्रचण्डो मद्धस्ते मा म्रियस्व, सुदर्शनस्य चिन्तां[1] विहाय सुखेन राज्यं कुर्विति। भूपेनोच्यते त्वं देवश्चेत्किं जातम्, देवाः किं पार्थिवानां किंकरा न स्युः। कुरु युद्धं, दर्शयामि ते मद्भुजप्रतापमिति। तत उभयोर्महद्रणे राजा विपक्षस्य हस्तिनं बाणैरापूर्यापीपतत्[2]। ततोऽन्यं द्विपं चटित्वा तत्प्रताप-मालोकयानन्देन यक्षो युद्धवान्। तद्वारणं च पातयति स्मान्यवारणमारुह्य राजा युयुधे। यक्षस्तस्य छत्रध्वजौ चिच्छेद वारणं च जघान। राजा रथमारुह्य युद्धवानितरोऽपि। उभावपि विद्याबाणयुद्धेन जगत्त्रयाश्चर्यमुत्पादयांचक्रतुः। बृहद्वेलायां राजा यक्षरथं बभञ्ज। तदनु भूमावस्थास्तं भूपो जघान। तदा तौ द्वौ जातौ। एवं द्विगुण-द्विगुणक्रमेण सर्वा रणभूमि-र्व्याप्ता तेन। तदा राजा भयभीतो नष्टुं लग्नोऽन्यस्तु पृष्ठतो लग्नोऽवदद्यदि श्रेष्ठिनं शरणं प्रविशसि तदा जीवसि, नान्यथेति। ततः स तं शरणं प्रविष्टः 'श्रेष्ठिन्, रक्ष रक्ष' इति। तदा श्रेष्ठी हस्तावुद्धृत्य यक्षं निवार्य कस्त्वमिति पृष्टवान्। यक्षः श्रेष्ठिनं प्रणम्य स्वरूपं निरूपित-वान्, राज्ञोऽभयमतीवृत्तान्तं प्रतिपाद्य[3] बलं पुनर्जीवयित्वा श्रेष्ठिनं पूजयित्वा तदग्रे पुष्प-

सेनाको निर्मित करके व्यूह और प्रतिव्यूहके क्रमसे रणभूमिमें आ डटा। फिर क्या था? दोनों ही सेनाओंमें आश्चर्यजनक घोर युद्ध होने लगा। इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर भी जब दोनों सेनाओंका चक्र पूर्ववत् ही चलता रहा— दोनोंकी स्थिति समान ही बनी रही— तब उन दोनों प्रमुखोंके हाथी एक-दूसरेके अभिमुख स्थित हुए। उनमेंसे यक्षने राजासे कहा कि मैं अति-शय क्रोधी देव हूँ, मेरे हाथसे तू व्यर्थ प्राण न दे, सुदर्शनकी चिन्ताको छोड़कर तू सुखपूर्वक राज्य कर—उसे दण्ड देनेका विचार छोड़ दे। यह सुनकर राजा बोला कि यदि तू देव है तो इससे क्या हो गया, क्या देव राजाओंके दास नहीं होते हैं? तू मेरे साथ युद्ध कर, मैं तुझे अपने बाहुबलको दिखलाता हूँ। तब उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। उसमें राजाने शत्रुके हाथीको बाणोंकी वर्षासे परिपूर्ण करके गिरा दिया। तब यक्ष दूसरे हाथीपर चढ़ा और उसके प्रतापको देखकर आनन्दपूर्वक युद्ध करने लगा। उसने भी राजाके हाथीको गिरा दिया। तब राजा दूसरे हाथीके ऊपर चढ़कर युद्ध करने लगा। तब यक्षने उसके छत्र और ध्वजाको नष्ट करके हाथीको भी मार गिराया। तब राजाने रथपर चढ़कर युद्ध प्रारम्भ किया। यह देखकर शत्रुने भी उसी प्रकारसे युद्ध किया। इस प्रकार दोनोंने विद्यामय बाणोंसे युद्ध करके तीनों लोकोंको आश्चर्य-चकित कर दिया। बहुत समय बीतनेपर राजाने यक्षके रथको तोड़ डाला। तब वह भूमिमें स्थित हुआ। राजाने उसे मार डाला। तब वे दो हो गये। इस क्रमसे उत्तरोत्तर वे दूने-दूने ही होते गये। इस प्रकार उनसे समस्त रणभूमि ही व्याप्त हो गई। अब तो राजा भयभीत होकर भागनेमें उद्यत हो गया। तब वह यक्ष भी उसके पीछे लग गया। वह बोला कि यदि तू सेठकी शरणमें जाता है तो तेरी प्राणरक्षा हो सकती है, अन्यथा नहीं। तब वह हे सेठ! मुझे बचाओ मुझे बचाओ, यह कहता हुआ सुदर्शन सेठकी शरणमें गया। उस समय सेठने हाथोंको उठाकर यक्षको रोकते हुए उससे पूछा कि तुम कौन हो। इसके उत्तरमें यक्षने सेठको नमस्कार करके सब वृत्तान्त कह दिया। तत्पश्चात् यक्षने राजासे रानीके दुराचरणकी सब यथार्थ घटना कह

१. श चितां। २. प ब श °पीपतम्। ३. श प्रतिपद्य।

पुष्पवृष्ट्यादिकं विधाय स्वर्गलोकं[1] गतः। राज्ञी वृक्षेऽवलम्ब्य मृत्वा पाटलिपुत्रे व्यन्तरी जज्ञे। पण्डिता पलाय्य पाटलीपुत्र एव देवदत्ताभिधवेश्यागृहेऽस्थात् स्वरूपं[2] निरूपितवती च। देवदत्ता कपिलाभयमत्योर्हास्यं विधाय प्रतिज्ञां चकार यदि सुदर्शनं मुनिं पश्यामि तत्तपो विनाशयिष्यामीति।

इतो राजा सुदर्शनं प्रत्यवदद्यदज्ञानेन मयाकृतं तत्सर्वं क्षमित्वार्धराज्यं गृहाण। सुदर्शनो ब्रूते 'श्मशानी[3]वानयनसमय एव यद्यस्मिन्नुपसर्गे जीविष्यामि पाणिपात्रेण भोक्ष्ये' इति कृतप्रतिज्ञस्ततो[4] दीक्षे[5] इत्यनेन प्र[6]कारेण व्यवस्थापितोऽपि जिनालयं गतः जिनं पूजयित्वाऽभिवन्द्य विमलवाहनाभिधं यतिं चापृच्छत् मनोरमाया उपरि मे बहुमोहहेतुः क इति। स आह— अत्रैव विन्ध्यदेशे काशीकोशलपुरेशभूपालवसु[7]न्धर्योरपत्यं लोकपालः। स भूपालः पुत्रादियुतः आस्थाने आसितः सिंहद्वारे पूत्कुर्वतीः प्रजाः अपश्यत्। तत्कारणे पृष्टे अनन्तबुद्धिमन्त्रिणोच्यतेऽस्माद्दक्षिणेन स्थितविन्ध्यगिरौ व्याघ्रनामा भिल्लस्तद्वनिता कुरङ्गी। स प्रजानां बाधां करोतीति पूत्कुर्वन्ति प्रजाः। ततो राज्ञा बहुबलेनानन्तनामा चमूपतिस्तस्यो-

---

दी। फिर वह राजाके सैन्यको जीवित करके और सुदर्शन सेठकी पूजा करके उसके आगे पुष्पोंकी वर्षा आदिको करता हुआ स्वर्गलोकको वापिस चला गया। इधर रानीने जब इस अतिशयको देखा तब उसने वृक्षसे लटककर अपने प्राण दे दिये। इस प्रकारसे मरकर वह पाटलीपुत्र (पटना) नगरमें व्यन्तरी उत्पन्न हुई। वह पण्डिता धाय भी भयभीत होकर भाग गई और उसी पाटलीपुत्र नगरमें एक देवदत्ता नामकी वेश्याके घर जा पहुँची। वहाँ उसने देवदत्तासे पूर्वोक्त सब वृत्तान्त कहा। उसको सुनकर देवदत्ताने कपिला और अभयमतीकी हँसी उड़ाते हुये यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं उस सुदर्शन मुनिको देखूँगी तो अवश्य ही उसके तपको नष्ट करूँगी।

इधर इस आश्चर्यजनक घटनाको देखकर राजा सुदर्शन सेठसे बोला कि मैंने अज्ञानतावश जो आपके साथ यह दुर्व्यवहार किया है उस सबको क्षमा करके मेरे आधे राज्यको स्वीकार कीजिए। इसके उत्तरमें सुदर्शन सेठ बोला कि हे राजन्! मैंने स्मशानसे लाते समय ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि मैं इस उपद्रवसे जीवित रहा तो पाणिपात्रसे भोजन करूँगा— मुनि हो जाऊँगा। इसीलिए अब दीक्षा लेता हूँ। इस प्रकार राजाके रोकनेपर भी उसने जिनालयमें जाकर जिनेन्द्रकी पूजा-वंदना की। फिर उसने विमलवाहन नामक मुनीन्द्रकी वंदना करके उनसे पूछा कि भगवन्! मनोरमाके ऊपर जो मेरा अतिशय प्रेम है उसका क्या कारण है? मुनि बोले— इसी भरत क्षेत्रके भीतर विन्ध्य देशके अन्तर्गत काशी-कोशल नामका एक नगर है। उसमें भूपाल नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम वसुन्धरी था। इनके एक लोकपाल नामका पुत्र था। एक दिन राजा भूपाल पुत्रादिकोंके साथ सभाभवनमें बैठा हुआ था। तब उसने सिंहद्वारके ऊपर चिल्लाती हुई प्रजाको देखकर मंत्रीसे इसका कारण पूछा। तदनुसार अनन्त बुद्धि नामका मंत्री बोला कि यहाँसे दक्षिणमें एक विन्ध्य नामका पर्वत है। वहाँ एक व्याघ्र नामका भील रहता है। उसकी स्त्रीका नाम कुरंगी है। वह प्रजाको पीड़ित किया करता है। इसीलिए वह चिल्ला रही है। तब राजाने उसके ऊपर आक्रमण करनेके लिए बहुत-सी सेनाके साथ अनन्त नामक सेनापतिको भेजा। उसे भीलने जीत लिया। तब राजा स्वयं ही जानेको

१. ब स्वर्ल्लोकं। २. ब ०दत्ताविधावेश्यागृहेऽस्यात्तस्य [स्या] स्तत्स्वरूपं। ३. प श स्मशाना०। ४. फ कृतः प्रतिज्ञा ततो ब कृतप्रतिज्ञस्ततो। ५. ब दीक्ष्यं। ६. ब इत्यनेकप्रं०। ७. प श भूपालबलवसु०।

पदि प्रेषितः। तं स जिगाय। ततो राजा स्वयं चचाल। तं निवार्य लोकपालो जगाम रणे तं जघान। स मृत्वा वत्सदेशे कस्मिंश्चित् गोष्ठे श्वा बभूव। आभीर्या सह कौशाम्बीपुरमियाय। तत्रैव जिनगृहमाश्रित्यैवास्थात्। तत्रापि मृत्वा चम्पायां लोध इति नरजातिविशेषः सिंहप्रियसिंहिन्योः पुत्रोऽजनि। बालस्यैव पितरौ मम्रतुः। सोऽपि दिनान्तरैर्ममारास्यामेव चम्पायां वृषभदासस्य सुभगनामा गोपालोऽभूच्चारणान्तिकं 'णमो अरहंताणं' इति मन्त्रं प्राप्य सर्वक्रियासु तं प्रथममुच्चारयन् वर्तते स्म। आयुरन्ते गङ्गायां मृत्वा निदानेन त्वं जातोऽसि। सा कुरङ्गी तनुं विहाय वाराणस्यां महिषी जाता। तत्रापि मृत्वा चम्पायां रजकसांवलयशोमत्योर्दुहिता वत्सिनी भूत्वार्जिकासंसर्गेणार्जितपुण्येन त्वत्प्रियासीदिति निशम्य मनोरमां निवार्य भूपादिभिः क्षमितव्यं कृत्वा तत्रैव दीक्षितः। राजापि धर्मफले साश्चर्यचित्तः स्वतनुजं राजानं सुकान्तं श्रेष्ठिनं च कृत्वा तत्रैव दीक्षितः तदन्तःपुरमपि। सर्वेऽपि तत्रैव पारणं चक्रुर्गुरुभिर्विहरन्तः स्थिताः।

सुदर्शनः सकलागमधरो भूत्वा गुरोरनुज्ञया एकविहारी जातः। नानातीर्थस्थानानि[1] वन्दमानः पाटलीपुत्रं[2] प्राप्य तत्र चर्यार्थं पुरं[3] प्रविष्टः। पण्डिता तं विलोक्य देवदत्तायाः कथयति स्म सोऽयं सुदर्शन इति। देवदत्ता स्वप्रतिज्ञां स्मृत्वा दास्या स्थापयांचकार

उद्यत हुआ। राजाको जाते हुए देखकर लोकपालने उसे रोक दिया और वह स्वयं वहाँ चला गया। उसने उस भीलको युद्धमें मार डाला। वह मरकर वत्स देशमें किसी गोष्ठ (गायोंके रहनेका स्थान) के भीतर कुत्ता हुआ। एक दिन वह ग्वालिनीके साथ कौशाम्बी पुरमें गया और वहाँ ही एक जिनालयके आश्रित रह गया। वहाँपर वह समयानुसार मरणको प्राप्त होकर लोधी नामकी मनुष्यजातिमें सिंहप्रिय और सिंहिनी दम्पतिका पुत्र हुआ। उसके माता पिता बाल्यावस्थामें ही मर गये थे। तत्पश्चात् वह भी कुछ दिनोंमें मृत्युको प्राप्त होकर इसी चम्पापुरमें वृषभदास नामक सेठके सुभग नामका ग्वाला हुआ। उसने एक चारण मुनिके पाससे 'णमो अरहंताणं' इस मंत्रको प्राप्त किया। वह सब ही कार्योंके प्रारम्भमें प्रथमतः उक्त मंत्रका उच्चारण करने लगा। आयुके अन्तमें वह गंगा नदीमें मरकर किये गये निदानके अनुसार तुम हुए हो। उधर वह कुरंगी (भील स्त्री) मर करके वाराणसी नगरीमें भैंस हुई थी। फिर वहाँ भी वह मरकर चम्पापुरमें साँवल और यशोमती नामक धोबीयुगलके वत्सिनी नामकी पुत्री हुई। सौभाग्यसे उसे आर्यिकाकी संगति प्राप्त हुई। इससे जो उसने महान् पुण्य उपार्जित किया उसके प्रभावसे वह मरकर तुम्हारी मनोरमा प्रिय पत्नी हुई है। इस प्रकार अपने पूर्व भवोंके वृत्तान्तको सुनकर सुदर्शन सेठने मनोरमाको समझाया और तदनन्तर वह राजा आदिकोंसे क्षमा कराकर वहींपर दीक्षित हो गया। सुदर्शनको प्राप्त हुए धर्मके फलको प्रत्यक्ष देख करके राजाके मनमें बहुत आश्चर्य हुआ। इसीलिए उसने भी अपने पुत्रको राजा तथा सुकान्तको सेठ बनाकर वहींपर दीक्षा ले ली। राजाके अन्तःपुरने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् सबने वहींपर पारणा की। वे सब गुरुके साथ विहार करते हुए संयमका परिपालन कर रहे थे।

सुदर्शन समस्त आगमका ज्ञाता होकर गुरुकी आज्ञासे अकेला ही विहार करने लगा। वह अनेक तीर्थस्थानोंकी वंदना करता हुआ पाटलीपुत्र नगरमें पहुँचा। वहाँ वह आहारके लिए नगरमें प्रविष्ट हुआ। पण्डिताने उसे देखकर देवदत्तासे कहा कि यही वह सुदर्शन है।

---

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श स्थानादि। २. श पाडलीपुत्रं। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श 'पुरं' नास्ति।

मुनिरजानन् स्थितोऽन्तः प्रवेश्यावरकान्त उपवेशितः। देवदत्तया भणितम्— हे सुन्दर, त्वमद्यापि युवा, किं ते तपसा, मयोपार्जितं बहुद्रव्यमस्ति, तेन सार्धं मां भुङ्क्ष्व[1]। मुनिरुवाच— हे मुग्धे, शरीरमिदमशुचि दुःखपुञ्जं त्रिदोषाधिष्ठितं[2] कृमिकुलपरिपूर्णं विनश्वरम्। ततो नोचितं भोगोपभोगानुभवनाय परत्र सिद्धावेवासहायं[3] ततस्तपो विधीयत इति। देवदत्तया पश्चात्तत् कुर्विति भणित्वोत्थाप्य तूलिकायां निक्षिप्तः। तदा स उपसर्गनिवृत्तावाहारादौ प्रवृत्तिरिति गृहीतसंन्यासस्तथा नगराद्यप्रवेशप्रतिज्ञोऽप्यभूत्। त्रीणि दिनानि नानास्त्रीविकारैस्तयोपसर्गे कृतेऽप्यकम्पचित्तोऽस्थाद्यदा तदा रात्रौ पितृवने कायोत्सर्गेण स्थापयामास। यावत्तदा[4] स तत्र तिष्ठति तावत्सा व्यन्तरी विमानेन गगने गच्छती विमानस्खलनात्तं[5] लुलोके। विबुध्य अवदत्-रे सुदर्शन, तवार्त्तेनाभयमती मृत्वाहं जाता। त्वं तदा केनचिद्देवेन रक्षितोऽसि, इदानीं त्वां को रक्षतीति विजल्प्य नानोपसर्गांस्तस्य कर्तुं प्रारब्धः। तदा सं[6] तेनैव यक्षेण निवारितैः[7]। सा तेनैव सह युद्धं चकार, सप्तमदिने पलायिता। इतः स मुनि-

देवदत्ताने अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके दासीके द्वारा मुनिका पडिगाहन कराया। मुनिको उनके कपटका ज्ञान नहीं था। इसीलिए वे वहाँ स्थित हो गये। फिर उसने उन्हें भीतर ले जाकर शयनागारमें बैठाया। तत्पश्चात् देवदत्ताने उनसे कहा कि हे सुभग! तुम अभी तरुण हो, तुम्हें अभी इस तपसे क्या लाभ है? मैंने बहुत-सा धन कमाया है। तुम उसको लेकर मेरे साथ भोगोंका अनुभव करो। यह सुनकर मुनिने कहा कि हे सुन्दरी! (अथवा हे मूर्खे!) यह शरीर अपवित्र, दुःखोंका घर, त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) से सहित, कीड़ोंसे परिपूर्ण और नश्वर है। इसलिए उसे भोगोपभोगजनित सुखका साधन बनाना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करनेसे वह परलोकके सुखमय बनानेमें सहायक नहीं होता है, बल्कि वह उसे दुखमय ही बनाता है। अतएव उस परलोककी सिद्धि (मोक्षप्राप्ति) के लिए इस दुर्लभ मनुष्य-शरीरको तपश्चरणमें प्रवृत्त करना सर्वथा योग्य है। इस प्रकारसे वह परलोककी सिद्धिमें अवश्य सहायक होता है। मुनिके इस सदुपदेशको देवदत्ताने हृदयंगम नहीं किया। किन्तु इसके विपरीत उसने 'तुम तपको छोड़कर मेरे साथ विषयभोग करो' यह कहते हुए उन्हें उठाकर शय्याके ऊपर रख लिया। तब मुनिने इस उपसर्गके दूर होनेपर ही मैं आहारादिमें प्रवृत्त होऊँगा, इस प्रकार सन्यासको ग्रहण कर लिया। साथ ही उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा कर ली कि अबसे मैं नगरादिमें प्रवेश नहीं करूँगा। इस प्रकार देवदत्ताने अनेक प्रकारके कामोद्दीपक स्त्रीविकारोंको करके मुनिके ऊपर तीन दिन उपसर्ग किया। फिर भी जब उनका चित्त चलायमान नहीं हुआ तब उसने उन्हें रातके समय स्मशानमें कायोत्सर्गसे स्थित करा दिया। तब वे मुनि वहाँ कायोत्सर्गसे स्थित ही थे कि इतनेमें विमानसे आकाशमें जाती हुई उस व्यन्तरीने अकस्मात् अपने विमानके रुक जानेसे उनकी ओर देखा। देखते ही उसे यह ज्ञात हो गया कि यह वही सुदर्शन सेठ है। तब उसने उनसे कहा कि हे सुदर्शन! तेरे कारण आर्तध्यानसे मरकर वह अभयमती मैं (व्यन्तरी) हुई हूँ। उस समय तो किसी देवने तेरी रक्षा की थी, अब देखती हूँ कि तेरी रक्षा कौन करता है। इस प्रकार कहते हुए उसने मुनिराजके ऊपर अनेक प्रकारसे घोर उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय इस उपसर्गको भी उसी यक्षने निवारित किया। तब वह उसी यक्षके साथ

१. ब भुनक्ति। २. प ब श पुंजस्त्रिदोषा०। ३. ब सिद्धावेव सहायं। ४. फ यावत्तावत्तदा। ५. श०नात्ता। ६. श सा। ७. ब स एव यक्षो निवारितवान्।

त्पन्नकेवलो गन्धकुटीरूपसमवसरणादिविभूतियुक्तश्चासीत् । श्रीवर्धमानस्वामिनः पञ्चमोऽन्तकृत्केवली[1] । तदतिशयविलोकनात् देवी सद्दृष्टिर्बभूव । पण्डिता देवदत्ता च दीक्षां बभ्रतुः । मनोरमापि तज्ज्ञानातिशयमाकर्ण्य सुकान्तं निवार्य तत्र गत्वा दीक्षिता, अन्येऽपि बहवः । सुदर्शनमुनिर्भव्यपुण्यप्रेरणया विहृत्य पौष्यशुक्लपञ्चम्यां मुक्तिमितः धात्रीवाहनादिषु[2] केचिन्मुक्तिमिताः केचित्सौधर्मादिसर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं[3] गताः । अर्जिकाः[4] सौधर्माद्यच्युतान्त-कल्पेषु केचिद्देवाः[5] काश्चिद्देव्यश्च बभूवुरिति । गोपोऽपि तदुच्चारणे एवंविधोऽभवदन्यः किं न स्यादिति ॥८॥

सौधर्मादिषु कल्पकेषु विमलं भुक्त्वा सुखं चिन्तितं
च्युत्वा सत्कुलवल्लभो हि सुभगश्चक्राधिनाथो नरः ।
भूत्वा शाश्वतमुक्तिलाभमतुलं स प्राप्नुयादादराद्
योऽयं[6] सत्पदसौख्यसूचकमिदं पाठीकरोत्यष्टकम् ॥२॥

इति पुण्यास्रवाभिधानग्रन्थे केशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यरामचन्द्रमुमुक्षुविरचिते पञ्चनमस्कारफलव्यावर्णनाष्टकं समाप्तम् ॥२॥

युद्ध करने लगी । अन्तमें वह सातवें दिन पीठ दिखाकर भाग गई । इधर उस उपसर्गके जीतनेवाले मुनिराजको केवलज्ञान प्राप्त हो गया । तब देवोंने गन्धकुटीरूप समवसरणादिकी विभूतिका निर्माण किया । वे श्रीवर्धमान जिनेन्द्रके तीर्थमें पाँचवें अन्तकृत्केवली हुए हैं । इस अतिशयको देखकर वह व्यन्तरी सम्यग्दृष्टि हो गई । पण्डिता और देवदत्ताने भी दीक्षा ग्रहणकर ली । सुदर्शन मुनिके केवलज्ञानकी वार्ताको सुनकर मनोरमाने भी सुकान्तको सम्बोधित करते हुए वहाँ जाकर दीक्षा धारण कर ली । अन्य भी कितने ही भव्य जीवोंने सुदर्शन केवलीके निकट दीक्षा ले ली । फिर सुदर्शन केवलीने भव्य जीवोंके पुण्योदयसे प्रेरित होकर वहाँसे विहार किया । अन्तमें वे पौष शुक्ला पंचमीके दिन मोक्षपदको प्राप्त हुए । राजा धात्रिवाहन आदिकोंमेंसे कितने ही मुक्तिको प्राप्त हुए और कितने ही सौधर्म कल्पको आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि तक गये । आर्यिकाओंमेंसे कुछ तो सौधर्म स्वर्गसे लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्त जाकर देव हो गईं और कुछ देवियाँ हुईं । इस प्रकार जब ग्वालाने भी उक्त मंत्रवाक्यके प्रभावसे ऐसी अपूर्व सम्पत्तिको प्राप्त कर लिया है तब अन्य विवेकी मनुष्य क्या न प्राप्त करेंगे ? उन्हें तो सब ही प्रकारकी इष्टसिद्धि प्राप्त होनेवाली है ॥८॥

जो भव्य जीव मोक्षपदको प्रदान करनेवाले इस उत्तम अष्टक (आठ कथाओंके प्रकरण) को पढ़ता है वह सौधर्मादि कल्पोंके निर्मल अभीष्ट सुखको भोगता है । तत्पश्चात् वह वहाँसे च्युत होकर उत्तम कुलमें मनुष्य पर्यायको प्राप्त होता हुआ उत्तम चक्रवर्तीके वैभवको भोगता है और फिर अन्तमें अविनश्वर व अनुपम मोक्ष सुखको प्राप्त करता है ॥२॥

इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनिके शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु द्वारा विरचित पुण्यास्रव नामक ग्रन्थमें पंचनमस्कारमंत्रके फलका वर्णन करनेवाला अष्टक समाप्त हुआ ॥२॥

---

१. फ ०न्तःकृत्केवली ब ०न्तकृतकेवली । २. श धात्रिवाहनादय्यं । ३. ब प्रतिपाठोऽयम् । प फ श सौधर्मसर्वार्थसिद्धि° । ४. फ श अर्जिका ब अर्यिका । ५. ब 'केचिद्देवा' नास्ति । ६. फ °योग्यं श योग्य° ।

[१८]

श्रीसौभाग्यपदं विशुद्धिगुणकं दुःखार्णवोत्तारकं
सार्वज्ञं बुधगोचरं सुसुखदं प्राप्यामलं भाषितम् ।
कान्तारे गुणवर्जितोऽपि हरिणो वालीह जातस्ततो
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले ॥१॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डे किष्किन्धपुरे कपिध्वजवंशोद्भवविद्याधराणां मुख्यो राजा वालिदेवः। स चैकदा महामुनिमालोक्य धर्मश्रुतेरनन्तरं 'जिनमुनिं जैनोपासकं च विहायान्यस्मै नमो न करोमि' इति गृहीतव्रतः सुखेनास्थात्। इतो लङ्कायां रावणस्तत्प्रतिज्ञामवधार्यामन्यत 'मम नमस्कारं[1] कर्तुमनिच्छन् गृहीतप्रतिज्ञः' इति। ततस्तत्र सप्राभृतं[2] विशिष्टं प्रस्थापितवान्। स गत्वा वालिदेवं विज्ञप्तवान् जगद्विजयिदशास्येनादिष्टं शृणु। तथाहि— आवयोराम्नायभूताः[3] परस्परं स्नेहेनैवावर्तिषतेति[4] तदाचारस्त्वया पालनीयः। किं च, मया ते पितुः सूर्यस्य शत्रुं महाप्रचण्डं यमं निर्घाट्य राज्यं दत्तम्। तमुपकारं स्मृत्वा स्वभगिनीं श्रीमालां मह्यं दत्त्वा मां प्रणम्य सुखेन राज्यं कर्तव्यं त्वयेति। श्रुत्वा वालिदेवोऽवोचत्तदुक्तं[5] सर्वमुचितं, किंतु[6] स्वयमसंयत इति तस्य नमस्कारकरणवचनमयुक्तम्, तद्विहा-

---

सर्वज्ञके द्वारा प्ररूपित वस्तुस्वरूप लक्ष्मी व सौभाग्यका स्थानभूत, विशुद्धि गुणसे संयुक्त, दुखरूप समुद्रसे पार उतारनेवाला तथा विद्वानोंका विषय होकर निर्मल व उत्तम सुखको प्रदान करनेवाला है। उसको सुनकर एक गुणहीन जंगली हिरण भी यहाँ वाली हुआ है। इसलिए मैं लोकमें उस सर्वज्ञकथित तत्त्वकी प्राप्तिसे जिनदेवका भक्त होकर उत्तम चारित्रको धारण करता हुआ धन्य होता हूँ ॥१॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्यखण्डके भीतर किष्किन्धापुरमें वानर वंशमें उत्पन्न हुए विद्याधरोंका मुख्य राजा वालिदेव राज्य करता था। एक दिन उसने किसी महामुनिका दर्शन करके उनसे धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् उसने उक्त मुनिराजके समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि मैं दिगम्बर मुनि और जैन श्रावकको छोड़कर अन्य किसीके लिए भी नमस्कार नहीं करूँगा। वह इस प्रतिज्ञाके साथ सुखपूर्वक राज्य कर रहा था। इधर लंकामें रावणको जब यह ज्ञात हुआ कि वालि मुझे नमस्कार नहीं करना चाहता है तथा उसने इसके लिए प्रतिज्ञा ले रक्खी है, तब उसने वालिके पास भेंटके साथ एक दूतको भेजा। दूतने जाकर वालिदेवसे निवेदन किया कि जगद्विजयी रावणने जो आपके लिए आदेश दिया है उसे सुनिए— हम दोनोंमें परस्पर जो वंशपरम्परासे स्नेहपूर्ण व्यवहार चला आ रहा है उसका तुम्हें पालन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मैंने तुम्हारे पिता सूर्य (सूर्यरज) के अतिशय पराक्रमी शत्रु यमको भगाकर उसे राज्य दिया था। उस उपकारके लिए कृतज्ञ होकर तुम अपनी बहिन श्रीमालाको मेरे लिए दो और मुझे नमस्कार करके सुखपूर्वक राज्य करो। यह सुनकर वालिदेवने कहा कि तुम्हारे स्वामीने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है। किन्तु वह स्वयं व्रतहीन है, अतएव उसके लिए इस प्रकार नमस्कार करनेका

---

१. फ °मवधार्य अन्यतमं नमस्कार, श °मवधार्यमन्यतमं नमस्कारं। २. श °तत्र प्राभृतं। ३. श तथाहि रावयो। ४. फ °नैव विवर्तिषते। इति, प श °नैव विवर्तिषते इति। ५. फ स्वदुक्तं। ६. फ 'किन्तु' नास्ति।

यान्यत् सर्वं करोमीत्युक्ते दूतोऽवश्यमस्कार एव कर्तव्योऽन्यथा विरूपकं ते स्यात्। वालिनोक्तं यद् भवति तद् भवतु, याहीति विसर्जितः सः। ततो दशमुखः सर्वमवधार्य सकलसैन्येनागत्य किष्किन्धाद्बहिरस्थात्। वाली[1] स्वमन्त्रिवचनमुल्लङ्घ्य स्वबलेन निर्जगाम अभ्यर्णयोः सेनयोरुभयमन्त्रिभिर्मन्त्रो दृष्टोऽनयोर्मध्ये एकः प्रतिवासुदेवोऽन्यश्चरमाङ्गस्ततोऽनयो रणे मृत्युर्नास्ति बलं स्वावर्तेत ततो द्वावेव युद्धं[2] कुरुतामिति। तावभ्युपगमयांचक्रतुः। ततस्तयोर्महत् युद्धं बभूव। बृहद्वेलायां वाली[3] दशकन्धरं बबन्ध मुमोच च। क्षमितव्यं विधाय स्वभ्रात्रे[4] सुग्रीवाय राज्यं वितीर्य तं दशास्यस्य परिसमर्प्य[5] दीक्षितः।

सकलागमधर एकविहारी च[6] भूत्वा कैलासे प्रतिमायोगं दधौ। तदा रत्नावलीनामकन्याविवाहनिमित्तं गच्छतो दशास्यस्य तस्योपरि[7] स्खलितं विमानम्। किमित्यवलोकनार्थं भूमाववनीर्य तमपश्यत्। अवबुध्य तं वानेन[8] कोपेन स्खलितमिति ततः क्रुध्वा[9] नगेन सार्धममुमुत्थाप्य[10] समुद्रे निक्षिपामीति भूम्यां विवेश[11]। स्वशक्त्या विद्याभिश्च नगमुद्दध्रे दशास्यः।

आदेश देना योग्य नहीं है। मैं नमस्कारके अतिरिक्त अन्य सब कुछ करनेको उद्यत हूँ। यह सुनकर दूत बोला— आपको रावणके लिए नमस्कार करना ही चाहिए, अन्यथा आपका अनिष्ट होना अनिवार्य है। तब वालिने कहा कि जो कुछ भी होना होगा हो, तुम जाओ; यह कहकर उसने दूतको वापिस कर दिया। दूतसे इस सब समाचारको सुनकर रावण समस्त सेनाके साथ आया और किष्किन्धापुरके बाहर ठहर गया। उधर वालि मंत्रियोंकी सलाहको न मानकर अपनी सेनाके साथ युद्धके लिए निकल पड़ा। दोनों ओरकी सेनाओंके एक दूसरेके अभिमुख होनेपर उनके मंत्रियोंने विचार किया कि इन दोनोंमें एक तो प्रतिनारायण है और दूसरा चरमशरीरी है, अतएव इनमेंसे युद्धमें किसीका भी मरण सम्भव नहीं है; परन्तु सेनाका नाश अवश्य होगा। इसीलिए उन दोनोंको ही परस्परमें युद्ध करना चाहिए। इस बातको उन दोनोंने भी स्वीकार कर लिया। तदनुसार उन दोनोंके बीच घोर युद्ध हुआ। इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर वालिने रावणको बाँध लिया और तत्पश्चात् उसे छोड़ भी दिया। फिर वालिने उससे क्षमा-याचना करके अपने भाई सुग्रीवको राज्य देकर उसे रावणके लिए समर्पित कर दिया और स्वयं दीक्षित हो गया।

तत्पश्चात् वह समस्त आगमका पारगामी होकर एकविहारी हो गया। एक दिन वह कैलाश पर्वतके ऊपर प्रतिमायोगको धारण करके समाधिस्थ था। उस समय रावण रत्नावली नामकी कन्याके साथ विवाह करनेके लिए विमानसे जा रहा था। उसका विमान वालि मुनिके ऊपर आकर रुक गया। तब विमान रुकनेके कारणको ज्ञात करनेके लिए वह नीचे पृथिवीपर उतरा। उसे वहाँ वालि मुनि दिखायी दिये। उसने समझा कि इसने ही क्रोधसे मेरे विमानको रोक दिया है। इससे उसे बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। तब वह उसे पर्वतके साथ उठाकर समुद्रमें फेंक देनेके विचारसे पृथ्वीके भीतर प्रविष्ट हुआ। इस प्रकार रावण अपनी शक्तिसे और विद्याओंके बलपर उस पर्वतके उठानेमें उद्यत हो गया। उस समय वालि मुनिको कायबल

१. फ वालि। २. प श युद्धे। ३. फ वालि ब बली। ४. प ब श स्वभ्रातुः। ५. ब दशास्य समर्प्य श दशास्य परिसमर्प्यं। ६. ब 'च' नास्ति। ७. श गच्छसतो दशास्य तस्योपरि। ८. ब अवुध्यवानेन। ९. प श क्रुद्धा। १०. प श °मुच्चाप्य ब °मुच्चार्ण्य। ११. ब विवेश्य।

कायबलर्द्धिं प्राप्तो वालिमुनिस्तत्रस्थचैत्यालयव्यामोहेन वामपादाङ्गुष्ठशक्त्याधो न्यक्षिपत्। तद्भराक्रान्तो निर्गन्तुमशक्तः आरटद्दशास्यः। तद्ध्वनिमाकर्ण्य विमानास्थितमन्दोदर्यादि-तदन्तःपुरमागत्य मुनिं पुरुषभिक्षां ययाचे। तदा मुनिरङ्गुष्ठसंगं शिथिलीचकार[1]। ततो निर्गतः सः। मुनेस्तपःप्रभावेनासनकम्पाद्देवा आगत्य पञ्चाश्चर्याणि कृत्वा तं प्रणेमुः। रौतीति रावणः इति दशास्यं रावणाभिधं चक्रुः। स्वर्लोकं जग्मुः। [2]रावणोऽतिनिःशल्यो भूत्वा गतः। मुनिरपि केवली भूत्वा विहृत्य मोक्षमगमदिति।

इत्थंभूतो वाली[3] केन पुण्येन जात इति चेद्विभीषणेन सकलभूषणः केवली पृष्टो वालिदेवपुण्यातिशयमचीकथत्। तथाहि— अत्रैवार्यखण्डे वृन्दारण्ये एको हरिणस्तत्रत्य-तपोधनागमपरिपाटिं प्रतिदिनं शृणोति। तज्जनितपुण्येनायुरन्ते[4] मृत्वा अत्रैव ऐरावत-क्षेत्रेऽश्वत्थपुरे[5] वैश्यविरहितशीलवत्योरपत्यं [6]मेघरत्ननामा जातोऽणुव्रतेनैशानं गतः। ततो-ऽवतीर्य पूर्वविदेहे कोकिलाग्रामे वणिक्कान्तशोकरत्नाकिन्योरपत्यं सुप्रभोऽभूत्तपसा सर्वार्थ-सिद्धिं गतः। ततो वालिदेवोऽभूदिति परमागमशब्दश्रवणमात्रेण हरिणोऽप्येवंविधोऽ-भूदन्यः किं न स्यादिति ॥१॥

ऋद्धि प्राप्त हो चुकी थी। पर्वतके उठानेसे उसके ऊपर स्थित जिनभवन नष्ट हो सकते हैं, इस विचारसे उन्होंने अपने बायें पैरके अँगूठेकी शक्तिसे पर्वतको नीचे दबाया। उसके भारसे दबकर रावण वहाँसे निकलनेके लिए असमर्थ हो गया। तब वह रुदन करने लगा। उसके आक्रन्दनको सुनकर विमानमें स्थित मन्दोदरी आदि अन्तःपुरकी स्त्रियोंने आकर मुनिराजसे पतिभिक्षा माँगी। तब वालि मुनीन्द्रने अपने अँगूठेको शिथिल कर दिया। इस प्रकार वह रावण बाहर निकल सका। मुनिराजके तपके प्रभावसे देवोंके आसन कम्पित हुए। तब उन सबने आकर पंचाश्चर्यपूर्वक मुनिराजको नमस्कार किया। रावण चूँकि कैलासके नीचे दबकर रोने लगा था, अतएव 'रौतीति रावणः' इस निरुक्तिके अनुसार शब्द करनेके कारण उक्त देवोंने उसका रावण नाम प्रसिद्ध किया। तत्पश्चात् वे स्वर्गलोकको वापिस चले गये। फिर रावण भी अतिशय शल्य रहित होकर चला गया। उधर मुनिराजने भी केवलज्ञानके उत्पन्न होनेपर विहार करके मुक्तिको प्राप्त किया।

वालि किस पुण्यके प्रभावसे ऐसी अलौकिक विभूतिको प्राप्त हुआ, इस प्रकार विभीषणने सकलभूषण केवलीसे प्रश्न किया। इसपर उन्होंने वालिदेवके पुण्यातिशयको इस प्रकार बतलाया— इसी आर्यखण्डके भीतर वृन्दावनमें एक हिरण रहता था। वहाँपर स्थित साधु जब आगमका पाठ करते थे तब वह हिरण उसे प्रतिदिन सुना करता था। इससे उत्पन्न हुए पुण्यके प्रभावसे वह आयुके अन्तमें मरकर इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्रके भीतर अश्वत्थपुरमें वैश्य बिरहित और शीलवतीके मेघरत्न नामका पुत्र हुआ। वह अणुव्रतोंका पालन करके ईशान स्वर्गको प्राप्त हुआ। पश्चात् वहाँसे च्युत होकर वह पूर्व-विदेहके भीतर कोकिला ग्राममें वैश्य कान्तशोक और रत्नाकिनीके सुप्रभ नामका पुत्र हुआ। तत्पश्चात् वह तपके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे च्युत होकर वह वालिदेव हुआ है। इस प्रकार परमागमके शब्दोंके सुनने मात्रसे जब एक हिरण पशु भी ऐसी समृद्धिको प्राप्त हुआ है तब दूसरा विवेकी जीव क्या न होगा? वह तो सब प्रकारकी ही समृद्धिको प्राप्त कर सकता है ॥१॥

१. ब शिथिलं चकार। २. श रावणो इति°। ३. फ वालि। ४. श आयुरन्तेन। ५. फ °स्वच्छपुरे प श °श्वस्थपुरे। ६. श मेघरभनामा।

[१६]

पद्मावासतटे विशुद्धलतिके[1] नानाद्रुमैः शोभिते
हंसो बोधविवर्जितोऽपि समुदं श्रुत्वा मुमुक्षूदितम्[2]।
जातः पुण्यसुदेहको[2] हि सुगुणः ख्यातः प्रभामण्डलो
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले ॥२॥

अस्य कथा—अत्रैवार्यखण्डे मिथिलानगर्यां राजा जनको देवी विदेही। तस्या गर्भसंभूतौ युगलमुत्पन्नम्। तत्र कुमारो धूमप्रभासुरेण मारणार्थं नीयमानेन[मानो] तन्मुखावलोकनेन प्रासदयेन[3] स्वकुण्डलौ तत्कर्णयोर्निक्षिप्य पर्णलघुविद्यायाः समर्पितो यत्रायं वर्धते तत्रामुं निक्षिपेति। सा तं कृष्णरात्रौ गगने यावन्नयति तावद्विजयार्धदक्षिणश्रेणिस्थरथनूपुरपुरेशेन्दुगतिना कुण्डलप्रभया दृष्टः। तदनु तेन हस्तौ प्रसारितौ। देवी तद्धस्ते तं निक्षिप्य गता। तेन स बालः स्ववल्लभापुष्पवत्यास्ते[4] पुत्रोऽयमिति समर्पितस्तत्पुत्रोऽयमिति सर्वत्र घोषणा च कृता। स तत्र प्रभामण्डलाभिधानेन वृद्धिं जगाम। सर्वकलाकुशलो युवा चासीत्।

इतस्तत्पितरौ तद्वियोगातिदुःखं चक्रतुः। बुधैः[5]संबोधितौ तनुजायाः सीतेति नाम

उत्तम लताओंसे सहित व अनेक वृक्षोंसे सुशोभित किसी तालाबके किनारेपर रहनेवाला एक हंस अज्ञान होकर भी मुमुक्षु मुनिके द्वारा उच्चारित आगमवचनको सहर्ष सुनकर उत्तम शरीरसे सुशोभित एवं श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न प्रसिद्ध प्रभामण्डल (भामण्डल) हुआ। इसीलिए जिनदेवका भक्त मैं इस पृथिवीतलके ऊपर उक्त जिनवाणीकी प्राप्तिसे चारित्रको धारण करके कृतार्थ होता हूँ ॥२॥

इसकी कथा— इसी आर्यखण्डके भीतर मिथिला नामकी नगरीमें राजा जनक राज्य करता था। रानीका नाम विदेही था। विदेहीके गर्भ रहनेपर उससे बालक और बालिकाका एक युगल उत्पन्न हुआ। इनमेंसे कुमारको धूमप्रभ नामका असुर मार डालनेके विचारसे उठा ले गया। मार्गमें जब वह उस बालकको ले जा रहा था तब उसे उसका मुख देखकर दया आ गई। इससे उसने उसके कानोंमें अपने कुण्डलोंको पहिना करके पर्णलघु विद्याको समर्पित करते हुए उसे आज्ञा दी कि जहाँपर यह वृद्धिंगत हो सके वहाँपर ले जाकर इसे रख आ। तदनुसार वह कृष्ण पक्षकी अँधेरी रातमें उसे आकाशमार्गसे ले जा रही थी। तब उसे कुण्डलोंकी कान्तिसे इन्दुगति विद्याधरने देख लिया। यह विद्याधर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणिमें स्थित रथनूपुरका स्वामी था। बालकको देखकर उसने अपने दोनों हाथोंको फैला दिया। तब देवी उसे उसके हाथोंमें छोड़कर चली गई। इन्दुगतिने उसे ले जाकर अपनी प्रिय पत्नी पुष्पावतीको देते हुए उससे कहा कि लो यह तुम्हारा पुत्र है। रानीके पुत्र उत्पन्न हुआ है, ऐसी उसने सर्वत्र घोषणा भी करा दी। वह वहाँ प्रभामण्डल इस नामसे प्रसिद्ध होकर वृद्धिंगत हुआ। वह कालान्तरमें समस्त कलाओंमें कुशल होकर युवावस्थाको प्राप्त हो गया।

इधर मिथिलामें उसके माता-पिता उसके वियोगसे अतिशय दुखी हुए। उन्होंने विद्वानोंसे प्रबोधित होकर जिस किसी प्रकारसे उस शोकको छोड़ा। फिर वे पुत्रीका सीता यह नाम

---

१. श विशुद्धतिलके। २. ब—प्रतिपाठोऽयम्। श सुदेहिको। ३. फ श प्राप्तोदयेन। ४. ब—प्रतिपाठोऽयम्। श पुष्पावत्यास्ते। ५. प बुद्ध।

विधाय सुखेनासतुः[1]। सापि वृद्धिं गता। एकदा जनकः स्वदेशबाधाकारितरङ्गतमाख्य-भिल्लस्योपरि गच्छन्नयोध्यापुरेशस्वमित्रदशरथस्य लिखितमस्थापयत्[2]। तदर्थमवधार्य दशरथस्तस्य साहाय्यं कर्तुं गमनार्थं प्रयाणभेरीनादं कारयति स्म। तमाकर्ण्य तन्नन्दनौ रामलक्ष्मणौ तं निवार्य स्वयं जग्मतुर्जनकस्य मिमिलतुः[3]। तत्पूर्वमेव जनकस्तेन युयुधे। तद्भ्रातरं कनकं भिल्लो बबन्ध[4]। तत् श्रुत्वा रामस्तेन युद्धवांस्तं बबन्ध जनकस्य भृत्यं चकार कनकममूमुचच्च तथा तेन पूर्वधृतक्षत्रियानपि। जनकेन रामप्रतापं दृष्ट्वा सीता तुभ्यं दातव्येत्युक्त्वा प्रस्थापितौ। [5]सीतारूपावलोकनार्थमागतस्य नारदस्य विलासिनीभिर्दशार्धैर्दत्ते[5] कुपित्वा गतः कैलासे। तद्रूपं पटे लिखित्वा रथनूपुरचक्रवालपुरं गतः। उद्याने प्रभामण्डलक्रीडाभवनसमीपवृक्षशाखायामवलम्ब्य तिरोभूत्वा स्थितः। प्रभामण्डलोऽपि तद् दृष्ट्वा[6] मूर्च्छितः। इन्दुगतिना आगत्य केनेदमानीतमित्युक्ते नारदेनोक्तं भद्रं भवतु युष्माकम्, मयानीतं युवराजयोग्येयमिति सर्वं कथयित्वा गतो नारदः। 'कथं सा प्राप्यते' इति विद्याधरेशेन मन्त्रालोचने क्रियमाणे चपलगतिनोक्तं मयात्र स आनीयते,

रहकर सुखपूर्वक स्थित हुए। वह पुत्री भी क्रमशः वृद्धिको प्राप्त हुई। एक समयकी बात है कि तरङ्गतम नामका एक भील राजा जनकके देशमें आकर प्रजाको पीड़ित करने लगा था। तब जनकने उसके ऊपर आक्रमण करनेके विचारसे अपने मित्र अयोध्यापुरके स्वामी राजा दशरथके पास पत्र भेजा। पत्रके अभिप्रायको जानकर राजा दशरथ जनकका सहायतार्थ वहाँ जानेको उद्यत हो गया। इसके लिए उसने प्रयाणभेरी करा दी। भेरीके शब्दको सुनकर दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मण पिताको रोककर स्वयं गये व जनकसे मिले। उनके पहुँचनेके पूर्व ही जनकने उक्त भीलके साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया था। इस युद्धमें भीलने जनकके भाई कनकको बाँध लिया था। इस बातको सुनकर रामने भीलके साथ युद्ध करके उसे बाँध लिया और राजा जनकका सेवक बना दिया। रामने कनकको भी बन्धनमुक्त करा दिया। उसी प्रकारसे उसने पूर्वमें उक्त भीलके द्वारा पकड़े गये अन्य राजाओंको भी बधनमुक्त करा दिया। रामके प्रतापको देखकर राजा जनकको बहुत सन्तोष हुआ। तब उसने 'मैं तुम्हारे साथ सीताका विवाह करूँगा' कहकर उन दोनोंको अयोध्या वापिस भेज दिया।

एक दिन नारद सीताके रूपको देखनेके लिए आये थे। उनको विलासिनियों (द्वारपाल स्त्रियों) ने भीतर जानेसे रोक दिया। इससे क्रुद्ध होकर वे कैलास पर्वतके ऊपर चले गये। वहाँ उन्होंने चित्रपटपर सीताके रूपको अङ्कित किया। उसको लेकर वे रथनूपुर-चक्रवालपुरमें गये। वहाँ जाकर वे उद्यानके भीतर प्रभामण्डलके क्रीडागृहके समीपमें एक वृक्षकी शाखाके सहारे छुपकर स्थित हो गये। प्रभामण्डलने जैसे ही उस चित्रको देखा वैसे ही वह मूर्छित हो गया। तब इन्दुगतिने वहाँ आकर पूछा कि इस चित्रको यहाँ कौन लाया है? यह सुनकर नारदने उसे 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा आशीर्वाद देकर कहा कि इसे मैं लाया हूँ। यह बाला युवराजके योग्य है। यह सब कहकर नारद वापिस चले गये। तत्पश्चात् इन्दुगति उस कन्याकी प्राप्तिके विषयमें विचार करने लगा। तब चपलगति नामक सेवकने कहा कि आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं राजा जनकको यहाँ ले आता हूँ। इस

१. फ श सुखेनास्थात्। २. श लिखत°। ३. ब °स्यामीमिलतुः। ४. प भिल्लेन बध फ भिल्लेन बबंधः श भिल्लेन बन्धः। ५. ब–प्रतिपाठोऽयम्। श दशार्धदत्ते। ६. ब तं दृष्ट्वा।

लब्धादेशो[1] ऽश्वरूपेण गतः। जनकेन बद्धः। तदा भिल्लैकेनागत्य अस्मिन् स्थले हस्ती तिष्ठतीति विज्ञप्ते राजा धर्तुं गतः, तद्भयात्तं चटितः। तेनापि सिद्धकूटे संस्थाप्य स्व-स्वामिने आनीत इति निरूपिते वियच्चरपतिनापि स्वगृहमानीय प्राघूर्णकक्रियानन्तरं सीता याचिता। जनकेनोक्तं रामाय दत्तेति। किं तेन भूमिगोचरेणेति निन्दिते जनकेनोक्तं किं विद्याधरैः पक्षिभिरिव खे संचरद्भिस्तीर्थंकरादयो भूगोचरा एव। विद्याधरेशेनोक्तं वज्रा-वर्तसागरावर्तधनुषी अध्यारोपिते चेत्तस्मै दातव्येति। प्रतिपन्नं जनकेन। विद्याधरेशमह-[2]त्तरचन्द्रवर्धनोऽपि ते गृहीत्वा गतः। वृत्तान्तं श्रुत्वा विदेह्यादिभिर्दुःखं कृतम्। स्वयंवर-भूमौ धनुषोः स्फटाटोपमालोक्य[3] भीतिं गते क्षत्रियसमूहे[4] रामेण वज्रावर्तं लक्ष्मणेन द्वितीय-मध्यारोपितम्। तत्सामर्थ्यदर्शनात् हृष्टश्चन्द्रवर्धनः स्वपुत्रीरष्टौ लक्ष्मीधराय दास्यामीत्युक्त्वा गतः। रामादयः स्वपुरं गताः।

ततो धनुषोर्गमनं रामसीतयोर्विवाहं चाकर्ण्य सहस्राक्षौहिणीबलेन युद्धार्थमागच्छन्

प्रकारसे आज्ञा पाकर वह घोड़के रूपमें वहाँ चला गया। उसे जनकने बाँधकर रख लिया। उस समय एक भीलने आकर जनकसे निवेदन किया कि अमुक स्थानमें हाथी स्थित है। तब राजा उसे पकड़नेके लिये गया। वह हाथीके भयसे उपर्युक्त घोड़ेके ऊपर सवार हुआ। घोड़ा भी उसे लेकर आकाशमें उड़ गया। उसने जनकको सिद्धकूटके ऊपर छोड़कर उसके ले आनेकी वार्ता अपने स्वामीसे कह दी। तब वह विद्याधरोंका स्वामी चन्द्रगति भी जनकको अपने घरपर ले आया। वहाँ उसने जनकका यथायोग्य अतिथि-सत्कार करके तत्पश्चात् उससे सीताकी याचना की। उत्तरमें राजा जनकने कहा कि वह रामके लिए दी जा चुकी है। यह सुनकर चन्द्रगति बोला कि वह तो भूमिगोचरी है, उससे क्या अभीष्ट सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार चन्द्रगतिके द्वारा की गई भूमिगोचरियोंकी निन्दाको सुनकर जनकने कहा— विद्याधर कौन-से महान् हैं, उनमें और आकाशमें संचार करनेवाले पक्षियोंमें कोई विशेषता नहीं है। क्या आपको यह ज्ञात नहीं है कि तीर्थंकर आदि सब शलाकापुरुष भूमिगोचरी ही होते हैं ? इसपर विद्याधरोंके स्वामी चन्द्रगतिने कहा कि अधिक प्रशंसा करनेसे कुछ लाभ नहीं है, यहाँपर जो ये वज्रावर्त और सागरावर्त धनुष हैं उन्हें यदि वह राम चढ़ा देता है तो उसके लिये सीताको दे देना। इस बातको जनकने स्वीकार कर लिया। तब चन्द्रगतिका महत्तर (सेवक) चन्द्रवर्धन उन दोनों धनुषोंको लेकर जनकके साथ मिथिलापुर गया। इस वृत्तान्तको सुनकर विदेही आदिकोंको बहुत दुख हुआ। स्वयंवरभूमि-में उन दोनों धनुषोंके घटाटोपको देखकर क्षत्रियोंका समूह भयभीत हुआ। परन्तु इस स्वयंवरमें आये हुए उन राजाओंके समूहमें रामने वज्रावर्त धनुषको तथा लक्ष्मणने दूसरे सागरावर्त धनुषको चढ़ा दिया। उनकी असाधारण शक्तिको देखकर चन्द्रवर्धनको बहुत सन्तोष हुआ। तब वह मैं लक्ष्मणके लिये अपनी आठ पुत्रियाँ दूँगा, यह कहकर विजयार्धपर वापिस चला गया। राम आदि भी अपने नगरको वापिस चले गये।

तत्पश्चात् जब प्रभामण्डलको दोनों धनुषोंके जाने एवं राम-सीताके विवाहका समाचार ज्ञात हुआ तब वह एक हजार अक्षौहिणी प्रमाण सेनाके साथ युद्धके लिये चल पड़ा। इस प्रकार

१. प मया वशो नीयते लब्धादेशे श मयात्र स नीयते लब्धादेशो ब मया सात्रानीयते लब्धादेशो। २. फ श महत्तरं। ३. ब स्फुटाटोप°। ४. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श भीतिं जगाम क्षत्रियसमूहे।

प्रभामण्डलो विदग्धनगरं दृष्ट्वा जातिस्मरो बभूव। व्याघुट्य गत्वा स्वभगिनीति निरूपितवान्। इन्दुगतिस्तस्मै राज्यं दत्वा सर्वभूतहितशरण्य-भट्टारकसमीपे प्रव्रजितः[1]। गुरुर्बहुसंघेनायोध्यापुरोद्याने दशरथेन सह बन्धुभिरागत्य वन्दितः। इन्दुगतिं दृष्ट्वानेन किमिति दीक्षितमिति पृष्टे कारणं निरूपितं[2] मुनिना प्रभामण्डल-सीतासंबन्धः। अत्रान्तरे प्रभामण्डलोऽयं मुनिवचनाद्दशरथ-राम-लक्ष्मणेभ्यो नमस्कृत्वोपविष्टायाः[3] सीतायाः प्रणामः कृतः[4]।

तदनु प्रभामण्डलेन स्वस्येन्दुगतिपुष्पवत्योः स्नेहकारणं पृष्टः सीताप्रतिबिम्बदर्शनादासक्तेश्च। मुनिः प्राह— दारुणग्रामे विप्रविमुचि-मनस्विन्योः पुत्रोऽतिभूतिर्जातः। तत्र रण्डा ज्वाला, तत्पुत्री सरसा परिणीता[5] तेन। पितापुत्रौ दानार्थमाटतुः। सरसा जारेण कयेन गता। उभाभ्यां पथि मुनिराक्रुष्टः[6] तत्पापेन तिर्यग्गतौ बभ्रमतुः। कश्चित्सरसा चन्द्रपुरेशचन्द्रध्वजमनस्विन्योः पुत्री चित्रोत्सवा[7] जाता। कयोऽपि तत्प्रधानधूमकेशि[8]स्वाहयोः पुत्रः कपिलोऽभूत्। सोऽपि चित्रोत्सवां नीत्वा विदग्धनगरे स्थितः। दानं गृहीत्वाऽऽगत्य विभूतिना[9]

युद्धार्थ आते हुए उसे मार्गमें विदग्ध नगरको देखकर जातिस्मरण हो गया। तब उसने वहाँसे वापिस लौटकर यह प्रगट कर दिया कि जिसके विषयमें मुझे अनुराग हुआ था वह मेरी बहिन है। यह सब मेरी अज्ञानताके कारण हुआ है। इस घटनासे इन्दुगतिको वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब उसने प्रभामण्डलके लिये राज्य देकर सर्वभूतहितशरण्य भट्टारकके समीपमें दीक्षा ग्रहण कर ली। सर्वभूतहितशरण्य भट्टारक विहार करते हुए बहुत-से संघके साथ अयोध्यापुरीके उद्यानमें पहुँचे। तब राजा दशरथने परिवारके साथ जाकर उनकी वंदना की। तत्पश्चात् दशरथने उनके संघमें इन्दुगतिको देखकर मुनिराजसे उसके दीक्षित होनेका कारण पूछा। उन्होंने उसकी दीक्षाका कारण प्रभामण्डल और सीताका सम्बन्ध बतलाया। इस बीचमें उस प्रभामण्डलने मुनिके वचनसे राजा दशरथ, राम और लक्ष्मणको नमस्कार करके पासमें बैठी हुई सीताको प्रणाम किया।

तत्पश्चात् प्रभामण्डलने मुनिराजसे इन्दुगति और पुष्पवतीके प्रति अपने अनुराग तथा सीताके चित्रको देखकर उसके प्रति आसक्त होनेका भी कारण पूछा। मुनि बोले— दारुण ग्राममें ब्राह्मण विमुचि और मनस्विनीके एक अतिभूति नामका पुत्र था। उसी नगरमें एक ज्वाला रांड़ (वेश्या) थी। इसके एक सरसा नामकी पुत्री थी। उसके साथ अतिभूतिने अपना विवाह किया था। एक दिन पिता और पुत्र दोनों भिक्षाके निमित्त गये थे। इस बीचमें सरसा कय नामक जारके साथ निकल गई। उन दोनोंने मार्गमें किसी मुनिकी निन्दा की। उससे उत्पन्न पापके कारण वे दोनों तिर्यचगतिमें घूमे। फिर वह सरसा कहीं चन्द्रपुरके स्वामी चन्द्रध्वज और मनस्विनीके चित्रोत्सवा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। वह कय जार भी उक्त राजाके मंत्री धूमकेशी और स्वाहाके कपिल नामका पुत्र हुआ। वह भी चित्रोत्सवाको ले जाकर विदग्ध नगरमें ठहर गया। इधर विभूति (अतिभूति) दानको लेकर जब घर वापिस

१. फ श प्रव्राजितः। २. फ °मिति कारणं पृष्टेति निरूपितं श °मिति कारणे पृष्टे तिरूपितं। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। प फ श °पविष्टाया। ४. प प्रणामः कृतं फ श प्रणाम कृतः। ५. श परणीता। ६. ब-प्रतिपाठोऽयम्। प फ श मुनिराकृष्टः। ७. ब चित्तोत्सवा (एवमग्रेऽपि)। ८. ब धूमकेशि। ९. ब °गत्यातिविभूतिना।

शोकः कृतः। तदनु पत्नीगतिर्मे इति निर्गतः। आर्तेन मृत्वा तिर्यग्गतौ भ्रमित्वा एकदा ताराख्ये[1]-सरोवरे हंसो जातः मुनिवचनानि श्रुत्वा किंनरत्वं प्राप्य तस्मादागत्य तन्नगरेशप्रकाश-सिंह-प्रियमत्योः कुण्डलमण्डितो भूत्वा राज्ये स्थितः। स कपिलो गतद्रव्यः काष्ठान्यानेतुं गतः। बाह्याल्यर्थं[2] गच्छता कुण्डलमण्डितेन चित्रोत्सवादर्शनादासक्तचेतसा स्वगृहं नीत्वा स्थितम्[3]। कपिलो गृहमागत्य काष्ठभारं निक्षिप्य तामपश्यन् विलपन्नेकेन भणितः आर्जिकाभिर्गतेति। भूवलयं परिभ्रम्य राज्ञा नीतेति ज्ञात्वा पूत्कारं कुर्वन्निर्धाटितो गत्वा मुनिरभूत्तदार्तेन मृत्वा धूमप्रभो जातः। तद्भयात् दम्पतीभ्यामरण्ये नश्यद्भ्यां मुनिसमीपे श्रावकव्रतानि गृहीतानि। कियत्कालं राज्यानन्तरं मृत्वा प्रभामण्डल-सीते जाते इत्यासक्तिर्जाता। विमुच्यादयः पुत्रपुत्रीस्नेहाद्देशान्तरं गताः। संवरनगरोद्याने मुनिं प्रणम्य तपसा देवो देव्यौ च भूत्वा सौधर्मादागत्य देव इन्दुगतिर्जातः मनस्विनी पुष्पवती, ज्वाला विदेही जातेति स्नेहकारणं निशम्य सर्वेऽपि महाविभूत्या पुरं प्रविष्टाः। विद्याधरपवनवेगाज्जनको ज्ञात्वा द्रष्टुं वियदागतो

आया तब वह वहाँ स्त्रीको न पाकर शोकाकुल हुआ। तत्पश्चात् वह जो पत्नीकी अवस्था हुई वही मेरी भी अवस्था क्यों न हो, यह सोचकर घरसे निकल गया। वह आर्तध्यानके साथ मरकर तिर्यंचगतिमें परिभ्रमण करता हुआ एक बार तारा नामक तालाबके ऊपर हंस हुआ। फिर वह मुनिके वचनोंको सुनकर किन्नर हुआ और तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर उक्त नगर (विदग्ध) के स्वामी प्रकाशसिंह और प्रियमतीका कुण्डलमण्डित नामका पुत्र होकर राजाके पदपर स्थित हुआ। उधर निर्धन कपिल एक दिन लकड़ियाँ लानेके लिये जंगलमें गया था। इधर कुण्डलमण्डित भ्रमणके लिये बाहर निकला था। मार्गमें जाते हुए वह चित्रोत्सवाको देखकर उसपर मोहित हो गया। इसीलिये वह उसे अपने घरपर ले गया। उधर जब कपिल वापिस आया तब उसने लकड़ियोंके बोझको रखकर चित्रोत्सवाको देखा। परन्तु उसे वह वहाँ नहीं दिखी। तब वह उसके लिये अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा। इतनेमें किसी एक मनुष्यने उससे कहा कि वह आर्यिकाओंके साथ गई है। तब वह उसे खोजनेके लिये पृथिवीमण्डलपर घूमा, परन्तु वह उसे प्राप्त नहीं हुई। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि चित्रोत्सवाको राजा अपने घर ले गया है तब वह दीनतापूर्ण आक्रन्दन करता हुआ वहाँ पहुँचा। किन्तु उसे वहाँसे निकाल दिया गया। तब वह मुनि हो गया। किन्तु उसका आर्तध्यान नहीं छूटा। इस प्रकार वह आर्तध्यानके साथ मरकर धूमप्रभ असुर हुआ। उसके भयसे कुण्डलमण्डित और चित्रोत्सवा दोनों भागकर वनमें पहुँचे। वहाँ उन दोनोंने मुनिके समीपमें श्रावकके व्रतोंको ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् कुछ समय तक राज्य करके वे मरणको प्राप्त होते हुए प्रभामण्डल और सीता हुए हैं। तुम्हारी सीता विषयक आसक्तिका कारण यह रहा है। विमुचि आदि पुत्र-पुत्रीके स्नेहसे देशान्तरको चले गये। उन सबने संवर नगरके उद्यानमें जाकर मुनिकी वंदना की और उनसे दीक्षा ले ली। इनमेंसे विमुचि मरकर देव और मनस्विनी तथा ज्वाला मरकर देवियाँ हुईं। फिर सौधर्म स्वर्गसे च्युत होकर वह देव इन्दुगति, देवी पर्यायको प्राप्त हुई मनस्विनी पुष्पवती, तथा ज्वाला विदेही हुई। इस प्रकार मुनिसे पारस्परिक स्नेहके कारणको सुनकर सब ही महाविभूतिके साथ नगरमें वापिस गये। उधर पवनवेग विद्याधरसे प्रभामण्डलके वृत्तान्तको जानकर उसे देखनेके लिये जनक भी वहाँ आकाशमार्गसे

१. ब ताराख॰। २. प बाह्याल्पर्थं फ श बाह्यात्यार्थं। ३. प फ श स्थितः।

दशरथादिभिर्विभूत्या पुरं प्रवेशितः। प्राघूर्णक्रियानन्तरं बालक्रीडाद्यनेकविनोदान्[1] [2] दर्शयित्वा प्रभामण्डलः पित्रादिभिः स्वपुरं गत्वा कनकाय तद्राज्यं समर्प्य जनकेन सह रथनूपुर-चक्रवाले पुरे स्थितः। विद्याधरचक्री सर्वगुणाधारोऽजनि इति मुनिवचनेन हंसोऽप्येवंविधो-ऽभूत्परः किं न स्यात् ॥२॥

[२०]

संसारे खलु कर्मदुःखबहुले नानाशरीरात्मके
प्रख्यातोज्ज्वलकीर्तिको यममुनिर्घोरोपसर्गस्य जित्।
श्लोकैः खण्डकनामकैरपि विदां किं कथ्यते देहिनां
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले ॥३॥

अस्य कथा—ओड्रविषये धर्मनगरे राजा यमः सर्वशास्त्रज्ञो राज्ञी धनमती पुत्रो गर्दभः पुत्री कोणिका। अन्यासां राज्ञीनां पुत्राणां पञ्च शतानि। मन्त्री दीर्घनामा। निमित्तिना आदेशः कृतो यः कोणिकां परिणेष्यति स सर्वभूमिपतिर्भविष्यति। ततो यमेन कोणिका भूमिगृहे प्रच्छन्ना धृता। प्रतिचारिका निवारिता न कस्यापि कथयन्ति ताम्। एकदा पञ्चशतयतिभिः सहागतस्य सुधर्ममुनेर्वन्दनार्थं जनं गच्छन्तमालोक्य यमो ज्ञानगर्वान्मुनीनां निन्दां कुर्वाणस्त-

जा पहुँचा। तब दशरथ आदि बड़ी विभूतिके साथ उसे नगरके भीतर ले आये। उन सबने जनकका खूब अतिथि-सत्कार किया। तत्पश्चात् प्रभामण्डल बाल-क्रीड़ा आदि अनेक विनोदोंको दिखला करके पिता आदिकोंके साथ अपने नगरको गया। वह कनकको वहाँका राज्य देकर जनकके साथ रथनूपुर-चक्रवालपुरमें जाकर स्थित हुआ। वह सर्व गुणोंसे सम्पन्न होकर विद्याधरों-का चक्रवर्ती हुआ। इस प्रकार मुनिके वचनोंको सुनकर जब हंस भी ऐसी समृद्धिको प्राप्त हुआ है तब उसे सुनकर मनुष्य क्या न होगा ? वह तो मुक्तिको भी प्राप्त कर सकता है ॥२॥

अनेक जन्म-मरणरूप यह संसार कर्मजनित बहुत दुःखोंसे व्याप्त है। इस भूमण्डलपर जब यम मुनि कुछ खण्डक श्लोकोंसे ही घोर उपसर्गके विजेता होकर निर्मल कीर्तिके प्रसारक हुए हैं तब भला अन्य विद्वान् मनुष्योंके विषयमें क्या कहा जाय ? मैं पृथिवीतलपर उस जिनवाणीकी प्राप्तिसे जिनदेवका भक्त होकर सम्यक्चारित्रको धारण करता हुआ कृतार्थ होता हूँ ॥३॥

इसकी कथा— ओड्र (उण्ड्र) देशके अन्तर्गत धर्मनगरमें यम नामका राजा राज्य करता था। वह समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता था। उसकी पत्नीका नाम धनमती था। इनके गर्दभ नामका एक पुत्र तथा कोणिका नामकी पुत्री थी। उसके पाँच सौ पुत्र और भी थे जो अन्य रानियोंसे उत्पन्न हुए थे। उक्त राजाके दीर्घ नामका मंत्री था। किसी ज्योतिषीने राजाको यह सूचना दी थी कि जो कोई इस कोणिकाके साथ विवाह करेगा वह समस्त पृथिवीका स्वामी होगा। इसीलिये उसने कोणिकाको तलगृहके भीतर गुप्तरूपसे रख रक्खा था। उसने परिचर्या करनेवाली सब स्त्रियोंको वैसी सूचना भी कर दी थी। इसीलिये वे कभी किसीसे कोणिकाकी बातको नहीं कहती थीं। एक दिन वहाँ पाँच सौ मुनियोंके साथ सुधर्म मुनि आये। उनकी वंदनाके निमित्त जाते हुए जनसमूहको देखकर यम राजाके हृदयमें अभिमानका प्रादुर्भाव हुआ। मुनियोंकी निन्दा करता

१. क प्राघूर्णिकक्रिया° ब प्राघूर्णकक्रिया°। २. प श विनोदात्।

त्समीपं गतः। मुनेर्ज्ञाननिन्दाकरणात्[1] तत्क्षणादेव बुद्धिनाशस्तस्य जातः। ततो निर्मदो मुनीन् प्रणम्य धर्ममाकर्ण्य गर्दभाय राज्यं दत्त्वा पञ्चशतपुत्रैः सह मुनिरभूत्। पुत्राः सर्वे श्रुतधरा जाताः। यममुनेस्तु पञ्चनमस्कारमात्रमपि नायाति[2]। गुरुणा गर्हितो लज्जितो गुरुं पृष्ट्वा तीर्थवन्दनार्थमेकाकी गतः। तत्र यवक्षेत्रमध्ये गर्दभरथेन गच्छत एकपुरुषस्य गर्दभा यवभक्षणार्थं[3] रथं नयन्ति पुनर्निक्षिपन्ति। तानित्थमवलोक्य यममुनिना खण्डश्लोकः कृतः—

कड्डसि पुण णिक्खेवसि रे गद्दहा जवं पत्थेसि खादिदुं ॥१॥

अन्यदा तस्य मार्गे गच्छतो लोकपुत्राणां क्रीडतां अष्टकोणिका[4] बिले पतिता। ते च तामपश्यन्त इतस्ततो धावन्ति। यममुनिना तामवलोक्य खण्डश्लोकः कृतः—

अण्णत्थ किं पलोवहं[5] तुम्हे पत्थम्मि णिबुड्डिया[6] छिद्दे अच्छइ कोणिआ ॥२॥

अथ एकदा मण्डूकं भीतं पद्मिनीपत्र[7]तिरोहित[8]सर्पाभिमुखं गच्छन्तमालोक्य खण्डश्लोकः कृतः—

अम्हादो णत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुज्झ ॥३॥

हुआ उनके समीपमें गया। मुनियोंके ज्ञानकी निन्दा करनेके कारण उसकी बुद्धि उसी समय नष्ट हो गई। तब अभिमानसे रहित हुए उसने मुनियोंको प्रणाम करके उनसे धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् वह गर्दभ पुत्रको राज्य देकर अन्य पाँच सौ पुत्रोंके साथ मुनि हो गया। उसके वे सब पुत्र आगमके पारगामी हो गये। परन्तु यम मुनिको पंचनमस्कार मन्त्र मात्र भी नहीं आता था। इसके लिये गुरुने उसकी निन्दा की। तब वह लज्जित होता हुआ गुरुसे पूछकर तीर्थोंकी वंदना करनेके लिये अकेला चला गया। मार्गमें उसने एक जौके खेतमें गधोंके रथसे जाते हुए एक मनुष्यको देखा। उसके गधा जौके खानेके लिये रथको ले जाते थे और फिर छोड़ देते थे। उनको ऐसा करते हुए देखकर यम मुनिने यह खण्डश्लोक रचा—

कड्डसि पुण णिक्खेवसि रे गद्दहा जवं पत्थेसि खादिदुं ॥१॥

अर्थात् हे गर्दभो! तुम रथको खींचते हो और फिर रुक जाते हो, इससे ज्ञात होता है कि तुम जौके खानेकी प्रार्थना करते हो।

दूसरे समय मार्गमें जाते हुए उसने लोगोंके खेलते हुए पुत्रोंको देखा। उनकी गिल्ली एक छेदमें आ पड़ी थी। वह उन्हें नहीं दिख रही थी। इसलिये वे इधर उधर दौड़ रहे थे। यम मुनिने उसको देखकर यह खण्डश्लोक बनाया—

'अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे पत्थम्मि णिबुड्डिया छिद्दे अच्छइ कोणिआ ॥२॥'

अर्थात् हे मूर्ख बालको! तुम अन्यत्र क्यों खोज रहे हो, तुम्हारी गिल्ली इस छेदके भीतर स्थित है।

तत्पश्चात् एक बार उसने एक भयभीत मेंढकको जहाँपर सर्प छुपकर बैठा हुआ था उस कमलिनी पत्रकी ओर जाते हुए देखकर यह खण्डश्लोक बनाया—

अम्हादो णत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुज्झ ॥३॥

---

१. ब कारणात्। २. ब न याति। ३. फ यवभक्षणार्थं, श यवरक्षणार्थं। ४. ब काष्ठकोणिका। ५. ब पलोवसि। ६. फ °म्मि बुड्डिया। ७. श पद्मिनीपत्रं। ८. ब तिरोहितं।

एतैस्त्रिभिः श्लोकैः स्वाध्यायवन्दनादिकं कुर्वन् विहरमाणो धर्मनगरोद्याने कायोत्सर्गेण स्थितः। तमाकर्ण्य दीर्घ-गर्दभौ शङ्कितौ तं मारयितुं रात्रौ गतौ। तत्पृष्ठे स्थितो दीर्घस्तरवारिं पुनः पुनरसिमाकर्षति। व्रतिवधशङ्कितत्वान्न हन्ति। तथा गर्दभोऽपि। तस्मिन् प्रस्तावे मुनिना स्वाध्यायं गृह्णता प्रथमः खण्डश्लोकः पठितः। तमाकर्ण्य गर्दभेन दीर्घो भणितो लक्षितौ[1] मुनिना। द्वितीयखण्डश्लोकमाकर्ण्य भणितं गर्दभेन भो दीर्घ, मुनिर्न राज्यार्थमागतः किंतु कोणिकां कथयितुमागतः। तृतीयखण्डश्लोकमाकर्ण्य गर्दभेन चिन्तितं दुष्टोऽयं दीर्घो मां हन्तुमिच्छति। मुनिः स्नेहान्मम बुद्धिं दातुमागतः। ततो द्वावपि तौ मुनिं प्रणम्य धर्ममाकर्ण्य श्रावकौ जातौ। यममुनिरप्यतीव वैराग्यं गतः श्रमणत्वं विशिष्टचारित्रं प्राप्य सप्तर्द्धियुक्तो जातः, मुक्तश्च। एवंविधेनापि श्रुतेन यममुनिरेवंविधोऽभूद्विशिष्टश्रुतेनान्यः किं न स्यादिति ॥ ३ ॥

[२१-२२]

मायाकर्णनधीरपीह वचने श्रीसूर्यमित्रो द्विजो
जैनेन्द्रे गुणवर्धने च समदो भूपेन्द्रवन्द्यः[2] सदा।

. अर्थात् तुम्हें हमसे भय नहीं है, किन्तु दीर्घसे —लंबे सर्पसे— भय दिखता है।

इन तीन श्लोकोंके द्वारा स्वाध्याय एवं वन्दना आदि कर्मको करनेवाला वह यम मुनि विहार करते हुए धर्म नगरके उद्यानमें आकर कायोत्सर्गसे स्थित हुआ। उसे सुनकर दीर्घ मंत्री और राजकुमार गर्दभको उससे भय हुआ। इसीलिये वे दोनों रात्रिमें उसके मारनेके लिये गये। दीर्घ मंत्री उसके पीछे स्थित होकर उसे मारनेके लिये बार बार तलवारको खींच रहा था। परन्तु व्रतीके वधसे भयभीत होकर वह उसकी हत्या नहीं कर रहा था। उधर गर्दभकी भी वही अवस्था हो रही थी। इसी समय मुनिने स्वाध्यायको करते हुए उक्त खण्डश्लोकोंमें प्रथम खण्डश्लोकको पढ़ा। उसे सुनकर और उससे यह अभिप्राय निकालकर कि 'हे गर्दभ क्यों बार बार तलवार खींचता है और रखता है' गर्दभने दीर्घसे कहा कि मुनिने हम दोनोंको पहिचान लिया है। तत्पश्चात् मुनिने दूसरे खण्डश्लोकको पढ़ा। उसे सुनकर और उससे यह भाव निकालकर कि 'अन्यत्र क्या देखते हो, कोणिका तो तलघरमें स्थित है' गर्दभ बोला कि हे दीर्घ ! मुनि राज्यके लिये नहीं आये हैं, किन्तु कोणिकासे कुछ कहनेके लिये आये हैं। फिर उसने तीसरे खण्डश्लोकको पढ़ा। उसे सुनकर और उसका यह अभिप्राय निकालकर कि 'तुझे हमसे भय नहीं, किन्तु दीर्घ मंत्रीसे भय है' गर्दभने सोचा कि यह दुष्ट दीर्घ मुझे मारना चाहता है। मुनि स्नेहवश मुझे प्रबुद्ध करनेके लिये आये हैं। इससे वे दोनों ही मुनिको नमस्कार करके और उनसे धर्मश्रवण करके श्रावक हो गये। यम मुनि भी अत्यन्त विरक्त हो जानेसे विशिष्ट चारित्रके साथ यथार्थ मुनिस्वरूपको प्राप्त होकर सात ऋद्धियोंके धारक हुए। अन्तमें उन्होंने मोक्ष पदको भी प्राप्त किया। इस प्रकारके श्रुतसे भी जब यम मुनि सात ऋद्धियोंके धारक होकर मुक्तिको प्राप्त हुए हैं तब दूसरा विशिष्ट श्रुतका धारक क्या न होगा ? वह तो अनेकानेक ऋद्धियोंका धारक होकर मुक्त होगा ही ॥३॥

जो अभिमानी सूर्यमित्र ब्राह्मण यहाँ गुणोंको वृद्धिगत करनेवाले जिनेन्द्रके वचन (आगम) के सुननेमें केवल मायाचारसे ही प्रवृत्त हुआ था वह भी उसके प्रभावसे कर्मसे रहित

१. क लक्षितो। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श भूपेन्द्रवन्द्यं।

जातः ख्यातगुणो विनष्टकलिलो देवः स्वयंभूर्यतो
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले ॥ ४ ॥
निन्द्या दृष्टिविहीनपूतितनुका चाण्डालपुत्री च सा
संजातः सुकुमारकः सुविदितोऽवन्तीषु भोगोदयः।
यस्माद्भव्यसुवन्द्यदिव्यमुनिना संभाषितादागमात्
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले ॥ ५ ॥

अनयोः कथे सुकुमारचरित्रे याते[1] इति तत्कथ्यते। तथाहि— अङ्गदेशे चम्पायां राजा चन्द्रवाहनो देवी लक्ष्मीमती पुरोहितोऽतिरौद्रो मिथ्यादृष्टिर्नागशर्मा भार्या त्रिवेदी पुत्री नागश्रीः। कन्या सा एकदा ब्राह्मणकन्याभिः पुरबाह्योद्यानस्य नागालयं नागपूजार्थं ययौ। तत्र द्वौ मुनी सूर्यमित्राचार्याग्निभूतिभट्टारकनामानौ तस्थतुः। तौ विलोक्य नागश्रीरुपशान्तचित्ता ननाम धर्ममाकर्ण्य व्रतानि जग्राह। गृहमागमनसमये तस्याः सूर्यमित्रोऽवदत्—हे पुत्रि, यदि ते पिता व्रतानि त्याजयति तदा व्रतानि मे समर्पणीयानि इति। एवं करोमीति भणित्वा सा कन्या गृहं जगाम। तत्पिता पूर्वमेव ब्राह्मणकन्याभ्यस्तदवधार्य कुपितः आगतां पुत्रीं बभाण—हे पुत्रि विरूपकं कृतं त्वया, विप्राणां क्षपणकधर्मानुष्ठानमनुचितमिति।

होकर प्रसिद्ध गुणोंका धारक स्वयम्भू (सर्वज्ञ) हो गया। इसीलिये वह सदा राजाओं व इन्द्रोंका भी वंदनीय हुआ। अतएव मैं जिन देवका भक्त होता हुआ उस आगमकी प्राप्तिसे सम्यक्-चारित्रको धारण करके इस लोकमें कृतार्थ होता हूँ ॥४॥

जो निकृष्ट चाण्डालकी पुत्री दृष्टिसे रहित (अन्धी) और दुर्गन्धमय शरीरसे संयुक्त थी वह भी भव्योंके द्वारा अतिशय वंदनीय ऐसे दिव्य मुनिसे प्ररूपित उस आगमके सुननेसे उज्जयिनी नगरीके भीतर भोगोंके भोक्ता सुप्रसिद्ध सुकुमालके रूपमें उत्पन्न हुई। अतएव मैं जिन देवका भक्त होकर उक्त आगमकी प्राप्तिसे सम्यक्चारित्रसे विभूषित होकर इस पृथिवीके ऊपर कृतार्थ होना चाहता हूँ ॥५॥

इन दोनों वृत्तोंकी कथायें सुकुमालचरित्रमें प्राप्त होती हैं। तदनुसार उनकी यहाँ प्ररूपणा की जाती है— अंग देशके भीतर चम्पापुरीमें चन्द्रवाहन राजा राज्य करता था। रानीका नाम लक्ष्मीमती था। उक्त राजाके यहाँ एक नागशर्मा नामका मिथ्यादृष्टि पुरोहित था जो अतिशय रौद्र परिणामोंसे सहित था। नागशर्माकी स्त्रीका नाम त्रिवेदी था। इन दोनोंके एक नागश्री नामकी पुत्री थी। एक दिन वह कन्या ब्राह्मण कन्याओंके साथ नागोंकी पूजा करनेके लिए नगरके बाह्य भागमें स्थित एक नागमन्दिरको गई थी। वहाँ सूर्यमित्र आचार्य और अग्निभूति भट्टारक नामके दो मुनिराज स्थित थे। उन्हें देखकर नागश्रीने निर्मल चित्तसे उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उसने उनसे धर्मको सुनकर व्रतोंको ग्रहण कर लिया। जब वह उनके पाससे घरके लिये वापिस आने लगी तब सूर्यमित्र आचार्यने कहा कि हे पुत्री! यदि तेरा पिता तुझसे इन व्रतोंको छोड़ देनेके लिये कहे तो तू इन व्रतोंको हमें वापिस दे जाना। उत्तरमें उसने कहा कि ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगी। यह कहकर वह अपने घरको चली गई। नागश्रीके आनेके पूर्व ही नागशर्माको ब्राह्मण-कन्याओंसे वह समाचार मिल चुका था। इससे उसका क्रोध भड़क उठा। नागश्रीके घर आनेपर वह उससे बोला कि हे पुत्री! तूने यह अयोग्य कार्य किया है, ब्राह्मणोंके लिये दिगम्बर धर्मका आचरण करना

१. ब–प्रतिपाठोऽयम्। श जाते।

ततस्त्वद्व्रतानि त्यज । पितुराग्रहात् तयोदितम्—हे तात, यतिरभाणीद्यदि ते पिता व्रतानि त्याजयति मे समर्पयेति । ततस्तस्य समर्प्यागच्छामीति निर्गता, तदा सोऽपि[1] ।

मार्गे कंचन युवानं[2] बद्धं मारयितुं नीयमानम् अभीक्ष्य अवलोक्य [°नं वीक्ष्य] नागश्रीः[3] पितरमपृच्छत्-तात, किमित्ययं बद्ध इति । सोऽवददहं न जानामि कोट्टपालं पृच्छामीति तमपृच्छत् 'किमित्ययं बद्धः' इति । स आह—अत्रैव चम्पायामष्टादशकोटिद्रव्येश्वरो वणिक् देवदत्तो भार्या समुद्रदत्ता । तत्पुत्र एक एवायं वसुदत्तनामा अक्षधूर्तनामद्यूतकारेण द्यूतं क्रीडितवान् दीनारलक्षं हारितवांश्च । तेन स्वद्रव्यम् अत्याग्रहेण याचितम् । अनेन कोपेन छुरिकया स मारित इति मारयितुं नीयत इति निरूपिते[4] नागश्रीरभृत हिंसायामेवंविधं दुःखं भवति चेत्तद्विरमणं मया तत्समीपे गृहीतं कथं त्यज्यते । पिताबोचत्तिष्ठत्विदमन्यानि समर्प्यागच्छावश्चलेति ॥ १ ॥

ततोऽग्रेऽस्मिन् प्रदेशे कस्यचिदुत्तानस्थितस्य मुखे शूलमाताड्यमानं विलोक्य किमित्येवंविधं दुःखं प्राप्तवान् अयमिति पृच्छति स्म नागश्रीः पितरम् । स कथयति—हे

उचित नहीं है । इसलिये तू ग्रहण किये हुए उन व्रतोंको छोड़ दे । नागश्रीने जब पिताका ऐसा आग्रह देखा तब वह उससे बोली कि हे तात ! उस समय मुनिने मुझसे कहा था कि यदि तेरा पिता इन व्रतोंको छुड़ानेका आग्रह करे तो तू इन्हें हमारे लिये वापिस दे जाना । इसलिये मैं जाकर उन्हें वापिस दे आती हूँ । ऐसा कहकर वह घरसे निकल पड़ी । तब पिता भी उसके साथमें गया ।

इसी समय मार्गमें कोतवाल एक युवा पुरुषको बाँधकर मारनेके लिये ले जा रहा था । उसे देखकर नागश्रीने पितासे पूछा—हे तात ! इसे किसलिये बाँध रक्खा है ? उत्तरमें नागशर्माने कहा कि मैं नहीं जानता हूँ, चलो कोतवालसे पूछें । यह कहकर उसने कोतवालसे पूछा कि इस पुरुषको किसलिये पकड़ा है ? कोतवाल बोला—इसी चम्पा नगरीमें एक देवदत्त नामका वैश्य है जो अठारह करोड़ द्रव्यका स्वामी है । उसकी पत्नीका नाम समुद्रदत्ता है । उन दोनोंका यह वसुदत्त नामका इकलौता पुत्र है । आज यह अक्षधूर्त नामक जुवारीके साथ जुआ खेलकर एक लाख दीनारोंको हार गया था । अक्षधूर्तने जब इससे अपने जीते हुए धनको आग्रहके साथ माँगा तब क्रोधित होकर इसने उसे छुरीसे मार डाला । यही कारण है जो यह बाँधकर मारनेके लिये ले जाया जा रहा है । कोतवालके इस उत्तरको सुनकर नागश्रीने पितासे कहा कि यदि हिंसाके कारण इस प्रकारका दुख भोगना पड़ता है तो उसी हिंसाके परित्यागका तो व्रत मैंने मुनिके समीपमें ग्रहण किया है । फिर उसे कैसे छोड़ा जा सकता है ? इसपर नागशर्माने कहा कि अच्छा इसे रहने दो, चलो दूसरे सब व्रतोंको वापिस कर आवें ॥१॥

आगे जानेपर नागश्रीने एक स्थानपर किसी ऐसे पुरुषको देखा जो ऊर्ध्वमुख स्थित होकर मुखके भीतरसे गये हुए शूलसे पीड़ित हो रहा था । उसे देखकर नागश्रीने पितासे पूछा कि यह इस प्रकारके दुखको क्यों प्राप्त हुआ है ? नागशर्माने उत्तर दिया कि हे पुत्री ! इस चन्द्रवाहन

---

१. फ श सो पि पितापि । २. ब किंचिद्युवानं । ३. प श °नं अभीक्ष्य अवलोक्य नागश्रीः फ °नं वीक्ष्य अवलोक्य नागश्रीः ब °नमवीक्ष्य नागश्रीः । ४. फ श निरूपितो ।

पुत्रि, अस्य चन्द्रवाहनस्योपरि समस्तबलेनागत्य वज्रवीर्यनामा राजा देशसीमायां स्थित्वा एतदन्तिकं दूतं प्रेषितवान्। तेनागत्य राजा विज्ञप्तः–हे राजन्, मत्स्वामिनादिष्टमवधारय। कथम्। मत्सेवा, कर्तव्या नोचेद्रणरङ्गे स्थातव्यमेतदपि नोचेच्चम्पापुरं दातव्यमिति। चन्द्रवाहनो रण एव तिष्ठामीति भणित्वा दूतं विससर्ज। तदनु बलनामानं सेनापतिं बहुबलेन तस्योपरि प्रेषितवान्। स चागमत्। उभयोर्बलयोर्महायुद्धे सत्ययं राज्ञोऽङ्गरक्षकस्तक्षकनामा भीत्या पलाय्यागत्य राज्ञः कथितवान् देव, वज्रवीर्यश्चमूपतिं हतवान् हस्त्यादिकं गृहीतवानिति निशम्य राजा विषण्णोऽभूत्। इतः संग्रामे बलो विपक्षं बबन्ध गृहीत्वागतवांश्च। तदागमनाडम्बरं वीक्ष्य राजा विपक्ष एवायमिति मत्वा संनद्धो भूत्वा दुर्गस्य प्रतोलीर्दापितवान् दुर्गस्योपरि वीरान् व्यवस्थाप्य स्वयं हस्तिनं चटित्वाऽस्थात्। तथाविधं राज्ञो व्यग्रत्वमवेक्ष्य[1] बलः प्रकटीभूय प्रतोलीरुद्घाटयति स्म, राजानं दृष्टवान्। राजा वज्रवीर्यं विमुच्य परिधानं दत्त्वा तद्देशं तस्य दापितवान्[2]। अनु सुखेनास्थादद्यैतदसत्यं भाषितं स्मृत्वेमां शास्तिं निरूपितवान् इति। नागश्रियोक्तमसत्यनिवृत्तिर्मया तदन्तिके गृहीता कथं त्यज्यते इति। पुरोहितोऽभाणीदिदमप्यास्तामन्यानि समर्पयावश्चलेति ॥ २ ॥

राजाके ऊपर आक्रमण करनेके लिये वज्रवीर्य नामक राजा समस्त सेनाके साथ आकर उसके देशकी सीमापर स्थित हो गया। पश्चात् उसने चन्द्रवाहनके पास एक दूतको भेजा। दूतने आकर राजासे निवेदन किया कि हे राजन्! मेरे स्वामीने जो आपके लिये आदेश दिया है उसके ऊपर विचार कीजिये। उनका आदेश है कि तुम मेरी सेवाको स्वीकार करो, यदि यह स्वीकार नहीं है तो फिर युद्धभूमिमें आकर स्थित होओ, और यदि यह भी स्वीकार नहीं है तो चम्पापुरको मेरे स्वाधीन करो। यह सुनकर चन्द्रवाहनने कहा कि ठीक है, मैं रणभूमिमें ही आकर स्थित होता हूँ। यह कहते हुए उसने उस दूतको वापिस कर दिया। तत्पश्चात् उसने अपने बल नामक सेनापतिको बहुत-सी सेनाके साथ वज्रवीर्यके ऊपर आक्रमण करनेके लिये भेज दिया। उसके पहुँच जानेपर दोनों ओरकी सेनाओंमें घमासान युद्ध हुआ। उनमें युद्ध चल ही रहा था कि राजाका यह तक्षक नामका अंगरक्षक भयभीत होकर रणभूमिसे भाग आया। इसने राजाके पास आकर उससे कहा कि हे देव! वज्रवीर्यने सेनापतिको मारकर हाथी, घोड़े आदि सबको अपने अधिकारमें ले लिया है। यह सुनकर राजाको बहुत खेद हुआ। उधर बल सेनापतिने युद्धमें शत्रुको बाँध लिया था। वह उसको लेकर चन्द्रवाहनके पास आया। उसके आनेके ठाट बाटको देखकर राजाको सन्देह हुआ कि यह शत्रु ही आ रहा है। इसलिए उसने युद्धके लिये तैयार होकर किलेके द्वारोंको बन्द करा दिया। साथ ही वह किलेके ऊपर सुभटोंको स्थापित करके स्वयं हाथीके ऊपर चढ़कर स्थित हुआ। चन्द्रवाहनकी वैसी उद्विग्नताको देखकर बलने प्रगट होते हुए द्वारोंको खुलवाया और राजाका दर्शन किया। राजाने वज्रवीर्यको बन्धनमुक्त करके उसे वस्त्राभूषणादि देते हुए अपने देशमें वापिस भेज दिया। तब वह सुखपूर्वक स्थित हुआ। इसके उपर्युक्त असत्य वचनका स्मरण करके राजाने आज इसके लिये यह दण्ड घोषित किया है। यह सुनकर नागश्रीने पितासे कहा कि मैंने मुनिके समीपमें असत्य वचनके त्यागका नियम लिया है, फिर उसे क्यों छोड़ूँ? इसपर पुरोहित बोला कि अच्छा इसे भी रहने दो, चलो शेष व्रतोंको वापिस दे आवें ॥२॥

१. ब °मवीक्ष्य। २. ब थापितवान्।

ततोऽन्यस्मिन् प्रदेशे शूले प्रोतं पुरुषमीक्षांचक्रेऽप्राक्षीच्च पितरं 'किमर्थमयं निगृह्यते' इति सोऽवदन्मया न ज्ञायते, चण्डकर्माणं पृच्छामीत्यपृच्छत्। स आह। अत्र राजश्रेष्ठी वसुदत्तो भार्या वसुमती पुत्री वसुकान्ता। कन्यातिरूपवती युवतिश्च[1]। सा एकदा सर्पदष्टा मृतेति श्मशानं दग्धुं नीता। चितारोपणावसरेऽनेकदेशान् परिभ्रमन् वणिक्नन्दनो गरुडनाभिनामा महागारुडी तत्र प्राप्तस्तत्स्वरूपमवबुध्यावादीद्यदीमां मह्यं दास्यति तर्हि जीवयामीति। तत्स्वरूपं विचार्य श्रेष्ठी बभाण—दास्यामि जीवयेति। तेनाभाणि 'प्रातर्निर्विषां करोमि, रात्रावस्या अत्रैव यत्नः कर्तव्यः' इति। ततः श्रेष्ठी सहस्रं सहस्रं दीनाराणामेकैकस्मिन् कर्पटे बबन्धेति। ततश्चत्वारोऽपि पोट्टलकानेकस्मिन्नेव कर्पटे बद्ध्वा तद्विमाननिकटे धृत्वा चतुर्णां भटानामवदत् हे भटाः, इमां रात्रौ यत्नेन रक्षतैकैकस्मै सहस्र-सहस्रद्रव्यं दास्यामि। ततश्चत्वारोऽपि रक्षन्तः स्थिताः। अन्ये जनाः स्वस्थानं जग्मुः। द्वितीयदिने तेनोत्थापिता सा। श्रेष्ठिना तस्मै दत्ता सा। चतुःस्वर्णपोट्टलकमध्ये त्रय एव स्थिताः। श्रेष्ठिनाभाणि—येन स गृहीतस्तस्य स प्राप्तः, अन्ये

वहाँसे आगे जाते हुए दूसरे स्थानमें नागश्रीने शूलीके ऊपर चढ़ाये गये एक पुरुषको देखकर अपने पितासे पूछा कि इसे यह दण्ड क्यों दिया गया है ? नागशर्मा बोला कि मुझे ज्ञात नहीं है, चलकर चण्डकर्मासे पूछता हूँ। तदनुसार उसके पूछनेपर चण्डकर्मा बोला— इसी नगरमें एक वसुदत्त नामका राजसेठ रहता है। उसकी पत्नीका नाम वसुमती है। इनके वसुदत्ता नामकी एक पुत्री है। वह अतिशय सुन्दर व युवती है। उसे एक दिन सर्पने काट लिया था। तब उसे मर गई जानकर जलानेके लिये श्मशानमें ले गये। वहाँ उसे चिताके ऊपर रखा ही था कि इतनेमें अनेक देशोंमें परिभ्रमण करता हुआ एक गरुड़नाभि नामका वणिक्पुत्र आया। वह गारुड़ विद्यामें निपुण था। उसे जब यह ज्ञात हुआ कि इसे सर्पने काट लिया है तब वह बोला कि यदि तुम मेरे लिये देते हो तो मैं इसे जीवित कर देता हूँ। तब तद्विषयक जानकारी प्राप्त करके सेठने उससे कहा कि ठीक है, मैं इस पुत्रीको तुम्हारे लिये दे दूँगा, तुम इसे जीवित कर दो। यह सुनकर गरुड़नाभिने कहा कि मैं इसे प्रातः कालमें विषसे रहित कर दूँगा, रात्रिमें यहाँपर ही इसके रक्षणका प्रयत्न कीजिये। तब सेठने एक एक कपड़ेमें एक एक हजार दीनारें बाँधकर उनकी चार पोटरी बनाईं। फिर उन चारों ही पोटरियोंको एक कपड़ेमें बाँधकर उसे उसने पुत्रीके विमानके पास रख दिया। तत्पश्चात् उसने चार सुभटोंको बुलाकर उनसे कहा कि हे वीरो ! तुम रात्रिमें यहाँ इस पुत्रीकी रक्षा करो, मैं तुम लोगोंमेंसे प्रत्येकको एक एक हजार दीनार दूँगा। सेठके कथनानुसार वे चारों उसकी रक्षा करते हुए वहाँ स्थित रहे और शेष सब अपने अपने घरको चले गये। दूसरे दिन गरुड़नाभिने उसे विषसे रहित करके उठा दिया। तब सेठने पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार उस पुत्रीको गरुड़नाभिके लिए प्रदान कर दिया। उधर उन चार सुवर्णकी पोटरियोंमेंसे तीन ही वहाँ स्थित थीं। यह देखकर सेठने कहा जिसने उस पोटरीको लिया है उसे तो वह मिल ही गई है, दूसरे तीन इन पोटरियोंको ले लो। इसपर

---

१. श °रूपवती युवति रूपवती युवतिश्च।

अथ इमान् गृह्णन्तु। सर्वैर्भणितं मया न गृहीत इति। ततः श्रेष्ठी राज्ञोऽकथयच्चोरिकया मे निष्कसहस्रं गतमिति। राजा चण्डकीर्तिनाम्नश्चण्डकर्मण उक्तवान्—चोरं समर्पय, नोचेत्तव शिर इति। चण्डकीर्तिरवोचत्— पञ्चरात्रे चोरं न समर्पयामि चेद्राजा यज्जानाति तत्करोतु। एवमस्त्विति राजाभ्युपजगाम। चण्डकीर्तिरपि सचिन्तस्तैश्चतुर्भिः स्वगृहं जगाम। तत्पुत्री सुमतिर्वेश्यातिविदग्धा पितरं सचिन्तं विलोक्यापृच्छत्—तात, चिन्ताकारणं किमिति। तेन स्वरूपे निरूपिते तयावादि—निश्चिन्तो भवाहं चोरं ते समर्पयामि। तच्चतुर्णां भोजनादिकं दत्त्वा पञ्चरात्रीन् युष्माभिरत्र स्थातव्यमिति प्रतिपाद्यापवरके मञ्चादिकं च दत्त्वा चण्डकीर्तिः सभृत्यस्तं[1] भेदयितुं लग्नः। सा तद्दिने गृहीतग्रहणका तेष्वेकं[2]माकारयति स्म। तं विलोक्य गद्दिकायामुपवेश्य[3] क्रमेण सर्वानपि उपवेश्योक्तवती। चतुर्थैकस्याहमत्यासक्ता[4] जाता। परं किंतु मनसि मे विकल्पो वर्तते, तमपहरत। कथं युष्मासु स्थितं द्रव्यं चौरो जग्राहेति कौतुकम्। तत्र यूयं किं कुर्वन्तः स्थिता इति निरूप्यताम्। तत्रैकेन भण्यते—हे सुमतेऽहमेतेषां[5] निरूप्य वेश्यागृहं गतस्तस्मात्पुनः पश्चिमयामे तत्र गतः। अन्येन भण्यतेऽहमविसमूहं गतः। तस्मादेका मेण्ढिका चोरयित्वानीता मया। तदा प्राक्किमभवदिति

उन चारोंने कहा कि हमने उस पोटरीको नहीं लिया है। तब सेठने राजासे कहा कि मेरी एक हजार दीनारें चोरी गई हैं। राजाने इस चोरीकी वार्ताको ज्ञात करके चण्डकीर्ति नामके कोतवाल-को बुलाया और उससे कहा कि जाओ व उस चोरका पता लगाकर मेरे पास लाओ, अन्यथा तुम्हारा शिर काट लिया जावेगा। इस राजाज्ञाको सुनकर कोतवालने कहा कि हे राजन्! यदि मैं पाँच दिनके भीतर उस चोरको खोजकर न ला सकूँ तो आप जो जाने मुझे दण्ड दें। तब 'ठीक है' कहकर राजाने उसकी यह बात स्वीकार कर ली। चण्डकीर्ति भी चिन्तातुर होकर उन चारोंके साथ अपने घरको गया, उस कोतवालके एक सुमति नामकी अतिशय चतुर पुत्री थी। वह वेश्या थी। उसने पिताको सचिन्त देखकर उससे चिन्ताका कारण पूछा। तब उसने उससे पूर्वोक्त घटना कह दी। उसे सुनकर उसने पितासे कहा कि आप चिन्ताको छोड़ दें, मैं उस चोरका पता लगाकर आपके स्वाधीन करती हूँ। कोतवालने उन चारोंको भोजन आदि दिया और उनसे कहा कि तुम्हें पाँच दिन यहींपर रहना पड़ेगा, उसने उन्हें एक कोठेमें चारपाई आदि भी दे दी। फिर वह अन्य सेवकोंके साथ उस चोरीके रहस्यकी जानकारी प्राप्त करनेमें उद्यत हो गया। इधर उस दिन उस वेश्याने उनमेंसे प्रत्येकको बुलाया और उसे देखकर गादीपर बैठाया। इस प्रकारसे वह सभीको बैठाकर उनसे बोली कि मैं तुम चारोंमेंसे किसी एकके ऊपर अत्यन्त आसक्त हुई हूँ। किन्तु मेरे मनमें एक सन्देह है, उसे दूर करो। वह यह कि तुम चारोंके वहाँ रहते हुए भी चोरने वहाँ स्थित द्रव्यका अपहरण कैसे किया और तब तुम लोग क्या कर रहे थे, यह मुझे बतलाओ। इसपर उनमें से एक बोला कि हे सुमते! मैं इन सबको कहकर वेश्याके घर चला गया था और फिर वहाँसे रातके पिछले पहरमें वहाँ वापिस पहुँचा था। दूसरेने कहा कि मैं भेड़ोंके समूहमें गया था और वहाँसे एक भेड़को चुराकर लाया था। उसके पूर्वमें क्या हुआ,

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श सभृत्यस्तान्। २. क तद्दिने अगृहीत गृहणकालेष्वेकैक°। ३. श गद्दिक-यामुपवेश्य। ४. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श चतुर्थेष्वेकस्यामह°। ५. श भण्यतेहमेतेषां।

न जानामि। अपरेण भण्यते तेनानीतमेण्डिकापिशितं कुर्वन्नहं स्थितस्तदा तत्र किमभूदिति न वेद्मि। चतुर्थोऽब्रवीदहं तन्मृतकमेवावलोकयन् स्थितो द्रव्यस्य चिन्ता मे नास्तीति केन नीतमिति न वेद्म्यहम्। सुमत्योक्तं भवतां दोषो नास्तीति। इदानीं मे आलस्यं वर्तते, कथामेकां कथयतेति। तैरवादि वयं न जानीमस्त्वं कथय। सा कथयति— पाटलीपुत्रे वैश्यो धनदत्तो पुत्री सुदामा। कन्या सा एकदा स्वभवनपश्चिमोद्यानस्थं सरः पादप्रक्षालनार्थं गता।[1] ग्राहपिल्लकेन पादे धृताऽत्यन्तभीता स्वमैथुनिकं धनदेवमपश्यत्। सा तदावोचदहो धनदेव[2], मां ग्राहो गृह्णाति स्म, त्वं[3] मोचय। तेनावादि बर्करेण[4] मोचयामि यदि भणितं करोषि। सा बभाण कीदृशं तत्। स जजल्प-ते विवाहदिने रात्रौ लग्नकाले वस्त्राभरणैर्मदन्तिकमागन्तव्यमिति। अभ्युपगतं तया। स तस्या धर्महस्तं गृहीत्वा मोचितवान्। स्वविवाहदिने सा स्वधर्महस्तमोचनाय रात्रौ तदापणं चलिता। अन्तरे कश्चिच्चौरस्तदाभरणादिकं ययाचे। तयोक्तमेतैः सार्धं मया क्वापि गन्तव्यं ततः आगमनावसरे दास्यामीति, तस्यापि धर्महस्तं दत्त्वाऽग्रे जगाम। चौरः कौतुकेन तिरोभूत्वा पृष्ठतो लग्नस्तावत्कश्चिद्राक्षसो मिलितः। स बभाण—हे नारि, इष्टदेवतां स्मर गिलामि त्वाम्। साऽवदत्प्रतिज्ञया क्वापि गच्छामि, ततः

यह मैं नहीं जानता हूँ। तीसरा बोला कि मैं उसके द्वारा लाई हुई भेड़का मांस निकाल रहा था। उस समय वहाँ क्या हुआ, यह मुझे ज्ञात नहीं है। अन्तमें चौथेने कहा कि मैं उस मुर्दाकी ओर ही देख रहा था, मुझे तब उस द्रव्यका ध्यान ही नहीं था। इसीलिये उसे किसने लिया है, इसे मैं नहीं जानता हूँ। यह सब सुनकर सुमतिने कहा कि आप लोगोंका कुछ दोष नहीं है। मुझे इस समय आलस्य आ रहा है, अतएव किसी एक कथाको कहो। तब उन लोगोंने कहा कि हम नहीं जानते हैं, तुम ही कहो। तब वह कहने लगी—

पाटलीपुत्रमें एक धनदत्त नामका वैश्य था। उसके एक सुदामा नामकी पुत्री थी। वह एक दिन अपने भवनके पिछले भागमें स्थित सरोवरमें पाँव धोनेके लिये गई थी। वहाँ एक मगर-के बच्चेने उसके पाँवको पकड़ लिया था। तब उसने अतिशय डरकर अपने धनदेव नामक मामाके लड़के (या साले)की ओर देखते हुए उससे कहा कि हे धनदेव ! मुझे मगरने पकड़ लिया है, उससे छुड़ाओ। वह मजाकमें बोला कि यदि तुम मेरा कहना मानो तो मैं तुम्हें उस मगरसे छुड़ा देता हूँ। इसपर सुदामाने उससे पूछा कि तुम्हारा वह कहना क्या है ? इसके उत्तरमें उसने कहा कि तुम अपने विवाहके दिन लग्नके समयमें वस्त्राभरणोंके साथ मेरे पास आओ। सुदामाने उसकी इस बातको स्वीकार कर लिया। तब उसने उसके धर्महस्त (प्रतिज्ञा-वचन) को ग्रहण करके उसे मगरसे छुड़ाया। तत्पश्चात् जब उसके विवाहका समय आया तब वह अपने दिये हुए उपर्युक्त वचनसे छुटकारा पानेके लिये रात्रिमें धनदेवकी दुकानकी ओर चल दी। मार्गमें जाते हुए उससे किसी चोरने आभूषण आदि माँगे। तब उसने उससे कहा कि इन आभूषणोंके साथ मुझे कहींपर जाना है। अतएव मैं तुम्हें इन्हें वापिस आते समय दूँगी। इस प्रकारसे वह उसको भी धर्महस्त देकर आगे गई। तब वह चोर कौतुकसे छुपकर उसके पीछे लग गया। आगे जानेपर उसे एक राक्षस मिला। वह उससे बोला कि हे स्त्री ! तू अपने इष्ट देवता-का स्मरण कर, मैं तुझे खाता हूँ। वह बोली कि मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कहीं जा रही हूँ,

१. ब गता सा पुत्री इति ग्राह°। २. प °वोचदहो हो धनदेव श °वोचदोहो भो धनदेव। ३. ब 'त्वं' नास्ति। ४. ब बर्करेण।

आगमने यत्कर्तव्यं तत्कुरु। तस्यापि सूनृतं दत्त्वाग्रे गता। सोऽपि तथा तन्मार्गे लग्नः। ततः कोऽपि कोट्टपालो मिलितः। तेन ध्रियमाणा तथैव गता। सोऽपि तथा। ततस्तदापणं प्राप्ता। धनदेवोऽब्रवीदन्धकारे निशि किमित्यागतासि। पूर्वं त्वं कन्या मे शालिकेति वर्करेण मया तद्भणितमिदानीं त्वं परस्त्रीति भगिनीसमा, याहि स्वस्थानमिति। अन्यैस्त्रिभिरपि त्वं सत्यवती मातृसमेति भणित्वा प्रेषितेति कथां निरूप्यापृच्छत् सुमतिश्चतुर्णां क उत्कृष्ट इति। मेण्ढिकाचौरश्चौरं स्तुतवान् पिशितकर्ता राक्षसं रक्षकः आरक्षकं वेश्यापतिर्धनदेवम्। तदा तदभिप्रायं विबुध्य तच्छयनस्थलं प्रेषिताः। स्वयमपि निद्रांचकार। द्वितीयेऽह्नि येन चोरः प्रशंसितः स आहूतः स्वतूलिकातले उपवेश्योक्तवती[3] तवानुरक्ताहम्। किंतु पितरावेकेन सार्धं स्थातुं मे न प्रयच्छतस्तस्माद्देशान्तरं याव इति। तेनाभ्युपगते द्रव्येण भवितव्यमिति स्वद्रव्यपोट्टलिका तदग्रे व्यधात्सा इदं मदीयं स्वम्, त्वदीयं किंचिदस्ति नो वा। तेनाभाणि गृहेऽस्ति, हस्ते इदमस्तीति स पोट्टलकको दर्शितो मया गृहीत इति स्वरूपं चाभिधायि। तयोक्तं प्रातर्यावो याहि स्वशयनस्थलमिति पोट्टलं स्वयं गृहीत्वा विसर्जितः। अपराह्णे पितुर्हस्ते

इसलिये मेरे वापिस आनेपर जो तुम्हें अभीष्ट हो करना। इस प्रकार वह उसके लिये भी सत्य वचन देकर आगे गई। वह भी उसी प्रकारसे उसके मार्गमें पीछे लग गया। तत्पश्चात उसे कोई एक कोतवाल मिला। वह जब उसे पकड़ने लगा तब वह उसे भी उसी प्रकार वचन देकर आगे गई। वह भी उसी प्रकारसे उसके पीछे लग गया। अन्तमें वह इस क्रमसे धनदेवकी दुकानपर पहुँच गई। तब धनदेवने उससे कहा कि तुम रातको अन्धकारमें क्यों आई हो? पूर्वमें तुम कन्या व मेरी साली थीं, अत एव मैंने मजाकमें वैसा कह दिया था। अब तुम परस्त्री हो, अतः मेरे लिये बहिनके समान हो, अपने घर वापिस जाओ। इसपर अन्य (चोर आदि) तीनोंने भी 'सत्य भाषण करनेवाली तुम हमारे लिये माताके समान हो' कहकर उसे घर वापिस भेज दिया। इस कथाको, कहकर सुमतिने उनसे पूछा कि उन चारोंमें उत्तम कौन है? तब उनमेंसे भेड़के चोरने चोरकी, मांस ग्रहण करनेवालेने राक्षसकी, रक्षा करने वालेने कोतवालकी, तथा वेश्याके पतिने धनदेवकी प्रशंसा की। इस प्रकारसे सुमतिने उनके अभिप्रायको जानकर उन्हें शयनागारमें भेज दिया और स्वयं भी सो गई। दूसरे दिन जिसने चोरकी प्रशंसा की थी उसको बुलाकर सुमतिने अपनी गादीके ऊपर बैठाते हुए उससे कहा कि मैं तुम्हारे ऊपर आसक्त हूँ। परन्तु मेरे माता पिता मुझे किसी एक प्रियतमके साथ नहीं रहने देते हैं। इसलिये मेरी इच्छा है कि हम दोनों किसी दूसरे स्थानपर चलें। जब उसने इस बातको स्वीकार कर लिया तब सुमतिने, यह कहते हुए कि देशान्तरमें जानेके लिये द्रव्य चाहिये, उसके आगे अपने द्रव्यकी एक पोटरी रख दी। फिर उसने कहा कि इतना द्रव्य तो मेरे पास है. तुम्हारे पास भी कुछ है या नहीं? उसने उत्तर दिया कि मेरा द्रव्य घरमें है तथा इतना द्रव्य हाथमें भी है। यह कहते हुए उसने पोटरी दिखलाई। साथ ही उसने मैने इसे किस प्रकारसे ग्रहण की है, यह भी प्रगट कर दिया। तब उसने कहा कि ठीक है, प्रातःकालमें चलेंगे। फिर उसने यह कहते हुए कि अब तुम अपने शयन-गृहमें जाओ, उसकी उस पोटरीको स्वयं ले लिया और उसे शयनगृहमें भेज दिया। तत्पश्चात् उसने दोपहरमें उस द्रव्यको पिताके हाथमें देकर उस चोरको दिखला दिया। तब कोतवालने उसे राजाके लिये समर्पित कर

१. ब सुवृत्तं। २ श प्रेपित। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श उपविश्योक्तवती।

तद्द्रव्यं दत्त्वा तं दर्शयामास। तेन राज्ञः समर्पितः। राज्ञा इयं शास्तिर्निरूपितास्येति श्रुत्वा नागश्रियावादि 'यद्येवं मया अदत्तग्रहणस्य निवृत्तिः कृता, सा कथं त्यज्यते' इति। सोऽवोचत् 'इदमपि तिष्ठतु' ॥३॥

अन्यदद्व्यं[1] समर्प्य याव गृहीत्यग्रे गमनेऽन्यस्मिन् प्रदेशे छिन्ननासिकां पुरुषशीर्षबद्धकण्ठां नारीं वीक्ष्य नागश्रीः पितरं पप्रच्छ किमितीयमिमामवस्थां प्रापितेति। स आहात्रैव चम्पायां मत्स्यो नाम वैश्यो भार्या जैनी, पुत्रौ नन्दसुनन्दौ। जैनीभ्राता सूरसेनस्तस्य पुत्री मदालिनामासीत्तदा नन्दो द्वीपान्तरं गच्छन् मातुलं प्रत्यवदत्— हे माम, अहं द्वीपान्तरं यास्यामि। त्वत्पुत्री मह्यमेव दातव्या, अन्यस्मै दास्यसि चेद्राजाज्ञा। सूरसेनो ब्रूते कालावधिं कुर्विति। स द्वादशवर्षाण्यवधिं कृत्वा जगाम। अवधेरुपरि षण्मासेषु गतेषु सा कन्या सुनन्दाय दत्ता। उभयगृहे विवाहमण्डपादिकं कृतं पञ्चरात्रे लग्ने स्थिते[2] आगतो नन्दो वृत्तान्तं विवेद। तदन्वभाषत मद्भ्रात्रे दत्तेति मत्पुत्री संति। सुनन्दस्तदाज्ञां दत्त्वा मज्ज्येष्ठो गत इति विबुध्य मन्माता इत्युक्तवान्। सा स्वगृहे कन्यैव स्थिता। तन्निकटगृहे नागचन्द्रनामा वणिक् द्वादशकोटिद्रव्येश्वरो द्वादशधनितापतिः। सोऽनया कन्यया गच्छतीति

दिया। राजाने इसे इस प्रकारका दण्ड सुनाया है। इस घटनाको सुनकर नागश्री बोली कि यदि ऐसा है तो मैंने उस चोरीका परित्याग किया है, उसको भला किस प्रकारसे छोड़ूँ ? तब नागशर्माने कहा कि अच्छा इसे भी रहने दे, शेष दोको चलकर वापिस कर आते हैं ॥३॥

आगे जानेपर नागश्रीने एक ऐसी स्त्रीको देखा कि जिसकी नाक कटी हुई थी तथा गला एक पुरुषके शिरसे बँधा हुआ था। उसे देखकर नागश्रीने पितासे पूछा कि इस स्त्रीकी यह दुर्दशा क्यों हुई है ? वह बोला— इसी चम्पापुरमें एक मत्स्य नामका वैश्य रहता है। उसकी पत्नीका नाम जैनी है। इनके नन्द और सुनन्द नामके दो पुत्र हैं। जैनीके भाईका नाम सूरसेन है। उसके मदालि नामकी पुत्री थी। उस समय नन्द किसी दूसरे द्वीपको जा रहा था। उसने वहाँ जाते समय मामासे कहा कि मैं दूसरे द्वीपको जा रहा हूँ। तुम अपनी पुत्रीको मेरे लिए ही देना। यदि तुम उसे किसी दूसरेके लिए दोगे तो राजकीय नियमके अनुसार दण्ड भोगना पड़ेगा। इसपर सूरसेनने उससे कुछ कालमर्यादा करनेको कहा। तदनुसार वह बारह वर्षकी मर्यादा करके द्वीपान्तरको चला गया। तत्पश्चात् बारह वर्षके बाद छह महीने और अधिक बीत गये, परन्तु वह वापिस नहीं आया। तब वह कन्या सुनन्दके लिये दे दी गई। इस विवाहके निमित्त दोनोंके घरपर मण्डप आदिका निर्माण हो चुका था। अब विवाह-विधिके सम्पन्न होनेमें केवल पाँच दिन ही शेष रहे थे। इस बीच वह नन्द भी वापिस आ गया। नन्दको जब यह समाचार विदित हुआ तब उसने कहा कि यह कन्या चूँकि मेरे अनुजके लिए दी जा चुकी है, अतएव वह अब मेरे लिये पुत्रीके समान है। इधर सुनन्दको जब यह ज्ञात हुआ कि मेरा बड़ा भाई इस कन्याके निमित्त मामाको आज्ञा देकर द्वीपान्तरको गया था तब उसने कहा कि उस अवस्थामें तो वह मेरे लिए माताके समान है। इस प्रकारसे जब उन दोनोंने ही उस कन्याके साथ विवाह करना स्वीकार नहीं किया तब उसे अविवाहित अवस्थामें अपने घरपर ही रहना पड़ा। उसके पड़ोसमें एक नागचन्द्र नामका वैश्य रहता था जो बारह करोड़ प्रमाण द्रव्यका स्वामी था। उसके बारह स्त्रियाँ थीं। वह इस कन्याके पास जाता आता था। जब उन दोनोंके

१ ब अन्यनद्द्रयं। २. श स्थिते।

ज्ञात्वा परीक्ष्य च चण्डकर्मणा[1] धृतौ दम्पती राजवचनेनेमां शास्ति प्राप्ताविति प्रतिपादिते नागश्रिया भणितम्— परपुरुषमुखं दुष्टबुद्धया नावलोकनीयमिति तत्समीपे व्रतं गृहीतं मया, तत्कथं त्यज्यते। द्विजोऽवदत्तिष्ठत्विदमपि ॥४॥

यदन्यत्तस्य[2] समर्पयावः, आगच्छेत्यग्रे गमने कंचन बद्धं पुरुषं कोट्टपालैर्मारणाय नीयमानं वितर्क्य[3] पुत्री पितरमपृच्छत् कोऽयं किमितीमं विधिं प्राप्त इति। स कथयत्ययं राज्ञः क्षीराहारी वीरपूर्णनामा। एकदा पट्टवाजिनिमित्तं रक्षिततृणप्रदेशे कस्यचिद् गोधनं प्रविष्टम्। तदनेनानीय राज्ञो दर्शितम्। राज्ञोक्तमिदं त्वमेव गृहाण। अनेन तद् गृहीत्वातिव्याप्तिः कृता देशमध्ये यदुत्कृष्टं जीवधनं तत्त्वं गृहाणेति राज्ञा मह्यं वरो दत्त इति। ततः सर्वेषां तस्मिन् गृहीते देव्या महिषीर्गृहीतवान्[4]। तया राज्ञः कथिते तेनास्य मारणं कथितमिति निरूपिते नागश्रीरुवाच— तर्हि बहुपरिग्रहाकाङ्क्षानिवृत्तिव्रतं मयादायि, तत्कथं परिह्रियते इति। सोऽगदत्तिष्ठत्विदमपि ॥ ५ ॥ तं निर्भर्त्स्यागच्छाव इति गत्वा दूरस्थेनोक्तम्—हे दिगम्बर, मम पुत्र्याः किमिति व्रतं दत्तमिति[5]। यतिर्भाषत—हे द्विज,

इस दुराचरणकी वार्ता कोतवालको ज्ञात हुई तब उसने इसकी जाँच-पड़ताल की। तत्पश्चात् अपराधके प्रमाणित हो जानेपर वे दोनों पकड़ लिये गये और इस प्रकारसे दण्डके भागी हुए हैं। इस प्रकार नागशर्माके कहनेपर नागश्री बोली कि हे तात! मैंने तो मुनिके पास यह व्रत ग्रहण किया है कि मैं दुर्बुद्धिसे किसी भी परपुरुषका मुख न देखूँगी। फिर मैं उसे क्यों छोड़ूँ? इसपर नागशर्मा बोला कि अच्छा इसे भी रहने दे, जो एक और शेष है उसे वापिस करके आते हैं, चल ॥४॥

तत्पश्चात् और आगे जानेपर मार्गमें उन्हें एक ऐसा पुरुष मिला जिसे पकड़कर कोतवाल मारनेके लिए ले जा रहे थे। उसके विषयमें ऊहापोह करते हुए पुत्रीने पितासे पूछा कि यह कौन है और किस कारणसे इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है? नागशर्मा बोला— यह वीरपूर्ण नामक राजाका पुरुष है जो दूधका आहार करनेवाला (ग्वाला) है। राजाके मुख्य घोड़ेके निमित्त घासके लिए जो प्रदेश सुरक्षित था उसके भीतर एक बार किसीकी गाय जा पहुँची थी। वीरपूर्णने लाकर उसे राजाको दिखलाया। तब राजाने कहा कि इसे तुम्हीं ले लो। तदनुसार इसने उसको लेकर न्यायमार्गका अतिक्रमण करते हुए यह नियम ही बना लिया कि 'देशमें जो भी उत्तम पशुधन है उसको तुम ग्रहण करो' ऐसा राजाने मुझे वरदान दिया है। इस प्रकारसे उसने सबके पशुधनको ग्रहण कर लिया। अन्तमें जब उसने रानीकी भैंसोंको भी ले लिया तब रानीने इसकी सूचना राजासे की। इसपर राजाने इसे मार डालनेकी आज्ञा दी है। इस घटनाको सुनकर नागश्रीने कहा कि मैंने तो बहुत परिग्रहकी इच्छा न रखनेका नियम किया है, उसे मैं कैसे छोड़ूँ? इसके उत्तरमें नागशर्माने कहा कि इसको भी रहने दे। चलो, उस मुनिकी भर्त्सना (तिरस्कार) करके आते हैं ॥५॥

इस प्रकार मुनिके पास जाकर और दूर ही खड़े रहकर नागशर्माने मुनिसे कहा कि हे दिगम्बर! तुमने मेरी पुत्रीके लिये व्रत क्यों दिया है? इसपर मुनि बोले कि हे विप्र! मैंने अपनी

१. ब चण्डकर्मणे। २. ब यदन्यत्तस्य। ३. श विभवर्य। ४. श ब-प्रतिपाठोऽयम्। श महिषी गृहीतवान्। ५. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श दत्तमपि।

मत्पुत्र्या मया व्रते दत्ते तव किमायातम्। द्विजोऽवदत्ते पुत्रीयम्। मुनिरवोचदोमिति[1]। सा मुनिं प्रणम्य तत्समीपे उपविष्टा। स राज्ञो बभाषे तद्वृत्तम्। तदा सर्वजनाश्चर्यमभूत। राजा पौराश्च जैनेतराश्च मुनिं वन्दितुं कौतुकं द्रष्टुं च जग्मुः। राजा तौ नत्वा सूर्यमित्रं पृच्छति स्म कस्येयं पुत्रीति। मुनिरब्रवीत् मम पुत्रीयम्। द्विजोऽवोचदमुं नागं पूजयित्वा मद्भार्ययेयं लब्धेति[2] सर्वजनसुप्रसिद्धं देव, कथमेतत्पुत्री। मुनिरब्रूत— राजन्, यद्यस्य पुत्री तर्ह्यनेन व्याकरणादिकं पाठिता। द्विजोऽवोचन्न। तर्हि कथं तव पुत्रीयम्। पुनर्द्विजोऽवोचत्त्वया[3] किं पाठिता। यतिरुवाचौमिति। ततो राजा जजल्प—हे मुने, तर्हि परीक्षां दापय। दाप्यत एव। ततो विदुषां मध्ये मुनिः कन्यामस्तके स्वदक्षिणपाणितलं निधायोक्तवान्—हे वायुभूते, मया सूर्यमित्रेण राजगृहे यत्पाठितोऽसि तस्य सर्वस्य परीक्षां[4] देहीत्युक्ते पण्डितैः पृष्टस्थले मृदुमधुरविशदार्थसारध्वनिना परीक्षामदत्त सा। ततः सर्वजनाश्चर्यं जातम्। पुनर्भूपो बभाण—हे मुनिनाथ, मे हृदये बहुकौतुकं वर्तते, नागश्रियः[5] परीक्षा याचिता, वायुभूतिर्ददातीति। आचार्योऽब्रवीत्‌ एव वायुभूतिः सैव नागश्रीः।

पुत्रीके लिये व्रत दिया है, इससे भला तुम्हारी क्या हानि हुई है? यह सुनकर नागशर्माने कहा कि क्या यह तेरी पुत्री है? मुनिने उत्तर दिया कि हाँ, यह मेरी पुत्री है। वह पुत्री मुनिको नमस्कार करके उनके समीपमें बैठ गई। तब ब्राह्मणने जाकर इस वृत्तान्तको राजासे कहा। इससे उस समय सबको बहुत आश्चर्य हुआ। फिर राजा, पुरवासी जन तथा बहुत-से अजैन जन भी मुनिकी वन्दना करने व इस कौतुकको देखनेके लिये मुनिके समीपमें गये। वहाँ पहुँचकर राजाने उपर्युक्त दोनों मुनियोंके लिये नमस्कार किया। फिर उसने सूर्यमित्र मुनिसे पूछा कि यह किसकी पुत्री है? मुनिने उत्तर दिया कि यह मेरी पुत्री है। तब नागशर्माने कहा कि मेरी स्त्रीने उस नागकी पूजा करके इस पुत्रीको प्राप्त किया है, यह सब ही जन भले प्रकार जानते हैं। फिर हे देव! यह इसकी पुत्री कैसे हो सकती है? इसपर मुनि बोले कि हे राजन्! यदि यह इसकी पुत्री है तो इसने उसे क्या कुछ व्याकरणादिको पढ़ाया है या नहीं? ब्राह्मणने उत्तर दिया कि नहीं। तो फिर यह तुम्हारी पुत्री कैसे है, यह मुनिने नागशर्मासे प्रश्न किया। इसके उत्तरमें उसने पूछा कि क्या तुमने उसे कुछ पढ़ाया है? इसके प्रत्युत्तरमें मुनिने कहा कि हाँ, मैंने उसे पढ़ाया है। इसपर राजाने कहा कि हे मुनिराज! तो इसकी परीक्षा दिलाइये। तब मुनि बोले कि ठीक है, मैं इसकी परीक्षा भी दिला देता हूँ। तत्पश्चात् मुनिने उस कन्याके मस्तकपर अपने दाहिने हाथको रखते हुए कहा कि हे वायुभूति! मुझ सूर्यमित्रने राजगृहके भीतर जो कुछ तुझे पढ़ाया था उस सबकी परीक्षा दे। इस प्रकार मुनिके कहनेपर विद्वान् पुरुषोंने जिस किसी भी स्थल (प्रकरण) में जो कुछ भी नागश्रीसे पूछा उस सबका उत्तर उसने कोमल, मधुर, स्पष्ट एवं अर्थपूर्ण वाणीमें देकर उसकी परीक्षा दे दी। इससे सब लोगोंको बहुत ही आश्चर्य हुआ। फिर राजा बोला कि हे मुनीन्द्र! मेरे हृदयमें बहुत कौतूहल हो रहा है। वह इसलिये कि हम लोगोंने नागश्रीसे परीक्षा दिलानेकी प्रार्थना की थी, परन्तु परीक्षा दे रहा है वायुभूति। इसपर मुनि बोले कि वायुभूति और नागश्री एक ही हैं। वह इस प्रकारसे—

१ फ श स द्विजराज्ञो। २. प श मद्भार्यालब्धेयमिति। ३. ब °द्विजरुवाच त्वया। ४. ब सर्वपरीक्षाम्। ५. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श नागश्रिया।

कथमिति चेत् वत्सदेशे कौशाम्ब्यां राजातिबलो देवी मनोहरी पुरोहितो द्विजः सोमशर्मा वनिता काश्यपी पुत्रावग्निभूतिवायुभूती केनाप्युपायेन नापठताम्। पितरि मृते राज्ञाजानता तत्पदं ताभ्यामदायि। एवं तिष्ठतोरेकदानेकवादिमदभञ्जनेन नानादेशपरिभ्रमणशीलेन विजयजिह्वनामवादिना तद्राजालयद्वारे पत्रमवलम्बितम्। वादाधिकारः पुरोहितस्येत्यन्यवादिना न गृहीतम्। तद्राज्ञा तयोरादेशो दत्तः पत्रं गृहीत्वा भित्त्वा चेति[1]। ताभ्यां गृहीतं पाटितं[2] च। ततो राजा मूर्खाविति विबुध्य तत्पदमादाय तद्दायादसोमिलायादत्त तावतिदुःखितावध्येतुं देशान्तरं चेलतुः। तदा मात्रावादि यद्येवं युवयोराग्रहोऽस्ति तर्हि राजगृहपुरे राजा सुबलो वल्लभा सुप्रभा तत्पुरोहितो मद्भ्राता सूर्यमित्रनामातिविद्वान्, तत्समीपं याव इति। तत्र ययतुस्तं च दृष्टशतुर्वृत्तान्तं कथयांचक्रतुः। स मातुलः[3] मनसि दध्यौ पितुर्निकटे सुग्रासादिप्रभावान्नाधीतावहमपि तद्दास्यामि चेदत्रापि क्रीडिष्यतोऽध्ययनं न स्यादिति मत्वाऽवदत्— मे भगिनी नास्तीति कुतो भागिनेयौ युवाम्। यद्यध्येष्येथं[4] भिक्षाया भुक्त्वा तर्हि अध्यापयिष्यामीति। तौ तथाधीतसकलशास्त्रौ स्वपुरं चलितौ

वत्स देशके भीतर कौशाम्बी नगरीमें अतिबल नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम मनोहरी था। उसका पुरोहित सोमशर्मा नामका एक ब्राह्मण था। इसकी पत्नीका नाम काश्यपी था। इस पुरोहितके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र थे। इनको सोमशर्माने पढ़ानेका बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु वे पढ़ नहीं सके। जब उनका पिता मरा तब राजाको उनके विषयमें कुछ परिचय प्राप्त नहीं था। इसीलिये उसने अज्ञानतासे इनके लिये पुरोहितका पद दे दिया। इस प्रकारसे उनका सुखपूर्वक समय बीतने लगा। एक समय वहाँ अनेक वादियोंके अभिमानको चूर्ण करनेवाला विजयजिह्व नामका एक वादी आया। वह वादार्थी होकर अनेक देशोंमें घूमा था। वहाँ पहुँचकर उसने राजप्रासादके द्वारपर एक वादसूचक पत्र लगा दिया। वादका अधिकार पुरोहितको प्राप्त होनेसे अन्य किसी वादीने उसके पत्र (चैलेंज) को स्वीकार नहीं किया। तब अतिबल राजाने उन दोनोंके लिये उस पत्रको स्वीकार कर उक्त वादीके साथ विवाद करनेकी आज्ञा दी। इसपर उन दोनोंने उस पत्रको लेकर फाड़ डाला। तब राजाको ज्ञात हुआ कि ये दोनों ही मूर्ख हैं। इससे उसने उन दोनोंसे पुरोहितके पदको छीनकर उसे किसी सोमिल नामक उनके सगोत्री बन्धुको दे दिया। उन दोनोंको इस घटनासे बहुत दुख हुआ। फिर वे शिक्षा प्राप्त करनेके लिये देशान्तर जानेको उद्यत हुए। तब उसकी माताने उनसे कहा कि यदि तुम दोनोंका ऐसा दृढ़ निश्चय है तो तुम राजगृह नगरमें जाओ। वहाँ सुबल नामका राजा राज्य करता है। रानीका नाम सुप्रभा है। उक्त राजाके यहाँ जो अतिशय विद्वान् सूर्यमित्र नामका पुरोहित है वह मेरा भाई है। तुम दोनों उसके पास जाओ। तदनुसार वे दोनों वहाँ जाकर अपने मामासे मिले। उन्होंने उससे अपने सब वृत्तान्तको कह दिया। तब मामाने मनमें विचार किया कि इन दोनोंने पिताके पास उत्तम भोजनादिको पाकर अध्ययन नहीं किया है। यदि मैं भी इन्हें सुरुचिपूर्ण भोजनादि देता हूँ तो फिर यहाँ भी उनका समय खेल-कूदमें ही जावेगा और वे अध्ययन नहीं कर सकेंगे। बस, यही सोचकर उसने उन दोनोंसे कहा कि मेरे कोई बहिन ही नहीं है, फिर तुम भानजे कैसे हो सकते हो? यदि तुम भिक्षासे भोजन करके अध्ययन

---

१. फ भित्ता चेति। २. ब पाट्टितम्। ३. ब 'मातुलः' नास्ति। ४. ब यद्यध्येष्येथ।

यदा तदा[1] स वस्त्रादिकं दत्त्वोचेऽहं[2] युवयोर्मातुल इति। तच्छ्रुत्वाग्निभूतिर्जहर्ष, वायुभूतिश्चुकोप [3]चाण्डालस्त्वमावां भिक्षामाटितवान् इति। ततः स्वपुरमागत्य स्वपदे तस्थतुः। राजपूजितौ सुश्रीकौ भूत्वा सुखिनौ रेमाते।

इतो राजगृहे सुबलो मज्जनवारे[4] स्वमुद्रिकां सूर्यमित्रस्य हस्ते तैलम्रक्षणभयाद्दत्त। स स्वाङ्गुलौ निक्षिप्य स्वगृहं जगाम। भोजनादूर्ध्वं राजभवनं गच्छन् स मुद्रिकामपश्यन् विषण्णोऽभूत्। स्वयं निमित्तमजानन्[5] परमबोधाभिधं नैमित्तिकमाहूय तस्य नैमित्तिकस्य कथितं[7] मया चिन्तितं कथय। तदग्रे[8] चिन्तयामास। तेनोक्तमेतन्नामानं हस्तिनं प्रभुं याचयिष्यामि, प्राप्नोमि न वेति चिन्तितं त्वया। प्राप्स्यसि याचस्वेति। तं विसृज्य स्वहर्म्यस्योपरिमभूमौ सचिन्तो यावदास्ते तावत्पुरबहिरुद्यानं प्रविशन्तं सुधर्माभिधदिगम्बरमपश्यत्। तदन्वयं किंचन ज्ञास्यतीति दिनावसाने केनाप्यजानन् तदन्तिकमाट। तमत्यासन्नभव्यं विलोक्य मुनिरुवाच—हे सूर्यमित्र, राजकीयां मुद्रिकां विनाश्यागतोऽसि। ओमिति भणित्वा पादयोः पपात। मुनिः कथयति स्म— त्वद्भवनपृष्ठस्थितोद्यानस्थितसरसि

करना चाहते हो तो पढ़ो मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा। तब उन दोनोंने भिक्षासे ही भोजन करके उसके पास अध्ययन किया। इस प्रकारसे वे समस्त शास्त्रोंमें पारंगत होकर जब घर वापिस जाने लगे तब सूर्यमित्रने उन्हें यथायोग्य वस्त्रादि देकर कहा कि मैं वास्तवमें तुम्हारा मामा हूँ। यह सुनकर अग्निभूतिको बहुत हर्ष हुआ। परन्तु वायुभूतिको इससे बहुत क्रोध हुआ। तब उसने उससे कहा कि तुम मामा नहीं, चण्डाल हो, जो तुमने हमें भिक्षाके लिये घुमाया है। तत्पश्चात् वे वहाँसे अपने नगरमें आये और अपने पद (पुरोहित) पर प्रतिष्ठित हो गये। अब वे राजासे सम्मानित होकर उत्तम विभूतिके साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे थे।

इधर राजगृहमें राजा सुबलने स्नानके अवसरपर तेलसे लिप्त हो जानेके भयसे अपनी मुंदरी सूर्यमित्रके हाथमें दे दी। वह उसे अँगुलीमें पहिनकर अपने घरको चला गया। भोजनके पश्चात् जब वह राजभवनको जाने लगा तब वह अँगुलीमें उस मुद्रिकाको न देखकर खेदको प्राप्त हुआ। वह स्वयं निमित्तज्ञ नहीं था, इसलिये उसने परमबोधि नामके ज्योतिषीको बुलाकर उससे कहा कि मैंने जो कुछ सोचा है उसे बतलाइये। तत्पश्चात् उसने उसके आगे कुछ चिन्तन किया। ज्योतिषीने कहा कि तुमने यह विचार किया है कि 'मैं राजासे अमुक नामवाले हाथीको मागूँगा, वह मुझे प्राप्त होता है कि नहीं।' तुम उसको प्राप्त करोगे, याचना करो। फिर वह उस ज्योतिषीको वापिस भेजकर अपने भवनके ऊपर गया। वह वहाँ छतपर चिन्ताकुल बैठा ही था कि इतनेमें उसे नगरके बाहर उद्यानमें जाते हुए सुधर्म नामके दिगम्बर मुनि दिखायी दिये। तत्पश्चात् उसने विचार किया कि ये उस मुंदरीके सम्बन्धमें कुछ जानते होंगे। इसी विचारसे वह सन्ध्याके समय छुपकर उनके निकट गया। मुनि उसको अति आसन्न भव्य जानकर बोले कि हे सुमित्र! तू राजाकी मुंदरीको खोकर यहाँ आया है। तब वह 'हाँ, मैं इसी कारण आया हूँ' यह कहते हुए उनके चरणोंमें गिर गया। मुनिने कहा कि तुम अपने भवनके पीछे स्थित उद्यानवर्ती तालाबमें जब

---

१. ब 'तदा' नास्ति। २. प दत्वा चेहं फ दत्वाहं। श दत्वावं। ३ ब °भूतिश्च कोपाच्चाण्डाल°। श °भूतिश्चकोपोश्चाण्डाल°। ४. ब प्रतिपाठोऽयम्। श मज्जनवासरे। ५ ब निमित्तेनाजानन्। ६. प ब अतोऽग्रे 'कथय' पर्यन्तः पाठो नास्ति। ७. श अकथितं। ८. फ एतदग्रे।

सूर्यार्घ्यं ददानस्य तेऽङ्गुल्या निर्गत्य कमलकर्णिकायां सा पतिता वर्तते, प्रातर्गृहाणेति। तथा तां गृहीत्वा राज्ञः समर्प्य कस्याप्यकथयन् तन्निमित्तं शिक्षितुं तदन्तमितः। मुनिर्बभाण निर्ग्रन्थं विहायान्यस्य न सा परिणमतीति। ततः स सर्वं पर्यालोच्य निर्ग्रन्थोऽजनि, विद्यां प्रयच्छेति च स बभाण। मुनिरवोचत् क्रियाकलापपाठमन्तरेण न परिणमतीति। एवं क्रमेणानुयोगचतुष्टयं पाठयामास। द्रव्यानुयोगपाठे सद्दृष्टिरासीत् परमतपोधनश्च[1]। स्वगुरुणा सहात्र चम्पायामागतस्य वासुपूज्यनिर्वाणभूमिप्रदक्षिणीकरणेऽवधिरुत्पन्नः। गुरुस्तस्मै स्वपदं दत्त्वा एकविहारी भूत्वा वाराणस्यां मुक्तिमितः।

सूर्यमित्र एकदा कौशाम्ब्यां चर्यार्थं प्रविष्टोऽग्निभूतिना स्थापितः। चर्यां कृत्वा गच्छन्नग्निभूतिना भणितो वायुभूतिं विलोकयेति[2]। तेनोक्तं सोऽतिरौद्रो नोचितम्। तथापि तदाग्रहेणाग्निभूतिना तद्गृहं जगाम। स मुनिं विलोक्य विबुध्य च बहुशोऽपि निन्दां चकार। ततो मुनिनोद्यानं गत्वाग्निभूतिर्मया मुनिनिन्दा कारितेति तद्वैराग्यात् दिदीक्षे। तद्वृत्तान्तं विबुध्य तद्वनिता सोमदत्ता देवरान्तिके जगामावदच्च—रे वायुभूते, त्वया मुनिनिन्दा कृतेति मे भर्त्रा तपो गृहीतम्। यावत्कोऽपि न जानाति तावत्त्वं बोधयानयावः, एहीति। ततो

सूर्यके लिये अर्घ्य दे रहे थे तब वह अँगुलीमेंसे निकलकर कमलकर्णिकाके भीतर जा पड़ी है। वह अभी भी वहींपर पड़ी हुई है। उसे प्रातःकालमें उठा लेना। पश्चात् उसने वहाँसे उसे उठा लिया और राजाको दे दिया। तत्पश्चात् वह किसीको कुछ न कहकर उस निमित्तज्ञानको सीखनेके लिये मुनिराजके समीपमें गया। मुनिराजने उससे कहा कि दिगम्बरको छोड़कर किसी दूसरेको वह निमित्तविद्या नहीं प्राप्त होती है। तब वह सब सोच-विचार करके दिगम्बर हो गया और बोला कि अब मुझे वह विद्या दे दीजिये। फिर मुनि बोले कि वह क्रियाकलाप पढ़नेके बिना नहीं आती है। इस क्रमसे उन्होंने उसे चारों अनुयोगोंको पढ़ाया। तब द्रव्यानुयोगके पढ़ते समय उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। अब वह उत्कृष्ट तपस्वी हो गया था। वह अपने गुरुके साथ विहार करता हुआ यहाँ चम्पापुरमें आया। यहाँ उसे वासुपूज्य जिनेन्द्रकी निर्वाणभूमिकी प्रदक्षिणा करते समय अवधिज्ञान भी उत्पन्न हो गया। पश्चात् गुरु उसके लिये अपना पद देकर एक विहारी हो गये। उन्हें बनारस पहुँचनेपर मुक्तिकी प्राप्ति हुई।

सूर्यमित्र मुनि एक बार आहारके निमित्त कौशाम्बी पुरीके भीतर गये। तब अग्निभूतिने विधिवत् उनका पडिगाहन किया। जब वे आहार लेकर वापिस जाने लगे तब अग्निभूतिने उनसे वायुभूतिको सम्बोधित करनेके लिये प्रार्थना की। मुनिराज बोले कि वह अतिशय क्रूर है, इसलिये उसके पास जाना योग्य नहीं है। फिर भी वे उसके आग्रहको देखकर अग्निभूतिके साथ वायुभूति-के घरपर गये। उसे उन मुनिराजको देखते ही पूर्व घटनाका स्मरण हो आया। तब उसने उनकी बहुत निन्दा की। उस समय अग्निभूतिने मुनिराजके साथ उद्यानमें जाकर विचार किया कि यह मुनिनिन्दा मैंने करायी है। यह विचार करते हुए उसके हृदयमें वैराग्यभावका प्रादुर्भाव हुआ। इससे उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। इस वृत्तान्तको जानकर अग्निभूतिकी पत्नी देवरके पास गई और उससे बोली कि रे वायुभूति! तेरे द्वारा मुनिनिन्दा की जानेसे मेरे पतिदेवने तपको ग्रहणकर लिया है। जब तक कोई इस बातको नहीं जान पाता है तब तक हम दोनों उसके पास चलें

१. श परम् तपोनश्च। २. क विलोकेति।

वायुभूतिना कोपेन मुखे पादेन ताडिता[1] सा निदानं चकार जन्मान्तरे तव पादौ भक्षयिष्यामि। ततो वायुभूतिः सप्तमदिने उदुम्बरकुष्ठी[2] जातो मृत्वा तत्रैव गर्दभी भूत्वा तत्रैव सूकरी जाता। ततोऽपि मृत्वास्यां चम्पायां चाण्डालवाटके कुक्कुरी[3] जाता। ततोऽपि मृत्वा तत्रैव वाटके मातङ्गनीलकौशाम्ब्योः[4] पुत्री जात्यन्धा दुर्गन्धा च जाता। एकदा तौ सूर्यमित्राग्निभूती तत्रागतौ। सूर्यमित्रस्योपवास अग्निभूतिश्चर्यार्थं पुरं प्रविश्यन्नन्तराले जम्बूवृक्षाधस्तान्मातङ्गीं वीक्ष्य दुःखेनाश्रुपातं कृत्वा व्याघुटितो गुरुं नत्वा पृष्टवांस्तद्दर्शनात् किमिति मे दुःखं जातम्। गुरुणा तत्स्वरूपे भव्यत्वे तद्दिने मृत्यौ च कथिते तेन संबोध्याणुव्रतानि संन्यासनं च ग्राहिता। तावदेतद्ध्वनिना त्रिवेद्या इमान् नागान् पूजयितुमागच्छन्त्यास्तूर्याद्[5] स्वरमाकर्ण्य व्रतमाहात्म्येनास्याः पुत्री भविष्यामीति कृतनिदानेयं नागश्रीर्जाताद्य नागान् पूजयितुमागता। सूर्यमित्राग्निभूतिभट्टारकावावाम्। मे दर्शनात्पूर्वभवस्मरणाद्वेदाभ्यासं अनया बुद्ध्वा कथितम्। तद्वायुभूतिरेव नागश्रीरिति निरूपिते श्रुत्वा नागशर्मादयो

और सम्बोधित करके उसे घर वापिस ले आवें। यह सुनकर वायुभूतिको क्रोध आ गया। तब उसने उसके मुखमें पाँवसे ठोकर मार दी। इस अपमानसे क्रोधके वश होकर उसने यह निदान किया कि मैं जन्मान्तरमें तेरे दोनों पाँवोंको खाऊँगी। तत्पश्चात् सातवें दिन वायुभूतिको उदुम्बर (एक विशेष जातिका) कोढ़ हो गया। फिर वह मरकर वहींपर गधी और तत्पश्चात् शूकरी हुआ। इसके पश्चात् वह मरणको प्राप्त होकर इस चम्पापुरमें चण्डालके बाड़ेमें कुत्ती हुआ। फिरसे भी मरकर वह उसी बाड़ेमें चाण्डाल नील और कौशाम्बीकी पुत्री हुआ जो कि जन्मान्ध और अतिशय दुर्गन्धित शरीरसे संयुक्त थी। एक समय वहाँपर वे सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि आये। उस दिन सूर्यमित्र मुनिने उपवास किया था। अकेले अग्निभूति मुनि चर्याके लिये नगरकी ओर जा रहे थे। बीचमें उन्हें जामुन वृक्षके नीचे बैठी हुई वह चण्डालिनी दिखायी दी। उसे देखकर उन्हें दुख हुआ। इससे उनकी आँखोंसे आँसू निकल पड़े। तब वे आहार न लेकर वहाँसे वापिस चले आये। उन्होंने गुरुके पास आकर नमस्कार करते हुए उनसे पूछा कि उस चण्डालिनीके देखनेसे मुझे दुख क्यों हुआ ? उत्तरमें गुरुने उक्त चण्डालिनीके वृत्तान्तका निरूपण करते हुए बतलाया कि वह भव्य है और आज ही उसका मरण भी होनेवाला है। इसपर अग्निभूतिने उसे सम्बोधित करके पाँच अणुव्रतों और सल्लेखनाको ग्रहण कराया। इस बीचमें इस (नागशर्मा) की पत्नी त्रिवेदी इन नागोंकी पूजाके लिये आ रही थी। उसके बाजोंकी ध्वनिको सुनकर इसने निदान किया कि मैं व्रतके प्रभावसे इसकी पुत्री होऊँगी। तदनुसार वह त्रिवेदीकी पुत्री यह नागश्री हुई है। आज यह नागोंकी पूजाके लिये यहाँ आयी थी। हम दोनों वे ही सूर्यमित्र और अग्निभूति भट्टारक हैं। मुझे देखकर इसे पूर्व भवका स्मरण हो गया है। इससे उसने पहिले किये हुए वेदके अभ्यासका स्मरण करके यहाँ उक्त प्रकारसे परीक्षा दी है। इस प्रकारसे वह वायुभूति ही यह नागश्री है। उपर्युक्त प्रकारसे मुनिके द्वारा निरूपित इस वृत्तान्तको सुनकर नागशर्मा आदि ब्राह्मणोंने जैन धर्मकी बहुत प्रशंसा की। उस समय उनमेंसे बहुतोंने

१. प श पादेनात्राडिता ब पादेनाताडिता। २. ब उंदुम्बर° श उदंवर। ३. ब जातोनु मृत्वा। ४. प श चंडाल°। ५. श कुर्कुरी। ६. प श °कौशाब्याः। ७. ब प्रतिपाठोऽयम्। श जात्यन्धापि दुर्गन्धा जाता। ८. ब प्रतिपाठोऽयम्। श प्रविशंतांतराले। ९. ब त्रिविद्या। १०. श °गच्छन्त्या सूर्या°।

विप्रा: 'अहो जैनधर्म एव धर्मो नान्यः' इति भणित्वा बहवो दीक्षिताः, नागश्रीत्रिवेद्यादयो[1] ब्राह्मण्यश्च। राजा स्वपुत्रं लोकपालं राजानं कृत्वा बहुभिर्दीक्षितोऽन्तःपुरमपि।

ततः संघेन सार्धं सूर्यमित्राचार्यो विहरन् राजगृहमागत्योद्यानेऽस्थात्। तदा कौशाम्ब्यधिपोऽतिबलश्च स्वपितृव्यं[2] सुबलमवलोकयितुमागत्य तत्रास्थात्। तौ वनपालकादवबुध्य वन्दितुं जग्मतुः। दीप्तर्द्धिप्राप्तं सूर्यमित्रं विलोक्य राजा तथाविधोऽयमेवंविधोऽभूदिति बहुविस्मयं गतोऽतिबलाय राज्यं ददानस्तेन निवृत्तौ कृतायां मीनध्वजाख्यतनुजाय तद्दत्त्वातिबलादिभिर्बहुभिर्दिदीक्षे, तद्वनिता अपि। इत्याद्यनेकदेशेषु धर्मप्रवर्तनां[3] कुर्वन् सूर्यमित्रोऽस्थात्। नागश्रीर्बहुकालं तपो विधाय मासमेकं संन्यसनं चकार विततुर्बभूवाच्युते पद्मगुल्मविमाने महर्द्धिकः पद्मनाभनामा देवो जज्ञे। नागशर्मापि तत्रैवामरो जातस्त्रिवेदी पद्मनाभस्याङ्गरक्षोऽजनि। चन्द्रवाहनसुबलातिबला आरणेऽतिविभूतियुक्ताः सुरा जज्ञिरे। अन्येऽपि स्वयोग्यां गतिं ययुः। सूर्यमित्राग्निभूती वाराणस्यां समुत्पन्नकेवलावग्निमन्दिरगिरौ निर्वृत्तौ। पद्मनाभस्तन्निर्वाणपूजां विधाय द्वाविंशतिसागरोपमकालं सुखं रेमे।

दीक्षा धारण कर ली। उनके साथ नागश्री और त्रिवेदी आदि ब्राह्मणियोंने भी दीक्षा ले ली। राजा चन्द्रवाहन अपने पुत्र लोकपालको राज्य देकर बहुतोंके साथ दीक्षित हो गया। उसके साथ उसके अन्तःपुरने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

तत्पश्चात् सूर्यमित्र आचार्य संघके साथ विहार करते हुए राजगृहमें आकर उद्यानके भीतर विराजमान हुए। उस समय कौशाम्बीका राजा अतिबल भी अपने चाचा सुबलसे मिलनेके लिये वहाँ आकर स्थित हुआ। जब उन दोनों (सुबल और अतिबल) को वनपालसे सूर्यमित्र आचार्यके शुभागमनका समाचार ज्ञात हुआ तब वे दोनों उनकी वन्दनाके लिये गये। उस समय सूर्यमित्र आचार्यको दीप्त ऋद्धि प्राप्त हो चुकी थी। उनको दीप्त ऋद्धिसे संयुक्त देखकर राजा सुबलने विचार किया कि जो सूर्यमित्र मेरे यहाँ पुरोहित था, वह तपके प्रभावसे इस प्रकारकी ऋद्धिको प्राप्त हुआ है। इस प्रकार तपके फलको प्रत्यक्ष देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। तब उसने अतिबलके लिये राज्य देकर दीक्षा लेनेका निश्चय किया। परन्तु जब अतिबलने राज्यको ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया तब उसने मीनध्वज नामक अपने पुत्रको राज्य देकर अतिबल आदि बहुतसे राजाओंके साथ जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली। इनके साथ ही उनकी स्त्रियोंने भी दीक्षा ले ली। इस प्रकारसे सुमित्र आचार्यने अनेक देशोंमें विहार करके धर्मका प्रचार किया। नागश्रीने बहुत समय तक तपश्चरण किया। अन्तमें उसने एक मासका संन्यास लेकर शरीरको छोड़ दिया। तब वह अच्युत स्वर्गके भीतर पद्मगुल्म विमानमें पद्मनाभ नामक महर्द्धिक देव हुई। इसी स्वर्गमें वह नागशर्मा भी देव उत्पन्न हुआ। त्रिवेदीका जीव मृत्युके पश्चात् उस पद्मनाभ देवका अंगरक्षक देव हुआ। चन्द्रवाहन, सुबल और अतिबल राजा आरण स्वर्गमें अतिशय विभूतिके धारक देव हुए। अन्य संयमी जन भी यथायोग्य गतिको प्राप्त हुए। सूर्यमित्र और अग्निभूतिको वाराणसी पहुँचनेपर केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे दोनों अग्निमन्दिर पर्वतके ऊपर मोक्षको प्राप्त हुए। तब उस पद्मनाभ देवने आकर उनका निर्वाणोत्सव सम्पन्न किया। इस देवने अच्युत स्वर्गमें स्थित रहकर बाईस सागरोपम काल तक वहाँके सुखका उपभोग किया।

१. ब त्रिविद्यादयो। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श सुपितृव्यं। ३. श धर्मवर्तनां।

अथावन्तिषूज्जयिन्यां राजा वृषभाङ्कः श्रेष्ठी सुरेन्द्रदत्तो रामा यशोभद्रा। सा पुत्रो नास्तीति विषण्णा यावदास्ते तावद्राजाज्ञाकारितानन्दभेरीनादं श्रुत्वा किमर्थोऽयं नाद इत्यप्राक्षीत्। सख्या भाषितम् 'सुमतिवर्धनो[1] मुनिरुद्याने आगतस्तं वन्दितुं गमिष्यति[2] नरेशः, इति भेरीरवः' इति विबुध्य सापि जगाम। तं वन्दित्वा पृच्छति स्म—हे नाथ, मे पुत्रो भविष्यति नो वेति। मुनिरुवाच— पुत्रो भविष्यति, किंतु तन्मुखं विलोक्य स्वत्पतिस्तपो[3] गृहीष्यति, मुनेरवलोकनेन तनुजोऽपि। श्रुत्वा सा सहर्ष-विषादा जाता। कतिपयदिनैर्गर्भसंभूतौ श्रेष्ठी ज्ञास्यतीति भूमिगृहे प्रसूता। तद्रमेध्यलिप्ताशुचि-वस्त्रं[4] प्रक्षालयन्त्यश्चेटिकाया[5] ज्ञात्वा कश्चिद्विप्रो वेणुबद्धध्वजहस्तः श्रेष्ठिनोऽचीकथत्[6]। सोऽपि तन्मुखं विलोक्य विप्राय बहु द्रव्यं दत्त्वा दीक्षितः। तथा तनुजं सुकुमाराभिधं कृत्वा यथा मुनिं न पश्यति तथा करोमीति स्वर्णमयोऽनेकरत्नखचितः[7] सर्वतोभद्राख्यो माटः कारितः। तत्समन्ताद्रजतमयाः[8] द्वात्रिंशन्माटाः[9]। स तत्राहोरात्रादिकालभेदं राजादिजाति-भेदं शीतातपादिकं चाजानन्नृतुविमाने[10] सुरेशवद्वृद्धिं जगाम। यूनस्तस्य चतुरिकाचित्रा-

अवन्ति देशके भीतर उज्जयिनी पुरीमें राजा वृषभांक राज्य करता था। इसी नगरीमें एक सुरेन्द्रदत्त नामका सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम यशोभद्रा था। इसके कोई पुत्र नहीं था। इसलिए वह उदास रहती थी। एक समय उसने राजाके द्वारा करायी गई आनन्द-भेरीके शब्दको सुनकर पूछा कि यह भेरीका शब्द किसलिये कराया गया है? इसके उत्तरमें उसकी सखीने कहा कि उद्यानमें सुमतिवर्धन नामके मुनिराज आये हुए हैं। राजा उनकी वन्दनाके लिये जायगा। इसीलिए यह भेरीका शब्द कराया गया है। इस शुभ समा-चारको सुनकर वह यशोभद्रा भी मुनिकी वन्दनाके लिये उस उद्यानमें जा पहुँची। वन्दना करनेके पश्चात् उसने उनसे पूछा कि हे नाथ! मेरे पुत्र होगा कि नहीं? मुनि बोले— पुत्र होगा, किन्तु उसके मुखको देखकर तुम्हारा पति दीक्षा ग्रहण कर लेगा। इसके अतिरिक्त मुनिका दर्शन पाकर वह पुत्र भी दीक्षित हो जावेगा। यह सुनकर उसे हर्ष और विषाद दोनों हुए। कुछ दिनोंमें यशोभद्राके गर्भाधान हुआ। पश्चात् उसने सेठको पुत्रजन्मका समाचार न ज्ञात हो, इसके लिये तलघरके भीतर पुत्रको उत्पन्न किया। परन्तु उसके रुधिर आदि अपवित्र धातुओंसे सने हुए वस्त्रोंको धोती हुई दासीको देखकर किसी ब्राह्मणने उसका अनुमान कर लिया। तब वह बाँसमें बँधी हुई ध्वजाको हाथमें लेकर सेठके पास गया और उससे इस पुत्र-जन्मकी वार्ता कह दी। सेठने पुत्रके मुखको देखकर उस ब्राह्मणको बहुत द्रव्य दिया। फिर उसने दीक्षा ले ली। यशोभद्राने पुत्रका नाम सुकुमार रखकर 'वह मुनिको न देख सके' इसके लिये सर्वतोभद्र नामका अनेक रत्नोंसे खचित एक सुवर्णमय भवन बनवाया। इसके साथ उसने उसके चारों ओर रजतमय (चाँदीसे निर्मित) अन्य भी बत्तीस भवन बनवाये। इस भवनमें रहता हुआ वह सुकुमार दिन व रात आदिरूप कालके भेदको, राजा व प्रजा आदिरूप जाति-भेदको तथा शीत और आतप आदिके दुःखको भी नहीं जानता था। वह ऋतु विमानमें स्थित इन्द्रके समान इस सुन्दर भवनमें वृद्धिको प्राप्त हुआ। जब सुकुमार युवावस्थाको प्राप्त हुआ

१. प–श सुमतिवर्धमाननामा मुनि°। २. ब जिगमिषति। ३. ब °त्य तवेशस्तपो। ४ प श °लिप्तामूल्यवस्त्रं ब °लिप्तासूच्यवस्त्र। ५. प श °श्चेटिकया। ६. ब श्रेष्ठिनो कथयन्। ७. ब रत्नसंचितः। ८. ब–प्रतिपाठोऽयम्। श तत्समाना रजत°। ९. प फ माटः। १०. प श चाजानन् रितु° फ चाजानन् ऋजु।

रेवतीमणिमालापद्मिनीसुशीलारोहिणीसुलोचनासुदामाप्रभृतिद्वात्रिंशदिभ्येश्वरकन्याभिः प्रासादस्यैवोपरि विवाहं चकार, बहिर्विवाहमण्डपे उचितान्वयं[1] च। तासामेकैकं रजतमयं प्रासादमदत्त। एवं स सुकुमारो विभूत्यास्थात्। तद्दीक्षाभयान्मात्रा गृहे मुनिप्रवेशो निषिद्धः।

एकदा केनचित् ग्रामान्तिकेनानर्घो[2] रत्नकम्बलो राज्ञो दर्शितः। तेन गृहीतुमशक्तेन विसर्जितो[3] यशोभद्रया तनुजार्थं गृहीतः। स तं[4] विलोक्य कर्कशोऽयं ममायोग्या [ग्यं] इत्यभणत्[5]। तदा तया द्वात्रिंशद्वधूनां पादुकाः कारिताः। तत्र सुदामा ते पादयोर्निक्षिप्य स्वभवनस्योपरिमभूमौ पश्चिमद्वारमण्डपे उपविश्य ते[6] तत्रैव विस्मृत्यान्तः प्रविष्टा। तत्रैकां पादुकां मांसभ्रान्त्या गृध्रो निनाय, राजभवनशिखरे उपविश्य चञ्च्वा हत्वा कोपेन तत्प्राङ्गणे चिक्षेप। राजा[7] विलोक्य साश्चर्येण किमिति पृष्टे केनचित्सुकुमारस्य वनितापादुकेति कथितेऽवनीशः कौतुकेन तं द्रष्टुं चचाल। सा विभूत्या स्वगृहमवीविशदवदच्च—देव, किमित्यागमनम्। सोऽभणत् कुमारान्वेषणार्थम्। तदा भूपं मध्यमभूमावुपावीविशत्, नन्दनमानिनाय दर्शयति स्म। राजा तं विलोक्यातिहृष्टोऽर्धासने उपवेशितवान्[8]। तया

तब यशोभद्राने उसका विवाह चतुरिका, चित्रा, रेवती, मणिमाला, पद्मिनी, सुशीला, रोहिणी, सुलोचना और सुदामा आदि बत्तीस धनिककन्याओंके साथ उस भवनके भीतरसे कर दिया तथा भवनके बाहर जो विवाह-मण्डप बनवाया गया था वहाँपर उसने समुचित विवाहोत्सव भी किया। यशोभद्राने सुकुमारकी उन पत्नियोंको एक एक रजतमय भवन दे दिया। इस प्रकारसे वह सुकुमार अतिशय विभूतिके साथ वहाँ भोगोंका अनुभव कर रहा था। उसके दीक्षा ले लेनेके भयसे माताने अपने भवनमें मुनिके प्रवेशको रोक दिया था।

एक दिन गाँवकी सीमामें रहनेवाले किसी व्यापारीने आकर एक रत्नमय अमूल्य कम्बल राजाको दिखलाया। परन्तु राजाने उसका मूल्य न दे सकनेके कारण उस कम्बलको न लेकर व्यापारीको वापिस कर दिया। तब यशोभद्राने उसका समुचित मूल्य देकर उसे अपने पुत्रके लिये ले लिया। परन्तु सुकुमारने उसे देखकर कहा कि यह कठोर है, मेरे योग्य नहीं है। तब यशोभद्राने उक्त रत्नकम्बलकी अपनी बत्तीस पुत्रवधुओंके लिये पादुका (जूतियाँ) बनवा दीं। उनमेंसे सुदामा एक दिन उन पादुकाओंको पाँवोंमें पहिनकर अपने भवनके ऊपर (छतपर) गई और वहाँ पश्चिमद्वारके मण्डपमें कुछ समय बैठी रही। फिर वह उन पादुकाओंको वहीं भूलकर महलके भीतर चली गई। उनमेंसे एक पादुकाको मांस समझकर गीध ले गया। उसने राजभवनके शिखरपर बैठकर चोंचसे उसे तोड़ा और क्रोधवश राजांगणमें फेंक दिया। राजाने उसे आश्चर्यपूर्वक देखकर पूछा कि यह क्या है? तब किसीने उससे कहा कि यह सुकुमारकी पत्नीकी पादुका है। यह सुनकर राजा कौतूहलके साथ सुकुमारको देखनेके लिये चल दिया। उसे यशोभद्राने बड़ी विभूतिके साथ भवनके भीतर प्रविष्ट कराया। फिर वह उससे बोली कि हे देव! आपका शुभागमन कैसे हुआ है? उत्तरमें राजाने कहा कि मैं सुकुमारको देखनेके लिये आया हूँ। तब यशोभद्राने उसे भवनके मध्यम खण्डमें बैठाया और फिर पुत्रको लाकर उसे दिखलाया। राजाने उसे देखा और प्रसन्न होकर अपने आधे आसनपर बैठा लिया। तत्पश्चात् यशोभद्राने राजासे

१. प श उचितान्वायं ब उचितान्नयं। २. ब केनचिद्भ्रमंतुकेना°। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श तेन ने गृहीतमशक्तेन विर्शजिते। ४. श सत्यं। ५. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श ममायोग्येत्यभणत्। ६. श 'ते' नास्ति। ७. श राजा। ८. प श उपवेष्टितवान् फ उपविष्टितवान्।

राज्ञो भणितमत्र भुक्त्वा गन्तव्यमभ्युपगतं तेन। भुक्त्यूर्ध्वं राजा तामपृच्छदस्य व्याधित्रयं किमित्युपेक्षितम्। तयोक्तं कः को व्याधिः। सोऽभाषत चलासनत्वं प्रकाशे लोचनस्रवणं भोजन एकैकसित्थु[क्थ]गिलनमुद्गिलनं च। तयोच्यते—नेमे व्याधयः, किंत्वयं दिव्यशय्यायां दिव्यगद्दिकायां शेते उपविशते[^2] चाद्य युष्माभिः सहोपविष्टस्य मस्तके क्षिप्तसिद्धार्थेषु सुखासने पतितसिद्धार्थकार्कश्येन चलासनोऽभूत्। रत्नप्रभां विहायान्यां[^3] प्रभा कदाचिदनेन न दृष्टा। अद्य युष्माकमारत्युद्धरणे दीपप्रभादर्शनेन लोचनस्रवणमस्याभूत्। दिनास्तसमये शालितण्डुलान् प्रक्षाल्य सरसि कमलकर्णिकायां निक्षिप्य ध्रियन्ते। द्वितीयदिने तेषामोदनं भुङ्क्ते। अद्य तदोदनमुभयोर्न पूर्यत इति तन्मध्येऽन्येऽपि तण्डुला निक्षिप्ता इति कृत्वा तथा भुक्तवानिति निरूपिते साश्चर्योऽभूद्राजा। तयोपायनीकृतवस्त्राभरणरत्नैस्तं पूजयित्वा-वन्तिसुकुमार इति तस्यापरं नाम कृत्वा स्वावासं जगाम नृपः। सोऽवन्तिकुमारो दिव्य-भोगान् चिक्रीड।

एकदा तन्मातुलो महामुनियशोभद्रनामावधिज्ञानी तमल्पायुषं विवेद, तत्संबोधनार्थं

प्रार्थना की कि आप भोजन करके यहाँसे वापिस जावें। राजाने उसकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया। भोजनके पश्चात् राजाने यशोभद्रासे पूछा कि कुमारकी जो तीन व्याधियाँ हैं उनकी तुम उपेक्षा क्यों कर रही हो? उत्तरमें सुभद्राने पूछा कि इसे वे कौन कौन-सी व्याधियाँ हैं? तब राजाने कहा कि प्रथम तो यह कि वह अपने आसनपर स्थिरतासे नहीं बैठता है, दूसरे प्रकाशके समय इसकी आँखोंसे पानी बहने लगता है, तीसरे भोजनमें वह चावलके एक-एक कणको निगलता है और थूकता है। यह सुनकर यशोभद्रा बोली कि ये व्याधियाँ नहीं हैं। किन्तु यह दिव्य शय्या (पलंग) के ऊपर दिव्य गादीपर सोता व बैठता है। आज जब यह आपके साथ बैठा था तब मंगलके निमित्त मस्तकपर फेंके हुए सरसोंके दानोंमेंसे कुछ दाने सिंहासनके ऊपर गिर गये थे। उनकी कठोरताको न सह सकनेके कारण वह आसनके ऊपर स्थिरतासे नहीं बैठ सका था। इसके अतिरिक्त इसने अब तक रत्नोंकी प्रभाको छोड़कर अन्य दीपक आदिकी प्रभाको कभी भी नहीं देखा है। परन्तु आज आपकी आरती उतारते समय दीपककी प्रभाको देखनेसे इसकी आँखोंमें-से पानी निकल पड़ा। तीसरी बात यह है कि सूर्यास्तके समय शालि धान्यके चावलोंको धोकर तालाबके भीतर कमलकी कर्णिकामें रख दिया जाता है। तब दूसरे दिन वह इनके भातको खाया करता है। आज चूँकि उतने चावलोंका भात आप दोनोंके लिये पूरा नहीं हो सकता था इसीलिये उनमें कुछ थोड़े-से दूसरे चावल भी मिला दिये गये थे। इसी कारण उसने अरुचिपूर्वक उन चावलोंको चुन-चुनकर खाया है। इस प्रकार यशोभद्राके द्वारा निरूपित वस्तुस्थितिको जान करके राजाको बहुत आश्चर्य हुआ। उस समय यशोभद्राके द्वारा राजाके लिये जो वस्त्र और आभूषण भेंट किये गये थे उनसे राजाने उसके पुत्रका सम्मान किया, अन्तमें वह कुमारका 'अवन्तिसुकुमार' यह दूसरा नाम रखकर अपने राजभवनको वापिस चला गया। वह अवन्तिसुकुमार दिव्य भोगोंका अनुभव करता हुआ क्रीड़ामें निरत हो गया।

एक दिन सुकुमारके मामा यशोभद्र नामक महामुनिराजको अवधिज्ञानसे विदित हुआ कि अब सुकुमारकी आयु बहुत ही थोड़ी शेष रही है। इसलिये वह सुकुमारको प्रबुद्ध करनेके

१. ब सित्थू। २. ब उपविशति। ३. प विहायन्या। ४. प श श्रमण। ५. प श ऽयोपानीयकृत।

योगग्रहणदिन एव तदालयनिकटस्थोद्याने स्थितजिनालयमागतः। वनपालकेनाम्बिकायाः कथिते तया गत्वा वन्दित्वोक्तं हे नाथ, मे पुत्रस्यार्तं बहु विद्यते। स तव शब्द-श्रवणेनापि तपो ग्रहीष्यति चेन्मे मरणं स्याद्दिनोऽन्यत्र याहि। मुनिरुवाच — हे मातर्योग-दिनं वर्तते, क्वापि गन्तुं तुं[1] नायाति, किन्त्वत्र चातुर्मासिकप्रतिमायोगेन तिष्ठामीति-प्रतिमायोगेन[2] तस्थौ। कार्तिकपूर्णमास्यां रात्रौ चतुर्थयामे योगं निर्वर्त्य[3] विगतनिद्रं तं ज्ञात्वा तदाह्वानार्थं त्रिलोकप्रज्ञप्तेः परिपाटिं कर्तुं प्रारब्धा[4]? । तां श्रृण्वन्नच्युतपद्मगुल्म-विमानस्थपद्मनाभदेवस्य विभूतिवर्णने क्रियमाणे जातिस्मरो जातः। वैराग्यपरायणो भूत्वा तदुत्तरणोपायः कोऽपि नास्तीति सचिन्तो वस्त्रपेटिकां ददर्श[6]। ततो वस्त्राण्याकृष्य परस्परं संधिं दत्वा[5] तदग्रमेकं स्तम्भे बद्धमन्यद् भूमौ निक्षिप्तम्, तां वस्त्रमालां धृत्वा पुण्येनोत्तीर्णः तदन्तिकं जगाम, तं वन्दित्वा दीक्षां ययाचे। यतिनोक्तं त्वया भद्रं कृतम्, दिनत्रयमेवायुरिति। तदनु स 'विविक्ते शिलातले संन्यासं ग्रहीष्यामि' इति दिदीक्षे। प्रातः पुरान्निर्गत्य मनोज्ञप्रदेशे प्रायोपगमनं जग्राह। यशोभद्राचार्योऽपि तस्मान्निर्गत्य

लिये वर्षायोग ग्रहण करनेके दिन ही उसके भवनके निकटवर्ती उद्यानमें स्थित जिनभवनमें आया। तब वनपालने मुनिके आनेका समाचार सुकुमारकी माताको दिया। इससे उसने वहाँ जाकर मुनिकी वंदना करते हुए उनसे कहा कि हे नाथ! मुझे पुत्रका मोह बहुत है। वह तुम्हारे शब्दोंके सुननेसे ही यदि तपको ग्रहणकर लेता है तो मेरा मरण निश्चित है। इसीलिये आप यहाँसे किसी दूसरे स्थानमें चले जावें। इसके उत्तरमें मुनि बोले कि हे माता! आज वर्षायोगका दिन है, अत एव अब कहीं अन्यत्र जाना सम्भव नहीं है। अब मुझे चातुर्मासिक प्रतिमायोगसे यहीं-पर रहना पड़ेगा। इस प्रकार वे मुनिराज प्रतिमायोगसे वहींपर स्थित हो गये। जब उनका चातु-र्मास पूर्ण होनेको आया तब उन्होंने कार्तिककी पूर्णिमाको रात्रिके अन्तिम पहरमें वर्षायोगको समाप्त किया। इस समय उन्होंने जाना कि अब सुकुमारकी निद्रा भंग हो चुकी है। तब उन्होंने उसको बुलानेके लिए त्रिलोकप्रज्ञप्तिका अनुक्रमसे पाठ करना प्रारम्भ कर दिया। उसमें जब अच्युत स्वर्गके पद्मगुल्म विमानमें स्थित पद्मनाभ देवकी विभूतिका वर्णन आया तब उसे सुनकर सुकुमार-को जातिस्मरण हो गया। इससे उसके वैराग्यभावका प्रादुर्भाव हुआ। तब वह उस भवनसे बाहर जानेको उद्यत हुआ। परन्तु उससे बाहर निकलनेके लिये उसे कोई उपाय नहीं दिखा। इससे वह व्याकुल हो उठा। इतनेमें उसे एक वस्त्रोंकी पेटी दीख पड़ी। उसमेंसे उसने वस्त्रोंको निकाल कर उन्हें परस्परमें जोड़ दिया। फिर उसने उस वस्त्रमालाके एक छोरको खम्भेसे बाँधा और दूसरेको नीचे जमीन तक लटका दिया। इस प्रकार वह उस वस्त्रमालाका अवलम्बन लेकर पुण्योदयसे उस भवनके बाहिर आ गया। तत्पश्चात् उसने मुनिराजके निकट जाकर उनकी वंदना करते हुए उनसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। मुनिराज बोले कि तुमने बहुत अच्छा विचार किया है, अब तुम्हारी केवल तीन दिनकी ही आयु शेष रही है। तत्पश्चात् उसने निर्जन शिलातलके ऊपर संन्यास लेनेका विचार किया और वहीं पर दीक्षित हो गया। पश्चात् प्रातःकाल होनेपर उसने नगरके बाहर जाकर किसी मनोहर स्थानमें प्रायोपगमन (स्व और परकृत सेवा-शुश्रूषाका परित्याग) संन्यास ले लिया। यशोभद्राचार्य भी उसे जिनालयसे जाकर किसी अन्य जिनालयमें ठहर

१. ब 'तु' नास्ति। २. श °योगेन ति प्रतिमा°। ३. ब निर्वृत्य। ४. श प्रारब्धा। ५. ब संधित्वा। ६. फ स्वश्रू ब दवश्रूः।

कस्मिन् जिनालये तस्थौ। इतस्तद्वनितास्तमदृष्ट्वा स्वश्वश्र्वाः कथितवत्यः। सा तच्छ्रुत्वा मूर्च्छिता इतस्ततो गवेषयन्ती वस्त्रमालां ददर्शनया गता इति बुबुधे। तच्चैत्यालये तं मुनिमपश्यन्तीतेनैव नीतः इति विचिन्त्य राजादयोऽपि महाग्रहेण गवेषयितुं गताः। न च क्वापि दृष्टस्तन्निर्गमनदिने[3] तन्नगरपश्वादिभिरपि ग्रासादिकं त्यक्तम्, किं पुनर्बन्धुभिः। इतः सुकुमारमुनिरेकपार्श्वेन स्वपरवैयावृत्यनिरपेक्षो भावनया युक्तो यावदास्ते तावत्सा सोमदत्तानेकयोनिषु भ्रमित्वा तत्र शृगाली बभूव। तया तद्गमनकाले स्फुटितपादरुधिरपादुका। आस्वादनाय गत्वा स मुनिर्निस्पन्दकात्मको दृष्टः। स्वयं तद्दक्षिणं चरणं पिल्लका वामचरणं च खादितुं लग्नाः। प्रथमदिने जानुनी, द्वितीये जङ्घे खादिते। तृतीयदिनेऽर्धरात्रौ जठरं विदार्यान्त्रावली आकृष्टा। तदा परमसमाधिना तनुं विहाय सर्वार्थसिद्धावजनि। तदा सुरेश्वराणां विष्टराणि प्रकम्पितानि। विबुध्यासौ [ध्याहो] सुकुमारस्वामिना महाकालः कृत इति जयजयशब्दैस्तूर्यादिभिश्च व्याप्ताशाः समागुः, तच्छरीरपूजां चक्रिरे। तज्जयजयनिनादमाकर्ण्य तन्माता तत्तपोग्रहणं तद्गतिं विबुध्यार्तं विसृज्य सोत्साहा बभूव, ततः स्तुतिं च चकार। प्रातः सर्वजनमाहूय राजादिभिः सह तत्र जगाम। तदर्धशरीर-

गये। इधर सुकुमारकी स्त्रियोंने उसे न देखकर अपनी सासूसे कहा। वह इस बातको सुनकर मूर्च्छित हो गई। तत्पश्चात् सचेत होकर जब इधर-उधर खोजा तब उसे वह वस्त्रमाला दिखायी दी। इससे उसे ज्ञात हुआ कि वह भवनके बाहर निकल गया है। फिर जब उसने चैत्यालयमें जाकर देखा तो वहाँ उसे वे मुनि भी नहीं दिखायी दिये। अब उसे निश्चय हो गया कि कुमारको वे मुनि ही ले गये हैं। इसी विचारसे राजा आदि भी महान् आग्रहसे उसे खोजनेके लिये गये। परन्तु वह उन्हें कहीं पर भी नहीं मिला। सुकुमारके जानेके दिन बन्धुजनोंकी तो बात ही क्या है, किन्तु उस नगरके पशुओं तकने भी आहारादिको ग्रहण नहीं किया। उधर सुकुमार मुनि स्व व परकृत वैयावृत्तिसे निरपेक्ष होकर एक पार्श्वभागसे स्थित हुए और भावनाओंका विचार करने लगे। उस समय वह सोमदत्ता (अग्निभूतिकी पत्नी) अनेक योनियोंमें परिभ्रमण करती हुई उस वनमें शृगाली हुई थी। वनमें जाते समय सुकुमारके कोमल पाँवोंके फूट जानेसे जो रुधिरकी धारा निकली थी उसको चाटती हुई वह शृगाली वहाँ जा पहुँची। उसने वहाँ उन निश्चल सुकुमार मुनिको देखा। तब वह उनके दाहिने पैरको स्वयं खाने लगी और बाँये पैरको उसके बच्चे खाने लगे। उन सबने पहिले दिन उनको घुटनों तक और दूसरे दिन जांघों तक खाया। तीसरे दिन आधी रातके समय जब उन सबने पेटको फाड़कर आँतोंको खींचना प्रारम्भ किया तब उत्कृष्ट समाधिके साथ शरीरको छोड़कर वे सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुए। उस समय इन्द्रोंके आसन कम्पित हुए। इससे जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि सुकुमार स्वामी घोर उपसर्गको सहकर मरणको प्राप्त हुए हैं। तब वे जय जय शब्दों और वादित्रों आदिके शब्दोंसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करते हुए वहाँ गये। वहाँ जाकर उन्होंने सुकुमारके शरीरकी पूजा की। देवोंके जय जय शब्दको सुनकर जब सुकुमारकी माताको उसके दीक्षित होकर उत्तम गतिको प्राप्त होनेका समाचार ज्ञात हुआ तब उसने आर्त ध्यानको छोड़कर सुकुमारको उत्साहपूर्वक स्तुति की। प्रातःकाल हो जानेपर वह

१. ब ददर्शनायागति बुबुधे। २. ब लग्ना.। ३. ब तन्निर्गमदिने। ४. ब पार्श्वेणा। ५. श भावनया। ६. ब गता। ७. ब प्रकंपिततानि तत्कालकृति बुध्याहो सुकुमार°। ८. फ श तच्छरीरे पूजां। ९. ब तत्स्तुतिं चकार।

विलोकनानन्तरं मूर्च्छया[1] धरित्र्यां पपात, तदनु महाशोकं चकार, वध्वो बान्धवोऽपि। राजादीनां महदाश्चर्यं जातम्। तदनु सा आत्मानं जनं च संबोध्य महतामनुष्ठानमेतदिति संतुष्टा तत्पूजां संस्कारं च कृत्वा यत्र यशोभद्राचार्योऽस्थात् तत्र सर्वेऽपि समागताः। मुनिं वीक्ष्य सानन्देन मनाक् हसित्वा जिनं समर्च्य वन्दित्वा, तमपि, तदनु तं पप्रच्छ[2] सुकुमारस्योपरि मेऽतिस्नेहकारणं किमिति। तदा [मुनिना] प्राक्तनी कथाशेषाच्युतगमनपर्यन्तं[3] कथिता। [4]नागशर्मचरदेवोऽच्युतादागत्य राजश्रेष्ठीन्द्रदत्तगुणवत्योः सुरेन्द्रदत्तोऽजनि। चन्द्रवाहनस्तस्मादेत्य वैश्यसर्वयशोयशोमत्योस्तनुजोऽहं यशोभद्रनामा जातः, कौमारे दीक्षितोऽवधिमनःपर्ययुतो जातः। त्रिवेदीचरस्तस्मादागत्य मम भगिनी त्वं जातासि। पद्मनाभः समेत्य सुकुमारोऽभूत्। सुबलचर आरणादागत्य वृषभाङ्कोऽजनि। अतिबलस्ततोऽवनीयास्य भूपस्य नन्दनकनकध्वजो[5]ऽजनीत्यादि प्रतिपादिते यशोभद्रा चतसृणां[6] गर्भवतीनां सुकुमारप्रियाणां गृहादिकं समर्प्य शेषस्नुषाभिर्बन्धुभिश्च दीक्षिता[7]। राजा लघुपुत्राय राज्यं वितीर्य कनकध्वजादिबहुराजपुत्रैर्दीक्षां बभार तन्नार्योऽपि। सर्वेऽपि विशिष्टं तपश्चक्रुः। ततः सुरेन्द्रदत्तयशोभद्रवृषभाङ्ककनकध्वजा मोक्षं जग्मुः। अन्ये सौधर्मप्रभृतिसर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं गताः।

समस्त जनको बुलाकर राजा आदिकोंके साथ उस स्थानपर गई। वहाँ जब उसने सुकुमारके शेष रहे आधे शरीरको देखा तब वह मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर गई। उस समय उसके शोकका पारावार न था। सुकुमारकी पत्नियों और बन्धुजनोंको भी बहुत शोक हुआ। सुकुमारकी सहनशीलताको देखकर राजा आदिकोंको बहुत आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् उसने सन्तुष्ट होकर अपने आपको तथा अन्य जनताको भी संबोधित करते हुए कहा कि ऐसा दुर्धर अनुष्ठान महा पुरुषोंके ही सम्भव है। अन्तमें वे सब सुकुमारके शरीरकी पूजा व अग्निसंस्कार करके जिस जिनालयमें यशोभद्राचार्य विराजमान थे वहाँ गये। मुनिराजको देखकर यशोभद्राने आनन्दपूर्वक कुछ हँसते हुए प्रथमतः जिनेन्द्रकी पूजा व वंदनाकी और तत्पश्चात् उन मुनिराजकी भी पूजा व वंदना की। फिर उसने उनसे पूछा कि सुकुमारके ऊपर मेरे अतिशय स्नेहका क्या कारण है ? इस प्रश्नको सुनकर यशोभद्र मुनिने अच्युत स्वर्ग जाने तककी पूर्वकी समस्त कथा कह दी। तत्पश्चात् वे बोले कि जो नागशर्माका जीव जो अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था वह वहाँसे च्युत होकर राजसेठ इन्द्रदत्त और गुणवतीका पुत्र सुरेन्द्रदत्त (यशोभद्राका पति) हुआ है। चन्द्रवाहन राजाका जीव वहाँसे च्युत होकर वैश्य सर्वयश और यशोमतीके मैं यशोभद्र नामक पुत्र हुआ हूँ। मैंने कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ले ली थी। मुझे अवधि और मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो चुका है। त्रिवेदीका जीव स्वर्गसे च्युत होकर मेरी बहिन तुम हुई हो। पद्मनाभ देव वहाँसे च्युत होकर सुकुमार हुआ था। राजा सुबलका जीव आरण स्वर्गसे आकर वृषभांक राजा हुआ है। अतिबलका जीव वहाँसे च्युत होकर इस राजाका पुत्र कनकध्वज हुआ है। मुनिराजके द्वारा प्रतिपादित इस सब वृत्तान्तको सुनकर यशोभद्राने सुकुमारकी चार गर्भवती पत्नियोंको घर आदि सँभलाकर शेष सब पुत्रबधुओं और बन्धुओंके साथ दीक्षा धारण कर ली। राजाने छोटे पुत्रको राज्य देकर कनकध्वज आदि बहुत-से राजपुत्रोंके साथ दीक्षा ले ली। साथ ही उनकी स्त्रियोंने भी दीक्षा ले ली। उन सभीने घोर तपश्चरण किया। उनमेंसे सुरेन्द्रदत्त, यशोभद्र, वृषभांक और कनकध्वज मोक्षको

१. ब मूछिया। २. फ तमपप्रच्छ। ३. ब पर्यंती। ४. श नागशर्माचर°। ५. श नंदनकध्वजो। ६. फ श स्नुषादिभिर्बन्धुभिश्च। ७. ब °श्चादीक्षिता।

यशोभद्राच्युतमन्याः सौधर्मादितत्पर्यन्तकल्पेषु देवा देव्यश्च बभूवुरिति। एवं माययागमश्रुतावपि सूर्यमित्रः सर्वज्ञोऽभूत्, मातङ्गी सुकुमारोऽजनि तद्भावनयान्ये किं लोकाधिपा न स्युरिति ॥ ४-५ ॥

[२३]

लालावासनिवासकोऽपि मलिनश्चौरः सदा रौद्रधी-
श्चाण्डालादमलागमस्य वचनं श्रुत्वा ततः शर्मदम्।
सर्वज्ञो भवति स्म देवमहितो भीमाह्वयः सौख्यदो
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले ॥ ६ ॥

अस्य कथा— सौधर्मकल्पे कनकप्रभविमाने कनकप्रभनामा देवः कनकमालादेव्या सह नन्दीश्वरद्वीपं सर्वदेवैर्गत्वा तत्पूजानन्तरं देवेषु स्वर्गलोकं गतेषु स्वयं जम्बूद्वीपपूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिणीपुरबाह्यस्थितजगत्पालनामधेयचक्रेश्वरकारितकनकजिनालयं पूजयितुं जगाम। तत्र शिवंकरोद्याने स्थितद्वादशसहस्रयतिभिः सुव्रताचार्यं ददर्श तन्मध्ये भीमसाधुनामानमृषिं च। तं स्वजन्मान्तरशत्रुं विबुध्य तं निःशल्यं बोद्धुं स सवनितो नरो भूत्वा गणिनं समुदायं च वन्दित्वा भीमसाधुमपृच्छद्धर्मम्। सोऽवोचदहं मूर्खोऽन्यं पृच्छ। तर्हि त्वं किमिति मुनिरभूत्। स्वातीतभवानाकलय्य यतिरभवम्। तर्हि

प्राप्त हुए। शेष सब यथायोग्य सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक पहुँचे। यशोभद्रा अच्युत स्वर्गमें तथा शेष स्त्रियाँ सौधर्मसे लेकर यथायोग्य अच्युत स्वर्ग तक देव व देवियाँ हुईं। इस प्रकार मायाचारसे भी जब सूर्यमित्र आगमको सुनकर सर्वज्ञ तथा वह चाण्डाली सुकुमार हुई है तब क्या अन्य भव्य जीव सुरुचिपूर्वक उसके चिन्तनसे लोकके स्वामी नहीं होंगे? अवश्य होंगे ॥ ४-५ ॥

लाखके घरमें स्थित होकर निरन्तर क्रूर परिणाम रखनेवाला जो निकृष्ट चोर चाण्डालसे निर्मल एवं सुखदायक आगमके वचनको सुनकर भीम नामक केवली हुआ, जिसकी देवोंने आकर पूजा की। इसीलिए जिन भगवान्‌में भक्ति रखनेवाला मैं उस आगमकी प्राप्तिसे निर्मल चारित्रको धारण करता हुआ पृथिवीतलपर कृतार्थ होता हूँ ॥ ६ ॥

इसकी कथा इस प्रकार है— सौधर्म कल्पके भीतर कनकप्रभ विमानमें स्थित कनकप्रभ नामका देव कनकमाला देवी और सब देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीपमें गया। वहाँ उसने जिन-पूजा की। तत्पश्चात् अन्य सब देवोंके स्वर्गलोक चले जानेपर वह स्वयं जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्वविदेहके भीतर पुष्कलावती देशमें स्थित पुण्डरीकिणी पुरके बाह्य भागस्थ कनक जिनालयकी पूजा करनेके लिये गया। यह जिनालय जगत्पाल नामक चक्रवर्तीके द्वारा निर्मित कराया गया था। वहाँ उसने शिवंकर उद्यानमें स्थित बारह हजार मुनियोंके साथ सुव्रताचार्य और उस संघके मध्यमें स्थित भीमसाधु नामक ऋषिको भी देखा। उसने उसको अपने पूर्व जन्मका शत्रु जानकर उसको निःशल्यताको ज्ञात करनेके लिये कनकमालाके साथ मनुष्यका वेष धारण किया। फिर उसने आचार्य और संघकी वन्दना करके भीमसाधुसे धर्मके विषयमें पूछा। तब भीमसाधुने कहा कि मैं मूर्ख हूँ, उसके सम्बन्धमें किसी दूसरेसे पूछो। इसपर पुरुष वेषधारी देव बोला कि तो फिर तुम मुनि क्यों हुए हो? उसने उत्तर दिया कि अपने पूर्व भवोंको जानकर मैं मुनि हुआ हूँ। यह

१. प °श्चंडालादमला°, श °श्चंडालार्दमला°। २. फ तं निःशल्यत्वं ब तन्निःशल्य° [तन्निःशल्यत्वं]।

तानेव कथय। कथयामि, शृणु त्वम्। अत्रैव विषये मृणालपुरे राजा सुकेतुः, वैश्यः श्रीदत्तो वनिता विमला, पुत्री रतिकान्ता। विमलायाः भ्राता रतिधर्मा, जाया कनकश्रीः, पुत्रो भवदेवो दीर्घग्रीव इति उष्ट्रग्रीवापरनामाभूत्। स द्वीपान्तरं गच्छन् सन् रतिकान्ता मह्यं दातव्या, अन्यस्मै ददासि चेद्राजाज्ञेति मातुलस्याज्ञां द्वादशवर्षाण्यवधिं च कृत्वागमत्। अवध्यति-क्रमेऽशोकदेव-जिनदत्तयोर्नन्दनसुकान्ताय दत्ता सा। आगतेन भवदेवेन तन्मारणार्थम् उपार्जित-द्रव्येण भृत्याः कृताः। तं ज्ञात्वा दम्पती शोभानगरेशप्रजापालस्य भृत्यं शक्तिसेनं [षेणं] धन-गाख्याटव्यां स्थानान्तरेण स्थितं सहस्रभटं शरणं प्रविष्टौ। तद्भयात्स तूष्णीं स्थितः। तस्मिन् मृते तेनाग्निं दत्त्वा मारितौ। ग्राम्यैः सोऽपि तदग्नौ क्षिप्तो ममार। तौ पुण्डरी-किण्यां कुबेरकान्तराजश्रेष्ठिगृहे पारापतौ जाते। स तत्समीपजम्बूग्रामे मार्जारोऽजनि। तौ पारापतावेकदा तद्ग्रामं गतौ तन्मार्जारेण खादितौ। मृत्वा पक्षी हिरण्यवर्मनामा विद्या-धरचक्री बभूव, पक्षिणी तदग्रमहिषी प्रभावती जाता। तदनु तपो जगृहतुः। हिरण्यवर्ममुनिः स्वगुरुणा पुण्डरीकिणीमागतः, सापि स्वक्षान्तिकया सह। शिवंकरोद्याने स्थितौ समुदायौ। स मार्जारो मृत्वा तदा तत्र विद्युद्वेगनामा कोट्टपालकस्य भृत्योऽभूत्। तद्वनिता वन्दितुं

सुनकर वह देव बोला कि तो उन पूर्व भवोंको ही कहिये। इसपर उसने कहा कि उन्हें कहता हूँ, सुनो। इसी देशके भीतर मृणालपुरमें सुकेतु राजा राज्य करता था। वहाँ एक श्रीदत्त नामका वैश्य था। इसकी पत्नीका नाम विमला था। इन दोनोंके एक रतिकान्ता नामकी पुत्री थी। विमलाके एक भाई था, जिसका नाम रतिधर्मा था। रतिधर्माकी पत्नीका नाम कनकश्री था। उसके एक भवदेव नामका पुत्र था। उसकी ग्रीवा लम्बी थी। इसीलिये उसका दूसरा नाम उष्ट्रग्रीव भी प्रसिद्ध था। द्वीपान्तरको जाते हुए उसने अपने मामासे कहा कि रतिकान्ताको मेरे लिये देना। यदि तुम उसे किसी दूसरेके लिए दोगे तो राजाज्ञाके अनुसार दण्डको भोगना पड़ेगा। इस प्रकार मामासे कहकर और उसके लिये बारह वर्षकी मर्यादा करके वह द्वीपान्तरको चला गया। उसकी वह बारह वर्षकी अवधि समाप्त हो गई, परन्तु वह वापिस नहीं आया। तब वह कन्या अशोकदेव और जिनदत्ताके पुत्र सुकान्तके लिये दे दी गई। जब वह भवदेव वापस आया तब उसने सुकान्तको मार डालनेके लिये कमाये हुए द्रव्यको देकर कुछ भृत्योंको नियुक्त किया। इस बातको जान करके वे दोनों (सुकान्त और रतिकान्ता) शोभानगरके राजा प्रजापालके सेवक (सामन्त) शक्तिसेन नामक सहस्रभटकी शरणमें पहुँचे। उस समय वह सहस्रभट धनगा नामकी अटवीमें पड़ाव डालकर स्थित था। उसके भयसे वह भवदेव तब शान्त रहा। तत्पश्चात् भवदेवने उस सहस्रभटके मर जानेपर उन्हें आगमें जलाकर मार डाला। इधर ग्रामवासियोंने उसको भी उसी आगमें फेंक दिया। इससे वह भी मर गया। सुकान्त और रतिकान्ता ये दोनों मरकर पुण्डरीकिणी नगरीमें कुबेरकान्त नामक राजसेठके घरपर कबूतर और कबूतरी हुए थे और वह भवदेव मरकर उसके समीप जम्बू ग्राममें बिलाव हुआ था। वे कबूतर और कबूतरी एक दिन उसके स्थान (जम्बू ग्राम) पर गये, वहाँ उन्हें उस बिलावने खा लिया। इस प्रकारसे मरकर वह कबूतर तो हिरण्यवर्मा नामका विद्याधरोंका चक्रवर्ती हुआ और वह कबूतरी उसकी प्रभावती नामकी पटरानी हुई। कुछ समयके पश्चात् उन दोनोंने दीक्षा ग्रहण कर ली। एक बार हिरण्यवर्मा मुनि अपने गुरुके साथ पुण्डरीकिणी नगरीमें आये। साथ ही वह प्रभावती भी अपनी प्रमुख आर्यिकाके साथ वहाँ गई। ये दोनों संघ वहाँ जाकर शिवंकर उद्यानमें स्थित हुए।

गतेराजादिभिस्तत्र गता। लोकपालो राजा रूपसमग्रं युवानं हिरण्यवर्ममुनिं विलोक्य तद्गुरुगुणचन्द्रयोगिनं पृष्टवान्—अयं कः, किमिति दीक्षितः। मुनिरब्रूत—अतीतभवे कुबेरकान्तश्रेष्ठिगृहे पारापतयुगलमासीत्तज्जन्मान्तरविरोधिमार्जारेण जम्बूग्रामे भक्षितम्। तद्दानानुमोदफलेन वियच्चरमुख्यदम्पती जातौ। विमाननगरीं विलोक्य जातिस्मरौ भूत्वा दीक्षिताविति श्रुत्वा राजादयो मुनिं नत्वा पुरं प्रविष्टाः। तया स्वभर्तुस्तद्वृत्तं कथितम्। तदा सोऽपि जातिस्मरो जातः। रात्रौ तं मुनिं तामर्जिकां[2] चोत्थाप्य श्मशानं नीत्वैकत्र बन्धित्वा चिताग्नौ चिक्षेप। तौ दिवं गतौ। दिनान्तरैः[3] सोऽपि राजा[ज] भाण्डागारं मुमोषेति धृत्वा चतुर्दशीदिने मारणाय पितृवनमाकृष्टः। तदा तं चण्डाभिधश्चाण्डालो[4] न हन्ति, ममाद्य त्रसघाते[5] निवृत्तिरस्तीति वदति। राज्ञा कोपेन लाक्षागृहे निक्षिप्य प्रातरग्निर्दीयतामित्यादेशो दत्तो भृत्यानाम्। तथा कृते विद्युद्वेगेनोच्यते—हे चण्ड, मां हत्वा सुखेन किं न तिष्ठसि। मातङ्गोऽवोचज्जिनधर्मातिशयं विलोक्य चतुर्दश्यामुपवासो हिंसाव्रतं[6] चागृह्णाम्[7]। ततो म्रिये, न तु मारयामि। तद्वचः श्रुत्वा चौरः स्वनिन्दां चक्रे 'अहोऽहं अस्मादपि निकृष्टो यत्यार्जिकयोर्वधकारकत्वात्'[8]। उक्तवांश्च हे चण्ड, '[9]मुनिअर्जिकावधकस्य मे का गतिः स्यात्ते-

इधर वह बिलाव मरकर उस समय वहाँ विद्युद्वेग नामका कोतवालका अनुचर हुआ था। उसकी स्त्री मुनिवन्दनाके लिये जाते हुए राजा आदिके साथ गई। लोकपाल नामक राजाने सुन्दर हिरण्यवर्मा मुनिको तरुण देखकर उसके गुरु गुणचन्द्र योगीसे पूछा कि यह कौन है और किस कारणसे दीक्षित हुआ है? उत्तरमें मुनि बोले कि यह युगल पूर्वभवमें कुबेरकान्त सेठके घरपर कबूतर और कबूतरी हुआ था। उनको इनके जन्मान्तरके शत्रु बिलावने जम्बूग्राममें खा लिया था। इस प्रकारसे मरकर वे दोनों उत्तम दानकी अनुमोदनाके प्रभावसे विद्याधरोंके स्वामी हुए। उन दोनोंने विमान नगरीको देखकर जातिस्मरण हो जानेसे दीक्षा धारण कर ली है। इस वृत्तान्तको सुनकर वे राजा आदि मुनिको नमस्कार करके नगरको वापिस गये। कोतवालकी स्त्रीने घर वापिस आकर उपर्युक्त वृत्तान्तको अपने पतिसे कहा। तब उसे भी जातिस्मरण हो गया। वह रातमें उन मुनि और आर्यिकाको उठाकर श्मशानमें ले गया। वहाँ उसने उन दोनोंको एक साथ बाँधकर चिताकी अग्निमें फेंक दिया। इस प्रकारसे मरणको प्राप्त होकर वे दोनों स्वर्गको गये। कुछ दिनोंके पश्चात् विद्युद्वेग भी राजकोशके चुरानेके कारण पकड़ लिया गया। उसे चतुर्दशीके दिन मारनेके लिये श्मशानमें ले जाकर चण्ड नामक चाण्डालको उसके वध करनेकी आज्ञा दी गई, परन्तु वह उसका वध करनेको तैयार नहीं था। वह कहता था कि मैंने आजके दिन त्रसवधका त्याग किया है। तब राजाने क्रोधित हो उसे लाखके घरमें रखकर सेवकोंको यह आज्ञा दी कि प्रातःकालमें इसे अग्निसे भस्म कर देना। ऐसी अवस्थामें विद्युद्वेगने उस चाण्डालसे कहा कि हे चण्ड! तू मेरी हत्या करके सुखपूर्वक क्यों नहीं रहता है? इसके उत्तरमें चाण्डालने कहा कि मैंने जैन धर्मकी महिमाको देखकर चतुर्दशीके दिन उपवास रखते हुए अहिंसाव्रतको ग्रहण किया है। इसीलिये मुझे मरना इष्ट है परन्तु मारना इष्ट नहीं है। चाण्डालके इन वचनोंको सुनकर चोरने आत्मनिन्दा करते हुए विचार किया कि खेदकी बात है कि मैं इस चाण्डालसे भी अधम हूँ, क्योंकि, मैंने मुनि

१. फ श गतेः। २. ब तामार्जिकां। ३. प फ प्रतिपाठोऽयम्। श दिनान्तरे। ४. प श नकुलाभिधश्चाण्डालो। ५. फ त्रसंघाते श त्रसद्घाते। ६. प मुपवासो गृहीतवान् हिंसाव्रतं। ७. ब गृह्णां। ८. ब यत्यार्ज्यिकयो°। ९. ब मुन्यार्ज्यिका।

नोक्तं महापापी त्वं सप्तमावनेरन्यत्र न तिष्ठसि, तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालं महादुःखानुभवनं करिष्यसि। तन्निशम्य चौरस्तत्पादयोर्लग्नो दुःखनिवारणं कथयेति। ततस्तेन धर्मः कथितः[1]। तदनु स सम्यक्त्वमादधे। तत्प्रभावेन तपस्विघातकाले सप्तमावनी बद्धमायुः संक्षिप्य प्रथमावनौ चतुरशीतिलक्षवर्षायुर्नारकोऽभूत्। चाण्डालो दिवं गतः। नारकस्तस्मादेत्यात्रैव पुण्डरीकिण्यां वैश्यसमुद्रदत्तसागरदत्तयोः सूनुर्भीमोऽभूत्। अक्षरादिविज्ञानवैरी प्रवृद्धः सन् चैकदा शिवंकरोद्यानं गतः। तत्र सुव्रतमुनिमपश्यदवन्दत। तेन धर्मे कथिते ऽणुव्रतानि गृहीत्वा गृहं गच्छतो मुनिनोक्तम्-हे भीम, ते पिता व्रतानि त्याजयति चेन्मम समर्पयेति। 'ओं' भणित्वा गृहं गतो नृत्यन्तं[3] विलोक्य पित्रा रे भीम, किं नृत्यसि इत्युक्तेऽनर्घ्यो जिनधर्मो लब्ध इति नृत्यामि। तच्छ्रुत्वा पितावादीत्—रे विरूपकं कृतं त्वया, मदन्वये केनापि जिनधर्मो न गृहीत इति त्वं त्यज, नो चेद्याहि"[4]। तनुजोऽभूत तर्हि तस्य समर्प्यागच्छामि। ततस्तद्बान्धवाः सर्वे[5] मिलित्वा तदर्पयितुं चलिताः। भीमोऽन्तराले शूले[6] प्रोतं पुरुषं वीक्ष्य मूर्च्छितो जातिस्मरो जातः। पित्रादीनां स्वरूपं कथितवान्। तदा तेषां

और आर्यिकाका वध किया है। पश्चात् उसने चाण्डालसे पूछा कि हे चण्ड! मुनि और आर्यिकाका वध करनेसे मेरी क्या अवस्था होगी? चाण्डालने उत्तर दिया कि तुमने महान् पाप किया है, इससे तुम सातवें नरकको छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकते हो। तुम सातवें नरकमें जाकर वहाँ तेतीस सागरोपम काल तक महान् दुखको भोगोगे। यह सुनकर वह चोर चाण्डालके पाँवोंमें गिर गया और बोला कि मेरे इस दुखको दूर करनेका उपाय बतलाइए। तब उसने उसे धर्मका उपदेश दिया। इससे उसने सम्यग्दर्शनको ग्रहण कर लिया। उसके प्रभावसे उसने मुनिकी हत्या करनेके समयमें जो सातवें नरककी आयुका बन्ध किया था उसका अपकर्षण करके वह प्रथम पृथिवीमें चौरासी लाख वर्षकी आयुका धारक नारकी हुआ। वह चाण्डाल मरकर स्वर्गको गया। और वह नारकी उक्त पृथिवीसे निकलकर इसी पुण्डरीकिणी नगरीमें वैश्य समुद्रदत्त और सागरदत्ताका पुत्र भीम नामका हुआ। वह अक्षरादिज्ञानका शत्रु था—उसे अक्षरका भी बोध न था। वह वृद्धिको प्राप्त होकर किसी समय शिवंकर उद्यानमें गया था। वहाँ उसने सुव्रत मुनिको देखकर उनकी वंदना की। मुनिने उसे धर्मका उपदेश दिया, जिसे सुनकर उसने अणुव्रतोंको ग्रहण कर लिया। जब वह वहाँसे घरके लिए वापिस जाने लगा तब मुनिने उससे कहा कि हे भीम! यदि तेरा पिता इन व्रतोंको छुड़ानेका आग्रह करे तो तू इन्हें मेरे लिये वापिस दे जाना। तब वह इसे स्वीकार करके घरको वापिस चला गया। घर जाकर वह नाचने लगा। तब उसे नाचते हुए देखकर पिताने पूछा कि रे भीम! तू किसलिये नाच रहा है? इसके उत्तरमें भीमने कहा कि मैंने आज अमूल्य जैन धर्मको प्राप्त किया है, इसीलिये हर्षित होकर मैं नाच रहा हूँ। इस बातको सुनकर पिताने कहा कि रे भीम! तूने यह अयोग्य कार्य किया है। मेरे कुलमें किसीने भी जैन धर्मको धारण नहीं किया है। इसीलिये तू या तो इन व्रतोंको छोड़ दे या फिर मेरे घरसे निकल जा। यह सुनकर भीमने कहा कि तो मैं इन व्रतोंको उस मुनिके लिये वापिस देकर आता हूँ। तब उसके सब ही कुटुम्बी जन मिलकर उन व्रतोंको वापिस करानेके लिये चल दिये। मार्गमें भीम किसी पुरुषको शूलीके ऊपर चढ़ा हुआ देखकर मूर्छित हो गया। उसे उस

१. श त्रयस्त्रिंश° । २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श धर्मं कथितं। ३. ब गतो नृत्यन् तं नृत्यंतं। ४. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श चेत्त्वं याहि। ५. ब सर्वेपि। ६. श 'शूले' नास्ति।

जीवाभावभ्रान्तिर्नष्टा। तैरणुव्रतानि आदायिषत, तेने च तपः। सोऽहं मूर्खध्वज इति। श्रुत्वा कृतकनरेणोक्तम्— हे मुने, यदि तौ इदानीं पश्यसि तर्हि किं करोषि। तर्हि क्षमां कारयाम्येनं[1] वैराणां [2]तवारी त्वया दग्धौ देवलोकेऽजनिष्वहि। मुनिरश्रुपातं कुर्वन्नुवाच यदज्ञानेन मया युवयोर्दुःखं कृतं तत्क्षमेथां तत्फलं मयापि प्राप्तमिति। तदनु तौ तत्पादयोर्लग्नौ, तदा स ध्यानेनास्थात्। तदैव समुत्पन्नकेवलोऽमरादिमहितः श्रीविहारं चकार, सुरगिरौ मुक्तिं ययौ। एवं तपस्विघातकोऽतिरौद्रश्चोरोऽपि मातङ्गोपदिष्ट[3]श्रुतोपयोगेनैवंविधोऽभूद्भव्यस्तदुपयोगो किं त्रिलोकीशो न स्यादिति ॥६॥

[२४]

संजातो भुवि लोकनिन्दितकुले निन्द्यः सदा दुःखित-
श्चण्डालोऽभवदच्युताख्यविदिते कल्पेऽमरो दिव्यधीः।
वैश्यापादितचारुधर्मवचनैः[4] ख्यातो विनीतापुरे
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले ॥७॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डेऽयोध्यायां वैश्यावेकमातृकौ पूर्णभद्रमणिभद्रनामानौ। तावेकदा जिनालयं गच्छन्तौ चाण्डालं शुनीं च वीक्ष्य मोहमाश्रितौ। जिनमभ्यर्च्य[5] नत्वा

समय जातिस्मरण हो गया। तब उसने पिता आदिकोंसे अपने पूर्वभवोंका वृत्तान्त कह दिया। इससे उनकी जीवके अभावविषयक भ्रान्ति नष्ट हो गई। तब उन सबने तो अणुव्रतोंको ग्रहण किया और भीमने तपको। वह मूर्खशिरोमणि मैं ही हूँ। इस सब वृत्तान्तको सुनकर मनुष्यवेषधारी उस देवने कहा कि हे मुनीन्द्र! यदि उन दोनोंको आप इस समय देखें तो क्या करेंगे? इसपर भीमने कहा कि मैं उनसे क्षमा कराऊँगा। तब वह देव बोला कि तुम्हारे शत्रु वे दोनों हम ही हैं, तुम्हारे द्वारा अग्निमें जलाये जानेपर हम दोनों स्वर्गमें उत्पन्न हुए हैं। यह सुनकर अश्रुपात करते हुए मुनि बोले कि मैंने जो अज्ञानताके वश होकर तुम दोनोंको कष्ट पहुँचाया है उसके लिये क्षमा करो। मैं भी उसका फल भोग चुका हूँ। तत्पश्चात् वे दोनों (देव व देवी) मुनिके चरणोंमें गिर गये। तब निराकुल होकर भीम मुनि ध्यानमें स्थित हो गये। इसी समय उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तब देवोंने आकर उनकी पूजा की। फिर उन्होंने विहारकर धर्मोपदेश किया। अन्तमें वे सुरगिरि (मेरु पर्वत) से मोक्षको प्राप्त हुए। इस प्रकार मुनिका घात करनेवाला क्रूर वह चोर भी यदि चाण्डालके उपदेशको सुनकर इस प्रकारकी विभूतिको प्राप्त हुआ है तब उस धर्मोपदेशमें उपयोगको लगानेवाला भव्य जीव क्या तीनों लोकोंका स्वामी न होगा? अवश्य होगा ॥६॥

जो निन्द्य चाण्डाल इस पृथिवीपर लोकनिन्दित नीच कुलमें उत्पन्न होकर सदा ही दुखी रहता था वह विनीता नगरीमें वैश्यके द्वारा दिये गये निर्मल धर्मोपदेशको सुनकर अच्युत स्वर्गमें दिव्य बुद्धिका धारी (अवधिज्ञानी) प्रसिद्ध देव हुआ था। इसीलिए जिनदेवकी भक्ति करनेवाला मैं उस धर्मोपदेशकी प्राप्तिसे निर्मल चारित्रका धारक होकर लोकमें कृतार्थ होता हूँ ॥७॥

उसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्यखण्डके भीतर अयोध्या नगरीमें पूर्णभद्र और मणिभद्र नामके दो वैश्य थे जो एक ही माताके पुत्र थे। एक दिन वे जिनालयको जा रहे थे।

१. ब °वतान्वादयि तेन। २. ब तव वैरी। ३. श मातंगो यदिदिष्ट। ४. ब चारुजैनवचनः। ५. प जिनमभर्च्य श जिनमर्च्य।

मुनिं च पृच्छतः स्म तयोरुपरिमोहहेतुम्[1]। अकथयत् मुनिनाथः। तथाहात्रैवार्यखण्डे मगध-देशे शालिग्रामे विप्रसोमदेवाग्निज्वालयोरपत्ये अग्निभूतिवायुभूती। तावेकदा राजगृहं प्रवि-शन्तौ यात्रां ददृशतुः। किमर्थं यात्रेति पृष्टे केनचिदुक्तम् 'नन्दिवर्धनदिगम्बरवन्दनार्थम्' इति। किमावाभ्याम् अपि कोऽपि वन्द्योऽस्तीति गर्वितौ तत्र गतौ। मुनिना जानतापि कस्मादागतावित्युक्तम्। शालिग्रामादागतौ, सत्यमसत्यं वा यूयं जानीथ। पूर्वजन्मनः कस्मादागतौ। आवां न विद्मः, भवन्तः कथयन्तु। कथ्यते, शृणुथः। शालिग्रामस्यैव सीमान्ते शृगालौ जातौ। तदैकः[2] कुडुम्बी प्रमादकः स्ववरत्रादिकं तत्रैव वटतले बिलस्याभ्यन्तरे निधायं[3] गृहं गतः। तद्वर्षास्वार्द्रितं[4] ताभ्यां भक्षितम्। ततः समुद्भूतशूलेन मृतौ युवां जातौ। श्रुत्वा तौ जातिस्मरौ बभूवतुः। प्रमादकोऽपि मृत्वा स्वसुतस्यैव सुतो जातः, भवस्मरणेन मूकीभूय तिष्ठतीति निरूपिते तमाहूय जनाः पृष्ट्वा[5] साश्चर्या बभूवुः। ततो मूकः[6] स्पष्टालापो भूत्वा दीक्षितः, अन्येऽपि। तत्सामर्थ्यदर्शनात्तौ मिथ्यात्वोदयात् कुपितौ रात्रौ तं मारयितु-

मार्गमें उन्हें एक चाण्डाल और एक कुत्ती दिखायी दी। उन दोनोंको देखकर उनके हृदयमें मोहका प्रादुर्भाव हुआ। जिनालयमें जाकर उन दोनोंने जिनेन्द्रकी पूजा की। तत्पश्चात् उन्होंने मुनिको नमस्कार करके उनसे उपर्युक्त चाण्डाल और कुत्तीके ऊपर प्रेम उत्पन्न होनेका कारण पूछा। मुनिराज बोले– इसी आर्यखण्डके भीतर मगध देशके अन्तर्गत शालिग्राममें ब्राह्मण सोमदेव और अग्निज्वालाके अग्निभूति और वायुभूति नामके दो पुत्र थे। एक दिन उन दोनोंने राज-भवनके भीतर प्रवेश करते हुए लोकयात्राको देखकर पूछा कि यह जनसमूह कहाँ जा रहा है? तब किसीने उत्तर दिया कि ये सब नन्दिवर्धन दिगम्बर मुनिकी वंदनाके लिये जा रहे हैं। यह सुनकर उनके हृदयमें अभिमान उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे कि क्या हमसे भी कोई अधिक वंदनीय है। इस प्रकार अभिमानके वशीभूत होकर वे दोनों उक्त मुनिराजके पास गये। मुनिराज-ने जानते हुए भी उनसे पूछा कि तुम दोनों कहाँसे आये हो? उन्होंने उत्तर दिया कि हम शालिग्रामसे आये हैं। यह सत्य है या असत्य, इसे आप ही जानें। फिर मुनिराजने उनसे पूछा कि पूर्व जन्मकी अपेक्षा तुम कहाँसे आये हो? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा कि यह सब हम नहीं जानते हैं, आप ही बतलाइए। तब मुनि बोले कि अच्छा हम बतलाते हैं, सुनो। तुम दोनों पूर्व भवमें इसी शालिग्रामकी सीमाके अन्तमें शृगाल हुए थे। उस समय एक प्रमादक नामका किसान अपनी चाबुक आदि वहाँ एक वट वृक्षके नीचे बिलके भीतर रखकर घरको चला गया था। उस समय वर्षा बहुत हुई। ऐसे समयमें भूखसे व्याकुल होकर उन दोनोंने वर्षासे भीगी हुई उस गीली चाबुकको खा लिया। इससे उन्हें शूलकी बाधा उत्पन्न हुई। तब वे दोनों मरणको प्राप्त हुए व तुम दोनों उत्पन्न हुए हो। यह सुनकर उन दोनोंको जातिस्मरण हो गया। वह प्रमादक भी मरकर अपने पुत्रका ही पुत्र हुआ है, जो जातिस्मरण हो जानेसे मूक (गूंगा) होकर स्थित है। इस प्रकार मुनिके द्वारा निरूपण करनेपर समीपस्थ जनोंने जब उसे बुलाकर पूछा तब उसने यथार्थ स्वरूप कह दिया। इससे उन सबको बहुत आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् उस मूकने स्पष्टभाषी होकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। उसके साथ कुछ दूसरे भी भव्य जीवोंने दीक्षा ले ली। मुनिकी इस आश्चर्यजनक शक्तिको देखकर मिथ्यात्वके वशीभूत हुए उन अग्निभूति और वायुभूतिको बहुत

१. ब पृच्छति स्म तयोरुपरिमोहहेतुं कथय स कथयन् मुनि॰। २. फ श तदेकः। ३. ब विधाय। ४. प गतः मूवर्षास्वार्द्रितं श तत्तद्वर्षास्वार्द्रितं। ५. प पृष्टा श पृष्टाः। ६. प श मूकस्य।

मारयन्तौ, क्षेत्रपालेन कीलितौ। प्रातः सर्वैर्निन्दितौ पितृभ्यां मोचितौ राज्ञा च रक्षितौ श्रावकत्वं प्रपन्नौ समाधिना सौधर्मंमितौ। ततोऽयोध्यायां श्रेष्ठिसमुद्रदत्तधारिण्योस्तनुजौ युवां जातौ। तौ विप्रभवपितरौ नानायोनिषु भ्रमित्वा चाण्डालशुन्यौ जातौ[2] इति मोहकारणम्। तन्निशम्य[3] तौ ताभ्यां जिनवचनामृतपानेन प्रीणितौ गृहीताणुव्रतसंन्यसनौ[4] च श्वपाको मासेन चितनुर्भूत्वाच्युते नन्दीश्वरनामा महर्द्धिको देवो बभूव। शुनी तन्नगरेशभूपालतनुजा रूपवती जाता। तत्स्वयंवरे तेन देवेन संबोध्य प्रव्राजिता[5] समाधिना दिवि देवोऽजनि। एवं चण्डालोऽपि सकृज्जिनवचनभावनया देवोऽभूदन्यस्य[6] किं प्रष्टव्यम् ॥७॥

[२५]

आरण्ये[7] मुनिघातिका[8] च समदा व्याघ्री धरित्रीभया
कल्पावासमगादनूनविभवं श्रीदिव्यदेहोदयम्।
किं मन्ये मुनिभाषितादनुपमादन्यस्य भव्यस्य हो
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले ॥८॥

अस्य कथा— अत्रैवायोध्यायां राजा कीर्तिधरो राज्ञी सहदेवी। राजैकदास्थानस्थः

क्रोध हुआ। इससे वे रातमें मुनिका घात करनेके लिए आये। परन्तु क्षेत्रपालने उन्हें वैसा ही कीलित कर दिया। प्रातःकाल होनेपर जब सब लोगोंने उन्हें वैसा स्थित देखा तो सभीने उन दोनोंकी बहुत निन्दा की। तत्पश्चात् माता-पिताने उन दोनोंको मुक्त कराया और राजाने भी उन्हें जीवितदान दे दिया। फिर वे श्रावकके व्रतको ग्रहण करके समाधिपूर्वक मृत्युको प्राप्त होते हुए सौधर्म स्वर्गमें देव हुए। वहाँसे च्युत होकर तुम दोनों अयोध्यामें सेठ समुद्रदत्त और धारिणीके पुत्र हुए हो। तुम्हारे ब्राह्मणभवके वे माता-पिता अनेक योनियोंमें परिभ्रमण करके चाण्डाल और कुत्ती हुए हैं। इसीलिए उन्हें देखकर तुम दोनोंको मोह उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार मोहके कारणको सुन करके पूर्णभद्र और मणिभद्रने उन दोनोंको जिनवचनरूप अमृतका पान कराकर प्रसन्न किया। इस धर्मोपदेशको सुनकर चाण्डाल और उस कुत्तीने अणुव्रतोंको धारण कर लिया। अन्तमें समाधिपूर्वक एक मासमें मरणको प्राप्त होकर वह चाण्डाल तो अच्युत स्वर्गमें नन्दीश्वर नामक महर्धिकदेव हुआ और वह कुत्ती उसी नगरके भूपाल राजाकी रूपवती पुत्री हुई। उसने स्वयंवरके समयमें उक्त देवसे सम्बोधित होकर दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर वह समाधिपूर्वक मरणको प्राप्त होकर स्वर्गमें देव उत्पन्न हुई। इस प्रकार वह चाण्डाल भी एक बार जिनवचनकी भावनासे जब देव हुआ है तब फिर अन्य कुलीन भव्य जीवका क्या कहना है? वह तो उत्तम ऋद्धिको प्राप्त होगा ही ॥७॥

जिस व्याघ्रीने गर्वित होकर वनमें मुनिका घात किया था तथा जो पृथिवीको भी भय उत्पन्न करनेवाली थी वह जब मुनिके अनुपम उपदेशको सुनकर विपुल वैभवके साथ दिव्य शरीरको प्राप्त करानेवाले स्वर्गको प्राप्त हुई है तब भला अन्य भव्य जीवके विषयमें क्या कहा जाय? अर्थात् वह तो स्वर्ग-मोक्षके सुखको प्राप्त होगा ही। इसी कारण जिन भगवान्की भक्ति करनेवाला मैं उस धर्मकी प्राप्तिसे निर्मल चारित्रको धारण करता हुआ इस पृथिवीतलके ऊपर कृतार्थ होता हूँ ॥८॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी अयोध्यापुरीमें कीर्तिधर नामका राजा राज्य करता था।

१. ब तं मारयंतौ क्षेत्र°। २. ब चांडालपुत्र्यौ जातौ। ३. ब -प्रतिपाठोऽयम्। श मोहकारणं निशम्य। ४. श सन्यासनौ। ५. प श प्रव्रजिता। ६. ब °दन्यस्य ततः किं। ७. ब अरण्ये। ८. प श घातका।

सूर्यग्रहणं विलोक्य निर्विण्णस्तपोऽर्थं गच्छन् प्रधानैः संतत्यभावान्निवारितः कियन्ति दिनानि राज्यं कुर्वन्नस्थात्।[1] सहदेवी[2] स्वस्य गर्भसंभूतौ तद्दीक्षाभयाद् गूढवृत्त्या भूमिगृहे पुत्रं प्रासूत। तद्गृप्यवस्त्रं प्रक्षालयन्त्याश्चेटिकाया विबुध्य विप्रेण वेणुबद्धध्वजहस्तेन भूपाय निवेदिते तद्वृत्ते[3] राजा तस्मै तनुजाय राज्यं दत्त्वा, विप्राय द्रव्यं च निष्क्रान्तः। बालः सुकोशलाभिधानेन प्रवृद्धो महामण्डलेश्वरोऽभूत्। सोऽपि मुनेर्दर्शनेन तपो ग्रहीष्यतीत्यादेशभयात्पुरे मुनिसंचारो मात्रा वारितः। एकदा भुक्तोत्तरं सुकोशलो मात्रा समं हर्म्यस्योपरिमभूमावु-[4]पविश्य दिशोऽवलोकयन्नस्थात्। तदवसरे कीर्तिधरो[5] मुनिर्भिक्षार्थं तत्पुरं प्रविष्टोऽम्बिकया विलोक्य प्रतिहारेण यापितः। गच्छतस्तस्यापरभागं ददर्श राजा कोऽयमित्यपृच्छच्च।[6] मात्रोदितं रङ्कोऽयं न द्रष्टव्यं इति तच्छ्रुत्वा सुकोसलधात्री वसन्तमालाऽरोदीत्। तां विलोक्य राजा पृष्टवान्।[7] तयोक्तं तव पितायं महातपस्वी रङ्को भणित इति रोदिमि। तदनु भूपस्तद्गतिमें, नान्येत्युद्याने स्थितस्यान्तिकं गतः, अन्तःपुरादिपरिवारोऽपि। भो भो मुने मां दीक्षां देहि मां दीक्षां देहीति भणन् तत्र गतः। उदरमाताडय्य रुदन्तीं तद्देवीं चित्रमालां

रानीका नाम सहदेवी था। एक दिन राजा सभा-भवनमें बैठा हुआ था। उस समय उसे सूर्यग्रहणको देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब वह दीक्षा लेनेके लिए उद्यत हो गया। परन्तु सन्तानके न होनेसे मन्त्रियोंने उससे कुछ दिन और रुक जानेकी प्रार्थना की। तदनुसार उसने कुछ दिन तक और भी राज्य किया। इस बीचमें कीर्तिधरकी पत्नी सहदेवीके गर्भाधान हुआ। समयानुसार उसने राजाके दीक्षा ले लेनेके भयसे गुप्तरूपसे पुत्रको तलघरमें जन्म दिया। सहदेवीके रुधिरादियुक्त मलिन वस्त्रोंको धोती हुई दासीसे ज्ञात करके किसी ब्राह्मणने बाँसमें बँधी हुई ध्वजाको हाथमें ले जाकर राजासे पुत्र-जन्मका वृत्तान्त कह दिया। इसे सुनकर राजाने उस पुत्रके लिए राज्य तथा ब्राह्मणके लिए द्रव्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। बालकका नाम सुकोशल रखा गया। वह क्रमशः वृद्धिंगत होकर महामण्डलेश्वर हो गया। पुत्र भी मुनिका दर्शन होनेपर दीक्षा ग्रहण कर लेगा, इस प्रकार मुनिके कहनेपर माताके हृदयमें जो भयका संचार हुआ था उससे सहदेवीने नगरमें मुनिके आगमनको रोक दिया था। एक दिन सुकोशल भोजन करनेके पश्चात् माताके साथ भवनके ऊपर बैठा हुआ दिशाओंका अवलोकन कर रहा था। इसी समय कीर्तिधर मुनि आहारके निमित्त उस नगरमें प्रविष्ट हुए। परन्तु सुकोशलकी माताने उन्हें देखकर द्वारपालके द्वारा हटवा दिया। तब सुकोशलने जाते हुए उन मुनिराजके पृष्ठ भागको देखकर पूछा कि यह कौन है? इसके उत्तरमें माताने कहा कि वह रंक (दरिद्र) है, उसे देखना योग्य नहीं है। इस बातको सुनकर सुकोशलकी धाय वसन्तमाला रो पड़ी। तब सुकोशलने उसे रोती देखकर उससे रोनेका कारण पूछा। इसपर धायने कहा कि यह महातपस्वी तुम्हारा पिता है, जिसे कि तुम्हारी माता रंक कहती है। यही सुनकर मैं रो रही हूँ। यह सब ज्ञात करके सुकोशलने सोचा कि जो अवस्था उनकी है वही मेरी होगी, और दूसरी नहीं हो सकती। यही विचार करके वह अन्तःपुर आदि परिवारके साथ उद्यानमें विराजमान उन मुनिराजके पास जा पहुँचा, वहाँ पहुँचकर उसने कहा कि हे मुनिराज! मुझे दीक्षा दीजिए, मुझे दीक्षा दीजिए। इधर सुकोशलकी पत्नी चित्रमाला उसके दीक्षा-ग्रहणसे पेटको ताड़ित करके रुदन कर रही थी। उसे इस प्रकारसे रोती हुई देखकर

१. फ अतः प्राक् 'महादेवी' इत्यधिकं पदमस्ति। २. प श सहदेवीस्तस्य। ३. ब तद्वृत्तौ। ४. श हर्म्योपरिम। ५. ब कीर्तिधरोपि। ६. ब पृष्टव्य। ७. ब राज्ञा पृष्टयोदितं तव।

कीर्तिधरोऽभणत्-तन्वि, उदरं मा ताडय, गर्भोषितस्य नन्दनस्योपद्रवः[1] स्यादिति। राजा-भणदेतद्गर्भे किं पुत्रोऽस्ति। मुनिरुवाचास्ति। ततो राज्ञोक्तमहो जना अस्माकं राजा नास्तीति दुःखं मा कार्षीः[2], चित्रमालागर्भस्थो बालो युष्माकं राजेति भणित्वा गर्भस्य पट्टबन्धं कृत्वा दीक्षितः सकलागमधरो भूत्वा गुरुणा सह तपः करोति। एकदा एकस्मिन् पर्वते वृक्षतले वर्षाकाले[3] चातुर्मासिकप्रतिमायोगं दधाने[4] प्रतिज्ञावसाने सुकोशलमुनिर्मार्गशुद्धि-परीक्षणार्थं[5] यावद् गच्छति तावन्माता सहदेवी तदार्तेन मृत्वा तत्राटव्यां व्याघ्री बभूव। तां[6] बुभुक्षितां रौद्राकारां[7] संमुखमागच्छन्तीं विलोक्य स मुनिर्ध्यानेनास्थात्। तया भक्षणे समुत्पन्नकेवलोऽन्तर्मुहूर्ते[8] मोक्षमुपजगाम। जय जय सुकोशलमुने तिर्यगुपसर्गं सहित्वा साधितमोक्षे[9]ऽतिदेवनिनादात्परिनिर्वाणपूजाविधाने तत्तूर्यनिनादाच्च[10] तदुपसर्गं मोक्षगतिं च विबुध्य कीर्तिधरो मुनिस्तन्निर्वाणभूमिमागत्य तत्स्तुतिं परिनिर्वाणक्रियां चकार। तदनु व्याघ्रीं विलोक्योक्तवान्-हे सहदेवि, पूर्वं सुकोशलस्य कुङ्कुमारुणितं कक्षादिकं वीक्ष्य हा पुत्र, किमिति रुधिरं निर्गतमिति विजल्प्य मूर्छितासि। सा त्वं तदार्तेन मृत्वा व्याघ्री भूत्वा तमेव भक्षितवतीति। तदाकर्ण्य जातिस्मरा जाता। पश्चात्तापेन शिलायां स्वशिरस्ताडयन्ती मुनिना

कीर्तिधर मुनि बोले कि हे पुत्री! तू इस प्रकारसे उदरको ताडित मत कर, ऐसा करनेसे उदरस्थ बालकको बाधा पहुँचेगी। यह सुनकर सुकोशलने पूछा कि क्या इसके गर्भमें पुत्र है? मुनिने उत्तर दिया कि हाँ, इसके गर्भमें पुत्र है। तब सुकोशलने कहा कि हे प्रजाजनो! तुम 'हमारा कोई राजा नहीं है' यह विचार करके दुखी मत होओ। चित्रमालाके गर्भमें जो पुत्र है वह तुम्हारा राजा है, यह कहकर उसने गर्भस्थ बालकको पट्ट बाँध करके दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् वह समस्त श्रुतका पारगामी होकर गुरुके साथ तप करने लगा। इसी बीचमें वर्षाकालके प्राप्त होनेपर उसने एक पर्वतके ऊपर किसी वृक्षके नीचे चातुर्मासिक प्रतिमायोगको धारण किया। तत्पश्चात् प्रतिज्ञाके समाप्त हो जानेपर सुकोशल मुनि जब तक मार्गशुद्धिकी परीक्षाके लिए जाते हैं तब तक उनकी माता सहदेवी, जो उसके आर्तध्यानसे मरकर उसी वनमें व्याघ्री हुई थी, उस भूखी भयानक व्याघ्रीको सम्मुख आती देखकर वे मुनि ध्यानमें स्थित हो गये। तब उस व्याघ्रीने उनका भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ और वे अन्त-र्मुहूर्तमें मुक्तिको प्राप्त हो गये। उस समय हे सुकोशल मुने! हे तिर्यञ्चकृत उपद्रवको सहकर मोक्षको सिद्ध करनेवाले! आपकी जय हो, जय हो; इस प्रकार देवोंके शब्दोंसे दिशाएँ मुखरित हो उठी थीं। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा निर्वाणके उपलक्ष्यमें किये गये पूजामहोत्सवके समयमें बजते हुए बाजोंका जो गम्भीर शब्द हुआ था उससे भी सुकोशल मुनिके उपसर्गको सहकर मुक्त होनेके समाचारको ज्ञात करके कीर्तिधर मुनि उनके निर्वाणस्थानमें आये। वहाँ उन्होंने उनकी स्तुति करते हुए निर्वाणक्रियाको सम्पन्न किया। तत्पश्चात् वे उस व्याघ्रीको देखकर बोले कि हे सहदेवी! पहिले तू सुकोशलकी काँख आदिको कुंकुमसे लाल देखकर 'हा पुत्र! यह रुधिर कैसे निकला' कहकर मूर्च्छित हो जाती थी। उसी तूने उसके आर्तध्यानसे मरकर इस व्याघ्रीकी अवस्थामें उसे ही खा डाला है। मुनिके इन वचनोंको सुनकर उस व्याघ्रीको जातिस्मरण हो

१. फ श नन्दनोपद्रवः। २. श मा कार्य। ३. फ वर्षाकाले। ४. ब दधाते। ५. प श मार्ग-परीक्षणार्थं। ६. ब व्याघ्री संपन्ना तां। ७. फ श रौद्राकारं। ८. श °केवलान्त°। ९. फ मोक्ष! इति। १०. श तत्तूर्यनिनादाश्च।

परमागमकथनेन संबोधिता सम्यक्त्वपूर्वकमणुव्रतानि संन्यासं च जग्राह। तनुं विहाय सौधर्मे देवोऽतिभोगाधिको[1] बभूव। एवं मुनिघातिकाया व्याघ्रया अपि तदुपयोगेनैवंविधं फलं जातं संयतस्य किं प्रष्टव्यमिति ॥८॥

श्रीकीर्तिं चारुमूर्तिं प्रबलगुणगणं वर्णभोगोपभोगं
सौभाग्यं दीर्घमायुर्वरकरणगुणान् पूज्यतां लोकमध्ये।
विज्ञानं सार्वभावं कलिलविगमजं सौख्यमैश्यं विशुद्धं
लब्ध्वान्ते सिद्धिलाभं भजति पठति यो दिव्यधन्याष्टकं सः॥

इति पुण्यास्रवाभिधानग्रन्थे केशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्य[2]रामचन्द्रमुमुक्षुविरचिते[3] श्रुतोपयोगफलव्यावर्णनाष्टकं समाप्तम्[4] ॥श्रीः॥३॥

[२६-२७]

मेघेश्वरो नाम नराधिनाथो लेभे सुपूजामिह नाकजेभ्यः।
शीलप्रभावाज्जिनभक्तियुक्तः शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ॥१॥
विख्यातरूपा हि सुलोचनाख्या कान्ता जयाख्यस्य नृपस्य मुख्या।
देवेशपूजां लभते स्म शीलात् शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ॥२॥

अनयोर्वृत्तयोरेकैव कथा। तथा हि—सौधर्मेन्द्रो निजसभायां व्रतशीलस्वरूपं

गया। तब वह पश्चात्ताप करती हुई अपने शिरको पत्थरपर पटकने लगी। उस समय मुनिराजने उसे आगमके उपदेशसे सम्बोधित किया। उसमें उपयोग लगाकर उसने सम्यग्दर्शनपूर्वक अणुव्रतोंको ग्रहण कर लिया। अन्तमें वह सन्यासके साथ शरीरको छोड़कर सौधर्म स्वर्गमें अतिशय भोगोंका भोक्ता देव हुई। इस प्रकार मुनिका घात करनेवाली उस व्याघ्रीको भी जब धर्मोपदेशमें मन लगानेसे इस प्रकारका फल प्राप्त हुआ है तब संयत जीवका क्या पूछना है? उसे तो उत्कृष्ट फल प्राप्त होगा ही ॥८॥

जो भव्य जीव इस दिव्य धन्याष्टक (जिनागमश्रवणसे प्राप्त फलके निरूपण करनेवाले इस श्रेष्ठ आठ कथामय प्रकरण) को पढ़ता है वह निर्मल कीर्ति, सुन्दर शरीर, उत्तम गुणसमूह, प्रशस्त वर्णादि रूप भोगोपभोग, सौभाग्य, दीर्घ आयु, उत्तम इन्द्रियविषय, लोकमें पूज्यता, समस्त पदार्थोंका ज्ञान (सर्वज्ञता), कर्ममलके नाशसे होनेवाले निर्मल सुख और विशुद्ध आधिपत्यको प्राप्त करके अन्तमें मोक्षसुखका अनुभव करता है।

इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनिके शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु-द्वारा विरचित पुण्यास्रव नामक ग्रन्थमें श्रुतोपयोगके फलको बतलानेवाला यह अष्टक समाप्त हुआ ॥३॥

जिन भगवान्‌का भक्त मेघेश्वर (जयकुमार) नामक राजा यहाँ शीलके प्रभावसे देवोंके द्वारा की गई पूजाको प्राप्त हुआ है। इसीलिए मैं उस शीलका परिपालन करता हूँ ॥१॥

इस जयकुमार राजाकी सुलोचना नामकी सुप्रसिद्ध रूपवती मुख्य पत्नी शीलके प्रभावसे देवेन्द्रकृत पूजाको प्राप्त हुई है। इसीलिए मैं उस शीलका परिपालन करता हूँ ॥२॥

इन दोनों पद्योंकी कथा एक ही है जो इस प्रकार है— किसी समय सौधर्म इन्द्र अपनी

---

१. ज °तिभोगादिको। २. प शिक्ष ज सिक्ष। ३. प ज 'मुमुक्षु' नास्ति। ४. प व्यावर्णः नामाष्टकं समाप्तः फ व्यथावर्णनोऽष्टकं समाप्तः ज व्यावर्णनामाष्टकं समाप्तं।

निरूपयन् रतिप्रभदेवेन पृष्टो देव, जम्बूद्वीपभरते यथावत् शीलप्रतिपालकस्तथा नरोऽस्ति नो वा। सुरपतिरुवाच। "कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरेशो मेघेश्वरो यथावच्छीलधारकस्तथा तद्देवी सुलोचना च। सोऽपि पूर्वभवसाधितविद्य इति विद्याधरयुगलदर्शनेन जातिस्मरत्वे सति समागतविद्यः, सापि। स च तया सह संप्रति कैलाशं गत्वा वृषभेशं प्रणम्य समवसरणान्निर्गत्य तया सहैकस्मिन् प्रदेशे क्रीडित्वा तस्यां विमानान्तर्निद्रायां[1] समागतायां स वने क्रीडन् रम्यां शिलामपश्यत्तत्र ध्यानेन स्थितो वर्तते। साप्युत्थाय तमदृष्ट्वा कायोत्सर्गेणास्थात्।" तच्छ्रुत्वा स देवस्तच्छील[2]परीक्षणार्थमागत्य स्वदेवीर्भूपनिकटमगमयत्तच्छीलं विनाशयतेति। स्वयं देवीनिकटं जगाम। ताभिस्तस्य नानाप्रकारस्त्रीधर्मैश्चित्तविक्षेपे कृतेऽपि भूभवनस्थितमणिप्रदीपवदकम्पमनाः स्थितवान् यदा तदा तासामाश्चर्यमासीत्[3]। सोऽपि सुलोचनायाश्चित्तं बहुप्रकारैः पुरुषविकारैर्न चालयामास। तदोभावेकत्र मेलयित्वा हस्तिनागपुरं नीत्वा महागङ्गोदकेन स्नापयित्वा स्वर्गलोकजवस्त्राभरणैस्तावपूपुजत् सुरस्तदनु शुद्धदृष्टिः स्वर्गलोकमगमत्। स च नृपस्तया सह सुरमहितः सुखेन तस्थौ। एवं बहुपरिग्रहौ

सभामें व्रत व शीलके स्वरूपका निरूपण कर रहा था। उस समय रतिप्रभ नामक देवने उससे पूछा कि हे देव ! जम्बूद्वीपके भीतर स्थित भरत क्षेत्रमें इस प्रकार निर्मल शीलका परिपालन करनेवाला वैसा कोई पुरुष है या नहीं ? उत्तरमें इन्द्रने कहा कि हाँ, कुरुजांगल देशके भीतर स्थित हस्तिनागपुरका अधिपति मेघेश्वर निर्मल शीलका धारक है। उसी प्रकार उसकी पत्नी सुलोचना भी निर्मल शीलका पालन करनेवाली है। उस मेघेश्वरने चूँकि पूर्वभवमें विद्याओंको सिद्ध किया था इसीलिए उसे एक विद्याधरयुगलको देखकर जातिस्मरण हो जानेसे वे सब विद्याएँ प्राप्त हो गई हैं। साथ ही उसकी पत्नी सुलोचनाको भी वे विद्याएँ प्राप्त हो गई हैं। इस समय उसने सुलोचनाके साथ कैलाश पर्वतपर जाकर ऋषभ जिनेन्द्रकी वंदना की। तत्पश्चात् उसने समवसरणसे निकलकर एक स्थानमें सुलोचनाके साथ क्रीड़ा की। इस समय सुलोचनाको विमानके भीतर नींद आ जानसे जयकुमार वनमें क्रीड़ा करता हुआ एक रमणीय शिलाको देखकर उसके ऊपर ध्यानसे स्थित है। उधर सुलोचना उठी तो वह भी जयकुमारको न देखकर कायोत्सर्गसे स्थित हो गई है। इन्द्रके द्वारा की गई इस प्रशंसाको सुनकर उस रतिप्रभ देवने आकर उनके शीलकी परीक्षा करनेके लिए अपनी देवियोंको मेघेश्वरके निकट भेजते हुए उनसे कहा कि तुम सब मेघेश्वरके समीपमें जाकर उसके शीलको नष्ट कर दो। तथा वह स्वयं सुलोचनाके पास गया। उन देवियोंने स्त्रीके योग्य अनेक प्रकारकी चेष्टाओं द्वारा मेघेश्वरके चित्तको विचलित करनेका भरसक प्रयत्न किया, फिर भी वह पृथिवीरूप भवनमें स्थित मणिमय दीपकके समान निश्चल ही रहा। उसके चित्तकी स्थिरताको देखकर उन देवियोंको बहुत आश्चर्य हुआ। इधर रतिप्रभ देव स्वयं भी पुरुषके योग्य अनेक प्रकारकी चेष्टाओंके द्वारा सुलोचनाके चित्तको चलायमान नहीं कर सका। तब वह देव उन दोनोंको एक साथ लेकर हस्तिनागपुर ले गया। वहाँ उसने उन दोनोंका गंगाजलसे अभिषेक करके स्वर्गीय वस्त्राभरणोंसे पूजा की। तत्पश्चात् वह सम्यग्दृष्टि देव स्वर्गलोकको वापिस चला गया। उधर देवोंसे पूजित वह मेघेश्वर सुलोचनाके साथ सुखपूर्वक स्थित हुआ। इस प्रकार बहुत परिग्रहके धारक होकर अतिशय अनुरागी भी वे दोनों जब शीलके

१. ब श विमानान्तनिद्राया। २. प श देवः शील°। ३. फ ब तदा साश्चर्यमासीत्। ४. श लोकवस्त्रा-। ५. फ °वपूपुजन् सुरस्तदनु, ब °वपूजन् सुरस्तदनु श °वपूपुजनुस्तदनु।

महारागिणावपि शीलेन सुरमहितौ तौ बभूवतुरन्य: किं न स्यादिति ॥१-२॥

[२८]

श्रेष्ठी कुबेरप्रियनामधेयः पूजां मनोज्ञां त्रिदशैः समाप।
रूपाधिकः कर्मरिपुः स शीलाच्छीलं ततोऽहं खलु पालयामि ॥३॥

अस्य कथा— जम्बूद्वीपपूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिण्यां राजा गुणपालो राज्ञी कुबेरश्रीः पुत्रौ वसुपालश्रीपालौ। देवीभ्राता राजश्रेष्ठी कुबेरप्रियोऽनङ्गाकारश्चरमाङ्गः। राज्ञः प्रिया कापि[3] सत्यवती, तद्भ्राता चपलगतिर्महामन्त्री। एकदा राजाऽपूर्वनाटकावलोकाद्धृष्टः स्वकिंकरीं विलासिनीमुत्पलनेत्रामपृच्छत् ईदृग्विधं कौतुकावहं नाटकं मम राज्ये एव जातमिति। तयाभाणीदं कौतुकं न भवति। किं तु मया यद् दृष्टं[5] कौतुकं तद्वच्मि। देव, एकदाहं तवास्थानस्थं कुबेरप्रियं विलोक्य कामबाणजर्जरितान्तःकरणाऽभवम्। तदनु तदन्तिकं दूतिकां प्रास्थापयम्[6]। तया मत्स्वरूपे निरूपिते सोऽवोचत् एकपत्नीव्रतमस्तीति। ततस्तं चतुर्दश्यां श्मशाने प्रतिमायोगेन स्थितमानाययं शय्यागृहेऽनेकस्त्रीविकारैस्तच्चित्तं[7]

प्रभावसे देवोंसे पूजित हुए हैं तब निर्ग्रन्थ व वीतराग भव्य जीव क्या न प्राप्त करेगा? वह तो मोक्षके भी सुखको प्राप्त कर सकता है ॥२॥

अतिशय सुन्दर और कर्मोंका शत्रु वह कुबेरप्रिय नामका सेठ शीलके प्रभावसे देवोंके द्वारा की गई मनोज्ञ पूजाको प्राप्त हुआ है। इसीलिए मैं उस शीलका परिपालन करता हूँ ॥३॥

इसकी कथा इस प्रकार है— जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें पुष्कलावती नामका देश है। उसमें स्थित पुण्डरीकिणी नगरीमें गुणपाल नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम कुबेरश्री था। इनके वसुपाल और श्रीपाल नामके दो पुत्र थे। रानीके एक कुबेरप्रिय नामका भाई था जो राजसेठके पदपर प्रतिष्ठित था। वह कामदेवके समान सुन्दर व चरमशरीरी था। कोई सत्यवती नामकी रमणी राजाकी वल्लभा थी। सत्यवतीके एक चपलगति नामका भाई था जो महामन्त्रीके पदपर प्रतिष्ठित था। एक दिन राजा गुणपालके लिए अपूर्व नाटकको देखकर बहुत हर्ष हुआ। तब उसने अपनी दासी उत्पलनेत्रा नामकी वेश्यासे पूछा कि इस प्रकारके कौतुकको उत्पन्न करनेवाला नाटक मेरे राज्यमें ही सम्पन्न हुआ है न? इसके उत्तरमें उत्पलनेत्राने कहा कि यह कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है। किन्तु मैंने जो आश्चर्यजनक दृश्य देखा है उसे कहती हूँ, सुनिए। हे राजन्! एक दिन आपके सभाभवनमें स्थित कुबेरप्रियको देखकर मेरा मन काम-बाणसे अतिशय पीड़ित हो गया था। इसलिए मैंने उसके पास अपनी दूतीको भेजा। उसने जाकर मेरा संदेशा सेठसे कहा। उसे सुनकर सेठने मेरी प्रार्थनाको अस्वीकार करते हुए कहा कि मैंने एक-पत्नीव्रतको ग्रहण किया है। तत्पश्चात् वह चतुर्दशीके दिन जब श्मशानमें प्रतिमायोगसे स्थित था उस समय मैंने उसे अपने यहाँ उठवा लिया। फिर मैंने उसे शयनागारमें ले जाकर उसके चित्तको विचलित करनेके लिए स्त्री-सुलभ अनेक प्रकारकी कामोत्पादक चेष्टाएँ कीं। फिर भी मैं उसके चित्तको विचलित नहीं कर सकी। तब मैंने उसे वहींपर पहुँचा-

१. फ स। २. प फ श °नंगाकारकश्चरमागः। ३. ब प्रिया परापि। ४. प नाटकालादृघृष्टः, श नाटकालोकादृघृष्टः। ५. प श मया दृष्टं फ मया यदृष्टं। ६. फ प्रस्थापयंतया ब प्रस्थापयंस्तया। ७. फ योगस्थितमानाय शय्या°। ८. ब प्रतिपाठोऽयम्। श °नेकविकारै°।

चालयितुं न शक्ता। तं तत्रैव निधाय गृहीतब्रह्मचर्यव्रताहमिति। अहमपि तच्चित्तं गृहीतुं न शक्तेति महच्चित्रमिति। राजा बभाण तत्संतानजाता एतद्विधा एवेति।

एकदोत्पलनेत्रया ब्रह्मचर्यव्रतं गृहीतमित्यजानन् चण्डपाशिकपुत्र आगत्य तैलाभ्यङ्गं कुर्वन्त्या जल्पन्नस्थात्। तावन्मन्त्रिपुत्रम् आगच्छन्तं दृष्ट्वा कुट्टिन्या तद्भयात्स मञ्जूषायां क्षिप्तः। मन्त्रिपुत्रस्तया जल्पन् स्थितः। तावच्चपलगतिमागच्छन्तं वीक्ष्य तद्भयात् सोऽपि तत्रैव निक्षिप्तः। चपलगतिना आगत्योक्तम्—हे उत्पलनेत्रे, शृङ्गारं विधाय तिष्ठ, अपराह्णे द्रव्येणागच्छामि। उत्पलनेत्रा उवाच—हे चपलगते, सत्यवतीविवाहदिने मम हारो विवाहानन्तरं दास्यामीति त्वयैव याचित्वा नीतस्तं प्रयच्छेति। तेनोक्तं प्रयच्छामि। तदा तयोक्तं मञ्जूषान्तःस्थितदेवौ युवामस्मिन्नर्थे साक्षिणाविति। द्वितीयदिने नृपास्थाने उत्पलनेत्रा चपलगतिं हारं ययाचे। सोऽवादीदहं न जानामि, कस्माद्दीयते। यदि न नयसि[2] तर्हि ह्यः कथं दास्यामीति उक्तोऽसि। सोऽवोचन्नाब्रुवम्। राजाब्रूत: उत्पलनेत्रेऽस्मिन्नर्थे ते[3] साक्षिणः सन्ति। तयोक्तं सन्ति। तर्हि तान् वादय। वादयामीत्युक्त्वा तत्रानीता[4] मञ्जूषा। तदनु तयावादि हे मञ्जूषान्तःस्थितदेवौ, ह्यः चपलगतिनोक्तं यथोक्तं[5] ब्रूतम्। ततस्ताभ्यां यथोक्त-

---

कर ब्रह्मचर्यव्रतको ग्रहण कर लिया। हे देव ! अनेकोंके चित्तको आकर्षित करनेवाली मैं भी उसके चित्तको चलित नहीं कर सकी, यही एक महान् आश्चर्यकी बात है। तब राजाने कहा कि उसकी वंशपरम्परामें उत्पन्न होनेवाले महापुरुष इसी प्रकार दृढ़ होते हैं।

एक दिन 'उत्पलनेत्राने ब्रह्मचर्यको ग्रहण कर लिया है' इस बातको न जानकर उसके यहाँ कोतवालका पुत्र आया। तब वह तेलकी मालिश कर रही थी। वह उसके साथ वार्तालाप करते हुए वहाँ ठहर गया। इतनेमें वहाँ मन्त्रीके पुत्रको आता हुआ देखकर उसके भयसे चपलनेत्राने कोतवालके पुत्रको पेटीके भीतर बैठा दिया। उधर मन्त्रीका पुत्र उसके साथ बातचीत कर रहा था कि इतनेमें वहाँ चपलगति भी आ पहुँचा। उसे आते हुए देखकर उत्पलनेत्राने उस मन्त्रीके पुत्रको भी उसी पेटीके भीतर बन्द कर दिया। चपलगतिने आकर कहा कि हे उत्पलनेत्रे ! तू शृंगारको करके बैठ, मैं अपराह्नमें धन लेकर आता हूँ। इसपर उत्पलनेत्राने उससे कहा कि हे चपलगते ! तुमने सत्यवतीके विवाहके अवसरपर मेरे हारको ले जा करके यह कहा था कि मैं इसे विवाह हो जानेपर वापिस दे दूँगा। इस प्रकार जो तुम उस हारको मांगकर ले गये थे उसे अब मुझे वापिस दे दो। यह सुनकर चपलगतिने कहा कि अभी उसे वापिस दे जाता हूँ। तब उत्पलनेत्रा बोली कि हे पेटीके भीतर स्थित दोनों देवताओ ! इस विषयमें तुम दोनों साक्षी हो। दूसरे दिन उत्पलनेत्राने राजसभामें उपस्थित होकर जब चपलगतिसे उस हारको मांगा तब उसने कहा कि मुझे उसका पता भी नहीं है, मैं उसे कहाँसे दूँ ? इसपर चपलनेत्रा बोली कि यदि तुम नहीं जानते हो तो फिर तुमने कल यह किसलिए कहा था कि मैं उसे वापिस दे दूँगा ? यह सुनकर चपलगति बोला कि मैंने तो ऐसा कभी नहीं कहा। इसपर राजा बोला कि हे उत्पलनेत्रे ! इस विषयमें क्या कोई तुम्हारे साक्षी भी हैं ? उसने उत्तर दिया कि हाँ, इसके लिए साक्षी भी हैं। तो फिर उन्हें संदेश देकर बुलवाओ, इस प्रकार राजाके कहनेपर उत्पलनेत्रा बोली कि अच्छा उन्हें बुलवाती हूँ। यह कहते हुए उसने उस पेटीको वहाँ मंगा लिया। तत्पश्चात् वह बोली कि हे

---

१. ब मन्त्रितनुजस्तया। २. प फ श नानयसि। ३. ब 'ते' नास्ति। ४. क बाह्वय आह्वयामीत्युक्त्वा तत्रानीत°। ५. ब तथोक्तं।

मुक्ते कौतुकेन राज्ञोद्घाटिता मञ्जूषा। तत्र स्थितस्वरूपं विज्ञाय सर्वैरुपहासे[1] कृते तौ लज्जया दीक्षितौ। राज्ञा सत्यवतीसमीपं पुरुषः प्रेषितः 'उत्पलनेत्राया हारस्ते विवाहकाले चपलगतिनानीतः स दातव्यः' इति। तयादायि। तेन पुरुषेण राज्ञो हस्ते दत्तस्तेन विलासिन्याः समर्पितः इति। ततो राजा कोपेन चपलगतेर्जिह्वाच्छेदं कारयन् कुबेरप्रियो न्यवारयत्। स चपलगतिः कुबेरप्रियस्य प्रभुत्वदर्शनात्प्रभु[त्व]मात्सर्येण कुप्यति, सत्यवत्या हारो दत्त इति तस्या अपि। उभयोरहितं चिन्तयन् विमलजलां नदीं विनोदेन गतः तत्तटस्थलतागृहे दिव्यां मुद्रिकामपश्यज्जग्राह च। तदा चिन्ताक्रान्तश्चिन्तागतिनामा विद्याधर आगत्येतस्ततो गवेषयन् चपलगतिना दृष्टः[2]। तदनु हे भ्रातः, किमवलोकयसीत्युक्तवान्। खेचरोऽभूत मे मुद्रिका नष्टा, तां विलोकयामीति। ततः सोऽदत्त तां तस्मै। संतुष्टः खेचरोऽपृच्छत्त्वं कस्त्वमिति। चपलगतिरुवाच कुबेरप्रियस्य देवपूजकोऽहम्। ततः खेचरोऽब्रवीदेवं तर्हि स मे सखा। इयं च काममुद्रिकाभिलषितं रूपं प्रयच्छति। तद्धस्ते इमां प्रयच्छ। पश्चादहं तस्माद् ग्रहीष्यामि इति समर्प्य गतः। स तां गृहीत्वा स्वगृहमियाय[3] स्वभ्रातरं पृथुमतिमशिक्षयच्चतु-

पेटीके भीतर स्थित दोनों देवताओ ! कल चपलगतिने जो कुछ भी कहा था उसे यथार्थस्वरूपसे कह दो। तब उन दोनोंने यथार्थ बात कह दी। इसपर राजाको बहुत कौतूहल हुआ। तब राजाने उस पेटीको खुलवा दिया। उसके भीतरकी परिस्थितिको ज्ञात करके सब जनोंने उनका उपहास किया। इससे लज्जित होकर उन दोनोंने दीक्षा ले ली। फिर राजाने सत्यवतीके पास एक पुरुषको भेजकर उससे कहलाया कि तुम्हारे विवाहके समय चपलगति उत्पलनेत्राके जिस हारको लाया था उसे दे दो। तब उसने उस हारको उस पुरुषके लिए दे दिया और उसने लाकर उसे राजाके हाथमें दे दिया। राजाने उसे उस वेश्याके लिए समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् राजाने क्रोधित होकर चपलगतिकी जिह्वाके छेदनेकी आज्ञा दे दी। परन्तु कुबेरप्रियने राजाको ऐसा करनेसे रोक दिया। कुबेरप्रियके प्रभुत्वको देखकर उस चपलगतिको उसकी प्रभुतापर ईर्ष्यापूर्वक क्रोध उत्पन्न हुआ। साथ ही सत्यवतीके उस हारको वापिस दे देनेके कारण चपलगतिको उसके ऊपर भी क्रोध हुआ। इस प्रकार वह इन दोनोंके अनिष्टका विचार करने लगा। एक दिन वह विनोदसे निर्मल जलवाली नदीपर गया। वहाँ उसे नदीके किनारेपर स्थित एक लतागृहमें एक दिव्य मुँदरी दिखायी दी। तब उसने उसे उठा लिया। उसी समय चिन्तागति नामका विद्याधर वहाँ आया और चिन्ताग्रस्त होकर कुछ इधर-उधर खोजने लगा। तब उसे इस प्रकार व्याकुल देखकर चपलगतिने पूछा कि हे भाई ! तुम क्या देख रहे हो ? यह सुनकर विद्याधर बोला कि मेरी एक मुँदरी खो गई है, उसे खोज रहा हूँ। तब चपलगतिने उसके लिए वह मुँदरी दे दी। इससे सन्तुष्ट होकर उस विद्याधरने चपलगतिसे पूछा कि तुम कौन हो ? उसने उत्तर दिया कि मैं कुबेरप्रियका देवपूजक (पुजारी) हूँ। यह सुनकर विद्याधर बोला कि वह तो मेरा मित्र है। यह काममुद्रिका अभिलषित रूपको देती है। इस मुद्रिकाको तुम कुबेरमित्रके हाथमें दे देना, पीछे मैं उसके पाससे ले लूँगा; यह कहकर विद्याधरने चपलगतिके लिए वह मुद्रिका दे दी। इस प्रकारसे वह चपलगति उक्त मुद्रिकाको लेकर अपने घर गया। वहाँ उसने अपने भाई पृथुमतिको समझाया कि चतुर्दशीके दिन अपराह्णमें जब मैं राजाके पास बैठा

१. फ °हास्ये। २. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श पृष्टः। ३. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श गृहं निनाय। ४. प श °मतिं विशिष्ययच्चतु° फ शिक्षयच्चतु°।

°वेश्यामपराह्णे इमामङ्गुल्यां[1] निक्षिप्य सत्यवतीगृहं गच्छ यदाहं राजसमीपे तिष्ठामि। सत्यवती राजभवनसंमुखभद्रे चोपवेष्यति[2] तदा कुबेरप्रियस्य रूपं मनसि धृत्वेमामङ्गुली[3] भ्रामय, तद्रूपं भविष्यति। तदा तन्निकटे विकारचेष्टां कुर्विति। तदा पृथुमतिस्तथा तां चकार। चपलगती राज्ञस्त दर्शयामासोक्तवांश्च 'देवेयत्यां वेलायां कुबेरप्रियोऽनया सार्धमेवं क्रीडतीति पूर्वं यन्मया श्रुतमनया तिष्ठतीति सत्यं जातम्' इति। राज्ञोक्तं सोऽद्योपोषितस्तस्येदं[4] किं संभवति। चपलगतिनाभाणि प्रत्यक्षेऽर्थेऽपि संदेहस्तस्मादनयोः शास्तिः कर्तव्येति। तर्हि त्वमेव कुर्वित्युक्ते महाप्रसाद इति भणित्वा चपलगतिस्तस्य शिरश्छेदनानन्तरमस्या नासिकालवणं[6] करिष्यामीति सत्यवत्या रक्षां कृत्वा इमं कुबेरप्रियं महान्यायिनं प्रातर्मारयामीति मायास्वभ्रातरं धृत्वा स्वगृहं निनाय। तं मुक्त्वा श्मशानात्कुबेरप्रियमानीय तत्रास्थापयत्तदा पुरक्षोभो[7]ऽभूत्। श्रेष्ठी 'यद्यस्मिन्नुपसर्गे जीविष्यामि पाणिपात्रेण भोक्ष्ये' इति गृहीतप्रतिज्ञः। सत्यवत्यपि अनयैव प्रतिज्ञया स्वदेवतार्चनगृहे कायोत्सर्गेणास्थात्। राजा दुःखेन तूलिकातले पतित्वा स्थितः। प्रातः तं शीर्षकेशेषु धृत्वा पितृवनं निनाय। तत्रोपवेश्य तच्छिरोहननार्थं चण्डाभिधमातङ्गमाहूय तद्धस्तेऽसिं दत्त्वैतच्छिरो घातयेत्यवोचत्। तदा तच्छीलप्रभावेन

होऊँ तब तू इस मुद्रिकाको अपनी अँगुलीमें पहिनकर सत्यवतीके घर जाना। वहाँ पहुँचनेपर जब सत्यवती तुम्हें राजभवनके सम्मुख स्थित भद्रासनपर बैठा दे तब तुम कुबेरप्रियके रूपका मनमें चिन्तन करके अँगुलिमें स्थित इस मुद्रिकाको घुमाना। इससे तुम्हें कुबेरप्रियका रूप प्राप्त हो जावेगा। फिर तुम सत्यवतीके समीपमें कामविकारकी चेष्टा करनेमें उद्यत हो जाना। तदनुसार उस समय पृथुमतिने वह सब कार्य चेष्टा की भी। तब चपलगतिने उसे राजाको दिखलाया और कहा कि हे देव! कुबेरप्रिय इतने समयमें सत्यवतीके साथमें इस प्रकारकी क्रीड़ा किया करता है, यह जो मैंने सुना था वह इस समय उसे सत्यवतीके साथ बैठा हुआ देखकर सत्य प्रमाणित हो गया है। यह सुनकर राजाने कहा कि आज उसका उपवास है, इसलिए उसका ऐसा करना भला कैसे सम्भव हो सकता है? इसपर चपलगतिने कहा कि प्रत्यक्ष पदार्थमें भी क्या सन्देहके लिए स्थान रहता है? अतएव इन दोनोंको दण्ड देना चाहिए। तब राजाने कहा कि तो फिर तुम ही उनको दण्डित करो। इसके लिए राजाको धन्यवाद देकर चपलगतिने विचार किया कि पहिले कुबेरप्रियके शिरको काटकर तत्पश्चात् सत्यवतीकी नाक काटूँगा। इस प्रकार सत्यवतीको बचाकर उस महान् अन्यायी कुबेरप्रियको कल प्रातःकालमें मार डालूँगा। इस प्रकार सोचता हुआ वह मायावी कुबेरप्रियके रूपको धारण करनेवाले अपने भाईको साथ लेकर घर पहुँचा। फिर उसने भाईको वहीं छोड़कर श्मशानसे उस कुबेरप्रियको लाकर जब वहाँ स्थापित किया तब नगरके भीतर बहुत क्षोभ हुआ। इस उपसर्गके समय सेठने यह प्रतिज्ञा की कि यदि इस उपसर्गसे बच गया तो पाणिपात्रसे भोजन करूँगा— मुनि हो जाऊँगा। सत्यवती भी ऐसी ही प्रतिज्ञाके साथ अपने देवपूजागृह (चैत्यालय) में कायोत्सर्गसे स्थित हो गई। उधर राजा दुखित होकर शय्याके ऊपर पड़ गया। प्रातःकालके होनेपर वह सेठ बालोंको खींचकर श्मशानमें ले जाया गया। उसको वहाँ बैठाकर चपलगतिने उसका शिर काटनेके लिए चण्ड नामके

१. ब इयमंगुल्यां। २. ब चोपवेक्ष्येति [चोपवेशयति]। ३. ब धृत्वेऽयमंगुल्यौ। ४. ब °चोपेक्षितस्तस्येदं। ५. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श प्रत्यक्षेर्थे संदेह°। ६. ब लुवनं। ७. श पुरक्षोम्यो। ८. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श चण्डाधिपं मातंग°। प ब °माजह्वौ श °माजुहाव।

देवासुराणामासनानि प्रकम्पितानि। ते च तदुपसर्गमवबुध्य तत्र समागुः। सर्वोऽपि पुरजनो हा-हा कुर्वन् कुबेरप्रिय, तव किमभूदिति दुःखी भूत्वावलोकयन् स्थितः। तदा मातङ्गः इष्टदेवतां स्मरेति भणित्वा असिना शिरो हन्ति स्म। सोऽसिस्तत्कण्ठे हारोऽजनि। मातङ्गो जय जयेति भणित्वाऽपससार। मन्त्री प्रवृद्धमत्सरः सभृत्यो नानायुधानि मुमोच। तानि फलपुष्पादिरूपेण परिणतानि[1]। तदा देवैः कृतपञ्चाश्चर्याद्विबुध्य राजागत्य चपलगतिं गर्दभारोहणादिकं कारयित्वा निर्धाटयामास। श्रेष्ठिनं क्षमां कारयति स्म। श्रेष्ठी क्षमां कृत्वोक्तवान् पाणिपात्रे[2] भोक्तव्यम्। राज्ञोक्तं मयापि। तदा वसुपालाय राज्यं श्रीपालाय युवराजपदं[3] श्रेष्ठिपुत्रकुबेरकान्ताय श्रेष्ठिपदं वितीर्य बहुभिर्निष्क्रान्तौ, सत्यवत्याद्यन्तःपुरमपि। स मातङ्गोऽहिंसाव्रतमुपवासं च पर्वणि करिष्यामीति कृतप्रतिज्ञो यो[4] लाक्षागृहे विद्युद्वेगाय धर्मोपदेशं चकार। तौ कुबेरप्रियगुणपालमुनी सुरगिरौ समुत्पन्नकेवलौ विहृत्य तत्रैव मुक्तिं जग्मतुः। एवं बहुपरिग्रहोऽपि श्रेष्ठी सुरमहितोऽभूच्छीलेनान्यः किं न स्यादिति ॥३॥

चाण्डालको बुलाया और उसके हाथमें तलवारको देकर कहा कि इसके शिरको काट डालो। उस समय उसके शीलके प्रभावसे देवों एवं असुरोंके आसन कम्पायमान हुए। इससे वे कुबेरमित्रके उपसर्गको ज्ञात करके वहाँ आ पहुँचे। उस समय सब ही नगरवासी जन हा-हाकार करते हुए यह विचार कर रहे थे कि हे कुबेरप्रिय! तुम्हारे ऊपर यह घोर उपसर्ग क्यों हुआ। इस प्रकारसे वे सब वहाँ अतिशय दुखी होकर यह दृश्य देख रहे थे। इसी समय 'अपने इष्ट देवताका स्मरण करो' यह कहते हुए उस चाण्डालने कुबेरप्रियके शिरको काटनेके लिए तलवारका प्रहार किया। परन्तु वह तलवार सेठके गलेका हार बन गई। यह देखकर वह चाण्डाल 'जय जय' कहता हुआ वहाँसे हट गया। तब उस मन्त्रीने बढ़ी हुई ईर्ष्याके कारण अन्य सेवकोंके साथ उसके ऊपर अनेक आयुधोंका प्रहार किया। परन्तु वे सब ही फल-पुष्पादिके रूपमें परिणत होते गये। उस समय देवोंके द्वारा किये गये पंचाश्चर्यसे यथार्थ स्वरूपको जानकर राजा वहाँ जा पहुँचा। उसने चपलगतिको गर्दभारोहण आदि कराकर देशसे निकाल दिया। साथ ही उसने इसके लिए सेठसे क्षमा-प्रार्थना की। सेठने उसे क्षमा करते हुए कहा कि अब मैं पाणिपात्रमें भोजन करूँगा—जिन-दीक्षा ग्रहण करूँगा। इसपर राजा बोला कि मैं भी आपके साथ दीक्षा धारण करूँगा। तब वे दोनों वसुपालके लिए राज्य, श्रीपालके लिए युवराजपद और सेठपुत्र कुबेरकान्तके लिए राजसेठका पद देकर बहुत जनोंके साथ दीक्षित हो गये। इनके साथ सत्यवती आदि अन्तःपुरकी स्त्रियोंने भी दीक्षा ले ली। धर्मके माहात्म्यको देखकर उस चाण्डालने भी यह नियम ले लिया कि मैं पर्वके दिनमें किसी प्रकारकी हिंसा न करके उपवास किया करूँगा। यह वही चाण्डाल है जिसने कि लाखके घरमें स्थित होकर विद्युद्वेग चोरके लिए धर्मोपदेश दिया था (देखो पृष्ठ १२८ कथा २३)। कुबेरप्रिय और श्रीपाल इन दोनों मुनियोंको सुरगिरि पर्वतके ऊपर केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने विहार करके धर्मोपदेश दिया। अन्तमें वे उसी पर्वतके ऊपर मुक्तिको प्राप्त हुए। इस प्रकार बहुत परिग्रहसे सहित भी वह सेठ जब शीलके प्रभावसे देवोंके द्वारा पूजित हुआ तब अन्य निर्ग्रन्थ भव्य क्या न प्राप्त करेगा? वह तो मोक्षको भी प्राप्त कर सकता है ॥३॥

---

१. ब परिणमितानि। २. ब पाणिपात्रेण। ३. श युवराजपदं। ४. ब ययुः।

[२६]

श्रीजानकी रामनृपस्य देवी दग्धा न [1]संधुक्षितवह्निना च ।
देवेशपूज्या भवति स्म शीलाच्छीलं ततोऽहं [2]खलु पालयामि ॥४॥

अस्य कथा— अत्रैवायोध्यायां राजानौ बलनारायणौ रामलक्ष्मणनामानौ । रामस्याष्टसहस्रान्तःपुरमध्ये सीता-प्रभावती-रतिनिभा-श्रीदामाश्चेति चतस्रः पट्टराज्ञ्यः । सीता चतुर्थस्नानान्तरं पत्या सह सुप्ता रात्रिपश्चिमयामे स्वप्नमद्राक्षीत्—स्वमुखे प्रविशन्तं शरभद्वयं गगनयाने विमानात्स्वस्य पतनं च । रामाय निरूपिते तवोत्तमं पुत्रयुग्मं भविष्यति किंचिद् दुःखं चेति । तदनु सीता श्रेयोऽर्थं जिनपूजां कर्तुं लग्ना । गर्भसंभूतौ तीर्थस्थानवन्दना[3]दोहलकोऽभूत् । तदा रामो नभोयानेन तन्मनोरथान् पूरितवान् । [4]ततस्तत्र कुलटत्वमुद्दिश्य स्वभर्तृभिः पुनः पुनस्ताड्यमाना बन्धक्यः स्व-स्वभर्तारं प्रत्युत्तरं दत्तवत्यः तद्वनप्रवेशकाले सीता रावणेन चोरयित्वा वर्षमेकं तत्र स्थिता पुनस्तं हत्वानीय[5] तथैव गृहे स्थापिता इति । कियत्सु दिनेषु पर्यालोच्य मेलापकेन राघवद्वारे[6] प्रजागमनं[7] जातम् । प्रतिहारैर्विज्ञप्ते रामेणाहूताः अन्तः प्रविश्य बलनारायणाववलोक्य रामेणागमनकारणे पृष्टे वक्तुमशक्यत्वा-

राजा रामचन्द्रकी पत्नी व जनककी पुत्री सीता सती शीलके प्रभावसे भड़की हुई अग्निमें न जलकर इन्द्रोंके द्वारा पूजित हुई । इसीलिये मैं उस शीलका परिपालन करता हूँ ॥३॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी भरत क्षेत्रके भीतर अयोध्या पुरीमें राजा राम और लक्ष्मण राज्य करते थे । इनमें रामचन्द्र तो बलभद्र और लक्ष्मण नारायण थे । रामचन्द्रके आठ हजार स्त्रियाँ थीं । उनमें सीता, प्रभावती, रतिनिभा और श्रीदामा ये चार पट्टरानियाँ थीं । सीता चतुर्थ स्नानके पश्चात् पतिके साथ सो रही थी । उस समय उसने रात्रिके अन्तिम पहरमें स्वप्नमें अपने मुखमें प्रवेश करते हुए दो सिंहोंको तथा आकाश-मार्गसे गमन करते हुए विमानसे अपने अधःपतनको देखा । तब उसने इन स्वप्नोंका वृत्तान्त रामचन्द्रसे कहा । उन्हें सुनकर रामचन्द्रने कहा कि तुम्हारे उत्तम दो पुत्र होंगे । साथ ही कुछ कष्ट भी होगा । तत्पश्चात् सीता कल्याणके निमित्त जिनपूजामें तत्पर हो गई । गर्भकी अवस्थामें उसके तीर्थ-स्थानोंकी वन्दनाका दोहल हुआ । तब रामचन्द्रने उसके इन मनोरथोंको आकाशमार्गसे जाकर पूर्ण किया । पश्चात् अयोध्यामें कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं कि जिनमें किन्हीं पतियोंने दुराचारके कारण अपनी पत्नियोंको बार-बार ताड़ना की । परन्तु उन दुश्चरित्र स्त्रियोंने उसके उत्तरमें अपने पतियोंको यही कहा कि जब राजा रामचन्द्र वनमें गये थे तब रावण सीताको हरकर ले गया था । वह रावणके यहाँ एक वर्ष रही । फिर भी रामचन्द्र रावणको मारकर उसे वापिस ले आये और अपने घरमें रक्खा है । तब उत्तरोत्तर ऐसी ही अनेक घटनाओंके घटनेपर कुछ दिनोंमें प्रजाके प्रमुखोंने इसका विचार किया । तत्पश्चात् वे मिलकर रामचन्द्रके द्वारपर उपस्थित हुए । द्वारपालोंके निवेदन करनेपर रामचन्द्रने उन सबको भीतर बुलाया । भीतर जाकर उन्होंने बलभद्र और नारायणको देखा । तब रामचन्द्रने उनसे आनेका कारण पूछा । परन्तु उन्हें कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ । इस प्रकार वे मौनका आलम्बन करके

१. ब- प्रतिपाठोऽयम् । श सिधुक्षित । २. फ परि° । ३. ब- प्रतिपाठोऽयम् । श तीर्थस्नानवंदन° । ४. ब 'ततस्तत्र कुलटत्व''''प्रत्युत्तरं दत्तवत्यः' एतावान् पाठो नोपलभ्यते । ५. ब चोरयित्वा नीता तं हत्वानीय । ६. श राज्यवद्वारे । ७. ब दिवसेषु मेलापकेन प्रजागमनं ।

न्मौनेन स्थिताः। पुनः पृष्टे विजयनाम्ना पुरोहितेन विज्ञप्तं देव, यथा जलधिर्वज्रवेदिकोल्लङ्घनं न करोति तथा राजापि धर्मलङ्घनं[१] न करोति, तच्च कृतवान्। देव, 'यथा राजा तथा प्रजा' इति वाक्यानुस्मरणात्प्रजापि तथा वर्तते इति सीतास्थापनं तवानुचितम्। श्रुत्वा केशवस्तं मारयितुमुत्थितः, पद्मेन निवारितः।

सर्वं पर्यालोच्य त्यजनमेव निश्चितम्। लक्ष्मणेन निवारितेनापि कृतान्तवक्त्रमाहूय आदेशो दत्तः— वैदेही[हीं] निर्वाणक्षेत्रवन्दनार्थमागच्छेति आहूय नीत्वाटव्यां त्यक्त्वागच्छ। ततस्तेन रथमध्यारोप्य नीता नानाविधद्रुम-अनेकवनचरसंकीर्णायामटव्यां रथादुत्तारिता। क्व तन्निर्वाणक्षेत्रमिति पृष्टवती सीता। तदनु रुदितं तेन। किं कारणमिति पृष्टवती, सर्वस्मिन् कथिते मूर्च्छिता। तदनु चैतन्यं प्राप्योक्तं तया— वत्स, मा रोदनं कुरु, गत्वा रामाय मदीया प्रार्थना कथनीया। कथम्। यथा जनापवादभयेन निरपराधाहं त्यक्ता तथा मिथ्यादृष्टिभया-ज्जैनधर्मो न त्यजनीय इति। स आत्मानं निन्दित्वा गतः इति[६]। निरूपिते तस्मिन् मूर्च्छितो रामः, दुःखितो लक्ष्मणस्तथा सर्वे जना अपि। कृतान्तवक्त्रेण प्रतिबोधितेन रामेण सीता-

स्थित रहे। तब रामचन्द्रके द्वारा फिरसे पूछे जानेपर विजय नामक पुरोहितने प्रार्थना की कि हे देव! जिस प्रकार समुद्र अपनी वज्रमय वेदिकाका उल्लंघन नहीं करता है उसी प्रकार राजा भी धर्ममार्गका उल्लंघन नहीं करता है। परन्तु आपने उसका उल्लंघन किया है। यही कारण है जो हे देव! 'जैसा राजा वैसी प्रजा' इस नीतिका अनुसरण करनेवाली प्रजा भी उसी प्रकारका आचरण कर रही है। इस कारण आपको सीताका अपने भवनमें रखना उचित नहीं है। विजयके इस दोषारोपणको सुनकर लक्ष्मणको बहुत क्रोध आया, इसीलिये वह उसको मारनेके लिये उठ खड़ा हुआ। परन्तु रामचन्द्रने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया।

तब रामचन्द्रने सब कुछ सोच करके सीताके त्याग देनेका ही निश्चय किया। इसके लिये लक्ष्मणके रोकनेपर भी रामने कृतान्तवक्त्रको बुलाकर उसे यह आज्ञा दी कि तुम निर्वाण-क्षेत्रोंकी वन्दना करानेके मिषसे सीताको बुलाओ और फिर उसे लेजाकर वनमें छोड़ आवो। तदनुसार कृतान्तवक्त्र उसे रथमें बैठाकर अनेक प्रकारके वृक्षों एवं वनचर (वनमें संचार करनेवाले भील आदि) जीवोंसे व्याप्त वनमें ले गया। वहाँ जब उसने सीताको रथसे उतारा तब वह पूछने लगी कि वह निर्वाणक्षेत्र यहाँ कहाँ है? यह सुनकर कृतान्तवक्त्र रो पड़ा। तब सीताने उसके रोनेका कारण पूछा। इसके उत्तरमें उसने वह सब घटना सुना दी। उसे सुनकर सीता मूर्छित हो गई। फिर वह सचेत होनेपर बोली कि हे वत्स! रोओ मत। तुम जाकर मेरी ओरसे रामसे यह प्रार्थना करना कि आपने जिस प्रकार लोकनिन्दाके भयसे निरपराध मुझ अबलाका परित्याग किया है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जनोंके भयसे जैनधर्मका परित्याग न कर देना। अन्तमें कृतान्तवक्त्र अपनी आत्मनिन्दा करता हुआ अयोध्याको वापिस गया। वहाँ जाकर उसने जब रामसे सीताके वे प्रार्थनावाक्य कहे तब वे उन्हें सुनकर मूर्छित हो गये। लक्ष्मणको भी बहुत दुख हुआ। इस घटनासे सब ही जन अतिशय दुखी हुए। तत्पश्चात् कृतान्तवक्त्रके द्वारा प्रतिबोधित होकर

१. फ तथा राजापि धर्मोल्लंघनं ब तथापि राजा धर्मोल्लंघनं। २. श वदेहि। ३. ब त्यक्ता। ४. फ श नानाद्रुमविधअनेकवन° ब नानाविद्रुमवन°। ५. श 'पृष्टवती' नास्ति। ६. ब 'इति' नास्ति। ७. ब- प्रति-पाठोऽयम्। श जनाः कृतान्त°।

महत्तरं भद्रकलशमाहूयादेशो दत्तः यथा सीतया धर्मः क्रियते तथा कुरु त्वमिति ।

इतः सीता द्वादशानुप्रेक्षा भावयन्ती[1] तस्थौ[2] । अस्मिन् प्रस्तावे तत्र हस्तिधरणार्थं कश्चिन्मण्डलेश्वरः समायातः । तद्भृत्यैर्दृष्ट्वा राज्ञे निरूपिते तेनागत्य विस्मितेन दृष्ट्वा का त्वमिति पृष्टा । ज्ञातवृत्तान्तेनोक्तं[3] राज्ञा 'जैनधर्मेण मम भगिनी त्वम्' । तयोक्तं कस्त्वम् । पुण्डरीकिणीपुरेशः[4] सूर्यवंशोद्भवो वज्रजङ्घोऽहम् । आगच्छ मत्पुरं कुरु प्रसादम् । गजधरणं विहाय तां पुरस्कृत्य स्वपुरं गतः । स्वभगिनी प्रभावती सर्वगुणसंपूर्णा विधवा सर्वदा धर्मरता, तत्स्वरूपं निरूप्य तस्याः समर्पिता । तत्र तिष्ठन्ती नवमासावसानेषु[5] पुत्र [ौ] प्रसूतौ, वज्रजङ्घेन महोत्सवः कृतः[6], लवाङ्कुशमदनाङ्कुशनामानौ कृतौ । बाल्ये सर्वेभ्यः सोत्साहं रेमाते । शैशवावसाने नानादेशान् परिभ्रमता[7] तत्रैकदागतेन तयोर्दर्शनमात्राज्जनितस्नेहेन सिद्धार्थक्षुल्लकेन शास्त्रास्त्रप्रौढौ कृतौ । तयोर्यौवनमभीक्ष्य[8] वज्रजङ्घेन स्वस्य लक्ष्मीमत्याश्चोत्पन्नाः[9] शशिचूडादयो द्वात्रिंशत्कुमार्यो लवाय दत्ताः । तदनु अङ्कुशाय पृथिवीपुरेशपृथु-पृथिवीश्रियोः पुत्री कनकमाला याचिता । तेनोक्तम्— 'स्वयं नष्टो दुरात्मान्यांश्च नाशयति, अज्ञात-

रामचन्द्रने सीताके महत्तर (अन्तःपुरका रक्षक) भद्रकलशको बुलाया और उसे यह आज्ञा दी कि जिस प्रकार सीता धर्म किया करती थी उसी प्रकारसे तुम धर्म करते रहो ।

उधर सीता बारह भावनाओंका विचार करती हुई उस भयानक वनमें स्थित थी। इस बीचमें वहाँ कोई मण्डलेश्वर राजा हाथीको पकड़नेके विचारसे आया । उसके सेवकोंने वहाँ विलाप करती हुई सीताको देखकर उसका समाचार राजासे कहा । तब राजाने आश्चर्यपूर्वक सीताको देखकर पूछा कि तुम कौन हो ? उत्तरमें सीताने जब अपने वृत्तान्तको सुनाया तब यथार्थ स्थितिको जान करके वह बोला कि जैन धर्मके नातेसे तुम मेरी धर्मबहिन हो । तब सीताने भी उससे पूछा कि तुम कौन हो ? इसके उत्तरमें वह बोला कि मैं पुण्डरीकिणी पुरका राजा सूर्यवंशी वज्रजंघ हूँ । तुम कृपा करके मेरे नगरमें चलो । इस प्रकार वह हाथीको न पकड़ते हुए सीताको आगे करके अपने नगरको वापिस गया । वज्रजंघके एक प्रभावती नामकी सर्वगुण सम्पन्न विधवा बहिन थी । वह निरन्तर धर्मकार्यमें उद्यत रहती थी । वज्रजंघने सीताके वृत्तान्तको कहकर उसे अपनी उस बहिनके लिये समर्पित कर दिया । वहाँ रहते हुए सीताने नौ महीनोंके अन्तमें दो पुत्रोंको जन्म दिया । इसके उपलक्ष्यमें वज्रजंघ राजाने महान् उत्सव किया । उसने उन दोनोंके लवांकुश और मदनांकुश नाम रक्खे । बाल्यावस्थामें वे दोनों आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते हुए सबको प्रसन्न करते थे । धीरे-धीरे जब उनका शैशव काल बीत गया तब वहाँ एक समय अनेक देशोंमें परिभ्रमण करता हुआ सिद्धार्थ क्षुल्लक आया । इन दोनोंको देखते ही उसके हृदयमें स्नेह उत्पन्न हुआ । तब उसने इन दोनोंको शास्त्र व शस्त्र विद्यामें निपुण किया । उन दोनोंकी युवावस्थाको देखकर वज्रजंघने लवके लिये अपनी पत्नी लक्ष्मीमतीसे उत्पन्न हुई शशिचूडा आदि बत्तीस कुमारिकाओंको दे दिया । तत्पश्चात् उसने अंकुशके लिये पृथिवी पुरके राजा पृथु और पृथिवीश्रीकी पुत्री कनकमालाको मांगा । उसके उत्तरमें पृथु राजाने कहा कि वह दुष्ट वज्रजंघ स्वयं तो नष्ट हुआ ही है, साथ ही वह दूसरोंको भी नष्ट करना चाहता है । जिसके कुल और स्वभावका परि-

१. फ श भावयती । २. ब स्थिताः । ३. ब ज्ञातवृत्तान्ते तेनोक्तं । ४. श पुंडरीपुरेशः । ५. ब °वसाने पुत्रयुगलं प्रसूते । ६. ब महोत्साहः कृतो । ७. फ परिभ्रमिता । ८. ब °मवीक्ष्य । ९. ब- प्रतिपाठोऽयम् । श लक्ष्मीमन्यादयोत्पन्ना ।

कुलाय किं पुत्री दीयते' इति श्रुत्वा हठाद् ग्रहीतुं वज्रजङ्घो बलेन निर्गतः। तत्पाक्षिकेन व्याघ्ररथेन कदने[1] कृते वज्रजङ्घेन बद्धो व्याघ्ररथः। तदाकर्ण्य पृथुना स्वधर्म्याः सर्वे मेलिताः[2]। अत्याश्चर्यसामग्र्या स्थित इति ज्ञात्वा वज्रजङ्घेन स्वपुत्रानानेतुं प्रेषितलेखादि[3] ज्ञात्वा लवाङ्कुशौ सीतया निवारितौ अपि निर्गत्य पञ्चरात्रेण वज्रजङ्घस्य मिलितौ। तेन युवां किमित्यागताविति पृष्टे द्रष्टुमागतौ। पृथुः समस्तबलेन व्यूह-प्रतिव्यूहक्रमेण[4] रणभूमौ स्थितः। लवाङ्कुशौ वज्रजङ्घेनाज्ञातौ गत्वा योद्धुं लग्नौ। विलयप्रापिते पृथुबले[5] पृथुना लवः स्वीकृतः। उभयोरत्यद्भुते रणे विरथीभूय नष्टुं लग्नः पृथुस्तदनु लवेनोक्तं अज्ञातकुलाय कुमारी दातुमनुचितम्, किमभिमानादि[6] सर्वस्वं दातुमुचितमिति प्रचा[ता]रिते पादयोः पतित्वा भृत्यो बभूव। तदनु ताभ्यां निजपौरुषेण जगदाश्चर्यमुत्पादितम्। दिनोत्तमेऽङ्कुश-कनकमालयोर्विवाहोऽभूत्। कियद्दिनेषु वज्रजङ्घं पुण्डरीकिण्यां प्रस्थाप्य निजबलेन नाना-देशान् साधयित्वा महामण्डलिकश्रियालंकृतौ पुण्डरीकिण्यां ऊषतुः।

कतिपयदिनेषु तयोरवलोकनार्थं नारद आगतः। सीतासमीपस्थयोर्विचित्रभूषणोज्ज्वल-वेषयोः स्वरूपातिशयेन निर्जितपुरन्दरयोरनन्तवीर्ययोर्नतयोरुक्तं[7] नारदेन[8] रामलक्ष्मीधराविव

ज्ञान नहीं है उसके लिये क्या पुत्री दी जा सकती है ? इस उद्धतता पूर्ण उत्तरको सुनकर वज्रजंघको क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उसने पृथुका बलपूर्वक निग्रह करनेके लिये उसके ऊपर सेनाके साथ चढ़ाई कर दी। इस युद्धमें वज्रजंघने पृथुके पक्षके सुभट व्याघ्ररथके साथ युद्ध करके उसे बाँध लिया। इस बातको सुनकर पृथुने अपने पक्षके सभी योद्धाओंको एकत्रित किया। इस प्रकार वह अतिशय आश्चर्यजनक सामग्रीके साथ आकर स्वयं रणभूमिमें स्थित हुआ। तब इस वृत्तको जानकर वज्रजंघने भी अपने पुत्रोंको लानेके लिये लेख भेज दिया। उक्त लेखसे वस्तुस्थितिको जान करके सीताके रोकनेपर भी लव और अंकुश पुण्डरीक पुरसे निकलकर पाँच दिनमें वज्रजंघसे जा मिले। वज्रजंघने जब उन्हें देखकर यह पूछा कि तुम दोनों यहाँ क्यों आये हो तो इसके उत्तरमें उन्होंने यही कहा कि हम आपको देखनेके लिये आये हैं। उस समय पृथु राजा समस्त सैन्यके साथ व्यूह और प्रति-व्यूहके क्रमसे रणभूमिमें स्थित था। लव और अंकुश दोनों वज्रजंघकी आज्ञा पाकर युद्धमें संलग्न हो गये। उन दोनोंने पृथुकी बहुत-सी सेनाको नष्ट कर दिया। तब पृथु स्वयं ही लवके सामने आया। फिर उन दोनोंमें आश्चर्यजनक युद्ध हुआ। अन्तमें जब पृथु रथसे रहित होकर भागनेके लिये उद्यत हुआ तब लवने उससे कहा कि जिसके कुलका पता नहीं है उसके लिये कन्या देना तो उचित नहीं है, परन्तु क्या उसके लिये अपना स्वाभिमानादि सब कुछ दे देना उचित है? इस प्रकार लवके द्वारा तिरस्कृत होकर वह उसके पाँवोंमें पड़ गया और सेवक बन गया। इस प्रकार उन दोनोंने अपने पौरुषके द्वारा संसारको आश्चर्यचकित कर दिया। अन्ततः अंकुशका विवाह शुभ दिनमें कनकमालाके साथ हो गया। तत्पश्चात् कुछ दिनोंमें वे दोनों वज्रजंघको पुण्डरीकिणी नगरीमें भेजकर अपने सामर्थ्यसे अनेक देशोंको जीतनेके लिये गये और उन्हें जीत करके महामण्डलीककी लक्ष्मीसे विभूषित होते हुए पुण्डरीकिणी पुरीमें वापिस आकर स्थित हुए।

कुछ दिनोंमें उनको देखनेके लिये वहाँ नारदजी आ पहुँचे। उस समय विचित्र आभूषणोंके साथ निर्मल वेषको धारण करनेवाले, अपनी अत्यधिक सुन्दरतासे इन्द्रके स्वरूपको जीतने-

१. ब कदाने। २. फ श मिलिताः। ३. ब लेखान्। ४. प श क्रमे। ५. फ श 'पृथुबले' नास्ति। ६. प किमपिमानादि श किमपिमानापि। ७. फ °वीर्ययोस्तपो। ८. फ 'नारदेन' नास्ति।

बहुविधाभ्युदयसौख्येनैवास्थामिति[1] । तौ काविति पृष्टयोर्नारदेन सीताहरणादित्यजनपर्यन्ते संबन्धे निरूपिते श्रवणमात्रेणैवोत्पन्नकोपाभ्यां भणितम्[2] अयोध्या अस्मात् कियद्दूरे तिष्ठति । कलहप्रियेण भणितं पञ्चाशदधिकशतयोजनेषु तिष्ठति । तदैव प्रयाणभेरीरवेण पूरिताशौ चातुरङ्गेण निर्गतौ । कियत्सु अहःसु अयोध्याबाह्ये मुक्तौ । बलाच्युतसमीपं दूतः प्रेषितः । तेन च बलोपेन्द्रौ नत्वोक्तं युवयोर्विख्यातिमाकर्ण्य लवाङ्कुशौ पार्थिवपुत्रौ युद्धार्थमागतौ, यद्यस्ति सामर्थ्यं ताभ्यां युद्धं कुर्याताम्[3] । साश्चर्याभ्यां बलगोविन्दाभ्याम् उक्तम् 'एवं क्रियते'[4] । इतः प्रभामण्डल-सीता-सिद्धार्थ-नारदा[5] लवाङ्कुशान्तःपुरेण सह वियत्यवलोकयन्तः[6] स्थिताः । प्रभामण्डलेन सर्वेभ्यो विद्याधरेभ्यो लवाङ्कुशस्वरूपं निरूपितम् । विद्याधरबलं च मध्यस्थेन स्थितम् । बलोपेन्द्रौ रथारूढौ समस्तायुधालंकृतौ निर्गत्य स्वबलाग्रे स्थितौ । इतरावपि तथैव । लवो बलेन अपरो वासुदेवेन योद्धुं लग्नः ! अभूद्विस्मितजगत्त्रयं रणम् । लवसामर्थ्यं दृष्ट्वा रामः कोपेन योद्धुं लग्नः । लवेन[7] रथे भग्ने द्वितीयमारुह्य युद्धवान् । एवं तृतीयो

वाले एवं अनन्त वीर्यके धारक वे दोनों विनीत कुमार सीताके समीपमें स्थित थे । उन दोनोंको आशीर्वाद देते हुए नारद बोले कि तुम दोनों राम और लक्ष्मणके समान बहुत प्रकारके अभ्युदय एवं सुखके साथ स्थित रहो । इस आशीर्वचनको सुनकर दोनों कुमारोंने पूछा कि ये राम और लक्ष्मण कौन हैं ? तब नारदने उनसे राम और लक्ष्मणसे सम्बन्धित सीताके हरणसे लेकर उसके परित्याग तककी कथा कह दी । उसको सुनते ही उन्हें अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ । उन्होंने नारदसे पूछा कि यहाँसे अयोध्या कितनी दूर है ? यह सुनकर कलहमें अनुराग रखनेवाले नारदने कहा कि वह यहाँसे एक सौ पचास योजन दूर है । यह सुनते ही वे दोनों प्रस्थानकालीन भेरीके शब्दसे दिशाओंको पूर्ण करते हुए वहाँसे अयोध्याकी ओर चतुरंग सेनाके साथ निकल पड़े । तत्पश्चात् कुछ ही दिनोंमें उन्होंने अयोध्या पहुँचकर नगरके बाहर पड़ाव डाल दिया । फिर उन्होंने बलभद्र (राम) और नारायण (लक्ष्मण)के पास अपने दूतको भेजा । दूत गया और उन दोनोंको नमस्कार करके बोला कि आप दोनोंकी प्रसिद्धिको सुनकर लव और अंकुश ये दो राजपुत्र युद्धके लिये यहाँ आये हैं । यदि आपमें सामर्थ्य हो तो उनसे युद्ध कीजिये । यह सुनकर राम और लक्ष्मणको बहुत आश्चर्य हुआ । उत्तरमें इन दोनोंने उस दूतसे कह दिया कि ठीक है, हम उन दोनोंसे युद्ध करेंगे । इधर प्रभामण्डल, सीता, सिद्धार्थ और नारद लव व अंकुशकी पत्नियोंके साथ आकाशमें स्थित होकर उस युद्धको देख रहे थे । प्रभामण्डलने समस्त विद्याधरोंसे लव और अंकुशके वृत्तान्तको कह दिया था । इसीलिये विद्याधरोंकी सेना मध्यस्थ स्वरूपसे स्थित थी । इस समय राम और लक्ष्मण समस्त आयुधोंसे सुसज्जित होते हुए रथपर चढ़कर निकले और अपनी सेनाके आगे आकर स्थित हुए । इसी प्रकारसे लव और अंकुश भी अपनी सेनाके सम्मुख स्थित हुए । तब लव तो रामके साथ और अंकुश लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेमें निरत हो गया । फिर उनमें परस्पर तीनों लोकोंको आश्चर्यान्वित करनेवाला युद्ध हुआ । लवके सामर्थ्यको देखकर रामचन्द्र अतिशय क्रोधके साथ उससे युद्ध करने लगे । उस समय लवने रामचन्द्रके रथको नष्ट कर दिया । तब रामचन्द्र दूसरे रथपर स्थित हुए । परन्तु लवने उसे भी नष्टकर डाला । इस

१. ब सौख्येनैव वाथामिति । २. प श रणितं । ३. प श कुर्यास्तां ब कुर्यातं । ४. ब °भ्यां युक्तमेव क्रियते । ५. प श नारदलवा° ब नारदः लवा° । ६. श °वलोकयन्त्यः । ७. श बलेन ।

यावत्सप्तमो रथः। इतोऽङ्कुशाच्युतयोर्महारणे जाते अङ्कुशेन मुक्तं बाणं खण्डयितुमशक्तो हरिस्तेन मूर्च्छितः। ततो[1] विराधितेन रथोऽयोध्याभिमुखः कृतः। उन्मूर्च्छितेन हरिणा व्याघुटय युद्धे क्रियमाणे सामान्यास्त्रैरजेयं दृष्ट्वा गृहीतं चक्ररत्नम्। ततः सीतादीनां भयमभूत्। परिभ्रम्य मुक्तं चक्रं खण्डमानमपि[2] त्रिः परीत्य दक्षिणभुजे स्थितम्। तदङ्कुशेन गृहीत्वा तस्मै मुक्तम्। तत्रापि[3] तथा यावत्सप्तवारान्। तदनु उद्विग्नो हरिर्निरुद्यमः स्थितः। नारदेनागत्योक्तं किमिति निरुद्यमः स्थितोऽसि। हरिणोक्तं किं क्रियते, अजेयोऽयम्। नारदेनोक्तं इमौ न ज्ञायेते। जलजनाभेनोक्तम्, न। सीतापुत्राविति कथिते श्रवणादुत्पन्नहर्षोद्धसितगात्रः प्रहसितवदनोऽच्युतो रामसमीपं गतः। नत्वोक्तं देव, सीतातनुजाविमाविति[4]। श्रुत्वा युद्धानि परित्यज्य रामलक्ष्मीधरौ संमुखमागच्छन्तौ संवीक्ष्य तावपि रथादुत्तीर्य मुकुलितकरकमलौ विनयान्वितावागत्य पादयोरुपरि पतितौ। रामेण हर्षादालिङ्गितौ। ताभ्यां[5] लक्ष्मणेन बहव आशीर्वादा दत्ताः। तदनु जगदाश्चर्येण स्वपुरं प्रविष्टौ। सीता स्वस्थानं गता। लवाङ्कुशौ युवराज्यपदव्यलंकृतौ[6] जगत्त्रयविदितौ स्थितौ।

प्रकारसे तीसरे आदि रथके भी नष्ट होनेपर रामचन्द्र सातवें रथपर चढ़कर युद्ध करनेमें तत्पर हुए। इधर अंकुश और लक्ष्मणके बीच भी भयानक युद्ध हुआ। अंकुशके द्वारा छोड़े गये बाणको खण्डित न कर सकनेके कारण लक्ष्मण उसके आघातसे मूर्छित हो गया। तब विराधितने रथको अयोध्याकी ओर लौटा दिया। पश्चात् जब लक्ष्मणकी मूर्छा दूर हुई तब वह रथको फिरसे रणभूमिकी ओर लौटाकर युद्ध करनेमें लीन हो गया। अब जब लक्ष्मणको यह ज्ञात हुआ कि यह सामान्य शस्त्रोंसे नहीं जीता जा सकता है तब उसने चक्ररत्नको ग्रहण किया। इससे सीता आदिको बहुत भय उत्पन्न हुआ। इस प्रकार लक्ष्मणने उस चक्रको घुमाकर अंकुशके ऊपर छोड़ दिया। किन्तु वह निष्प्रभ होता हुआ तीन प्रदक्षिणा देकर उसके दाहिने हाथमें स्थित हो गया। फिर उसे अंकुशने लेकर लक्ष्मणके ऊपर छोड़ दिया। तब वह उसी प्रकारसे लक्ष्मणके हाथमें भी आकर स्थित हो गया। यह क्रम सात बार तक चला। तत्पश्चात् लक्ष्मणको बहुत उद्वेग हुआ। अन्तमें वह हतोत्साह होकर स्थित हुआ। यह देखते हुए नारदने आकर पूछा कि तुम हतोत्साह क्यों हो गये हो? लक्ष्मणने उत्तर दिया कि क्या करूँ, यह शत्रु अजेय है। तब नारद बोले कि क्या तुम इन दोनोंको नहीं जानते हो? उत्तरमें पद्मनाभ (नारायण)ने कहा कि 'नहीं'। तब नारदने बतलाया कि ये दोनों सीताके पुत्र हैं। यह सुनकर उत्पन्न हुए हर्षसे लक्ष्मणका शरीर रोमांचित हो गया। तब वह प्रसन्नमुख होकर रामके समीप गया और उन्हें नमस्कार करके बोला कि हे देव! ये दोनों सीताके पुत्र हैं। यह सुनकर राम और लक्ष्मण युद्धको स्थगित करके लव और अंकुशके समीपमें गये। उन्हें अपने सम्मुख आते हुए देखकर वे दोनों भी रथसे नीचे उतर पड़े और नम्रता पूर्वक हाथोंको जोड़कर राम व लक्ष्मणके पाँवोंमें गिर गये। रामने उन दोनोंका हर्षसे आलिंगन किया तथा लक्ष्मणने उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् वे सब संसारको आश्चर्यचकित करते हुए नगरके भीतर प्रविष्ट हुए। सीता वापिस पुण्डरीक पुरको चली गई। लव और अंकुश युवराज पदसे विभूषित होकर तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुए।

१. प श मूर्च्छितो ततो। २. प ब खण्डचमानमपि। ३. ब- प्रतिपाठोऽयम्। प श मुक्तं तथापि तत्रापि या° फ तत्रापि तथापि या°। ४. ब- प्रतिपाठोऽयम्। प फ श °तनुजाविति। ५. ब नताभ्यां। ६. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श युवराज्य°।

एकस्मिन् दिने प्रधानैर्विज्ञप्तो रामः जगत्प्रसिद्धा महासती सीता आनेतव्या। रामेणोक्तं तच्छीलमजानता न त्यक्ता, जनापवादभयेन त्यक्ता। यथापवादो गच्छति तथा दिव्यः कश्चना[1]भ्युपगन्तव्यः। ततः सुग्रीवादिभिस्तत्र गत्वा सीतां दृष्ट्वा प्रणम्य रामेणोक्तं सर्वं कथितम्। दीक्षार्थिन्याभ्युपगतम्[3]। तदनु पुष्पकमारुह्यापराह्णे अयोध्यामागत्य रात्रौ महेन्द्रोद्याने स्थिता। रात्र्यवसाने रामादयो देवतार्चनपूर्वकं सातिशयशृङ्गारालंकृता[4] आस्थाने उपविष्टाः। तदनु आगता सीता यथोचितासने उपवेशिता[5]। राम उवाच जनापवादभयेन त्यक्तासि, ततो दिव्येन जन-प्रत्ययः पूरयितव्य इति। 'इत्थं[6] क्रियते' इति सीतयोक्ते नत एकस्मिन् रम्यप्रदेशे कुण्डं खनित्वा कालागरुगोशीर्षचन्दनादिभिर्नानासुगन्धेन्धनैः पूरयित्वा अग्नौ प्रज्वालिते[7] ऽङ्गारावस्थायां आसनादुत्थाय सीतयोक्तम् 'भो जनाः, शृणुत अस्मिन् भवे त्रिशुद्धया रामाद्विना यद्यन्यः कश्चन[2] दुष्टभावेन मे विद्यते तर्ह्यनेन कृशानुना मे मरणं भवतु' इति प्रतिज्ञाकरणकाले अपरं कथान्तरम्—

विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां गुञ्जपुराधिपसिंहविक्रमश्रियोः पुत्रः सकलभूषणस्तद्भार्याष्ट-

एक दिन मन्त्रियोंने रामसे प्रार्थना की कि लोकप्रसिद्ध महासती सीताको राजभवनमें ले आना उचित है। इसपर राम बोले कि सीताके शीलको न जानकर-उसके विषयमें शंकित होकर-उसका परित्याग नहीं किया गया है, किन्तु लोकनिन्दाके भयमें उसका परित्याग किया है। वह लोकनिन्दा जिस प्रकारसे दूर हो सके, ऐसा कोई दिव्य उपाय स्वीकार करना चाहिये। यह सुनकर सुग्रीव आदि पुण्डरीकपुरको गये। उनने सीताका दर्शन करके उससे रामके अभिप्राय-को प्रगट किया। सीता इस घटनासे विरक्त हो चुकी थी। अब उसने दीक्षा ले लेनेका निश्चय कर लिया था। इसीलिये उसने रामके आदेशको स्वीकार कर लिया। पश्चात् वह पुष्पक विमान-पर चढ़कर दोपहरको अयोध्या आ गई और रातमें महेन्द्र उद्यानमें ठहर गई। रात्रिका अन्त हो जानेपर राम आदिने प्रथमतः जिन-पूजन की। तत्पश्चात् वे वस्त्राभूषणोंसे अतिशय अलंकृत होकर सभाभवनमें विराजमान हुए। तब वहाँ वह सीता आकर उपस्थित हुई। उसे वहाँ यथायोग्य आसनके ऊपर बैठाया गया। तत्पश्चात् रामने सीतासे कहा कि मैंने लोकनिन्दाके भयसे तुम्हारा परित्याग किया है, इसलिये तुम किसी दिव्य उपायसे लोगोंको शीलके विषयमें विश्वास उत्पन्न कराओ। तब सीताने कहा कि ठीक है, मैं वैसा ही कोई उपाय करती हूँ। तत्पश्चात् सीताके इस प्रकार कहनेपर एक रमणीय स्थानमें कुण्डको खोदकर उसे कालागरु, गोशीर्ष और चन्दन आदि अनेक प्रकारके सुगन्धित इन्धनोंसे पूर्ण किया गया। फिर उसे अग्निसे प्रज्वलित करनेपर जब वह अंगारावस्थाको प्राप्त हो गया तब सीताने अपने आसनसे उठकर कहा कि हे प्रजाजनो! सुनिए, यदि मैंने इस जन्ममें रामको छोड़कर किसी अन्य पुरुषके विषयमें मन, वचन व कायसे दुष्प्रवृत्ति की हो तो यह अग्नि मुझे भस्म कर देगी। इस प्रकार सीताके प्रतिज्ञा करनेपर यहाँ एक दूसरी कथा आती है जो इस प्रकार है—

विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें गुंजपुर नामका नगर है। उसमें सिंहविक्रम नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम श्री था। इन दोनोंके एक सकलभूषण नामका पुत्र था। उसके

१. फ जनापवादेन। २. प श कश्चनो° फ कश्चिनो°। ३. फ ब श दीक्षार्थिना°। ४. श सातिशयं प्रभाते शृं°। ५. प उपविशिता। ६. फ 'इत्थं' नास्ति। ७. ब प्रज्वलिते।

शतान्तःपुरमुख्या किरणमण्डला। तस्याः पितुर्भगिनीपुत्रो हेममुखः, सा तस्य सोदरस्नेहरूपेण स्नेहिता। सिंहविक्रमेण प्रव्रजिता सकलभूषणो राज्ये धृतः। एकदा तस्मिन् राज्ञि बहिर्गते राज्ञीभि[1]रागत्य देवी भणिता हेममुखरूपं[2] पटे विलिख्य प्रदर्शय। तयोक्तं नोचितम्। ताभिरुक्तं दुष्टभावेन नोचितम्, निर्विकल्पकभावेन दोषाभावः इति प्रार्थ्य लेखितम्। आगतेन राज्ञा तद् दृष्ट्वा रुषितम्। ततः सर्वाभिः पादयोः पतित्वोपशान्तिं नीतः। कियति काले गते एकस्यां रात्रौ तया सुप्तावस्थायां 'हा हेममुख[3]' इति जल्पितम्। श्रुत्वा राजा वैराग्यात् प्रव्रजितः। सकलागमधरो नानर्द्धिसंपन्नश्च महेन्द्रोद्याने प्रतिमायोगेन स्थितः। सा आर्तेन मृत्वा व्यन्तरी जाता। तया तत्र स्थितस्य मुनेर्गूढवृत्त्या सप्तदिनानि घोरोपसर्गे कृते तस्मिन्नेवावसरे जगत्त्रयावभासि केवलमुत्पन्नम्। तत्पूजानिमित्तं देवागमे जाते तस्या उपरि विमानागतेरिन्द्रेण महासतीदिव्यमवधार्य प्रभावनानिमित्तं मेघकेतुदेवः स्थापितः। स यावदाकाशे तिष्ठति तावत्सीता प्रतिज्ञां कृत्वा पञ्चपरमेष्ठिनः स्मृत्वा अग्निकुण्डं प्रविष्टा। प्रवेशं दृष्ट्वा राघवो मूर्च्छितः, केशवो विह्वलः, पुत्रौ विस्मितौ। सर्वजनेन हा जानकी हा जानकीति

आठ सौ स्त्रियाँ थीं। उनमें किरणमण्डला नामकी स्त्री मुख्य थी। किरणमालाकी बुआके एक हेममुख नामका पुत्र था। वह उसके साथ सहोदर (सगा भाई) के समान स्नेह करती थी। राजा सिंहविक्रमने सकलभूषण पुत्रको राज्य पदपर प्रतिष्ठित करके दीक्षा धारण कर ली। एक समय अन्य रानियोंने आकर किरणमालासे कहा कि हे देवी! हमें हेममुखके सुन्दर रूपको चित्रपटपर लिखकर दिखलाओ। इसपर उसने कहा कि ऐसा करना योग्य नहीं है। तब उन सबने कहा कि दुष्ट भावसे वैसा करना अवश्य ही ठीक नहीं है, किन्तु निर्विकल्पक भावसे-(भ्रातृस्नेहसे) वैसा करनेमें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार प्रार्थना करके उन सबने उससे चित्रपटके ऊपर हेममुखके रूपको लिखा लिया। इधर राजाने आकर जब किरणमालाको ऐसा करते देखा तब वह उसके ऊपर क्रुद्ध हुआ। उस समय उन सब रानियोंने पाँवोंमें गिरकर उसे शान्त किया। फिर कुछ कालके बीतनेपर एक रातको जब वह शय्यापर सो रही थी तब नींदकी अवस्थामें उसके मुखसे 'हा हेममुख' ये शब्द निकल पड़े। इन्हें सुनकर राजाको वैराग्य उत्पन्न हुआ। इससे उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार दीक्षित होकर वह समस्त श्रुतका पारगामी होता हुआ अनेक ऋद्धियोंसे सम्पन्न हो गया। वह उस समय महेन्द्र उद्यानके भीतर समाधिमें स्थित था। इधर वह किरणमण्डला आर्तध्यानसे मरकर व्यन्तरी हुई थी। उसने महेन्द्र उद्यानमें स्थित उन मुनिराजके ऊपर गुप्त रीतिसे सात दिन तक भयानक उपसर्ग किया। इसी समय उन्हें तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तब उस केवलज्ञानकी पूजाके लिये वहाँ देवोंका आगमन हुआ। इस प्रकारसे आते हुए इन्द्रका विमान जब सती सीताके ऊपर आकर रुक गया, तब उसे महासती सीताके इस दिव्य अनुष्ठानका पता लगा। इससे उस इन्द्रने सीताके शीलकी महिमाको प्रगट करनेके लिये मेघकेतु नामक देवको स्थापित किया। वह आकाशमें स्थित ही था कि सीता पूर्वोक्त प्रतिज्ञा करके पाँच परमेष्ठियोंका स्मरण करती हुई उस अग्निकुण्डके भीतर प्रविष्ट हुई। उसे इस प्रकारसे उस अग्निकुण्डमें प्रविष्ट होती हुई देखकर रामचन्द्रको मूर्छा आ गई, लक्ष्मण व्याकुल हो उठा, तथा लव व अंकुश आश्चर्यचकित रह गये। उस समय इस दृश्यको

१. फ °गतेऽतिराज्ञीभि°। २. फ हेममुखस्वरूपं। ३. फ हेममुख।

हा-हारवः कृतः। तदनु तेन देवेनाग्निकुण्डं सरः कृतम्, तन्मध्ये सहस्रदलकमलम्, तत्कर्णिकामध्ये सिंहासनस्योपरि उपवेशिता। उपरि मणिमण्डपः कृतः। तदनु पञ्चाश्चर्याज्जनानन्दः। देवपूज्यजानकीनिकटं राघवेनागत्य भणितं जनापवादभयेन यन्मया कृतं तत्सर्वं क्षमित्वा मया सार्धं भोगानुभवनं कुरु। तयोक्तं त्वां प्रति क्षमैव, किंतु यैः कर्मभिरेतत्कृतं तानि प्रति क्षमाऽभावः। तेषां विनाशनिमित्तं तपश्चरणमेव शरणम्, नान्यदिति केशान् उत्पाटय[1] रामाग्रे क्षिप्त्वा देवपरिवारेण सह समवसृतिं गत्वा जिनवन्दनापूर्वकं पृथ्वीमतिक्षान्तिकाभ्यासे निःक्रान्ता। रामोऽपि केशानालिङ्ग्य मूर्च्छितोऽन्तःपुरेणोन्मूर्च्छितः कृतः सन् सीतातपोविनाशनार्थं समस्तजनेन सह तत्र गतः। जिनदर्शनादेव मोहोपशमे जाते निरार्तो जिनमभ्यर्च्य स्तुत्वा च कोष्ठे उपविष्टो धर्मश्रुतेरनन्तरं रामादयः सीतया क्षमितव्यं विधाय पुरं प्रविष्टाः। सीतार्जिका[2] द्वाषष्टिवर्षाणि तपश्चकार। त्रयस्त्रिंशद्दिनानि संन्यसनेन[3] तनुं विसृज्याच्युते स्वयंप्रभनामा प्रतीन्द्रोऽभूदिति। एवं स्त्री बाला मोहावृतापि शीलेन देवपूज्या जातान्यः किं न स्यादिति ॥४॥

देखनेवाली समस्त ही जनता 'हा सीता, हा सीता' कहकर हा-हाकार कर उठी। पश्चात् उस देवने इस अग्निकुण्डको तालाब बना दिया। तालाबके भीतर उसने हजार पत्तोंवाले कमलकी रचना की और उसकी कर्णिकाके मध्यमें सिंहासनको स्थापित करके उसके ऊपर सीताको विराजमान किया। उसने उस सिंहासनके ऊपर मणिमय मण्डपका निर्माण किया। तत्पश्चात् उसने जो पंचाश्चर्य किये उन्हें देखकर सब ही जनोंको आनन्द हुआ। इस प्रकार देवोंसे पूजित हुई सीताके पास जाकर रामचन्द्रने कहा कि लोकनिन्दाके भयसे मैंने जो यह कार्य किया है उस सबको क्षमा करो और अब पूर्ववत् मेरे साथ भोगोंका अनुभव करो। इसके उत्तरमें सीता बोली कि तुम्हारे प्रति मेरा क्षमाभाव ही है, किन्तु जिन कर्मोंने यह सब किया है उनके प्रति मेरा क्षमाभाव नहीं है। इसलिये उनको नष्ट करनेके लिये अब मैं तपश्चरणकी ही शरण लूँगी। उसको छोड़कर अन्य कुछ भी मुझे प्रिय नहीं है। इस प्रकार कहते हुए उसने केशोंको उखाड़ कर उन्हें रामके आगे फेंक दिया। तत्पश्चात् देव परिवारके साथ समवसरणमें जाकर उसने जिन भगवान्‌की वंदना की और पृथ्वीमती आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण कर ली। इधर राम उन केशोंको देखकर मूर्छित हो गये। तत्पश्चात् अन्तःपुरकी स्त्रियों-द्वारा उनकी मूर्छाके दूर करनेपर वे समस्त जनताके साथ सीताको तपसे भ्रष्ट करनेके लिये वहाँ गये। वहाँ जाकर जिन भगवान्‌का दर्शन मात्र करनेसे ही उनका वह मोह नष्ट हो गया। तब उन्होंने आर्तध्यानसे रहित होकर जिन भगवान्‌की पूजा व स्तुति की। फिर वे मनुष्योंके कोठेमें जा बैठे। धर्मश्रवण करनेके पश्चात् राम आदि सीतासे क्षमा कराके नगरमें वापिस आ गये। सीता आर्यिकाने बासठ वर्ष तपश्चरण किया। तत्पश्चात् उसने तेंतीस दिन तक संन्यासको धारण करके शरीरको छोड़ा। वह अच्युत स्वर्गमें स्वयंप्रभ नामका प्रतीन्द्र उत्पन्न हुई। इस प्रकार मोहसे युक्त वह बाला स्त्री भी जब शीलके प्रभावसे देवोंसे पूजित हुई है तब भला अन्य पुरुष क्या न होगा? अर्थात् वह तो अनुपम सुखको प्राप्त होगा ही ॥ ४ ॥

१. श केशान् उत्पाद्य ब केशानुत्पाद्य। २. ब सीतार्यिका। ३. ब सन्न्यासनेन।

[३०]

नारीषु रम्या त्रिदशस्य पूज्या राज्ञी प्रभावत्यभिधा बभूव।
त्रिलोकपूज्यामलशीलतो यत्[1] शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ॥५॥

अस्य कथा— वत्सदेशे[2] रौरवपुरे[3] राजा उद्दायनो राज्ञी प्रभावती शुद्धजैनी। राजा प्रत्यन्तवासिनामुपरि ययौ। इतः प्रभावत्या धात्री मन्दोदरी, सा परिव्राजिका जज्ञे। सा बह्वीभिः परिव्राजिकाभिरागत्य[4] तत्पुरबाह्येऽस्थात्। प्रभावतीनिकटमहमागतेति[5] निरूपणार्थं कामपि[6] नारीमयापयत्तया गत्वा त्वदवलोकनार्थं[7] मन्दोदरी समागत्य बहिस्तिष्ठतीति कथिते देव्योक्तं मन्निवासमागच्छन्तु। तया पुनर्गत्वा तथा निरूपिते राज्ञी संमुखं नागतेति सा कोपेन तद्गृहं प्रविष्टा। प्रभावत्या प्रणाममकृत्वासनस्थयैव[8] तस्या आसनं दापितम्। तदा मन्दोदर्योक्तम्— हे पुत्रि, पूर्वं तावदहं ते माता, सांप्रतं तपस्विनी, किं मां न प्रणमसि[9]। प्रभावत्यभणत्— अहं सन्मार्गस्था, त्वं चोन्मार्गस्थेति न प्रणमामि। परिव्राजिकावदच्छिव-प्रणीतः सन्मार्गः किं न भवति। देव्योक्तं 'न'। तदोभयोर्महाविवादोऽजनि। देव्या निरुत्तरं जिता। सा मनसि कुपिता जगाम। देव्या रूपं पटे लिलेखोज्जयिनीशचण्डप्रद्योतनाय दर्शयामास।

स्त्रियोंमें रमणीय प्रभावती नामकी रानी निर्मल शीलके प्रभावसे देवके द्वारा पूजाको प्राप्त होकर तीनों लोकोंकी पूज्य हुई है। इसीलिये मैं उस शीलका परिपालन करता हूँ ॥५॥

इसकी कथा इस प्रकार है— वत्सदेशके भीतर रौरवपुरमें उद्दायन नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम प्रभावती था। वह विशुद्ध जैन धर्मका परिपालन करती थी। एक समय राजा म्लेच्छ देशमें निवास करनेवाले शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करनेके लिए गया था। इधर प्रभावतीकी जो मन्दोदरी धाय थी उसने दीक्षा ले ली। वह बहुत-सी साध्वियोंके साथ आकर उक्त रौरवपुरके बाहर ठहर गई। उसने अपने आनेकी सूचना करनेके लिए प्रभावतीके पास किसी स्त्रीको भेजा। उसने जाकर प्रभावतीसे कहा कि तुम्हें देखनेके लिए मन्दोदरी यहाँ आकर नगरके बाहर ठहर गई है। यह सुनकर प्रभावती बोली कि उससे मेरे निवासस्थानमें आनेके लिए कह दो। तब उसने वापिस जाकर मन्दोदरीसे प्रभावतीका सन्देश कह दिया। इसे सुनकर रानीके अपने सन्मुख न आनेसे उसे क्रोध उत्पन्न हुआ। वह उसी क्रोधके आवेशमें प्रभावतीके घरपर पहुँची। प्रभावती उसे नमस्कार न करके अपने आसनपर ही बैठी रही और इसी अवस्थामें उसने मन्दोदरीके लिए आसन दिलाया। तब मन्दोदरी बोली कि हे पुत्री! पूर्वमें मैं तेरी माता थी और इस समय तपस्विनी हूँ। मेरे लिए तू प्रणाम क्यों नहीं करती है? इसके उत्तरमें प्रभावतीने कहा कि मैं समचीनी मार्गमें स्थित हूँ, किन्तु तुम कुमार्गमें प्रवृत्त हो; इसीलिए मैं तुम्हें नमस्कार नहीं कर रही हूँ। इसपर मन्दोदरी बोली कि क्या महादेवके द्वारा प्ररूपित मार्ग समीचीन नहीं है? प्रभावतीने कहा कि 'नहीं'। तब उन दोनोंके बीचमें बहुत विवाद हुआ। अन्तमें प्रभावतीने उसे निरुत्तर करके जीत लिया। इससे वह मन ही मन क्रोधित होकर चली गई। तब उसने प्रभावतीके सुन्दर रूपको चित्रपटके ऊपर लिखकर उसे उज्जयिनीके राजा चण्डप्रद्योतनके लिए दिखलाया।

१. ब या। २ फ वस्तदेश श वस्तदेशे। ३. ब रौरकपुरे। ४. श सा परिव्राजिका भगवंतदाऽभिरागत्य। ५. फ निकटमागतेति। ६ ब कापि। ७ ब-प्रतिपाठोऽयम्। श गत्वाकथित्वदव[ं]। ८. फ ब [°]सनस्थैव। ९. ब मा किं न प्रणमति।

स चासक्तो भूत्वा तत्पतेस्तत्राभावं विबुध्य समस्तसैन्येन तत्र ययौ, बहिर्मुमोच। देव्यन्तिकमतिविचक्षणं नरमगमयत्। तेन गत्वा देव्या अग्रे स्वस्वामिनो गुणरूपसौन्दर्य-द्वारेण[1] प्रशंसा कृता। सालालपीत् किं तद्गुणादिना[2], उद्दायनादन्ये मे जनकादिसमास्तत-स्तद्दूतो निःसारितः। अन्येषां प्रवेशो निवारितोऽन्तःस्थितं बलं संनद्धम्, गोपुराणि दत्त्वा दुर्गस्योपरि स्थितम्। तदा स पुरग्रहणायोद्यमं चकार। युद्धमाकर्ण्य सा स्वदेवतार्चनगृहेऽ-स्मिन्नुपसर्गे निवर्तिते[3] शरीरादौ प्रवृत्तिर्नान्यथेति प्रतिज्ञया स्थितम्। तदवसरे कश्चिद्देवो नभोऽङ्गणे गच्छंस्तस्या उपरि[4] विमानागते तस्या उपसर्गं[5] विज्ञाय मनसैव बहिःस्थं बलमुज्ज-यिन्यामस्थापयत्। स्वयं तच्छीलपरीक्षणार्थं चण्डप्रद्योतनो भूत्वा बलं विकुर्व्य माययान्तःस्थं बलं निपात्यान्तः[6] प्रविश्य तद्देवतार्चनगृहं विवेश। विचित्रपुरुषविकारैस्तच्चित्तं भेत्तुमशक्तो मायामपसंहृत्य[7] तां पूजयामास। शीलवतीति घोषयित्वा स्वर्लोकमियाय। इत आगतो राजा तद्वृत्तं विवेद जहर्ष च। बहुकालं राज्यं च[8] कृत्वा सुकीर्तिनामानं नन्दनं भूपं[9] विधाय वर्धमान-

उसको देखकर चण्डप्रद्योत उसके ऊपर आसक्त हो गया। उसे यह ज्ञात ही था कि उसका पति उद्दायन अभी वहाँ नहीं है। इसीलिए वह समस्त सेनाके साथ रौरवपुरमें जा पहुँचा। उसने वहाँ नगरके बाहर पड़ाव डालकर रानीके पास एक अतिशय चतुर मनुष्यको भेजा। उसने जाकर प्रभावती के आगे अपने स्वामीके गुण, रूप एवं सौन्दर्यकी खूब प्रशंसा की। उसे सुनकर प्रभावतीने कहा कि मुझे तुम्हारे स्वामीके गुण आदिसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है, उद्दायनके सिवा अन्य सब जन मेरे लिए पिता आदिके समान हैं। यह कहकर उसने उस दूतको घरसे निकाल दिया। फिर उसने अपने यहाँ अन्य पुरुषोंके आगमनको रोक दिया और भीतरी सैन्यको सुसज्जित करते हुए गोपुर-द्वारोंको बंद करा दिया। वह स्वयं दुर्गके ऊपर स्थित हो गई। तब वह चण्डप्रद्योतन नगरको अपने अधिकारमें करनेके लिए प्रयत्न करने लगा। युद्धको सुनकर प्रभावती अपने देवपूजाभवन (चैत्यालय) में चली गई। वहाँ वह 'जब यह उपद्रव नष्ट हो जावेगा तब ही मैं शरीर आदिके विषयमें प्रवृत्ति करूँगी, अन्यथा नहीं, यह प्रतिज्ञा करके स्थित हो गई। इसी समय कोई देव आकाशमार्गसे जा रहा था। उसका विमान प्रभावतीके ऊपर आकर रुक गया। इससे उसे प्रभावतीके ऊपर आए हुए उपसर्गका परिज्ञान हुआ। तब उसने मनके चिन्तनसे ही नगरके बाहर स्थित चण्डप्रद्योतनके सैन्यको उज्जयिनीमें भेज दिया और स्वयंने प्रभावतीके शीलकी परीक्षा करनेके लिए चण्डप्रद्योतनके रूपको ग्रहण कर लिया। साथ ही उसने विक्रियासे सेनाका भी निर्माण कर लिया। पश्चात् वह दुर्गके भीतर स्थित सैन्यको मायासे नष्ट करके उसके भीतर पहुँच गया। फिर उसने देवपूजा-भवनमें जाकर प्रभावतीके सामने अनेक प्रकारकी कामोत्पादक पुरुषकी चेष्टाएँ कीं। परन्तु वह उसके चित्तको विचलित नहीं कर सका। तब उसने उस मायाको दूर करके प्रभावतीकी पूजा करते हुए यह घोषणा कर दी कि वह शीलवती है। अन्तमें वह स्वर्गलोकको वापिस चला गया। तत्पश्चात् नगरमें वापिस आनेपर जब यह समाचार राजा उद्दायनको ज्ञात हुआ तब उसे अतिशय हर्ष हुआ। फिर उसने बहुत समय तक राज्य किया। अन्तमें उसने अपने सुकीर्ति नामक पुत्रको

१ श गुणसौन्दर्यं°। २. ब तनुगुणादिना। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श निवर्त्तते। ४. ब °स्तस्योपरि। ५. फ ब तस्योपसर्गं। ६. श निपात्यन्तः। ७. ब °मुपमहृत्य। ८. फ 'च' नास्ति। ९. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श नंदनं राज्य विधाय।

समवसरणे बहुभिर्दीक्षितौ दम्पती। उद्दायनमुनिर्निर्वाणं ययौ। शीलवती समाधिना ब्रह्मस्वर्गेऽमरोऽजनि। एवं सर्वावस्थापि स्त्री शीलेनोभयभवपूज्या बभूवान्यो भव्यः किं न स्यात्पूज्य इति[1] ॥५॥

[३१]

श्रीवज्रकर्णो नृपतिर्महात्मा पूज्यो बभूवात्र बलाच्युताभ्याम्।
शीलस्य रक्षापरभावयुक्तः शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ॥६॥

अस्य कथा— अत्रैवायोध्यायां राजा दशरथो देव्योऽपराजिता[2] सुमित्रा कैका सुप्रभा चेति[3] चतस्रः। तासां क्रमेण पुत्रा रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः। तत्र रामलक्ष्मणौ बलगोविन्दौ। दशरथस्तपसे गच्छन् रामाय राज्यं ददानः कैकयागत्य पूर्ववरो याचितो। राज्ञोक्तम्— तपोविघ्नं विहायान्यद्याचस्व। तया द्वादशवर्षाणि भरताय राज्ये याचिते राजा विस्मितो न किमपि वदति। पितृवचनपालनार्थं भरताय राज्यं दत्त्वा रामो मातरं संबोध्य लक्ष्मणसीताभ्यां सह निर्गत्य रात्रौ जिनालये परिजनं विसृज्य तत्रैव शयितः। प्रातः क्षुल्लकद्वारेण निर्गत्य सरयूं[4] लङ्घयित्वा कियदन्तरे उपविष्टाः। तदनु आगतं परिजनं विसृज्य तत्रैव स्थिताः। कैश्चिद्भरताय[5] रामादिगमने कथिते मात्रा सह गत्वा गमने निषिद्धेऽपि वर्षद्वय-

राज्य देकर वर्धमान जिनेन्द्रके समवसरणमें रानी प्रभावती एवं अन्य बहुत-से जनोंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वह उद्दायन मुनि मुक्तिको प्राप्त हुआ तथा शीलवती प्रभावती समाधि-पूर्वक शरीरको छोड़कर ब्रह्म स्वर्गमें देव हुई। इस प्रकार सब अवस्थावाली स्त्री भी जब शीलके प्रभावसे दोनों लोकोंमें पूज्य हुई तब दूसरा भव्य जीव क्या पूज्य न होगा? अवश्य होगा ॥५॥

यहाँ महात्मा श्रीवज्रकर्ण राजा शीलकी रक्षाके उत्कृष्ट भावसे बलदेव और नारायणसे पूजित हुआ है। इसीलिए मैं उस शीलका परिपालन करता हूँ ॥६॥

यहाँ अयोध्यामें राजा दशरथ राज्य करता था। उसके अपराजिता, सुमित्रा, कैका और सुप्रभा नामकी चार रानियाँ थीं। उनके क्रमसे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमेंसे राम बलदेव और लक्ष्मण नारायण था। जब राजा दशरथ विरक्त होकर दीक्षा लेनेके लिए उद्यत हुए तब उन्होंने रामके लिए राज्य देना चाहा। परन्तु इस बीचमें कैकाने आकर महाराज दशरथसे अपने पूर्व वरकी याचना की। तब राजाने उससे कहा मेरे तपमें बाधा न पहुँचाकर तुम अन्य कुछ भी माँग सकती हो। कैकाने बारह वर्षके लिए अपने पुत्र भरतको राज्य देनेकी याचना की। इससे राजाको बहुत आश्चर्य हुआ, वह इसका कुछ उत्तर ही न दे सका। तब रामने पिताके वचनकी रक्षा करते हुए भरतके लिए राज्य दे दिया और स्वयं माताको आश्वासन देकर लक्ष्मण और सीताके साथ अयोध्यासे निकल पड़े। इस प्रकारसे जाते हुए वे रात्रिमें जिनालयके भीतर सोये। कुटुम्बी जनको उन्होंने वहींसे वापिस किया। प्रातःकालके होनेपर वे जिनालयके छोटे द्वारसे निकलकर सरयू नदीको पार करते हुए कुछ दूर जाकर ठहर गये। तत्पश्चात् वे साथमें आये हुए भृत्यवर्ग व अन्य प्रजाजनोंको वापिस करके वहीं पर स्थित रहे। इधर किन्हीं पुरुषोंके कहनेपर भरत राम आदिके जानेके वृत्तान्तको जानकर माताके साथ उनके पास गया। उसने उन्हें बन जानेसे रोककर अयोध्या वापिस चलनेकी प्रार्थना की। परन्तु रामने

१. ब किं न स्यादिति। २. श देव्यपराजिता। ३. ब सुप्रभाश्चेति। ४. ब सरयुं। परिजन व्याघोट्य-[ट्य]स्थिताः। ५. फ केचिद्भरताय।

मधिकं दत्त्वा गतश्चित्रकूटं दक्षिणं निक्षिप्यावन्तिषु प्रविष्टः। तत्र च[1] निर्मनुष्याणि पक्वक्षेत्राणि दृष्ट्वा केनचित्पृष्टेनोक्तम्— अत्रैवोज्जयिन्यां राजा सिंहोदरो राज्ञी श्रीधरा तन्महासामन्तेन वज्रकर्णेन दशपुराधिपतिनैकदा पापर्द्धिगतेन मुनिमालोक्य विवादं कृत्वा व्रतानि गृहीतानि[2] जैनं विनान्यस्य न[3] नमस्कारकरणं[4] च गृहीतम्। मुद्रिकायां जिनबिम्बं प्रतिष्ठाप्य प्रवर्तमानं[5] श्रुत्वा राज्ञा कोपात्तदाह्वानार्थं राजादेशः प्रेषितः। आगमिष्यति[6] न वेति सचिन्तो राजा शय्यागृहे देव्या चिन्ताकारणं पृष्टः। कथितं वृत्तान्तम्। देवीकर्णपूरचोरणार्थमागतासंयत-सम्यग्दृष्टिविद्युद्दण्डेन श्रुत्वा निर्गत्य मार्गे आगच्छते वज्रकर्णाय निरूपितम्। सोऽपि स्वपुरं गत्वा सामग्र्या[7] स्थितम् इति श्रुत्वा सिंहोदरस्तत्पुरं गत्वा सामग्र्या वेष्टयित्वा[8] तिष्ठतीति। श्रुत्वा रामेण कटिमेखलां निरूपितपुरुषो भ्रात्रा निजकटकौ[9] च दत्त्वा प्रेषितः। स्वयं गत्वा तत्पुरबाह्यचन्द्रप्रभजिनालयं प्रविष्टाः[10]। प्रविशता[11] वज्रकर्णेन दृष्ट्वा दृष्टपूर्वा इति रसवती

उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने बारह वर्षोंमें दो वर्ष और बढ़ाकर चौदह वर्षमें अपने अयोध्या आनेका वचन दिया। तत्पश्चात् वे आगे चल दिये और चित्रकूटको दक्षिणमें करके अवन्ति देशके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने पके हुए खेतोंको मनुष्योंसे रहित देखकर किसीसे इसका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि इसी उज्जयिनी नगरीमें सिंहोदर नामका राजा राज्य करता है। उसकी पत्नीका नाम श्रीधरा है। उसके एक वज्रकर्ण नामका महासामन्त है जो दशपुर (दशांगपुर) का स्वामी है। वह एक समय शिकारके लिए वनमें गया था। वहाँ उसने किसी मुनिको देखकर उनके साथ विवाद किया। तत्पश्चात् उनसे प्रभावित होकर उसने व्रतोंको ग्रहण कर लिया। साथ ही उसने एक यह भी प्रतिज्ञा की कि मैं जैनको छोड़कर किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करूँगा। इसके लिए वह मुद्रिकामें जिनप्रतिमाको प्रतिष्ठित कराकर नमस्कार क्रियामें प्रवृत्त होने लगा। इस बातको सुनकर राजाको क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उसने वज्रकर्णको बुला लानेके लिए आज्ञा देकर राज कर्मचारीको भेजा। वह आवेगा या नहीं, इस चिन्तासे व्यथित होकर सिंहोदर स्वयं शय्याके ऊपर पड़ गया। रानीने जब उसकी चिन्ताका कारण पूछा तब उसने रानीसे उक्त वृत्तान्त कह दिया। इसी बीच एक विद्युद्दण्ड नामका असंयतसम्यग्दृष्टि चोर रानीके कर्णफूलको चुरानेके लिए राजभवनमें आया था। उसने इस वृत्तान्तको सुन लिया। तब उसने राजभवनसे बाहर निकलकर मार्गमें आते हुए वज्रकर्णसे वह सब वृत्तान्त कह दिया। इस बातको सुनकर वज्रकर्ण भी अपने नगरमें वापिस जाकर सामग्री (सेना आदि) के साथ स्थित हो गया। जब सिंहोदरको यह ज्ञात हुआ तब उसने सेनाके साथ जाकर वज्रकर्णके नगरको घेर लिया है। [इसलिये नगरके भीतर इस समय मनुष्योंके न रहनेसे ये पके हुए खेत मनुष्योंसे रहित हैं।] उपर्युक्त पुरुषसे इस वृत्तान्तको सुनकर उसे रामने करधनी और लक्ष्मणने अपने दोनों कड़े देकर वापिस भेज दिया। तत्पश्चात् वे स्वयं उस नगरके बाह्य भागमें स्थित चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रके मन्दिरमें गये। उन्हें मन्दिरके भीतर जाते हुए जब वज्रकर्णने देखा तब उसे ऐसा भान हुआ कि मैंने इन्हें कहीं

१ प श 'च' नास्ति। २ ब 'गृहीतानि' नास्ति। ३. ब 'न' नास्ति। ४. ब नमस्काराकरणं। ५. प श वर्तमानं। ६. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श आगमिष्यतीति। ७. ब स्थिता। ८. ब °स्तत्पुरं वेष्टयित्वा। ९. ब रामेण निरूपितपुरुषो भ्राता निजकटकौ। १०. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श °बाह्यजिनालयं चन्द्रप्रभस्य प्रविष्टाः। ११. फ ब प्रविशन्तो।

प्रेषिता। भोजनानन्तरं जिनगृहं प्रविश्य स्थिताः। भरतदूतवेषधारिणा लक्ष्मणेन महायुद्धे सिंहोदरो बद्ध्वा आनीय रामाय समर्पितः वज्रकर्णेन रामलक्ष्मीधरौ प्रणम्य मोचितस्ततो रामेणोभौ समप्रतिपत्त्या स्थापितौ। बहुपरिग्रहोऽपि वज्रकर्णो बलाच्युतपूज्योऽजन्यपरः किं न स्यादिति ॥६॥

[३२]

किं वर्ण्यते शीलफलं मया यत्नीलीति नाम्ना वणिजो हि पुत्री।
शीलात्सुपूजां लभते स्म यक्ष्याः शीलं[२] ततोऽहं खलु पालयामि ॥७॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डे लाटदेशे भृगुकच्छपत्तने[३] राजा वसुपालः वणिग्जिनदत्तो भार्या जिनदत्ता, पुत्री नीली अतिशयरूपवती। तत्रैवापरः श्रेष्ठी समुद्रदत्तो भार्या सागरदत्ता पुत्रः सागरदत्तः। एकदा महापूजायां वसतौ कायोत्सर्गे स्थितां सर्वाभरणभूषितां नीलीमालोक्य सागरदत्तेनोक्तं किमेषा देवता काचिदेतदाकर्ण्य तन्मित्रेण प्रियदत्तेन भणितम्— जिनदत्तश्रेष्ठिन इयं नीली पुत्री। ततस्तद्रूपावलोकनादतीवासक्तो भूत्वा कथमियं प्राप्यत इति तत्परिणयनचिन्तया दुर्बलो जातः। समुद्रदत्तेन चैकदाकर्ण्य भणितः पुत्रो हे पुत्र, जैनं मुक्त्वा नान्यस्य जिनदत्तो ददातीमां[४] पुत्रिकां परिणेतुम्। ततस्तौ कपटेन श्रावकौ

पहिले देखा है। इससे उसने उनके पास भोजन सामग्री भेजी। भोजनके पश्चात् वे जिन-भवनके भीतर प्रविष्ट होकर स्थित हो गये। तत्पश्चात् भरतके दूतका वेष धारण करके लक्ष्मणने युद्धमें सिंहोदरको बाँध लिया और लाकर रामको समर्पित कर दिया। तब वज्रकर्णने राम और लक्ष्मणको नमस्कार करके सिंहोदरको बन्धनसे मुक्त कराया। फिर रामने उन दोनोंका समान आदरके साथ प्रतिष्ठित कराया। इस प्रकार बहुत परिग्रहसे संयुक्त वह वज्रकर्ण जब बलदेव (राम) और नारायण (लक्ष्मण) के द्वारा पूज्य हुआ तब दूसरा क्या न होगा ? ॥ ६ ॥

जिस शीलके प्रभावसे नीली नामकी वैश्यपुत्री यक्षीसे उत्तम पूजाको प्राप्त हुई है उस शीलके फलका मैं क्या वर्णन कर सकता हूँ ? अर्थात् नहीं कर सकता हूँ। इसीलिये मैं उस शीलका परिपालन करता हूँ ॥६॥

इसकी कथा इस प्रकार है—इसी आर्यखण्डके भीतर लाट देशमें भृगुकच्छ नामका नगर है। उसमें वसुपाल नामका राजा राज्य करता था। उसी नगरमें एक जिनदत्त नामका वैश्य रहता था। उसकी पत्नीका नाम जिनदत्ता था। इनके नीली नामकी अतिशय रूपवती पुत्री थी। वहींपर समुद्रदत्त नामका एक दूसरा भी सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम सागरदत्ता था। इनके सागरदत्त नामका एक पुत्र था। एक बार सागरदत्तने महा-पूजाके समय वसति (जिनभवन) में समस्त आभरणोंसे विभूषित होकर कायोत्सर्गसे स्थित उस नीलीको देखा। उसे देखकर वह बोला कि क्या यह कोई देवता है ? यह सुनकर उसके मित्र प्रियदत्तने कहा कि यह जिनदत्त सेठकी पुत्री नीली है। उसके सौन्दर्यको देखकर सागरदत्तको उसके विषयमें अतिशय आसक्ति हुई। तब वह उसको प्राप्त करनेकी चिन्तासे उत्तरोत्तर कृश होने लगा। समुद्रदत्तने जब यह सुना तो वह उससे बोला कि हे पुत्र ! जिनदत्त सेठ इस पुत्रीको जैनके सिवाय किसी दूसरेको नहीं दे सकता है। इससे वे दोनों

१. क 'सम' नास्ति। २. क यक्षाच्छीलं श यक्षाः शीलं। ३. ब श भरुकच्छ। ४. क ददाति इमां श ददाति मां।

जातौ परिणीता च सा। ततः पुनस्तौ बुद्धभक्तौ जातौ। नील्याः स्वपितृगृहे[1] गमनमपि निषिद्धमेवं वचने [वञ्चने] जाते भणितं जिनदत्तेन इयं मम न जाता, कूपादौ पतिता वा[2], यमेन वा नीता इति। नीली च श्वशुरगृहे भर्तुर्वल्लभा विभिन्नगृहे जिनधर्ममनुष्ठन्ती तिष्ठति। दर्शनात् संसर्गाद्वचनात् धर्मदेवाकर्णनाद्वा[3] कालेनेयं बुद्धभक्ता भविष्यतीति पर्यालोच्य समुद्रदत्तेन भणिता नीली पुत्रि, ज्ञानिनां वन्दकानामस्मदर्थं[4] भोजनं देहि। ततस्तया वन्दकानामन्त्र्याहूय च तेषामेकैका प्राणहितातिमृष्टं संस्कार्य[5] तेषामेव भोक्तुं दत्ता[6]। तैर्भोजनं भुक्त्वा[7] गच्छद्भिः पृष्टं क्व प्राणहिताः। तयोक्तं भवन्त एव ज्ञानेन जानन्तु यत्र ताः तिष्ठन्ति। यदि पुनर्ज्ञानं नास्ति तदा वमनं कुर्वन्तु भवतामुदरेण[मुदरे] प्राणहितास्तिष्ठन्तीति। एवं वमने कृते दृष्टानि प्राणहिताखण्डानि। ततो रुष्टः श्वशुरपक्षजनः। ततः सागरदत्तभगिन्यादिभिः कोपात्तस्या असत्या परपुरुषोद्भावना कृता। तस्यां प्रसिद्धिं गतायां नीली देवाग्रे संन्यासं गृहीत्वा कायोत्सर्गेण स्थिता दोषोत्तरे[8] भोजनादौ प्रवृत्तिर्मम, नान्यथेति। ततः क्षुभितनगरदेवतयागत्य रात्रौ सा[8] भणिता—हे महासति, मा प्राणत्यागमेवं कुरु। अहं राज्ञः प्रधानानां पुरजनस्य च स्वप्नं ददामि—लग्ना यथा नगरप्रतोल्यः कीलिता महासतीवामेन

(पिता-पुत्र) कपटसे श्रावक बन गये। इस प्रकारसे सागरदत्तके साथ उस नीलीका विवाह सम्पन्न हो गया। तत्पश्चात् वे फिरसे बौद्ध हो गये। तब उन्होंने नीलीको अपने पिताके यहाँ जानेसे भी रोक दिया। इस प्रकार धोखा खानेपर जिनदत्तने विचार किया कि यदि यह मेरे यहाँ उत्पन्न नहीं होती तो अच्छा था, अथवा कुएँमें गिरकर मर गई होती या यमके द्वारा ग्रहण कर ली गई होती तो भी अच्छा होता। उधर नीली ससुरके घरपर पतिकी प्रिया होकर दूसरे घरमें जिनधर्मकी उपासना करती हुई समयको बिता रही थी। यह [भिक्षुओंके] दर्शनसे, उनकी संगतिसे, वचनसे अथवा धर्मके सुननेसे कुछ समयमें बुद्धदेवकी भक्त (बौद्ध) हो जावेगी, ऐसा विचार करके समुद्रदत्तने उससे कहा कि हे नीली पुत्री ! हमारे लिये निमित्तज्ञानी बन्दकों (बौद्ध भिक्षुओं) को भोजन दो। इसपर उसने बन्दकोंको निमन्त्रित करके बुलाया और उनमेंसे प्रत्येक बन्दकके एक एक जूताको महीन पीसकर उसे घृतादिसे संस्कृत करते हुए उन्हींको खिला दिया। जब वे सब भोजन करके वापिस जाने लगे तब उन्हें अपना एक एक जूता नहीं दिखा। इसके लिये उन्होंने पूछा कि हमारा एक-एक जूता कहाँ गया है ? नीलीने उत्तर दिया कि आप सब ज्ञानी हैं, अतएव आप ही अपने ज्ञानके द्वारा जान सकते है कि वे जूते कहाँपर हैं। और यदि आप लोगोंको उसका ज्ञान नहीं है तो फिर वमन करके देख लीजिये। वे आप लोगोंके ही पेटमें स्थित हैं। इस प्रकारसे वमन करनेपर उन्हें उसमें जूतेके टुकड़े देखनेमें आ गये। इससे ससुरके पक्षके लोग नीलीके ऊपर क्रुद्ध हुए। तत्पश्चात् सागरदत्तकी बहिन आदिने क्रोधवश उसके विषयमें पर पुरुषके साथ सम्बन्ध रखनेका झूठा दोष उद्भावित किया। इस दोषके प्रसिद्ध होनेपर वह नीली देवके आगे संन्यास लेकर कायोत्सर्गसे स्थित हो गई। उस समय उसने यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि इस दोषके दूर हो जानेपर ही मैं भोजनादिमें प्रवृत्त होऊँगी, अन्यथा नहीं। इस घटनासे क्षुभित होकर रात्रिमें नगरदेवता आया और उससे बोला हे महासती ! तू इस प्रकारसे प्राणोंका त्याग न कर। मैं राजाके प्रधान पुरुषों और नगरवासी जनोंको स्वप्न देता

१. फ नील्याश्च स्वपितृ° ब नील्याश्च पितृ°। २ ब कूपादौ वा पतिना। ३. ब °र्गाद्वचनधर्मदेवा°। ४. ब मस्मदर्थेन। ५. प °मृष्टं संस्कार्ये श °मृष्टमंकार्य्य। ६. ब दत्वा। ७. ब कृत्वा। ८. ब दोषोत्तारे। श 'सा' नास्ति।

चरणेन संस्पृष्टा उद्घटिष्यन्ते[1]। ताश्च प्रभाते तव चरणस्पृष्टा एवोद्घटिष्यन्ते इति पादेन प्रतोलीस्पर्शं कुर्यास्त्वमिति भणित्वा राजादीनां तथा स्वप्नं दर्शयित्वा पत्तनप्रतोलीः कीलित्वा स्थिता सा नगरदेवता। प्रभाते प्रतोलीः कीलिता दृष्ट्वा राजादिभिस्तं स्वप्नं स्मृत्वा नगर-सर्वस्त्रीचरणताडनं प्रतोलीनां कारितम्, न चैकापि प्रतोली कयाचिदप्युद्घाटिता। सर्वासां पश्चान्नीली तत्रोत्क्षिप्य नीता, तच्चरणस्पर्शात्सर्वा अपि उद्घाटिताः प्रतोल्यः। निर्दोषा जाता। एवं यक्षीपूजिता नीली नृपादिभिरपि पूजिता। ईषद्विवेकिनी स्त्री बालापि देवपूज्याजनि शीलादन्यः किं न स्यादिति ॥७॥

[३३]

निन्द्यः श्वपाकोऽपि सुरैरनेकैः संपूजितः शीलफलेन राजा।
संस्पृश्यभावं ह्युपनीतवांस्तं शीलं ततोऽहं खलु पालयामि ॥८॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डे सुरम्यदेशे[3] पोदनपुरे[4] राजा महाबलः पुत्रो बलः। नन्दीश्वराष्टम्यां राज्ञाष्टदिनानि जीव-अमारणघोषणायां[5] कृतायां बलकुमारेण चात्यन्तमांसासक्तेन कंचिदपि पुरुषमपश्यता राजोद्याने राजकीयमेढकः प्रच्छन्नेन मारयित्वा संस्कार्य भक्षितः। राज्ञा च मेढकमारणमाकर्ण्य[6] रुष्टेन मेषमारको[7] गवेषयितुं प्रारब्धः। तदुद्याने

हैं कि नगरके जो प्रधान द्वार बन्द हो रहे हैं वे किसी महासतीके बायें पैरके स्पर्शसे खुलेंगे। इस प्रकारसे वे प्रभात समयमें तेरे चरणके स्पर्शसे ही खुलेंगे। इसीलिए तू अपने पाँवसे उक्त द्वारोंका स्पर्श करना। यह कहकर वह नगरदेवता राजा आदिकोंको वैसा स्वप्न दिखलाकर और नगर द्वारोंको कीलित करके स्थित हो गया। प्रातःकालके होनेपर उन नगरद्वारोंको कीलित देखकर राजा आदिको उस स्वप्नका स्मरण हुआ। तब उन्होंने नगरकी समस्त स्त्रियोंको बुलाकर गोपुरोंसे उनके पाँवका स्पर्श कराया। परन्तु उनमेंसे किसीके द्वारा एक भी गोपुरद्वार नहीं खुला, अन्तमें उन सबके पीछे नीलीको वहाँपर लाया गया। तब उसके चरणके स्पर्शसे वे सब द्वार खुल गये। इससे उसका वह दोष दूर हो गया। इस प्रकार उस यक्षीसे पूजित वह नीली राजा आदि महापुरुषोंके द्वारा भी पूजित हुई। जब भला थोड़े विवेकसे सहित वह स्त्री बाला भी शीलके प्रभावसे देवसे पूजित हुई है तब दूसरा पूर्णविवेकी भव्य जीव क्या उन देवादिकोंसे पूज्य न होगा? अवश्य होगा ॥७॥

शीलके प्रभावसे अतिशय निन्दनीय चाण्डाल भी अनेक देवोंके द्वारा पूजित होकर राजाके द्वारा स्पर्श करनेके योग्य किया गया है। इसीलिये मैं उस शीलका परिपालन करता हूँ ॥८॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्यखण्डके भीतर पोदनपुरमें राजा महाबल राज्य करता था। उसके पुत्रका नाम बल था। राजाने नन्दीश्वर (अष्टाह्निक) पर्वकी अष्टमीको आठ दिन तक जीवहिंसा न करनेकी घोषणा करायी। उधर उसका पुत्र बलकुमार अतिशय मांसप्रिय था। उसने इन दिनोंमें किसी भी पुरुषको न देखकर गुप्त रीतिसे बगीचेमें राजाके मेढ़ेका बध कराया और उसे पकाकर खाया। राजाको जब उस मेढ़ेके बधका समाचार ज्ञात हुआ तब उसे

१. प उद्घूरिष्यन्ते फ उद्घाटिष्यन्ते। २. फ ब यक्षा। ३. श देशो। ४. ब पौदनपुरे। ५. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श जीवमारणाया घोषणायां। ६. ब मारणवार्तामाकर्ण्य। ७. ब मेंढकमारको।

मालाकारेण वृक्षोपरि चटितेन स तन्मारणं कुर्वाणो दृष्टो रात्रौ च निजभार्यायाः कथितम्। तत्प्रच्छन्नचरपुरुषेणाकर्ण्य राज्ञः कथितम्। प्रभाते मालाकार आकारितस्तेनैवं पुनः कथितम्। मदीयामाज्ञां मम पुत्रोऽपि खण्डयतीति रुष्टेन राज्ञा कोट्टपालो भणितो बलकुमारं नवखण्डं कारयेति। ततस्तं कुमारं मारणस्थानं नीत्वा मातङ्गमानेतुं ये गताः पुरुषास्तान् विलोक्य मातङ्गेनोक्तं प्रिये, 'मातङ्गोऽद्य ग्रामं गतः' इति कथय त्वमेतेषामित्युक्त्वा गृहकोणे प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः। तलारैश्चाकारिते मातङ्ग्या कथितम्—मातङ्गोऽद्य ग्रामं गतः। भणितं च तलारैः—स पापोऽपुण्यवानद्य ग्रामं गतः, कुमारमारणे तस्य बहुस्वर्णरत्नादिलाभो भवेत्। तेषां वचनमाकर्ण्य द्रव्यलुब्धया तया मातङ्गभीतया हस्तसंज्ञया दर्शितो ग्रामं गत इति पुनः पुनर्भणन्त्या। ततस्तैस्तं गृहान्निःसार्य तस्य मारणार्थं कुमारः समर्पितः। तेनोक्तम्—नाहमद्य चतुर्दशीदिने जीवघातं करोमि। ततस्तलारैः स नीत्वा राज्ञो दर्शितो देवायं राजकुमारं न मारयति[2]। तेन राज्ञः कथितं[3] देव, सर्पदष्टोऽहं मृतः श्मशाने निक्षिप्तः। सर्वौषधिमुनिशरीरस्पर्शिवायुना[4] जीवितोऽहम्। तत्पार्श्वे चतुर्दशीदिवसे मया जीवाहिंसाणुव्रतं गृहीतमतोऽद्य[5] न मारयामि। देवो यज्जानाति तत्करोतु। अद्य [6]चाण्डालस्यापि व्रतमिति

बहुत क्रोध आया। उसने उक्त मेढ़के मारनेवाले मनुष्यको खोजना प्रारम्भ किया। जब बगीचेमें वह मेढ़ा मारा जा रहा था तब वृक्षके ऊपर चढे हुए मालीने उसे देख लिया था। उसने रातमें मेढ़ेके मारनेकी बात अपनी स्त्रीसे कही। उसे वहाँ पासमें स्थित किसी गुप्तचरने सुन लिया था। उसने जाकर मेढ़ेके मारे जानेका वृत्तान्त राजासे कह दिया। तब प्रभातमें वह माली वहाँ बुलाया गया। उसने उसी प्रकारसे फिरसे भी वह वृत्तान्त कह दिया। मेरी आज्ञाको मेरा पुत्र ही भंग करता है, यह सोचकर राजाको क्रोध उत्पन्न हुआ। तब उसने कोतवालको बलकुमारके नौ खण्ड करानेकी आज्ञा दी। तत्पश्चात् कुमारको मारनेके स्थानमें ले जाकर जो राजपुरुष चाण्डालको लेनेके लिये गये थे उन्हें देखकर चाण्डालने अपनी पत्नीसे कहा कि हे प्रिये! तुम इन पुरुषोंसे कह देना कि आज चाण्डाल गाँवको गया है। यह कहकर वह घरके एक कोनेमें छुप गया। तत्पश्चात् उन पुरुषों द्वारा चाण्डालके बुलाये जानेपर चाण्डालिनीने उनसे कह दिया कि वह आज गाँवको गया है। यह सुनकर उन पुरुषोंने कहा कि वह पापी पुण्यहीन है जो आज गाँवको गया है, आज राजकुमारका बध करनेपर उसे बहुत सुवर्ण और रत्नों आदिका लाभ होनेवाला था। उनके इस कथनको सुनकर उस चाण्डालिनीको धनका लोभ उत्पन्न हुआ। तब उसने चाण्डालके भयसे बार-बार यही कहा कि वह तो गाँवको गया है। परन्तु इसके साथ ही उसने हाथके संकेतसे उसे दिखला भी दिया। तब उन लोगोंने उसे घरके भीतरसे निकालकर मारनेके लिये उस कुमारको समर्पित कर दिया। इसपर चाण्डालने उनसे कहा कि मैं आज चतुर्दशीके दिन जीवहिंसा नहीं करता हूँ। तब उन लोगोंने उसे ले जाकर राजाको दिखलाते हुए कहा कि हे देव! यह राजकुमारको नहीं मार रहा है। इसपर उस चाण्डालने राजासे कहा कि हे देव! एक बार मुझे सर्पने काट लिया था। तब लोग मुझे मरा हुआ समझकर श्मशानमें ले गये। वहाँ मैं सर्वौषधि ऋद्धिके धारक मुनिके शरीरसे संगत वायुके स्पर्शसे जीवित हो गया। तब मैंने उनके समीपमें जीवोंकी हिंसा न करने रूप अहिंसाणुव्रतको ग्रहण कर लिया था।

१. श तत्प्रच्छन्नं चर°। २. ब मारयाभि। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श 'कथितो'। ४. ब-प्रतिपाठोऽयन्। श स्पर्शवायुना। ५. फ गृहीतमद्य। ६. ब °तु। राडस्य चंडा°।

संचिन्त्य रुष्टेन राज्ञा द्वावपि गाढं बन्धयित्वा सिसुमारद्रहे[1] निक्षिप्तौ। तत्र मातङ्गस्य प्राणात्ययेऽप्यहिंसाणुव्रतमपरित्यजतो व्रतमाहात्म्याज्जलदेवतया जलमध्ये सिंहासनमणिमण्डपिकादुन्दुभिसाधुकारादि प्रातिहार्यं कृतम्। महाबलराजेनं[2] चैतदाकर्ण्य भीतेन पूजयित्वा निजच्छत्रतले स्नापयित्वा संस्पृश्यो[3] विशिष्टः कृत इति। कुमारः सिसुमारेण भक्षितो[4] दुर्गतिं ययौ। एवं चाण्डालोऽपि शीलेन सुरपूज्योऽभूदन्यः किं न स्यादिति ॥८॥

त्रिदशभवने[5] सौख्यं भुक्त्वा नरोत्तमजातिजं
भजति तदलं भव्यो भक्त्या पठेदतुलाष्टकम्।
नृसुरधिभुभिः पूज्यो भूत्वा सुशीलफलाख्यकं
स खलु लभते मोक्षस्थानं सदात्मजसौख्यकम् ॥

इति पुण्यास्रवाभिधानग्रन्थे केशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्य-रामचन्द्र-मुमुक्षुविरचिते शीलफलव्यावर्णनो नामाष्टकम् ॥४॥

[३४]

भुवनपतिसुखानां कारणं[6] लोकपूज्यं
खलु वृजिनविनाशं शोषकं चेन्द्रियाणाम्।

इसीलिये मै आज जीववध नहीं कर रहा हूँ। अब आप जो उचित समझें करें। चाण्डालके इस कथनको सुनकर राजाने विचार किया कि भला चाण्डालके भी व्रत हो सकता है। बस यही सोचकर उसका क्रोध भड़क उठा। तब उसने उन दोनोंको ही बँधवाकर शिशुमारद्रह (हिंसक जल-जन्तुओंसे व्याप्त तालाब)में पटकवा दिया। परन्तु उस चाण्डालने चूँकि मरणके सन्मुख होनेपर भी अपने ग्रहण किये हुए अहिंसाणुव्रतको नहीं छोड़ा था इसीलिये उस व्रतके प्रभावसे जलदेवताने उसे जलके मध्यमें सिंहासन देकर मणिमय मण्डप, दुन्दुभि और साधुकार (साधु कृतं साधु कृतम्, यह शब्द) आदि प्रातिहार्य किये। इस घटनाको सुनकर महाबल राजा बहुत भयभीत हुआ। तब उसने उक्त चाण्डालकी पूजा करके उसका अपने छत्रके नीचे स्नान कराया और फिर उसे विशिष्ट स्पर्शके योग्य घोषित किया। वह कुमार शिशुमार (हिंस्र जलजन्तु) का ग्रास बनकर दुर्गतिको प्राप्त हुआ। इस प्रकार चाण्डाल भी जब शीलके प्रभावसे देवसे पूजित हुआ है तब दूसरा क्या देवोंसे पूजित नहीं होगा? अवश्य होगा ॥८॥

जो भव्य जीव भक्तिसे इस अनुपम आठ कथामय शीलके प्रकरणको पढ़ता है वह स्वर्गके सुखको भोगकर मनुष्योंमें श्रेष्ठ चक्रवर्ती आदिके भी सुखको भोगता है। तथा अन्तमें चक्रवर्तियों और इन्द्रोंका भी पूज्य होकर उत्तम शीलके फलभूत उस मोक्षस्थानको भी प्राप्त कर लेता है जहाँपर कि निरन्तर आत्मीक अनन्त सुखका अनुभव किया करता है ॥

इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनिके शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु द्वारा विरचित पुण्यास्रव नामक कथाकोश ग्रन्थमें शीलके फलका वर्णन करनेवाला अष्टक समाप्त हुआ ॥४॥

जो उपवास तीनों लोकोंके अधिपतियों (इन्द्र, धरणेन्द्र एवं चक्रवर्ती) के सुखका कारण,

१. प ब सुसुमारद्रहे। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श महाबलराज्ञा। ३. ब संस्पृशो। ४. ब सुंसुमारेण भक्षतो। ५. ब भुवने। ६. क 'कारणं' नास्ति।

विपुलविमलसौख्यो वैश्यपुत्रो यतोऽभू-
दुपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्ध्या ॥१॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डे मगधदेशे कनकपुरे[1] राजा जयंधरो राज्ञी विशालनेत्रा पुत्रः श्रीधरो महाप्रतापी मन्त्री नयंधरः। स च राजैकदास्थाने समस्तजनेनासितस्तदानेकदेशपरिभ्रमता वासवनाम्ना तन्मखेन[2] रत्नोपायनस्योपरि[3] कृत्वा चित्रपट आनीय दर्शितः। राजा तं प्रसार्यावलोकयन् तत्र स्थितं कन्यारूपं विलोक्यात्यासक्तो भूत्वा वणिजं पृच्छति स्म कस्याः रूपमिदमिति। स आह—सुराष्ट्रदेशे गिरिनगरेशः श्रीवर्मा देवी श्रीमती पुत्रो हरिवर्मा पुत्री पृथ्वी, तस्या रूपमिदं तवेष्टं भवति नो वेति तव चित्तपरीक्षार्थमानीतमिति। तदनु राज्ञा स एव कन्यावरणार्थमुत्तमप्राभृतेन समं प्रस्थापितः। स च जगाम, श्रीवर्माणं ददर्श प्राभृतं समर्प्य विज्ञापयांचकार— मत्स्वामी मगधदेशेशो युवातिरूपवान् प्रतापी जैनः सर्वकलाकुशलस्त्यागी भोगी महामण्डलेश्वर आत्मार्थं त्वत्पुत्रीं याचितुं मां प्रेषितवानिति। ततः श्रीवर्मातिसंतुष्टः स्वप्रधानैर्वासवेन समं तन्निमित्तं तां यापयामास। तदागमनमाकर्ण्य

लोकमें पूज्य, पापका नाशक और इन्द्रियोंका दमन करनेवाला है; उसके करनेसे चूँकि वैश्यका पुत्र निर्मल एवं महान् सुखका उपभोक्ता हुआ है, अतएव मैं मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक उसे करता हूँ ॥१॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्यखण्डके भीतर मगध देशमें कनकपुर नामका नगर है। वहाँ जयंधर नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम विशालनेत्रा था। उनके एक श्रीधर नामका महाप्रतापी पुत्र था। राजाके मन्त्रीका नाम नयंधर था। वह राजा एक समय समस्त जनोंके साथ सभाभवनमें बैठा हुआ था। उस समय उसका वासव नामक मित्र अनेक देशोंमें पर्यटन करके वहाँ आया। उसने उपहार स्वरूप लाये हुए रत्नोंके ऊपर एक चित्रपटको करके उसे राजाके लिए दिखलाया। राजाने जब उसे खोलकर देखा तो उसमें एक सुन्दर कन्याका रूप अंकित दिखा। उसे देखकर राजाके लिये उक्त कन्याके विषयमें अतिशय अनुराग हुआ। तब उसने उस व्यापारीसे पूछा कि यह किस कन्याका चित्र है? व्यापारी बोला— सुराष्ट्र देशमें एक गिरिनगर नामका पुर है। उसमें राजा श्रीवर्मा राज्य करता है। रानीका नाम श्रीमती है। इन दोनोंके एक हरिवर्मा नामका पुत्र और पृथ्वी नामकी पुत्री है। यह उसी पुत्रीका चित्र है। यह कन्या आपको प्रिय है अथवा नहीं, इस प्रकार आपके अन्तःकरणकी परीक्षा करनेके लिए मैं इस चित्रको आपके पास लाया हूँ। यह सुनकर राजाने उक्त कन्याके साथ विवाह करनेके लिए उसी व्यापारीको उत्तम भेंटके साथ वहाँ भेज दिया। उसने वहाँ जाकर श्रीवर्मा राजाको भेंट देते हुए उससे यह निवेदन किया कि मेरा स्वामी मगध देशका राजा तरुण, अतिशय सुन्दर, प्रतापी, जिनेन्द्र देवका उपासक, समस्त कलाओंमें कुशल, दानी, भोगी और महामण्डलेश्वर है। उसने आपकी पुत्रीकी याचना करनेके लिये मुझे यहाँ भेजा है। यह सुनकर राजा श्रीवर्माको बहुत आनन्द हुआ। तब उसने अपने मन्त्रियों और उस वासव व्यापारीके साथ अपनी पुत्रीको जयंधर राजाके साथ विवाह करा देनेके लिये कनकपुर भेज दिया। उसके

१. श कनकापुरे। २. ब तत्सखिना। ३. क रत्नोपयनस्योपरि ब रत्नोपायतस्योपरि।

पुरशोभां कृत्वा जयंधरः संमुखं ययौ, महाविभूत्या पुरं प्रवेश्य सुमुहूर्ते अवीवरत्, महादेवीं च[1] चकार। तां विहायान्या अष्टसहस्रास्तद्राश्यो विशालनेत्रां सेवन्ते।

एवमेकदा वसन्तोत्सवे राजा सकलजनेन सहोद्यानं गतः। विशालनेत्रा तदन्तःपुरादिसकलस्त्रीजनेन पुष्पकमारुह्य चलिता। तदनु सुश्रृङ्गारितं भद्रहस्तिनं चटित्वा पृथ्वी महादेवी चलिता। तदागमनाडम्बरं निरीक्ष्य कोऽय[केयं]मागच्छतीति विशालनेत्रा कांचिदपृच्छत्। तयोक्तं पृथ्वीति श्रुत्वा सा तद्रूपावलोकनार्थं तत्रैवास्थात्। तत्स्थितिं वीक्ष्य पृथ्व्योक्तं काऽग्रे[2] तिष्ठति। कयाचिदुक्तं अग्रमहिषीति। मत्प्रणामार्थं तिष्ठतीति मत्वा पृथ्वी जिनालयं ययौ। जिनमभ्यर्च्य मुनिं पिहितास्रवं च नत्वा दीक्षां ययाचे। मुनिर्बभाण—तव पुत्रराज्यविभूतिदर्शनानन्तरं राज्ञा सह तपो भविष्यतीति। तयाभाणि मे किं तनयो भविष्यतीति। तेनोक्तं भविष्यति। स च कामो महामण्डलेश्वरश्चरमाङ्गश्च स्यात्। स चैवंविधः स्यादित्यमीभिः साभिज्ञानैर्विबुध्यस्व। कैरित्युक्ते राजभवननिकटोद्याने सिद्धकूटो जिनालयोऽस्ति। तत्कपाटो देवैरप्युद्घाटयितुं न शक्यते, स कपाटस्तत्सुतचरणाङ्गुष्ठस्पर्शनमात्रेणोद्घटिष्यति[3]। तदा स नागवाप्यां पतिष्यति। तं नागाः स्वशिरःसु[4] धरिष्यन्ति। प्रवृद्धः सन्नील-

आगमनको सुनकर जयंधर राजा नगरको सुसज्जित कराकर अगवानीके लिए सन्मुख गया। तत्पश्चात् उसने महती विभूतिके साथ पुरमें प्रविष्ट होकर शुभ लग्नमें उस कन्याके साथ विवाह कर लिया। साथ ही उसने उसे महादेवी भी बना दिया। उस पृथ्वी देवीको छोड़कर दूसरी आठ हजार रानियाँ विशाल नेत्राकी सेवा करती थीं।

एक समय वसन्तोत्सवमें राजा जयंधर समस्त जनोंके साथ उद्यानमें गया। साथमें विशालनेत्रा भी अन्तःपुरकी समस्त रानियोंके साथ पुष्पक (पालकी ?) पर चढ़कर गई। उसके पीछे सुसज्जित भद्र हाथीके ऊपर चढ़कर पृथ्वी महादेवी भी चल दी। उसके आगमनके ठाट-बाटको देखकर विशालनेत्राने किसीसे पूछा कि यह कौन आ रहा है ? उसने उत्तर दिया कि वह पृथ्वी रानी आ रही है। इस बातको सुनकर वह उसके रूपको देखनेके लिये वहींपर ठहर गई। उसके अवस्थानको देखकर पृथ्वीने पूछा कि यह आगे कौन स्थित है ? तब किसीने कहा कि वह पट्टरानी है। यह सुनकर पृथ्वीने विचार किया कि शायद वह मुझसे प्रणाम करानेके लिये यहाँ रुक गई है। यह सोचकर वह जिनालयमें चली गई। वहाँ उसने जिनेन्द्रकी पूजा करके पिहितास्रव मुनिको नमस्कार करते हुए उनसे दीक्षा देनेकी याचना की। इसपर मुनिराजने कहा कि तू अपने पुत्रकी राज्यविभूतिको देखकर तत्पश्चात् राजाके साथ दीक्षा ग्रहण करेगी। तब पृथ्वीने उनसे पूछा कि क्या मेरे पुत्र उत्पन्न होगा ? मुनिने उत्तर दिया कि हाँ तेरे पुत्र होगा और वह भी कामदेव, महामण्डलेश्वर एवं चरमशरीरी होगा। वह पुत्र इस प्रकारका होगा, इसका निश्चय तुम इन चिह्नोंसे करना— राजभवनके निकटवर्ती उद्यानमें सिद्धकूट जिनालय है। उसके किवाड़ोंको खोलनेके लिए देव भी समर्थ नहीं हैं। फिर भी वे किवाड़ उस पुत्रके पाँवके अँगूटेके छूने मात्रसे ही खुल जावेंगे। उस समय वह बालक नागवापिकामें गिर जावेगा। उसे वहाँ सर्प अपने शिरोंके ऊपर धारण करेंगे। जब वह विशेष वृद्धिगत होगा तब वह नीलगिरि नामक हाथीको अपने वशमें करेगा। इसी प्रकार वह दुष्ट घोड़ेको भी वशमें करेगा। इस शुभ वार्ताको

१. ब 'च' नास्ति। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श कोग्रे। ३. ब स त्वत्सुत°। ४. ब स्वशिरसि।

विर्यभिधं हस्तिनं वशीकरिष्यते[1] दुष्टाश्वं च इति श्रुत्वा हृष्टा स्वात्मगृहं जगाम। इतो नृपो जलक्रीडावसरे तामपश्यन् विषण्णस्तद्गृहं[2] शीघ्रमागतः पृष्टवांश्च किमिति नागतासीति। तया मुनिनोदितं सर्वं कथितम्। तदा सोऽपि जहर्ष। ततस्तस्याः कतिपयदिनैर्नन्दनो[3]ऽजनि। स च प्रतापंधरसंज्ञया वर्धितुं लग्नः। तं गृहीत्वैकदा माता तं जिनालयं गता, तथा स कपाट उद्घाटितः। बालं बहिर्निधाय वसतिकान्तं प्रविष्टा सा। सर्वो जनोऽपि[4] जिनदर्शने व्यग्रोऽभूत्तदा बालो रङ्गन्[5] गत्वा नागवाप्यामपतत्। तमपश्यन्त्या धात्रिकायाः कोलाहलमाकर्ण्याम्बिका तत्र पतितं तत्रत्यदेवैर्नागरूपेणात्मफणासु जलादुपरि धृतं वीक्ष्य स्वयमपि 'हा पुत्र' इति भणित्वा तत्र[6] पपात। तदागाधमपि जलं तत्पुण्येन तस्या जानुदघ्नमबोभवीत्। तदाङ्गरक्षादिकृत[7]कलकलमाकर्ण्य तत्र राजागमत्। सपुत्रां[8] तां तथा लुलोके जहर्ष च। ततस्तमाकर्षय्य[9] [माकृष्य] जिनाभ्यर्चनं चक्रे अनु स्वसद्म[10] ययौ। ततः सुतं नागकुमाराभिधं कृत्वा सुखेनास्थात्। सकलकलाकुशलोऽभूत्सः[11]।

एकदा राजास्थानं पञ्चसुगन्धिनीनामवेश्या समागत्य भूपं विज्ञापयति स्म देव, मे सुते द्वे किंनरी मनोहरी च वीणावाद्यमदगर्विते। नागकुमारस्यादेशं देहि तयोर्वाद्यं परीक्षितुम्।

सुनकर पृथ्वी रानी हर्षित होती हुई अपने भवनमें वापिस चली गई। इधर राजा जलक्रीड़ाके समय पृथ्वीको न देखकर खिन्न होता हुआ उसके भवनमें गया। वहाँ शीघ्र जाकर उसने पृथ्वीसे उद्यानमें न जानेका कारण पूछा। तब उसने मुनिके द्वारा कहे हुए उस सब वृत्तान्तको राजासे कह दिया। उसे सुनकर राजाको भी बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् कुछ दिनोंके बीतने पर उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम प्रतापन्धर रक्खा गया। वह क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होने लगा। एक दिन उसकी माता उसे लेकर उक्त जिनालयको गई। वहाँ मुनिके कथनानुसार उस बालकके अंगूठेके स्पर्शसे जिनालयके वे बन्द किवाड़ खुल गये। पृथ्वी उस बालकको बाहर छोड़कर जिनालयके भीतर गई। उस समय सब ही जन जिनदर्शनमें लीन थे। तब वह बालक घुटनोंके सहारे जाकर नागवापीमें गिर गया। तब उसे न देखकर उसकी धाय कोलाहल करने लगी। उसे सुनकर उसकी माता पृथ्वी बाहर आयी। उसने देखा कि पुत्र बावड़ीमें गिर गया है। उसे सर्पोंके रूपमें स्थित बावड़ीके देवोंने जलके ऊपर अपने फणोंसे धारण कर लिया था। तब वह 'हा पुत्र' कहकर स्वयं भी उस बावड़ीमें कूद पड़ी। उस समय उसके पुण्यके प्रभावसे उस बावड़ीका अथाह जल भी उसके घुटने प्रमाण हो गया। उस समय अंगरक्षक आदिकोंके कोलाहलको सुनकर राजा भी वहाँ जा पहुँचा। उसे उस अवस्थामें पृथ्वीको पुत्रके साथ देखकर बहुत हर्ष हुआ। पश्चात् उसने माताके साथ पुत्रको बावड़ीसे बाहर निकलवाकर जिनेन्द्रकी पूजा की। फिर वह राजप्रासादमें वापिस चला गया। तत्पश्चात् वह पुत्रका नागकुमार नाम रखकर सुखपूर्वक स्थित हुआ। वह पुत्र भी समस्त कलाओंमें प्रवीण हो गया।

एक समय पंचसुगन्धिनी नामकी किसी वेश्याने राजसभामें आकर राजासे प्रार्थना की कि हे देव! मेरे किंनरी और मनोहरी नामकी दो पुत्रियाँ हैं। उन्हें वीणा बजानेका बहुत अभिमान है। आप उनके वीणावादनकी परीक्षा करनेके लिये नागकुमारको आज्ञा दीजिये।

१ ब वशीकरिष्यति। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श °स्तद्गृहं जगाम शीघ्र°। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श ततस्तया कतिपयदिनानि उल्लंघ्य नन्दनो। ४. ब 'पि' नास्ति। ५. ब रंगत्। ६. श 'तत्र' नास्ति। ७. फ 'कृत' नास्ति। ८. फ स्वपुत्र श सुपुत्रा। ९. प °माकर्षध्वः ब °माकर्षज्य। १०. ब चक्रे तु स्वसद्म। ११. ब 'स.' नास्ति।

तदनु तनुजस्यादेशे दत्ते पितुर्निकटे स उपविवेश। सर्वेऽपि वीणावाद्यकुशला उपविष्टाः। तदनु तत्कुमारीभ्यां परीक्षा दत्ता। तदा[1] पित्रा पृष्टोऽतिकुशला केति। सोऽवोचल्लघ्वी कुशला। पुनः राजापृच्छदनयोर्यमलकयोर्मध्ये गुरुलघुभावः कथं विज्ञातस्त्वया। सोऽकथयद्देव, यदैषा लघ्वी वीणां वादयति तदैषा ज्यायसी[2] मुखमवलोकयति। इमा यदा वादयति तदैषाधो[3]ऽवलोकयतीति इङ्गिताकारेण बुध्ये इति निरूपिते जनकौतुकमासीत्। ते चात्यासक्ते पितृवचनेन परिणीतवान् प्रतापंधरः सुखमास्ते[4]।

एकदास्थानस्थो भूपः केनचिद्विज्ञतो देवानेकदेशान् विनाशयन्नीलगिर्यभिधो हस्ती समागत्य पुराद्बहिः सरसि तिष्ठतीति राजा श्रीधरं तं धर्तुमस्थापयत्[5]। स च बलेन गत्वा तं क्षोभं निनाय, धर्तुमशक्तः पलाय्य पुरं प्रविष्टः। तदाकर्ण्य राजा स्वयं निर्गतः। तं निवार्य नागकुमार एकाकी गत्वा गजधरणशास्त्रोक्तक्रमेण तं दध्रे। तत्स्कन्धमारुह्येन्द्रलीलया पुरं विवेश। पितरं प्रति बभाण देव, हस्तिनं गृहाणेति। तेनोक्तं तवैव योग्योऽयम्, त्वमेव गृहाण। स महाप्रसाद इति भणित्वा तमादाय स्वगृहं गतः।

तदनुसार राजाके आज्ञा देनेपर नागकुमार पिताके पासमें बैठ गया। अन्य जन जो वीणा बजानेमें निपुण थे वे भी सब सभामें आकर बैठ गये। इसके पश्चात् उन दोनों कुमारियोंने अपनी वीणा-वादनमें परीक्षा दी। तब पिताने नागकुमारसे पूछा कि इन दोनोंमें विशेष निपुण कौन है? नागकुमारने उत्तर दिया कि छोटी पुत्री अधिक प्रवीण है। तब राजाने उससे फिर पूछा कि ये दोनों युगल स्वरूपसे साथमें उत्पन्न हुई हैं, ऐसी अवस्थामें तुमने यह कैसे ज्ञात किया कि यह बड़ी है और यह छोटी है? इसके उत्तरमें नागकुमार बोला कि हे देव! जब यह छोटी लड़की वीणाको बजाती है तब यह बड़ी लड़की उसके मुखको देखती है और जब यह बड़ी लड़की वीणाको बजाती है तब छोटी लड़की नीचे देखती है। इस शारीरिक चेष्टाके द्वारा उनके छोटे-बड़ेपनका ज्ञान हो जाता है। नागकुमारके इस उत्तरसे लोगोंको बहुत कौतुक हुआ। वे दोनों कन्यायें भी नागकुमारकी कुशलताको देखकर उसके ऊपर अतिशय आसक्त हुईं। तब नागकुमारने पिताकी आज्ञा पाकर उनके साथ विवाह कर लिया। इस प्रकार प्रतापन्धर सुखपूर्वक रहने लगा।

एक समय राजा सभामें बैठा हुआ था। तब किसीने आकर उससे प्रार्थना की कि हे देव! नीलगिरि नामका हाथी अनेक देशोंको उजाड़ता हुआ यहाँ आकर नगरके बाहर तालाब-पर स्थित है। यह सुनकर राजाने उस हाथीको पकड़नेके लिए श्रीधरको भेजा। तदनुसार वह सेनाके साथ उक्त हाथीको वशमें करनेके लिए गया भी। परन्तु वह उसे वशमें नहीं कर सका। बल्कि इससे वह हाथी और भी क्षुब्ध हो उठा। तब श्रीधर भागकर नगरमें वापिस आ गया। यह सुनकर उक्त हाथीको वशमें करनेके लिए राजा स्वयं ही वहाँ जानेको उद्यत हुआ। तब नागकुमार पिताको रोककर स्वयं अकेला वहाँ गया। उसने शास्त्रमें निर्दिष्ट हाथी पकड़नेकी विधिसे उसे पकड़ लिया। फिर वह उसके कंधेपर चढ़कर इन्द्र जैसे ठाट-बाटसे नगरके भीतर प्रविष्ट हुआ और पितासे बोला कि हे देव! यह है वह हाथी, इसे ग्रहण कीजिये। तब पिताने कहा कि यह तुम्हारे ही योग्य है, इसे तुम ही ले लो। इसपर नागकुमारने 'यह आपकी बड़ी कृपा है' कहकर उसे ले लिया और अपने निवास स्थानको चला गया।

१. ब 'तदा' नास्ति। २. फ ज्ञायसी। ३. प तदैमाधो ब तदाधो। ४. फ सुखमासीत्। ५. फ श तमस्थापयत्।

अन्यदा यन्त्रेण[1] चारिं चारयन्तम् अश्वं विलोक्य तच्चारकं पप्रच्छास्येत्थं किमिति ग्रासो[2] दीयते इति। तेनोक्तमयं दुष्टाश्वो मारयत्यासन्नवर्तिनमिति। कुमारस्तद्बन्धनानि मोचयित्वा दध्रे। तमारुह्य ततो धावयामास। आश्रममानीय[3] राज्ञ उक्तवान्[4] सोऽयं दुष्टाश्वो वशीकृत इति। राज्ञोक्तं तव योग्यस्त्वमेव गृहाण। प्रसाद इति गृहीत्वा गतः। इत्यादि-तत्प्रसिद्धिं विज्ञाय विशालनेत्रा स्वतनयं ब्रवीति स्म—हे पुत्र, दायादोऽतिप्रौढोऽभूत्तस्मात्त्वं स्वात्मनो यत्नं कुरु। ततस्तेन तन्मारणार्थं पञ्चशतसहस्रभटाः संगृहीतास्ते च तदवसरमव-लोकयन्तस्तिष्ठन्ति। स न जानाति।

एकदा नागकुमारः स्वभवनपश्चिमोद्यानस्थकुब्जवापिकायां[5] सह प्रियाभ्यां[6] जल-क्रीडार्थं जगाम। तदा तदन्तिकं विलेपनादिकमादाय नियतसखीजनेन गच्छन्तीं पृथ्वीं स्वप्रासादस्योपरिभूमौ स्थितया विशालनेत्रया दृष्ट्वोक्तं[7] स्वनिकटस्थस्य भूपस्य देव, संकेतित-स्थलं[8] गच्छन्तीं स्वप्रियामवलोकय। श्रुत्वा तथा तां विलुलोके[9] विस्मयं जगाम। क्व यातीत्यवलोकयन् तस्थौ। वाप्या निर्गतं मातृपादयोर्नमन्तं सुतं वीक्ष्य स्वाग्रवल्लभां ततर्ज

दूसरे किसी समयमें नागकुमारने किसी घोड़ेको यन्त्रसे चारा खिलाते हुए सईसको देखकर उससे पूछा कि इस घोड़ेको इस रीतिसे घास क्यों खिलाया जा रहा है ? सईसने उत्तर दिया कि यह दुष्ट घोड़ा निकटवर्ती मनुष्यके लिए मारता है, इसीलिये इसको दूरसे ही घास खिलाया जाता है। यह सुनकर नागकुमारने उसके बन्धनोंको खोलकर उसे पकड़ लिया। फिर उसने उसके ऊपर चढ़कर उसे इधर-उधर दौड़ाया। तत्पश्चात् उस घोड़ेको आश्रममें लाकर नागकुमार पितासे बोला कि यह वह दुष्ट घोड़ा है, इसे मैंने वशमें किया है। तब राजाने कहा कि यह तुम्हारे योग्य है, इसे तुम ही ले लो। तदनुसार नागकुमार इसे भी प्रसादके रूपमें लेकर चला गया। इत्यादि प्रकारसे नागकुमारकी ख्यातिको देखकर विशालनेत्रा अपने पुत्र श्रीधरसे बोली कि हे पुत्र ! राज्यका उत्तराधिकारी अतिशय प्रौढ़ (उन्नत) हुआ है। इसीलिये तुम अपने लिए प्रयत्न करो। यह सुनकर श्रीधरने नागकुमारको मार डालनेके लिए पाँच सौ सहस्रभटोंको एकत्रित किया। वे भी उसके वधका अवसर देखने लगे। उधर नागकुमारको इस बातका पता भी न था।

एक समय नागकुमार अपने भवनके पश्चिम भागवर्ती उद्यानमें स्थित कुब्ज वापिकामें अपनी दोनों प्रियतमाओंके साथ जलक्रीड़ाके लिए गया था। उस समय उसकी माता पृथ्वी विलेपन आदिको लेकर नियमित सखीजनोंके साथ उसके पास जा रही थी। उसे देखकर अपने भवनके ऊपर छतपर बैठी हुई विशालनेत्रा अपने पासमें बैठे हुए राजासे बोली कि हे देव ! देखिये आपकी प्रिया संकेतित स्थान (व्यभिचारस्थान) को जा रही है। यह सुनकर राजाने उसे उस प्रकारसे जाते हुए देखा। इससे उसे बहुत आश्चर्य हुआ। तब वह यही देखता रहा कि पृथ्वी कहाँ जाती है। अन्तमें उसने देखा कि वह बावड़ीपर पहुँच गई और नागकुमार उस बावड़ीमेंसे निकलकर उसके चरणोंमें प्रणाम कर रहा है। यह देखकर उसने विशालनेत्राको बहुत फटकारा। तत्पश्चात् उसने पृथ्वीके भवनमें जाकर उससे पूछा कि तुम कहाँ गई थीं ? तब

१. ब यत्नेन। २. फ 'ग्रामो' नास्ति। ३. प आश्रयमानीय श आश्रमानीय। ४. ब राज्ञोक्तवान्। ५. ब कुब्जवापिका। ६. श विप्राभ्या। ७. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श दृष्टोक्तं। ८. ब °स्थानं। ९. ब विलोकयेन्।

भूपः । [1]ततः पृथ्व्या गृहमाणस्य राज्ञा क गतासीत्युक्ते देवी यथावदचीकथत् । ततोऽग्र-महिष्याः क्षुद्रत्वभयेन[2] प्रिये, पुत्रस्य बहिर्निर्गन्तुं न दद्स्वेति तद्भ्रमणं निवार्यात्मगृहं जगाम भूपः । देवी श्रीधरमेव प्रकाशितं[3] भूपोऽभिलषतीति विपरीतधिया दुःखिनी बभूव । क्वापि गत्वागतेन नन्दनेनाम्बिका चिन्ताकारणं पृष्टा । तयोक्तं राज्ञा ते बहिर्निर्गमनं निषिद्धमिति दुःखिताहं जातेति । तदनु नागकुमारो नीलगिरिं विभूष्य तत्स्कन्धमारुरोहाखण्डललीलया-नेकजनवेष्टितो गृहान्निर्जगाम । पुरे स्वरूपातिशयेन स्त्रीजनं मोहयन् भ्रमितुं लग्नः । तत्पञ्च-महाशब्दकोलाहलमाकर्ण्य राजा किं कोलाहल इति कमपि[4] पप्रच्छ । स उवाच नागकुमार-भ्रमणाडम्बर इति श्रुत्वा मदाज्ञोल्लङ्घनं कृतवतीति कोपेन राजा तस्याः सर्वस्वहरणं चकार । आगतः कुमारो निरलंकारां मातरमीक्षांचक्रे स्वरूपं च बुबुधे । तदनु द्यूतस्थानमाट । मन्त्रि-मुकुटबद्धादीनां सर्वस्वं द्यूते जिगाय जननीगृहमानिनाय[5] च । स्वसभायां[6] निराभरणान् तान् ददर्श राजा । किमित्येवं यूयमिति पप्रच्छ । तैः स्वरूपे कथिते कोपेनाहं तं जेष्यामीति सुतमाहूय मया द्यूतं रमस्वेत्युक्तवान् । सुतोऽब्रवीन्नोचितं नृपस्य । द्यूते जितमन्त्र्यादेश्चा[7]-

पृथ्वीने यथार्थ बात कह दी । राजाने पट्टरानीकी क्षुद्रताके भयसे पृथ्वीसे कहा कि हे प्रिये ! पुत्रको बाहर न निकलने दो । इस प्रकार वह नागकुमारके घूमने फिरनेपर प्रतिबन्ध लगाकर अपने भवनमें चला गया । इससे पृथ्वीको यह भ्रम उत्पन्न हुआ कि राजा श्रीधरको ही प्रकाशमें लाना चाहता है । इस कारणसे वह बहुत दुखी हुई । उस समय नागकुमार कहीं बाहर गया था । उसने भवनमें आकर जब माताको खेदखिन्न देखा तो उससे चिन्ताका कारण पूछा । तब पृथ्वीने कहा राजाने तुम्हारे बाहर जाने-आनेको रोक दिया है, इससे मैं दुखी हूँ । यह सुनकर नागकुमार नीलगिरि हाथीको सुसज्जित कर उसके कन्धेपर चढ़ा और अनेक जनोंसे वेष्टित होकर इन्द्रके समान ठाटबाटके साथ भवनसे बाहर निकल पड़ा । वह अपने सुन्दर रूपसे स्त्री-जनोंको मोहित करता हुआ नगरमें घूमने फिरने लगा । तब उसके पाँच (शंख, काहल एवं तुरई आदिके) महाशब्दोंके कोलाहलको सुनकर राजाने किसीसे पूछा कि यह किसका कोलाहल है ? उसने उत्तर दिया कि यह नागकुमारके परिभ्रमणका आडम्बर है । यह सुनकर राजाको ज्ञात हुआ कि पृथ्वीने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है । इससे उसे बहुत क्रोध आया । तब उसने पृथ्वीके वस्त्राभूषणादि सब ही छीन लिये । नागकुमारने वापिस आकर जब माताको आभूषणादिसे रहित देखा तब उसने वस्तुस्थितिको जान लिया । तत्पश्चात् उसने द्यूतस्थान (जुआरियोंका अड्डा)में जाकर मन्त्री और मुकुटबद्ध राजा आदिके सब धनको जुएमें जीत लिया तथा उस सबको अपनी माँके घरमें ले आया । जब राजाने अपनी सभामें उक्त मन्त्री आदि जनोंको आभरणोंसे रहित देखा तो उसने उनसे इसका कारण पूछा । तब उन सबने राजासे यथार्थ वृत्तान्त कह दिया । इससे उसे नागकुमारके ऊपर बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ । इस क्रोधावेशमें उसने नागकुमारको बुलाकर अपने साथ जुआ खेलनेके लिये कहा । यह सुनकर नागकुमारने कहा कि राजाका (आपका) मेरे साथ जुआ खेलना उचित नहीं है । फिर भी वह जुएमें पूर्वमें जीते गये उन मन्त्री आदिके अधिक आग्रह करनेपर पिताके साथ जुआ खेलनेके लिये बाध्य हुआ । तब उसने जुएमें राजाके

१. फ 'ततः' नास्ति । २. फ क्षुद्रस्वभावेन । ३. ब प्रकाशितुं । ४. फ श किमपि । ५. फ श जननीमानिनाय । ६. ब-प्रतिपाठोऽयम् । श स्वसभे । ७. ब-प्रतिपाठोऽयम् । श द्यूते जिते मंत्र्यादे°।

प्रह्वेण चिक्रीड। पितुर्भाण्डागारे जिते देशमाधिं[1] कुर्वतः पादयोः पपात देव पूर्यत इति। तदा मातुर्द्रव्यं मातुः समर्प्यान्यदन्येभ्यः समर्पितवान् कुमारः। राजा परमानन्देन स्वपुराद्बहिरपरं पुरं विधाय तत्र तं व्यवस्थापयामास। सोऽपि सुखेन तस्थौ।

अत्रापरं कथान्तरम्— अत्रैव सूरसेनदेशे उत्तरमथुरापुर्यां राजा जयवर्मा जाया जयावती सुतौ व्यालमहाव्यालौ कोटीभटौ। तत्र व्यालस्त्रिलोचनः। एकदा तत्पुरोद्याने यमधरमुनिस्तस्थौ। वनपालकाद्विबुध्य राजा वन्दितुं ययौ। वन्दित्वा तं पृच्छति स्म मत्सुतौ स्वतन्त्रौ राज्यं करिष्यतः कमपि सेवित्वा वा। साधुरुवाच यद्दर्शनेन व्यालभालस्थं चक्षुर्याति तं सेवित्वायं राज्यं करिष्यति। या कन्या महाव्यालं नेच्छती यस्य प्रिया स्यात्तं सेवित्वायमपि राज्यं करिष्यतीति। श्रुत्वा जयवर्मा एवंविधावपि मत्सुतौ परसेवकौ स्यातामिति ताभ्यां राज्यं वितीर्य वैराग्येण दीक्षितः। तावपि मन्त्रितनयं दुष्टवाक्यं राज्ये नियुज्य स्वस्वाम्यन्वेषणाय निर्जग्मतुः। पाटलीपुत्रपुरं प्राप्य जनं मोहयन्तावापणे[2] तस्थतुः। तत्पतिः श्रीवर्मा रामा श्रीमती दुहिता गणिकासुन्दरी। तत्सखी त्रिपुरा। तया तावालोक्य तद्रूपातिशयं गणिकासुन्दर्याः प्रतिपादितम्। सापि गूढवेषेण निरीक्ष्य महाव्यालस्यात्यासक्ता

समस्त कोषको जीत लिया। पश्चात् जब राजा देशको भी दावपर रखने लगा तब उसने पिताके पाँवोंमें गिरकर प्रार्थना की कि हे देव ! अब इसे समाप्त कीजिये। इसके पश्चात् नागकुमारने माताके धनको माताके लिये देकर शेष धनको उसके स्वामियोंके लिये दे दिया। राजाने सन्तुष्ट होकर अपने नगरके बाहर दूसरे नगरका निर्माण कराकर वहाँ नागकुमारको प्रतिष्ठित कर दिया। वह भी वहाँ सुखपूर्वक रहने लगा।

यहाँ दूसरी कथा आती है— यहाँ ही सूरसेन देशके भीतर उत्तर मथुरापुरीमें जयवर्मा नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम जयावती था। इनके व्याल और महाव्याल नामके दो पुत्र थे जो कोटिभट (करोड़ योद्धाओंको पराजित करनेवाले) थे। इनमेंसे व्यालके तीन नेत्र थे। एक दिन उक्त नगरके उद्यानमें यमधर नामके मुनि आकर विराजमान हुए। वनपालसे उनके आगमनके समाचारको जानकर राजा उनकी वन्दनाके लिये गया। वन्दनाके पश्चात् उसने उनसे पूछा कि मेरे दोनों पुत्र स्वतन्त्र रहकर राज्य करेंगे अथवा किसीके सेवक होकर। मुनि बोले— जिस पुरुषको देखकर व्यालके मस्तकपर स्थित नेत्र नष्ट हो जावेगा उसकी सेवा करके वह राज्य करेगा। और जो कन्या व्यालकी इच्छा न करके जिस अन्य पुरुषकी प्रियतमा बनेगी उसकी सेवा करके यह महाव्याल भी राज्य करेगा। यह सुनकर जयवर्माने विचार किया कि देखो ये मेरे दोनों पुत्र कोटिभट हो करके भी दूसरोंके सेवक बनेंगे। यह विचार करते हुए उसका हृदय वैराग्यसे परिपूर्ण हो गया। तब उसने उन दोनों पुत्रोंको राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली। उधर वे दोनों पुत्र भी मन्त्रीके पुत्र दुष्टवाक्यको राज्यकार्यमें नियुक्त करके अपने-अपने स्वामीको खोजनेके लिये निकल पड़े। वे दोनों पाटलीपुत्रमें पहुँचकर लोगोंको मुग्ध करते हुए बाजारमें ठहर गये। पाटलीपुत्रमें उस समय श्रीवर्मा राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम श्रीमती था। इनके गणिकासुन्दरी नामकी एक पुत्री थी। उसकी त्रिपुरा नामकी एक सखी थी। उसने उन दोनोंको देखकर उनकी सुन्दरताकी प्रशंसा गणिकासुन्दरीसे की। तब वह भी गुप्त रूपसे महा-

१. २. प जिते देशमाधि फ जिते मर्यादादेशमाधि श जिते मर्यादाशमाधि। २. फ जनमोहया ता° श जनं मोहया ता°।

बभूव। तदवस्थां विबुध्य श्रीवर्मा इङ्गिताकारेण तौ क्षत्रियाविति ज्ञात्वा स्वगृहं प्रवेश्य गणिकासुन्दर्याः धात्रिकापुत्रीं ललितसुन्दरीं व्यालाय दत्त्वा महाव्यालाय गणिकासुन्दरी-मदत्त। तौ तत्र विभूत्या यावत्तिष्ठतस्तावद्विजयपुरेशो जितशत्रुः पूर्वं ते कन्ये याचित्वाप्राप्य रुषा तत्पुरं[1] विवेष्टे। स्ववल्लभायाः सकाशात् व्यालस्तद् वृत्तान्तमवगम्य महाव्यालस्यादेशं दत्तवान् जितशत्रोर्बुद्धिं निरूपयेति। स च श्रीवर्मणो दूतव्याजेन तदन्तिकं जगाम यत्किंचि-द्बभाषे। जितशत्रुश्चुकोप, तं निर्लोठयामास यदा[2] तदा महाव्यालस्तं दध्रे तत्पट्टिकया बबन्ध निनायाग्रजस्य पादयोरपीपतत्। तेन श्वसुरस्य समर्पितः। तेन परिधानं दत्त्वा तद्देशं प्रेषितः। तौ तत्र जनविदितशौर्यौ सुखेनास्थाताम्।

नागकुमारस्य ख्यातिमाकर्ण्य व्यालस्तं द्रष्टुं तत्र ययौ। नीलगिरिमारुह्य बाह्यालिं गत्वा पुरे प्रविशन्तं तं ददर्श। तदैव समदृष्टिर्जज्ञे[3], भालस्थं नेत्रं च नष्टम्। ततः कथितात्म-स्वरूपो भृत्यो बभूव। प्रभुः स्वहस्तिनमारोप्य निनाय, द्वारे तं विसृज्यान्तः[4] प्रविष्टः। स तत्रैव स्थितः। तदा हेरिकेण श्रीधराय निवेदितं नागकुमारोऽद्वितीयः स्वभवने आस्त इति। तदा तेन ते भृत्यास्तद्वधनार्थं[5] कथिताः। संनद्धांस्तानागच्छतो वीक्ष्य व्यालो द्वारवासिनोऽ-

व्यालको देखकर उसके ऊपर आसक्त हो गई। श्रीवर्माने शरीरकी चेष्टासे उसके अभीष्टको जान लिया। इसलिये वह उन दोनोंको क्षत्रिय जान करके अपने घरपर ले गया। फिर उसने व्यालके लिये गणिकासुन्दरीकी धायकी पुत्री ललितसुन्दरीको देकर महाव्यालके लिये गणिकासुन्दरीको अर्पित कर दिया। इस प्रकारसे वे दोनों वहाँ विभूतिके साथ रहने लगे। उस समय विजयपुरके स्वामी जितशत्रुने आकर क्रोधसे उस नगरको घेर लिया था। उसके इस क्रोधका कारण यह था कि उसने पूर्वमें उन दोनों कन्याओंको माँगा था, किन्तु वे उसे दी नहीं गईं थीं। व्यालने अपनी पत्नीसे इस वृत्तान्तको जानकर महाव्यालके लिये आदेश दिया कि जितशत्रुकी बुद्धिको देखो– उसे जाकर समझानेका प्रयत्न करो। तब वह श्रीवर्माके दूतके रूपमें जितशत्रुके पास चला गया। वहाँ जाकर उसने जो कुछ भी कहा उससे जितशत्रुका क्रोध भड़क उठा। इससे उसने महाव्यालको अपमानित किया। तब उसने उसे उसकी ही पगड़ीसे बाँध लिया और बड़े भाईके पास ले जाकर उसके पैरोंमें गिरा दिया। तब व्यालने उसे अपने ससुरके लिये समर्पित कर दिया। श्रीवर्माने उसे पोषाक (वस्त्र) देकर उसके देशमें वापिस भेज दिया। इस प्रकारसे व्याल और महाव्यालका प्रताप लोगोंमें प्रगट हो गया। फिर वे दोनों वहाँ सुखसे रहने लगे।

व्याल नागकुमारकी कीर्तिको सुनकर उसके दर्शनके लिये वहाँ गया। जब वह कनकपुरमें पहुँचा तब नागकुमार नीलगिरि हाथीपर चढ़ा हुआ बाह्य वीथीमें घूमकर नगरके भीतर प्रवेश कर रहा था। उसको देखते ही वह समदृष्टि (दो नेत्रोंवाला) हो गया– उसका वह तीसरा भालस्थ नेत्र नष्ट हो गया। तब वह अपना परिचय देकर उसका सेवक हो गया। नागकुमार उसे अपने हाथीके उपर बैठाकर ले गया और फिर भवनके द्वारपर छोड़कर स्वयं भीतर चला गया। वह द्वारपर ही स्थित रहा। इसी समय श्रीधरके गुप्तचरने उसे सूचना दी कि इस समय नागकुमार अकेला ही अपने भवनमें स्थित है। तब उसने नागकुमारका बध करनेके लिये उन पाँच सौ सहस्र भट सेवकोंको आज्ञा दे दी। तदनुसार वे तैयार होकर उधर आ रहे थे। उन्हें आते

१. ब रुष्टास्तत्पुरं। २. प श °मास स यदा। ३. प श सम्यग्दृष्टिर्जज्ञे। ४. प ब श विस्मृत्यान्तः। ५. ब °स्तद्धरणार्थं।

पृच्छत् कस्येमे भृत्या इति। तैः स्वरूपे निरूपिते व्यालस्तदापणस्थापितायुधोऽपि तान् निवारितवान्। यदा न तिष्ठन्ति तदा गजस्तम्भमादाय सिंहनादादिकं कुर्वन् तैर्युद्धवान्। तं कलकलमवधार्य यावन्नागकुमारो बहिर्निर्गच्छति तावद् व्यालस्तान् सर्वान् हत्वा तं नतवान्। साश्चर्यं प्रतापंधरः तमालिङ्ग्य तद्धस्तं धृत्वा स्वगृहं विवेश। इतः श्रीधरो भृत्यमारणमाकर्ण्य सबलस्तेन योद्धुं निर्जगाम, इतरोऽपि सव्यालः। तदा नयंधरेण राजा विज्ञप्तो देव, द्वयोर्मध्ये एको[1] निर्घाटनीय इति। राज्ञोक्तं श्रीधरं निर्घाटय। मन्त्रिणोक्तम्—न, सोऽपुण्यो[2] देशान्तरगतश्चेत्तवाप्रसिद्धिर्भविष्यति। अतो नागकुमार एव पुण्यवान् सुभगश्च यात्विति। राज्ञः संमतेन[3] मन्त्रिणा नागकुमारस्योक्तं गेहे शूरस्त्वमन्यथा किं देशान्तरं न यास्यसीति, किं पितृसमानभ्रात्रा युध्यसे। कुमारोऽब्रवीत्—स एव मां मारयितुं लग्नः, किं ममान्यायः। स रणाग्रहं त्यक्त्वा यातु स्वस्थानम्। ततोऽहं देशान्तरं यास्याम्यन्यथा योत्स्ये[4]। ततो मन्त्री श्रीधरान्तिकं जगाम बभाण च हे मूढ, आत्मशक्तिं न जानासि[5]। तव पञ्चशतसहस्रभटास्तदेकेन[6] भृत्येन मारिताः। तेन सह[7] कथं योत्स्यसे। तस्मान्मा म्रियस्व, याहि स्वावासम्, इत्यादिनानावचनैर्निवर्तितोऽग्रजः।

उन्हें आते देखकर व्यालने द्वारपालोंसे पूछा कि ये किसके सेवक हैं ? उत्तरमें उन्होंने बतलाया कि ये श्रीधरके सेवक हैं ? वह अपने शस्त्रोंको उस समय बाजारमें ही छोड़कर यहाँ आया था, फिर भी उसने बिना शस्त्रोंके ही उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया। परन्तु जब वे बलपूर्वक भीतर जानेको उद्यत हुए तब व्याल हाथीके बाँधनेके खम्भेको उखाड़कर सिंहके समान दहाड़ते हुए उनसे युद्ध करने लगा। उस कोलाहलको सुनकर जब तक नागकुमार बाहर आया तब तक व्याल उन सबको नष्ट कर चुका था। उसने कुमारको नमस्कार किया। इस दृश्यको देखकर नागकुमारके लिये बहुत आश्चर्य हुआ। वह व्यालका आलिंगन करते हुए उसे हाथ पकड़ कर भवनके भीतर ले गया। इधर श्रीधरने जब उन सुभटोंके मारे जानेका समाचार सुना तो वह सेनाके साथ नागकुमारसे स्वयं युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा। तब व्यालके साथ नागकुमार भी युद्धके लिये उद्यत हो गया। तब नयंधर मन्त्रीने राजासे प्रार्थना की कि हे देव ! इन दोनोंमेंसे किसी एकको निकाल देना चाहिए। तब राजाने कहा कि ठीक है श्रीधरको निकाल दो। इसपर मन्त्रीने कहा कि नहीं, वह पुण्यहीन है। यदि वह देशान्तरको जायेगा तो आपकी अपकीर्ति होगी। किन्तु नागकुमार चूँकि पुण्यात्मा और सुन्दर है, अतएव वही बाहर भेजा जावे। इसपर राजाकी सम्मति पाकर मन्त्रीने नागकुमारसे कहा कि तुम घरमें ही शूर हो। नहीं तो देशान्तरको क्यों नहीं जाते हो, पिताके समान भाईके साथ युद्ध क्यों करते हो ? यह सुनकर नागकुमार बोला कि वही मुझे मारनेके लिये उद्यत हुआ है, इसमें मेरा क्या दोष है ? वह युद्धकी हठको छोड़कर यदि अपने स्थानको वापिस जाता है तो मैं देशान्तरको चला जाता हूँ, अन्यथा फिर युद्ध करूँगा। इसपर मन्त्री श्रीधरके पास जाकर उससे बोला कि हे मूर्ख ! तुझे अपनी शक्तिका परिज्ञान नहीं है क्या ? उसके एक ही सेवकने तेरे पाँच सौ सहस्रभटोंको मार डाला है। तू उसके साथ कैसे युद्ध करेगा ? इसलिये तू व्यर्थ प्राण न देकर अपने स्थानको वापिस चला जा। इस प्रकार अनेक बचनोंके द्वारा समझाकर मन्त्रीने श्रीधरको वापिस किया।

१. श एको पि नि°। २. ब–प्रतिपाठोऽयम्। फ नासौ पुण्यो। ३. प श सन्मतेन। ४. फ श योत्स्यसे। ५. ब जानाति। ६. प श °स्तदेकेन। ७. ब 'सह' नास्ति।

प्रतापंधरो मातरं संबोध्य प्रियाभ्यां व्यालादिभिश्च तस्मान्निर्गत्य क्रमेणोत्तरमथुरामवाप। तत्पुरबाह्ये शिबिरं निवेश्य व्यालो नीलगिरिं पानीयं पाययितुं ययौ। इतः कुमारो भद्रेभमारुह्य कतिपयकिंकरयुतो नगरं द्रष्टुं विवेश। राजमार्गेण गच्छन् देवदत्ताख्यवेश्यागृहशोभां वीक्ष्य तत्र प्रविष्टः। तया स्वोचितप्रतिपत्त्या प्रवेशितः। तत्र कियत्कालं विलम्ब्य तदुचितसंमानदानेन च तां संतोष्य निर्गच्छंस्तयाभाणि[1]— देव, राजभवननिकटं मागाः। किमित्युक्ते सा आह— कन्याकुण्डलपुरेश[2]जयवर्मगुणवत्योर्दुहिता सुशीला। सा सिंहपुरे हरिवर्मणे दातुं नीयमानै[3]स्तत्पुरेशदुष्टवाक्येन हठात् धृता, नेच्छन्ती स्वभवनाद्बहिः कारागारे निहिता। सा यं यं नृपं पश्यति तं तं प्रति वदति मां मोचय, मां मोचयेति। तत्करुणश्रवणेन मोचनाग्रहेऽनर्थः[4] स्यादिति निवारितोऽसि। स न यास्यामीति भणित्वा तत्र गतस्तया तं दृष्ट्वाभाणि भो भो भ्रातरन्यायेन मां निग्राहयन्नास्ते[5] दुष्टवाक्य इति मोचयेति। हे भगिनि, मोचयामीत्युक्त्वा तद्रक्षकान् निर्धाटयात्मरक्षकान्[6] ददौ। तदा दुष्टवाक्यः सैन्येन निर्गत्य योद्धुं[7] लग्नो महासंग्रामे प्रवर्तमाने केनचित् व्यालस्य स्वरूपे निरूपिते व्यालो नीलगिरिमारुह्य स्वनाम गृह्णन्[8] दुष्टवाक्यस्य संमुखमागतः। स स्वस्वामिनमव-

तत्पश्चात् प्रतापंधर माताको समझा बुझाकर अपनी दोनों पत्नियों और व्यालादिकोंके साथ वहाँसे निकलकर क्रमसे उत्तर मथुराको प्राप्त हुआ। वहाँ नगरके बाहर पड़ाव डालकर व्याल नीलगिरि हाथीको पानी पिलानेके लिये गया। उधर नागकुमार भद्र हाथीपर चढ़कर कुछ सेवकोंके साथ नगरको देखनेके लिये उसके भीतर प्रविष्ट हुआ। वह राजमार्गसे जाता हुआ बीचमें देवदत्ता नामकी वेश्याके घरकी शोभाको देखकर उसके भीतर चला गया। वह भी यथायोग्य आदरके साथ उसे भीतर ले गयी। नागकुमार वहाँ कुछ समय तक स्थित रहा। पश्चात् जब वह देवदत्ताको यथायोग्य सम्मान देकर व सन्तुष्ट करके वहाँसे जाने लगा तब वेश्याने उससे कहा कि हे देव! राजप्रासादके समीपमें न जाना। नागकुमारके द्वारा इसका कारण पूछनेपर देवदत्ता बोली– कन्याकुण्डलपुरके स्वामी जयवर्मा और गुणवतीके एक सुशीला नामकी पुत्री है। उसे जब सिंहपुरमें हरिवर्माको देनेके लिये ले जाया जा रहा था तब इस नगरके राजा दुष्टवाक्यने उसे जबरन् पकड़ लिया था। परन्तु उसने उसकी इच्छा नहीं की। तब उसने उसे अपने भवनके बाहर बन्दीगृहमें रख दिया है। वह जिस-जिस राजाको देखती है उस उससे अपनेको मुक्त करानेके लिये कहती है। उसके करुणापूर्ण आक्रन्दनको सुनकर उसके छुड़ानेका हठ करनेपर अनिष्ट हो सकता है। इसीलिये मैं तुम्हें वहाँ जानसे रोक रही हूँ। यह सुनकर नागकुमार उससे वहाँ न जानेके लिये कह करके भी वहाँ चला ही गया। तब उसको देखकर वह (सुशीला) बोली कि हे भ्रात! यह दुष्टवाक्य राजा अन्यायपूर्वक मेरा निग्रह करा रहा है। मुझे उसके बन्धनसे मुक्त करा दीजिये। यह सुनकर नागकुमारने कहा कि हे बहिन! मैं तुम्हें छुड़ा देता हूँ। यह कहकर उसने बन्दीगृहके पहरेदारोंको हटाकर उक्त पुत्रीको बन्धनमुक्त करते हुए अपने रक्षकोंको दे दिया। इस समाचारको सुनकर दुष्टवाक्य सेनाके साथ आकर युद्धमें प्रवृत्त हो गया। इस प्रकारसे उन दोनोंमें भयानक युद्ध हुआ। वह युद्ध चल ही रहा था कि किसीने आकर उसकी वार्ता व्यालसे कह दी। तब व्याल नीलगिरि हाथीके ऊपर चढ़कर अपने नामको लेता

१. ब °स्तया भणितः। २. ब कन्याकुब्जपुरेश। ३. प श नीयमानो तत्पुरेश। ४. फ °ग्रहेणानर्थं ब °ग्रहेनानर्थः। ५. फ ब निग्रहयन्नास्ते। ६. फ °न्निर्द्धाटयात्म°। ७. फ निर्गतर्योद्धुं श निर्मतयोद्धुं। ८. ब ग्रहन्।

लोक्य नतवान्। तदा व्यालस्तं प्रभोः पादयोरपीपतत् स्वरूपं विज्ञप्तवान्। तदा जयंधरि-र्विभूत्या राजभवनं विवेश सुखेन तस्थौ। सुशीलां सिंहपुरमयापयत्[1]।

एकदोद्यानं व्यालेन समं क्रीडितुं ययौ। तत्र वीणाहस्तान् कुमारकान् वीक्ष्यापृच्छच्च के यूयं कस्मादागता इति। तत्रैकोऽब्रवीत् सुप्रतिष्ठपुरेशशक[2]विनयवत्योः सुतोऽहं कीर्तिवर्मा वीणावाद्येऽतिकुशलो मच्छात्रा एते पञ्चशताः[3]। काश्मीरपुरेशनन्दधारिण्योः सुता त्रिभुवन[4]-रतिर्वीणया यो मां जयति स भर्तेति कृतप्रतिज्ञा। तद्वृत्तं समवधार्य वादार्थी तत्रागमम्। तया निर्जितोऽहमिति। निशम्य कुमारस्तान् विससर्ज। तत्र गन्तुमुद्यतो[5] जज्ञे। व्यालस्तत्र व्यवस्थापितोऽपि सह चचाल। दुष्टवाक्यमेव तत्र नियुज्य ययौ। तां जिगाय ववार च सुखेन तस्थौ।

एकदास्थानगतमनेकदेशपरिभ्रमणशीलं वणिजमप्राक्षीत् किं क्वापि त्वया कौतुकं दृष्टमिति। स कथयति— रम्यकाख्यकानने त्रिशृङ्ग[6]नगस्योपरि स्थितभूतिलकजिनालयस्याग्रे प्रतिदिनं मध्याह्ने व्याध आक्रोशं करोति, कारणं न वेद्मि। त्रिभुवनरतिं तत्रैव निधाय तत्राट।

हुआ दुष्टवाक्यके सामने आया। तब वह अपने स्वामी व्यालको देखकर नम्रीभूत हो गया। पश्चात् व्यालने उसे अपने स्वामी (नागकुमार) के पैरोंमें झुकाते हुए नागकुमारका परिचय दिया। तब जयन्धरका पुत्र वह नागकुमार महाविभूतिके साथ राजभवनमें प्रविष्ट होकर सुखपूर्वक स्थित हो गया। उसने सुशीलाको सिंहपुर पहुँचा दिया।

एक समय नागकुमार व्यालके साथ क्रीड़ा करनेके लिये उद्यानमें गया। वहाँ उसने हाथमें वीणाको लिये हुए कुछ कुमारोंको देखकर उनसे पूछा कि आप लोग कौन हैं और कहाँसे आये हैं? तब उनमेंसे एकने उत्तर दिया कि मैं सुप्रतिष्ठपुरके स्वामी शक और विनयवतीका पुत्र हूँ। नाम मेरा कीर्तिवर्मा है। मैं वीणा बजानेमें अतिशय प्रवीण हूँ। ये मेरे पाँच सौ शिष्य हैं। काश्मीरपुरके राजा नन्द और धारिणीके त्रिभुवनरति नामकी एक कन्या है। उसने यह प्रतिज्ञा की है कि जो मुझे वीणा बजानेमें जीत लेगा वह मेरा पति होगा। उसकी इस प्रतिज्ञाका विचार करके मैं वादकी इच्छासे वहाँ गया था। परन्तु उसने मुझे जीत लिया है। इस वृत्तान्तको सुनकर नागकुमारने उन्हें विदा कर दिया और स्वयं काश्मीर जानेके लिए उद्यत हो गया। यद्यपि नाग-कुमारने व्यालको वहींपर रहनेके लिए प्रेरणा की थी, परन्तु वह उसके साथ ही गया। वह दुष्ट-वाक्यको ही वहाँ नियुक्त करता गया। काश्मीरपुरमें जाकर नागकुमारने उक्त कन्याको वीणा-वादनमें जीत कर उसके साथ विवाह कर लिया। फिर वह कुछ दिन वहाँ ही सुखपूर्वक स्थित रहा।

एक बार जब नागकुमार सभामें स्थित था तब वहाँ अनेक देशोंमें परिभ्रमण करनेवाला एक वैश्य आया। उससे नागकुमारने पूछा कि क्या तुमने कहींपर कोई आश्चर्य देखा है? उसने उत्तर दिया— रम्यक नामके वनमें त्रिशृंग पर्वतके ऊपर स्थित भूतिलक जिनालयके आगे प्रतिदिन मध्याह्नके समयमें एक भील चिल्लाया करता है। वह किस कारणसे चिल्लाया करता है, यह मैं स्वयं नहीं जानता हूँ। यह सुनकर नागकुमार त्रिभुवनरतिको वहींपर छोड़कर उक्त पर्वतपर गया।

---

१. ब -प्रतिपाठोऽयम्। श °मवापयत्। २. ब पुरेशशांकविनय°। ३. ब °शताः काश्मीरदेशे काश्मीर°। ४. त्रिभुवनवती। ५. श तत्र मुद्यतो। ६. ब त्रिसंग।

जिनमभ्यर्च्य स्तुत्वोपविष्टो यावदास्ते तावत्तदाक्रोशरवमवधार्य तमाकार्याप्राक्षीदाक्रोश-कारणम्[1]। सोऽवोचद्देवात्रैव भिल्लेशोऽहं रम्यकाख्यो[2] मद्भार्यां हठान्नीत्वा भीमराक्षसः कालगुफायां तिष्ठतीति ममाक्रोशः। कुमारेण तां गुफां दर्शयेत्युक्ते तेन दर्शिता। तत्र व्यालेन समं प्रविष्टस्तं विलोक्य भीमराक्षसः संमुखमाययौ। प्रणिपत्य चन्द्रहासोऽसिर्नागशय्या[3] निधिः कामकरण्डकश्च तदग्रे व्यवस्थाप्योक्तवानेतेषां त्वमेव योग्यस्त्वं चात्र भिल्लाक्रोश-वशात्प्रवेक्ष्यसीति[4] केवलिभाषितादत्रेयं[5] मयानीतेति भणित्वा सापि तस्य समर्पिता। स चन्द्रहासादिकं मत्स्मरणे[6] आनयेति तस्यैव समर्प्य निर्गतः। तां भिल्लस्य समर्प्य तं पृष्टवानरे[7] अत्र वसता त्वया किमपि कौतुकं दृष्टमस्ति। स आह—

काञ्चनाख्यगुफास्ति। तत्र त्रिसंध्यं तूर्यनिनादो भवति, कारणं न जाने। तां दर्शयेत्युक्ते दर्शितवान्। तदा स तत्र व्यालेन सह प्रविष्टस्तं दृष्ट्वा सुदर्शना यक्षी संमुखमाययौ। नत्वा दिव्यासने उपवेश्य विज्ञप्तवती नाथ[8], विजयार्धदक्षिणश्रेण्यामलकानगरेशविद्युत्प्र-भविमलप्रभयोर्नन्दनो जितशत्रुश्चतुःसहस्रास्मत्प्रभृतिविद्या[9] अत्र स्थित्वा द्वादशाब्दैः ससाध।

वह वहाँ भूतिलक जिनालयमें जिनेन्द्रकी पूजा व स्तुति करके बैठा ही था कि इतनेमें उसे चिल्लानेकी ध्वनि सुनायी दी। इससे नागकुमारने उसका निश्चय करके उसे बुलवाया और उससे इस प्रकार आक्रन्दन करनेका कारण पूछा। वह बोला— हे देव ! मैं रम्यक नामका भीलोंका स्वामी हूँ और यहीं पर रहता हूँ। मेरी स्त्रीको भीमराक्षस बलपूर्वक ले गया है और कालगुफामें स्थित है। मेरे आक्रन्दन करनेका यही कारण है। तब नागकुमारने उससे कहा कि वह गुफा मुझे दिखलाओ। तदनुसार उसने वह गुफा नागकुमारको दिखला दी। तब वह व्यालके साथ उस गुफाके भीतर गया। उसको देखकर भीम राक्षसने सामने आते हुए उसे प्रणाम किया। फिर वह चन्द्रहास खड्ग, नागशय्या और कामकरण्डक निधिको उसके आगे रखकर बोला कि इनके योग्य तुम ही हो। मुझे केवलीने कहा था कि तुम भीलके करुणाक्रन्दनको सुनकर यहाँ प्रवेश करोगे। इसीलिये मैं उस भीलकी स्त्रीको यहाँ ले आया था। यह कहकर उस राक्षसने उस भीलकी स्त्रीको भी नागकुमारके लिए समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् नागकुमारने 'मेरे स्मरण करनेपर इन चन्द्रहासादिकों को लाना' यह कहते हुए उन्हें उस राक्षसको ही दे दिया। फिर गुफासे बाहर निकलकर नागकुमारने भीलकी स्त्रीको उसके लिए देते हुए उससे पूछा कि यहाँ रहते हुए तुमने क्या कोई आश्चर्य देखा है ? इसके उत्तरमें वह बोला—

यहाँ एक काँचनगुफा है। वहाँ तीनों सन्ध्याकालोंमें वादित्रोंका शब्द होता है। वह कैसे होता है, मैं उसके कारणको नहीं जानता हूँ। तत्पश्चात् नागकुमारके कहनेपर उसने उसे वह गुफा भी दिखला दी। तब नागकुमार व्यालके साथ उस गुफाके भीतर गया। उसे देखकर सुदर्शना नामकी यक्षी उसके सामने आयी। उसने दिव्य आसनपर बैठाते हुए नागकुमारसे निवेदन किया-- हे नाथ ! विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें अलका नामका नगर है। वहाँ विद्युत्प्रभ राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम विमलप्रभा था। इनके एक जितशत्रु नामका पुत्र था। उसने इस गुफामें स्थित होकर मुझको आदि लेकर चार हजार विद्याओंको बारह वर्षोंमें

---

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श तमाह्वाह्यपृच्छ°। २. श रम्यकाध्यो। ३. प °हासोसिर्नाश° फ हासोऽसि-नाग°। ४. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श केवल°। ५. ब भाषिता तत्रेयं। ६. ब मत्स्मरणा। ७. ब सा भिल्लस्य समर्प्पितां पृष्टवान् रे। ८. प उपविश्य विज्ञप्तवती नाथ श उपविज्ञप्तवती नाहथ। ९. ब विद्याधरा।

विद्यासिद्धिप्रस्तावे देवदुन्दुभिनिनादमवधार्य शुद्धयेऽवलोकिनीमस्थापयत् । तयागत्य विज्ञप्तो देव, सिद्धविवरगुहायां मुनिसुव्रतमुनेः केवलोत्पत्तौ समागुः सुरा इति । ततस्तं वन्दितुमियाय । समर्च्य तुष्टवान् दीक्षां ययाचे । अस्माभिरुक्तं कष्टेनास्मान् साधयित्वास्मत्फलं किमपि भुक्त्वा पश्चात्तपः कुरु । कथमपि यदा न तिष्ठति तदास्माभिरुक्तं कस्यचिदस्मान् समर्प्य तपो गृहाणेति । तेन केवलिनं पृष्ट्वोक्तमग्रेऽत्र[1] काञ्चनगुहायां नागकुमार आगमिष्यति, तं सेवन्तामिति निरूप्य प्रव्रज्य मोक्षमुपजगाम । वयमत्र स्थिताः । त्वमस्मत्स्वामीत्यस्मान्[2] स्वीकुरु । स्वीकृताः, स्मरणेन आगच्छतेति निरूप्य निर्गतः । पुनर्व्याधं पप्रच्छापरमपि कौतूहलं कथय । तेन भिल्लेन[3] वेतालगुफा दर्शिता । तद्द्वारि खड्गं भ्रामयन् वेतालस्तिष्ठति । स यस्तत्र प्रविशति तं हन्ति । तं वीक्ष्य तद्घातं वञ्चयित्वा पादे धृत्वाकृष्य पातयति स्म । तदधो निधीनपश्यच्छासनं च वाचितवान्[4]—यो वेतालं पातयति स निधिस्वामीति । निधिरक्षणं विद्यानां दत्वा तस्मान्निर्गत्य पुनर्व्याधं पृष्टवान् किमपरं[5] कौतुकमस्ति न वेति । नास्तीत्युक्ते जिनमानम्य तस्मान्निर्जगाम । गिरिनगरासन्ने वटीवृक्षाध[6] उपविष्टस्तदैव

सिद्ध किया था । विद्याओंके सिद्ध हो जानेपर उसने देवदुंदुभीके शब्दको सुनकर कारण ज्ञात करनेके लिये अवलोकिनी विद्याको भेजा । उसने वापिस आकर जिनशत्रुसे निवेदन किया कि हे देव ! सिद्धविवर गुफामें मुनिसुव्रत मुनिके केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है । इसीलिये वहाँ देव आये हैं । यह ज्ञात करके जितशत्रु केवलीकी वन्दनाके लिए गया । वहाँ जाकर उसने केवलीकी पूजा करके सन्तुष्ट होते हुए उनसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की । तब हम लोगोंने उससे कहा कि तुमने हमें कष्टपूर्वक सिद्ध किया है, इसलिये हमारे कुछ फलको भोगकर पीछे तप करना । परन्तु जब उसने यह स्वीकार नहीं किया तब हम लोगोंने उससे कहा कि तो फिर हम लोगोंको किसी दूसरेके लिए देकर तपको ग्रहण करो । तब उसने केवलीसे पूछकर हमसे कहा कि आगामी कालमें यहाँ इस कांचनगुफाके भीतर नागकुमार आवेगा, तुम सब उसकी सेवा करना । यह कहकर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली । वह तपश्चरण करके मोक्षको प्राप्त हो चुका है । तबसे हम लोग यहाँ स्थित हैं । तुम हमारे स्वामी हो, अतः हमें स्वीकार करो । तब नागकुमारने उन्हें स्वीकार करके उनसे कहा कि जब मैं स्मरण करूँ तब तुम आना । यह कहते हुए उसने गुफासे निकलकर उस भीलसे पुनः पूछा कि क्या तुमने और भी कोई आश्चर्य देखा है ? इसपर भीलने उसे बेतालगुफा दिखलायी । उसके द्वारपर तलवारको घुमाता हुआ वेताल स्थित था । वह जो भी उस गुफाके भीतर जाता था उसे मार डालता था । नागकुमारने उसे देखकर उसके प्रहारको बचाते हुए पाँव पकड़े और नीचे पटक दिया । उसके नीचे नागकुमारको निधियोंके साथ एक आज्ञापत्र दिखा । उसने जब उस आज्ञापत्रको पढ़ा तो उसमें लिखा था कि जो इस वेतालको गिरावेगा वह इन निधियोंका स्वामी होगा । तब वह उन निधियोंकी रक्षाका भार विद्याओंको सौंपकर वहाँसे बाहर निकला । फिर उसने उस व्याधसे पुनः पूछा कि क्या और भी कोई आश्चर्य देखा है अथवा नहीं ? व्याधने उत्तर दिया 'नहीं' ।

तत्पश्चात् नागकुमार जिनदेवको प्रणाम करके वहाँसे निकला और गिरिनगरके समीप एक वट वृक्षके नीचे बैठ गया । उसी समय उस वृक्षके प्ररोह (जटायें) निकल आये । नागकुमार

१. ब केवली पृष्टोक्तमग्रेत्र । २. ब त्वमेवास्मास्स्वा° । ३. ब 'भिल्लेन' नास्ति । ४. फ °पश्यत् सिंहासनं चावोचितवान् श °पश्यच्छाशन वाचितवान् । ५. ब-प्रतिपाठोऽयम् । श किमपि । ६. ब वडोवृक्षा° ।

तद्द्रुमस्य प्ररोहा[1] निर्गतास्तत्रान्दोलयन्नस्थात्। तदा वटीवृक्षरक्षक आगत्य[2] तं ननाम विजिज्ञपच्च देवात्र[3] गिरिकूटनगरेशवनराजवनमालयोः सुता लक्ष्मीमती विशिष्टरूपा। तस्या वरः को भवेदित्येकदा राज्ञावधिबोधो मुनिः पृष्टोऽकथयद्यद्दर्शनेनामुष्यप्रदेशस्थवटीवृक्षस्य प्ररोहा निस्सरिष्यन्ति स स्यादिति कथिते तदैव भूपेनाहमत्रादेशपुरुषगवेषणार्थं व्यवस्थापित इति। तदनु स गत्वा स्वस्वामिने ध्वजहस्तः कथितवान्। तेनागत्य प्रणम्य विभूत्या पुरं प्रवेश्य तस्मै स्वसुता दत्ता। स यावत्तत्र तिष्ठति[4] तावज्जयविजयाख्यौ मुनी तत्पुरोद्याने तस्थतुः। कुमारस्तौ नत्वा पृष्टवान् वनराजकुले मे संदेहो वर्तते किंकुलोऽयमिति। तत्र जय आह— अत्रैव पुण्डवर्धननगरे राजापराजितोऽभूद्देव्यौ सत्यवती वसुंधरा च। तयोः पुत्रौ क्रमेण भीममहाभीमौ। भीमाय राज्यं दत्त्वा अपराजितः प्रव्रज्य मुक्तिमगमत्। इतो भीमो महाभीमेन पुरान्निर्घाटितः। तेनेदं पुरं कृतम्[5]। तत्र महाभीमस्य पुत्रो भीमाङ्कोऽभूत्तस्यापि सोमप्रभो महाभीमस्य नप्ता सांप्रतं तत्र राजा। अयं भीमस्य नप्तेति सोमवंशोद्भवोऽयमिति निरूपिते हृष्टः कुमारः तौ नत्वा गृहं ययौ।

उन प्ररोहोंके आश्रयसे झूलने लगा। उसी समय वट वृक्षके रक्षकने आकर नागकुमारको प्रणाम करते हुए इस प्रकार निवेदन किया— हे देव ! यहाँ गिरिकूट नगरके स्वामी वनराज और वनमालाके एक लक्ष्मीमती नामकी पुत्री है। वह अतिशय रूपवती है। एक बार राजाने उसके वरके सम्बन्धमें किसी अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा था। उत्तरमें मुनिने कहा था कि जिसके देखनेसे इस प्रदेशमें स्थित वट वृक्षके प्ररोह निकल आवेंगे वह तुम्हारी पुत्रीका वर होगा। मुनिके इस प्रकार कहनेपर राजाने उसी समयसे उस निर्दिष्ट पुरुषकी खोजके लिये मुझे यहाँ नियुक्त किया है। यह निवेदन करके उक्त पुरुष हाथमें ध्वजाको लेकर अपने स्वामीके पास गया और उससे नागकुमारके आनेका समाचार कह दिया। तब वनराजने आकर उसको प्रणाम किया। फिर उसने उसे विभूतिके साथ नगरमें ले जाकर अपनी पुत्री दे दी। नागकुमार वहाँ स्थित ही था कि उस समय उस नगरके उद्यानमें जय और विजय नामके दो मुनि आकर विराजमान हुए। तब नागकुमारने नमस्कार करके उनसे पूछा कि मुझे वनराजके कुलके विषयमें सन्देह है। अतएव मैं यह जानना चाहता हूँ कि उसका कुल कौन-सा है। उत्तरमें जय मुनि बोले— यहाँ ही पुण्डवर्धन नगरमें अपराजित राजा राज्य करता था। उसके सत्यवती और वसुन्धरा नामकी दो पत्नियाँ थी। इनसे क्रमशः उसके भीम और महाभीम नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। अपराजितने भीमको राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार तपश्चरण करके वह मुक्तिको प्राप्त हुआ। इधर भीमको महाभीमने नगरसे बाहर निकाल दिया और नगरको अपने स्वाधीन कर लिया। तब महाभीमने वहाँसे आकर इस नगरको बसाया है। वहाँ महाभीमके भीमांक नामका पुत्र हुआ और उसके भी सोमप्रभ नामका। वह महाभीमका नाती है और इस समय उस पुण्डवर्धन नगरमें राज्य कर रहा है। यह वनराज भीमका नाती है जो सोमवंशमें उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार जय मुनीन्द्रसे वनराजकी पूर्व परम्पराको सुनकर नागकुमारको बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् वह उन्हें नमस्कार करके घरको वापिस गया।

---

१. ब प्रारोहा। २. वृक्षरक्षको नामागत्य तं। ३. ब देवात्रैव। ४. श यावत्तत्र तिताव°। ५. ब धृतं।

अन्यदा शिलोत्कीर्णं तद्वंशशासनमपश्यत्। तदा व्यालायादेशमदत्त पुण्ड्रवर्धनपुरे वनराजस्य राज्यं यथा भवति तथा कुर्विति। स महाप्रसादं भणित्वा तत्राट तं ददर्श[1]। तदग्रे तस्थौ बभाण-हे राजन्, तवान्तिकं मां जायंधरिरवस्थापयद्वनराजस्य राज्यं समर्प्य तदानुकूल्येन वर्तस्वान्यथा त्वं जानासीति भणित्वा। तत उवाच सोमप्रभो जायंधरिर्मम किं शास्ता। व्यालोऽवोचत्तत्र किं ते संदेहः। राजाभाषत तर्हि[2] वनराजयुक्तो रणावनौ तिष्ठतु तस्य तत्र राज्यं दापयतु। व्यालोऽरण्[3]यास्तत्पर्यन्तं त्वं किम्। तदनु सोमप्रभोऽब्रवीदयं निःसार्यतामिति। ततस्तस्यार्धचन्द्रं दातुं ये समुत्थितास्ते तेन भूमावाहत्य मारिताः। सोऽसिना हन्तारं भूपं धृत्वा बबन्ध। स्वस्वामिनो विज्ञपनपत्रं[4] प्रस्थापयामास। स श्वशुरेणागत्य पुरं राजभवनं च विवेश। सोमप्रभं मुमोच बभाण च तस्य कुमारवृत्तौ तिष्ठेति। सोऽलालपीद् गृहस्थाश्रमेण तृप्तोऽहमतः क्षमितव्यं त्रिशुद्धया भणित्वा निर्जगाम, यमधरान्तिके बहुभिर्दीक्षितः सकलागमधरः संघाधारश्च भूत्वा विहरन् प्रतिष्ठपुरं गत्वोद्यानेऽस्थात्। तत्र राजानावच्छेद्याभेद्यनामानौ[5]। तयोश्चादेशो विद्यते। कथमित्युक्ते तत्पिता जयवर्मा माता जयावती।

अन्य समयमें जब नागकुमारने शिलापर खोदे गये वनराजके कुटुम्बके शासनको— उसकी वंशपरम्पराको देखा—तब उसने व्यालको बुलाकर यह आदेश दिया कि पुण्डवर्धन नगरमें जैसे भी सम्भव हो वनराजके शासनकी व्यवस्था करो। तब वह 'महाप्रसाद' कहकर पुण्डवर्धन नगरको चला गया। वहाँ जाकर और सोमप्रभको देखकर वह उसके आगे स्थित होता हुआ बोला कि हे राजन्! नागकुमारने मुझे आपके लिये यह आदेश देकर भेजा है कि तुम वनराजको राज्य देकर उसके अनुकूल प्रवृत्ति करो, अन्यथा फिर क्या होगा सो तुम ही समझो। यह सुनकर सोमप्रभ बोला कि क्या नागकुमार मेरा शासक है? इसके उत्तरमें व्यालने कहा कि हाँ, वह तुम्हारा शासक है। क्या तुम्हें इसमें सन्देह है? इस उत्तरको सुनकर सोमप्रभने कहा कि यदि ऐसा है तो तुम जाकर नागकुमारसे वनराजके साथ युद्धभूमिमें स्थित होकर उसे राज्य दिलानेके लिये कह दो। इसपर व्यालने कहा कि तुम नागकुमारके समीपमें क्या चीज़ हो। यह सुनकर सोमप्रभने व्यालको वहाँसे निकाल देनेकी आज्ञा दी। तदनुसार जो राजपुरुष व्यालकी गर्दन पकड़कर उसे बाहर निकाल देनेके लिए उठे थे उन्हें व्यालने पृथ्वीपर पटककर मार डाला। यह देखकर जब सोमप्रभ स्वयं उसे तलवारसे मारनेके लिए उद्यत हुआ तब व्यालने उसे पकड़कर बाँध लिया और अपने स्वामी नागकुमारके पास विज्ञप्तिपत्र भेज दिया। तब नागकुमार अपने ससुर वनराजके साथ पुण्डवर्धन नगरमें आकर राजभवनमें प्रविष्ट हुआ। फिर नागकुमारने सोमप्रभको बन्धनमुक्त करते हुए उसके लिए पुत्रके समान आज्ञाकारी होकर रहनेका आदेश दिया। इसपर सोमप्रभ बोला कि मैं गृहस्थाश्रमसे सन्तुष्ट हो चुका हूँ, अतएव अब आप मुझे मन, वचन एवं कायसे क्षमा करें। इस प्रकार निष्कपटभावसे कहकर वह यमधर मुनिराजके पास गया और बहुतोंके साथ दीक्षित हो गया। तत्पश्चात् वह समस्त श्रुतका ज्ञाता और संघका प्रमुख होकर विहार करता हुआ प्रतिष्ठपुरमें पहुँचा। वहाँ जाकर वह उद्यानमें ठहर गया। वहाँ अच्छेद्य और अभेद्य नामके दो राजा थे। उनके लिये यह आदेश था— इन दोनोंके पिताका नाम जयवर्मा और माताका नाम जयावती था। एकबार उनके पिताने अपने उद्यानमें स्थित पिहितास्रव मुनिसे

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श दर्शितवान्। २. ब राजाभाषत्तर्हि। ३. फ दापयतु व्यालोऽभण° ब दापयत् व्यालोरण°। ४. ब विज्ञापनं पत्रं। ५. श °भेद्यनामानौ।

पित्रा एकदा स्वोद्याने स्थितः पिहितास्रवो मुनिः पृष्टो मत्सुतौ कोटीभटौ स्वतन्त्रं राज्यं करिष्यतोऽन्यं सेवित्वा वा। मुनिरुवाच-यः सोमप्रभं पुण्डवर्धनान्निर्धाट्य वनराजाय राज्यं दास्यति स तयोः प्रभुरिति श्रुत्वा ताभ्यां राज्यं दत्त्वा निःक्रान्तः सुगतिमियाय। तौ सोमप्रभमुनिं वन्दितुमागतौ। तद्वृत्तं विबुध्य मन्त्रिणं राज्ये नियुज्य स्वस्वामिनं द्रष्टुं पुण्डवर्धनमीयतुः। तं दृष्ट्वा तद्भृत्यौ बभूवतुः।

अन्यदा लक्ष्मीमतीं तत्रैव निधाय स्वयं व्यालादिभिर्गत्वा जालान्तिकवनं प्राप्य न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तत्रत्यविषाम्रवृक्षफलानि तत्परिवारस्य तत्पुण्येनामृतरूपेण परिणतानि[1]। तदा पञ्चशतसहस्रभटास्तं नेमुर्विज्ञापयांचक्रुः देवास्माभिरेकदावधिज्ञानी मुनिः पृष्टो वयं कं[2] सेवामहे इति। तेनोक्तं जालान्तिकवने विषाम्रफलान्यमृतरसं यस्य दास्यन्ति तं सेविष्यन्त्वे[3] इत्युक्ते वयमत्र स्थिताः। मुनिनोक्तो यः, स त्वमेवेति त्वत्सेवका वयमिति। ततः कुमारेण सम्मानदानेन तोषिताः। ततोऽन्तरपुरं जगाम। तत्पतिसिंहरथेन[4] विभूत्या पुरं प्रवेशितः। तत्र सुखेन यावत्तिष्ठति तावत्सिंहरथेन विज्ञप्तः देव, सुराष्ट्रे गिरिनगरेशहरिवर्ममृगलोचनयो-

---

पूछा कि मेरे दोनों पुत्र, जो कि कोटिभट हैं, स्वतन्त्र रहकर राज्य करेंगे अथवा किसी दूसरेको सेवा करके ? मुनिराज बोले कि जो महापुरुष सोमप्रभको पुण्डवर्धन नगरसे निकालकर वनराजके लिए राज्य दिलावेगा वह इन दोनोंका स्वामी होगा। यह सुनकर राजा जयवर्माको वैराग्य उत्पन्न हुआ, अतः उसने उन दोनों पुत्रोंको राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली। वह तपश्चरण करके मुक्तिको प्राप्त हुआ। वे दोनों (अच्छेद्य व अभेद्य) उस समय सोमप्रभ मुनिकी वन्दनाके लिए उद्यानमें आये थे। जब उन्हें सोमप्रभका उपर्युक्त वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब वे दोनों मंत्रीको राज्यकार्यमें नियुक्त करके अपने स्वामीका दर्शन करनेके लिए पुण्डवर्धनपुरको गये और वहाँ नागकुमारको देखकर उसके सेवक हो गये।

दूसरे समय नागकुमार लक्ष्मीमतिको वहींपर छोड़कर व स्वयं व्यालादिकोंके साथ जाकर आलान्तिक नामक वनमें पहुँचा। वहाँ वह वटवृक्षकी छायामें बैठ गया। तब उसके पुण्यके प्रभावसे उक्त वनके विषमय आम्रवृक्षके फल उसके परिवारके लिए अमृत स्वरूपसे परिणत हो गये। उस समय पाँचसौ सहस्रभटोंने आकर नागकुमारको नमस्कार करते हुए उससे निवेदन किया कि हे देव ! एक समय हम सबने किसी अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा था कि हम लोग किसकी सेवा करेंगे ? उसका उत्तर देते हुए उन मुनिराजने कहा था कि जालान्तिक वनमें विषमय आम्रके फल जिस महापुरुषके लिए अमृतके समान रस देंगे उसकी तुम सब सेवा करोगे। मुनिराजके इन वचनोंको सुनकर हम सब तभीसे यहाँ स्थित हैं। उन मुनिराजने जिस विशिष्ट पुरुषका संकेत किया था वह तुम ही हो, इसलिए हम सब तुम्हारे सेवक हैं। तब नागकुमारने यथायोग्य सन्मान देकर उन सबको सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् वह अन्तरपुरको गया। वहाँका राजा सिंहरथ उसे विभूतिके साथ नगरके भीतर ले गया। वह वहाँ पहुँचकर सुखपूर्वक ठहर गया। इसी समय सिंहरथने उससे प्रार्थना की कि हे देव ! सुराष्ट्र देशके भीतर गिरिनगर नामका एक नगर है। वहाँ हरिवर्मा नामका राजा राज्य करता है। उसकी पत्नीका नाम मृगलोचना है। इनके एक गुणवती नामकी पुत्री

---

१. ब °रूपेण तानि। २. ब 'कं' नास्ति। ३. फ सेविष्यथ्व। ४. श सिंहरथकेन।

रपत्यं गुणवती। राज्ञेमां मद्भागिनेयनागकुमाराय दास्यामीति प्रतिपन्नम्। तां सिन्धुदेशेशोऽतिप्रचण्डः स्वयं कोटिभटः तथा जयविजयसूरसेनप्रवरसेनसुमतिनामभिः कोटिभटैर्युक्तः चण्डप्रद्योतननामा याचितवान्। नागकुमाराय दत्तेति हरिवर्मणोदिते स तत्पुरं वेष्टयित्वा तिष्ठति। हरिवर्मा मन्मित्रम्, तेन लेखः प्रस्थापितः इति तस्य सहायतां कर्तुं व्रजामि। यावदहमेमि तावत्तिष्ठात्रेति। कुमार ईषद्धसित्वा सिंहरथेन सह तत्र ययौ। तदागतिं विबुध्य चण्डप्रद्योतनेन जयविजयौ रोद्धुं प्रस्थापितौ। तयोरुपरि कुमारेण पञ्चशतसहस्रभटाः कथितास्तैस्तौ बद्ध्वानीय प्रभोः[2] समर्पितौ। तद्बन्धनमाकर्ण्य चुकोप चण्डप्रद्योतनो व्यूहत्रयं विधाय रणावनौ तस्थौ। कुमारोऽच्छेद्याभेद्यौ सूरसेनप्रवरसेनयोः, व्यालं सुमतेरुपरि कथयित्वा स्वयं चण्डप्रद्योतनस्याभिमुखीबभूव। महायुद्धे स्वस्य स्वस्याभिमुखीभूत्वा बद्धा नागकुमारादिभिः शत्रवः। हरिवर्मा विदितवृत्तान्तः, सोऽर्धपथमाययौ। तं चण्डप्रद्योतनादिभिः स्वं पुरं विवेशयामास[3]। सुमुहूर्ते गुणवत्या तस्य विवाहं चकार। कुमारश्चण्डप्रद्योतनादिकान् विमुच्य परिधानं दत्त्वा निःशल्यान् कृत्वा तद्देशं प्रस्थाप्य स्वयमूर्जयन्ते नेमिजिनं वन्दितुमियाय। वन्दित्वा गिरिनगरं प्रत्यागमे विज्ञापनपत्रं दत्त्वा कश्चिद्विज्ञप्तवान्—

है। राजाने उसे अपने भानजे नागकुमारके लिए देना स्वीकार किया था। परन्तु उसकी याचना सिंधुदेशके राजा अतिशय प्रतापी चण्डप्रद्योतनने की थी। वह स्वयं तो कोटिभट है ही; साथमें उसके सहायक जय, विजय, सूरसेन, प्रवरसेन और सुमति नामके अन्य कोटिभट भी हैं। इसपर जब हरिवर्माने उससे यह कहा कि वह पुत्री नागकुमारके लिए दी जा चुकी है तब वह वहाँ जाकर हरिवर्माके नगरको घेरकर स्थित हो गया है। हरिवर्मा मेरा मित्र है, इसीलिए उसने मुझे पत्र भेजा है। अतएव मैं उसकी सहायता करनेके लिए जा रहा हूँ। जब तक मैं यहाँ वापिस नहीं आ जाता हूँ तब तक आप यहाँ ही रहें। यह सुनकर नागकुमार कुछ हँसा और सिंहरथके साथ गिरिनगरके लिए चल दिया। सिंहरथके साथ नागकुमारके आनेके समाचारको जानकर चण्डप्रद्योतनने उन्हें रोकनेके लिए जय और विजयको भेजा। उन दोनोंके ऊपर आक्रमण करनेके लिए नागकुमारने पाँचसौ सहस्रभटोंको आज्ञा दी। तब वे उन दोनोंको बाँधकर ले आये और नागकुमारको समर्पित कर दिया। जय और विजयके बाँधे जानेके समाचारको जानकर चण्डप्रद्योतनको बहुत क्रोध आया। तब वह तीन व्यूहोंको रचकर स्वयं भी युद्धभूमिमें स्थित हुआ। उस समय नागकुमार अच्छेद्य और अभेद्यको सूरसेन और प्रवरसेनके साथ, तथा व्यालको सुमतिके साथ युद्ध करनेकी आज्ञा देकर स्वयं चण्डप्रद्योतनके सामने जा डटा। इस महायुद्धमें नागकुमार आदिने अपने अपने शत्रुओंका सामना करके उन्हें बाँध लिया। जब यह सब समाचार हरिवर्माको ज्ञात हुआ तब वह नागकुमारका स्वागत करनेके लिये आधे मार्ग तक आया और उसे चण्डप्रद्योतन आदिकोंके साथ नगरके भीतर ले गया। फिर उसने उसका विवाह शुभ मुहूर्तमें गुणवतीके साथ कर दिया। तत्पश्चात् नागकुमारने चण्डप्रद्योतन आदिको छोड़कर और उन्हें वस्त्रादि देकर निश्चिन्त करते हुए उनके देशको वापिस भेज दिया। वह स्वयं ऊर्जयन्त पर्वतके ऊपर नेमि जिनेन्द्रकी बन्दना करनेके लिए गया। जब वह उनकी वन्दना करके गिरिनगर वापिस आ रहा था तब उसे किसीने विज्ञप्तिपत्र देकर इस प्रकार निवेदन किया—

१. ब प्रकथिता°। २. फ श प्रभो। ३. ब वेशयामास।

देव, वत्सदेशे कौशाम्ब्यां राजा शुभचन्द्रो देवी सुखावती पुत्र्यः स्वयंप्रभासुप्रभा-कनकप्रभा-कनकमाला-नन्दा[1]-पद्मश्री-नागदत्ताश्चेति सप्त। एवं शुभचन्द्रो सुखेन तिष्ठति। विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां रत्नसंचयपुरेशः सुकण्ठः। स च तद्वैरिणा मेघवाहनेन तस्मान्निर्धाटितः कौशाम्ब्या बहिर्दुर्लङ्घ्यापुरं कृत्वा तस्थौ। तेन ताः कन्या याचिताः, शुभचन्द्रेण न दत्ताः। ततस्तमवधीत्। कन्याभिरुक्तमस्मत्पिता त्वया हत इति तव शिरश्छेदकोऽस्माकं पतिरिति। तेन कारागारे निहितास्तत्र नागदत्ता कथमपि पलाय्य कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरेशस्व-पितृव्याभिचन्द्रस्य स्वरूपमकथयत्तेनाहं तवान्तिकं प्रेषित इति। श्रुत्वा कुमारो मामं[2] गुण-वत्याः पुरं प्रेष्य विद्याः समाहूय गगनेन कौशाम्बीं गतः, तदन्तिकं दूतमयापत्। स गत्वोक्त-वान् तस्य हे खेचर, नागकुमारादेशं शृणु—कन्या विमुच्य शीघ्रमस्मदन्तिकं प्रस्थापनीया, नोचेस्त्वं जानासि इत्युक्तम्। दूतं क्रुद्धः स निःसारयामास। ततो युद्धाभिलाषेण व्योम्नि तस्थौ। नागकुमारोऽपि महायुद्धे[3] चन्द्रहासेन तं जघान। तत्पुत्रो वज्रकण्ठः शरणं प्रविवेश। तं रत्नसंचयपुरं नीत्वा मेघवाहनं हत्वा तत्र राजानं चकार। वज्रकण्ठस्यानुजा रुक्मिणी,

---

हे देव ! वत्स देशके भीतर कौशाम्बी नामकी एक नगरी है। वहाँ शुभचन्द्र राजा राज्य करता है। रानीका नाम सुखावती है। उनके स्वयंप्रभा, सुप्रभा, कनकप्रभा, कनकमाला, नन्दा, पद्मश्री और नागदत्ता ये सात पुत्रियाँ हैं। इस प्रकारसे वह शुभचन्द्र राजा सुखसे स्थित था। परन्तु उधर विजयार्धकी दक्षिण श्रेणिमें जो रत्नसंचयपुर है उसमें सुकण्ठ नामका राजा राज्य करता था। उसे उसके शत्रु मेघवाहनने उस नगरसे निकाल दिया। तब वह कौशाम्बी-पुरीके बाहिर एक अलंध्यपुरका निर्माण करके वहाँ रहने लगा है। उसने शुभचन्द्रसे उन कन्याओं-की याचना की। परन्तु उसने उसके लिए देना स्वीकार नहीं किया। इससे सुकण्ठने उसको मार डाला है। इसपर उन कन्याओंने उससे कह दिया है कि तुमने हमारे पिताको मार डाला है, अतएव जो पुरुष तुम्हारे शिरका छेदन करेगा वही हमारा पति होगा। इससे क्रोधित होकर उसने उन्हें बन्दीगृहके भीतर रख दिया। उनमेंसे नागदत्ता पुत्री किसी प्रकारसे भागकर हस्तिना-पुरके राजा अभिचन्द्रके पास पहुँची। वह कुरुजांगल देशके अन्तर्गत हस्तिनापुरका राजा व उस नागदत्ताका चाचा है। उससे जब नागदत्ताने उक्त घटनाको कहा तब अभिचन्द्रने मुझे आपके पास भेजा है। यह सुनकर नागकुमारने मामाको गुणवतीके [गुणवतीको मामाके] नगरमें भेज-कर समस्त विद्याओंको बुलाया और तब वह आकाशमार्गसे कौशाम्बीपुर जा पहुँचा। वहाँ जाकर नागकुमारने सुकण्ठके पास दूतको भेजा। उसने वहाँ जाकर उससे कहा कि हे विद्याधर ! नागकुमारने तुम्हें यह आदेश दिया है कि तुम शीघ्र ही उन कन्याओंको छोड़कर मेरे पास भेज दो, अन्यथा तुम ही जानो। दूतके इन वचनोंसे क्रोधित होकर सुकण्ठने उसे वहाँसे निकाल दिया। तत्पश्चात् वह युद्धकी इच्छासे आकाशमें स्थित हो गया। तब नागकुमारने भी उसी प्रकार आकाशमें स्थित होकर महायुद्धमें उसे चन्द्रहाससे मार डाला। तब उसका पुत्र वज्रकण्ठ नागकुमारकी शरणमें आ गया। इससे नागकुमार उसे रत्नसंचयपुरमें ले गया और मेघवाहनको मारकर वहाँका राजा बना दिया। उस समय नागकुमार वज्रकण्ठकी बहिन रुक्मिणी, अभिचन्द्र

---

१. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श स्वयंप्रभाकनकप्रभाकनकमालाधनश्रीनन्दा। २. ब माम। ३. ब- प्रति-पाठोऽयम्। श महायुध।

अभिचन्द्रस्य तनुजा चन्द्राभा, शुभचन्द्रस्य सप्त कुमार्यः एताः परिणीय हस्तिनागपुरे सुखेन तस्थौ।

इतो महाव्यालः पाटलीपुत्रे तिष्ठन् पाण्डुदेशे दक्षिणमथुरायां राजा मेघवाहनः, प्रिया जयलक्ष्मीः, पुत्री श्रीमती नृत्ये मां मृदङ्गवाद्येन यो रञ्जयति स भर्तेति कृतप्रतिज्ञा। तद्धात्रिकापुत्री कामलता मारमपि नेच्छतीति श्रुतवान्। ततस्तत्र जगाम पुरं प्रविश्यापणे उपविष्टः। तदा तदीशमेघवाहनस्य भागिनेयः कामाङ्कनामा कोटीभटः। स मामपार्श्वे कामलतां ययाचे। तेन दत्ता सा नेच्छति। तेन हठान्नीयमाना महाव्यालं ददर्शासक्ता बभूव। सा बभाण च मां रक्ष रक्षेति। ततो महाव्यालोऽब्रूत कन्यां मुञ्च मुञ्चेति। स बभाण--त्वं मोचयिष्यसि। मोचयामीत्युक्त्वा कृपाणपाणिः संमुखं तस्थौ, कामाङ्कोऽपि। महाकदने कामाङ्कं जघान। तदा मेघवाहनो भीत्या संमुखमाययौ। स्वभवनं प्रवेश्य कामलतामदत्त। तया समं तत्र सुखेन तस्थौ।

अथावन्तीषूज्जयिन्यां राजा जयसेनो देवी जयश्रीः। पुत्री मेनकी कमपि नेच्छतीति श्रुत्वा तत्र ययौ। सा तं विलोक्य मे भ्रातेति बभाण। ततः स संतुष्टो हस्तिनागपुरं व्याल-

की पुत्री चन्द्राभा और शुभचन्द्रकी उन सात कन्याओंके साथ विवाह करके सुखपूर्वक हस्तिनागपुरमें स्थित हुआ।

इधर महाबल जब पाटलीपुत्रमें स्थित था तब पाण्डु देशके भीतर दक्षिण मथुरामें मेघवाहन नामका राजा राज्य कर रहा था। उसकी पत्नीका नाम जयलक्ष्मी था। इनके एक श्रीमती नामकी पुत्री थी। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मृदंग बजाकर मुझे नृत्यमें अनुरंजित करेगा वह मेरा पति होगा। श्रीमतीकी धायके भी एक कामलता नामकी पुत्री थी। वह कामदेवके समान भी सुन्दर पुरुषको नहीं चाहती थी। यह जब महाव्यालने सुना तब वह पाटलीपुत्रसे दक्षिण मथुराको चल दिया। वहाँ नगरके भीतर पहुँचकर वह बाजारमें ठहर गया। उधर उस दक्षिण मथुराके राजा मेघवाहनके कामांक नामका एक कोटिभट भानजा था। उसने मामाके पास जाकर उससे कामलताको माँगा। तदनुसार उसने उसे दे भी दिया। परन्तु कामलताने स्वयं उसे स्वीकार नहीं किया। तब कामांक उसे बलपूर्वक ले जा रहा था। उस समय कामलता महाव्यालको देखकर उसके ऊपर आसक्त हो गई। तब उसने महाव्यालसे अपनी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। इसपर महाव्यालने कामांकसे उस कन्याको छोड़ देनेके लिए कहा। परन्तु उसने उसे नहीं छोड़ा। वह बोला कि क्या तुम मुझसे इस कन्याको छुड़ाओगे? इसके उत्तरमें वह 'हाँ छुड़ाऊँगा' कह कर तलवारको ग्रहण करता हुआ कामांकके सामने स्थित हो गया। उधर कामांक भी उसी प्रकारसे युद्धके लिए उद्यत हो गया। तब दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। अन्तमें महाव्यालने कामांकको मार डाला। तब मेघवाहन भयभीत होकर महाव्यालके समक्ष आया और उसे अपने भवनके भीतर ले गया। फिर उसने उसे कामलता दे दी। इस प्रकार महाव्याल कामलताके साथ वहाँ सुखसे स्थित हुआ।

अवन्ति देशके अन्तर्गत उज्जयिनी नगरीमें जयसेन नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम जयश्री था। उनके एक मेनकी नामकी पुत्री थी जो किसी भी पुरुषको नहीं चाहती थी। यह सुनकर महाव्याल उज्जयिनी गया। उसे देखकर मेनकीने अपने भाईके रूपमें सम्बोधित किया। इससे सन्तुष्ट होकर महाव्याल हस्तिनापुरमें व्यालके समीप गया, वहाँ उसने

स्यान्तं जगाम। नागकुमाररूपं पटे विलिख्यानीय[1] तस्या दर्शितवान्। सा आसक्ता जाता। ततः पुनर्गत्वा व्यालं पुरस्कृत्य प्रभुं दृष्टवान्। कथित आत्मवृत्तो भृत्यो बभूव। ततः प्रतापंधरः उज्जयिनीमियाय, मेनकीं परिणीतवान्, तत्र सुखेनास्थात्। एकदा महाव्यालः श्रीमतीवार्तां विज्ञप्तवान्[2]। कुमारस्तत्र जगाम। तां तथा रञ्जयित्वा ववार।

तत्रैव सुखेन यावदास्ते तावत् कश्चिद्वणिग्राजास्थानमाययौ। तमपृच्छत्कुमारः— किं क्वापि त्वया कौतुकं दृष्टं किंचिदस्ति न वा। स आह—समुद्राभ्यन्तरे तोयावलीद्वीपे सुवर्ण-चैत्यालयाग्रे मध्याह्ने प्रतिदिनं लकुटधरपुरुषरक्षिताः पञ्चशतकन्याः आक्रोशन्ति, कारणं न बुध्यते। ततो विद्याप्रभावेन चतुर्भिः कोटिभटैः तत्र ययौ। जिनमभ्यर्च्य स्तुत्वोपविष्टः। तत-स्तासामाक्रोशमवधार्य ता आहूय पृष्टवान् 'किमित्याक्रोशते' इति[3]। तत्र धरणिसुन्दरी ब्रूते स्मास्मिन् द्वीपे धरणितिलकपुरेऽस्ति [त्रि]रक्षो[4] नामविद्याधरस्तत्पुत्र्यो वयं पञ्चशतानि। अस्मत्पितुर्भागिनेयो वायुवेगो रूपदरिद्रोऽस्मानस्मत्पितुः[5] पार्श्वे याचित्वाप्राप्य ततो राक्षसीं विद्यामसाधीत्[6]। तत्प्रभावेनास्मत्पितरं युद्धेऽवधीदस्मद्भ्रातरौ रक्षमहारक्षौ भूमिगृहे

पटपर नागकुमारके रूपको लिखा और फिर उसे लाकर मेनकीको दिखलाया। उसे देखकर मेनकी नागकुमारके विषयमें आसक्त हो गई। तत्पश्चात् महाव्याल फिरसे हस्तिनापुर गया। वहाँ वह व्यालके साथ नागकुमारसे मिला और अपना वृतान्त सुनाकर उसका सेवक हो गया। तब प्रतापं-धरने उज्जयिनी जाकर मेनकीके साथ विवाह कर लिया। वह वहाँ सुखसे स्थित हुआ। एक समय व्यालने नागकुमारसे श्रीमतीकी प्रतिज्ञाका वृत्तान्त कहा। तब नागकुमारने वहाँ जाकर श्रीमतीको उसकी प्रतिज्ञाके अनुसार मृदंगवादनसे अनुरंजित किया और उसके साथ विवाह कर लिया।

तत्पश्चात् वह वहाँ सुखपूर्वक कालयापन कर ही रहा था कि इतनेमें एक वैश्योंका स्वामी राजाके सभाभवनमें उपस्थित हुआ। उससे नागकुमारने पूछा कि क्या तुमने कहींपर कोई कौतुक देखा है या नहीं? उसने उत्तरमें कहा कि समुद्रके भीतर तोयावली द्वीपमें एक सुवर्णमय चैत्या-लय है। उसके आगे प्रतिदिन मध्याह्नके समयमें दण्डधारी पुरुषोंसे रक्षित पाँच सौ कन्यायें करुण आक्रन्दन करती हैं। वे इस प्रकार आक्रन्दन क्यों करती हैं, यह मैं नहीं जानता हूँ। यह सुनकर नागकुमार विद्याके प्रभावसे चार कोटिभटोंके साथ वहाँ गया। वह वहाँ पहुँच कर जिनेन्द्रकी पूजा और स्तुति करके बैठा ही था कि इतनेमें उसे उन कन्याओंका आक्रन्दन सुनाई दिया। तब उसने उनको बुलाकर पूछा कि तुम इस प्रकारसे आक्रन्दन क्यों करती हो? इसपर उनमेंसे धरणि-सुन्दरी बोली— इस द्वीपके भीतर धरणितिलक नामका नगर है। वहाँ त्रिरक्ष नामका विद्याधर रहता है। हम सब उसकी पाँच सौ पुत्रियाँ हैं। हमारे पिताके वायुवेग नामका भानजा है जो अतिशय कुरूप है। उसने पिताके पास जाकर हम सबको माँगा था। परन्तु पिताने उसके लिए हमें देना स्वीकार नहीं किया। तब उसने राक्षसी विद्याको सिद्ध करके उसके प्रभावसे युद्धमें हमारे पिताको मार डाला तथा रक्ष और महारक्ष नामके हमारे दो भाइयोंको तलघरमें रख दिया है। वह हमारे

१. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श पटे लेख्यानीय। २. ब विज्ञाप्तवान्। ३. प °क्रोशतमिति। ४. ब- प्रति-पाठोऽयम्। प °पुरे तरक्षो श °पुरे रक्षो। ५. फ श °दरिद्रो नोऽस्मा°। ६. प °नस्मात्पितुः। ७. ब विद्या-मरात्सीत्।

न्यक्षिपत्। अस्मत्परिणयनकामोऽस्माभिर्भणितो यस्त्वां हनिष्यति सोऽस्माकं पतिरिति। स षण्मासाभ्यन्तरे मम प्रतिमल्लमानयतेति भणित्वा बन्दिगृहे निक्षिप्तवान्। अत्र देवाः खेचराश्च जिनवन्दनायागच्छन्तीत्यत्राक्रोशाम इति। श्रुत्वा तद्रक्षकान् निर्धाट्यात्मरक्षकान् ददौ युद्धाय नभसि तस्थौ च। वायुवेगोऽपि महायुद्धं चक्रे। बृहद्वेलायां कुमारश्चन्द्रहासेन तं हतवान्। रक्ष-महारक्षयो राज्यं दत्त्वा ताः[1] परिणीतवान्। ततः पञ्चशतसहस्रभटाः तं प्रणम्य सेवका बभूवुः। किं कारणं मम सेवका जाता इत्युक्ते तैरुच्यतेऽस्माभिरेकदावधिज्ञानी पृष्टोऽस्माकं कः स्वामीति। तेनोक्तं वायुवेगं यो हनिष्यति स युष्माकं पतिरिति वयमत्र स्थिता। त्वया हत इति त्वद्भृत्या जाता इति।

ततः काञ्चीपुरमियाय। तत्पतिवल्लभनरेन्द्रेण कन्यादानादिना सन्मानितः। ततः कलिङ्गस्थं दन्तपुरमितस्तत्र राजा चन्द्रगुप्तो भार्या चन्द्रमती तनुजा मदनमञ्जूषा। चन्द्रगुप्तो विभूत्या कृत्वा[2] पुरं प्रवेश्य तां दत्तवान्। तत उण्ड्रदेशस्थ[3]त्रिभुवनतिलकपुरमाट[4]। तत्पतिर्विजयंधरो रामा विजयावती दुहिता लक्ष्मीमती। तेन विभूत्या पुरं प्रवेश्य सुता दत्ता। सा कुमारस्यातिवल्लभा जाता। तत्र तया सुखेनातिष्ठत।

साथ विवाह करना चाहता है। परन्तु हम लोगोंने कह दिया है कि जो तुझे मार डालेगा वह हमारा पति होगा। इसपर उसने 'उस मेरे प्रतिशत्रुको तुम छह मासके भीतर ले आओ' यह कहकर हमें बन्दीगृहमें रख दिया है। यहाँ चूँकि देव और विद्याधर जिनवन्दनाके लिए आया करते हैं, इसीलिए हम लोग यहाँ आक्रन्दन करती हैं। इस घटनाको सुनकर नागकुमारने वायुवेगके रक्षकोंको हटाकर अपने रक्षकोंको वहाँ नियुक्त कर दिया और स्वयं युद्धके लिए आकाशमें स्थित हो गया। तब वायुवेगने भी आकाशमें स्थित होकर नागकुमारके साथ भयानक युद्ध किया। इस प्रकार बहुत समयके बीतनेपर नागकुमारने उसे चन्द्रहास खड्गसे मार डाला। फिर उसने रक्ष और महारक्षको राज्य देकर उन पाँचसौ कन्याओंके साथ विवाह कर लिया। तत्पश्चात् पाँचसौ सहस्रभट नागकुमारको प्रणाम करके उसके सेवक हो गये। जब नागकुमारने उनसे इस प्रकार सेवक हो जानेका कारण पूछा तो उनने बतलाया कि एक समय हमने अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा था कि हमारा स्वामी कौन होगा। उसके उत्तरमें मुनिने कहा था जो वायुवेगको मार डालेगा वह तुम सबका स्वामी होगा। तबसे हम लोग यहाँपर स्थित हैं। आपने चूँकि उस वायुवेगको मार डाला है अतएव हम सब आपके सेवक हो गये हैं।

तत्पश्चात् नागकुमार काँचीपुरको गया। उस पुरके राजा वल्लभ नरेन्द्रने उसका पुत्री आदिको देकर सन्मान किया। तत्पश्चात् वह कलिंग देशमें स्थित दन्तपुरको गया। वहाँके राजाका नाम चन्द्रगुप्त और उसकी पत्नीका नाम चन्द्रमती था। इनके मदनमंजूषा नामकी एक पुत्री थी। चन्द्रगुप्तने नागकुमारको विभूतिके साथ नगरमें ले जाकर उसके लिए वह पुत्री दे दी। इसके पश्चात् वह उण्ड्र देशके भीतर स्थित त्रिभुवन तिलक नामक नगरको गया। वहाँपर विजयंधर नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम विजयावती था। इनके लक्ष्मीमती नामकी एक पुत्री थी। राजाने नागकुमारको विभूतिके साथ नगरमें लेजाकर उसके लिए उस पुत्रीको दे दिया। वह नागकुमारके लिए अतिशय प्रीतिका कारण हुई। वह वहाँ उसके साथ कुछ समय तक सुखपूर्वक स्थित रहा।

१. श ततः। २. ब 'कृत्वा' नास्ति। ३. प श उड्देश° क उड्डेश°। ४. ब °पुरसमावट।

एकदा तत्पुरोद्यानं पिहितास्रवमुनिराययौ। नागकुमारो मामेन समं वन्दितुं जगाम। वन्दित्वा धर्मश्रुतेरनन्तरं पृष्टवान् लक्ष्मीमत्या उपरि स्वस्य मोहहेतुम्। मुनिराहात्रैव द्वीपे अवन्तिविषये उज्जयिन्यां राजा कनकप्रभो राज्ञी[1] कनकप्रभा पुत्रः सुवर्णनाभः[2] दानादिकृत्वा समाधिना महाशुक्रे महर्द्धिको देवोऽभूत्। तस्मादागत्यैरावते आर्यखण्डे वीतशोकपुरे राजा महेन्द्रविक्रमः। तत्र वैश्यो धनदत्तः प्रिया धनश्री पुत्रो नागदत्तस्तत्रापरो वैश्यो वसुदत्तो रामा वसुमती[3] सुता नागवसुः[4] सा नागदत्तेन परिणीता। एकदा तत्पुरोद्याने मुनिर्गुप्ताचार्यः[5] समागतः। तं वन्दितुं राजादयो जग्मुः। वन्दित्वा धर्ममाकर्ण्य नागदत्तः पञ्चम्युपवासं जग्राह। तेन रात्रौ पीडितः पित्रादिभिरनेकप्रकारैरुपवासस्याजितो न तत्याज। ततो रात्रि-पश्चिमयामे शरीरं विहाय समाधिना सौधर्मे सूर्यप्रभविमानेऽमरोऽभूत्, भवप्रत्ययबोधेन सर्वं विबुध्यागत्य च बन्धुजनादिकं संबुबुधे[6]। ततः स्वर्लोकमियाय। नागदत्तवधूस्तपो[7] बभार। तस्यैव देवस्य देवी भविष्यामीति सा निदानात्तद्देवस्य देवी जज्ञे। ततः आगत्य स देवस्त्वं जातोऽसि, सा देवी लक्ष्मीमती जातेति। श्रुत्वा पञ्चम्युपवासविधिं पप्रच्छ।

एक समय उस नगरके उद्यानमें पिहितास्रव मुनि आये। नागकुमार मामाके साथ उनकी वन्दनाके लिए गया। वन्दनाके पश्चात् उसने उनसे धर्मश्रवण किया। फिर उसने उनसे पूछा कि लक्ष्मीमतीके ऊपर मेरे अतिशय प्रेमका कारण क्या है ? उत्तरमें वे इस प्रकार बोले— इसी द्वीपके भीतर अवन्ति देशमें उज्जयिनी पुरी है। वहाँ कनकप्रभ नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम कनकप्रभा था। उनके एक सुवर्णनाभ नामका पुत्र था। वह दानादि धर्म-कार्योंको करके समाधिपूर्वक शरीरको छोड़कर महाशुक्र स्वर्गमें महर्धिक देव हुआ। इसी जम्बू द्वीप सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्रके आर्यखण्डमें एक वीतशोक नामका नगर है। वहाँ महेन्द्रविक्रम राजा राज्य करता था। इसी नगरमें एक धनदत्त नामका वैश्य रहता था। उसकी पत्नीका नाम धनश्री था। उपर्युक्त देव महाशुक्र स्वर्गसे च्युत होकर इन दोनोंके नागदत्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी पुरमें एक वसुदत्त नामका दूसरा भी वैश्य रहता था। उसकी पत्नीका नाम वसुमती था। इनके एक नागवसु नामकी पुत्री थी। उसके साथ नागदत्तने विवाह किया था। एक बार उस नगरके उद्यानमें गुप्ताचार्य नामके मुनि आये। राजा आदि उनकी वन्दनाके लिए गये। उनकी वन्दनाके पश्चात् धर्मश्रवण करके नागदत्तने उनसे पञ्चमीके उपवासको ग्रहण किया। इससे उसको रात्रिमें कष्ट हुआ। तब पिता आदि कुटुम्बी जनोंने अनेक प्रकारसे उसके उपवासको छुड़ानेका प्रयत्न किया। किन्तु उसने उसे नहीं छोड़ा। तत्पश्चात् रात्रिके पिछले पहरमें समाधि-पूर्वक शरीरको छोड़कर वह सौधर्म स्वर्गके अन्तर्गत सूर्यप्रभ विमानमें देव उत्पन्न हुआ। फिर वह भवप्रत्यय अवधिज्ञानसे उस सब वृतान्तको जानकर वहाँ आया। तब उसने शोकसन्तप्त उन बन्धुजनोंको संबोधित किया। तत्पश्चात् वह स्वर्गको वापिस चला गया। नागदत्तकी पत्नी नागवसूने भी दीक्षा लेकर उसीकी पत्नी होनेका निदान किया था। तदनुसार वह उस देवकी देवी हुई। वहाँसे च्युत होकर वह देव तुम और वह देवी लक्ष्मीमती हुई है। इस प्रकार अपने पूर्व भवके वृत्तान्तको सुनकर नागकुमारने उन मुनिराजसे पञ्चमीके उपवासकी विधिको पूछा। उसकी विधि मुनिराजने इस प्रकार बतलायी—

१. ब भार्या। २. श सुवर्णलाभः। ३. फ रामा नागमती श रामामती। ४. फ नागवसु श नागवसुः। ५. ब ेद्यानं मुनिगुप्ताचार्यः। ६. प श स बुबुधे। ७. ब नागवसूस्तपो।

साधुरव्रवीकथत् । तद्यथा— फाल्गुनस्य वाषाढस्य वा कार्तिकस्य वा शुक्लस्य चतुर्थ्यां शुचिर्भूत्वा साधुमार्गेण भुक्त्वोपवासो[1] ग्राह्यस्तद्दिवसे सर्वाप्रशस्तव्यापाराणि विहाय धर्मकथाविनोदेन दिनं गमयित्वा सरागशय्यां विवर्ज्य[2] पारणाह्नि[3] यथाशक्ति पात्राय दानं दद्यात्, पश्चात्स्वयं बन्धुभिः[4] पारणां[5] कुर्यात् । एवं प्रतिमासे पञ्चवर्षाणि पञ्चमासाधिकानि वा पञ्चैव मासान् कृत्वोद्यापने पञ्च चैत्यालयान् पञ्चप्रतिमा वा कारयित्वा कलशचामर-ध्वजदीपिकाघण्टाजयघण्टादि[6]पञ्चपञ्चस्वरूपसहिताः प्रतिष्ठाप्य वसतये दद्यात्, पञ्चा-चार्येभ्यः पुस्तकादिकमार्यिकाश्रावकश्राविकाभ्यो वस्त्रादिकं दद्यात् तथा यथाशक्ति दाना-दिकेन प्रभावनां कुर्यादेतत्फलेन स्वर्गादिसुखनाथो भवेत् इति । निशम्य लक्ष्मीमत्यादिसहितः पञ्चम्युपवासविधिं गृहीत्वा तत्र कुर्वन् सुखेन तस्थौ ।

तावज्जयंधरो नयंधरं तमानेतुं प्रस्थापयामास । स गत्वा मातापितृभाषितं[7] सर्वं तस्य कथयति स्म । तदा नागकुमारः प्राग्विवाहितकान्तादियुक्तो[8] गगनमार्गेण स्वपुरमा-ययौ । पिता विभूत्यार्धपथं निर्जगाम । तं नत्वा यावत्प्रतापंधरः पुरं प्रविशति तावद्वि-शालनेत्रा पुत्रेण सह दीक्षिता[9] । नागकुमारोऽतिवल्लभो भूत्वा सुखं तस्थौ । जयंधरस्त्वेक-

फाल्गुन, अषाढ़ और कार्तिक माससे शुक्ल पक्षकी चतुर्थीको स्नानादिसे शुद्ध होकर समीचीन मार्गसे भोजन (एकाशन) करे और उसी समय पञ्चमीके उपवासको भी ग्रहण कर ले। फिर उपवासके दिन समस्त अप्रशस्त व्यापारोंको (कार्योंको) छोड़कर दिनको धर्मचर्चामें बितावे। साथ ही रागवर्धक शय्या (गादी व पलंग आदि) का परित्याग करके पारणाके दिन शक्तिके अनुसार पात्रके लिए दान देवे। तत्पश्चात् बन्धुजनोंके साथ स्वयं पारणाको करे। इस प्रकार पाँच मासोंसे अधिक पाँच वर्षों तक अथवा पाँच महीनों तक ही प्रतिमासमें उपवासको करके उद्यापनके समय पाँच चैत्यालयों अथवा पाँच प्रतिमाओंको कराकर कलश, चामर, ध्वजा, दीपिका, घण्टा और जयघण्टा आदिको पाँच पाँच-पाँच संख्यामें प्रतिष्ठित कराकर जिनालयके लिए देना चाहिए। पाँच आचार्योंके लिए पुस्तक आदिको तथा आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंके लिए वस्त्रादिको देना चाहिए। इसके अतिरिक्त अपनी शक्तिके अनुसार दानादिके द्वारा प्रभावना करना भी योग्य है। उस व्रतके फलसे प्राणी स्वर्गादिसुखका भोक्ता होता है। इस प्रकार पञ्चमी-के उपवासकी विधिको सुनकर नागकुमारने लक्ष्मीमती आदिके साथ पञ्चमी-उपवासकी विधिको ग्रहण कर लिया। पश्चात् वह उस व्रतका परिपालन करता हुआ सुखपूर्वक स्थित हुआ।

इतनेमें जयंधर राजाने नागकुमारको लानेके लिए उसके पास अपने मन्त्री नयंधरको भेजा। उसने जाकर माता-पिताने जो कुछ सन्देश दिया था उस सबको नागकुमारसे कह दिया। तब नागकुमार पूर्वपरिणीता पत्नियोंको साथ लेकर आकाशमार्गसे अपने नगरमें आ गया। उसको लेनेके लिए पिता विभूतिके साथ आधे मार्ग तक आया। प्रतापंधर पिताको प्रणाम करके जब तक पुरमें प्रवेश करता है तब तक विशालनेत्रा पुत्र (श्रीधर) के साथ दीक्षा धारण कर लेती है। नागकुमार वहाँ प्रजाका अतिशय प्यारा होकर सुखपूर्वक रहने लगा। तत्पश्चात् एक

---

१. फ ब भुक्तोपवासो। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श विसर्ज्य। ३. फ श पारणानि ब पारणाहे। ४. श वधूभिः। ५. ज फ श पारणाः। ६. फ श जयाघण्टादि। ७. फ गत्वा पितृभाषितम्। ८. फ °विवाहिताकान्तादियुक्तो श °विवाहकान्तावियुक्तो। ९. ज पुत्रेणादीक्षितः प श पुत्रेणादीक्षित ब पुत्रेणादीक्षिता।

वात्ममुखं दर्पणे पश्यन् पलितमालोक्य प्रतापंधराय राज्यं वितीर्य बहुभिः पिहितास्रवमुनिनिकटे दीक्षितः, पृथ्वी श्रीमत्यार्यिकाभ्यासे[1]। जयंधरः मुनिर्मुक्तिं ययौ। पृथ्वी अच्युते[2] देवोऽभूत्। इतो जायंधरिर्व्यालायार्धराज्यं दत्त्वा[3] अच्छेद्योभेद्ययोर्देशान् [4]कोशलाभीरमालवान् महाव्यालाय गौडवैदर्भदेशौ सहस्रभटेभ्यो[भ्यः] पूर्वदेशमन्येभ्योऽपि यथोचितदेशान् ददौ। नागकुमारो महामण्डलेश्वरविभूतियुक्तोऽभूत्। अष्टसहस्रान्तःपुरमध्ये लक्ष्मीमती धरणिसुन्दरी त्रिभुवनरती गुणवती चेति चतस्रो महादेव्यः। लक्ष्मीमत्यां[5] देवकुमाराख्यो नन्दनोऽजनि। सोऽपि पितृवन्महाप्रतापी। अन्येऽपि कुमारा बहवो अजनिषत। एवं नागकुमारोऽष्टशतवर्षाणि राज्यं कुर्वन् सुखेन तस्थौ। एकदा मेघविलयं दृष्ट्वा वैराग्यमुपजगाम। देवकुमाराय राज्यं दत्त्वा व्यालादिकोटीभटैः सहस्रभटैर्मुकुटबद्धमण्डलेश्वरादिभिरमलमतिकेवलिपार्श्वे दीक्षां बभार। लक्ष्मीमत्यादिस्त्रीसमूहः पद्मश्रीक्षान्तिकाभ्यासे दीक्षितः। प्रतापंधरो मुनिश्चतुःषष्टिवर्षाणि तपश्चकार। कैलाशे स केवली जज्ञे, तथा व्यालमहाव्यालाच्छेद्याभेद्याश्च,[6] षट्षष्टिवर्षाणि विहृत्य तत्रैव मुक्तिमापुः [प]। व्यालादयोऽपि। एवं नागकुमारस्य नेमिजिनान्तरे समुत्पन्नस्य कुमारकालः सप्ततिवर्ष [वर्षाणि ७० राज्यकालोऽष्टशतानि वर्षाणि ८०० तपःकालश्चतुःषष्टिवर्षाणि ६४ केवलकालः षट्षष्टिवर्षाणि ६६ एवं]

दिन दर्पणमें मुखावलोकन करते हुए जयंधरको शिरपर श्वेत बाल दिखा। इससे उसे भोगोंकी ओरसे विरक्ति उत्पन्न हुई। तब उसने प्रतापंधरको राज्य देकर बहुत जनोंके साथ पिहितास्रव मुनिके निकटमें दीक्षा ग्रहण कर ली। पृथ्वी रानीने भी श्रीमती आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण कर ली। वह जयंधर राजा मोक्षको प्राप्त हुआ तथा पृथ्वी अच्युत स्वर्गमें देव हुई। इधर नागकुमारने व्यालके लिए आधा राज्य देकर अच्छेद्य व अभेद्यके लिए कोशल, आभीर और मालव देशों को; महाव्यालके लिए गौड़ और वैदर्भ देशोंको; सहस्रभटोंके लिए पूर्व देशको, तथा अन्य जनोंके लिए भी यथायोग्य देशोंको दिया। उस समय वह नागकुमार महामण्डलेश्वरकी विभूतिसे संयुक्त हुआ। उसके आठ हजार रानियाँ थीं। इनमेंसे उसने लक्ष्मीमती, धरणिसुन्दरी, त्रिभुवनरति और गुणवती इन चार रानियोंको महादेवीका पद प्रदान किया। लक्ष्मीमतीके देवकुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह भी पिताके ही समान महाप्रतापशाली था। इसके अतिरिक्त उसके और भी बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार नागकुमारने आठ-सौ वर्ष तक सुखपूर्वक राज्य किया। तत्पश्चात् वह एक दिन देखते ही देखते नष्ट होनेवाले मेघको देखकर भोगोंसे विरक्त हो गया। तब उसने देवकुमार पुत्रको राज्य देकर व्याल आदि कोटिभटों, सहस्रभटों, मुकुटबद्धों और मण्डलेश्वर आदि राजाओंके साथ अमलमति केवलीके पासमें दीक्षा धारण कर ली। लक्ष्मीमती आदि स्त्रियोंके समूहने भी पद्मश्री आर्यिकाके समीपमें दीक्षा ले ली। प्रतापंधर मुनिने चौंसठ वर्ष तक तपश्चरण किया। उन्हें कैलास पर्वतके ऊपर केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उसी प्रकार व्याल, महाव्याल, अच्छेद्य और अभेद्य भी केवलज्ञानी हुए। नागकुमार केवली छयासठ वर्ष तक विहार करके उसी पर्वतसे मुक्तिको प्राप्त हुए। व्यालादि भी मुक्तिको प्राप्त हुए। वह नागकुमार नेमि जिनेन्द्रके तीर्थमें उत्पन्न हुआ था। उसका कुमारकाल सत्तर (७०) वर्ष, राज्यकाल आठ सौ (८००) वर्ष, छद्मस्थकाल चौंसठ (६४) वर्ष और केवलिकाल छयासठ

१. फ °भ्यासे दीक्षिता। २. ज प श पृथ्वी अच्युत ब पृथ्वी च्युते। ३. ब 'दत्त्वा' नास्ति। ४. श °सीर°। ५. ज प लक्ष्मीमत्याः। ६. फ श °भेद्या च।

सहितानि[1] (?) सहस्रवर्षाण्यायुः। सहस्रभटादिमुनयः सौधर्मादिसर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं जग्मुः, लक्ष्मीमत्यादयोऽच्युतान्तं गताः। एवं वैश्यात्मज एकेनैवोपवासेनैवंविधोऽजनि, यस्त्रिशुद्धया सततं करोति स किं न स्यादिति ॥१॥

[३५]

अनुमननभवाद्वै पुण्यतो यस्य जातः सकलगुणगणेभ्यश्चोपवासस्य[2] पूज्यः।
क्षितिपविभवनाथो वैश्यभाविष्यदत्त उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया॥२॥

अस्य कथा। अत्रैवार्यखण्डे कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनापुरे राजा भूपालो देवी प्रियमित्रा। तत्रैव[3] वैश्यो धनपतिः भार्या कमलश्रीः। सा एकदा स्वभवनस्योपरिमभूमावुपविश्य दिशमवलोकयन्ती सद्यःप्रसूतां गामतिस्नेहेन वत्सस्य पृष्ठे गच्छन्तीं विलोक्य पुत्रवाञ्छया दुःखिनी बभूव। पतिर्दुःखकारणं पप्रच्छ। तया निरूपितं पुत्राभाव इति। [4]धनपतिर्धर्मेणेष्टार्थसिद्धिर्भविष्यति इति पुराद्बहिः रम्यप्रदेशे जिनभवनानि कारयामास। तानि राजा विलोक्य केन कारितानीति कंचन पृष्टवान्। तेन 'धनपतिना' इति निरूपिते तुष्टेन राज्ञा धनपती राजश्रेष्ठी

(६६) वर्ष प्रमाण था] इस प्रकार उसकी आयु एक हजार वर्ष प्रमाण थी। सहस्रभट आदि मुनि सौधर्म स्वर्गको आदि लेकर सवार्थसिद्धि तक गये। लक्ष्मीमती आदि अच्युत स्वर्ग पर्यन्त गईं। इस प्रकार वह वैश्यका पुत्र (नागदत्त) एक ही उपवाससे इस प्रकारके वैभवको प्राप्त हुआ है। फिर जो मन वचन व कायकी शुद्धिपूर्वक निरन्तर ही उस उपवासको करता है वह क्या वैसे वैभवको नहीं प्राप्त करेगा? अवश्य प्राप्त करेगा ॥१॥

भविष्यदत्त वैश्य जिस उपवासकी अनुमोदनासे उत्पन्न हुए पुण्यके प्रभावसे राजवैभवसे संयुक्त होकर समस्त गुणी जनोंसे पूज्य हुआ है मैं उस उपवासको मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक करता हूँ ॥२॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्यखण्डके भीतर कुरुजांगल देशके अन्तर्गत एक हस्तिनापुर नगर है। वहाँ भूपाल नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम प्रियमित्रा था। उसी नगरमें धनपति नामका एक वैश्य रहता था। उसकी पत्नीका नाम कमलश्री था। वह किसी समय अपने भवनकी छतके ऊपर बैठी हुई दिशाओंका अवलोकन कर रही थी। उस समय उसे एक गाय दिखी जो कि उसी समय प्रसूत होकर अतिशय स्नेहसे अपने बछड़ेके पीछे जा रही थी। उसे देखकर वह पुत्रहीना पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे बहुत दुखी हुई। उसको दुखी देखकर पतिने उसके दुखका कारण पूछा। उसने इसका कारण पुत्रका अभाव बतलाया। तब धनपतिने धर्मसे अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध होगा, यह निश्चय करके नगरके बाहिर एक रमणीय प्रदेशमें जिन भवनोंका निर्माण कराया। उन जिनालयोंको देखकर राजाने किसीसे पूछा कि इन जिनभवनोंका निर्माण किसने कराया है? उससे जब राजाको यह ज्ञात हुआ कि ये धनपति सेठके द्वारा निर्मापित कराये गये हैं तब इससे उसे बहुत सन्तोष हुआ। इससे उसने धनपतिको राजसेठ नियत कर दिया। इस प्रकारसे वह सेठ सुखपूर्वक काल-

१. प 'सप्ततिवर्षसहितानि' इत्येतत्पदम् निष्कास्य तत्स्थाने मार्जिने 'कुमारकाल ७० राज्यकाल ८०० तपकाल ६४ केवली ६६ एवं सर्ववर्ष १०००' एतावान् सन्दर्भो लिखितः। २. ब गुणगणेशश्चोप०। ३. ज प श तत्र। ४. फ श धनपतिधर्मेणेष्टार्थं° ब धनपतिर्धर्म्मेण इष्टार्थ°।

कृतः सुखेन स्थितः। एकदा चर्यामार्गेणागतं श्रीधरमुनिं स्थापयित्वा नैरन्तर्यानन्तरं पृष्टवान् धनपतिः 'मत्प्रियायाः[1] पुत्रः स्यान्न वा' इति। सोऽवोचत् 'अतिपुण्यवान् पुत्रो भविष्यति' इति। तदनु संतुष्टा सा कतिपयदिनैः पुत्रं लेभे। तदुत्पत्तौ राजादिभिरुत्साहश्चक्रे। स च भविष्यदत्त-नामा सकलकलाकुशलो भूत्वा ववृधे। एकदा निर्दोषापि जन्मान्तरार्जितकर्मवशात्सा कमल-श्रीः श्रेष्ठिना स्वगृहान्निःसारिता। सा हरिबल-लक्ष्मीमत्याख्ययोः स्वपित्रोर्गृहे तस्थौ। तत्रैव वैश्यवरदत्त-मनोहर्योः सुतां सुरूपां ववार धनपतिः। सा बन्धुदत्ताख्यसुतं लेभे। स च पितुः प्रियः सर्वकलाधारो युवा बभूव[2]। पित्रा तस्य विवाहे क्रियमाणे स उक्तवान् स्वोपार्जितद्रव्येण विवाहं करिष्यामि, नान्यथेति प्रतिज्ञया पञ्चशतवणिग्नन्दनैर्द्वीपान्तरं चचाल। तद्गमनं विबुध्य भविष्यदत्तो मातरं पप्रच्छ बन्धुदत्तेन सह द्वीपान्तरं यास्यामि। सा बभाण सापत्ने नो[3] चितम्। तथापि गच्छामीत्युक्ते भाण्डाभावे कथं गमिष्यसि। पितुः पार्श्वे याचित्वा गृहीत्वा[4] यास्यामीति पितुर्निकटे ययाचे। पिता बभाणाहं न जाने, ते भ्राता जानाति। तदनु तन्निकटं जगाम। तेन मायया प्रणम्यावादि हे भ्रातः, किमित्यागतोऽसि।

यापन कर रहा था। एक समय धनपति सेठके घरपर चर्यामार्गसे श्रीधर मुनि पधारे। तब उसने उनका पडगाहन करके निरन्तराय आहार दिया। तत्पश्चात् उसने उनसे प्रश्न किया कि मेरी पत्नीके पुत्र होगा अथवा नहीं? उत्तरमें मुनिने कहा कि हाँ, उसके अतिशय पुण्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर कमलश्रीको बहुत सन्तोष हुआ। तदनुसार उसे कुछ दिनोंमें पुत्रकी प्राप्ति हुई भी। सेठके यहाँ पुत्रका जन्म होनेपर राजादिकोंने उत्साह प्रगट किया—उत्सव मनाया। उसका नाम भविष्यदत्त रखा गया। वह समस्त कलाओंमें कुशल होकर वृद्धिको प्राप्त हुआ।

एक समय सेठने निर्दोष होनेपर भी उस कमलश्रीको घरसे निकाल दिया। तब वह जन्मान्तरमें उपार्जित कर्मके फलको भोगती हुई अपने हरिबल और लक्ष्मीमती नामक माता-पिता-के घरपर रही। वहींपर एक वरदत्त नामका सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम मनोहरी था। इनके एक सुरूपा नामकी पुत्री थी। उसके साथ धनपति सेठने अपना विवाह कर लिया था। उसके एक बन्धुदत्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। पिताके लिए अतिशय प्यारा वह पुत्र समस्त कलाओंमें प्रवीण होकर जवान हो गया। तब पिता उसका विवाह करनेके लिए उद्यत हुआ। परन्तु उसने कहा कि मैं अपने कमाये हुए धनसे विवाह करूँगा, अन्यथा नहीं; यह प्रतिज्ञा करके वह पाँच सौ वैश्यपुत्रोंके साथ दूसरे द्वीपको जानेकी तैयारी करने लगा। उसके द्वीपान्तर जानेके समाचारको जानकर भविष्यदत्तने अपनी माँसे कहा कि मैं बन्धुदत्तके साथ द्वीपान्तरको जाऊँगा। यह सुनकर कमलश्रीने कहा कि वह तुम्हारा सौतेला भाई है, इसलिए उसके साथ जाना योग्य नहीं है। इसपर भविष्यदत्तने उससे कहा कि सौतेला भाई होनेपर भी मैं उसके साथ द्वीपान्तरको जाऊँगा। तब कमलश्रीने पूछा कि पूँजीके बिना तू कैसे द्वीपान्तरको जावेगा? इसपर भविष्यदत्तने उत्तर दिया कि मैं पिताके पाससे द्रव्य माँगकर जाऊँगा। तदनुसार उसने पिताके पास जाकर उससे द्रव्यकी याचना की। परन्तु पिताने यह कह दिया कि मैं नहीं जानता हूँ, तेरा भाई (बन्धुदत्त) जाने। तत्पश्चात् वह बन्धुदत्तके पासमें गया। उसने कपटपूर्वक नमस्कार करते हुए भविष्यदत्तसे पूछा कि हे भ्रात! तुम किस कारणसे यहाँ आये हो? उसने उत्तर दिया कि मैं

१. प मत्प्रियाया। २. फ युवा च बभूव। ३. फ सापत्नो। ४. ब 'गृहीत्वा' नास्ति।

भविष्यदत्तोऽवदत्त्वया सह द्वीपान्तरं यास्यामि[1], किंचिद्भाण्डं देहि। बन्धुदत्त उवाच ममापि त्वं स्वामी किं तु[2] द्रव्यस्य, यावदिष्टं तावद्गृहाणेति भाण्डमदत्त। ततः सुमुहूर्ते बन्धुदत्तेन सह चचाल। मार्गे एकस्मिन् अरण्ये[3] शिबिरं विमुच्य स्थितः सार्थः[4]। अर्धरात्रौ भिल्लैरागत्य शिबिरे गृह्यमाणे बन्धुदत्तादयः सर्वेऽपि पलायिताः। भविष्यदत्तो युयुधे, जिगाय लब्धप्रशंसो बभूव।

ततो बहुधान्यखेटवेलापत्तनं जगाम सार्थः। तत्र प्रभावत्यभिधाप्रसिद्धा वेश्या। तस्या ग्रहणं दत्त्वा भविष्यदत्तस्तद्गृहे तस्थौ। बन्धुदत्तो मौल्येन गृहीतवहित्रेषु भाण्डं निक्षिप्य वहित्रप्रेरणावसरे भविष्यदत्तमाहूय वहित्रमारोप्य तानि[5] प्रेरयामास। दिनान्तरैस्तिलकद्वीपमवाप। तत्र जलकाष्ठसंग्रहार्थं जलयानपात्राणि स्थिरीचकार। तत्र कैश्चिद् रन्धितुं प्रारब्धं कैश्चिज्जलादिकं वहित्रे निक्षिप्तं यदा तदा भविष्यदत्तोऽटव्यामटन्[6] सरो ददर्श। तत्र सस्नौ जिनं स्तुतवान्[7] तस्थौ। इतः काष्ठादिकं संगृह्य भुक्त्वा च जलयानप्रेरणावसरे वणिग्भिरुक्तं भविष्यदत्तो न दृश्यत इति। तदा बन्धुदत्तो मनसि जहर्ष, बभाषे चात्र सिंहादिभयमस्ति, यापयन्तु वहित्राणि। यापितेषु भविष्यदत्त आगत्य तानपश्यन्[8] मातृवचनं स्मृत्वैकत्वादिकं भावयन्नटव्यां यावदटति तावद्वटतरोरधोऽधोगतां सोपानपङ्क्तिं लुलोके।

तुम्हारे साथ द्वीपान्तरको चलना चाहता हूँ, इसके लिए तुम मुझे कुछ द्रव्य दो। इसपर बन्धुदत्तने कहा कि तुम मेरे भी स्वामी हो, फिर भला द्रव्यकी क्या बात है? जितना द्रव्य तुम्हें अभीष्ट हो ले लो। यह कहकर उसने भविष्यदत्तको धन दे दिया। तत्पश्चात् वह शुभ मुहूर्तमें बन्धुदत्तके साथ चला गया। वह व्यापारियोंका समूह मार्गमें एक वनके भीतर तम्बू डालकर ठहर गया। तब वहाँ आधी रातमें कुछ भीलोंने आकर उसपर आक्रमण कर दिया। इससे भयभीत होकर बन्धुदत्त आदि सब ही भाग गये। परन्तु भविष्यदत्तने उनके साथ युद्ध करके उन सबको जीत लिया। इससे उसकी खूब प्रशंसा हुई।

तत्पश्चात् वह व्यापारियोंका संघ बहुधान्यखेट वेलापत्तनको गया। वहाँ एक प्रभावती नामकी प्रसिद्ध वेश्या थी। भविष्यदत्त भाड़ा देकर उसके घरपर ठहर गया। इधर बन्धुदत्तने मूल्य देकर कुछ नावोंको खरीदा और उनमें द्रव्यको रक्खा। तत्पश्चात् उसने नावोंको खोलते समय भविष्यदत्तको बुलवाकर उसे नावके ऊपर बैठाया और तब उन्हें चला दिया। कुछ दिनोंमें वह संघ तिलक द्वीपमें पहुँचा। वहाँपर जल और ईंधनका संग्रह करनेके लिए उन नावोंको रोक दिया गया। तब किन्हीं पुरुषोंने भोजन बनाना प्रारम्भ किया तो कितने ही नावोंमें जलादिको रखने लगे। जब इधर यह कार्य चल रहा था तब भविष्यदत्तने वनमें घूमते हुए वहाँ एक सरोवरको देखा। उसमें स्नान करके वह जिन भगवान्की स्तुति करता हुआ वहाँ ठहर गया। इधर इन्धनादिका संग्रह और भोजन करके जब नावोंके छोड़नेका अवसर हुआ तब वैश्योंने कहा कि भविष्यदत्त नहीं दिखता है। यह जान करके बन्धुदत्तको मनमें बहुत हर्ष हुआ। वह बोला कि यहाँ सिंहादिकोंका भय है, अतएव नावोंको चलने दो। नावोंके चले जानेपर जब भविष्यदत्त वहाँ आया तब वह नावोंको न देखकर माताके उस वचनकी याद करने लगा। तत्पश्चात् वह एकत्वादि भावनाओंका विचार करता हुआ उस वनमें कुछ आगे गया। वहाँ उसे एक वट

१. ज फ श द्वीपान्तरमायास्यामि। २. ज प ब श 'तु'। ३. श आरण्यं। ४. फ श 'सार्थः' नास्ति। ५. फ मारोप्य प्रे० ब °मारोपितानि प्रे°। ६. ज भविष्यदत्तो मटन्। ७. फ स्तुवन्। ८. श तान् पश्यन्।

जलाशया यावदधोऽवतरति तावत् कियदन्तरे भूमेरन्तःस्थितं पुरमपश्यत्तच्चोद्वसम्[1]। तदीशानकोणे स्थितं जिनालयं वीक्ष्यातिहृष्टस्तद्द्वारे[2] तस्थौ जिनं तुष्टाव। तदा तत्कपाटः स्वयमेवोद्घाटितः[3]। तत्र पञ्चाशदधिकशतचापोच्छ्रितिं[4] चन्द्रकान्तरत्नमयीं प्रतिमामभीक्ष्य प्रहसिताननोऽपूर्वचैत्यालयदर्शनक्रियां चकार। तन्मत्तवारणे उपविश्य यावदास्ते तावदन्यकथान्तरमासीत्।

तत्कथमित्युक्तेऽत्रैव द्वीपे पूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिणीपुराद्बहिः स्थितयशोधरतीर्थकृत्समवसरणेऽच्युतेन्द्रेण विद्युत्प्रभेण गणधरदेवः पृष्टः पूर्वभवस्य[6] मम मित्रं धनमित्रः क्वोत्पन्नः कथं तिष्ठतीति। गणभृद्वाग्जीवत्रैव भरते हस्तिनापुरे वैश्यधनपति-कमलश्रियोः पुत्रो भविष्यदत्तोऽजनि। संप्रति तिलकद्वीपस्थहरिपुरे चन्द्रप्रभजिनालये तिष्ठति। स च तत्पत्यरिंजयचन्द्राननयोः पुत्रीं भविष्यानुरूपां तत्पतिपूर्वभवविरोधि[6]कौशिकचरराक्षसेन तत्रत्यराजादिजनमारणे रक्षितां[7] परिणीय द्वादशवर्षैर्बन्धूनां[8] मिलिष्यतीति[9]। ततोऽच्युतेन्द्रोऽमितवेगदेवं तत्र प्रस्थापयामास भविष्यदत्तभविष्यानुरूपयोर्यथा परस्परं दर्शनं

वृक्षके नीचे उत्तरोत्तर नीचे गई हुई सीढ़ियोंकी एक पंक्ति दिखी। वह जब जलप्राप्तिकी आशासे नीचे उतरा तो उसे कुछ दूर जानेपर भूमिके भीतर स्थित एक पुर दिखा जो कि वीरान था। उसके ईशान कोणमें स्थित जिनालयको देखकर उसे अत्यन्त हर्ष हुआ। वह उसके द्वारपर स्थित होकर जिनेन्द्रकी स्तुति करने लगा। उस समय उसका बन्द द्वार स्वयं ही खुल गया। उसके भीतर डेढ़ सौ धनुष प्रमाण ऊँची चन्द्रकान्तमणिमय प्रतिमाको देखकर उसका मुखकमल विकसित हो उठा। तब उसने अपूर्व चैत्यालयका विधिपूर्वक दर्शन किया। फिर वह उसके छज्जेपर जाकर बैठ गया। इस प्रसंगमें यहाँ एक दूसरी कथा प्राप्त होती है जो इस प्रकार है—

इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें पुष्कलावती देशके भीतर पुण्डरीकिणी पुरी है। उसके बाहिर यशोधर तीर्थंकरका समवसरण स्थित था। वहाँ विद्युत्प्रभ अच्युतेन्द्रने गणधर देवसे पूछा कि मेरा पूर्वजन्मका मित्र धनमित्र कहाँ उत्पन्न हुआ है और किस प्रकारसे है? गणधर बोले—इसी जम्बूद्वीपके भीतर भरत क्षेत्रमें एक हस्तिनापुर नामका नगर है। वहाँ वैश्य धनपति और कमलश्री दम्पति रहते हैं। वह इन दोनोंके भविष्यदत्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ है। इस समय वह तिलक द्वीपके भीतर स्थित हरिपुरमें चन्द्रप्रभ जिनालयमें स्थित है। उक्त हरिपुरके राजाका नाम अरिंजय और रानीका नाम चन्द्रानना था। इनके एक भविष्यानुरूपा नामकी पुत्री थी। एक कौशिक नामका पूर्व भवका तापस उस नगरके स्वामीका शत्रु था जो मरकर राक्षस हुआ था। उसने वहाँके राजा आदि सब जनोंको मार डाला था। एक मात्र भविष्यानुरूपा ही ऐसी थी जिसकी कि उसने रक्षा की थी। भविष्यदत्त इस राजपुत्रीके साथ विवाह करके बारह वर्षोंमें कुटुम्बी जनोंसे मिलेगा। गणधरके इस उत्तरको सुनकर उस अच्युतेन्द्रने वहाँ अमितवेग नामक देवको भेजते हुए उसे यह आदेश दिया कि भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपाका जिस प्रकारसे सम्मिलन हो सके, ऐसी व्यवस्था करो। तदनुसार उक्त देवने वहाँ जाकर देखा तो वह भविष्य-

---

१. श तच्चोद्वसम्। २. प वीक्ष्य अतिहृष्टस्सन् द्वारे श.वीक्षस्ततः द्वारे। ३. श °वोद्घटित.। ४. अ प फ श °चापोछति°। ५. ब °मवोक्ष्य। ६. ब श विरोध। ७. प रक्षताम्, फ रक्षिता तां। ८. प ब श वर्षै बन्धूनाम्। ९. ब मेलयिष्यतीति।

भवति तथा कुरु' इति[1]। स तत्र गत्वा तं निद्रितं दृष्ट्वा भविष्यदत्तो[2] यत्र पश्यति तत्रेदं[3] वाक्यं लिखित्वा जगाम। किं तद्वाक्यम्। भविष्यदत्त एतत्पुरपत्यरिंजय-चन्द्राननयोरुत्पन्नां भविष्यानुरूपां एकामेव राजभवने राक्षसेन रक्षितां परिणीय द्वादशवर्षैः बन्धूनां[4] मिलिष्यतीति। एतद् दृष्ट्वा भविष्यदत्तो राजभवनं जगाम। गवेषयन्नपवरकान्तर्गवाक्षजालेन कन्यामपश्यत्। भविष्यानुरूपे द्वारमुद्घाटयेत्युक्ते सोद्घाटयाञ्चकार। तदनु त्वं क इत्युक्ते सोऽवोचत्कश्चिद्वैश्यपुत्रोऽहं मार्गे गच्छन्नागत इति। तया तन्मज्जनभोजनाद्यनन्तरमवादि,[5] हे युवन्नत्र[6] राजादिजनान् कश्चिद्राक्षसो मारयित्वा मां रक्षति स्म। इमानि विचित्ररूपाणि[7] मम प्रेषणकरणे[8] समर्प्य गतः। इमानि मे भोजनादिना समाधानं कुर्वन्ति। सो षण्मासेषु षण्मासेष्वागत्यावलोक्य गच्छत्यग्रे सप्तमदिने[9] आगमिष्यति। यावत्स नागच्छति तावद् गच्छेति। स तत्प्रतापं पश्यामि, न गच्छामीत्युक्त्वाऽस्थात्। सापि स्वकन्याव्रतेन तस्थौ। आगतो राक्षसस्तं विलोक्य तत्पादयोर्लग्नः। कन्यामदत्त त्वद्भृत्योऽहं[10] स्मरणे आगच्छामीति भणित्वा स्वर्लोकं गतः। भविष्यदत्तभविष्यानुरूपे तत्र सुखेन तस्थतुः।

इतः कमलश्रीः सुतं स्मृत्वा दुःखिनी जज्ञे दुःखविनाशार्थं सुव्रतार्जिकासकाशे श्री-

दत्त सो रहा था। तब उसने जहाँपर भविष्यदत्तकी दृष्टि पहुँच सकती थी वहाँ (भित्तिके ऊपर) यह वाक्य लिख दिया—भविष्यदत्त इस पुरके स्वामी अरिंजय और चन्द्राननाकी पुत्री भविष्यानुरूपाके साथ, जो एक मात्र इस राजभवनमें राक्षसके द्वारा रक्षित है, अपना विवाह करके बारह वर्षोंमें जाकर अपने कुटुम्बी जनोंसे मिलेगा। यह लिखकर वह वापिस चला गया। इस लेखको देखकर भविष्यदत्त राजभवनमें गया। वहाँ खोजते हुए उसने शयनागारके झरोखेसे जब उस कन्याको देखा तब वह बोला कि हे भविष्यानुरूपे! द्वारको खोलो। इसपर उसने द्वारको खोल दिया। तत्पश्चात् कन्याने उससे पूछा कि तुम कौन हो? उसने उत्तरमें कहा कि मैं एक वैश्यपुत्र हूँ और मार्गमें जाते हुए यहाँ आया हूँ। तत्पश्चात् वह भविष्यदत्तको स्नान व भोजन आदि कराकर उससे बोली कि किसी राक्षसने यहाँके राजा आदि समस्त जनोंको मारकर केवल मेरी रक्षा की है। वह मेरी सेवाके लिए इन विचित्र रूपोंको देकर चला गया है। ये रूप भोजनादिके द्वारा मेरा समाधान करते हैं। वह छह छह मासमें यहाँ आकर मुझे देख जाता है। अब आगे वह सातवें दिनमें यहाँ आवेगा। वह जबतक यहाँ नहीं आता है तब तक तुम यहाँसे चले जाओ। यह सुनकर उसने कहा कि मैं नहीं जाता हूँ, उसके प्रतापको देखना चाहता हूँ। यह कहकर वह वहींपर ठहर गया। भविष्यानुरूपा भी अपने कन्याव्रतके साथ—अपने शीलको सुरक्षित रखती हुई—स्थित रही। समयानुसार वह राक्षस वहाँ आया और भविष्यदत्तको देखकर उसके पैरोंमें पड़ गया। तत्पश्चात् वह उसे उक्त कन्याको देकर बोला कि मैं आपका दास हूँ, जब आप मेरा स्मरण करेंगे तब मैं आया करूँगा; यह कहकर वह स्वर्गलोकको चला गया। भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा दोनों सुखपूर्वक वहींपर स्थित रहे।

उधर भविष्यदत्तकी माता कमलश्री पुत्रका स्मरण करके बहुत दुखी हुई। उसने इस

१. प कुर्व्वन्ति श कुर्विते। २. अ ब गत्वा भविष्यदत्तो श गत्वा तं निनिद्रितं द्रष्टा भविष्यदत्तो। ३. श पश्यति तत्र भित्तौ तत्रेदम्। ४. अ प ब वर्षे बन्धूनाम्। ५. प फ श °द्यनन्तरं सावादि। ६. ज युवंस्तत्रत्य, फ युवन्नत्र। ७. श इमानि चित्र°। ८. फ प्रेक्षण°। ९. श सप्तादिने। १०. श त्वद्भृहम्।

पञ्चमीविधानमादाय तिष्ठन्ती[1] स्थिता। इतो द्वादशवर्षानन्तरं भविष्यानुरूपा तमपृच्छद्यथा मम कोऽपि नास्ति तथा तवापि किं कोऽपि नास्ति। तेनाभाणि हस्तिनापुरे पित्रादयः सन्ति। तत्र गमनोपायः क इत्युक्ते भविष्यदत्तः सारीभूतरत्नराशिं समुद्रतटे चकार। ध्वज-मुच्छ्रय दिवा तया सह तत्र तिष्ठति। कतिपयदिनैः स बन्धुदत्तो चौरापहृतद्रव्यो वहित्राणि पाषाणैः पूरयित्वा व्याघुटितस्तेन पथा गच्छन् ध्वजोपेतं रत्नपुञ्जमावीक्ष्य[2] तत्रागतो भविष्य-दत्तं ददर्श। मायया महाशोकं चकार ववाद च 'दूरं गतेषु वहित्रेषु त्वामपश्यन् मूर्च्छितोऽ-तिदुःखी जातो वहित्राणि वायुवशेन न व्याघुटन्ते। ततो गतोऽहं तत्फलं प्राप्तः' इति। ततस्तं संबोध्य सर्वान् पुरमवीविशत्। भोजनादिना तेषां पथश्रमेऽपहारे[3] सति रत्नैर्वहि-त्राणि विभृत्य भविष्यानुरूपां वहित्रमारोप्य स्वयं यदारोहति तदा तयोक्तं हे नाथ, गरुडोद्-गारमुद्रिकां रत्नप्रतिमां च व्यस्मरमिति। ततो भविष्यदत्तस्तदर्थं[थं] व्याजुघुटे[4]। तदा बन्धुदत्तोऽहो यद्वहित्रे यद् द्रव्यमस्ति तत्तस्यैव ममानया कन्ययानेन[5] द्रव्येण च पूर्यते इति भणित्वा तानि प्रेरयामास। तदा सा मूर्च्छितातिबहुशोकं चक्रे। तस्मिन्नवसरे बन्धुदत्तेनानेक-प्रकारविकारैरुपसर्गे[6] क्रियमाणे सात्मनः क्रियां क्रियमाणामवलोक्य[7] भविष्यानुरूपा त्रस्ता

दुखको नष्ट करनेके लिए सुव्रता आर्यिकाके पास जाकर पञ्चमीव्रतके विधानको ग्रहण कर लिया और तब वह इस व्रतका पालन करती हुई स्थित रही। इधर बारह वर्षोंके बीतनेपर भविष्यानु-रूपाने भविष्यदत्तसे पूछा कि जिस प्रकार मेरे कोई बन्धुजन नहीं है उसी प्रकार आपके भी क्या कोई नहीं है? इसपर भविष्यदत्तने कहा कि हस्तिनापुरमें मेरे पिता आदि कुटुम्बी जन हैं। तब भविष्यदत्ता बोली कि वहाँ जानेका उपाय क्या है? इसपर भविष्यदत्तने समुद्रके किनारेपर श्रेष्ठ रत्नोंकी राशि की। फिर वह ध्वजाको फहराकर दिनमें भविष्यानुरूपाके साथ वहीं रहने लगा। कुछ ही दिनोंमें वह बन्धुदत्त लौटकर वहाँ आया। उसके सब धनको मार्गमें चोरोंने लूट लिया था। अतएव वह नावोंको पत्थरोंसे भर कर लाया। मार्गमें जाते हुए उसने ध्वजाके साथ रत्नसमूहको देखा। उसे देखकर वह यहाँ आया तो देखता है कि भविष्यदत्त बैठा हुआ है। तब वह भविष्य-दत्तके सामने कपटसे परिपूर्ण महान् शोकको प्रदर्शित करते हुए बोला कि जब नौकाएँ बहुत दूर चली गईं तब वहाँ तुमको न देखकर मुझे मूर्छा आ गई। उस समय मुझे अतिशय दुःख हुआ। मैंने नौकाओंको वापिस ले आनेका प्रयत्न किया, परन्तु प्रतिकूल वायुके कारण वे वापिस नहीं आ सकीं। इस प्रकार मुझे बाध्य होकर आगे जाना पड़ा। उसका फल भी मुझे प्राप्त हो चुका है— कमाया हुआ सब धन चोरों द्वारा लूट लिया गया गया है। यह सुनकर भविष्यदत्त बन्धुदत्तको समझा बुझाकर उन सबको नगरके भीतर ले गया। वहाँ उसने भोजनादिके द्वारा उन सबके मार्गश्रमको दूर किया। फिर उसने नावोंको उन रत्नोंसे भरकर भविष्यानुरूपाको नावके ऊपर बैठाया। तत्पश्चात् जब वह स्वयं भी नावके ऊपर चढ़ने लगा तब भविष्यानुरूपाने कहा कि हे नाथ! मैं गरुडोद्गार अंगूठी और रत्नमय प्रतिमाको भूल आई हूँ। तब भविष्यदत्त उनको लेनेके लिए वापिस गया। इधर बन्धुदत्तने 'अहो, जिसकी नावमें जो द्रव्य है वह उसका ही है' मेरे लिए तो यह कन्या और यह द्रव्य पर्याप्त है; यह कहते हुए उन नावोंको छुड़वा दिया।

१. प श °मादाय यावत्तिष्ठन्ती। २. ज पुंजमभवीष्य, प ब पुंजमवीक्ष्य, श पुंजमवीक्षत। ३. ब °श्रममपहारे [°श्रमेऽपहृते]। ४. ज ब व्याजघुटे। ५. ज प कन्यया तेन। ६. श प्रकारविकारविकारैः। ७. ज °रुपसर्गे क्रियमाणेमवलोक्य प रुपसर्गे क्रियमाणमवलोक्य।

अयं महापापी कदाचिद्बलात्कारेण शीलखण्डनं करोति तदा विरूपमिति चिन्तयन्ती समुद्रे[1] निक्षेपणं दध्यौ। तदासनकम्पेन जलदेवतागत्य वहित्राणि निमज्जितुं लग्ना। तदा स भीतस्तूष्णीं स्थितोऽन्यवणिग्भिः हे महासति, क्षमस्व क्षमस्वेति क्षमिता। सैव यथा शृणोति तथा जलदेवतयोक्तं हे सुन्दरि, तव पतिना मासद्वयेन संयोगो भविष्यति, मा दुःखं कुर्विति। ततः सा मूकीभूय तस्थौ। कतिपयदिनैः स्वपुरं प्रविश्य बन्धुदत्तः पितरं प्रत्यवददहं तिलकद्वीपमयाम्[2]। तत्र हरिपुरेशभूपालसुरूपयोरुत्पन्नेयं कन्या। राजा सपरिवारो वनक्रीडार्थमटवीमैदहमपि तेन गतः। तत्रातिरौद्रः सिंहो राज्ञः संमुखमागतः। तं दृष्ट्वा नष्टः परिजनो मया स हत इति[3] राजा तुष्टः कन्यां मह्यम् अदत्त[4]। मया परिणयनार्थं तवान्तिकमानीता। इयं पित्रोर्वियोगेन मूकीभूत्वा तिष्ठति। यज्जानासि तत्कुरु। ततो धनपत्यादयो नानाप्रकारैस्तां संबोधयन्तस्तस्थुः। सा कथमपि न[5] वक्ति। कमलश्रीरागत्य बन्धुदत्तस्याशिषां[6] निक्षिप्यापृच्छद्भविष्यदत्तस्य शुद्धिम्। स बहुधान्यखेटे प्रभावतीगृहे तिष्ठतीति ववाद। ततोऽतिदुःखिता बभूव। तत्रैकदागतं विनयंधरकेवलिनं पप्रच्छ भविष्यदत्तः कदागमिष्यति। तेनोक्तं मासे आगमिष्यति, ततः कमलश्रीः संतुतोष।

यह देखकर भविष्यानुरूपा मूर्च्छित हो गई। उस समय उसने बहुत पश्चात्ताप किया। इस अवसरपर जब बन्धुदत्तने अनेक प्रकारके विकारोंको करके उसके ऊपर उपसर्ग करना प्रारम्भ किया तब भविष्यानुरूपा बन्धुदत्तके द्वारा अपने प्रति किये जानेवाले इस दुर्व्यवहारको देखकर बहुत दुखी हुई। उसने विचार किया कि यह महा पापी है, यदि कदाचित् इसने बलात्कार करके मेरे शीलको खण्डित कर दिया तो यह अयोग्य होगा; यह सोचते हुए उसने अपने आपको समुद्रमें डाल देनेका विचार किया। तब आसनके कम्पित होनेसे जलदेवताने आकर उन नावोंको डुबाना प्रारम्भ कर दिया। तब बन्धुदत्त भयभीत होकर खामोश रहा। परन्तु अन्य वैश्योंने हे सती! क्षमा कर क्षमा कर, यह कहते हुए उससे क्षमा कराई। फिर वह जलदेवता केवल वही जिस प्रकारसे सुन सके इस प्रकारसे बोला कि हे सुन्दरी! तेरा पतिके साथ संयोग दो मासमें होगा, तू दुःख मत कर। तबसे भविष्यानुरूपाने मौन ले लिया। कुछ दिनोंमें जब वह बन्धुदत्त अपने नगरके भीतर पहुँचा तब वह पितासे बोला कि मैं तिलक द्वीपको गया था। उस द्वीपमें स्थित हरिपुरके राजा भूपाल और रानी सुरूपाकी यह कन्या है। राजा परिवारके साथ वनक्रीड़ाके लिए वनमें गया था, उसके साथ मैं भी गया था। वहाँ राजाके सामने अतिशय भयानक सिंह आया। उसे देखकर परिवारके लोग भाग गये। तब मैंने उस सिंहको मार डाला। इससे राजाने सन्तुष्ट होकर मुझे यह कन्या दी है। मैं उसे विवाहके निमित्त आपके पास लाया हूँ। इसने माता-पिताके वियोगमें मौन ले लिया है। अब आप जैसा उचित समझें, करें। तब धनपति सेठ आदिने उसे अनेक प्रकारसे समझानेका प्रयत्न किया। किन्तु वह किसी भी प्रकारसे नहीं बोली। कमलश्रीने आकर बन्धुदत्तको आशीर्वाद देते हुए उससे भविष्यदत्तके विषयमें पूछा। उत्तरमें उसने कहा कि वह बहुधान्यखेटमें प्रभावती वेश्याके घरमें स्थित है। यह सुनकर कमलश्रीको भारी दुख हुआ। एक समय वहाँ विनयंधर केवली आये। तब कमलश्रीने उनसे पूछा कि भविष्यदत्त कब आवेगा? केवलीने उत्तर दिया कि वह एक मासमें आ जावेगा। इससे कमलश्रीको सन्तोष हुआ।

१. ज प फ श °न्ती सात्मनः समुद्रे। २. ज °मायम् प फ श मायाम्। ३. ज ब स हृत इति श सह स्थित इति। ४. ज प ब श मह्यं दत्त [मह्यमदात्]। ५. फ 'न' नास्ति। ६. ज °स्याशेषां।

इतो भविष्यदत्तो मुद्रिकादिकमानीय तामपश्यन् मूर्च्छितो महता कष्टेनोन्मूर्च्छितो भूत्वा वस्तुस्वरूपं भावयन् राजभवन एव तस्थौ। मासद्वयानन्तरं पुनरच्युतेन्द्रेण मन्मित्रं कथं तिष्ठतीति चिन्तितम्। तदवस्थां विबुध्य तदनु स माणिभद्रदेवं तत्र[1] प्रस्थापयामास 'भविष्यदत्तं तन्मातृगृहं नय' इति। ततस्तेन दिव्यविमानमध्यारोप्य विचित्ररत्नादिभिः[2] रात्रौ नीत्वा हरिबलगृहद्वारे व्यवस्थापितः। स च मातामहादीनां संतोषमुत्पाद्य भविष्यानुरूपाया वार्तामपृच्छत्। कमलश्रिया स्वरूपे निरूपिते प्रातर्मुद्रिकां तस्या दर्शयेति मातरं तदन्तिकं प्रस्थाप्य स्वयं राजभवनं ययौ, राज्ञस्तद्वृत्तान्तमचीकथत्। राजा तमपवरकान्तं निधाय धनपतिम्, बन्धुदत्तेन गतवणिजो बन्धुदत्तमप्याहूय पृष्टवान् भविष्यदत्तशुद्धिम्। बन्धुदत्तोऽकथयत् बहुधान्यखेटे प्रभावतीगृहे तिष्ठति। सहगतवणिग्भिर्यथावत्कथिते धनपतिरब्रूत एते बन्धुदत्तं न सहन्ते, एतद्वचनं न प्रमाणमिति। ततो राजा भविष्यदत्त, आगच्छेत्युक्तवान्। तदाऽपवरकान्निर्गत्य राजानं पितरं च ननामोपविवेश, सभान्तराले यथावद्वृत्तमचीकथच्च। तदनु नरेशो धनपतिं बन्धुदत्तं च कारायां[3] चिक्षेप, भविष्यदत्तो मोचयति स्म। राजा भविष्यानुरूपां मुद्रिकादर्शनेन पतेरागमनं विबुध्य पुलकितशरीरां स्पष्टालापां स्वभवनमानीय तया

इधर भविष्यदत्त मुद्रिका आदिको लेकर जब वहाँ आया तो वह भविष्यानुरूपाको न देखकर महान् दुखसे मूर्छित हो गया। फिर जिस किसी प्रकारसे सचेत होनेपर वह वस्तुस्थितिका विचार करता हुआ उस राजभवनमें ही स्थित हो गया। तब दो मासके पश्चात् उस अच्युतेन्द्रने 'वह मेरा मित्र किस प्रकारसे अवस्थित है' इस प्रकार अपने मित्रके विषयमें फिरसे विचार किया। उसकी पूर्वोक्त अवस्थाको जानकर अच्युतेन्द्रने वहाँ माणिभद्र देवको भेजते हुए उसे भविष्यदत्तको उसकी माताके घर ले जानेका आदेश दिया। तदनुसार वह देव उसे रात्रिके समय दिव्य विमानमें बैठाकर अनेक प्रकारके रत्नादिकोंके साथ ले गया और हरिबलके द्वारपर पहुँचा आया। वहाँ पहुचकर भविष्यदत्तने अपने नाना आदिको सन्तुष्ट करके भविष्यानुरूपाकी बात पूछी। तब अपनी माता कमलश्रीसे वस्तुस्थितिको जानकर उसने उसे अंगूठी देते हुए कहा कि इसे प्रातः कालमें भविष्यानुरूपाके पास ले जाकर उसको दिखलाओ। साथ ही उसने स्वयं राजभवनमें जाकर भविष्यानुरूपाके उक्त वृत्तान्तको राजासे कहा। इसपर राजाने उसे एक कोठरीके भीतर रखकर धनपति, बन्धुदत्तके साथ द्वीपान्तरको गये हुए वैश्यों और स्वयं बन्धुदत्तको भी बुलाकर उनसे भविष्यदत्तके सम्बन्धमें पूछ-ताछ की। तब बन्धुदत्तने कहा कि वह बहुधान्यखेटमें प्रभावती वेश्याके घरमें है। तत्पश्चात् जब बन्धुदत्तके साथ गये हुए उन वैश्योंने राजासे यथार्थ वृत्तान्त कहा तब धनपति सेठ बोला कि ये लोग बन्धुदत्तके साथ ईर्ष्या करते हैं, इसलिए इनका वचन प्रमाण नहीं है। यह सुनकर राजाने उस भविष्यदत्तसे कहा कि हे भविष्यदत्त! अब तुम बाहिर आ जाओ। तब भविष्यदत्त कोठरीसे बाहिर आया और राजा एवं पिताको प्रणाम कर वहाँ बैठ गया। तत्पश्चात् उसने सभाके मध्यमें उस समस्त घटनाको यथार्थरूपमें कह दिया। इससे राजाने धनपति सेठ और बन्धुदत्त इन दोनोंको ही कारागारमें रख दिया। परन्तु भविष्यदत्तने उन्हें उससे मुक्त करा दिया। उधर भविष्यानुरूपाने जब कमलश्रीके पास उस अंगूठीको देखा तब भविष्यदत्तके आगमनको जानकर उसका शरीर रोमांचित हो गया। तब वह स्पष्ट-भाषिणी हो

---

१. फ 'तत्र' नास्ति। २. श रत्नाभिः। ३. फ कारागारायां।

स्वपुत्र्या सुरूपया च परिणाय्यार्धराज्यमदत्त। ततो भविष्यदत्तो राजा ताभ्यां भोगाननुभवन्[1] पित्रादीनां भक्तिं कुर्वन् सुखेन तस्थौ। एकदा भविष्यानुरूपा देवी गर्भसंभूतौ दोहलके हरिपुरचन्द्रप्रभजिनालयदर्शनमभिललाष। भर्तुर्न निरूपयति संक्लेशभयात्स्वयं तदप्राप्त्या कृशा बभूव। तदा कश्चिद्विद्याधरः समागत्य तां ननाम, अवदत्-एहि, हरिपुरचन्द्रप्रभनाथजिनालयं द्रष्टुमिति। तदा भूपाल-भविष्यदत्त-भविष्यानुरूपादयो भव्यास्तत्र जग्मुः। अष्टदिनानि तत्प्रभृतितत्रत्यजिनालयानां पूजां विधाय स्वपुरागमनावसरे तत्र गगनगतिनामचारणोऽवतीर्णः[2]। सर्वे ववन्दिरे। ततो भविष्यदत्तः पृच्छति स्म—हे मुने, अकस्मादयं भविष्यानुरूपां नत्वात्र किमित्यानीतवानिति।

मुनिराह[3]—अत्रैवार्यखण्डे पल्लवदेशे काम्पिल्ये राजा महानन्दो देवी प्रियमित्रा मन्त्री वासवो भार्या केशिनी पुत्रौ वङ्कसुवङ्कौ पुत्री अग्निमित्रा। सा अग्निमित्रनामपुरोहिताय दत्ता। तं पुरोहितं प्राभृतेन समं कस्यचिद्भूपस्य निकटे प्रस्थापयति स्म राजा। स च बहूनि दिनानि नागच्छतीति सचिन्तो नृपस्तत्रैकदागतं सुदर्शनमुनिं पप्रच्छाग्निमित्रः किं नागच्छति।

गई। राजाने उसे राजभवनमें बुलाकर उसके साथ तथा अपनी पुत्री सुरूपाके साथ भी भविष्यदत्तका विवाह कर दिया। साथ ही उसने भविष्यदत्तके लिए अपना आधा राज्य भी दे दिया। तत्पश्चात् राजा होकर वह भविष्यदत्त अपनी दोनों पत्नियोंके साथ सुखानुभवन करता हुआ सुखपूर्वक रहने लगा। वह पिता आदि गुरुजनोंका निरन्तर भक्त रहा।

कुछ समयके पश्चात् भविष्यानुरूपाके गर्भाधान होनेपर उसे दोहलके रूपमें हरिपुरमें स्थित चन्द्रप्रभ जिनालयके दर्शनकी इच्छा उत्पन्न हुई। परन्तु उसने पतिको संक्लेश होनेके भयसे उससे अपनी इच्छा नहीं प्रगट की। उक्त इच्छाकी पूर्ति न हो सकनेसे वह स्वयं कृश होने लगी। उस समय किसी विद्याधरने आकर उसे नमस्कार करते हुए कहा कि हरिपुरस्थ चन्द्रप्रभजिनालयका दर्शन करनेके लिए चलो। तब भूपाल राजा, भविष्यदत्त और भविष्यानुरूपा आदि भव्य जीव उक्त जिनालयका दर्शन करनेके लिए हरिपुर गये। वहाँ उन सभीने आठ दिन तक उस चन्द्रप्रभ जिनालयको आदि लेकर वहाँके सब ही जिनालयोंकी पूजा की। पश्चात् जब वे अपने नगरको वापिस आने लगे तब आकाश मार्गसे एक गगनगति नामक चारण मुनि नीचे आये। उनकी सबने वन्दना की। पश्चात् भविष्यदत्तने पूछा कि हे साधो! यह विद्याधर अकस्मात् भविष्यानुरूपाको नमस्कार करके यहाँ क्यों आया है? मुनि बोले—

इसी आर्यखण्डमें पल्लव देशके भीतर काम्पिल्ल नगरमें महानन्द नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम प्रियमित्रा था। उसके वासव नामका मन्त्री था। मन्त्रीकी पत्नीका नाम केशिनी था। इनके वंक और सुवंक नामके दो पुत्र तथा अग्निमित्रा नामकी एक पुत्री थी। मन्त्रीने उसका विवाह अग्निमित्र नामक पुरोहितके साथ कर दिया था। एक समय इस पुरोहितको राजाने कुछ उपहारके साथ किसी राजाके पास भेजा। उसके जानेके पश्चात् बहुत दिन बीत गये थे, परन्तु वह वापिस नहीं आया था। इससे राजाको बहुत चिन्ता हुई। एक समय वहाँ सुदर्शन मुनिका शुभागमन हुआ। तब राजाने उनसे

१. ज प ब श० भोगानुभवन्। २. ज तत्रामितगतिगगनगतिनामाचारणोऽवतीर्णौ फ ब तत्रामितगतिगगनगतिनामा चारणौ अवतीर्ण श तत्रामितगतिगगनगतिनामा चारणोऽवतीर्णा। ३. ज 'मुनिराह' एतस्य स्थाने अस्य कथा ॥' एवंविधोऽस्ति पाठः।

मुनिरवदत् तत्प्राभृतं तेन वेश्यया भक्षितम्[1]। भयान्नागच्छति। तथापि पञ्चरात्रे आगमिष्यति। तदा तमागतं सवनितं बन्दिगृहे निक्षिप्तवान् राजा। तत्कारागारावासं विलोक्य सुवङ्कः सुदर्शनमुनिपार्श्वे दीक्षितः, केशिनी सुव्रतार्जिकान्ते। आयुरन्ते सुवङ्कः सौधर्मेन्दुप्रभनाम[2] देवोऽजनि। केशिनी तत्रैव रविप्रभदेवो जातः। अत्रैव विजयार्धे दक्षिणश्रेण्यामम्बरतिलकपुरेशपवनवेगविद्युद्वेगयोरिन्दुप्रभः सौधर्मादागत्य मनोवेगनामा सुतोऽभूत्। प्रवृद्धः सन्नेकदा सिद्धकूटं गतः। तत्र जिनवन्दनानन्तरं चारणं नत्वा धर्मश्रुतेरनन्तरं स्वातीतभवान् पृष्टवान्। मुनिः कथितप्रकारेणैव कथितवान्। पुनः सोऽप्राक्षीन्मम जननीचरः रविप्रभः क्वास्ते इति। सोऽवोचद्भविष्यानुरूपादेवीगर्भे[3] तिष्ठति, सापि[4] हरिपुरचन्द्रप्रभजिनालये दर्शनवाञ्छया[5] वर्तते इति श्रुत्वा सोऽयं मनोवेगो गर्भस्थमातृचरजीवव्यामोहेनात्रानीतवानिति निरूप्य मुनिर्गगनेन गतो भविष्यदत्तादयः स्वपुरमाजग्मुः। भविष्यानुरूपा क्रमेण सुप्रभकनकप्रभसोमप्रभसूर्यप्रभाख्यान् पुत्रान् लेभे[6]। सुरूपा धरणिपालं सुतं[7] धारिणीं सुतां चालभत। सुप्रभादीन् शिक्षयन् भविष्यदत्तः संतिष्ठते स्म।

अग्निमित्रके वापिस न आनेका कारण पूछा। मुनिने उत्तरमें कहा कि उसने उस उपहारको वेश्याके साथ खा डाला है। इसीलिए वह भयके कारण वापिस नहीं आया है। फिर भी अब वह पाँच दिनमें यहाँ आ जावेगा। तत्पश्चात् उसके वापिस आनेपर राजाने उसे और उसकी पत्नीको भी कारागारमें बन्द कर दिया। उन्हें कारागारमें स्थित देखकर सुवंकने सुदर्शन मुनिके पास दीक्षा ग्रहण कर ली तथा सुव्रता आर्यिकाके समीपमें केशिनीने भी दीक्षा ले ली। सुवंक आयुके अन्तमें शरीरको छोड़कर सौधर्म स्वर्गमें इन्दुप्रभ नामका देव हुआ और वह केशिनी उसी स्वर्गमें रविप्रभ नामका देव हुई। इसी विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें एक अम्बरतिलक नामका नगर है। उसमें पवनवेग नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम विद्युद्वेगा था। वह इन्दुप्रभ देव सौधर्म स्वर्गसे च्युत होकर इनके मनोवेग नामका पुत्र हुआ। वह वृद्धिंगत होकर एक समय सिद्ध कूटके ऊपर गया था। वहाँ जाकर उसने जिन भगवान्की वन्दना की। तत्पश्चात् उसने चारण मुनिको नमस्कार करके उनसे धर्मश्रवण किया। अन्तमें उसने उनसे अपने पिछले भवोंके सम्बन्धमें पूछा। जैसा कि पूर्वमें निरूपण किया जा चुका है तदनुसार ही मुनिने उसके पूर्व भवोंका निरूपण कर दिया। फिर उसने उनसे पूछा मेरी माताका जीव जो रविप्रभ देव हुआ था वह इस समय कहाँपर है? मुनि बोले कि वह इस समय भविष्यानुरूपा रानीके गर्भमें स्थित है। उस भविष्यानुरूपाके इस समय हरिपुरस्थ चन्द्रप्रभ जिनालयके दर्शन करनेकी इच्छा है। यह सुनकर वह यह मनोवेग विद्याधर गर्भमें स्थित अपने माताके जीवके मोहसे भविष्यानुरूपाको यहाँ ले आया है। इस प्रकार निरूपण करके वे चारण मुनि आकाशमार्गसे चले गये। इधर भविष्यदत्त आदि सब अपने नगरमें आ गये। भविष्यानुरूपाके क्रमशः सुप्रभ, कनकप्रभ, सोमप्रभ और सूर्यप्रभ नामके पुत्र उत्पन्न हुए। दूसरी पत्नी सुरूपाके धरणिपाल नामका पुत्र और धारिणी नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। तब भविष्यदत्त सुप्रभ आदि उन पुत्रोंको शिक्षा देते हुए स्थित था।

---

१. ज फ वेश्यया सह भक्षितं। २. ज सौधर्मेंद्रेःप्रभ°। ब सौधर्मेन्दुप्रभा। ३. प °देवीगृहे। ४. ज सोपि। ५. ज प फ श दर्शन वांछा। ६. ज सूर्यप्रभाख्यालेभे प सूर्यप्रभाख्यापुत्रान्ल्लेभे। ७. श सुरूपा सुरूपं धरणीपालसुतं ज प फ सुरूपा धरणिपालसुतं।

एकदा तत्पुरोद्यानं विपुलमतिविपुलबुद्धी भट्टारकौ समागतौ। वनपालकाद्विबुध्य भूपालादयो वन्दितुमाद्गुः। अभिवन्द्य धर्मश्रवणानन्तरं भविष्यदत्तोऽपृच्छत् स्व-भविष्यानुरूपयोः पुण्यातिशयहेतुं तथा परस्परं स्नेहस्य चाच्युतेन्द्रस्य स्वस्योपरि स्नेहस्य चारिंजयस्य राजस्य[3] (?) राक्षसस्य वैरहेतुं स्वस्य भविष्यानुरूपाया उपरि मोहस्य कमलश्रियो दौर्भाग्यहेतुम्। विपुलमतिः कथयति स्म— अत्रैव द्वीपे ऐरावतार्यखण्डे सुरपुरे राजा वायुकुमारो देवी लक्ष्मीमती मन्त्री वज्रसेनो भार्या श्रीः। तद्दुहिता कीर्तिसेना वज्रसेनेन स्वभागिनेयाय दत्ता। स तां नेच्छतीति स्वपितुर्गृहे श्रीपञ्चमीविधानं कुर्वती तस्थौ। तत्रैव वैश्योऽतीवेश्वरो धनदत्तो भार्या नन्दिभद्रा पुत्रो नन्दिमित्रः। ते धनदत्तादयो मिथ्यादृष्टयोऽपरजैनवैश्यधनमित्रेण संबोध्याणुव्रतानि ग्राहिताः। एकदा ग्रीष्मेऽनेकोपवासपारणायां घर्मजलेनार्द्रीभूतसर्वाङ्गं समाधिगुप्तमुनिं नन्दिभद्रा विलोक्य जुगुप्सां चक्रे। तत्र दुर्भगनामकर्मार्जति स्म। स नन्दिमित्रः समाधिगुप्तमुनिवरान्ते तपसाच्युतेन्द्रोऽजनि। कीर्तिसेना श्रीपञ्चम्या[1] उद्यापनं कृत्वा तत्पुरबहिर्वृक्षकोटरेस्थितं तमेव समाधिगुप्तमुनिं वन्दितुं पित्रा समं विभूत्या जगाम। तन्मार्गे कौशिकनामा तापसः पञ्चाग्निं साधयन् स्थितः। स केनचित्प्रशंसितो वज्रसेनोऽयं मूर्खः पशुप्रख्यः प्रशंसार्हो न भवतीति निनिन्द। तदा तापसोऽत्यन्तकुपितोऽपि कि-

---

एक दिन उस नगरके उद्यानमें विपुलमति और विपुलबुद्धि नामके दो मुनि आकर विराजमान हुए। वनपालसे उनके शुभागमनको जानकर भूपाल राजा आदि उनकी वन्दनाके लिए गये। सबने वन्दना करके उनसे धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् भविष्यदत्तने उनसे अपने और भविष्यानुरूपाके विशेष पुण्य, दोनोंके पारस्परिक स्नेह, अच्युतेन्द्रके द्वारा अपने ऊपर प्रगट किये गये स्नेह, राजा अरिंजय और राक्षसके वैर, भविष्यानुरूपाके ऊपर विद्यमान अपने मोह और कमलश्रीके दुर्भाग्यके भी कारणको पूछा। तदनुसार विपुलमति बोले— इसी द्वीपके ऐरावत क्षेत्रस्थ आर्यखण्डमें सुरपुर नामका नगर है। उसमें वायुकुमार नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम लक्ष्मीमती था। इस राजाके वज्रसेन नामका मन्त्री था। उसकी पत्नीका नाम श्री और पुत्रीका नाम कीर्तिसेना था। वज्रसेनने इस पुत्रीका विवाह अपने भानजेके साथ कर दिया था। परन्तु वह उसे नहीं चाहता था। इसलिए वह अपने पिताके घरपर ही रहती हुई श्री पञ्चमी (श्रुतपञ्चमी) व्रतका पालन कर रही थी। उसी नगरमें एक धनदत्त नामका अतिशय धनवान् सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम नन्दिभद्रा था। उनके एक नन्दिमित्र नामका पुत्र था। वे धनदत्त आदि मिथ्यादृष्टि थे। उन्हें धनमित्र नामके एक दूसरे जैन सेठने समझाकर अणुव्रत ग्रहण करा दियेथे। एक दिन ग्रीष्म ऋतुमें अनेक उपवासोंको करके समाधिगुप्त मुनि पारणाके लिए आये थे। उनका सब शरीर पसीनेसे तर हो रहा था। उनको देखकर नन्दिभद्राको घृणा उत्पन्न हुई। इससे उसके दुर्भग नामकर्मका बन्ध हुआ। उधर उसका पुत्र नन्दिमित्र इन्हीं समाधिगुप्त मुनिराजके समीपमें तपश्चरण करके अच्युत स्वर्गका इन्द्र हुआ था। कीर्तिसेना श्रुतपञ्चमीव्रतका उद्यापन करके नगरके बाहिर वृक्षके खोतेमें स्थित उन्हीं समाधिगुप्त मुनिकी वन्दनाके लिये विभूतिपूर्वक पिताके साथ जा रही थी। उस मार्गमें एक कौशिक नामका तापस पञ्चाग्नि तप कर रहा था। उसकी जब किसीने प्रशंसा की तब वज्रसेनने कहा कि यह मूर्ख पशुके समान अज्ञानी है, वह प्रशंसाके योग्य नहीं है; इस प्रकार वज्रसेनने उसकी निन्दा की। इससे उस तापसको क्रोध तो

---

१. ज प फ श श्रुतपञ्चम्या।

चित्कर्तुमशक्तः। स तु तूष्णीं स्थितः। तं कुपितं ज्ञात्वा धनमित्रकीर्तिसेनाभ्यां प्रियवचनैरुपशान्तिं नीतः। स धनमित्रः कीर्तिसेनाकृतपञ्चम्युपवासेऽत्यन्तं मुमोद[1] तां प्रशशंस[2]। स धनदत्तो मृत्वा धनपतिः श्रेष्ठी जातो नन्दिभद्रा कमलश्रीर्जाता वज्रसेनोऽरिंजयोऽभूत्, कौशिको राक्षसो बभूव। धनमित्रो जैनोऽपि परिणामवैचित्र्याद्विरोधको भूत्वा ममार। तथाप्युपवासानुमोदजातपुण्येन त्वं जातोऽसि, कीर्तिसेना भविष्यानुरूपाभूदिति स्नेहादिकारणं निरूपितम्। विचार्य गृहाणेति (?) स कीर्तिसेनायाः भर्ता बन्धुदत्तोऽभूदिति[3] कथितेऽतीतभवस्वरूपे भविष्यदत्तो जहर्ष, तद्विधानविधिक्रमं तदुद्यापनक्रमं च[4] पृच्छति स्म। मुनिना कथितस्तत्क्रमः समयानन्तरमेव नागकुमारकथायां कथितो ज्ञातव्योऽयं तु विशेषः नागकुमारकथायां शुक्लपञ्चम्यामुपवासः कथितोऽयं कृष्णपञ्चम्यामिति। इति[5] श्रुत्वा भविष्यदत्तो वनितादियुक्तस्तद्विधिं स्वीकृत्यानुष्ठायोद्यापनं कृत्वा बहुकालं राज्यं विधाय स्वनन्दनसुप्रभाय राज्यं वितीर्य बहुभिः पिहितास्रवान्तिके दीक्षितो धनपतिरपि। कमलश्रीभविष्यानुरूपादयः सुव्रतार्जिकासकाशे दीक्षिताः। यथोक्तं तपो विधाय प्रायोपगमनसंन्यासविधिना भविष्यदत्तमुनिः शरीरं विहाय सर्वार्थसिद्धिं जगाम। धनपत्यादयोऽपि स्वपुण्ययोग्यस्थले-

बहुत हुआ, परन्तु वह कर कुछ नहीं सकता था, इसीलिए वह उस समय चुपचाप ही स्थित रहा। उसे क्रोधित देखकर धनमित्र और कीर्तिसेनाने प्रिय वचनोंके द्वारा शान्त किया। उस धनमित्रने कीर्तिसेनाके द्वारा किये गये पञ्चमी-उपवासकी अतिशय अनुमोदना करते हुए उसकी बहुत प्रशंसा की। वह धनदत्त मरकर धनपति सेठ हुआ है, नन्दिभद्रा कमलश्री हुई है, वज्रसेन अरिंजय हुआ है, तथा कौशिक तापस राक्षस हुआ है। धनमित्र यद्यपि जैन था, फिर भी परिणामोंकी विचित्रतासे वह विरोधी होकर मरा और उपवासकी अनुमोदना करनेसे प्राप्त पुण्यके प्रभावसे तुम हुए हो। कीर्तिसेना भविष्यानुरूपा हुई है। इस प्रकार तुम्हारे द्वारा पूछे गये उन स्नेह आदिके कारणका मैंने निरूपण किया है। तुम विचार कर [उस पञ्चमीव्रतको] ग्रहण करो। वह कीर्तिसेनाका पति बन्धुदत्त हुआ है। इस प्रकार मुनिके द्वारा प्ररूपित अपने पूर्व भवोंके स्वरूपको सुनकर भविष्यदत्तको बहुत हर्ष हुआ। फिर उसने उन मुनिराजसे उस पञ्चमीव्रतके अनुष्ठानकी विधि तथा उसके उद्यापनके क्रमको भी पूछा। तब मुनिराजने जिस प्रकारसे उसके क्रमका निरुपण किया वह पीछे नागकुमारकी कथामें कहा जा चुका है, अतएव उसको वहाँसे जानना चाहिये। विशेष इतना ही है कि नागकुमारकथामें जहाँ शुक्ल पञ्चमीको उपवासका निर्देश किया गया है वहाँ इस व्रतविधानमें उसे कृष्ण पंञ्चमीको जानना चाहिये। इस प्रकार उक्त व्रतके विधानादिको सुनकर भविष्यदत्तने पत्नियों आदिके साथ उस व्रतको ग्रहण कर लिया। फिर विधिपूर्वक पालन करके उसने उसका उद्यापन भी किया। भविष्यदत्तने बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् उसने अपने पुत्र सुप्रभको राज्य देकर पिहितास्रव मुनिके समीपमें दीक्षा ग्रहण कर ली। साथमें धनपति सेठने भी दीक्षा धारण कर ली। कमलश्री और भविष्यानुरूपा आदि सुव्रता आर्यिकाके निकटमें दीक्षित हो गईं। भविष्यदत्त मुनिने उक्त क्रमसे तपश्चरण करके प्रायोपगमन (स्व-परवैयावृत्यकी अपेक्षासे रहित) संन्यासको ग्रहण किया। इस क्रमसे वह शरीरको छोड़कर सर्वार्थसिद्ध विमानमें देव उत्पन्न हुआ। धनपति आदि भी अपने अपने पुण्यके अनु-

---

१. प °त्यन्त मुमोद फ श °त्यन्तानुमोद। २. ज प्रशसंसे ब प्रसंस। ३. ब 'स कीर्तिसेनायाः भर्ता बधुदत्तोऽभूदिति' नास्ति। ४ श 'च' नास्ति। ५. फ 'इति' नास्ति।

भूत्वा। कमलश्रीभविष्यानुरूपे शुक्रमहाशुक्रदेवौ जातौ। ततः आगत्यात्रैव पूर्वविदेहे राजपुत्रौ भूत्वा मुक्तिं ययतुः। इति परिकृतोपवासानुमोदेन वैश्य एवंविधो जातो यः स्वयं त्रिशुद्धया करोति स किं न स्यादिति ॥२॥

[३६-३७]

अपि कुथितशरीरो राजपुत्रोऽतिनिन्द्यो
व्यजनि मनसिजातश्चोपवासात्तदैव।
नृसुरगतिभवं शं चारु भुक्त्वा स मुक्त
उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया ॥३॥
जगति विदितकीर्ती रोहिणी दिव्यमूर्ति-
र्विगतसकलशोकाशोकभूपस्य रामा।
अजनि सदुपवासाज्जातपुण्यस्य पाका-
दुपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया ॥४॥

अनयोर्वृत्तयोः कथे रोहिणीचरित्रे[1] यात इति कथ्यते[2]। अत्रैवार्यखण्डे अङ्गदेशचम्पापुरेशमघवश्रीमत्योः पुत्राः श्रीपालगुणपालावनिपालवसुपालश्रीधरगुणधरयशोधर-रणसिंहाख्येत्यष्टौ। तेभ्यो लघ्वी रोहिणी सातिशयरूपा नन्दीश्वराष्टम्यां कृतोपवासा जिनालये जिना-

सार योग्य स्थानोंमें उत्पन्न हुए। कमलश्री और भविष्यानुरूपा शुक्र और महाशुक्र स्वर्गमें देव हुईं। वहाँसे च्युत होकर वे दोनों इसी द्वीपके पूर्वविदेहमें राजपुत्र होते हुए मुक्तिको प्राप्त हुए। इस प्रकार दूसरेके द्वारा किये गये उपवासकी अनुमोदनासे वह धनमित्र वैश्य जब इस प्रकारकी विभूतिको प्राप्त हुआ है तब भला जो मन, वचन व कायकी शुद्धिपूर्वक उसका स्वयं आचरण करता है वह वैसा नहीं होगा क्या ? अवश्य होगा ॥ ३५ ॥

जो राजपुत्र दुर्गन्धित शरीरसे संयुक्त होता हुआ अतिशय निन्दनीय था वह उपवासके प्रभावसे उसी समय कामदेवके समान सुन्दर शरीरवाला हो गया और फिर मनुष्य एवं देवगतिके उत्तम सुखको भोगकर मुक्तिको भी प्राप्त हुआ है। इसीलिए मैं मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक उस उपवासको करता हूँ ॥३॥

पूतिगन्धा उत्तम उपवाससे उत्पन्न हुए पुण्यके फलसे अशोक राजाकी रोहिणी नामकी पत्नी हुई है। दिव्य शरीरको धारण करनेवाली उस रानीकी कीर्ति लोकमें विदित थी तथा वह सब प्रकारके शोकसे रहित थी। इसीलिए मैं मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक उस उपवासको करता हूँ ॥४॥

इन दोनों पद्योंकी कथायें रोहिणीचरित्रमें आई हैं। तदनुसार यहाँ उनका कथन किया जाता है—इसी आर्यखण्डके भीतर अङ्गदेशमें चम्पापुर है। उसमें मघवा राजा राज्य करता था। रानीका नाम श्रीमती था। इन दोनोंके श्रीपाल, गुणपाल, अवनिपाल, वसुपाल, श्रीधर, गुणधर, यशोधर और रणसिंह ये आठ पुत्र थे। उनसे छोटी एक रोहिणी नामकी पुत्री थी जो अतिशय रूपवती थी। वह अष्टाह्निक पर्वमें अष्टमीके दिन उपवासको करके जिनालयमें गई।

१. श रोहिणे चरित्रे। २. ज प फ तद् कथ्यते श तत्कथिते।

मिषेकपूजादिकं विधायागत्य आस्थानस्थस्य पितुर्गन्धोदकादिकमदत्त। पितापृच्छत् हे पुत्रि, किमिति म्लानवदना शृङ्गाररहिता च। तयोक्तं श्वः[1] उपोषितेति। तर्हि गच्छ पारणार्थमिति तां प्रस्थाप्य तद्यौवनश्रियं[2] सलज्जभावेन गच्छन्त्या लुलोके। ततः स्वमन्त्रिणोऽप्राक्षीत् सुतायाः को वरो योग्य इति। तत्र मतिसागरो ब्रूते[3] सिन्धुदेशाधिपतिर्भूपालो योग्योऽप्रतिमरूपत्वात्। श्रुतसागरोऽब्रवीत् पल्लवाधिपतिरर्ककीर्तिः सर्वगुणयुक्तवान्[4]। विमलबुद्धिरुवाच सुराष्ट्रेशो जितशत्रुरनुपमगुणाधार इति।[5] स एव योग्यः। सुमतिरुक्तवान् स्वयंवरविधिः श्रेयान्, स एव कर्तव्य[6] इति। तत्सर्वैरभ्युपगतम्। ततः स्वयंवरशालां विधाय सर्वान् क्षत्रियानाजूहवत् मघवा। तेऽपि समागत्य यथोचितासने उपविविशुः। सातिशयशृङ्गारान्विता रोहिणी धात्रिकायुक्ता रथमारुह्य स्वयंवरशालायां विवेश। तत्र धात्रिका क्षत्रियान् दर्शयितुमारभत। हे पुत्रि, सुकोशलाधिपमहामण्डलेश्वरश्रीवर्मणः सुतोऽयं महेन्द्रः, अयं वङ्गाधिपोऽङ्गदः, अयं डाहलाधिपो[7] वज्रबाहु इत्यादिनानाक्षत्रियदर्शनानन्तरमेकस्मिन् प्रदेशे दिव्यासनस्थमशोककुमारमभीक्ष्य[8] धात्रिकयोच्यते हे पुत्रि, हस्तिनापुरेशकुरुवंशोद्भववीतशोकविमलयोः पुत्रोऽयमशोकः सर्वगुणेश इति[9]। ततस्तया माला तस्य निक्षिप्ता। तदा महेन्द्रस्य

उसने वहाँ जिन भगवान्का अभिषेक और पूजन आदि की। पश्चात जिनालयसे वापिस आकर उसने सभा भवनमें बैठे हुए अपने पिताके लिए गन्धोदक आदि दिया। तब उसके पिताने पूछा कि हे पुत्री! तेरा मुख मुरझाया हुआ क्यों है तथा तूने कुछ शृंगार भी क्यों नहीं किया है? उसने उत्तर दिया कि मेरा कलका उपवास था, इसलिए, शृङ्गार नहीं किया है। इसपर पिताने कहा कि तो फिर जाकर पारणा कर। इस प्रकार उसे भवनके भीतर भेजते हुए राजाने लज्जाके साथ जाती हुई उसके यौवनकी शोभाको देखकर मन्त्रियोंसे पूछा कि इसके लिए कौन-सा वर योग्य होगा? तब उनमेंसे मतिसागर नामका मन्त्री बोला कि सिन्धु देशका राजा भूपाल इसके लिए योग्य होगा, क्योंकि उसकी सुन्दरता असाधारण है। दूसरा श्रुतसागर मन्त्री बोला कि पल्लव देशका राजा अर्ककीर्ति सब ही गुणोंसे सम्पन्न है, अतएव वह इस पुत्रीके लिए योग्य वर है। विमलबुद्धिने कहा कि सुराष्ट्र देशका स्वामी जिनशत्रु अनुपम गुणोंका धारक है, इसलिए वही इसके लिए योग्य वर दिखता है। अन्तमें सुमति मन्त्री बोला कि पुत्रीके लिए योग्य वर देखनेके लिए स्वयंवरकी विधि ठीक प्रतीत होती है, अतएव उसे ही करना चाहिए। सुमतिकी इस योग्य सम्मतिको उन सभीने स्वीकार कर लिया। तब इस स्वयंवर विधिको सम्पन्न करनेके लिए स्वयंवरशालाका निर्माण कराकर मघवा राजाने समस्त राजाओंके पास आमन्त्रण भेज दिया। तदनुसार वे राजा आकर स्वयंवरशालामें यथायोग्य आसनोंपर बैठ गये। उस समय अनुपम वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित रोहिणी धायके साथ रथपर चढ़कर आयी और स्वयंवरशालाके भीतर प्रविष्ट हुई। वहाँपर धायने राजाओंका परिचय कराते हुए रोहिणीसे कहा कि हे पुत्री! यह सुकोशल देशके स्वामी महामण्डलेश्वर श्रीवर्माका पुत्र महेन्द्र है, यह वंग देशका राजा अंगद है, यह डाहल देशका स्वामी वज्रबाहु है, इत्यादि अनेक राजाओंका परिचय कराती हुई वह धाय एक स्थानपर दिव्य आसनके ऊपर बैठे हुए अशोककुमारको देखकर बोली कि हे पुत्री! यह हस्तिनापुरके

१. ब अद्य। २. श प्र स्थाप्यप्योवनश्रियं। ३. ब °रो विचिन्त्याभावत सिंधु°। ४. श युक्तवान्। ५. ब गुणाकारों स। ६. ब स्वयंवरविधिः स कर्तव्य। ७. ज प फ श डाहाल। ८. ब °मवीक्ष्य। ९. श सर्वगुणेशेति।

मन्त्रिणा दुर्मतिनोक्तं हे नाथ, त्वं महामण्डलेशपुत्रोऽतिरूपवान् युवा च। त्वां विहायाशोकस्य माला निक्षिप्ता कन्यया। कन्या किं न[1] जानाति। परं (?) किंतु मघवता पूर्वं तस्य प्रतिपन्नेति तत्संमतेन (?) तया तस्य माला निक्षिप्ता। तत उभौ रणे हत्वा कन्या स्वीकर्तव्येति। तदा महामतिमन्त्रिणोक्तमिमं मन्त्रं किं दातुमर्हसि, दुर्मतित्वाद्ददासि। पूर्वं सकलचक्रवर्तिपुत्रेणार्ककीर्तिना सुलोचना स्वयंवरे किं लब्धाऽतोऽयं मन्त्रो न युक्त इति। तथापि रणाग्रहं न तत्याज महेन्द्रः। सर्वे क्षत्रियास्तस्यैव[2] मिलिताः। तथापि महामतिर्बभाण-स्वयंवरधर्म ईदृश एव, युद्धमनुचितमथ च योत्स्यध्वं तर्हि तदन्तिकं कन्यायाचनाय मन्त्री प्रेषणीयस्तद्वचनेन दत्ता चेद्दत्ता, नो चेत् यूयं यज्जानीत तत्कुरुत इति। तद्वचनेन तत्रातिविचक्षणो दूतः प्रेषितः। स च गत्वा तदग्रे उक्तवान् युवयोर्महेन्द्रादयो रुष्टास्तस्मात्कन्यां महेन्द्राय समर्प्य[3] सुखेन जीवथस्तन्निमित्तं मा म्रियेथामिति। अशोकोऽवदत् हे दूत, स्वयंवरे कन्या यस्य मालां निक्षिपति स एव तस्याः स्वामीति, स्वयंवरधर्म ईदृगेव। अतो मे बाणमुखाग्नौ[4] ते स्वामिन एव पतङ्गाः पतितुमिच्छन्ति चेत्पतन्तु, किं नष्टम्[5]। दृश्यत एव रणे तत्प्रतापो याहीति[6] तं विससर्जाशोकः। स गत्वा यथावत्कथितवान् महेन्द्रादीनाम्। ततस्ते संग्राम-

कुरुवंशी राजा वीतशोक और विमलाका पुत्र अशोक है जो समस्त गुणोंका स्वामी है। तब रोहिणीने उसके गलेमें माला डाल दी। उस समय महेन्द्रके मन्त्री दुर्मतिने उससे कहा कि हे नाथ! तुम महामण्डलेश्वरके पुत्र होकर अतिशय सुन्दर और तरुण हो। फिर भी इस कन्याने तुम्हारी उपेक्षा करके अशोकके गलेमें माला डाली है। क्या कन्या इस बातको नहीं जानती है? परन्तु मघवाने उसे अशोकके विषयमें पहिले ही कह रक्खा था। इस प्रकार उसकी सम्मतिसे ही कन्याने अशोकके गलेमें माला डाली है। इसलिए तुम उन दोनों (मघवा और अशोक) को युद्धमें मारकर कन्याको ग्रहण कर लो। तब महामति नामक मन्त्रीने उससे कहा कि क्या तुम्हें ऐसी सम्मति देना योग्य है? तुम केवल दुष्ट बुद्धिसे ही वैसी सम्मति दे रहे हो। पहिले भरत चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिने भी सुलोचनाके कारण जयकुमारके साथ युद्ध किया था, परन्तु क्या वह सुलोचना उसे स्वयंवरमें प्राप्त हो सकी थी? नहीं। इसलिए यह विचार योग्य नहीं है। फिर भी महेन्द्रने युद्धके दुराग्रहको नहीं छोड़ा। उस समय सब राजा उसीके पक्षमें सम्मिलित हो गये। तब फिरसे भी महामति मन्त्रीने कहा कि स्वयंवरकी प्रथा ही ऐसी है। अतः उसके लिए युद्ध करना अनुचित है। फिर भी यदि युद्ध करना है तो मघवाके पास कन्याको माँगनेके लिए मन्त्रीको भेजना योग्य होगा। उसके कहनेसे यदि वह कन्याको दे देता है तो ठीक है। अन्यथा तुम जो उचित समझो, करना। तदनुसार वहाँ एक अतिशय निपुण दूतको भेजा गया। दूतने उन दोनोंके पास जाकर कहा कि तुम दोनोंके ऊपर महेन्द्र आदि रुष्ट हुए हैं। इसलिए तुम कन्याको महेन्द्रके लिए देकर सुखसे जीवनयापन करो। उसके कारण तुम मृत्युके मुखमें प्रविष्ट मत होओ। दूतके इन वचनोंको सुनकर अशोक बोला कि हे दूत! स्वयंवरमें कन्या जिसके गलेमें माला डालती है वही उसका स्वामी होता है, ऐसा ही स्वयंवरका नियम है। इसलिए मेरे बाणोंके मुखरूप अग्निमें तेरे स्वामी ही यदि पतंगा बनकर गिरना चाहते हैं तो गिरें, इसमें हमारी क्या हानि है? उनके पराक्रमको मैं युद्धमें ही देखूँगा, जाओ तुम। यह उत्तर देकर अशोकने

१. श 'न' नास्ति। २. श स्तथैव। ३. प श संसमर्प्य। ४. श अतोमेवाग्नौ। ५. फ किं न नष्टं ब किं न दृष्टं। ६. ज प श जाहीति।

भेरीनादपुरःसरं संनह्य रणावनौ तस्थुः। ततोऽशोकमघवादयोऽपि व्यूह-प्रतिव्यूहक्रमेण तस्थुः। रोहिणी जिनालये मन्निमित्तं पितृभर्त्रोर्मध्ये कस्यचिन्मरणं भवति चेदाहारशरीर-निवृत्तिरिति संन्यासेन तस्थौ। इत[1] उभयोर्बलयोर्महायुद्धे प्रवृत्ते बहुषु मृतेषु[2] बृहद्वेलायां महेन्द्रबलं नष्टुं लग्नम्। स्वबलभङ्गं दृष्ट्वा महेन्द्रः स्वयं युयुधे। तच्छस्त्रमुखेनावर्तमानं स्वबलं वीक्ष्य अशोकेन स्वीकृतो महेन्द्रस्तत उभौ त्रिलोकचमत्कारि युद्धं चक्रतुः। बृहद्वेलायां महेन्द्रोऽपससार। ततश्चोलपाण्ड्यचेरमादिभिर्वेष्टितोऽशोकस्तदा रोहिणीभ्रातृश्रीपालादिभि-रपसारिताश्चोलादयस्ततः पुनर्महेन्द्रोऽवृणीत[3] श्रीपालादीन्, महायुद्धे तेऽपसारिता महेन्द्रेण। पुनरशोकस्तमवृणोत् महायुद्धे, महेन्द्रस्य छत्रध्वजौ चिच्छेद सारथिनं च जघान. हे महेन्द्र स्वशिरः पतद्रक्ष रक्षेति ब्रुवन् तस्य कण्ठाय बाणं मुमोच। स तत्कण्ठे लग्नस्ततो मूर्च्छया पपात महेन्द्रस्तच्छिरो गृह्णन् अशोको मघवता निवारितः। उन्मूर्च्छितो महेन्द्रो महामतिना शत्रोः स्वशिरो मा देहीत्यपसारितः। ततो जयदुन्दुभिनादं जयपताकोद्धयनं च चकार मघवा। तद्विपक्षभूतेषु केचिद्दीक्षां बभ्रुः, केचित्स्वदेशं ययुः। इतोऽशोकरोहिण्यो-

उस दूतको वापिस भेज दिया। उसने जाकर महेन्द्र आदिसे अशोकके उत्तरको ज्यों-का-त्यों कह दिया। तब वे युद्धकी भेरीको दिलाते हुए सुसज्जित होकर युद्ध भूमिमें जा पहुँचे। तत्पश्चात् अशोक और मघवा आदि भी व्यूह और प्रतिव्यूहके क्रमसे रणभूमिमें स्थित हो गये। उधर रोहिणी, मेरे निमित्तसे युद्धमें यदि पिता और पतिमें-से किसीका मरण होता है तो मैं आहार और शरीरसे मोह छोड़ती हूँ, इस प्रकारके संन्यासके साथ मन्दिरमें जाकर स्थित हो गई। उन दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध प्रारम्भ होनेपर बहुत-से सैनिक मारे गये। इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर महेन्द्रकी सेना भागने लगी। तब अपनी सेनाको भागते हुए देखकर महेन्द्र स्वयं युद्धमें प्रवृत्त हुआ। उसके शस्त्रोंके प्रहारसे अपनी सेनाको भागती हुई देखकर अशोकने स्वयं महेन्द्रका सामना किया। तब उन दोनोंमें तीनों लोकोंको आश्चर्यान्वित करनेवाला युद्ध हुआ। इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर महेन्द्र भाग गया। तब चोल, पाण्ड्य और चेरम आदि राजाओंने उस अशोकको घेर लिया। यह देखकर रोहिणीके भाई श्रीपाल आदिने उक्त चोल आदि राजाओंको पीछे हटा दिया। तब उन श्रीपाल आदिका सामना महेन्द्रने फिरसे किया और उनके साथ घोर युद्ध करके उसने उन्हें पीछे हटा दिया। यह देख अशोकने फिरसे महेन्द्रका सामना करके महायुद्धमें उसके छत्र और ध्वजाको नष्ट कर दिया व सारथीको मार डाला। तत्पश्चात् हे महेन्द्र ! अब तू अपने गिरते हुए शिरकी रक्षा कर, यह कहते हुए अशोकने उसके कण्ठको लक्ष्य करके बाण छोड़ दिया। वह जाकर महेन्द्रके कण्ठमें लगा। इससे वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। उस समय अशोकने उसके शिरको ग्रहण करना चाहा। परन्तु मघवाने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया। जब महेन्द्रकी मूर्च्छा दूर हुई तब महामति मन्त्रीने समझाया कि अब तुम शत्रुके लिए अपना शिर मत दो। इस प्रकार समझाकर उसने महेन्द्रको युद्धसे विमुख किया। तब मघवाने जयभेरीकी ध्वनिके साथ विजयपताका फहरा दी। उसके शत्रुओंमेंसे कितनोंने दीक्षा धारण कर ली और कितने ही अपने देशको वापिस चले गये। इधर अशोक और रोहिणीका

१. प फ श इति। २. प बहुमित्रेसु श बहुमृतेषु। ३ प फ श °वृणीतं ब ॠणीत।

महाविभूत्या विवाहोऽभूत् ।

कतिपयदिनैरशोकस्तया स्वपुरमियाय । पिता संमुखमाययौ । तं नत्वा विभूत्या पुरं विवेश । मात्रा पुण्याङ्गनाभिश्च निक्षिप्तशेषाक्षतादीन् स्वीकृत्य सहागतरोहिणीभ्रात्रे श्रीपालाय स्वभोगिनीं प्रियङ्गुसुन्दरीं दत्त्वा तं स्वपुरं प्रस्थाप्याशोको युवराजः सुखेन तस्थौ । एकदा वीतशोको राजातिशुभ्रमभ्रं विलीनं विलोक्य वैराग्यं जगाम । अशोकाय राज्यं दत्त्वा सहस्रराजपुत्रैर्यमधरस्य पार्श्वे दीक्षितः, मुक्तिं च ययौ । इतो राज्यं [1]कुर्वतोऽशोकरोहिण्योः पुत्रा वीतशोक-जितशोक-नष्टशोक-विगतशोक-धनपाल-स्थिरपाल-गुणपालाश्चेति सप्त, पुत्र्यो वसुंधरी-अशोकवती[2]-लक्ष्मीमती-सुप्रभाश्चेति चतस्रः, ततो लोकपालाख्यो नन्दन इति द्वादशापत्यानां[3] माता बभूव रोहिणी ।

एकदाशोकरोहिण्यौ[4] स्वभवनस्योपरिमभूमौ एकासने चोपविश्य दिशमवलोकयन्तौ तस्थतुः । तदा बहवः स्त्रियः पुरुषाश्च जठरताडनपूर्वमाक्रन्दनं कुर्वन्तो राजमार्गेण जग्मुः । तथाविधान् तान् रोहिणी लुलोकेऽपृच्छच्च स्वपण्डितां वासवदत्तां किमिदमपूर्वनाटकमिति । तदनु सा रुरोष बभाद च हे पुत्रि, रूपादिगर्वेण त्वमेवं वदसि । रोहिण्योक्तं मातः किमिति कुप्यसि, ममेदं किमुपदिष्टं त्वयाहं व्यस्मरमिति कुप्यसि । तयोक्तं पुत्रि, सर्वथा त्वमिदं

महाविभूतिके साथ विवाह सम्पन्न हो गया ।

अशोक कुछ दिन वहींपर रहा । तत्पश्चात् वह रोहिणीके साथ अपने नगरको वापिस गया । उस समय पिता उसको लेनेके लिए सम्मुख आया । तब अशोक पिताको प्रणाम करके विभूतिके साथ पुरके भीतर प्रविष्ट हुआ । उस समय माता एवं अन्य पवित्र (सौभाग्यशालिनी) स्त्रियोंके द्वारा फेंके गये शेषाक्षतोंको अशोकने सहर्ष स्वीकार किया । फिर उसने साथमें आये हुए रोहिणीके भाई श्रीपालके लिए अपनी बहिन प्रियंगुसुन्दरीको देकर उसे अपने नगरको वापिस भेज दिया । इस प्रकार वह अशोक युवराज सुखपूर्वक स्थित हुआ । एक समय अतिशय धवल मेघको नष्ट होता हुआ देखकर वीतशोक राजाके लिए वैराग्य उत्पन्न हुआ । तब उसने अशोकके लिए राज्य देते हुए एक हजार राजपुत्रोंके साथ यमधर मुनिके पासमें जाकर दीक्षा ले ली । अन्तमें वह तपश्चरण करके मुक्तिको प्राप्त हुआ । इधर राज्य करते हुए अशोक और रोहिणीके वीतशोक, जितशोक, नष्टशोक, विगतशोक, धनपाल, स्थिरपाल और गुणपाल ये सात पुत्र तथा वसुंधरी, अशोकवती, लक्ष्मीमती और सुप्रभा ये चार पुत्रियाँ हुईं । अन्तमें उनके एक लोकपाल नामका अन्य पुत्र हुआ । इस प्रकार रोहिणी बारह सन्तानोंकी माता हुई ।

एक समय अशोक और रोहिणी दोनों अपने भवनके ऊपर एक आसनपर बैठे हुए दिशाओंका अवलोकन कर रहे थे । उस समय बहुत-सी स्त्रियाँ और पुरुष अपने उदरको ताड़ित करके रोते हुए राजमार्गसे जा रहे थे । उन सबको वैसी अवस्थामें देखकर रोहिणीने वासवदत्ता नामकी अपनी चतुर धायसे पूछा कि यह कौन-सा अपूर्व नाटक है ? यह सुनकर धायको क्रोध आ गया । वह बोली कि हे पुत्री ! तू रूप आदिके अभिमानसे इस प्रकार बोल रही है । इसपर रोहिणी बोली कि हे माता ! क्रोध क्यों करती हो ? क्या तुमने मुझे इसका उपदेश दिया है और मैं भूल गई हूँ, इसलिए क्रोध करती हो ? तब उस धायने पूछा कि हे पुत्री ! क्या तू इसे सर्वथा

१. ब कुर्व्वीतोरशोक । २. ब अशोकमती । ३. ब इति:प्रसिद्धो द्वादशापत्यानां । ४. श एकरोहिण्यौ ।

न जानासि। तयोक्तम् 'न'। [1]तदार्यभावं विलोक्य पण्डितावोचत् पुत्रि, कश्चिदेतेषां मृत इत्येते शोकं कुर्वन्तीति। तदानीमेव[2] लोकपालकुमारः प्रमादेन प्रासादाद्भूमौ पतितस्तदा सर्वेऽपि शोकं चक्रुर्मातापितरौ तूष्णीं तस्थतुः। तदा नगरदेवतया स बालोऽन्तराले हंसतल्पेन धृतः। तद्दर्शनेन जनानन्दो[3]ऽभून्मातापित्रोश्च। द्वितीयदिने तन्नगरोद्याने[4] रूप्यकुम्भ-स्वर्णकुम्भौ मुनी आगतौ[5]। वनपालकाद्विबुध्यानन्दभेरीरवपुरःसरं राजा सपरिवारो वन्दितुं निःससार। समर्च्य वन्दित्वा धर्मश्रुतेरनन्तरं नरेशः पृच्छति स्म 'अस्मिन्नगरे अतीतदिने जनानां शोकः किमभूद्रोहिणी देवी शोकं किं न जानाति, केन पुण्येनाहं जातः, तथा मदपत्यातीतभवाश्च के'' इति[6]। तत्र रूप्यकुम्भ प्राह[7] शोककारणम् –एतन्नगरस्य पूर्वस्यां दिशि द्वादशयोजनेषु गतेषु नीलाचलो नाम गिरिरस्ति। तच्छिलाया उपरि पूर्वं[8] यमधरमुनिरातापनेन तस्थौ। तन्माहात्म्येन तत्रत्यभिल्लस्य मृगमारेः पापर्द्धिर्न मिलतीति[9] स भिल्लस्तं द्वेष्टि। एकदा स मासोपवासपारणायां तत्समीपस्थामभयपुरीं चर्यार्थं ययौ। तदा तेनातापनशिला खदिराङ्गारैर्धमिता। तदागमं विलोक्य तेनाङ्गारा अपसारितास्तथाविधां तां विलोक्य मुनिर्गृहीतप्रतिज्ञ इति संन्यासमादायारुरोह। तदुपसर्गं समुत्पन्नकेवलस्तदैव मुक्तिमुपजगाम।

ही नहीं जानती है? रोहिणीने उत्तर दिया कि नहीं। तब उसकी सरलताको देखकर पण्डिताने कहा कि हे पुत्री! इनका कोई मर गया है, इसलिए ये शोक कर रहे हैं। उसी समय लोकपाल कुमार असावधानीके कारण छतपरसे नीचे गिर गया। तब सब लोग पश्चात्ताप करने लगे। परन्तु माता और पिता दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। उस समय नगरदेवताने उस लोकपालको बीचमें ही कोमल शय्याके ऊपर ले लिया था। यह देखकर लोगोंको तथा माता-पिताको भी बहुत आनन्द हुआ। दूसरे दिन उस नगरके उद्यानमें रूप्यकुम्भ और स्वर्णकुम्भ नामके दो मुनि आये। वनपालसे इस शुभ समाचारको जानकर राजाने आनन्दभेरी दिला दी। वह स्वयं परिवारके साथ उनकी वन्दनाके लिए निकल पड़ा। उद्यानमें पहुँचकर उसने उनकी पूजा और वन्दना की। तत्पश्चात् धर्मश्रवण करके उसने उनसे निम्न प्रश्न किये— पिछले दिन इस नगरके जनोंको शोक क्यों हुआ, रोहिणी रानी शोकको क्यों नहीं जानती है, और मैं किस पुण्यके फलसे उत्पन्न हुआ हूँ। साथ ही उसने अपने पुत्रोंके अतीत भवोंके कहने की भी उनसे प्रार्थना की। तब रूप्यकुम्भ मुनिने प्रथमतः लोगोंके शोकका कारण इस प्रकार बतलाया— इस नगरकी पूर्व दिशामें बारह योजन जाकर नीलाचल नामका पर्वत है। पूर्वमें उस पर्वतकी एक शिलाके ऊपर यमधर मुनि आतापनयोगसे स्थित थे। उनके प्रभावसे वहाँ रहनेवाले मृगमारि नामक भीलको शिकार नहीं मिल रही थी। इससे मृगमारिको उनके ऊपर क्रोध आ रहा था। एक दिन यमधर मुनि एक मासके उपवासके बाद पारणाके लिए उक्त पर्वतके समीपमें स्थित अभयपुरीमें गये थे। उस समय अवसर पाकर उस भीलने उस आतापनशिलाको खैर आदिके अंगारोंसे संतप्त कर दी। फिर उसने मुनिराजको वापिस आते हुए देखकर शिलाके ऊपरसे उन अंगारोंको हटा दिया। मुनिराजने उस शिलाके ऊपर आतापनयोगकी प्रतिज्ञा ले रक्खी थी। इसलिए वे उसे संतप्त देखकर सन्यासको ग्रहण करते हुए उसके ऊपर चढ़ गये। इस भयानक उपसर्गको जीतनेसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया और वे तत्काल मुक्त हो गये। उधर उस भीलको सातवें दिन उदुम्बर-

१. ज प फ श तत्सदार्यभावं [तदृजुभावं]। २. श तदिदानीमेव। ३. ज जनानादं°। ४. ज फ ब श °द्यानं। ५. श आगतौ मुनि। ६. ब भवाश्च इति ज प फ श भवाश्च [भवाश्च]के इति। ७. प रौप्यकुंभप्राह श रौप्यकुम्भः प्राह्। ८. ब पूर्वं स यम°। ९. ब °र्द्धिर्निमिलतीति श० र्द्धि स मिलतीति।

स भिक्षुः सप्तमदिने उत्पन्नोदुम्बरकुष्ठेन कुथितशरीरो[1] मृत्वा सप्तमावनिं जगाम। ततो निर्गत्य त्रसस्थावरादिषु भ्रमित्वाऽत्र पुरे[2] गोपालाम्बरगान्धार्योस्तनुजो दण्डकोऽभूत। स परिभ्रमन् नीलाचलं गतस्तत्र दावाग्निना मृतः। तच्छुद्धिं प्राप्य तद्बान्धवाः संभूय रुदन्तस्तस्थुरिति जनानां शोककारणम्।

इदानीं रोहिण्याः शोकाभावकारणं कथ्यते— अत्रैव हस्तिनापुरे पूर्वं वसुपालो नाम राजाभूद्राज्ञी वसुमती श्रेष्ठी धनमित्रो भार्या धनमित्रा तनुजातिदुर्गन्धा दुर्गन्धाभिधा। तां न कोऽपि परिणयति। अपरो वणिक् सुमित्रो वनिता वसुकान्ता पुत्रः श्रीषेणः सप्तव्यसनाभिभूतः। एकदा चौरिकायां चण्डपासकैः[3] धृतो राजवचनेन शूले प्रवणार्थं नीयमानो धनमित्रेण दृष्ट्वा भणितो मत्पुत्रीं परिणेष्यसि चेत् मोचयामि त्वाम्। स बभाण म्रिये, न परिणेष्यामि। तदा बन्धुजनाग्रहेण तत्परिणयनमभ्युपगतं तेन। श्रेष्ठिना भूपं विज्ञाप्य मोचितस्तां परिणीय तद्दुर्गन्धं सोढुमशक्तो रात्रौ पलाय्य गतः। मातापितृभ्यां तस्या भणितं पुत्रि, त्वं धर्मं कुर्विति। भिक्षाभाजोऽपि तद्धस्ते स्वर्णादिकमपि नेच्छन्ति। एकदा संयमश्रीः क्षान्तिका चर्यामार्गेण तद्गृहमागता[4]। सा तां[5] स्थापयामास। इयं व्याधिता न भवति,[6] सहजदुर-

कोढ़ उत्पन्न हो गया। इससे उसके समस्त शरीरमेंसे दुर्गन्ध आने लगी। तब वह मरणको प्राप्त होकर सातवें नरकमें गया। फिर वह वहाँसे निकलकर अनेक त्रस-स्थावर योनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ इसी पुरमें ग्वाला अम्बर और गान्धारीके दण्डक पुत्र हुआ था। वह घूमता हुआ नीलाचल पर्वतके ऊपर गया और वहाँ वनाग्निके मध्यमें पड़कर मर गया। तब उसकी खबर पाकर कुटुम्बी जन एकत्रित होकर रोते हुए वहाँ गये। यह उनके शोकका कारण है।

अब मैं रोहिणीके शोक न होनेके कारणको बतलाता हूँ— इसी हस्तिनापुरमें पहिले एक वसुपाल नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम वसुमती था। वहींपर एक धनमित्र नामका सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम धनमित्रा था। इनके अतिशय दुर्गन्धित शरीरवाली एक दुर्गन्धा नामकी पुत्री थी। उसके साथ कोई भी विवाह करनेके लिए उद्यत नहीं होता था। वहींपर एक सुमित्र नामका दूसरा सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम वसुकान्ता था। इनके एक श्रीषेण नामका पुत्र था जो सात व्यसनोंमें रत था। एक समय वह चोरी करते हुए कोतवालोंके द्वारा पकड़ लिया गया था। वे उसे राजाज्ञाके अनुसार शूलीपर चढ़ानेके लिए ले जा रहे थे। मार्गमें धनमित्रने देखकर उससे कहा कि यदि तुम मेरी पुत्रीके साथ विवाह कर लेते हो तो मैं तुम्हें छुड़ा देता हूँ। इसपर उसने उत्तर दिया कि मैं मर जाऊँगा, परन्तु आपकी पुत्रीके साथ विवाह नहीं करूँगा। किन्तु तत्पश्चात् बन्धुजनोंके आग्रहसे श्रीषेणने धनमित्रकी पुत्रीके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया। तब सेठने राजासे प्रार्थना करके उसे मुक्त करा दिया। इसके पश्चात् उसने दुर्गन्धाके साथ विवाह तो कर लिया, परन्तु वह उसके शरीरकी दुर्गन्धको न सह सकनेके कारण रातमें वहाँसे भाग गया। तब माता पिताने दुर्गन्धासे कहा कि हे पुत्री! तू धर्मका आचरण कर। उसके शरीरसे इतनी अधिक दुर्गन्ध आती थी कि जिससे अन्यकी तो बात ही क्या, किन्तु भिखारी तक उसके हाथसे सोना आदि भी लेना पसन्द नहीं करते थे। एक दिन उसके घरपर चर्यामार्गसे संयमश्री नामकी आर्यिका आई। दुर्गन्धाने उनका पडिगाहन किया। उस समय आर्यिकाने विचार किया कि यह रुग्ण नहीं है, किन्तु स्वभावतः

१ फ कुथितगरीरे। २. श गोपुरे। ३. प चण्डिपासिकैर्धृतो ब चण्डपासकैधृतो श चण्डिपासकैधृतो। ४. श °मागत्य। ५. ब 'तां' नास्ति। ६. ज व्याधिता न वेति भवति।

भिमन्धेति पुद्गलविकारः कश्चिदेवंविध इत्येतद्धस्ते स्थितौ दोषो नास्तीति स्वं निर्विचिकित्सागुणं प्रकाशयन्ती सा तस्थौ। सा तस्या नैरन्तर्यं चकार। तदनु सा तां प्रार्थयति स्म हे अर्जिके, मां मा त्यज, त्वत्प्रसादात्सुखिनी भवामीति। ततः सा तत्कृपया तत्रैव तस्थौ।

एकदा तत्पुरोद्यानं पिहितास्रवमुनिराजगाम। वनपालकात्तदागमनमवगम्य राजादयो वन्दितुं निःसत्तुर्वन्दित्वा धर्ममाकर्ण्य पुरं प्रविविशुः। दुर्गन्धापि तयार्जिकया गत्वा ववन्दे। तदनु पप्रच्छ केन पापेनाहमेवंविधा जातेति। मुनिराह—सुराष्ट्रदेशे गिरिनगरे राजा भूपालो देवी सुरूपवती श्रेष्ठी गङ्गदत्तो भार्या सिन्धुमती। एकदा वसन्ते उद्यानं गच्छता राज्ञा गङ्गदत्त आहूतः। स गृहात्सवनितो निःसरन् चर्यार्थं संमुखमागच्छन्तं गुणसागरमुनिं ददर्श स्थापितवांश्च। राजभयाद्वनितां बभाण हे प्रिये, मुनिं चर्यां कारयेति। सा पतिभयान्न किमप्युवाच। तस्य परिवेषणार्थं तस्थौ। श्रेष्ठी गतः। सा मम जलक्रीडाविघ्नकरोऽयमस्य[1] जानामीति वाजिनिमित्तं मेलितं कटुकं तुम्बमदत्त। स तद् गृहीत्वा वसतिकां ययौ। तत्र महति दाघे समुत्पन्ने संन्यासेन मृत्वाच्युतं जगाम। राजा पुरं प्रविशंस्तद्विमानं निर्गच्छल्लु-

दुर्गन्धमय शरीरसे संयुक्त है। इसके शरीर सम्बन्धी पुद्गलका कुछ विकार ही इस प्रकारका है। इस कारण इसके हाथसे आहार ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं है। इस प्रकारका विचार करके वे आर्यिका निर्विचिकित्सा गुणको प्रगट करती हुई वहाँ स्थित हो गई। तब दुर्गन्धाने उन्हें निरन्तराय आहार दिया। तत्पश्चात् उसने उनसे प्रार्थना की कि हे आर्यिके! मुझे न छोड़िये, आपके प्रसादसे मैं सुखी होऊँगी। इसपर वे उसके ऊपर दयालु होकर वहींपर ठहर गई।

एक समय उस नगरके उद्यानमें पिहितास्रव मुनि आये। वनपालसे उनके आगमनके समाचारको जान करके राजा आदि उनकी वन्दनाके लिए निकले। उनकी वन्दनाके पश्चात् वे धर्मश्रवण करके नगरमें वापिस आये। संयमश्री आर्यिकाके साथ जाकर दुर्गन्धाने भी उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् उसने उनसे पूछा कि मैं किस पापके फलसे इस प्रकारकी हुई हूँ। मुनि बोले— सुराष्ट्र देशके भीतर गिरिनगर है। वहाँ भूपाल नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम सुरूपवती। था इसी नगरमें एक गंगदत्त नामका सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम सिन्धुमती था। एक बार वसन्त ऋतुके समयमें उद्यानको जाते हुए राजाने गंगदत्तको बुलाया। वह पत्नीके साथ घरमेंसे निकल ही रहा था कि इतनेमें उसे चर्याके लिए सम्मुख आते हुए गुणसागर मुनि दिखायी दिये। तब उसने उनका पडिगाहन किया और राजाके भयसे अपनी पत्नीसे कहा कि, हे प्रिये! तुम मुनिको आहार करा दो। इसपर वह पतिके भयसे कुछ भी नहीं बोली और मुनिको परोसनेके लिए ठहर गई। सेठ राजाके साथ उद्यानको चला गया। इधर सिन्धुमतीने 'यह मुनि मेरी जलक्रीड़ामें बाधक हुआ है, मैं इसे देखती हूँ' इस प्रकार सोचकर घोड़ेके लिए मँगायी गयी कड़ुवी तूंबड़ी मुनिके लिए दे दी। मुनि उक्त तूंबड़ीका भोजन करके वसतिकाको चले गये। इससे उनके शरीरमें अतिशय दाह उत्पन्न हुई। तब उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। अन्तमें संन्यासपूर्वक शरीरको छोड़कर वे अच्युत स्वर्गको प्राप्त हुए। उधर उद्यानसे वापिस आकर नगरके भीतर प्रवेश करते हुए राजाने उनके विमानको निकलते हुए देखा। तब

१. ब विघ्नकरो अस्य।

लोके। कोऽयं मुनिर्मृतेति [मुनिर्मृत इति] पप्रच्छ[1]। कश्चिदाह—मासोपवासपारणायां गुणसागरमुनेः[2] सिन्धुमत्या अश्वार्थं कृतं कटुकं तुम्बं दत्तम्, स मृत इति। तदनु श्रेष्ठी दीक्षितः। राजा कर्णनासिकाछेदं कृत्वा गर्दभमारोप्य तां निःसारयामास। सा कुष्ठिनी कुथितशरीरा मृत्वा षष्ठनरके गता। नरकादागत्यारण्ये शुनी[3] जाता, दावाग्निना[4] ममार, तृतीयनरकं[5] गता। ततः कौशाम्ब्यां शूकरी बभूव। अजीर्णेन मृत्वा कोशलदेशे नन्दिग्रामे मूषिकाऽजनि। तृषायां मृत्वा जलूका[6] बभूव। जलं पातुं प्रविष्टा[ष्ट]महिषीशरीरे लग्ना। आकृष्टरुधिरभारेण घर्मे पतिता काकैर्भक्षिता मृता उज्जयिन्यां चण्डाली जज्ञे, जीर्णज्वरेण ममाराहिच्छत्रनगरे रजकगृहे रासभी व्यजनि। ततोऽपि मृत्वाऽत्र हस्तिनापुरे ब्राह्मणगृहे कपिला गौर्जाता कर्दमे मग्ना मृता त्वं जाताऽसीति निशम्य दुर्गन्धा पुनः पृच्छति स्म— हे नाथ, दुर्गन्धगमनोपायं कथय। [स] कथयति स्म— हे पुत्रि, सप्तविंशतिमे दिने[7] रोहिणीनक्षत्रमागच्छति। तस्मिन्नुपवासः कर्तव्यः[8]। तदुपवासक्रमः— कृत्तिकायां स्नात्वा जिनमभ्यर्च्यैकभक्तं ग्राह्यम्। भुक्त्वात्मादि(?)साक्षिक उपवासो ग्राह्यः। स च मार्गशीर्षमासे प्रारम्भणीयं[9]स्तद्दिने जिनाभि-

उसने किसीसे पूछा कि ये कौन-से मुनि मरणको प्राप्त हुए हैं ? यह सुनकर किसीने कहा कि एक मासका उपवास पूर्ण करके गुणसागर मुनि पारणाके लिए गये थे। उन्हें सिन्धुमतीने घोड़ेके लिये तैयारकी गई कडुवी तूंबड़ी दे दी। इससे उनका स्वर्गवास हो गया है। इस घटनासे सेठने दीक्षा धारण कर ली। उधर राजाने सिन्धुमतीके कान और नाक कटवा लिये तथा उसे गधेके ऊपर चढ़ाकर नगरसे बाहिर निकलवा दिया। तत्पश्चात् सिन्धुमतीको कोढ़ निकल आया। इससे उसका शरीर दुर्गन्धमय हो गया। वह मरकर छठे नरकमें पहुँची। वहाँसे निकलकर वह वनमें कुत्ती हुई और वनाग्निमे जलकर मर गई। फिर वह तृतीय नरकको प्राप्त हुई। वहाँसे निकलकर वह कौशाम्बी नगरीमें शूकरी हुई। तत्पश्चात् अजीर्णसे मरकर वह कोशल देशके अन्तर्गत नन्दिग्राममें चुहिया हुई। इस पर्यायमें वह प्याससे पीड़ित होकर मरी और जलूका (गोंच) हुई। वहाँ उसने जल पीनेके लिए आयी हुई भैंसके शरीरमें लगकर उसका रक्तपान किया। उस रक्तके बोझसे धूपमें गिर जानेपर उसे कौओंने खा लिया। तब वह मरकर उज्जयिनी पुरीमें चाण्डालिनी हुई। फिर वह जीर्ण-ज्वरसे मरकर अहिछत्र नगरमें धोबीके घरपर गधी हुई। तत्पश्चात् मरणको प्राप्त होकर वह यहाँ हस्तिनापुरमें एक ब्राह्मणके घरपर कपिला गाय उत्पन्न हुई। वह कीचड़में फँसकर मरी और फिर तू हुई है। इस प्रकार अपने पूर्व भवोंकी परंपराको सुनकर दुर्गन्धाने उनसे फिर पूछा कि हे नाथ ! मेरे इस शरीरकी दुर्गन्धके नष्ट होनेका क्या उपाय है ? इसपर मुनिने कहा कि हे पुत्री ! सत्ताईसवें दिन रोहिणी नक्षत्र आता है। उस दिन तू उपवास कर। इस उपवासका क्रम इस प्रकार है— कृत्तिका नक्षत्रके समयमें स्नान करके जिन भगवान्की पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् एकाशनकी प्रतिज्ञा लेकर भोजन करे और स्वयं या अन्य किसीके साक्षीमें उपवासका नियम ले ले। इस उपवासको मार्गशीर्ष माससे प्रारम्भ करना

१. ब कोयं मुनेपि पप्रच्छ। २. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श मुनिः। ३. ज ब अरण्यशुनी। ४. ब दवाग्निना। ५ ब द्वितीय। ६. श जलूका। ७. ब सप्तविंशतिदिने। ८. श अतोऽग्रे 'ग्राह्यः' पर्यन्तः पाठः स्खलितो जातः। ९. ब प्रारभनीय°।

षेकादिकं कृत्वा धर्मध्यानेनैव स्थातव्यम्, पारणाह्ने[1] जिनपूजनादिकं विधाय[2] यथाशक्ति पात्रदानं च, तदनु पारणा कर्तव्या। स च रोहिणीविधानविधिरुत्कृष्टो मध्यमो जघन्यश्चेति त्रिविधः। सप्त वर्षाणि यो विधीयते स उत्कृष्टः, पञ्च वर्षाणि मध्यमः, त्रीणि वर्षाणि जघन्यः।

तदुद्यापनक्रमः कथ्यते— तस्मिन्नेव मासे रोहिणीनक्षत्रे जिनप्रतिमां[3] कारयित्वा प्रतिष्ठाप्य पञ्चपञ्चसंख्यकं घृतादिकलशैर्जिनाभिषेकं कृत्वा पञ्चतण्डुलपुञ्जैः पञ्चप्रकारपुष्पैः पञ्चभाजनस्थनैवेद्यैः पञ्चदीपैः पञ्चाङ्गधूपैः पञ्चप्रकारफलैर्जिनं पूजयित्वा[4] पञ्च-पञ्च संख्याकोपकरणैः समेताः प्रतिमा वसतये देयाः, पञ्चाचार्येभ्यः पञ्च पुस्तकानि यथाशक्ति साधूनां पूजार्जिकाभ्यो वस्त्राणि श्रावकश्राविकाभ्यः[5] परिधानं च देयम्, शक्त्यनुसारेणाभय-घोषणाहारदानादिना प्रभावना कार्या, तद्दिवसे वसतौ पञ्चवर्णतण्डुलैरर्धतृतीयौ द्वीपौ विलिख्य पूजनीयाविति। यस्योद्यापने शक्तिर्नास्ति स द्विगुणं प्रोषधं कुर्यात्। एतत्फलेनेहापि सुखं लभेरन्[6] भव्या इति निशम्य पूतिगन्धा एतद्विधानं जग्राह।

पुनस्तं पृच्छति स्म पूतिगन्धा— मद्विधः कोऽपि संसारे दुर्गन्धदेहो जातो नो वा। मुनिराह— कलिङ्गदेशे महाटव्यां गजौ ताम्रकर्णश्वेतकर्णौ करिणीनिमित्तं युद्ध्वा मृतौ मूषक-

चाहिये। उस दिन जिन भगवान्का अभिषेक व पूजनादि करके धर्मध्यानमें कालयापन करना चाहिये। फिर पारणाके दिन जिनपूजनादिके साथ पात्रदान करके तत्पश्चात् पारणा करे। वह रोहिणीव्रतकी विधि उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी है। उनमें उक्त व्रतका सात वर्ष तक पालन करनेपर वह उत्कृष्ट, पाँच वर्ष तक पालन करनेपर मध्यम और तीन वर्ष तक पालनेपर जघन्य होता है।

अब उसके उद्यापनकी विधि बतलाते हैं— उसी मार्गशीर्ष माहमें रोहिणी नक्षत्रके होनेपर जिनप्रतिमाका निर्माण कराकर उसकी प्रतिष्ठा कराना चाहिये। तत्पश्चात् पाँच पाँच संख्यामें घी आदिके कलशोंसे जिन भगवान्का अभिषेक करके पाँच अक्षतपुँजों, पाँच प्रकारके पुष्पों, पाँच पात्रोंमें स्थित नैवेद्यों, पाँच द्वीपों, पंचांग धूपों और पाँच प्रकारके फलोंसे जिनपूजन करना चाहिये। साथ ही पाँच उपकरणों-सहित प्रतिमाओंको वसतिकाके लिए देना चाहिये। इसके अतिरिक्त पाँच आचार्योंके लिए पाँच पुस्तकोंको, यथाशक्ति साधुओंको पूजा (अर्घ), आर्यिकाओंके लिए वस्त्र और श्रावक-श्राविकाओंके लिए परिधान (धोती आदि पहिरनेके वस्त्र) को भी देना चाहिये। अन्तमें जैसी जिसकी शक्ति हो तदनुसार अभयकी घोषणा करके आहारदानादिके द्वारा धर्मप्रभावना भी करना चाहिये। उस दिन जिनालयमें पाँच वर्णके चावलोंसे अढ़ाई द्वीपोंकी रचना करके पूजन करना चाहिये। जो व्रती उद्यापन करनेमें असमर्थ हो उसे उक्त व्रतका पालन नियमित समयसे दुगुणे काल तक करना चाहिये। इस व्रतके फलसे भव्य जीव परलोकमें तो सुख प्राप्त करते ही हैं, साथमें वे उसके फलसे इस लोकमें भी सुख पाते हैं। इस प्रकार रोहिणीव्रतके विधानको सुनकर पूतिगन्धाने उसे ग्रहण कर लिया।

पश्चात् पूतिगन्धाने उनसे पुनः प्रश्न किया कि इस संसारमें मेरे समान दूसरा भी कोई ऐसे दुर्गन्धयुक्त शरीरसे सहित हुआ है अथवा नहीं? मुनि बोले— कलिंग देशके भीतर एक महावनमें ताम्रकर्ण और श्वेतकर्ण नामके दो हाथी थे। वे हथिनीके निमित्तसे परस्पर

१. फ पारणाह्ले। २. श विधाय' नास्ति। ३. श प्रतिमा। ४. ब प्रतिपाठोऽयम्। श जिनपूजनं पूजयित्वा। ५. ब वस्त्राणि श्रावकाभ्यः परि°। ६. प फ श लभेत्।

मार्जारौ बभूवतुः। तत्र मार्जारेणाखुर्हतः सन् नकुलोऽभून्मार्जारोऽहिर्नकुलेन हतोऽपि अहिः कुर्कुटो[1]ऽजनि, नकुलो मत्स्यः। तदनु पारापतौ बभूवतुः, विद्युता मृतौ तुरत्रैव हस्तिनापुरे राजा सोमप्रभो रामा कनकप्रभा पुरोहितो रविस्वामी रमणी सोमश्रीस्तस्याः सोमशर्मसोमदत्तौ यमलकाव[2]जनिषाताम्। तयोः क्रमेण वनिते सुकान्तालक्ष्मीमत्यौ। मृते तत्पितरि राज्ञा कनिष्ठः पुरोहितो विहितः। स राजमान्यो भूत्वा तस्थौ। सोमशर्मा मद्वनितया यातीति विबुध्य सोमदत्तो दिगम्बरोऽजनि, सकलागमधरो भूत्वा एकविहारी जातो विहरन्नेकदा हस्तिनापुरबहिःप्रदेशमागतः। तदा सोमप्रभो नृपो मगधेशनिकटे मदनावलीनाम्नीं[3] तत्कन्यां व्यालसुन्दरं च हस्तिनं याचितुं स्वविशिष्टं[4]मयापयद्दास्यति नो वेति स्वयमपि[5] प्रस्थानमकार्षीत्। तदा स तं मुनिमद्राक्षीत्। तत्तपोग्रहणं विज्ञाय तत्पदं सोमशर्मणे दत्तम् तं पृष्टवान् नृपः प्रस्थाने क्रियमाणे श्रमणो[6] दृष्टः, किं क्रियते इति। सोमशर्मा भ्रातरं विज्ञाय जन्मान्तरवैरभावेनावदत् इममपशकुनकारकं दिशाबलिं कृत्वा[7] गन्तव्यम्। एतत् श्रुत्वा नृपो पापमिति भणित्वा श्रोत्ररन्ध्रे करयुगेन पिधाय तस्थौ। तदा विश्वदेवः शाकुनिको ब्रूते[8] हे पुरोहित,

लड़े और मरकर चूहा एवं बिलाव हुए, इनमें चूहेको बिलावने मार डाला। वह मरकर नेवला हुआ। उधर वह बिलाव मरकर सर्प हुआ। इस सर्पको उस नेवलेने मार डाला। वह मरकर कुक्कुट (मुर्गा) हुआ और वह नेवला समयानुसार मरणको प्राप्त होकर मत्स्य हुआ। तत्पश्चात् वे दोनों मरकर कबूतर हुए। यहीं हस्तिनापुरमें किसी समय सोमप्रभ राजा राज्य करता था। रानीका नाम कनकप्रभा था। इस राजाके यहाँ रविस्वामी नामका पुरोहित था। इसकी पत्नीका नाम सोमश्री था। वे दोनों कबूतर बिजलीके निमित्तसे मरकर इस सोमश्रीके सोमशर्मा और सोमदत्त नामके दो युगल पुत्र हुए थे। इन दोनोंकी स्त्रियोंका नाम क्रमशः सुकान्ता और लक्ष्मीमती था। जब इनका पिता मरा तब राजाने छोटे पुत्र (सोमदत्त) को पुरोहित बनाया। तब वह राजमान्य होकर स्थित हुआ। पश्चात् सोमशर्मा मेरी पत्नीके साथ संभोग करता है, यह जानकर उस सोमदत्तने जिनदीक्षा ले ली। वह समस्त आगमका ज्ञाता होकर एक-विहारी हो गया। इस प्रकारसे विहार करता हुआ वह एक समय हस्तिनापुरके बाह्य प्रदेशमें आया। इसी समय सोमप्रभ राजाने मगध देशके राजाके पास उसकी कन्या मदनावली और व्याल सुन्दर हाथीको माँगनेके लिए अपने विशिष्ट (दूत) को भेजा। साथमें 'वह देगा कि नहीं' इस सन्देहके वश होकर राजाने स्वयं भी प्रस्थान किया। उस समय राजाने जाते हुए मार्गमें उन सोमप्रभ मुनिको देखा। उधर सोमप्रभ राजाने सोमदत्तको दीक्षित हो गया जानकर पुरोहितका पद सोमशर्माके लिए दे दिया था। उस समय प्रस्थान करते हुए राजाने जब सोमदत्त मुनिको देखा तब उसने सोमशर्मा पुरोहितसे पूछा कि प्रस्थानके समयमें यदि दिगम्बर मुनि दिखें तो क्या करना चाहिये? यह सुनकर सोमशर्माने सोमदत्त मुनिको अपना भाई जानकर जन्मान्तरके द्वेषवश राजासे कहा कि इसे अपशकुन कारक समझकर दिशाओंके लिये बलि दे देना चाहिये और तत्पश्चात् आगे गमन करना चाहिये। इस बातको सुनकर राजाने 'यह पाप है' कहते हुए अपने कानोंके छेदोंको दोनों हाथोंसे आच्छादित कर लिया। उस समय विश्वदेव नामक शकुन शास्त्रके जानकारने उससे

१. ब कुक्कुटो श कुर्कटो। २. ज फ श जमलकौ। ३. ब मदनवालीं नामां। ४. ज प श स्वविशिष्टं। ५. ज मह्यापयद्दास्यति। ६. फ स्वयमेवापि। ७. ज प ब श्रवणो। ८. ब दृष्टः किं क्रियमाणो श्रवणो दृष्टः किं क्रियते। ८. प गत्वा। ९. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श विश्वदेवशकुनिको ब्रूत।

कस्मिन् शास्त्रे क्षपणकोऽपशकुन इति भणितम्, कथय कथयेति । तदा तूष्णीं स्थिते तस्मिन् विश्वदेवो बभाण—देव, दिगम्बरदर्शनं श्रेयोऽर्थं भवति । उक्तं च शकुनशास्त्रे—

श्रमणस्तुरगो राजा मयूरः कुञ्जरो वृषः ।
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वे सिद्धिकराः[1] स्मृताः ॥

देव, त्वमत्रैव तिष्ठ, पञ्चरात्रे स विशिष्टः कन्याकरिभ्यां नागच्छति चेदहं शाकुनिको न भवामि । ततो राजा तत्रैव शिबिरं विमुच्य तस्थौ । तथैव स आगतस्तदा राजा संतुष्टो विश्वदेवं पुरोहितं चकार, पुरं प्रविवेश । सोमशर्मा कुपितस्तं मुनिं रात्रौ मारयति स्म । मुनिः सर्वार्थसिद्धिं ययौ । स राजा मुनिघातकं केनापि प्रकारेण विबुध्य गर्दभारोहणादिकं कृत्वा निर्धाटितवान् । स महादुःखेन मृत्वा सप्तमावनिं जगाम, ततो निःसृत्य स्वयंभूरमणे महामत्स्योऽभूदनन्तरं षष्ठं नरकं ययौ । ततो महाटव्यां सिंहो भूत्वा पञ्चमीं धरामवाप । ततो व्याघ्रोऽजनि, मृत्वा चतुर्थनरकमियाय । ततो दृष्टिविषो जातः तृतीयनरकं प्राप्तः । ततो भेरुण्डो भूत्वा द्वितियनरकं जगाम । ततोऽपि शूकरो जातो मृत्वा प्रथमावनौ जातः । ततो मगधदेशे सिंहपुरेशसिंहसेन-हेमप्रभयोः पुत्रो बभूव । सोऽतिदुर्गन्धदेह इति दुर्गन्धकुमार-

---

पूछा कि हे पुरोहित ! दिगम्बर साधुका दर्शन अपशकुन कारक है, यह किस शास्त्रमें कहा गया है; मुझे शीघ्र बतलाओ । इसपर जब वह सोमशर्मा चुप रहा तब विश्वदेवने राजासे कहा कि हे देव ! दिगम्बर साधुका दर्शन कल्याणकारी होता है । शकुनशास्त्रमें भी ऐसा ही कहा गया है—

दिगम्बर साधु, घोड़ा, राजा, मोर, हाथी और बैल; ये सब प्रस्थान और प्रवेशके समयमें कल्याणकारी माने गये हैं ॥

फिर विश्वदेव बोला कि हे राजन् ! आप यहाँपर ही स्थित रहिए । यदि वह दूत पाँच दिनके भीतर मदनावली और उस हाथीके साथ वापिस नहीं आता है तो मुझे शकुनका ज्ञाता ही नहीं समझना । तब राजा वहींपर पड़ाव डालकर स्थित हो गया । तत्पश्चात् जैसा कि विश्वदेवने कहा था, तदनुसार ही वह दूत राजपुत्री और उस हाथीको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा । इससे राजाको बहुत सन्तोष हुआ । तब वह विश्वदेवको पुरोहित बनाकर नगरके भीतर प्रविष्ट हुआ । इस घटनासे सोमशर्माको बहुत क्रोध आया । इससे उसने रातमें उन सोमदत्त मुनिको मार डाला । इस प्रकारसे शरीरको छोड़कर सोमदत्त मुनि सर्वार्थसिद्ध विमानको प्राप्त हुए । उधर जब राजाको यह किसी प्रकारसे ज्ञात हुआ कि सोमशर्माने मुनिकी हत्या की है तब उसने गर्दभारोहण आदि कराकर उसे देशसे निकाल दिया । तब वह महान् कष्टके साथ मरकर सातवें नरकको प्राप्त हुआ । पश्चात् वहाँसे निकलकर वह स्वयंभूरमण समुद्रमें महामत्स्य हुआ । वह भी मरकर छठे नरकमें गया । तत्पश्चात् वह महावनमें सिंह हुआ और मरकर पाँचवें नरकमें गया । वहाँसे निकलकर वह व्याघ्र हुआ और फिर मरकर चौथे नरकमें गया । तत्पश्चात् वह दृष्टिविष सर्प होकर तीसरे नरकमें गया । फिर उसमेंसे निकलकर वह भेरुण्ड पक्षी हुआ और मरकर दूसरे नरकमें गया । तत्पश्चात् वह शूकर हुआ और मरकर पहिले नरकमें गया । वहाँसे निकलकर वह मगधदेशमें सिंहपुरके राजा सिंहसेन और हेमप्रभाका पुत्र हुआ है । शरीरसे

---

१. फ वृद्धिकराः ।

संज्ञया[1] वृद्धिं जगाम। एकदा तत्पुरसमीपे विमलवाहनकेवली तस्थौ। तद्वन्दनार्थं राजादयोऽपि निर्ययुः। तत्रासुरकुमारान् विलोक्य पूतिगन्धो मूर्च्छितोऽभूत्। राज्ञा हेतौ पृष्टे[2] केवली प्राक्तनीं कथां हस्त्यादिभवादिकां कथयति स्म। असुरैरनेकधा नरके योधित इति तद्दर्शनेन मूर्च्छित इति। पूतिगन्धो दुःखापहारोपायं पप्रच्छ। केवली रोहिणीविधानमचीकथत्। स तं सप्त वर्षाणि कृत्वा व्रतमाहात्म्येन सुगन्धदेहोऽभूदिति सुगन्धकुमाराभिधोऽभूत्। सिंहसेनस्तस्मै राज्यं दत्त्वा विमलवाहनान्तिके दीक्षितः मुक्तिं जगाम। सुगन्धकुमारो बहुकालं राज्यं विधाय विनयाख्यतनयाय राज्यमदत्त, समयगुप्ताचार्यान्ते तपो विधायाच्युते जज्ञे।

ततोऽत्रैव द्वीपे पूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिणीशविमलकीर्ति-पद्मश्रियोर्नन्दनोऽर्ककीर्तिरजनि, मेघसेनमित्रेण वृद्धिं ययौ, सर्वकलाकुशलोऽभूत्। एकदा तत्पुरमुत्तरमथुरायाः सकाशाद्वसुदत्तलक्ष्मीमत्यौ[3] स्वपुत्रमुदितेनागते। [4]दक्षिणमथुराया धनमित्र-सुभद्रे स्वपुत्रीगुणवत्या सहागते। तत्र मुदितगुणवत्योर्विवाहोऽभूत्। वेदिकायां गुणवतीमभीक्ष्य[5]

अतिशय दुर्गन्ध निकलनेके कारण उसका नाम अतिदुर्गन्धकुमार प्रसिद्ध हुआ। समयानुसार वह वृद्धिको प्राप्त हुआ।

एक समय उस नगरके समीपमें विमलवाहन नामके केवली आकर विराजमान हुए। तब राजा आदि भी उनकी वन्दनाके लिए निकले। वहाँ असुरकुमारोंको देखकर वह पूतिगन्धकुमार मूर्छित हो गया। यह देखकर राजाने केवलीसे उसके मूर्छित हो जानेका कारण पूछा। तदनुसार केवलीने उपर्युक्त हाथी आदिके भवोंसे सम्बन्ध रखनेवाली पूर्वोक्त कथाको कहकर यह बतलाया कि पूतिगन्धकुमार चूँकि चिरकाल तक नरकोंमें रहकर असुरकुमारोंके द्वारा अनेक बार लड़ाया गया था, अतएव उनको देखकर यह मूर्छित हो गया है। तत्पश्चात् पूतिगन्धने केवलीसे अपने दुःखके नष्ट होनेका उपाय पूछा। उसका उपाय केवलीने रोहिणीव्रतका अनुष्ठान बतलाया। तब पूतिगन्धकुमारने उक्त व्रतका सात वर्ष तक पालन किया। इसके प्रभावसे उसका दुर्गन्धमय शरीर सुगन्ध स्वरूपसे परिणत हो गया। इससे अब उसका नाम सुगन्धकुमार प्रसिद्ध हो गया। उधर सिंहसेन राजाने उसके लिए राज्य देकर विमलवाहन केवलीके समीपमें दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तपश्चरण करके मुक्तिको प्राप्त हुआ। सुगन्धकुमारने बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् उसने विनय नामक पुत्रके लिए राज्य देकर समयगुप्ताचार्यके समीपमें दीक्षा ले ली। फिर वह तपश्चरण करके अच्युत स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ।

इसी जम्बूद्वीपके अन्तर्गत पूर्व विदेहमें एक पुष्कलावती नामका देश है। उसके अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुरीमें विमलकीर्ति नामक राजा राज्य करता था। रानीका नाम पद्मश्री था। उपर्युक्त अच्युत स्वर्गका वह देव वहाँसे च्युत होकर इन दोनोंके अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ। वह अपने मेघसेन मित्रके साथ क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होकर समस्त कलाओंमें पारंगत हो गया। एक समय उस पुर (पुण्डरीकिणी) में उत्तर मथुरासे वसुदत्त और लक्ष्मीमती अपने पुत्र मुदितके साथ आये तथा दक्षिण मथुरासे धनमित्र और सुभद्रा अपनी पुत्री गुणवतीके साथ आये। वहाँपर मुदित और गुणवतीका परस्पर विवाह सम्पन्न हुआ। उस समय

१. ज प श सोतिदुर्गन्धकुमारसंज्ञया फ सोऽतिदुर्गन्धदेहेतिदुर्गन्धकुमारसंज्ञया। २. ज प पृष्ट ब श पृष्टः। ३. फ श लक्ष्मीमत्योः। ४. फ श °गतेन दक्षिण। ५. ज प श °मभीष्य ब° मवीक्ष्य।

मेघसेनो राजात्मजमवदत्-हे मित्र, त्वां मित्रं प्राप्यापि ममेयं न स्याच्चेत् किं ते मित्रत्वेन। ततस्तदर्थं रविकीर्तिर्हठात्तामहरत्। वणिजामाक्रोशवशेन पुत्रं सुमित्रं[1] निःसारयामास विमलकीर्तिः। अर्ककीर्तिर्वीतशोकपुरमगात्। तत्र राजा विमलवाहनो देवी सुप्रभा तत्पुत्र्यो जयावती वसुकान्ता सुवर्णमाला सुभद्रा सुमतिः[2] सुव्रता सुनन्दा विमलाश्चेत्यष्टौ। तत्पित्रा पूर्वमवधिज्ञानिनः पृष्टा मत्पुत्रीणां को वरो भवेदिति। तैरवादि यश्चन्द्रकवेध्यं विध्यति[3] स भवेत्। ततस्तेन स्वयंवरमण्डपः कृतः, चन्द्रकवेध्यं च स्थापितम्, राजन्यकं च मिलितम्। न च केनापि तद्विद्धम्। अर्ककीर्तिर्विव्याध, ताः[4] परिणीय सुखेन तस्थौ।

एकदा विमलनगं निर्वाणभूमिवन्दनार्थं राजादयो जग्मुः। तत्र यत्कर्तव्यं तत्कृत्वा रात्रौ तत्रैव सुप्ताः। तत्रार्ककीर्तिं चित्रलेखा विद्याधरी निनाय, सिद्धकूटाग्रेऽस्थापयत्। तं किमिति निनायेत्युक्ते तत्र विजयार्धे उत्तरश्रेण्यां मेघपुरेशवायुवेग-गगनवल्लभयोस्तनुजा वीतशोका। एकदा मन्दिरं गतेन तत्पित्रा दिव्यज्ञानिनः पृष्टा मत्पुत्र्या वरः कः स्यात्। यद्दर्शनात् सिद्धकूट-कवाट उद्घटिष्यति स स्यादिति उक्ते तथाविधः खेचरस्तत्र कोऽपि नास्तीति तत्कन्यासख्यार्क-

---

मेघसेनने वेदीके ऊपर गुणवतीको देखकर राजपुत्र (अर्ककीर्ति) से कहा कि हे मित्र ! तुम जैसे मित्रको पा करके भी यदि मुझे यह कन्या नहीं प्राप्त हो सकी तो तुम्हारी मित्रतासे क्या लाभ हुआ ? यह सुनकर अर्ककीर्तिने मेघसेनके लिए उस कन्याका अपहरण कर लिया। तब वैश्योंके चिल्लानेपर विमलकीर्तिने उस मित्रके साथ अपने पुत्र अर्ककीर्तिको भी निकाल दिया। इस प्रकार वह अर्ककीर्ति वीतशोकपुरको चला गया। वहाँ विमलवाहन राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम सुप्रभा था। उनके जयावती, वसुकान्ता, सुवर्णमाला, सुभद्रा, सुमति, सुव्रता, सुनन्दा और विमला नामकी आठ पुत्रियाँ थीं। इनके पिताने पहिले अवधिज्ञानी मुनियोंसे पूछा था कि मेरी इन पुत्रियोंका वर कौन होगा। उत्तरमें उन्होंने बतलाया था कि जो चन्द्रक वेध्यको वेध सकेगा वह तुम्हारी इन पुत्रियोंका पति होवेगा। इसपर राजाने स्वयंवर-मण्डपको बनवाकर चन्द्रकवेध्यको भी स्थापित कराया। इससे स्वयंवरमण्डपमें राजाओंका समूह जमा हो गया। परन्तु उसमेंसे उस चन्द्रक वेध्यको कोई भी नहीं वेध सका। अन्तमें अर्ककीर्तिने उसको वेधकर उन पुत्रियोंके साथ विवाह कर लिया। इस प्रकार वह सुखपूर्वक कालयापन करने लगा।

एक समय राजा आदि निर्वाण क्षेत्रकी वन्दना करनेके लिए विमल पर्वतपर गये। वहाँ आवश्यक जिनपूजनादि कार्योंको करके वे रातमें वहींपर सो गये। उनमेंसे अर्ककीर्तिको चित्रलेखा विद्याधरीने ले जाकर सिद्धकूटके शिखरपर स्थापित किया। उसको वहाँ ले जानेका कारण निम्न प्रकार है— वहाँ विजयार्ध पर्वतके ऊपर उत्तर श्रेणीमें मेघपुर नामका एक नगर है। वहाँ वायुवेग नामक राजा राज्य करता था। रानीका नाम गगनवल्लभा था। इनके एक वीतशोका नामकी पुत्री थी। एक दिन उसके पिताने मन्दर पर्वतपर जाकर किसी दिव्यज्ञानीसे पूछा था कि मेरी पुत्रीका वर कौन होगा। उत्तरमें उक्त दिव्यज्ञानीने यह बतलाया था कि जिसके दर्शनसे सिद्धकूट चैत्यालयका द्वार खुल जावेगा वह तुम्हारी पुत्रीका वर होगा। परन्तु वहाँ इस प्रकारका कोई भी विद्याधर नहीं था। इसीलिए उक्त कन्याकी सखी अर्ककीर्तिको सुनकर उसे वहाँ ले गई।

---

१. फ श सुमित्रं। २. ब सुमति°। ३. प विध्यति। ४. फ °विव्याध तां ब °विवाध्यताः श °विवुध तां।

कीर्तिमाकर्ण्य स गोलस्तस्य दर्शनात्स कपाट उद्‌जघटे तां परिणीय तत्रानेकविद्याः साध-यित्वा तां तत्रैव निधाय वीतशोकपुरमागच्छन् आर्यखण्डस्थमञ्जनगिरिपुरमवाप। तत्र राजा प्रभञ्जनः, कान्ता नीलाञ्जना, पुत्र्यो मदनलताविद्युल्लतासुवर्णलताविद्युत्प्रभामदनवेगा-जयावतीसुकान्ताश्चेति सप्त उद्यानवनात्पुरं प्रविशन्त्यस्त्रुटितबन्धनं मारयितुमागतं हस्तिनं वीक्ष्य नष्टे परिजने हाहा-नादं चक्रिरे । तन्नादं श्रुत्वार्ककीर्तिगजं बबन्ध, ता अवृणीत । ततो वीतशोकपुरं गत्वा मित्रादीनां मिलितः। ततः स्वपुरं गत्वादृश्यवेषेण स्थित्वा राजकीय-मण्डपस्थंपूगीफलान्यजालेण्डिकाः, पत्राण्यर्कपत्राणि, मृगनाभिकाश्मीरआदिकं गूथम्, स्त्रीणां श्मश्रुकूर्चान्, पुरुषाणां कुचान्, हस्तिनः शूकरानश्वान् गर्दभान्, पानीयं गोमूत्रम्, वह्निं शीतलमित्यादि नानाविनोदांस्तत्र विधाय राजादीनां कौतुकमुत्पादयांचकार। ततोऽन्येद्युर्भिल्लो भूत्वा पुरजीवधनं गृहीत्वा ययो ।गोपालकोलाहलाद्राज्ञा प्रेषितं बलं मायया पातितवान्।श्रुत्वा कोपेन राजा स्वयं निर्जगाम, तेन महायुद्धं चकार। तदा मेघसेनोऽकथयत्ते पुत्रोऽयमर्ककीर्तिरिति श्रुत्वा विमलकीर्तिर्जहर्ष स्वमूर्त्यानतं नन्दनमालिलिङ्ग। महाविभूत्या पुरं प्रविष्टौ । रविकीर्तिः प्राक्परिणीताः स्त्रियः आनीय सुखेन तस्थौ ।

उसके दर्शनसे वह द्वार खुल गया । इसलिए अर्ककीर्तिने उस वीतशोकाके साथ विवाह कर लिया । पश्चात् उसने वहाँ अनेक विद्याओंको सिद्ध किया । फिर वह वीतशोकाको वहींपर छोड़कर वीतशोकपुर आते हुए आर्यखण्डस्थ अंजनगिरिपुरको प्राप्त हुआ । वहाँके राजाका नाम प्रभंजन और रानीका नाम नीलांजना था । इनके मदनलता, विद्युल्लता, सुवर्णलता, विद्युत्प्रभा, मदनवेगा, जयावती और सुकान्ता नामकी सात पुत्रियाँ थीं । एक समय वे उद्यान-वनसे आकर नगरमें प्रवेश कर ही रही थीं कि इतनेमें एक हाथी बन्धनको तोड़कर उनकी ओर मारनेके लिए आया । उसे देखकर सेवक आदि सब भाग गये । तब वे हा-हाकार करने लगीं । उनके आक्रन्दनको सुनकर अर्ककीर्तिने उस हाथीको बाँध लिया और उन कन्याओंके साथ विवाह कर लिया । तत्पश्चात् वह वीतशोकपुरमें जाकर मित्रादिकोंसे मिला । फिर उसने अपने नगर (पुण्डरीकिणी) में जाकर और गुप्तरूपमें स्थित रहकर राजाके मण्डप या हड्प्पमें स्थित सुपाड़ी फलोंको बकरीकी लेंड़ी, पानोंको अकौवाके पत्ते, कस्तूरी एवं केसर आदिको विष्ठा, स्त्रियोंके दाढ़ी-मूँछें, पुरुषोंके स्तन, हाथियोंको शूकर, घोड़ोंको गधे, पानीको गोमूत्र और अग्निको शीतल बनाकर अनेक प्रकारके विनोद कार्य किये । इनको देखकर राजा आदिको बहुत आश्चर्य हुआ । तत्पश्चात् दूसरे दिन उसने भीलके वेषमें नगरके जीवधन (पशुधन) का अपहरण कर लिया । तब ग्वालोंके कोलाहलसे इस समाचारको जानकर उसके प्रतीकारके लिए राजाने जो सेना भेजी थी उसको अर्ककीर्तिने मायासे नष्ट कर दिया । इसपर राजाको बहुत क्रोध आया । तब उसने स्वयं जाकर उसके साथ घोर युद्ध किया । पश्चात् मेघसेनने राजाको बतलाया कि यह तुम्हारा पुत्र अर्ककीर्ति है । इस बातको सुनकर राजा विमलकीर्तिको बहुत हर्ष हुआ । तब उसने शरीरसे नम्रीभूत हुए अपने उस पुत्रका आलिंगन किया । फिर वे दोनों महाविभूतिके साथ नगरमें प्रविष्ट हुए । इसके पश्चात् अर्ककीर्ति अपनी पूर्वविवाहित पत्नियोंको ले आया और सुखसे रहने लगा ।

---

१. ब तत्कन्या सार्ककीर्त्ति० । २. श 'स' नास्ति । ३. ज कवाटोद्घाट श कवाटोद्घटे । ४. श आर्यखण्ड° । ५. ज प ब राजकीयहट्टपस्थ । ६. ज प °नतं ।

अन्यदा स्वशिरसि दर्पणदृष्ट्या पलितं निरीक्ष्य तस्मै स्वपदं दत्त्वा विमलकीर्तिः सुव्रतान्ते दीक्षितः मोक्षमियाय। अर्ककीर्तिः सकलचक्रवर्ती बभूव। बहुकालं राज्यं विधाय स्वतनयं जितशत्रुं राज्ये नियुज्य चतुःसहस्रभव्यैः शीलगुप्ताचार्यसकाशे दीक्षितोऽच्युतेन्द्रो भूत्वा संप्रति वर्तते स्वर्गे। सोऽग्रे तस्मादागत्यास्मिन्[1] हस्तिनापुरे वीतशोकनरेन्द्रात्मजोऽशोकः भविष्यति। त्वमत्र पुण्यमुपार्ज्य स्वर्गे अमरीभूत्वागत्य चम्पापुरे मघवतः पुत्री रोहिणी भूत्वा तस्याग्रवल्लभा भविष्यसीति श्रुत्वा पूतिगन्धा पिहितास्रवं नत्वा स्वगृहं विवेश। रोहिणी विधिमुद्याप्य सुगन्धदेहा जाता। तदार्जिकानिकटे तपो विधाय संन्यासेन तनुं विहायेशाने तदच्युतेन्द्रप्रतिबद्धविमाने सुवर्णचित्रा देवी बभूव। अच्युतेन्द्र आगत्य त्वं जातोऽसि। साप्येत्य रोहिणी जाता। रोहिणी विधानप्रभवपुण्येन शोकं जानाति।

इदानीं तवापत्यभवान् शृणु। उत्तरमथुरेशसूरसेनविमलयोः सुता पद्मावती। तत्रैव विप्रोऽग्निशर्मा भार्या सावित्री पुत्राः शिवशर्माग्निभूतिश्रीभूति-वायुभूतिविशाखभूतिसोमभूति-सुभूतयश्चेति सप्त। एकदा पाटलिपुत्रं[2] दानार्थं गतास्तत्पतिसुप्रतिष्ठ-कनकप्रभयोः पुत्रः सिंह-

किसी समय विमलकीर्ति राजा दर्पणमें अपना मुख देख रहा था। उस समय उसे अपने शिरके ऊपर श्वेत बाल दिखा। उसे देखकर उसके हृदयमें वैराग्यभाव जागृत हुआ। तब उसने अर्ककीर्तिके लिए राज्य देकर सुव्रत मुनिके निकटमें दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्तमें वह तपको करके मुक्तिको प्राप्त हुआ। उधर अर्ककीर्ति सकलचक्रवर्ती (छह खण्डोंका अधिपति) हो गया। उसने बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् उसने अपने पुत्र जितशत्रुको राज्य देकर चार हजार भव्य जीवोंके साथ शीलगुप्ताचार्य मुनिके पासमें दीक्षा ले ली। अन्तमें वह शरीरको छोड़कर अच्युतेन्द्र हुआ है। वह इस समय स्वर्गमें ही है। भविष्यमें वह वहाँसे आकरके इस हस्तिनापुरमें वीतशोक राजाका पुत्र अशोक होगा और तू यहाँ पुण्यका उपार्जन करके स्वर्गमें देवी होगी। फिर वहाँसे आ करके चम्पापुरमें मघवा राजाकी पुत्री रोहिणी होती हुई उस अशोककी पटरानी होगी। इस प्रकार वह पूतिगन्धा पिहितास्रव मुनिसे उपर्युक्त वृत्तान्तको सुनकर उन्हें नमस्कार करती हुई अपने घरको वापिस गई। वह रोहिणी उपवासविधिका उद्यापन करके सुगन्धित शरीरवाली हो गई। फिर उसने पूर्वोक्त आर्याके निकटमें दीक्षा ले ली। अन्तमें वह तपश्चरणपूर्वक संन्यासके साथ शरीरको छोड़कर ईशान स्वर्गके अन्तर्गत उस अच्युतेन्द्रसे सम्बद्ध विमानमें देवी हुई। वह अच्युतेन्द्र आकर तुम हुए हो और वह देवी आकर रोहिणी हुई है। रोहिणीव्रतके अनुष्ठानसे उपार्जित पुण्यके प्रभावसे यह शोकको नहीं जानती है।

अब मैं तुम्हारे पुत्रोंके भवोंको कहता हूँ, सुनो। उत्तर मथुरामें सूरसेन नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम विमला था। इनके एक पद्मावती नामकी पुत्री थी। इसी नगरमें एक अग्निशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था उसकी पत्नीका नाम सावित्री था। इनके शिवशर्मा, अग्निभूति, श्रीभूति, वायुभूति, विशाखभूति, सोमभूति और सुभूति नामके सात पुत्र थे। वे एक समय भिक्षा माँगनेके लिए पाटलीपुत्र गये थे। वहाँ उस समय सुप्रतिष्ठ नामका राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम कनकप्रभा था। इनके एक सिंहरथ नामका पुत्र था। इसको देनेके लिए

१. ज स्वर्गे तस्मादागत्यास्मिन् श स्वर्गे मो तस्मदाग- त्यास्मिन्। २. प फ श पाटली०।

रथस्तस्मै दातुं पद्मावती केनापि[1] तत्रानीता, तयोर्विवाहविभूत्यतिशयमालोक्य किमस्माकं भिक्षाभोजनानां जीवितेनेति वैराग्येण सीमंधरान्तिके दीक्षिताः समाधिना सौधर्मं गताः। पूर्वोक्तपूतिगन्धापितुर्दासीपुत्रो भल्वातकः पिहितास्रवसमीपे जैनो भूत्वावसाने सौधर्मं गतः तस्मादागत्य पूर्वोक्ताः सप्त, भल्वातकचरश्च क्रमेण तवाष्टौ पुत्रा जाताः।

इदानीं पुत्रीणां भवानत्रैव[2] पूर्वविदेह[3]विजयार्धदक्षिणश्रेण्यामलकानगरीशमरुदेव-कमलश्रियोः पुत्र्यः पद्मावती पद्मगन्धा विमलश्री[श्रीः] विमलगन्धा चेति चतस्रस्ताभिर्गगनतिलकचैत्यालये समाधिगुप्तमुनिनिकटे श्रीपञ्चम्युपवासो गृहीतस्तदुद्यापनमकृत्वैव विद्युता मृत्वा दिवि देव्यो भूत्वागत्य ते पुत्र्यो जाता इति निशम्याशोकस्तौ नत्वा पुरं विवेश। पुत्रीः श्रीपालपुत्रभूपालाय दत्त्वा बहुकालं राज्यं कृत्वा मेघविलयं विलोक्य निर्विण्णो वीतशोकं स्वपदे निधाय श्रीवासुपूज्यतीर्थकरसमवसरणे बहुभिर्दीक्षां बभार गणधरो बभूव। रोहिणी कमलश्रीक्षान्तिकान्ते दीक्षिता विशिष्टं तपो विधायाच्युते देवो जज्ञे। अशोकमुनिर्निर्वाणं जगाम। तत्प्रभृत्यत्रत्या भव्या[4] रोहिणीविधानोद्यापने वासुपूज्यप्रतिमापीठेऽशोकरोहिण्यो-

कोई उस पद्मावती पुत्रीको वहाँ ले आया था। इन दोनोंके विवाहके ठाट-बाटको देखकर उक्त शिवशर्मा आदि सातों ब्राह्मण पुत्रोंने विचार किया कि देखो हम लोग भीख माँगकर उदरपूर्ति करते हैं, हमारा जीना व्यर्थ है। इस प्रकार विचार करते हुए उन्हें वैराग्यभाव उत्पन्न हुआ। तब उन सबने सीमन्धर स्वामीके समीपमें दीक्षा ले ली। अन्तमें वे समाधिपूर्वक शरीरको छोड़कर सौधर्म स्वर्गको प्राप्त हुए। पूर्वोक्त पूतिगन्धाके पिताके एक भल्वातक नामका दासीपुत्र था। वह पिहितास्रव मुनिके समीपमें जैन हो गया था। वह मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ था। इस प्रकार पूर्वोक्त सात ब्राह्मणपुत्र और यह भल्वातक ये आठों वहाँसे च्युत होकर क्रमसे तुम्हारे आठ पुत्र हुए हैं।

अब अपनी पुत्रियोंके भवोंको सुनो—यहींपर पूर्वविदेहमें स्थित विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें अलका पुरी है वहाँपर मरुदेव राजा राज्य करता था। रानीका नाम कमलश्री था। इनके पद्मावती, पद्मगन्धा, विमलश्री और विमलगन्धा नामकी चार पुत्रियाँ थीं। उन चारोंने गगन-तिलक चैत्यालयमें समाधिगुप्त मुनिके पासमें पञ्चमीके उपवासको ग्रहण किया था। किन्तु वे नियमित समय तक उसका पालन और उद्यापन नहीं कर सकीं। कारण यह कि उन चारोंकी मृत्यु अकस्मात् बिजलीके गिरनेसे हो गई थी। फिर भी वे उस प्रकारसे मरकर स्वर्गमें देवियाँ हुईं और तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर वे तुम्हारी पुत्रियाँ हुई हैं। इस प्रकार अपने सब प्रश्नोंके उत्तरको सुनकर वह अशोक उन दोनों मुनियोंको नमस्कार करके नगरमें वापिस आ गया। उसने इन पुत्रियोंको श्रीपालके पुत्र भूपालके लिए देकर बहुत समय तक राज्य किया। एक समय वह विखरते हुए मेघको देखकर भोगोंसे विरक्त हो गया। तब उसने अपने पदपर वीतशोक पुत्रको प्रतिष्ठित करके श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रके समवसरणमें बहुतोंके साथ दीक्षा ले ली। वह वासुपूज्य तीर्थंकरका गणधर हुआ। रोहिणीने कमलश्री आर्यिकाके पास दीक्षित होकर बहुत तप किया। अन्तमें वह शरीरको छोड़कर अच्युत स्वर्गमें देव हुई। अशोक मुनि मुक्ति-को प्राप्त हुए। उसी समयसे लेकर यहाँके भव्य जीव रोहिणीव्रतविधिके उद्यापनके समय वासुपूज्य

१. क 'केनापि' नास्ति। २ [भवान् शृणु। अत्रैव]। ३. क विदेहे। ४. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श °त्यव्रतभव्या।

रूपं द्वादशापत्यविशिष्टं कुर्वन्ति तच्चरित्रपुस्तकानि च ददतीति। एवं पूतिगन्धो राजपुत्रो दुर्गन्धा वैश्यपुत्री च भोगाकाङ्क्षया नियतकालं प्रोषधं विधायैवंविधौ जातावन्यो[1] भव्यः कर्मक्षयहेतोर्यः करोत्यनियतकालं प्रोषधं स किं न स्यादिति ॥३-४॥

[३८]

अभवदमरलोके दीक्षितो वल्लभनाथा-
भ्रशनजनितपुण्याद्देवकान्तामनोज्ञः[2]।
विगतसुकृतवैश्यो नन्दिमित्राभिधान
उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया ॥५॥

अस्य कथा भद्रबाहुचरित्रेऽन्तर्गता इति[3] तन्निरूप्यते—अत्रैवार्यखण्डे पुण्ड्रवर्धनदेशे कोटिकनगरे राजा पद्मधरो राज्ञी पद्मश्रीः पुरोहितः सोमशर्मा ब्राह्मणी सोमश्रीः। तस्याः पुत्रोऽभूत्तदुत्पत्तिलग्नं विशोध्य सोमशर्मा वसतौ ध्वजमुद्धावितवान् मत्पुत्रो जिनदर्शनमान्यो भविष्यतीति। ततस्तं भद्रबाहुनाम्ना वर्धयितुं लग्नः, सप्तवर्षानन्तरं मौञ्जीबन्धनं कृत्वा वेदमध्यापयितुं च। एकदा भद्रबाहुर्बटुकैः सह नगराद्बहिर्वट्टक्रीडार्थं ययौ। तत्र वट्टस्योपरि वट्टधारणे केनचित् द्वौ, केनचित् त्रय उपर्युपरि धृताः। भद्रबाहुना त्रयोदश धृताः। तदवसरे

जिनेन्द्रकी प्रतिमाके समीपमें वेदीपर आठ पुत्र और चार पुत्रियोंके साथ अशोक व रोहिणीकी आकृतियोंको कराते हैं तथा उनके चरित्रकी पुस्तकोंको लिखाकर प्रदान करते हैं। इस प्रकार पूतिगन्ध राजपुत्र और दुर्गन्धा वैश्यपुत्री ये दोनों भोगोंकी अभिलाषासे नियत समय तक प्रोषधको करके इस प्रकारकी विभूतिको प्राप्त हुए हैं। फिर भला जो भव्य जीव कर्मक्षयकी अभिलाषासे उक्त व्रतका अनियत समय तक परिपालन करता है वह क्या अनुपम सुखका भोक्ता नहीं होगा ? अवश्य होगा ॥ ३-४ ॥

नन्दिमित्र नामका जो पुण्यहीन वैश्य भोजनके लिए दीक्षित हुआ था वह उपवाससे प्राप्त हुए पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें देवांगनाओंका प्रिय (देव) हुआ है। इसीलिए मैं मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक उस उपवासको करता हूँ ॥ ५ ॥

इसकी कथा भद्रबाहुचरित्रमें आई है। उसका यहाँ निरूपण किया जाता है— इसी आर्यखण्डमें पुण्ड्रवर्धन देशके भीतर कोटिक नामका नगर है। वहाँ पद्मधर नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम पद्मश्री था। इस राजाके यहाँ सोमशर्मा नामका एक पुरोहित था। उसकी पत्नीका नाम सोमश्री था। उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सोमशर्माने उसके जन्ममुहूर्तको शोधकर 'मेरा पुत्र जैनोंमें संमान्य होगा' यह प्रगट करनेके लिए जिनमन्दिरके ऊपर ध्वजा खड़ी कर दी थी। उसने उसका नाम भद्रबाहु रक्खा। भद्रबाहु क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होने लगा। सोमशर्माने सात वर्षके पश्चात् उसका मौंजीबन्धन (उपनयन) संस्कार किया। तत्पश्चात् वह उसे वेदके पढ़ानेमें संलग्न हो गया। एक समय भद्रबाहु बालकोंके साथ गेंद खेलनेके लिये नगरके बाहर गया। वहाँ उन सबने वट्टक (वर्तक— एक प्रकारका खिलौना) के ऊपर वट्टक रखनेका निश्चय किया। तदनुसार उनमें-से किसीने दो और किसीने तीन वट्टक ऊपर-ऊपर रक्खे।

---

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श °यैवंविधा जाता अन्यो। २. ज फ ब श मनोज्ञः। ३. ब भद्रबाहुचरिते वर्तत इति। ४. ज °द्बहिर्वट° ब °द्बहिर्वट°।

जम्बूस्वामिमोक्षगतेरनन्तरं[1] विष्णु-नन्दिमित्र-अपराजित[2]गोवर्धन-भद्रबाहुनामानः पञ्च श्रुत-केवलिनो भविष्यन्तीति जिनागमसूत्रं चतुर्थः केवली गोवर्धननामानेकसहस्रयतिभिर्विहरंस्तत्रा-गत्य तं लुलोके। सोऽष्टाङ्गनिमित्तं वेत्ति। तं विलोक्यायं पश्चिमश्रुतकेवली भविष्यतीति बुबुधे। तत्समुदायालोकनात्सर्वे बटुकाः पलायिताः। स आगत्य गोवर्धनं ननाम। मुनिना पृष्टस्त्वं किमाख्यः, कस्य पुत्र इति। सोऽवदत् पुरोहितसोमशर्मणः पुत्रोऽहं भद्रबाहुनामा। पुनर्मुनिनोक्तं मत्समीपेऽध्येष्यसे। तेन ओमिति भणिते तद्धस्तं धृत्वा स एव तत्पितुः गृहं ययौ। तं विलोक्य सोमशर्मासनादुत्थाय संमुखमागत्य मुकुलितकर आसनमदादपृच्छच्च स्वामिन्, किमित्यागमनम्। मुनिर्बभाण तव पुत्रोऽयं मत्समीपेऽध्येष्ये इत्युक्तवान्। त्वं भणसि चेदध्यापयिष्यामि। द्विजोऽब्रूत नायं जैनदर्शनोपकारक एव स्यादित्युत्पन्नमुहूर्तगुणो विद्यते, सोऽन्यथा किं भवेदयं भवद्भ्यो दत्तो यज्जानन्ति तत्कुर्वन्त्विति तेन समर्पितः। तदा माता यतिपादयोर्लग्नाऽस्य दीक्षां मा प्रयच्छन्तु। मुनिरुवाचाध्याप्य तवान्तिकं प्रस्थापयामीति श्रद्धेहि भगिनि। ततस्तं नीत्वा मुनिर्ग्रासावासादिना[3] श्रावकैः समाधानं कारयित्वा सकल-शास्त्राण्यध्यापितवान्। स च सकलदर्शनानां सारासारतां विबुध्य दीक्षां ययाचे। गुरुरवोचत्

परन्तु भद्रबाहुने उन्हें एकके ऊपर दूसरे और दूसरेके ऊपर तीसरे, इस क्रमसे तेरह वर्तक रख दिये। जम्बू स्वामीके मोक्ष जानेके पश्चात् विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्र-बाहु ये पाँच श्रुतकेवली होंगे; यह आगमवचन है। जिस समय उक्त भद्रबाहु आदि बालक खेल रहे थे उस समय वहाँ अनेक सहस्र मुनियोंके साथ विहार करते हुए गोवर्धन नामके चौथे श्रुतकेवली आये। वे अष्टांग निमित्तके ज्ञाता थे। उन्होंने भद्रबाहुको देखकर यह निश्चित किया कि यह अन्तिम श्रुतकेवली होगा। उनके इस संघको देखकर वे सब बालक भाग गये, परन्तु भद्रबाहु नहीं भागा। उसने आकर गोवर्धन श्रुतकेवलीको नमस्कार किया। तब उन्होंने उससे पूछा कि तुम्हारा क्या नाम है और तुम किसके पुत्र हो? उसने उत्तर दिया कि मैं सोम-शर्मा ब्राह्मणका पुत्र हूँ व नाम मेरा भद्रबाहु है। तब मुनिने फिरसे पूछा कि तुम मेरे पास पढ़ोगे? उसने कहा कि 'हाँ, पढ़ूँगा'। इसपर वे स्वयं ही उसका हाथ पकड़कर उसके पिताके पास ले गये। उन्हें आते हुए देखकर सोमशर्मा अपने आसनसे उठकर उनके आगे गया। उसने उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए आसन दिया और फिर इस प्रकारसे आनेका कारण पूछा। तब मुनिने कहा कि यह तुम्हारा पुत्र मेरे पास पढ़नेके लिए कहता है। यदि तुम्हें यह स्वीकार है तो मैं उसे पढ़ाऊँगा। यह सुनकर सोमशर्मा बोला कि यह जैन सिद्धान्तका उपकार करेगा, यह इसके जन्म मुहूर्तसे सिद्ध है। वह भला असत्य कैसे हो सकता है? हम इसे आपके लिये देते हैं। आप जैसा उचित समझें, करें। यह कहकर उसने उन गोवर्धन मुनिके लिये भद्रबाहुको समर्पित कर दिया। उस समय भद्रबाहुकी माताने मुनिके पाँवोंमें गिरकर उससे भद्रबाहुको दीक्षा न दे देनेकी प्रार्थना की। तब गोवर्धन मुनिराजने कहा कि हे बहिन! मैं पढ़ाकर इसे तेरे पास भेज दूँगा, तू इतना विश्वास रख। इस प्रकार गोवर्धन श्रुतकेवली भद्रबाहुको अपने साथ ले गये। फिर उन्होंने उसके भोजन और निवास आदिकी व्यवस्था श्रावकोंसे कराकर उसे पढ़ाना प्रारम्भ

---

१. ब मोक्षगतेऽनंतरं। २. प फ ब विष्णुनंदिअपराजित श विष्णुकुमारनंदिअपराजित। ३. फ °ग्रसिवासादिना।

स्वं नगरं गत्वा तत्र पाण्डित्यं प्रकाश्य मातापितरावभ्युपगमय्यागच्छेति विससर्ज। स च गत्वा मातापितरौ प्रणम्य तदग्रे गुरोर्गुणप्रशंसां चकार। द्वितीयदिने पद्मधर[1]राजस्य भवनद्वारे पत्रमवलम्ब्य द्विजादिवादिनः सर्वान् जिगाय, तत्र जैनमतं प्रकाश्य मातापितरावभ्युपगमय्य गत्वा दीक्षितः। श्रुतकेवलीभूतमाचार्यं[2] कृत्वा गोवर्धनः संन्यासेन दिवं गतः। भद्रबाहुस्वामी स्वामिभक्तः तपस्वियुक्तो विहरन् स्थितः।

तत्रान्या[3] कथा। तथाहि—पाटलिपुत्रनगरे राजा नन्दो बन्धुरुय-सुबन्धुकाविशकटालाख्यचतुर्भिर्मन्त्रिभिः राज्यं कुर्वन् तस्थौ। एकदा नन्दस्योपरि प्रत्यन्तवासिनः संभूयागत्य देशसीम्नि तस्थुः। शकटालेन नृपो विज्ञप्तः—प्रत्यन्तवासिनः समागताः, किं क्रियते। नन्दोऽभूत त्वमेवात्र दक्षस्त्वज्ज्ञपितं करोमि। शकटालोऽवोचच्छत्रवो बहवो दानेनोपशान्तिं नेयाः, युद्धस्यानवसर इति। राज्ञोक्तं त्वत्कृतमेव प्रमाणम् द्रव्यं प्रयच्छ। ततः शकटालो द्रव्यं दत्त्वा तान् व्याघोटितवान्[4]। अन्यदा राजा भाण्डागारं द्रष्टुमियाय। द्रव्यमपश्यन् क्व गतं द्रव्यमित्यपृच्छत्। भाण्डागारिकोऽभूत शकटालोऽरिभ्योऽदत्त[5]। ततः कुपितेन राज्ञा सकुटुम्बः

कर दिया। इस प्रकारसे वह समस्त शास्त्रोंमें पारंगत हो गया। तत्पश्चात् उसने समस्त दर्शनोंकी सारता व असारताको जानकर गुरुसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। इसपर गोवर्धन मुनीन्द्रने कहा कि तुम पहिले अपने नगरमें जाकर अपनी विद्वत्ताको दिखलाओ और तत्पश्चात् माता-पिताकी स्वीकारता लेकर आओ। तब तुम्हें हम दीक्षा दे देंगे। यह कहकर उन्होंने भद्रबाहुको अपने घर भेज दिया। तदनुसार भद्रबाहुने जाकर माता-पिताको प्रणाम कर उनके समक्ष अपने गुरुके सद्गुणोंकी खूब प्रशंसा की। पश्चात् दूसरे दिन उसने पद्मधर राजाके भवनके द्वारपर पत्रको लगाकर ब्राह्मणादि सब वादियोंको वादमें जीत लिया। इस प्रकार उसने जैन धर्मको भारी प्रभावना की। फिर वह माता-पिताकी स्वीकारता लेकर उन गोवर्धन मुनिके पास गया और दीक्षित हो गया। अन्तमें वे गोवर्धन श्रुतकेवली भद्रबाहुको श्रुतकेवलीरूप आचार्य बनाकर संन्यासके साथ स्वर्गवासी हुए। तब वे गुरुभक्त भद्रबाहु स्वामी साधुओंके साथ विहार करते हुए स्थित हुए।

यहाँ एक दूसरी कथा है जो इस प्रकार है—किसी समय पाटलिपुत्र नगरमें नन्द नामका राजा राज्य करता था। उसके ये चार मंत्री थे— बन्धु, सुबन्धु, कावि और शकटाल। एक समय कुछ म्लेच्छ देशके निवासी एकत्रित होकर आक्रमण करनेके विचारसे नन्द राजाके देशकी सीमापर आकर स्थित हो गये। तब शकटालने राजासे निवेदन किया कि अपने देशपर आक्रमण करनेके लिये म्लेच्छ देशके निवासी यवन उपस्थित हुए हैं, इसके लिये क्या उपाय किया जाय? यह सुनकर नन्द बोला कि इस विषयमें तुम ही प्रवीण हो, तुम जो कहोगे वही किया जावेगा। तब शकटालने कहा कि शत्रु बहुत हैं, उन्हें धन देकर शान्त करना चाहिये। कारण कि अभी युद्धके लिये उपयुक्त समय नहीं है। इसपर राजाने कहा कि तुम्हारा कहना योग्य ही है, उन्हें द्रव्य देकर शान्त करो। तब शकटालने उन्हें द्रव्य देकर वापिस कर दिया। दूसरे समय राजा अपने खजानेको देखनेके लिये गया। वहाँ जब उसे सम्पत्ति नहीं दिखी तब उसने पूछा कि यहाँकी सब सम्पत्ति कहाँ चली गई है? इसके उत्तरमें कोषाध्यक्षने कहा कि शकटालने उसे शत्रुओंको

---

१. अ फ ब प पद्मधर श पद्मंधर। २. ब श्रुतकेवली भूतमा०। ३. ब अत्राअन्या। ४. प फ श दत्तवान् व्याघोटितवान् अ दत्तवान् व्याघुटितवान्। ५. फ श °दत्तं।

शकटालो भूमिगृहे निक्षिप्तः। सरावप्रवेशमात्रद्वारेण स्तोकमोदनं जलं प्रतिदिनं दापयति नरेशः। तमोदनं जलं च दृष्ट्वा शकटालोऽभूत कुटुम्बमध्ये यो नन्दवंशं निर्वंशं कर्तुं शक्नोति स इममोदनं जलं च गृह्णीयादिति। सर्वैस्त्वमेव शक्तो गृहाणेति सर्वसंमते[1] स एवं भुङ्क्ते पानीयं च पिबति। स एव स्थितोऽन्ये मृताः।

इतः पुनः प्रत्यन्तवासिनां बाधायां नन्दः शकटालं सस्मार उक्तवांश्च शकटालवंशे को ऽपि विद्यत इति। कश्चिदाहारं जलं च कोऽपि गृह्णाति। ततस्तमाकृष्य परिधानं दत्त्वा उक्तवानरीनुपशान्तिं नयेति। स केनाप्युपायेनोपशान्तिं निनाय। राज्ञा मन्त्रिपदं गृहाणेत्युक्ते शकटालस्तदुल्लङ्घ्य सत्कारगृहाध्यक्षतां जग्राह। एकदा पुरबाह्येऽटन् दर्भसूचीं खनन्तं चाणक्यद्विजं लुलोके। तदनु तमभिवन्द्योक्तवान्[2] किं करोषि। चाणक्योऽभूत विद्धोऽहमनया, ततो निर्मूलमुन्मूल्य शोषयित्वा[3] दग्ध्वा[4] प्रवाहयिष्यामि। शकटालोऽमन्यत अयं[5] नन्दनाशे समर्थ इति तं प्रार्थयति स्म त्वयाग्रासने प्रतिदिनं भोक्तव्यमिति। तेनाभ्युपगतम्। ततः शकटालो महादरेण तं भोजयति। एकदाऽध्यक्षस्तस्य[6] स्थानचलनं चकार। चाणक्योऽवदत्

दे डाली है। यह सुनकर नन्दने क्रोधित होकर शकटालको उसके कुटुम्बके साथ तलघरके भीतर रख दिया। वह उसे वहाँ सकोरा मात्रके जाने योग्य छेदमेंसे प्रतिदिन थोड़ा-सा भात और जल दिलाने लगा। उस अल्प भोजनको देखकर शकटकाल बोला कि कुटुम्बके बीचमें जो कोई भी नन्दके वंशको समूल नष्ट कर सकता हो वह इस भोजन और जलको ग्रहण करे। इसपर सबने कहा कि इसके लिए तुम ही समर्थ हो। इस प्रकार सबकी सम्मतिसे वह उस अन्न-जलका उपयोग करने लगा। तब एक मात्र वही जीवित रहा, शेष सब मरणको प्राप्त हो गये।

इधर उन म्लेच्छोंने जब फिरसे नन्दके राज्यमें उपद्रव प्रारम्भ किया तब उसे शकटालका स्मरण हुआ। उस समय उसने पूछा कि क्या कोई शकटालके वंशमें अभी विद्यमान है। इसपर किसीने उत्तर दिया कि कोई अन्न और जलको ग्रहण तो करता है। तब शकटालको वहाँसे निकालकर उसे पहिननेके लिए वस्त्र (पोशाक) दिये। फिर नन्दने उससे कहा कि तुम इन शत्रुओंको शान्त करो। इसपर शकटालने जिस किसी भी प्रकारसे उन्हें शान्त कर दिया। तब राजाने उससे पुनः मंत्रीके पद-को ग्रहण करनेके लिए कहा। परन्तु शकटालने इसे स्वीकार नहीं किया। तब वह उसकी इच्छानुसार अतिथिगृहका अध्यक्ष बना दिया गया। एक दिन शकटालने नगरके बाहर घूमते हुए चाणक्य ब्राह्मणको देखा। वह उस समय काँसको खोदकर फेंक रहा था। शकटालने नमस्कार करते हुए उससे पूछा कि यह आप क्या कर रहे हैं? चाणक्यने उत्तर दिया कि इस काँसके अग्रभागसे मेरा पाँव विध गया है, इसलिए मैं इसे जड़-मूलसे उखाड़कर सुखाऊँगा और तत्पश्चात् नदीमें प्रवाहित कर दूँगा। इस उत्तरको सुनकर शकटालको विश्वास हुआ कि यह व्यक्ति नन्दके नष्ट करनेमें समर्थ है। तब उसने उससे प्रार्थना की कि आप प्रतिदिन हमारे अतिथि-गृहमें उच्च आसन-पर बैठकर भोजन किया करें। चाणक्यने इसे स्वीकार कर लिया। तबसे शकटाल उसे आदरके साथ भोजन कराने लगा। एक दिन अध्यक्षने उसके स्थानका परिवर्तन कर दिया। इसे देखकर

---

१. ज प सम्मते एव फ श सम्मते एव। २. ज तमभिवाद्योक्तवान् ब तमभिवाद्योक्तवान्। ३. प ततो निर्मूल्य शोषयित्वा श ततो निर्मूल्यमुन्मूल्य शोषयित्वा। ४. फ श दग्धा। ५. ब मन्यतोऽयं। ६. फ श ऽध्यक्षस्य।

स्थानचलनं किमिति विहितम् । अध्यक्ष उवाच राज्ञो नियमोऽयमग्रासनमन्यस्मै दातव्यमिति। ततो मध्यमासनेऽपि भोक्तुं लग्नः । ततोऽप्यन्ते उपवेशितः । स तत्रापि भुङ्क्ते,कोपं न करोति । अन्यदा भोक्तुं प्रविशन् चाणक्योऽध्यक्षेण निवारितो राज्ञा तव भोजनं निषिद्धमहं किं करोमि । ततश्चाणक्य. कुपितः पुरान्निःसरन्नवदधो नन्दराज्यार्थी स मत्पृष्ठं लगतु[1] । तत-श्चन्द्रगुप्ताख्यः क्षत्रियोऽतिनिस्वः किं नष्टमिति लग्नः । स प्रत्यन्तवासिनां मिलित्वोपायेन नन्दं निर्मूलयित्वा चन्द्रगुप्तं राजानं चकार । स राज्यं विधाय स्वापत्यबिन्दुसाराय स्वपदं दत्वा चाणक्येन दीक्षितः । चाणक्यभट्टारकस्य इत ऊर्ध्वं भिन्ना कथाराधनायां ज्ञातव्या । बिन्दुसारोऽपि स्वतनयाशोकाय स्वपदं वितीर्य दीक्षितः । अशोकस्यापत्यं कुनालोऽजनि । स बालः पठन् यदा तस्थौ तदाशोकः प्रत्यन्तवासिनां उपरि जगाम । पुरे व्यवस्थितप्रधाना-न्तिकं राजादेशं प्रास्थापयत् । कथम् । उपाध्यायाय शालिकूरं[2] च मसिं च दत्त्वा कुमारमध्या-पयतामिति । स च वाचकेनान्यथा वाचितः । ततः उपाध्यायं शालिकूरं मसिं च भोजयित्वा कुमारस्य लोचने उत्पाटिते । अरीन् जित्वा आगतो नृपः कुमारं वीक्ष्यातिशोकं चकार । दिनान्तरैस्तं चन्द्राननाख्यया कन्यया परिणायितवान् । तदपत्यं संप्रति-चन्द्रगुप्तोऽभूत् ।

चाणक्यने पूछा कि यह स्थान परिवर्तन क्यों किया गया है ? इसके उत्तरमें अध्यक्षने कहा कि राजाका ऐसा नियम (आदेश) है कि आगेका आसन किसी दूसरेके लिए दिया जाय । तत्पश्चात् चाणक्य मध्यम आसनके ही ऊपर बैठकर भोजन करने लगा । तत्पश्चात् उसे अन्तिम (निकृष्ट) आसनके ऊपर बैठाया गया । तब भी वह क्रोध न करके वहीं बैठकर खाने लगा । इसके पश्चात् दूसरे दिन जब चाणक्य भोजनगृहके भीतर प्रवेश कर रहा था तब अध्यक्षने उसे रोकते हुए कहा कि राजाने आपके भोजनका निषेध किया है, मैं क्या कर सकता हूँ । इससे चाणक्यको अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ । तब उसने नगरसे बाहर निकलते हुए कहा कि जो व्यक्ति नन्दके राज्यको चाहता हो वह मेरे पीछे लग जावे । यह सुनकर चन्द्रगुप्त नामका क्षत्रिय उसके पीछे लग गया । वह अतिशय दरिद्र था । इसीलिए उसने सोचा कि इसका साथ देनेसे मेरी कुछ भी हानि होनेवाली नहीं है । तब चाणक्यने म्लेच्छोंसे मिलकर प्रयत्नपूर्वक नन्दको नष्ट कर दिया और उसके स्थानपर चन्द्रगुप्तको राजा बना दिया। इस प्रकार चन्द्रगुप्तने कुछ समय तक राज्य किया । तत्पश्चात् उसने अपने पुत्र बिन्दुसारको राज्य देकर चाणक्यके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली । आगे चाणक्य भट्टारककी कथा भिन्न है उसे आराधना कथाकोशसे जानना चाहिए । फिर उस बिन्दुसारने भी अपने पुत्र अशोकके लिए राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। अशोकके कुनाल नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । जब वह बालक पढ़ रहा था तब अशोक म्लेच्छोंके ऊपर आक्रमण करनेके लिए गया था । वहाँसे उसने नगरमें स्थित प्रधानके लिए यह राजाज्ञा भेजी कि उपाध्यायके लिए शालि धानका भात और मसि (स्निग्ध पदार्थ) देकर कुमारको शिक्षण दिलाओ । इस लेखको बाँचनेवालेने विपरीत (च मसिं दत्त्वा कुमारमन्धापयताम् = भातके साथ भस्म देकर कुमारको अन्धा करा दो) पढ़ा । तदनुसार उपाध्यायके लिए शालि धानका भात और राख खिलाकर कुमारके नेत्रोंको निकलवा लिया गया । तत्पश्चात् जब शत्रुओंको जीतकर अशोक वापिस आया और उसने कुमारको अन्धा देखा तो उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ । कुछ दिनोंमें उसने कुमारका विवाह चन्द्रानना नामकी कन्याके साथ करा

---

१. ब लग्नतु । २. क शालिकूरमसिं ।

तं राज्ये निधायाशोको दीक्षितः। संप्रति-चन्द्रगुप्तो राज्यं कुर्वन् तस्थौ।

एकदा तदुद्यानं कश्चिदवधिबोधमुनिरागतो वनपालात्तदागतिं ज्ञात्वा संप्रति-चन्द्रगुप्तो वन्दितुं ययौ। वन्दित्वोपविश्य धर्मश्रुतेरनन्तरं स्वातीतभवान् पृष्टवान्। मुनिः कथयत्य-त्रैवार्यखण्डेऽवन्तीषु वैदेश[1]नगरे राजा जयवर्मा राज्ञी धारिणी। तन्नगरनिकटस्थपलास-कूटग्रामे[2] वैश्यदेविलपृथिव्योः पुत्रो नन्दिमित्रः पुण्यहीनो बह्वाशीति पितृभ्यां निर्घाटितो [3]वैदेशपुरमियाय। तत्र नगराद्बहिर्वटवृक्षतले उपविष्टस्तत्र तस्मात् पूर्वं काष्ठकूटाख्यः काष्ठविक्रयोपजीवी काष्ठभारमुत्तार्य विश्रमन् तस्थौ। तं विलोक्य नन्दिमित्रोऽब्रूत एतद्भा-राच्चतुर्गुणं भारं[4] प्रतिदिनमानयामि, मे भोजनं दास्यसि। तेनोक्तं दास्यामि, ततस्तं काष्ठभारं[5] तन्मस्तके निधाय गृहे जगाम। स्वभार्यां जयघण्टां शिशिक्ष्ये[6]ऽस्य कदाचिदप्युदरपूरं ग्रासं मा देहीति। तस्य रब्बायामनागोदनादिकं[7] (?) स्तोकं दत्त्वातिस्थूलकाष्ठभारानानाययति। काष्ठकूटस्तान्[8] विक्रीय द्रव्यं चिचाय, स्वयं काष्ठानि नानयति, तेनैवानाययति[9]। एकदा पर्वणि जयघण्टा एतत्प्रसादेन मे श्रीर्जाताऽस्य कदाचिदपि परिपूर्णो ग्रासो न दत्तो मयाद्य यथेष्टं भुङ्क्तामिति पायसघृतशर्करादिकं तस्य यथेष्टमदत्त तांबूलं च। ततोऽसौ

लिया। उसके संप्रति चन्द्रगुप्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उसको राज्य देकर अशोकने दीक्षा ले ली। संप्रति चन्द्रगुप्त राज्य करने लगा।

एक समय वहाँ उद्यानमें कोई अवधिज्ञानी मुनि आये। वनपालसे उनके आगमनको जानकर संप्रति चन्द्रगुप्त उनकी वन्दनाके लिए गया। वन्दना करके उसने धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् उसने उनसे अपने पूर्व भवोंको पूछा। मुनि बोले—इसी आर्यखण्डके भीतर अवन्ति देशमें वैदिश (विदिशा ?) नगरमें राजा जयवर्मा राज्य करता था। रानीका नाम धारिणी था। इसी नगरके पासमें एक पलासकूट नामका गाँव है। वहाँ एक देविल नामका वैश्य रहता था। उसकी पत्नीका नाम पृथिवी था। इनके एक नन्दिमित्र नामका पुत्र था जो पुण्यहीन था। वह मात्रामें बहुत अधिक भोजन किया करता था। इसलिए माता-पिताने उसे घरसे निकाल दिया था। तब वह वैदिशपुर गया। वहाँ जाकर वह नगरके बाहर एक वट-वृक्षके नीचे बैठ गया। उसके पहुँचनेके पूर्वमें वहाँ एक काष्ठकूट नामका लकड़हारा लकड़ियोंके बोझको उतारकर विश्राम कर रहा था। उसको देखकर नन्दिमित्र बोला कि यदि तुम मुझे प्रतिदिन भोजन दिया करोगे तो मैं इससे चौगुना लकड़ियोंका बोझ लाया करूँगा। काष्ठकूटने इस बातको स्वीकार कर लिया, तदनुसार वह उस लकड़ियोंके बोझको नन्दिमित्रके सिरपर रखकर घरको गया। उसने अपनी स्त्री जयघंटाको सीख दी कि तुम इसको कभी भी पूरा पेट भोजन नहीं देना। तदनुसार उसकी स्त्री उसे थोड़ा भोजन देने लगी। इस प्रकार काष्ठकूट भारी लकड़ियोंके गट्ठोंको मँगाने और उन लकड़ियोंको बेचकर धनसंचय करने लगा। अब वह स्वयं लकड़ियोंको न लाकर उसीसे मँगाया करता था। एक बार त्योहारके समय जयघण्टाने सोचा कि इसके प्रसादसे मुझे सम्पत्ति प्राप्त हुई है। परन्तु मैंने इसे कभी भी पूर्ण भोजन नहीं दिया। आज इसे इच्छानुसार भोजन कराना चाहिए। यह सोचकर उसने उस दिन नन्दिमित्रके लिए उसकी इच्छानुसार खीर, घी और शक्कर आदि देकर

---

१. फ वैदेश° ब वैदेस श वैदिश°। २. ब पलालकूट°। ३. ब वैदेश° श वैदिश°। ४. श 'भारं' नास्ति। ५. ब ततः काष्टभारं। ६. ज प श शिशिष्ये ब ससिक्षे। ७. ब रब्बायामारनालोदनादिकं। ८. श काष्ठकूटस्यास्तान्। ९. ज तेनैवानययति ब तेनैवर्णयति।

सुस्थो भूत्वा काष्ठकूटं वस्त्रादिकं याचितवान्। तदा तेन स्ववनिता पृष्टास्याद्य किं भोक्तुं दत्तम्। तया कथिते स्वरूपे तदनु स तां किमस्यैवंविधो ग्रासो दत्त इति दण्डै-र्दण्डैर्जघान। नन्दिमित्रो मन्निमित्तमिमां ताडितवानयमित्यस्य गृहे स्थातुमनुचितमिति निर्जगाम। महाकाष्ठभारमानीय तद्विक्रयं[1]स्तस्थौ। लघूनप्यन्यभारान्[2] विक्रीत्वा [क्रीत्वा] जना गच्छन्ति, तद्भारवार्तामपि न कुर्वन्ति। मध्याह्ने[3] बुभुक्षाक्रान्त उद्विग्नो यावदास्ते तावद्विनयगुप्तो मुनिर्मासोपवासी चर्यार्थं प्रविष्टस्तं विलोक्यायं मत्तो वस्त्रादिहीनः क यातीत्यवलोकयामीति भारं तत्रैव निक्षिप्य तत्पृष्ठे लग्नः। स मुनी राज्ञा स्थापितः, पाद-प्रक्षालनादिकं कृत्वायं कश्चित् श्रावक इति दास्या तत्पादौ प्रक्षाल्य दिव्यभोजनं दत्तम्। मुनेर्नैरन्तर्ये सति पञ्चाश्चर्याणि जातानि विलोक्य नन्दिमित्रोऽमन्यतायं देवोऽहमप्येतद्विधो भवामीति तेन सार्धं गुहायां गतः, तत्रोक्तवान्–हे नाथ, मां त्वत्सदृशं कुरु। तं भव्यमल्पायुषं ज्ञात्वा मुनिस्तं दीक्षां दत्तवान्। उपवासं चक्रे[4] पञ्चनमस्कारान् पठितवांश्च[5]। पारणाहेऽ हमहं[6] स्थापयामीति श्रावकाणां संभ्रमं वीक्ष्य कपोतलेश्या परिणतः। प्रातः कीदृशः क्षोभो

अन्तमें पान भी दिया, तब उसने सन्तुष्ट होकर काष्ठकूटसे वस्त्र आदि माँगे। उस समय काष्ठ-कूटने अपनी स्त्रीसे पूछा कि आज इसे तूने खानेके लिए क्या दिया है? इसके उत्तरमें उसने यथार्थ बात कह दी। इससे क्रोधित होकर काष्ठकूटने यह कहते हुए कि तूने उसे ऐसा उत्तम भोजन क्यों दिया है, उसे डण्डोंसे खूब मारा। यह देखकर नन्दिमित्रने विचार किया कि काष्ठकूटने इसे मेरे कारण मारा है, इसलिए अब इसके घरमें रहना योग्य नहीं है। बस यही सोचकर वह उसके घरसे निकल गया। फिर वह एक लकड़ियोंके भारी गट्ठेको लाया और उसे बेचनेके लिए बैठ गया। ग्राहकजन छोटे भी गट्ठोंको खरीदकर चले जाते थे, परन्तु इसके गट्ठेके विषयमें कोई बात भी नहीं करता था। इस तरह दोपहर हो गये। तब वह भूखसे व्याकुल हो उठा। इतनेमें वहाँसे विनय-गुप्त नामके एक मासोपवासी मुनि चर्याके लिए निकले। उन्हें देखकर उसने विचार किया कि मेरे पास तो पहिननेके लिए फटा-पुराना वस्त्र भी है, परन्तु इसके पास तो वह भी नहीं है। देखूँ भला यह किधर जाता है। यह सोचता हुआ वह लकड़ियोंके गट्ठेको वहींपर छोड़कर उनके पीछे लग गया। उन मुनिराजका पडिगाहन राजाने करके उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। नन्दिमित्रको देखकर उसने समझा कि यह कोई श्रावक है। इसलिए उसने दासीके द्वारा उसके पाँव धुलवाकर उसे भी दिव्य भोजन दिया। मुनिका निरन्तराय आहार हो जानेपर राजाके यहाँ पञ्चाश्चर्य हुए। उनको देखकर नन्दिमित्रने समझा कि यह कोई देव है। इसके साथ रहनेसे मैं भी इसके समान हो जाऊँगा। यही सोचता हुआ वह उनके साथ गुफामें चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने उनसे प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! मुझे भी आप अपने समान बना लीजिए। तब भव्य और अल्पायु जानकर विनयगुप्त मुनिने उसे दीक्षा दे दी। उस दिन नन्दिमित्र उपवासको ग्रहण करके पंचनमस्कार मंत्रका पाठ करता रहा। पारणाके दिन 'मैं उन्हें आहार दूँगा, मैं उन्हें आहार दूँगा' इस प्रकार श्रावकोंके बीचमें विवाद आरम्भ हो गया। उसे देखकर नन्दिमित्रके परिणाम कापोत-

---

१. ब 'क्रयंस्थंडिले तस्थौ। २. प श भारा। ३. ब निधाय। ४. ब मुनिस्तं दीक्षांचक्रे। ५. ब पाठित-वांश्च। ६. फ पारणाह्नेहं।

भविष्यतीति क्षोभनिमित्तं द्वितीयमुपवासं चकार। त्रिरात्रपारणायां राजश्रेष्ठ्यादय आगत्य ववन्दिरे बभणुश्चाहमहं[1] स्थापयिष्यामि । तदा नन्दिमित्रो बभाषेऽद्याप्युपोषितोऽहम् । श्रेष्ठ्यादिभिरुक्तमेवं न कर्तव्यम् । तेनोक्तं कृतमेव। तदा राजसभायां श्रेष्ठिना नूतनतपस्वि-गुणव्यावर्णनं कृतम्। तदा देवी प्रातरहं स्थापयिष्यामीति महात्रिरात्रोपवासपारणायां सकलान्तःपुरेण तत्र गता, गुरुशिष्यौ ववन्दे। तदा नन्दिमित्रो मेऽद्याप्युपवासशक्तिर्विद्यते, यदा[2] राजा आगमिष्यति तदा पारणां करोमीति मनसि संचिन्त्योक्तवान् स्वामिन्नद्याप्यु-पोषितोऽहम्। तदा देवी तत्पादयोर्लग्नोपवासो न कर्तव्य इति। सोऽवोचत् गृहीतोपवासस्य त्यजनं किं करोमि। गुरुरप्यवोचत्[3] त्यजनमनुचितमिति। देवी व्याघुट्य जगाम। नन्दिमित्रः पञ्चनमस्कारान् भावयन्[4] तस्थौ। रात्रिपश्चिमयामे गुरुणोक्तं हे नन्दिमित्र, तेऽन्तर्मुहूर्तमेवायु-रिति संन्यासं गृहाण। प्रसाद इति भणित्वा नन्दिमित्रो गुरूक्तसंन्यासक्रमेण तनुं तत्याज सौधर्मे देवो जज्ञे। इतो नन्दिमित्रो मुनिः कालं कृतवानिति राजादय आगत्य सुवर्णादिवृष्टिं कुर्वंस्तत्क्षपकं यावत्प्रभावयन्ति तावत्स देवो नभोऽङ्गणं स्वपरिवारविमानादिभिर्व्याप्य स्वयं सकलदेवीसमूहेन परिवृतो विमाने[5] तस्थौ। नन्दिमित्रस्य गृहस्थकालीनं स्वरूपं कृत्वा

लेश्या जैसे हुए। कल इसके आश्रयसे श्रावकोंमें कैसा क्षोभ होता है, यह देखनेके लिए उसने दूसरा उपवास ग्रहण कर लिया। तीसरे दिन पारणाके निमित्तसे राजसेठ आदिने जाकर उसकी बन्दना करते हुए कहा कि 'मैं पडिगाहन करूँगा, मैं पडिगाहन करूँगा'। इसपर वह नन्दिमित्र बोला मैंने आज भी उपवास किया है। तब सेठ आदिने कहा कि ऐसा न कीजिए। इसके उत्तरसे उसने कहा कि मैं तो वैसा कर ही चुका हूँ। तत्पश्चात् सेठने राजदरबारमें नवीन तपस्वीके गुणोंका वर्णन किया। उसे सुनकर रानीने विचार किया कि प्रातःकालमें मैं उनको आहार दूँगी। इसी विचारसे वह तीन दिनके उपवासके पश्चात् पारणाके समय समस्त अन्तःपुरके साथ वहाँ गई। उसने गुरु और शिष्य दोनोंकी वंदना की। उस समय नन्दिमित्रने मनमें विचार किया कि आज भी मैं उपवास करनेमें समर्थ हूँ, जब राजा आवेगा तब मैं पारणा करूँगा; यही सोचकर उसने कहा हे स्वामिन्! आज भी मेरा उपवास है। तब रानीने उसके पाँवोंमें गिरकर कहा कि अब उपवास न कीजिए। इसपर उसने उत्तर दिया कि ग्रहण किये हुए उपवासको मैं कैसे छोड़ दूँ। गुरुने भी कहा कि ग्रहण किये हुए उपवासको छोड़ना योग्य नहीं है। तब रानी वापिस चली गई। उधर वह नन्दिमित्र पंचनमस्कार मंत्रके पदोंका चिन्तन करता हुआ स्थित रहा। तत्पश्चात् रात्रिके अन्तिम पहरमें गुरुने कहा हे नन्दिमित्र! अब तेरी अन्तमुहूर्त मात्र ही आयु शेष रही है, इसलिए तू संन्यासको ग्रहण कर ले। तब उसने प्रसाद मानकर गुरुके कहे अनुसार विधिपूर्वक संन्यास ग्रहण कर लिया। इस प्रकार वह संन्यासके साथ शरीरको छोड़कर सौधर्म स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ। इधर राजा आदि नन्दिमित्र मुनिके स्वर्गवासको जानकर वहाँ सुवर्णादिकी वर्षा द्वारा क्षपककी प्रभावना कर रहे थे और उधर इसी समय उस देवने अपने परिवारके साथ वहाँ पहुँचकर विमानोंसे आकाशको व्याप्त कर दिया था। स्वयं समस्त देवियोंके साथ विमानमें स्थित था। तब वह नन्दिमित्रके गृहस्थ अवस्थाके वेषमें क्षपकके आगे नृत्य करता हुआ यह बोल रहा था—

---

१. ज बभुणुश्चा॰ फ बभाणुश्चा॰ प श बभाणश्चा॰। २. प तदा। ३. ज प त्यजतुमनु॰। ४. ज भावयान् श 'भावयन्' नास्ति। ५. ज प श विमानेन।

क्षपकस्याग्रे नृत्यन्नवदत्[1] —

पिच्छह पिच्छह [2]ओदनमुंडं अच्छरमज्झगयं रमणिज्जं।
जेण व तेण व कारणएणं[3] पव्वइदव्वं होइ नरेणं॥ इति[4]।

एतद्दर्शनेन सकलजनकौतुकमासीत्। विदिततद्वृत्तान्ता भव्याः केचिद्दीक्षिताः, केचिद्विशेषाणुव्रतानि जगृहुः। जयवर्मा स्वतनयश्रीवर्मणे राज्यं दत्त्वा बहुभिस्तन्मुनिनिकटे दीक्षितः। सर्वेऽपि यथोचितां गतिं ययुः। नन्दिमित्रचरो देवो देवलोकादागत्य त्वं जातोऽसीति निशम्य संप्रति-चन्द्रगुप्तो जहर्ष। तं नत्वा पुरं विवेश सुखेन तस्थौ।

एकस्या रात्रेः पश्चिमयामे षोडश स्वप्नान् ददर्श। कथम्। रवेरस्तमनम् १, कल्पद्रुमशाखाभङ्गम् २, आगच्छतो विमानस्य व्याघुटनम् ३, द्वादशशीर्षं सर्पम् ४, चन्द्रमण्डलभेदम् ५, कृष्णगजयुद्धम् ६, खद्योतम् ७, शुष्कमध्यप्रदेशतडागम् ८, धूमं ९, सिंहासनस्योपरि मर्कटम् १०, स्वर्णभाजने क्षैरेयीं भुञ्जानं श्वानम् ११, गजस्योपरि मर्कटम् १२, कचारमध्ये कमलम् १३, मर्यादोल्लंघितमुदधिम् १४, तरुणवृषभैर्युक्तं रथम् १५, तरुणवृषभारूढान् क्षत्रियांश्च १६, ततोऽपरदिनेऽनेकदेशान्[5] परिभ्रमन् संघेन सह भद्रबाहुः स्वामी आगत्य तत्पुरं चर्यार्थं प्रविष्टः श्रावकगृहे सर्वर्षीन् दत्त्वा स्वयमेकस्मिन् गृहे तस्थौ। तत्रात्यव्यक्तो[8] बालोऽवदत् 'वोलह वोलह' इति। आचार्योऽपृच्छत् केती वरिस[9] इति। बालो 'बारा[10] वरिस' इत्यब्रुत। ततो अलाभेन सूरिरुद्यानं

(मूलमें देखिये) अर्थात् देखो देखो! जो नन्दिमित्र केवल भोजनके निमित्तसे दीक्षित हुआ था वह अब रमणीय देव होकर अप्सराओंके मध्यमें स्थित है। इसलिए मनुष्यको जिस किसी भी कारणसे संन्यास लेना ही चाहिए।

इस देवको देखकर सब ही जनोंको आश्चर्य हुआ। नन्दिमित्रके उक्त वृत्तान्तको जानकर कितने ही भव्य जीव दीक्षित हो गये और कितनोंने विशेष अणुव्रतोंको ग्रहण कर लिया। जयवर्मा राजाने अपने पुत्र श्रीवर्माके लिए राज्य देकर उक्त मुनिराजके ही निकटमें बहुत जनोंके साथ दीक्षा ले ली। ये सब ही यथायोग्य गतिको प्राप्त हुए। नन्दिमित्रका जीव जो देव हुआ था वह स्वर्गसे च्युत हो कर तुम हुए हो। इस प्रकार अपने पूर्व भवोंके वृत्तान्तको सुनकर सम्प्रति चन्द्रगुप्तको बहुत हर्ष हुआ। वह मुनिको नमस्कार करके नगरमें वापिस गया और सुखसे रहने लगा।

उसने एक दिन रात्रिके अन्तिम पहरमें इन सोलह स्वप्नोंको देखा— (१) सूर्यका अस्त होना, (२) कल्पवृक्षकी शाखाका टूटना, (३) आते हुए विमानका वापिस होना, (४) बारह सिरोंसे युक्त सर्प, (५) चन्द्रमण्डलका भेद, (६) काले हाथियोंका युद्ध, (७) जुगनू, (८) मध्य भागमें सूखा हुआ तालाब, (९) धुआँ, (१०) सिंहासनके ऊपर स्थित बन्दर, (११) सुवर्णकी थालीमें खीर खाता हुआ कुत्ता, (१२) हाथीके ऊपर स्थित बन्दर, (१३) कचरेमें कमल, (१४) मर्यादाको लाँघता हुआ समुद्र, (१५) जवान बैलोंसे संयुक्त रथ और (१६) जवान बैलोंके ऊपर चढ़े हुए क्षत्रिय। तत्पश्चात् दूसरे दिन अनेक देशोंमें विहार करते हुए भद्रबाहु स्वामी संघके साथ वहाँ आये और आहारके लिए उस नगरके भीतर प्रविष्ट हुए। वे सब ऋषियोंको विविध श्रावकोंके घर भेजकर स्वयं भी एक श्रावकके घरपर स्थित हुए। वहाँपर अतिशय अव्यक्त बोलनेवाला एक बालक बोला कि जाओ जाओ। इसपर आचार्यने पूछा कि कितने वर्ष? बालकने उत्तर दिया 'बारह वर्ष'।

१. ज प °स्तवदति ब °द्वदति। २. प श. पिछ ओदन ब पेछह ओदन। ३. ब कारणेणं। ४. ब नरोणेति। ५. ज प श प्रवेश°। ६. ज ब कस्वार। ७. ब °दिनेकदेशान्। ८. ब तत्राप्यव्यक्तो। ९. श बरस। १०. ब बारस।

ययौ। संप्रति-चन्द्रगुप्तस्तदागमनं विज्ञाय सपरिजनो वन्दितुं ययौ। वन्दित्वा स्वप्नफलमप्राक्षीत्। मुनिरब्रवीत् अग्रे दुःषमकालवर्तनं त्वया स्वप्ने दृष्टम्। तथाहि-दिनपत्यस्तमनं[1] सकलवस्तुप्रकाशकपरमागमस्यास्तमनं सूचयति १। सुरद्रुमशाखाभङ्गोऽद्यास्तमन (?) प्रभृति-क्षत्रियाणां राज्यं विहाय तपोऽभावं बोधयति २। आगच्छतो विमानस्य व्याघुटनम् अद्यप्रभृत्यत्र सुरचारणादीनाम् आगमनाभावं ब्रूते ३। द्वादशशीर्षः सर्पो[2] द्वादशवर्षाणि दुर्भिक्षं वदति ४। चन्द्रमण्डलभेदो जैनदर्शने संघादिभेदं निरूपयति ५। कृष्णगजयुद्धमितोऽत्राभिलषितवृष्टेरभावं गमयति ६। खद्योतः परमागमस्योपदेशमात्रावस्थानं निगदति[3] ७। मध्यमप्रदेशशुष्कतडागमार्यखण्डमध्यदेशे धर्मविनाशमाचष्टे ८। धूमो दुर्जनादीनामाधिक्यं[4] भणति ९। सिंहासनस्थो मर्कटोऽकुलीनस्य राज्यं प्रकाशयति[5] १०। सुवर्णभाजने पायसं भुञ्जानः श्वा राजसभायां कुलिङ्गपूज्यतां द्योतयति ११। गजस्योपरि स्थितो मर्कटो राजपुत्राणामकुलीनसेवां बोधयति १२। कचारस्थं[6] कमलं रागादियुक्ते तपोविधानं मनयति १३। मर्यादाच्युतउदधिः षष्ठांशातिक्रमेण राज्ञां सिद्धादायग्रहणमाविर्भावयति[7] १४। तरुणवृषभयुक्तो

इसे अन्तराय मानकर आचार्य भद्रबाहु आहार ग्रहण न करके उद्यानमें वापिस चले गये। उधर संप्रति चन्द्रगुप्त भद्रबाहुके आगमनको जानकर परिवारके साथ उनकी वंदनाके लिए गया। वंदना करनेके पश्चात् उनसे पूर्वोक्त स्वप्नोंके फलको पूछा। मुनि बोले— भविष्यमें इस दुःषमा कालकी जैसी कुछ प्रवृत्ति होनेवाली है उस सबको तुमने इन स्वप्नोंमें देख लिया है। यथा— (१) तुमने जो अस्त होते हुए सूर्यको देखा है वह यह सूचना करता है कि अब समस्त वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाला परमागम (द्वादशांग श्रुत) नष्ट होनेवाला है। (२) कल्पवृक्षकी शाखा टूटनेसे यह ज्ञात होता है कि अब क्षत्रिय जन राज्यको छोड़कर तपको ग्रहण नहीं करेंगे। (३) आते हुए विमानका लौटना यह बतलाता है कि आजसे यहाँ देवों एवं चारण ऋषियोंका आगमन नहीं होगा। (४) बारह सिरोंसे संयुक्त सर्पसे यह विदित होता है कि यहाँ बारह वर्ष तक दुर्भिक्ष रहेगा। (५) चन्द्रबिंबका भेद यह प्रगट करता है कि अब जैन दर्शनमें संघ, गण एवं गच्छ आदिका भेद प्रवृत्त होगा। (६) काले हाथियोंका युद्ध यह सूचित करता है कि अबसे यहाँ अभीष्ट वर्षाका अभाव रहेगा। (७) जुगुनूके देखनेसे यह प्रकट होता है कि सकल श्रुतका अभाव हो जानेपर अब यहाँ उसका कुछ थोड़ा-सा उपदेश मात्र अवस्थित रहेगा। (८) मध्य भागमें सूखा हुआ तालाब कहता है कि अब आर्यखण्डके मध्य भागमें धर्मका नाश होगा। (९) धूमका दर्शन दुर्जन आदिकोंकी अधिकताको सूचित करता है। (१०) सिंहासनके ऊपर स्थित बन्दरके देखनेसे सूचित होता है कि अब कुलहीन राजाका राज्य प्रवृत्त होगा। (११) सुवर्णकी थालीमें खीरको खानेवाला कुत्ता यह बतलाता है कि अब राजसभामें कुलिंगियोंकी पूजा हुआ करेगी। (१२) हाथीके ऊपर स्थित बन्दरके देखनेसे सूचित होता है कि अब राजपुत्र कुलहीन मनुष्योंकी सेवा किया करेंगे। (१३) कचरामें स्थित कमल यह बतलाता है कि अब तपका अनुष्ठान राग-द्वेषसे कलुषित मनुष्य किया करेंगे। (१४) मर्यादाको लाँघनेवाले समुद्रके देखनेसे प्रगट होता है कि राजा लोग जो अब तक

---

१. ब °त्यस्तमन त्वया स्वप्ने दृष्टं यत्तत् सकल°। २. ब शीर्षसर्पो। ३. श निवदति। ४. ब दुर्जनाधिक्यं। ५. श मर्कटो राजपुत्राणामकुलीनसेवां बोधयति। ६. ब कचारस्थं। ७. ब सिद्धादयग्रहणमावि° श सिद्धादायमावि°।

रथो बालानां तपोविधानं वृद्धत्वे तपोऽतिचारं[1] निश्चाययति १५। तरुणवृषभारूढाः क्षत्रियाः क्षत्रियाणां कुधर्मरतिं प्रत्याययन्ति १६। इति श्रुत्वा संप्रति-चन्द्रगुप्तः स्वपुत्रसिंहसेनाय राज्यं दत्त्वा निःक्रान्तः।

भद्रबाहुस्वामी तत्र गत्वा बालवृद्धयतीनाह्वाययति स्म, बभाषे च तान् प्रति—अहो यो यतिरत्र स्थास्यति तस्य भङ्गो भविष्यति इति निमित्तं वदति, तस्मात्सर्वैर्दक्षिणमागन्तव्यमिति। रामिल्लाचार्यः स्थूलभद्राचार्यः स्थूलाचार्यस्त्रयोऽप्यतिसमर्थश्रावकवचनेन स्वसंघेन समं तस्थुः। श्रीभद्रबाहुर्द्वादशसहस्रयतिभिर्दक्षिणं चचाल, महाटव्यां स्वाध्यायं ग्रहीतुं निशिहियापूर्वकं कांचिद् गुहां[2] विवेश। तत्रात्रैव निषद्येत्याकाशवाचं शुश्राव। ततो निजमल्पायुर्विबुध्य स्वशिष्यमेकादशाङ्गधारिणं विशाखाचार्यं संघाधारं कृत्वा तेन संघं विससर्ज। संप्रति-चन्द्रगुप्तः प्रस्थाप्यमानोऽपि द्वादश वर्षाणि गुरुपादावाराधनीयावित्यागमश्रुतेर्न गतोऽन्ये गताः। स्वामी संन्यासं जग्राहाराधनामाराधयन् तस्थौ। संप्रति-चन्द्रगुप्तो मुनिरुपवासं कुर्वन् तत्र तस्थौ। तदा स्वामिना भणितो हे मुनेऽस्मद्दर्शने कान्तारचर्यामार्गोऽस्ति[3]। ततस्त्वं कतिपयपादपान्तिकं चर्यार्थं याहि। गुरुवचनमनुल्लङ्घनीयमन्यथायुकादिति

छठे भागको कर(टैक्स)के रूपमें ग्रहण किया करते थे वे अब उक्त नियमका उलंघन करके इच्छानुसार करको ग्रहण किया करेंगे। (१५) जवान बैलोंसे युक्त रथ यह बतलाता है कि अब बालक तपका अनुष्ठान करेंगे और वृद्धावस्थामें उस तपको दूषित करेंगे। (१६) जवान बैलोंके ऊपर चढ़े हुए क्षत्रियोंको देखकर यह निश्चय होता है कि अब क्षत्रिय जन कुधर्मसे अनुराग करेंगे। इस प्रकार उन स्वप्नोंके फलको सुनकर संप्रति चन्द्रगुप्तने अपने पुत्र सिंहसेनके लिए राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

भद्रबाहु स्वामीने उद्यानमें पहुँचकर बाल व वृद्ध सब मुनियोंको बुलाया और कहा कि जो मुनि यहाँ रहेगा उसका तप नष्ट होगा, यह निमित्तज्ञानसे निश्चित है। इसलिए हम सब दक्षिणकी ओर चलें। उस समय रामिल्लाचार्य, स्थूलभद्राचार्य और स्थूलाचार्य ये तीन आचार्य किसी समर्थ श्रावकका वचन पाकर अपने-अपने संघके साथ वहींपर रहे। परन्तु श्रीभद्रबाहु आचार्य बारह हजार मुनियोंके साथ दक्षिणकी ओर चले गये। वे वहाँ स्वाध्यायको सम्पन्न करनेके लिए एक महावनके भीतर निशीथिका (स्वाध्याय भूमि) पूर्वक किसी गुफामें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्हें 'यहीं पर ठहरो' यह आकाशवाणी सुनाई दी। इससे भद्रबाहुने यह निश्चय किया कि अब मेरी आयु बहुत थोड़ी शेष रही है। तब उन्होंने ग्यारह अंगोंके धारक अपने विशाखाचार्य नामक शिष्यको संघका नायक बनाकर उसके साथ संघको आगे भेज दिया। उस संघके साथ वे संप्रति चन्द्रगुप्तको भी भेजना चाहते थे। परन्तु उसने यह आगमवाक्य सुन रक्खा था कि बारह वर्ष तक गुरुके चरणोंकी सेवा करनी चाहिए। इसलिए एक वही नहीं गया, शेष सब चले गये। उधर भद्रबाहुने संन्यास ग्रहण कर लिया। तब वे आराधनाओंकी आराधना करते हुए स्थित रहे। संप्रति चन्द्रगुप्त उस समय उपवास करता हुआ उनके पासमें स्थित था। उस समय भद्रबाहु स्वामीने संप्रति चन्द्रगुप्तसे कहा कि हे मुने! हमारे दर्शनमें—जैनागममें—कान्तार चर्याका मार्ग है—वनमें आहार ग्रहण करनेका विधान है। इसलिए तुम कुछ वृक्षोंके पास तक चर्याके लिए जाओ। यदि वह अयोग्य नहीं

---

१. ब °नां तपो विद्धि वृद्धे व्रतातिचारं। २. फ काचिद्गुहायां श काचिद्गुहां। ३. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श मार्गेऽस्ति। ४. ब °मलंघनीय°।

वचनमाज्ञणाम। तदा तच्चित्तपरीक्षणार्थं यक्षी स्वयमदृशीभूत्वा[1] सुवर्णवलयालंकृतहस्तगृहीत-चट्टुकेन[2] सूपसर्पिरादिमिश्रं[3] शाल्योदनं दर्शयति स्म। मुनिरस्य ग्रहणमयुक्तमित्यलाभे[4] गतः। गुरोरन्ते प्रत्याख्यानं गृहीत्वा स्वरूपं निरूपितवान्। गुरुस्तत्पुण्यमाहात्म्यं विबुध्य भद्रं कृतम् इत्युवाच। अपरस्मिन् दिनेऽन्यत्र ययौ। तत्र रसवतीभाण्डानि हेममयं भाजन-मुदककलशादिकं ददर्श। अलाभेनागतो गुरोः[5] स्वरूपं निरूपितवान्। स च भद्रं भद्रमिति बभाण। अन्यस्मिन् दिनेऽन्यत्र ययौ[6]। तत्रैकैव स्त्री स्थापयति स्म। तदा त्वमेकाहमेक इति जनापवादभयेन स्थातुमनुचितमिति भणित्वालाभे निर्जगाम। अन्येद्युरन्यत्राट। तत्र तत्कृतं नगरमपश्यत्। तत्रैकस्मिन् गृहे चर्यां कृत्वागतो गुरोः स्वरूपं कथितवान्। स[7] बभाण समीचीनं कृतम्। एवं स यथाभिलाषं तत्र चर्यां कृत्वागत्य स्वामिनः शुश्रूषां कुर्वन् वसति स्म। स्वामी कतिपयदिनैर्दिवं गतः। तच्छरीरमुच्चैः प्रदेशे शिलायाम् उपरि निधाय तत्पादौ गुहाभित्तौ विलिख्याराधयन् वसति स्म। विशाखाचार्यादयश्चोलदेशे सुखेन तस्थुः। इतः

है तो गुरुके वचनका उलंघन कभी नहीं करना चाहिए, यह सोचकर संप्रति चन्द्रगुप्त मुनि उनकी आज्ञानुसार चर्याके लिए चले गये। उस समय उनके चित्तकी परीक्षा करनेके लिए एक यक्षीने स्वयं अदृश्य रहकर सुवर्णमय कड़ेसे विभूषित हाथमें कलछी ली और उसे दाल एवं घी आदिसे संयुक्त शालि धानका भात दिखलाया। उसको देखकर मुनिने विचार किया कि इस प्रकारका आहार लेना योग्य नहीं है। इस प्रकार वे बिना आहार लिए ही वापिस चले गये। इस प्रकार वापिस जाकर उन्होंने गुरुके पासमें उपवासको ग्रहण करते हुए उनसे उपर्युक्त घटना कह दी। गुरुने चन्द्रगुप्तके पुण्यके माहात्म्यको जानकर उनसे कहा कि तुमने यह योग्य ही किया है। दूसरे दिन चन्द्रगुप्त आहारके निमित्त दूसरी ओर गये। उधर उन्हें रसोई, बर्तन, सुवर्णमय थाली और पानीका घड़ा आदि दिखा। [परन्तु पडिगाहन करनेवाला वहाँ कोई नहीं था।] इसलिए वे दूसरे दिन भी बिना आहार ग्रहणके ही वापिस आ गये। आजकी घटना भी उन्होंने गुरुसे कह दी। इसपर गुरुने कहा कि बहुत अच्छा किया। तत्पश्चात् तीसरे दिन वे किसी दूसरी ओर गये। वहाँ उनका पडिगाहन केवल एक ही स्त्रीने किया। तब चन्द्रगुप्त मुनिने उससे कहा कि तुम अकेली हो और इधर मैं भी अकेला हूँ, ऐसी अवस्थामें हम दोनोंकी ही निन्दा हो सकती है। इसलिए यहाँ रहना योग्य नहीं है। यह कहकर बिना आहार किये ही वे वापिस चले गये। चौथे दिन वे और दूसरे स्थानमें गये। वहाँ उन्होंने उस यक्षीके द्वारा निर्मित नगरको देखा। वहाँ एक घरपर वे आहार करके आ गये। आज निरन्तराय भोजन प्राप्त हो जानेका भी वृत्तान्त उन्होंने गुरुसे कह दिया। गुरुने भी कह दिया कि अच्छा किया। इस प्रकार वे इच्छानुसार कभी उपवास रखते और कभी वहाँ आहार ग्रहण करके आ जाते। इस प्रकार संप्रति चन्द्रगुप्त मुनि गुरुदेवकी सेवा करते हुए वहाँ स्थित रहे। कुछ ही दिनोंमें भद्रबाहु स्वामी स्वर्गवासी हो गये। चन्द्रगुप्त मुनिने उनके निर्जीव शरीरको किसी ऊँचे स्थानमें एक शिलाके ऊपर रख दिया। फिर वे गुफाकी भित्तिके ऊपर गुरुके चरणोंको लिखकर उनकी आराधना करते हुए वहाँ स्थित रहे। उधर विशाखाचार्य आदि चोलदेशमें

---

१. ब °मदर्शी भूत्वा। २. फ चट्टकेन ब चट्टकेन। ३. ब सूपसप्यादि° श सूर्पसर्पि- रादि°। ४. फ ब °मित्यलाभेन। ५. ब गुरुः। ६. ब अन्यत्रेयाय। ७. श 'स' नास्ति, ब प्रतौ त्वस्ति।

पाटलीपुत्रे ये स्थिता रामिल्लादयस्तत्र महादुर्भिक्षं जातम्, तथापि श्रावका ऋषिभ्योऽतिविशिष्टमन्नं ददति। एकदा चर्यां कृत्वागमनावसरे रङ्कैः कस्यचिदृषेरुदरं विपाट्यौदनो भक्षितः। ऋषेरुपद्रवं वीक्ष्य श्रावकैराचार्या भणिता ऋषयो रात्रौ पात्राणि गृहीत्वा गृहमागच्छन्तु, तान्यशनेन भृत्वा वयं प्रयच्छामो वसतौ निधाय योग्यकाले द्वारं दत्त्वा गवाक्षप्रकाशेन परस्परं हस्तनिक्षेपणं[1] कृत्वा चर्यां कुर्वन्त्विति, तदभ्युपगम्य तथा प्रवर्तमाने सत्येकस्यां रात्रौ दीर्घकायं वेतालाकृतिं पिच्छकमण्डलुपाणिं[2] कुक्कुरादिभयेन गृहीतदण्डं यतिं विलोक्य कस्याश्चिद् गर्भिण्याः भयेन गर्भपातोऽभूत्। तमनर्थं विलोक्योपासकैर्भणितं श्वेतं कम्बलं घटिकास्वरूपं लिङ्गं कटिप्रदेशं[3] च झम्पितं यथा भवति तथा स्कन्धे निक्षिप्य गृहं गच्छन्त्वन्यथानर्थ इति। तदप्यभ्युपगतम्[4]। तथा प्रवर्तमाना अर्धकर्पटितीर्थाभिधा जाताः। एवं ते सुखेन तथैव तस्थुः।

इतो द्वादशवर्षान्तरं दुर्भिक्षं गतमिदानीं विहरिष्याम इति विशाखाचार्याः पुनरुत्तरापथमागच्छन्[5]गुरुनिषद्यावन्दनार्थं तां गुहामवापुः। तावत्तत्रातिष्ठद्यो[6] गुरुपादावाराधयन् संप्रति-चन्द्रगुप्तो मुनिर्द्वितीयलोचाभावे प्रलम्बमानजटाभारः[7] संघस्य संमुखमाट ववन्दे

जाकर वहाँ सुखपूर्वक स्थित हुए।

इधर पाटलिपुत्रमें यद्यपि भारी दुर्भिक्ष प्रारम्भ हो गया था तो भी वहाँ रामिल्ल आदि तीन आचार्योंके संघ स्थित थे उनके लिए श्रावक जन विशिष्ट भोजन दे ही रहे थे। एक दिन जब कोई एक मुनि आहार लेकर वापिस आ रहे थे तब कुछ दरिद्र जनोंने उनके पेटको फाड़कर तद्गत अन्नको खा लिया था। इस प्रकार मुनिके ऊपर आये हुए उपद्रवको देख कर कुछ श्रावकोंने उन आचार्योंसे कहा कि हे मुनिजनो! आप लोग पात्रोंको लेकर हम लोगोंके घरपर रातमें आवें। तब हम लोग उन पात्रोंको भोजनसे भरकर दे दिया करेंगे। आप लोग उनको वसतिकामें ले जावें और फिर वहाँ भोजनके योग्य समयमें द्वारको बंद करके झरोखोंके प्रकाशमें एक दूसरेके हाथमें देकर उस भोजनको ग्रहण कर लिया करें। मुनिजन इसे स्वीकार करके तदनुसार प्रवृत्ति करने लगे। एक दिनकी बात है कि एक साधु, जिसका कि शरीर लम्बा था, एक हाथमें पीछी और कमण्डलुको तथा दूसरे हाथमें कुत्तों आदिके भयसे दण्डको लेकर जा रहा था। उसकी वेताल जैसी आकृतिको देखकर किसी गर्भवती स्त्रीका गर्भपात हो गया। इस अनर्थको देखकर श्रावकोंने कहा कि श्वेत कंबलकी घड़ी करके उसे अपने कन्धेके ऊपर इस प्रकारसे डाल लीजिए कि जिससे लिंग और कटि भाग ढँक जाय। इस प्रकारसे श्रावकके घर जानेपर ऐसा अनर्थ नहीं हो सकेगा, अन्यथा उसकी सम्भावना बनी ही रहेगी। इस बातको भी उन सबने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार प्रवृत्ति करनेसे उनका नाम अर्धकर्पटितीर्थ प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकारसे वे वहाँ उसी प्रकार सुखसे स्थित रहे।

इधर बारह वर्षके बाद जब वह दुर्भिक्ष नष्ट हो गया तब विशाखाचार्य आदिने दक्षिणसे उत्तरकी ओर फिरसे विहार करनेका विचार किया। तदनुसार उत्तरकी ओर आते हुए वे मार्गमें भद्रबाहुकी नसियाकी वंदना करनेके लिए उस गुफामें पहुँचे। तब तक वहाँपर जो संप्रति चन्द्रगुप्त मुनि गुरुके चरणोंकी आराधना करते हुए स्थित थे तथा दूसरी बार केशलुंच न करनेसे जिनका जटाभार

---

१. ब निक्षपणं। २. ज प कमण्डल°। ३. ब °प्रदेशे। ४. ज प श तदभ्युपगतं ब तदप्यभ्युपगतां। ५. श निषिद्या। ६. फ श °त्तत्र तिष्ठद्यो। ७. ज प जटाभार°।

संघम्। [1]अत्रायं कन्दाद्याहारेण स्थित इति न केनापि प्रतिवन्दितः। संघो गुरोर्निषद्याक्रियां[2] चक्रे उपवासं च[3]। द्वितीयाह्ने पारणानिमित्तं कमपि[4] ग्रामं गच्छन्नाचार्यः संप्रति-चन्द्रगुप्तेन निवारितः स्वामिन्, पारणां कृत्वा गन्तव्यमिति। समीपे ग्रामादेरभावात् क्व पारणा भविष्यतीति गणी बभाण। सा चिन्ता न कर्तव्येति संप्रति-चन्द्रगुप्त उवाच[5]। ततो मध्याह्ने कौतुकेन संघस्तत्प्रदर्शितमार्गेण चर्यार्थं चचाल। पुरो नगरं लुलोके, विवेश, बहुभिः श्रावकैर्महोत्साहेन स्थापिता ऋषयः। सर्वेऽपि नैरन्तर्यानन्तरं गुहामाययुः। कश्चिद् ब्रह्मचारी तत्र कमण्डलुं विसस्मार। तामानेतुं ढुढौके। तन्नगरं न[6] लुलोके[7] इति विस्मयं जगाम, गवेषयन् झाडे[8] तामपश्यत्। गृहीत्वागत्याचार्यस्य स्वरूपमकथयत्। ततः सूरिः संप्रति-चन्द्रगुप्तस्य पुण्येन तत्तदैव भवतीत्यवगम्य तं प्रशंसयामास। तस्य लोचं कृत्वा प्रायश्चित्तमदत्त, स्वयमप्यसंयतदत्तमाहारं भुक्तवानिति संघेन प्रायश्चित्तं जग्राह।

इतो दुर्भिक्षापसारे रामिल्लाचार्यस्थूलभद्राचार्यावालोचयामासतुः। स्थूलाचार्योऽतिवृद्धः स्वयमालोचितवांस्तत्संघस्य कम्बलादिकं[9] त्यक्तं[10] न प्रतिभासत इति नालोचयति।

बढ़ रहा था, उन्होंने संघके सन्मुख आकर उसकी वंदना की। परन्तु यह यहाँ कन्दमूलादिका आहार करते हुए स्थित रहा है, ऐसा सोचकर संघके किसी भी मुनिने उनकी वंदनाके उत्तरमें प्रतिवंदना नहीं की। उस संघने वहाँ भद्रबाहुके शरीरका अग्निसंस्कार करते हुए उस दिन उपवास रक्खा। दूसरे दिन जब विशाखाचार्य पारणाके निमित्तसे किसी गाँवकी ओर जाने लगे तब संप्रति चन्द्रगुप्तने उन्हें रोकते हुए कहा हे स्वामिन्! पारणा करनेके पश्चात् विहार कीजिए। इसपर विशाखाचार्यने कहा कि जब यहाँ पासमें कोई गाँव आदि नहीं है तब पारणा कहाँपर हो सकती है? इसके उत्तरमें चन्द्रगुप्तने कहा कि उसकी चिन्ता नहीं कीजिए। तत्पश्चात् मध्याह्नके समयमें चन्द्रगुप्तके द्वारा दिखलाये गये मार्गसे वह संघ आश्चर्य पूर्वक चर्याके लिए निकला। आगे जाते हुए उसे एक नगर दिखाई दिया। तब वह उसके भीतर प्रविष्ट हुआ। वहाँ बहुत-से श्रावकोंने उन मुनियोंका बड़े उत्साहके साथ पडिगाहन किया। इस प्रकार वे सब निरन्तराय आहार करके वहाँसे उस गुफामें वापिस आ गये। उस संघका एक ब्रह्मचारी वहाँ कमण्डलु भूल आया था। वह उसे लेनेके लिए फिरसे वहाँ गया। परन्तु उसे वह नगर नहीं दिखा। इससे उसे बहुत आश्चर्य हुआ। फिर उसने उसे खोजते हुए एक झाड़के नीचे देखा। तब वह उसे लेकर वापिस गुफामें आया। उसने उस नगरके उपलब्ध न होनेकी बात गुरुसे कही। इससे विशाखाचार्यने समझ लिया कि वह नगर संप्रति चन्द्रगुप्तके पुण्यके प्रभावसे उसी समय हो जाया करता है। इस घटनाको जानकर विशाखाचार्यने संप्रति चन्द्रगुप्तकी बहुत प्रशंसा की। पश्चात् उन्होंने संप्रति चन्द्रगुप्त मुनिका केशलुंच करके उन्हें प्रायश्चित्त दिया तथा अव्रतीके द्वारा दिये गये आहारको ग्रहण करनेके कारण संघके साथ स्वयं भी प्रायश्चित्त लिया।

इधर दुर्भिक्षके समाप्त हो जानेपर रामिल्लाचार्य और स्थूलभद्राचार्यने आलोचना करायी। स्थूलाचार्य चूँकि अतिशय वृद्ध हो चुके थे अतएव उन्होंने स्वयं आलोचना कर ली। उनके संघके

---

१. ब अयमत्र। २. श °निषिद्या°। ३. ब 'च' नास्ति। ४. ज प श कथमपि। ५. फ श चन्द्रगुप्तोवाच। ६. श 'न' नास्ति। ७. ब लुलोके। ८. ज झ्याटे प झ्याटे ब श झाटे (अस्पष्टम्)। ९. श किंबलादिकं। १०. ज ब त्यक्तुं।

पुनः पुनर्भणनादाचार्यो रात्रावेकान्ते हतः। स्थूलाचार्यो दिवं गतः इति सर्वैः संभूय[1] संस्कारितः। तद्वयस्तथैव तस्थुः। तत्रागता विशाखाचार्यादयः प्रतिवन्दना न कुर्वन्तीति तदा तैः केवली भुङ्क्ते, स्त्रीनिर्वाणमस्तीत्यादि विभिन्नं मतं कृतम्। तैः पाठिता[2] कस्यचिद्राज्ञः पुत्री स्वामिनी। सा सुराष्ट्रा [ष्ट्र] [3]देशे वलभीपुरेशवप्रपादाय दत्ता। सा तस्यातिवल्लभा जाता। तया स्वगुरवस्तत्रानायिताः। तेषामागमने राज्ञा सममर्धपथं ययौ। राजा तान् विलोक्योक्तवान्– देवि, त्वदीया गुरवः कीदृशा न परिपूर्णं परिहिता नापि नग्नाः इति। उभयप्रकारयोर्मध्ये कमपि प्रकारं स्वीकुर्वन्तु[4] चेत्पुरं प्रविशन्तु, नोचेद्यान्त्वित्युक्ते तैः श्वेतः साटको वेष्टितस्ततः स्वामिनीसंज्ञया श्वेतपटा बभूवुः। स्वामिन्याः पुत्री जक्खलदेवी[5] श्वेतपटैः पाठिता। सा करहाटपुरेशभूपालस्यातिप्रिया जज्ञे। सापि स्वगुरून् स्वनिकट-मानयामास। तेषामागतौ तया राजा विज्ञप्तो मदीया गुरवः समागताः स्वयार्धपथं निर्गन्तव्यमिति। तदुपरोधेन[6] निर्गतो वटतले स्थितान् दण्डकम्बल[7]युतानालोक्य भूपाल उवाच देवि, त्वदीया गुरवो गोपालवेषधारिणो यापनीया इति। राजा तानवज्ञाय पुर

साधुओंने कंबल आदिको नहीं छोड़ा था, और आलोचना भी नहीं करना चाहते थे। जब स्थूलाचार्यने इसके लिए उनसे अनेक बार कहकर कंबल आदिके छोड़ देनेपर बल दिया तब रात्रिके समय एकान्त स्थानमें उनकी हत्या कर दी गई। इस प्रकारसे मरणको प्राप्त होकर स्थूलाभद्राचार्य स्वर्गमें पहुँचे। तब सबने मिलकर उनका अग्निसंस्कार किया। फिर वे साधु उसी प्रकार कंबल आदिके साथ स्थित रहे। जब वहाँ विशाखाचार्य आदि पहुँचे तब उन्होंने इनके पास कंबल आदिको देखकर उनकी वंदनाके उत्तरमें प्रतिवंदना नहीं की। यह देखकर उन सबने 'केवली भोजन किया करते हैं, स्त्रीको भी मोक्ष प्राप्त होता है' इत्यादि प्रकार भिन्न मतको प्रचलित किया। उनने किसी राजाकी पुत्री स्वामिनीको पढ़ाया। वह सुराष्ट्रदेशस्थ वल्लभीपुरके राजा वप्रपादको दी गई थी। वह उसके लिए अतिशय स्नेहकी भाजन हुई। उसने अपने उन गुरुओंको वल्लभीपुरमें बुलाया। तदनुसार उनके वहाँ आ जानेपर वह उनके स्वागतार्थ राजाके साथ आधे मार्ग तक गई। उन सबको देखकर राजाने कहा कि प्रिये! ये तुम्हारे गुरु कैसे हैं? वे न तो पूर्णरूपसे वस्त्र ही पहिने हुए हैं और न नग्न भी हैं। ये यदि उक्त दोनों मार्गोंमें-से एक मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तब तो पुरके भीतर प्रवेश कर सकते हैं, अन्यथा वापिस जावें। यह कहनेपर उन सबोंने श्वेत वस्त्रको पहिन लिया। तब स्वामिनीकी इच्छानुसार उनका नाम श्वेतपट (श्वेताम्बर) प्रचलित कर दिया गया। स्वामिनीके एक जक्खलदेवी नामकी पुत्री थी। उसको श्वेताम्बरोंने पढ़ाया था। वह करहाटपुरके राजा भूपालकी अतिशय प्यारी पत्नी हुई। उसने भी अपने गुरुओंको अपने पास बुलाया। तदनुसार जब वे वहाँ आ पहुँचे तब उसने राजासे प्रार्थना की कि मेरे गुरु यहाँ आये हुए हैं, आपको आधे मार्ग तक जाकर उनका स्वागत करना चाहिए। तब उसके आग्रहसे राजा उनका स्वागत करनेके लिए नगरसे बाहर निकला। उस समय वे दण्ड और कम्बलको लेकर एक वट-वृक्षके नीचे स्थित थे। उनको ऐसे वेशमें स्थित देखकर राजाने रानीसे कहा कि हे देवि! ये तुम्हारे गुरु तो ग्वाले जैसे वेषको धारण करनेवाले हैं, अतः यापनीय (हटा देनेके योग्य) हैं। इस प्रकारसे वह

१. ब इति संभूय सर्वैः सं°। २. प तै पाठिता श तैर्पाठिता। ३. अ फ श सुरथदशे प सुरथादेशे। ४. ब स्वीकुर्वन्ति। ५. अ जरकल° श जखल। ६. श तदुरोधेन। ७. श °कमल°।

विवेश। तेषां तथोक्तं भवादृशामत्र वर्तनं नास्तीति निर्ग्रन्थैः भवितव्यम्। ततस्ते स्वमताव-लम्बेनैव जाल्पसंघाभिधानेन निर्ग्रन्थाजनिषतेति। संप्रति-चन्द्रगुप्तोऽतिविशिष्टतपो विधाय संन्यासेन दिवं जगाम। एवं कापोतलेश्यापरिणामेन कृतोपवासो नन्दिमित्रः स्वर्गादिसुखेशोऽभूद्यो विशुद्धया करोति स किं न स्यादिति ॥५॥

[३६]

इह हि नृपतिपुत्री प्रोषधाज्जातपुण्या-
न्नरसुरगतिभोगान् दीर्घकालं सिषेवे।
अजनि तदनु विष्णोर्जाम्बवत्याह्वया स्त्री
उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्ध्या ॥६॥

अस्य कथा— द्वारवत्यां राजानौ बलनारायणौ[2]। तावेकदोर्जयन्ते स्थितं [3]श्रीनेमिनाथं वन्दितुमीयतुस्तं पूजयित्वा स्तुत्वा च स्वकोष्ठे उपविष्टौ। तत्र हरेर्देवी जाम्बवती[4] वरदत्त-गणधरं नत्वा पप्रच्छ स्वातीतभवान्। स आह— अत्रैव जम्बूद्वीपेऽपरविदेहे[5] पुष्कलावती-विषये वीतशोकपुरे वैश्यदेविलदेवलमत्योर्यशस्विनी[6] सुता जाता प्रधानपुत्रसुमित्राय दत्ता। मृते तस्मिन् दुःखिता जिनदेवेन सम्यक्त्वं ग्राहिता। त्यक्तसम्यक्त्वा मृत्वा[7] आनन्द-

राजा उनकी अवज्ञा करके नगरमें वापिस चला गया। तब जक्खलदेवीने उनसे कहा कि आप जैसोंका इस वेषमें यहाँ निर्वाह होना सम्भव नहीं है। अतएव आप दिगम्बर हो जावें। ऐसा कहनेपर वे अपने अभिप्रायको न छोड़ते हुए दिगम्बर हो गये। इससे उनका संघ जाल्पसंघ नामसे प्रसिद्ध हुआ। संप्रति चन्द्रगुप्त घोर तपश्चरण करके संन्यासके साथ मरणको प्राप्त हुआ और स्वर्ग गया। इस प्रकार कापोतलेश्यारूप परिणामसे उपवासको करके जब वह नन्दिमित्र स्वर्गादिके सुखका भोक्ता हुआ है तब जो भव्य जीव विशुद्ध परिणामोंसे उस उपवासको करेगा वह क्या वैसे सुखका भोक्ता नहीं होगा? अवश्य होगा ॥ ५ ॥

यहाँ बन्धुषेण राजाकी पुत्री बन्धुयशा उपवास करके उससे उत्पन्न हुए पुण्यके प्रभावसे चिर-काल तक मनुष्य और देवगतिके भोगोंको भोगकर अन्तमें कृष्णकी जाम्बवती नामकी पत्नी हुई है। इसलिए मैं मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक उस उपवासको कहता हूँ ॥ ६ ॥

इसकी कथा इस प्रकार है— द्वारवती नगरीमें बलदेव और कृष्ण ये दोनों भाई राज्य करते थे। एक समय वे दोनों ऊर्जयन्त पर्वतके ऊपर स्थित श्री नेमिनाथ जिनेन्द्रकी वंदना करनेके लिए गये। उनकी वंदना और स्तुति करके वे दोनों अपने (मनुष्यके) कोठेमें बैठ गये। वहाँपर कृष्णकी पत्नी जाम्बवतीने वरदत्त नामक गणधरको नमस्कार करके उनसे अपने पूर्व भवोंको पूछा। गणधर बोले— इसी जम्बूद्वीपके भीतर अपर विदेहमें पुष्कलावती देशस्थ वीतशोकपुरमें एक देविल नामका वैश्य रहता था। उसकी पत्नीका नाम देवलमती था। उनके एक यशस्विनी नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। उसका विवाह मंत्रीके पुत्र सुमित्रके साथ कर दिया गया। परन्तु वह मर गया था। इस-लिए वह बहुत दुःखी हुई। तब जिनदेवने सदुपदेश देकर उसके लिए सम्यक्त्व ग्रहण करा दिया।

---

१. ज प श संप्रतिचन्द्रोतिविशिष्टं ब संप्रतिचन्द्रोतिविशेषं। २. ब बलगोविंदौ। ३. ब स्थितं तं श्री°। ४. ज प श जंबवती। ५. ब °द्वीपपूर्वविदेहे। ६. ब देविलदेवमत्यां°। ७. ब मृता।

पुरेशान्तरस्य भार्या मेरुनन्दना बभूव पुत्राणामशीतिं लेभे। चतुःसहस्रवर्षाणि भोगाननुभूयार्तेन मृत्वा चिरं भ्रमित्वा जम्बूद्वीपैरावतविजयपुरेशबन्धुषेणबन्धुमत्योर्दुहिता बन्धुयशा जाता। श्रीमत्यार्जिकया प्रोषधं ग्राहिता, कन्यैव मृता धनदत्तस्य वल्लभा स्वयंप्रभा बभूव। ततो जम्बूद्वीपपूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिणीशवज्रमुष्टिसुप्रभयोः सुमतिर्जाता। सुदर्शनार्जिकान्ते दीक्षिता। अनन्तरं ब्रह्मेन्द्रस्य देवी भूत्वागत्यात्र विजयार्धदक्षिणश्रेणौ जम्बूपुरेशजम्बवसिंहचन्द्रयोः त्वं जातासि। अत्र तपसा देवो भूत्वा आगत्य मण्डलेश्वरो भविष्यसि, तपसा मुक्तश्च। इति बाला विवेकहीनापि प्रोषधेनैवंविधा जाता, विवेकी किं न स्यादिति ॥६॥

[४०]

इह ललितघटाख्या मांससेवादियुक्ता
मृतिसमयगृहीताच्चोपवासाद्विशुद्धात् ।
अगमदमलसौख्यां चारुसर्वार्थसिद्धिम्
उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया ॥७॥

अस्य कथा— अत्रैव वत्सदेशे कौशाम्ब्यां राजा हरिध्वजो देवी वारुणी पुत्राः

परन्तु उसने उसे छोड़ दिया। अन्तमें वह मरकर आनन्दपुरके राजा अन्तरकी मेरुनन्दना नामकी स्त्री हुई। उसने अस्सी पुत्रोंको प्राप्त किया। वह चार हजार वर्ष तक भोगोंको भोगकर आर्तध्यानके साथ मृत्युको प्राप्त हुई। इसलिए वह अनेक योनियोंमें चिर काल तक परिभ्रमण करती हुई इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्रके भीतर विजयपुरके स्वामी बन्धुषेण और बन्धुमतीके बन्धुयशा नामकी पुत्री हुई। उसे श्रीमती आर्यिकाने प्रोषध ग्रहण कराया। वह कुमारी अवस्थामें ही मरणको प्राप्त होकर धनदत्तकी स्वयंप्रभा नामकी प्रिय पत्नी हुई। तत्पश्चात् वह जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशके भीतर जो पुण्डरीकिणी नगरी अवस्थित है उसके स्वामी वज्रमुष्टि और सुप्रभाकी सुमति नामकी पुत्री हुई। उसने सुदर्शना आर्यिकाके समीपमें दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर वह समयानुसार मृत्युको प्राप्त होकर ब्रह्मेन्द्रकी देवी हुई। वहाँसे च्युत होकर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीके अन्तर्गत जम्बूपुरके स्वामी जम्बव और सिंहचन्द्राकी पुत्री तू हुई है। अब तू यहाँ तप करके देव और फिर वहाँसे च्युत होकर मण्डलेश्वर होगी। अन्तमें उसी पर्यायमें तपश्चरण करके मुक्तिको भी प्राप्त करेगी। इस प्रकार विवेकसे रहित वह कन्या भी जब प्रोषधके प्रभावसे इस प्रकार वैभवको प्राप्त हुई है तब भला जो भव्य विवेकपूर्वक उस प्रोषधका पालन करेंगे वे क्या वैसे वैभवको नहीं प्राप्त होंगे ? अवश्य होंगे ॥ ६ ॥

ललितघट इस नामसे प्रसिद्ध जो श्रीवर्धन आदि कुमार यहाँ मांस भक्षण आदि व्यसनोंमें आसक्त थे वे सब मरणके समयमें ग्रहण किये गये निर्मल उपवासके प्रभावसे उत्तम सुखके स्थानभूत सुन्दर सर्वार्थसिद्धि विमानको प्राप्त हुए हैं। इसलिए मैं मन, वचन व कायकी शुद्धिपूर्वक उस उपवासको करता हूँ ॥ ७ ॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी वत्स देशके भीतर कौशाम्बी पुरीमें हरिध्वज नामका राजा

१. ब भार्या नंदना। २. फ श °जिकया पार्श्वे प्रोषधं ब श्रीमत्यार्यिकाया प्रोषधं। ३. फ सुमती जाता। ४. ब गत्यात्र। ५. ज प जम्बु°। ६. ब विवेकहीणा प्रो°।

श्रीवर्धनाद्यो[1] द्वात्रिंशदन्ये[2] प्रधानपुत्राः[3] पञ्चशताः। एते परस्परं सखायः सर्वेऽप्येकत्रैव यान्त्यायान्ति[4] तिष्ठन्ति। सर्वे ललिता[5] इति ललितघटेति जनेनोक्ताः। एकदा श्रीकान्तनगं पापर्द्धौ गताः[6]। तत्र मृगेभ्यो बाणान् यदा[7] विसर्जयन्ति तदा सर्वेषां धनूंषि मोटितानि। ते सर्वेऽपि पतिताः उत्थाय किमिदं कौतुकमिति गवेषयन्तोऽभयघोषमुनिं ददृशुः। अनेनैतत् कृतमिति तत्र केचित् कुपिताः अनर्थं कुर्वाणाः श्रीवर्धनेन निवारिताः। ततस्ते मुनिं नेमुः। स धर्मवृद्धिरस्त्वित्युवाच। श्रीवर्धनो धर्ममप्राक्षीत्, मुनिर्निरूपयामास। स तं श्रुत्वानन्तरं निजायुःप्रमाणं पृष्टवान् कुमारः। मुनिरब्रवीत् युष्माकं सर्वेषां मासमेकमायुः। कथमेतन्निश्चय इति चेत्स्वपुरं गच्छतां भवतां मार्गं निरुद्ध्यानेकस्फटाभिर्भयानकः[8] सर्पः स्थास्यति। स भवत्तर्जनेनादृश्यो[9] भविष्यति। ततोऽग्रे मार्गे उपविष्टं मर्त्यशिशुं द्रक्ष्यथ। स च भवद्दर्शनेन प्रवृद्ध्यातिभयानकराक्षसरूपेण भवतो गिलितुमागमिष्यति। सोऽपि तर्जनेनादृश्यः स्यात्। पुरं प्रविश्य राजमार्गेण स्वभवनगमने काचिदन्धा प्रासादोपरिभूमौ स्थित्वा बालकामेध्यं भूमौ निक्षेप्स्यति। तत् श्रीवर्धनोत्तमाङ्गे पतिष्यति। तथा भवतां मातर आगामिन्यां रात्रौ

राज्य करता था। रानी का नाम वारुणी था। उनके श्रीवर्धन आदि बत्तीस पुत्र थे। बत्तीस ये राजपुत्र तथा पांच सौ मन्त्रिपुत्र इनमें परस्पर मित्रता थी। वे सब एक ही स्थानमें जाते-आते व ठहरते थे। चूँकि वे सब ही सुन्दर थे, इसलिए मनुष्य उन सबको 'ललितघट' नामसे सम्बोधित करने लगे थे। वे सब एक दिन शिकारके विचारसे श्रीकान्त पर्वतपर गये। वहाँ जाकर उन सबने जब मृगोंके ऊपर बाण छोड़े तब उनके धनुष चूर्ण-चूर्ण हो गये और वे सब गिर गये। पश्चात् वे उठकर इस आश्चर्यजनक घटनाकी खोज करने लगे। उस समय उन्हें एक अभयघोष नामके मुनि दिखाई दिये। उनमें से कितनोंके मनमें विचार आया कि यह कृत्य इसीने किया है। इससे वे क्रोधित होकर मुनिका अनिष्ट करनेके लिए उद्यत हो गये। परन्तु श्रीवर्धनने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया। तब उन सबने मुनिको नमस्कार किया। मुनिने सबको धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया। श्रीवर्धनके पूछनेपर मुनिने धर्मकी प्ररूपणा की। धर्मश्रवण करनेके पश्चात् श्रीवर्धन-कुमारने उनसे अपनी आयुके प्रमाणको पूछा। मुनिने कहा कि तुम सबकी आयु अब एक मास प्रमाण ही शेष रही है। यदि तुम इस बातका निश्चय करना चाहते हो तो इन घटनाओंको देखकर कर सकते हो— जब तुम सब अपने नगरको वापिस जाओगे तब तुम्हें बीचमें अनेक फणोंसे भयानक सर्प तुम्हारे मार्गको रोककर स्थित मिलेगा। परन्तु वह आप लोगोंकी भर्त्सनासे दृष्टिके ओझल हो जावेगा। उसके आगे तुम सब मार्गमें बैठे हुए एक मनुष्य बालकको देखोगे। वह तुम लोगोंको देखकर वृद्धिगत होता हुआ भयानक राक्षसके रूपमें तुम सबको निगलनेके लिए आवेगा। परन्तु वह भी तुम्हारी भर्त्सनासे दृष्टिके ओझल हो जावेगा। तत्पश्चात् नगरके भीतर प्रवेश करके जब तुम राजमार्गसे अपने भवनको जाओगे तब कोई अन्धी स्त्री महलके उपरिम भागसे बालकके मलको पृथ्वीपर फेंकेगी और वह श्रीवर्धनकुमारके सिरपर पड़ेगा। तथा अगली रातको आप लोगोंकी मातायें यह स्वप्न देखेंगी कि आप लोगोंको राक्षसने खा लिया है। बस,

---

१. प फ श श्रीवर्धमानाख्यो। २. श त्रिद्वाशदन्ये। ३. ब प्रधानादिपुत्राः। ४. ब सर्वेप्येकत्रैव यांति। ५. ब फ लालिता। ६. श पापार्द्धौ°। ७. फ बाणानि यदा। ८. ज स्पटाभि° श स्फाटिभि°। ९. ब भवद्दर्शनेमा°।

भवन्तो राक्षसेन गिलिता इति स्वप्नं विलोकिष्यन्ते[1]। एतद्दर्शनेन मद्वचः सत्यं जानीथेति मुनिप्रतिपादितं निशम्य सकौतुकहृदयाः पुरं चलिताः, तथैव सर्वं विलुलोकिरे, स्व-स्व-पितरावभ्युपगमय्य तन्मुनिनिकटे दिदीक्षिरे, संन्यासं गृहीत्वा यमुनातीरे प्रायोपगमनेन[2] तस्थुः, मासावसाने अकालवृष्टौ सत्यां तन्नदीपूरेण गताः, समाधिना सर्वार्थसिद्धिं ययुरिति। ते तथाविधा अप्यवसानेऽनशनेन[3] तथाविधा जाताः, अन्यो यो जिनभक्तः शक्त्या विशुद्धया च करोत्यनशनं स किं न स्यादिति ॥७॥

[४१]

श्वपचकुलभवो ना भूरिदुःखो च कुष्ठी
व्यभवदमरदेही दिव्यकान्तामनोजः[4]।
अनशनसुविधायी स्वस्य देहावसाने
उपवसनमतोऽहं तत्करोमि त्रिशुद्धया ॥८॥

अस्य कथा— जम्बूद्वीपपूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिण्यां राजानौ वसुपाल-श्रीपालौ। तत्पुरबहिः शिवंकरोद्याने भीमकेवलिनः समवशरणमस्थात्। तत्र खचरवती-सुभगा-रतिसेना-सुसीमाश्चेति चतस्रो व्यन्तरकान्ता आजग्मुः। केवलिनं पप्रच्छुरस्माकं

इन सब घटनाओंको देखकर मेरे वचनको तुम सत्य समझ लेना। इस प्रकार मुनिके कथनको सुनकर वे आश्चर्यान्वित होते हुए नगरकी ओर गये। मार्गमें जाते हुए उन सबने जैसा कि मुनिने कहा था उन सभी घटनाओंको देख लिया। इससे विरक्त होकर उन सबने अपने-अपने माता-पिता-की स्वीकृति लेकर उन मुनिके निकटमें दीक्षा धारण कर ली। तत्पश्चात् वे संन्यासको ग्रहण करके प्रायोपगमन (स्व-परवैयावृत्तिका त्याग) के साथ यमुना नदीके तटपर स्थित हुए। ठीक एक मासके अन्तमें वे असमयमें हुई वर्षाके कारण वृद्धिको प्राप्त हुए यमुनाके प्रवाहमें बह गये। इस प्रकार समाधिके साथ मरणको प्राप्त होकर वे सब सर्वार्थसिद्धि विमानमें देव हुए। इस प्रकार वे मांस भक्षणादिमें आसक्त होकर भी अन्तमें ग्रहण किये उपवासके प्रभावसे जब वैसी समृद्धिको प्राप्त हुए हैं तब दूसरा जो जिनभक्त जीव अपनी शक्तिके अनुसार विशुद्धिपूर्वक उपवासको करता है वह क्या वैसी समृद्धिको नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा ॥ ७ ॥

जो मनुष्य चाण्डालके कुलमें उत्पन्न होकर अतिशय दुःखी और कोढ़ी था वह उपवासको करके उसके प्रभावसे अपने शरीरको छोड़ता हुआ देव पर्यायको प्राप्त हुआ। तब वह देवांग-नाओंके लिए कामदेवके समान सुन्दर प्रतीत होता था। इसीलिए मैं मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक उस उपवासको करता हूँ ॥ ८ ॥

इसकी कथा इस प्रकार है— जम्बूद्वीपके भीतर पूर्व विदेहमें एक पुष्कलवती नामका देश व उसमें पुण्डरीकिणी नगरी है। वहाँ राजा श्रीपाल और वसुपाल राज्य करते थे। एक समय उस नगरके बाहर शिवंकर उद्यानमें भीम नामक केवलीका समवसरण स्थित हुआ। वहाँ खचरवती (सुखावती), सुभगा, रतिसेना और सुसीमा नामकी चार व्यन्तर देवियाँ आईं। उन्होंने केवलीसे पूछा कि

---

१. ब विलोकयिष्यन्ते। २. श गमने। ३. ज प ब अप्यवसनेन फ अप्यवसानेन। ४. फ दिव्यकान्तो मनोज्ञः, श दिव्यकान्तो मनोजः।

वरः को भवेदिति। तैर्निरूपितं पूर्वमत्र पुरे चण्डाख्यश्चाण्डालोऽजनि यो विद्युद्वेगचौरेण समं वसुपालराजेन[1] लाक्षागृहे निक्षिप्य मारितः। तत्सुतोऽर्जुनः उदुम्बरकुष्ठेन कुथितदेहो बन्धुभिर्वर्जितः सन् सुरगिरौ कृष्णगुहायां संन्यासेन तिष्ठति। स पञ्चमदिने वितनुर्भूत्वा भवतीनां पतिः स्यादिति। तच्छ्रुत्वा तास्तत्रेयुस्तस्य हे अर्जुन, पञ्चमदिने त्वमस्माकं पतिर्भविष्यसीति भीमभट्टारकैर्निरूपितमिति त्वं परीषहपीडितोऽपि[2] संक्लेशं मा कुर्वीति संबोधयन्त्यस्तस्थुः। तदा तत्र क्रीडार्थं कुबेरपालनामा राजपुत्रः समागतस्ताः[4] विलोक्य चुकोपो [पा][3] यं चाण्डालः कुष्ठीत्यथो[5] एनं निकृष्टं विहाय मयि[6] रतिं कुरुत। ताभिरुक्तम्-वयं देव्यस्त्वं मर्त्य इति कथमिदं ब्रूषे, यदि त्वं भोगार्थी धर्मपरो भव, वयं च किं[7] सौधर्मादिष्वतिविशिष्टा[8] बहवो हि देव्यो भविष्यन्ति। ततः स जगाम। ततो नागदत्ताख्यश्रेष्ठिनः पुत्रो भवदत्ताख्यः आगतस्तेन ता[9] दृष्टास्तथा चोक्तम्। ताभिरपि तथोक्तम्। तदनु स कामज्वरेण मृत्वा तत्पित्रा कारितनागभवने उत्पलाख्यो व्यन्तरोऽभूत्। सोऽर्जुनस्तासां बह्वीनां सुरदेवनामा देवोऽजनि, सपरिवारो भीमभट्टारकं वन्दितुमाययौ। तं दृष्ट्वा तद्वृत्तमवगम्य तत्समवसरणस्थाः प्रोषधरता[10] अजनिषत। इत्यनेकप्राणिघाती चाण्डाल उपवासेन सुरो

हमारा पति कौन होगा ? केवलीने कहा कि इसी नगरमें पहले एक चण्ड नामका चाण्डाल उत्पन्न हुआ था। उसे वसुपाल राजाने विद्युद्वेग चोरके साथ लाखके घरमें रखकर मार डाला था। उसके एक अर्जुन नामका पुत्र था। उसके शरीरमें उदुम्बर कुष्ठ रोग हो गया था। इससे कुटुम्बी जनोंने उसे घरसे निकाल दिया था। वह घरसे निकलकर इस समय सुरगिरि पर्वतके ऊपर कृष्ण गुफामें संन्यासके साथ स्थित है। वह पाँचवें दिन शरीरको छोड़कर तुम्हारा पति होगा। इसको सुनकर वे चारों व्यन्तर देवियाँ उस सुरगिरि पर्वतपर गईं और उससे बोलीं कि हे अर्जुन ! तुम पाँचवें दिन शरीरको छोड़कर हम लोगोंके पति होओगे, यह हमें भीम केवलीने बतलाया है। इसलिए तुम परीषहसे पीड़ित हो करके भी संक्लेश न करना। इस प्रकारसे उसे सम्बोधित करती हुई वे चारों उसीके पास स्थित हो गईं। उस समय कुबेरपाल नामका राजपुत्र वहाँ क्रीड़ाके लिये आया। उनको देखकर उसने क्रोधके आवेशमें कहा कि यह चाण्डाल कोढ़ी है, इसलिए इस निकृष्टको छोड़कर तुम मुझसे अनुराग करो। उनने उत्तर दिया कि हम देवियाँ हैं और तुम हो मनुष्य, इसलिए तुम यह असम्बद्ध बात क्यों बोलते हो ? यदि तुम भोगोंकी अभिलाषा रखते हो तो धर्ममें निरत हो जाओ। इससे हम लोगोंकी तो बात ही क्या, तुम्हें सौधर्मादि स्वर्गोंमें हमसे भी विशिष्ट देवियाँ प्राप्त हो सकेंगी। तब वह वहाँसे चला गया। तत्पश्चात् वहाँ नागदत्त सेठका पुत्र भवदत्त आया। उसने भी उनको देखकर वैसा ही कहा। तब उन सबने उसे भी वही उत्तर दिया जो कि कुबेरपालके लिए दिया था। तत्पश्चात् वह कामज्वरसे मरकर अपने पिताके द्वारा बनवाये गये नागभवनमें उत्पल नामका व्यन्तर हुआ। वह अर्जुन उन बहुत-सी देवियोंका सुरदेव नामका देव उत्पन्न हुआ। वह परिवारके साथ भीमकेवलीकी वंदनाके लिये आया। उसको देखकर और उसके वृत्तान्तको जानकर भीमकेवलीकी समवसरण सभामें स्थित कितने ही जीव प्रोषधमें निरत हो गये। इस प्रकार अनेक प्राणियोंकी हिंसा करनेवाला वह चाण्डाल उपवासके प्रभावसे जब देव

---

१. ब वसुपालेन राज्येन। २. ब °पीडितो सं°। ३. ज चुकुपायं प ब श चुकुपोयं। ४. ब तां। ५. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श एवं। ६. ब मया। ७. फ 'कि' नास्ति। ८. ब सौधर्मादिति°। ९. ब तां। १०. ब प्रोषधनारता।

जातोऽन्यो भव्यः किं न स्यादिति ॥८॥

उपवासफलाख्यकपद्यमिदं वसुसंख्यमितं प्रपठेदिह यः।
स भवेदमरो वरकीर्तिधरो नरनाथपतिश्च स मुक्तिपतिः[2] ॥५॥

इति पुण्यास्रवाभिधानग्रन्थे केशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यरामचन्द्रमुमुक्षुविरचिते उपवासफलव्यावर्णनो नामाष्टकं समाप्तम्[3] ॥५॥

[४२]

श्रीश्रीषेणो[4] नृपालः सुरनरगतिजं दाता सुतनुक-
स्तज्जाये चानुमोदाद् द्विजवरतनुजा दानस्य सुमुनेः।
भुक्त्वा दीर्घं हि सौख्यं वितनुस्वगुणका जाताः सुविदिता-
स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥१॥

अस्य कथा— अत्रैव भरते आर्यखण्डे मलयदेशे रत्नसंचयपुरेशः श्रीषेणो देव्यौ सिंहनन्दितानिन्दिताख्ये। तयोः क्रमेण पुत्राविन्द्रोपेन्द्रौ। तत्रैव विप्रः सात्यको[5] भार्या जम्बू पुत्री सत्यभामा। एवं सर्वे सुखेन तस्थुः। अत्र कथान्तरम्। तथाहि— मगधदेशे अचलग्रामे विप्रो धरणीजडो भार्या अग्निला पुत्रौ चन्द्रभूत्यग्निभूती। तद्दासीपुत्रः कपिलोऽतिप्राज्ञो

उत्पन्न हुआ है तब अन्य भव्य जीव क्या उसके फलसे समृद्धिको प्राप्त नहीं होगा अवश्य होगा ॥८॥

जो जीव उपवासके फलकी प्ररूपणा करनेवाले इस आठ संख्यारूप पद्य (आठ कथामय प्रकरण) को पढ़ेगा वह देव और उत्तम कीर्तिका धारक चक्रवर्ती होकर मुक्तिको प्राप्त होगा ॥५॥

इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनिके शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षुके द्वारा विरचित पुण्यास्रव नामक ग्रन्थमें उपवासके फलको बतलानेवाला अष्टक समाप्त हुआ ॥५॥

मुनिके लिये आहार देनेवाला श्री श्रीषेण राजा सुन्दर शरीरसे सहित होता हुआ देव और मनुष्य गतिके लम्बे सुखको भोगकर शरीरसे रहित सिद्धोंके आठ गुणोंसे संयुक्त हुआ है— मुक्त हुआ है। तथा उसकी दोनों पत्नियों और उस ब्राह्मणपुत्री (सत्यभामा) ने भी उक्त मुनिदानकी अनुमोदनासे देव व मनुष्य गतियोंके सुखको भोगा है। यह भली-भाँति विदित है। इसलिये निर्मल गुणोंके धारक भव्य जीवोंको उत्तम मुनिके लिये दान देना चाहिये ॥१॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी जम्बूद्वीपके भीतर भरतक्षेत्रगत आर्यखण्डमें मलय नामका देश है। उसके अन्तर्गत रत्नसंचयपुरमें श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था। उसके सिंहनन्दिता और अनिन्दिता नामकी दो पत्नियाँ थी। उन दोनोंके क्रमसे इन्द्र और उपेन्द्र नामके दो पुत्र हुए। उसी नगरमें एक सात्यक नामका ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम जम्बू और पुत्रीका नाम सत्यभामा था। ये सब वहाँ सुखपूर्वक स्थित थे। यहाँ एक दूसरी कथा है जो इस प्रकार है— मगध देशके अन्तर्गत अचल गाँवमें धरणीजड़ नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम अग्निला था। इनके चन्द्रभूति और अग्निभूति नामके दो पुत्र थे। उसके एक कपिल नामका दासीपुत्र भी था जो अतिशय बुद्धिमान् और

१. ब प्रपठेदिह। २. फ सुमुक्तिपतिः ब स मुक्तिपतिं। ३. ज °वर्णनाष्टकं समाप्त ब °वर्ण नाष्टकं समाप्तः: प श °वर्ण नामाष्टकं। ४. ब श्रीश्रीषेणनृ°। ५. फ सात्यकी।

रूपवांश्च। स तत्पुत्रवेदाध्ययनकाले सर्ववेदादिकं शिशिक्षे[1]। तच्छास्त्रपरिज्ञानं ज्ञात्वा[2] धरणीजडेन निर्घाटितः। स यज्ञोपवीतादियुतो भूत्वा रत्नसंचयं पुरमागतः। सात्यकस्तं गुणिनं [3]रूपाधिकं च दृष्ट्वा तस्मै सत्यभामामदत्त। सा तं ब्राह्मणानुष्ठाने शिथिलमतिं[4] कामिनं च विलोक्य तत्कुले संदिग्धचिन्ता वर्तते। कतिपयदिनैर्धरणीजडस्तस्य समृद्धिं श्रुत्वा द्रव्येच्छया तदन्तमागतस्तेन मत्तात इति सर्वत्र प्रभावितः। स तद्गृहे सुखेन स्थितः। एकदा भर्तरि बहिर्गते तया द्रव्यं पुरो व्यवस्थाप्य पृष्टः श्वशुरः कपिलस्य का जातिरिति। तेन यथावत्कथिते सा राजभवनं गत्वा राज्ञस्तदकथयत्। राजा तत्स्वरूपं विचार्य गर्दभारोहणादिकं कारयित्वा तं स्वदेशान्निर्धाटितवान्। सा राजभवने एव तिष्ठति स्म। एकदा राजभवनमनन्तगत्यरिंजयभट्टारकौ[5] चारणौ चर्यार्थमागतौ राज्ञा, स्थापितावति-विशुद्धयाहारदानं[6] दत्तम्[7]। तत्र देव्यौ ब्राह्मणी चानुमोदं चक्रुः।

एकदानन्तमती विलासिनीनिमित्तमिन्द्रोपेन्द्रौ योद्धुं लग्नौ पित्रा निवारितावपि युद्धं न त्यक्तवन्तौ। तदा विषपुष्पमाघ्राय राजा देव्यौ ब्राह्मणी च मम्रुः। मुनिदत्ताहारफलेनानुमोदफलेन च तत्र नृपो धातकीखण्डपूर्वमन्दरस्योत्तरभोगभूमावार्यो जज्ञे। सिंहनन्दिता

सुन्दर था। ब्राह्मण जब अपने पुत्रोंको वेद आदि पढ़ाता तब वह भी उसे सुना करता था। इससे वह वेदादिका अच्छा ज्ञाता हो गया था। उसके शास्त्र ज्ञानको देखकर धरणीजड़ने उसे अपने घरसे निकाल दिया था। तब वह यज्ञोपवीत आदिको धारण करके रत्नसंचयपुरमें आया। सात्यकने उसे गुणी और सुन्दर देखकर उसके साथ अपनी पुत्री सत्यभामाका विवाह कर दिया। वह ब्राह्मणके योग्य क्रियाकाण्डमें शिथिल होकर अतिशय कामी था। उसकी ऐसी प्रवृत्तिको देखकर सत्यभामाके मनमें उसके कुलके विषयमें सन्देह उत्पन्न हुआ। कुछ दिनोंके पश्चात् धरणीजड़ उसकी वृद्धिको सुनकर धनकी इच्छासे उसके पास आया। उसने 'यह मेरा पिता है' कहकर सब लोगोंमें प्रसिद्ध कर दिया। इस प्रकार धरणीजड़ उसके घरपर सुखसे रहने लगा। एक दिन जब पति बाहर गया था तब सत्यभामाने ससुर धरणीजड़के सामने धनको रखकर उससे पूछा कि कपिलकी जाति कौन-सी है ? इसके उत्तरमें उसने यथार्थ वृत्तान्त कह दिया। तब सत्यभामाने राजभवनमें जाकर उसके वृत्तान्तको राजासे कहा। राजाने इस घटनापर विचार करके कपिलको गधेके ऊपर सवार कराया और नगरमें घुमाते हुए देशसे निकाल दिया। सत्यभामा राजभवनमें ही रही। एक दिन अनन्तगति और अरिंजय नामके दो चारणमुनि चर्याके निमित्तसे राजभवनमें आये। राजाने पड़िगाहन करके उनको अतिशय विशुद्धिपूर्वक आहारदान दिया। उसकी दोनों रानियों और उस ब्राह्मणी (सत्यभामा) ने इस आहारदानकी अनुमोदना की।

एक समय इन्द्र और उपेन्द्र नामके दोनों राजपुत्र अनन्तमती वेश्याके निमित्तसे परस्पर युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गये। राजाने उन्हें इसके लिए बहुत रोका। परन्तु दोनोंने युद्धके विचारको नहीं छोड़ा। तब राजा, दोनों रानियों और उस ब्राह्मणी सत्यभामाने विषपुष्पको सूँघकर अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया। मुनियोंके लिये दिये गये उस दानके प्रभावसे वह राजा धातकी-खण्डद्वीपके पूर्व मेरु सम्बन्धी उत्तम भोगभूमिमें आर्य हुआ। उक्त दानकी अनुमोदना करनेसे सिंह-

---

१. अ प श शिशिक्ष्ये। २. ज तच्छास्त्रं परिज्ञानं ज्ञात्वा श तच्छास्त्रपरिज्ञात्वा। ३. फ रूपादिकं। ४. ब शिथिलमति°। ५. श भवनंतगत्य°। ६. श °वितिविशुद्धया। ७. ब–प्रतिपाठोऽयम्। श °द्धया तद्दानं।

तस्यार्या बभूव। अनिन्दिता[1] तद्द्वार्यो जातो द्विजनन्दना तस्यैवार्या जाता। पानकाङ्ग-तूर्याङ्गभूषणाङ्गज्योतिरङ्गगृहाङ्गभाजनाङ्गदीपाङ्गमाल्याङ्गभोजनाङ्गवस्त्राङ्गाश्चेति[2] दशविधकल्पतरुफलोपभुञ्जाना व्याधिदुःखरहितास्त्रिपल्योपमकालं दिव्यसुखमन्वभूवन्। ततः श्रीषेणचर आर्यश्च्युत्वा सौधर्मे श्रीप्रभविमाने श्रीप्रभनामा देवोऽभूत्। ततः आगत्यात्रैव भरते विजयार्धदक्षिणश्रेणौ रथनूपुरेशार्ककीर्तिरश्मिमालयोः सुतोऽमिततेजोऽभिधोऽभूद्विद्याधरचक्री च, बहुकालं राज्यं विधाय तपसानतकल्पे[3] नन्दभ्रमणविमाने मणिचूडनामा देवोऽजनि। ततोऽवतीर्यात्र द्वीपे [4]पूर्वविदेहवत्सकावती[5]विषयप्रभाकरीपुरीशस्तिमितसागरवसुंधर्योर्नन्दनोऽपराजितो बलदेवो बभूव। बहुकालं राज्यं विधाय तपसाच्युते जातः। ततः आगत्यात्रैव द्वीपे [6]पूर्वविदेहमङ्गलावतीविषय[7]रत्नपुरेशतीर्थंकरकुमार[8]क्षेमंधरमहाराजहेमचित्रयोर्नन्दनो वज्रायुधोऽभूत्। सकलचक्रवर्ती दीर्घकालं राज्यं कृत्वा तपसा उपरिमाधस्तनग्रैवेयके सौमनसविमानेऽहमिन्द्रोऽजनि। ततोऽवतीर्यात्रैव द्वीपे पूर्वविदेहपुष्कलावतीविषयपुण्डरीकिण्यां तीर्थकृत्कुमारोऽभ्ररथो[9] राजा देवी मनोहरी तन्नन्दनो मेघरथो जज्ञे। महामण्डलेश्वरः। तदनु तपसा सर्वार्थसिद्धौ भूत्वागत्य गर्भावतरणकल्याणपुरःसरं कुरुजाङ्गलदेश-

नन्दिता उस आर्यकी आर्या हुई। अनन्दिताका जीव उसी भोगभूमिमें आर्य तथा उक्त ब्राह्मण-पुत्री इस आर्यकी आर्या हुई। ये सब वहाँ पानकांग, तूर्यांग, भूषणांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भाजनांग, दीपांग; माल्यांग, भोजनांग और वस्त्रांग; इन दस प्रकारके कल्पवृक्षोंके फलको भोगते हुए दिव्य सुखका अनुभव करने लगे। उनकी आयु तीन पल्य प्रमाण थी। वे व्याधि आदिके दुखसे सर्वथा रहित थे। पश्चात् वह श्रीषेण राजाका जीव मरकर सौधर्म स्वर्गके भीतर श्रीप्रभ विमानमें श्रीप्रभ नामका देव हुआ। वहाँसे च्युत होकर वह विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें स्थित रथनूपुरके राजा अर्ककीर्ति और रश्मिमालाका अमिततेज नामका पुत्र हुआ जो विद्याधरोंका चक्रवर्ती था। उसने बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् वह तपके प्रभावसे आनत स्वर्गमें नन्दभ्रमण विमानके भीतर मणिचूड नामका देव हुआ। फिर वहाँसे च्युत होकर वह इसी जम्बूद्वीपके भीतर पूर्व विदेहमें जो वत्सकावती देश व उसके भीतर प्रभाकरी पुरी है उसके स्वामी स्तिमितसागर और वसुन्धरीके अपराजित नामका पुत्र हुआ जो बलदेव था। उसने बहुत समय तक राज्य करके अन्तमें तपको स्वीकार किया। उसके प्रभावसे वह अच्युत स्वर्गमें देव हुआ। फिर वहाँसे आकर वह इसी द्वीपके पूर्व विदेहमें मंगलावती देशस्थ रत्नपुरके स्वामी क्षेमंधर महाराजा और हेमचित्राके वज्रायुध नामका पुत्र हुआ। क्षेमंकर महाराज तीर्थंकर थे। वज्रायुधने सकल चक्रवर्ती होकर बहुत काल तक राज्य किया। तत्पश्चात् वह तपश्चरण करके उसके प्रभावसे उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयकमें सौमनस विमानके भीतर अहमिन्द्र हुआ। फिर वहाँसे चयकर वह इसी द्वीपके पूर्व विदेहमें स्थित पुष्कलावती देशके अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुरीमें तीर्थंकर कुमार अभ्ररथ (घनरथ) राजा और मनोहरी रानीके मेघरथ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह महामण्डलेश्वर था। तत्पश्चात् वह तपश्चरण करके उसके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धिमें देव हुआ। वहाँसे च्युत होकर वह गर्भावतरण कल्याणपूर्वक कुरु-

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श अनन्दिता। २. ब भोजनागदीपांगमाल्यांगवस्त्रांगभाजनांगाख्यदश°। ३. ब बहुकालं राज्यानंतरं तपसा अनंतकल्पनंद°। ४. फ पूर्वविदेहे। ५. ब कच्छावती। ६. ज फ पूर्वविदेहे। ७. फ °विषये। ८. ब क्षेमंकर। ९. ब °रोऽभ्रमरथो।

हस्तिनापुरनरेशो[1]विश्वसेनैरयोर्नन्दनः श्रीशान्तिनाथस्तीर्थंकरश्चक्री कामश्च जातो मुक्तश्च। सिंहनन्दिताद्यो ऽप्युभयगतिसौख्यं भुक्त्वा मुक्तिमापुः इति दानफलोल्लेखनमेवात्र[2] कृतम्। विस्तरतः शान्तिचरित्रे इयं कथा मया निरूपितेत्यत्र न निरूप्यते। सा तत्र[3] ज्ञातव्या। एवं सकृद्दत्तदानो मिथ्यादृष्टिरपि तत्फलेन द्वादशभवान् सुखमन्वभून्मुक्तिं च जगाम। सद्दृष्टिर्यो[4] दानं ददाति स किं मुक्तिवल्लभो न स्यादिति ॥१॥

[४३]

ख्यातः श्रीवज्रजङ्घो विगलिततनुका जाताः[5] सुवनिता
तस्य व्याघ्रो वराहः कपिकुलतिलकः क्रूरो हि नकुलः।
भुक्त्वा ते सारसौख्यं सुरनरभुवने श्रीदानफलत-
स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥२॥

अस्य कथा—आदिपुराणे प्रसिद्धेति तदेव निरूप्यते। अत्रैव द्वीपेऽपरविदेहे गन्धिल-विषये विजयार्धोत्तरश्रेणावलकापुरेशातिबलमनोहर्योः पुत्रो महाबलः। तं[6] राज्ये नियुज्याति-बलस्तपो विधाय केवली भूत्वा मोक्षं गतः। महाबलो विद्याधरचक्री महामति-संभिन्नमति-शतमति[7]-स्वयंबुद्धाख्यैर्मन्त्रिभी राज्यं कुर्वन् तस्थौ। एकदा तदास्थानलीलां विलोक्य

जांगल देशके अन्तर्गत हस्तिनापुरके राजा विश्वसेन और रानी ऐराका पुत्र शान्तिनाथ तीर्थंकर हुआ। यह चक्रवर्तीके साथ कामदेव होकर मोक्षको प्राप्त हुआ। इस प्रकार यहाँ केवल दानके फलका उल्लेख मात्र किया गया है। विस्तारसे इस कथाका निरूपण मैंने शान्तिचरित्रमें किया है, इसीलिये उसकी विशेष प्ररूपणा यहाँ नहीं की जा रही है। इसको वहाँसे जान लेना चाहिये। इस प्रकारसे एक बार दान देनेवाला वह मिथ्यादृष्टि भी श्रीषेण राजा जब उसके फलसे बारह भवोंमें सुखको भोगकर मुक्तिको प्राप्त हुआ है तब जो सम्यग्दृष्टि भव्य जीव दान देता है वह क्या मुक्तिकान्ताका प्रिय नहीं होगा? अवश्य होगा ॥१॥

प्रसिद्ध वज्रजंघ राजा, उसकी पत्नी (श्रीमती), व्याघ्र, शूकर, बानर कुलमें श्रेष्ठ बंदर और दुष्ट नेवला; ये सब मुनिदानके फलसे देवलोक और मनुष्यलोकमें उत्तम सुखको भोगकर अन्तमें शरीरसे रहित (सिद्ध) हुए हैं। इसीलिये निर्मल गुणोंके धारक भव्य जीवोंको उत्तम पात्रके लिए दान देना चाहिये ॥२॥

इसकी कथा आदिपुराणमें प्रसिद्ध है। वहाँसे ही उसका निरूपण किया जाता है— इसी जम्बूद्वीपमें अपरविदेह क्षेत्रके भीतर गन्धिला देशके मध्यमें विजयार्ध पर्वत है। उसकी उत्तर श्रेणीमें एक अलकापुर नामका नगर है। उसमें अतिबल नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम मनोहरी था। इन दोनोंके एक महाबल नामका पुत्र था। उसको राज्यके कार्यमें नियुक्त करके अतिबलने दीक्षा ले ली। वह तपश्चरण करके केवलज्ञानी होता हुआ मोक्षको प्राप्त हुआ। महाबल विद्याधरोंका चक्रवर्ती था। उसके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयम्बुद्ध नामके चार मन्त्री थे। इनकी सहायतासे वह राज्यकार्य करता था। एक समय महाबल राजाके सभा-भवनकी छटाको देखकर स्वयम्बुद्ध मन्त्री बोला कि हे राजन्! यह तुम्हारा सौन्दर्य आदि सब

---

१. ब °पुरेश। २. °ल्लेखनामवात्र। ३ ज प श सात्र। ४. फ सदृष्टिर्मीवो यो। ५. ज फ ब जाता। ६. ज प ब श महाबलो तं। ७. ज प सतमति श सततमति।

स्वयंबुद्धोऽवृत एतच्च रूपादिकं धर्मजनितमिति धर्मः कर्तव्यः। इतरे शून्यवादिनो बभणुः सति धर्मिणि धर्माश्चिन्त्यन्ते। पूर्वं परलोकिना जीवेन भवितव्यं पश्चात्परलोकश्चिन्तया। जीव एव नास्तीति किं धर्मेण। तान् प्रति तर्कवादेन स्वयंबुद्धो जीवसिद्धिं विधाय श्रुत-दृष्टानुभुक्तकथा[1] जीवास्तित्वे दृष्टान्तेनाह—शृणुत हे सभ्याः, पूर्वमस्याम्नायेऽरविन्दो नाम राजाभूद्देवी विजया पुत्रौ हरिश्चन्द्रकुरुविन्दौ। एकदा अरविन्दस्य महान् दाहज्वरो[2] जातः। स हरिश्चन्द्रं प्रार्थयति स्म पुत्र मां शीतलप्रदेशं नयेति। पुत्रस्तच्छीतलक्रियाकरणार्थं जलवर्षिणीं विद्यां प्रेषितवान्। सापि तमुपशान्तिं नानैषीत्। एवं स यदा दुःखेन तिष्ठति तदा गृहकोकिले परस्परं युद्धं चक्रतुः। तत्रैकस्याः [3]क्षतजबिन्दुस्तस्योपरि पपात। ततः[4] किंचित्सुखमवाप। तस्य पूर्वमेव रौद्रपरिणामेन विभङ्गमुत्पन्नम्। तेन मृगावासं परिज्ञाय पुत्रं प्रार्थितवान् अस्मिन्नरण्ये मृगास्तिष्ठन्ति। तेषां रुधिरेण वापिकां पूरय। तत्र जलक्रीडायां सुखं स्यान्नान्यथेति। पितृभक्त्या स तत्र जगाम, तान् धरमाणो मुनिना निवारितः, उक्तं च— ते तातोऽल्पायुर्मृत्वा नरकं यास्यति, वृथा किं पापसंग्रहं करिष्यसि। कुमारोऽवोचत्

धर्मके प्रभावसे उत्पन्न हुआ है। इसलिए तुम्हें धर्म करना चाहिये। स्वयम्बुद्धके इस उपदेशको सुनकर दूसरे शून्यवादी मन्त्री बोले कि धर्मीके होनेपर धर्मोंका विचार करना योग्य है। पहिले परलोकसे सम्बन्ध रखनेवाला जीव (धर्मी) सिद्ध होना चाहिये। तत्पश्चात् परलोकके सुख-दुखका विचार करना उचित माना जा सकता है। परन्तु जब जीव ही नहीं है तब भला धर्म करनेसे क्या अभीष्ट सिद्ध होगा? इसपर स्वयम्बुद्धने प्रथमतः उन लोगोंके लिए युक्तिपूर्वक जीवकी सिद्धि की। तत्पश्चात् उसने दृष्टान्तके रूपमें जीवके अस्तित्वको प्रगट करनेवाली एक देखी, सुनी और अनुभवमें आयी हुई कथाको कहते हुए सदस्योंसे उसके सुननेकी प्रार्थना की। वह बोला—

पहिले इस महाबल राजाके वंशमें एक अरविन्द नामका राजा हो गया है। उसकी पत्नीका नाम विजया था। इनके हरिश्चन्द्र और कुरुविन्द नामके दो पुत्र थे। एक समय अरविन्दके लिए दाहज्वर उत्पन्न हुआ। तब उसने हरिश्चन्द्रसे प्रार्थना की कि हे पुत्र! मुझे किसी ठण्डे स्थानमें ले चलो। तब पुत्रने उसके शीतलतारूप कार्यको सम्पन्न करनेके लिए जलवर्षिणी विद्याको भेजा। परन्तु वह उसके दाहज्वरको शान्त नहीं कर सकी। इस प्रकार जब वह अरविन्द दुखका अनुभव करता हुआ स्थित था तब वहाँ दो छिपकलियाँ परस्पर लड़ रही थीं। उनमें-से एकके क्षत शरीरसे रुधिर-की बूँद निकलकर अरविन्दके शरीरके ऊपर जा गिरी। इससे उसे कुछ शान्ति प्राप्त हुई। रौद्र परिणामके कारण उसे विभंगज्ञान पहिले ही उत्पन्न हो चुका था। इससे उसने मृगोंके रहनेके स्थानको जान करके पुत्रसे प्रार्थना की कि इस (अमुक) वनमें मृग रहते हैं, उनके रुधिरसे तुम एक वापिकाको पूर्ण करो। उसमें जलक्रीड़ा करनेसे मुझे सुख प्राप्त हो सकता है। इसके बिना मुझे किसी प्रकारसे सुख नहीं हो सकता है। तब पिताकी भक्तिसे वह पुत्र उस वनमें जाकर मृगोंको पकड़ने लगा। उसे इससे रोकते हुए मुनि बोले कि तुम्हारे पिताकी आयु अतिशय अल्प शेष रही है। वह मरकर नरक जानेवाला है। ऐसी अवस्थामें तुम व्यर्थ पापका संग्रह क्यों करते हो? इसे सुनकर कुमारने कहा कि मेरा पिता बहुत ज्ञानी है, वह भला नरकमें क्यों जायगा?

१. फ श्रुतं दृष्ट्वानुभुक्तकथा। २. ब दीर्घज्वरो। ३. ब- प्रतिपाठोऽयम्। ज प फ श क्षतजलबिन्दु। ४. ब 'ततः' नास्ति।

मत्पितैवंविधो ज्ञानी किं नरकं यास्यति । मुनिरुवाच— पापहेतुमेव जानाति, न[1] पुण्यहेतुम् । गत्वा पृच्छ 'तत्राटव्यामन्यत् किं तिष्ठति' इति । यदि मां जानाति तर्हि त्वत्पिता ज्ञानी । तेन पृष्टः, स न जानाति । [2]तदा पुत्रेण लाक्षारसेन वापिका पूरिता । स तत्र क्रीडयितुं विवेशा-नन्देन तत् पिबति स्म । लाक्षारसं विज्ञाय तेनाहं छिद्रित इति च्छुरिकया तं मारयितुं धावन् स्वयं[3] स्वस्याश्छुरिकाया उपरि पतितो मृतो नरकं गत इति सर्वे पौरवृद्धाः प्रतिपादयन्ति ।

तथान्योऽप्येतत्संताने[4] दण्डकाख्यो नृपो[5]ऽभूत्, देवी सुन्दरी पुत्रो मणिमाली । दण्डको मृत्वा स्वभाण्डागारेऽहिरभूत् । स मणिमालिनमेव तत्र प्रवेष्टुं प्रयच्छत्यन्यस्य खादितुं धावति । मणिमालिनैकदा रतिचारणाख्योऽवधिबोधस्तद्वृत्तान्तं पृष्टः । तेन यथावत्कथिते तेनागत्याहिः संबोधितोऽणुव्रतानि जग्राहायुरन्ते सौधर्मं गतः । स आगत्य दिव्यवस्त्रा-भरणैर्मणिमालिनं पूजयामास । एतत्कण्ठादिप्रदेशस्थानि तान्यभरणानि किं न भवन्ति ।

तथा[6] दृष्टानुभुक्तकथामवधारयन्तु । तथा ह्यस्य पितृपितामहः सहस्रबलः स्वतनयं शतबलं स्वपदे निधाय दीक्षितो मोक्षमुपजगाम । शतबलोऽपि स्वपुत्रातिबलाय राज्यं दत्त्वा

तत्पश्चात् मुनि बोले कि वह केवल पापके कारणको ही जानता है, पुण्यके कारणको नहीं जानता । तुम जाकर उससे पूछो कि उस वनमें और क्या है । यदि वह मुझे जानता है तो समझो कि तुम्हारा पिता ज्ञानी है । तब पुत्रने जाकर पितासे वैसा ही पूछा । परन्तु वह इसे नहीं जानता था । ऐसी स्थितिमें पुत्रने एक वापिकाको बनवाकर उसे रुधिरके स्थानमें लाखके रससे भरवा दिया । तब अरविंद क्रीड़ा करनेके लिए उसके भीतर प्रविष्ट हुआ । परन्तु जब उसने उसका आनन्दके साथ पान किया तो उसे ज्ञात हो गया कि यह रुधिर नहीं है, किन्तु लाखका रस है । तब पुत्रकी इस धोखा-देहीसे क्रोधित होकर वह उसे छूरीसे मारनेके लिए दौड़ा, किन्तु ऐसा करते हुए वह स्वयं ही अपनी उस छूरीके ऊपर गिरकर मर गया और नरकमें जा पहुँचा । इस वृत्तान्तको नगरके सब ही वृद्ध जन कहा करते हैं ।

इसके अतिरिक्त इसकी वंशपरम्परामें दण्डक नामका एक दूसरा भी राजा भी हो गया है । उसकी पत्नीका नाम सुन्दरी था । इनके एक मणिमाली नामका पुत्र था । दण्डक मरकर अपने भाण्डा-गारमें सर्प हुआ था । वह केवल मणिमालीको ही उसके भीतर प्रवेश करने देता था और दूसरे-के लिए वह काटनेको दौड़ाता था । एक बार मणिमालीने इस घटनाके सम्बन्धमें किसी रतिचारण नामके अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा । मुनिने उसके पूर्वोक्त वृत्तान्तको कह दिया । उसको सुनकर मणि-मालीने भण्डागारमें जाकर उस सर्पको सम्बोधित किया । इससे सर्पने अणुव्रतोंको ग्रहण कर लिया । वह आयुके अन्तमें मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ । उसने आकर मणिमालीकी दिव्य वस्त्राभरणोंसे पूजा की । इस महाबलके कण्ठ आदि स्थानोंमें सुशोभित ये आभूषण क्या वे ही नहीं हैं ? अर्थात् वे ही हैं ।

इसके अतिरिक्त आप लोग इस देखी और अनुभवमें आयी हुई कथाके ऊपर भी विश्वास करें— महाबल राजाके प्रपितामह सहस्रबलने अपने पुत्र शतबलको राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली थी । वे मुक्तिको प्राप्त हुए हैं । पश्चात् शतबल भी अपने पुत्र अतिबलके लिए राज्य देकर

१. ब- प्रतिपाठोऽयम् । श 'न' नास्ति । २. ब प्रतिपाठोऽयम् । श 'तदा' नास्ति । ३. ब धावदयं स्वयं । ४. ज प फ श तथान्येप्येत° । ५. श 'नृपो' नास्ति । ६. प यथा दृष्टानुभुक्तकथमव° ।

निष्क्रान्तो माहेन्द्रस्वर्गेऽजनि। अतिबलोऽप्येतस्मै राज्यं दत्त्वा दीक्षितवान्। अस्य कुमारकाले वयं चत्वारोऽप्यनेन मन्दरं[1] क्रीडितुमैम। तत्र[2] जिनालयार्चनं पूजयित्वा निर्गच्छन् महेन्द्र-कल्पजोऽमुं विलोक्योक्तवान् 'मन्नप्ता त्वम्' इति, दिव्यवस्त्रादिकमदत्त। स एतैरपि दृष्टः। किं च त्वत्पितुः केवलपूजार्थं जातदेवागमो[3]ऽस्माभिः सर्वैरपि दृष्टः। इत्यनेकधा जीवसिद्धिं कृत्वा महाबलदत्तजयपत्रं जग्राह। महाबलस्तथापि धर्मं नागच्छत्यतिवृद्धोऽजनि। एकदा स्वयं-बुद्धो मन्दरमियाय। तत्र जिनालयान् पूजयित्वा स्वपुरगमनमना यदाभूत्तदा तत्रैव[4] पूर्वविदेहे सीताया उत्तरतटस्थकच्छाविषयारिष्टपुरस्थयुगंधरतीर्थकरसमवसरणात्[5]तत्रादित्यगति-अरिं-जयचारणावतीर्णौ। तौ नत्वा मन्त्री पप्रच्छ—महाबलः किमिति धर्मं न गृह्णाति। मुनि-राहातीतभवं कथयामि—अत्रैव विषये आर्यखण्डे सिंहपुरेश[6]श्रीषेणसुन्दर्योः पुत्रौ जयवर्मा-श्री-वर्माणौ। प्रव्रजता श्रीषेणेन जयवर्मा धीमान् न भवतीति श्रीवर्मा राजा कृतः। जयवर्मा वैरा-ग्येण स्वयंप्रभाचार्यान्ते दीक्षितः। केशान् बिलाभ्यन्तरे निक्षिपन् सर्पदष्टोऽजनि[7]। तदवसरे विभूत्या विमानमारुह्य गच्छन्तं [8]महीधरखेचरं विलुलोके। [9]तपःप्रभावेनाहं विद्याधरो

दीक्षित हो गया था। वह मरणको प्राप्त होकर माहेन्द्र स्वर्गमें देव हुआ। अतिबलने भी इसके लिए (महाबलके लिए) राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली है। इसकी कुमारावस्थामें हम चारों ही इसके साथ क्रीड़ा करनेके लिए मन्दर पर्वतके ऊपर गये थे। वहाँ जिनालयमें-से जब यह जिनपूजा करके आ रहा था तब महेन्द्र स्वर्गका वह देव इसको देखकर बोला कि तुम मेरे नाती हो। फिर उसने इसे दिव्य वस्त्रादि दिये। उक्त देवको इन सबने भी देखा था। इसके अतिरिक्त जब तुम्हारे पिताको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तब उनकी पूजाके लिए आते हुए देवोंको हम सबने ही देखा था।

उक्त प्रकारसे स्वयम्बुद्ध मंत्रीने अनेक युक्तियोंके द्वारा जीवकी सिद्धि करके महाबलके द्वारा दिये गये जयपत्र (विजयके प्रमाणपत्र) को प्राप्त किया। किन्तु फिर भी महाबल धर्ममें दृढ़ नहीं हुआ। वह अनुक्रमसे अतिशय वृद्ध हो गया था। एक समय स्वयम्बुद्ध मन्दर पर्वतपर गया। वह जिनालयोंकी पूजा करके जैसे ही अपने नगरकी ओर आनेको उद्यत हुआ वैसे ही युगंधर तीर्थंकरके समवसरणसे आदित्यगति और अरिंजय नामके दो चारण ऋषि आकाशमार्गसे नीचे आये। उस समय युगंधर तीर्थंकरका समवसरण पूर्वविदेहके भीतर सीता नदीके उत्तर तटपर स्थित कच्छा देशमें अरिष्टपुरको सुशोभित कर रहा था। उनको नमस्कार कर स्वयम्बुद्धने पूछा कि प्रभो ! महाबल धर्मको ग्रहण नहीं कर रहा है, इसका कारण क्या है। उत्तरमें मुनि बोले कि मैं महाबलके पूर्व भवके वृत्तान्त कहता हूँ— इसी देशमें आर्यखण्डके भीतर एक सिंहपुर नामका नगर है। उसमें श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम सुन्दरी था। उनके जयवर्मा और श्रीवर्मा नामके दो पुत्र थे। इनमें बड़ा पुत्र जयवर्मा बुद्धिहीन था। इसीलिए श्रीषेणने दीक्षा लेते समय जयवर्माको राजा न बनाकर श्रीवर्माको राजा बनाया था। इससे विरक्त होकर जयवर्मा स्वयम्प्रभाचार्यके समीपमें दीक्षित हो गया। उसे बालोंको बिलके भीतर रखते समय सर्पने काट लिया था। इसी समय एक महीधर नामका विद्याधर विमानमें बैठकर विभूतिके साथ वहाँसे जा रहा था। उसे देखकर महा-

---

१. प मंदिरं। २. प क्रीडितुं गत्वा मम तत्र फ श क्रीडितुं गत्वान्वैम तत्र। ३. फ श जातः देवागमो। ४. ब स्वपुरमागमनाय यदाभूत्तदात्रैव। ५. ब °शरणात्तत्रा°। ६. श सिंहपुरेश। ७. श ऽजने। ८. ब मगधर°। ९. ब एतत्तप:°।

भविष्यामीति कृतनिदानो महाबलोऽभूदिति भोगांस्त्यक्तुं न शक्नोति। किं चातीतरात्रौ स्वप्ने ऽद्राक्षीत्। किमित्युक्ते महामत्यादिभिस्त्रिभिर्धृत्वातिकुथितकर्दमे मज्जितम्, [1]त्वयाकृष्य संस्नाप्य सिंहासने उपवेश्य पूजितं चात्मानं तव कथयितुं त्वामवलोकयन्नास्ते। यावत्स न कथयति तावत्त्वमेव कथय यथा स धर्मं गृहीष्यति। किं च तस्य मास एवायुरिति श्रुत्वा तौ नत्वा संगम्य मन्त्री तथैवाकथयत्तदातिवैराग्यपरो जज्ञे। स्वपुत्रमतिबलं स्वपदे निधाय सर्वजिनालयेष्वष्टाह्निकीं [2]पूजां विधाय सिद्धकूटं गत्वा परिजनं विसृज्य स्वयंबुद्धोपदेशक्रमेण केशानुत्पाट्य प्रायोपगमनसंन्यासनेन द्वाविंशतिदिनैः शरीरं विहायेशाननाके स्वयंप्रभविमाने ललिताङ्गनामा महर्द्धिको देवोऽभूत्। तस्य स्वयंप्रभाकनकमालाकनकलताविद्युल्लताख्याश्चतस्रो महादेव्यस्तस्य द्विसागरोपमायुर्मध्ये पञ्च-पञ्चपल्येषु तासु बह्वीषु गतास्ववसाने पञ्चपल्यायुषि स्थिते या स्वयंप्रभा देवी बभूव सा तस्यातिवल्लभा जाता। तया सुखेन तस्थौ। षण्मासायुषि स्थिते मरणचिह्ने सति महादुःखी बभूव। देवैः संबोधितः सन् [3]समचित्तेन तनुं

बलने निदान किया कि इस तपके प्रभावसे मैं विद्याधर होऊँगा। इसी निदानके कारण वह महाबल होकर विषयभोगोंको छोड़नेके लिए असमर्थ हो रहा है। परन्तु आज रात्रिमें उसने स्वप्नमें देखा है कि उसे महामति आदि तीन मन्त्रियोंने पकड़कर दुर्गन्धयुक्त कीचड़में डुबा दिया है। उसमें-से निकालकर तुमने उसे स्नान कराते हुए सिंहासनपर बैठाया और पूजा की। अपने इस स्वप्नके वृत्तान्तको सुनानेके लिए वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जब तक वह उस स्वप्नके वृत्तान्तको तुम्हें नहीं सुनाता है तब तक तुम उसके पहिले ही उस स्वप्नके वृत्तान्तको कह देना। इससे वह दृढ़तापूर्वक धर्मको ग्रहण कर लेगा। अब उसकी आयु केवल एक मासकी ही शेष रही है। इस वृत्तान्तको सुनकर स्वयम्बुद्धने उन दोनों मुनियोंको नमस्कार किया और अपने नगरको वापिस चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने महाबल राजासे उस स्वप्नके वृत्तान्तको उसी प्रकारसे कह दिया। इससे वह अतिशय वैराग्यको प्राप्त हुआ। तब उसने अपने पुत्र अतिबलको राजपदपर प्रतिष्ठित किया और फिर सर्व जिनालयोंमें जाकर अष्टाह्निक पूजा की। तत्पश्चात् सिद्धकूटके ऊपर जाकर उसने परिजनको विदा किया और स्वयम्बुद्धके उपदेशानुसार केशलोंच करते हुए दीक्षा ले ली। दीक्षाके साथ ही उसने प्रायोपगमन सन्यासको भी ग्रहण कर लिया। इस प्रकारसे वह बाईस दिनमें शरीरको छोड़कर ईशान कल्पके अन्तर्गत स्वयंप्रभ विमानमें ललितांग नामका महर्द्धिक देव हुआ। उसके स्वयंप्रभा, कनकमाला, कनकलता और विद्युल्लता ये चार महादेवियाँ थी। आयु उसकी दो सागरोपम प्रमाण थी। इस बीच पाँच-पाँच पल्योंकी आयुमें उसकी वे बहुत-सी देवियाँ मरणको प्राप्त हो गईं। अन्तमें जब उसकी पाँच पल्य मात्र आयु शेष रह गई तब स्वयंप्रभा नामकी जो देवी उत्पन्न हुई वह उसे अतिशय प्यारी हुई। उसके साथ वह सुखपूर्वक स्थित रहा। तत्पश्चात् छह मास प्रमाण आयुके शेष रह जानेपर जब मरणके चिह्न दिखने लगे तब वह बहुत दुःखी हुआ। उसकी वैसी अवस्था देखकर सामानिक देवोंने उसे सम्बोधित किया। तब वह समचित्त होकर—विषादको

१. प श मथितं। २. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श सर्वजिनालये अष्टाह्निकी। ३. प सन्न् सम क सनसम श सन्नसम।

विहायागत्यात्रैव पूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये उत्पलखेटपुरेशवज्रबाहु-वसुंधर्योः पुत्रो वज्रजङ्घोऽजनि। स्वयंप्रभागत्य तद्विषय एव पुण्डरीकिणीशवज्रदन्त-लक्ष्मीमत्योः सुता श्रीमती जाता, प्राप्तयौवना सुखेन स्थिता।

एकदास्थानस्थो वज्रदन्तो द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां विज्ञप्तः—देव, ते पितुर्यशोधरभट्टारकतीर्थकरपरमदेवस्य केवलं समुत्पन्नम्, आयुधागारे चक्रमुत्पन्नमिति च। तदैव कयाचिद्विज्ञप्तो देव, देवागमावलोकनात् श्रीमती मूर्च्छिता[1] जातेति। तस्याः शीतलक्रियया प्रतीकारं कुरुतेति प्रतिपाद्य समवसृतिं जगाम चक्री, तद्वन्दनानन्तरं विशुद्ध्यतिशयेन देशावधियुक्तो जज्ञे, तदनु दिग्विजयं चकार। इतः श्रीमती मौनेन स्थिता। तत्पण्डितयैकान्ते मौनकारणं पृष्टा सावोचदहं देवागमनदर्शनेन पूर्वभवान्[2] स्मृत्वा मौनेन स्थिता[3]। पण्डितया तान् भवान् कथयेत्युक्ते सा स्वातीतभवानाह— हे पण्डिते, धातकीखण्डद्वीपपूर्वमन्दरापरविदेहगन्धिलविषयपाटलीग्रामे वैश्यनागदत्तवसुमत्योः पुत्रा नन्दि-नन्दिमित्र-नन्दिसेन-वरसेन-जयसेनाख्याः पञ्च, पुत्र्यौ मदनकान्ता-श्रीकान्तेऽहमष्टमी यदा गर्भे स्थिता पिता मृत[4] उत्पत्त्यनन्तरं भ्रातरो भगिन्यौ[5] च, कतिपयदिनैर्मातृजननी च, कतिपयवर्षानन्तरं जनन्यपि। ततोऽहं

छोड़कर—मरा और फिर इसी पूर्वविदेहके भीतर पुष्कलावती देशमें स्थित उत्पलखेट पुरके राजा वज्रबाहु और वसुंधराके वज्रजंघ नामक पुत्र हुआ। और वह स्वयंप्रभा देवी उस ईशान कल्पसे च्युत होकर उसी पुष्कलावती देशके भीतर स्थित पुण्डरीकिणी पुरके राजा वज्रदन्त एवं रानी लक्ष्मीमतीके श्रीमती नामकी पुत्री हुई। वह क्रमशः यौवन अवस्थाको प्राप्त होकर सुखपूर्वक स्थित थी।

एक समय वज्रदन्त राजा सभाभवनमें बैठा हुआ था। उस समय दो पुरुषोंने आकर निवेदन किया कि हे देव! आपके पिता यशोधर भट्टारक तीर्थंकरको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। तथा आयुधशालामें चन्द्ररत्न भी उत्पन्न हुआ है। उसी समय किसी स्त्रीने आकर प्रार्थना की कि हे देव! देवोंके आगमनको देखकर श्रीमती मूर्छित हो गई है। तब वज्रदन्त राजा उससे शीतोपचार क्रियाके द्वारा श्रीमतीकी मूर्छाको दूर करनेके लिए कहकर समवसरणको चला गया। वहाँ यशोधर जिनेन्द्रकी वंदना करनेके पश्चात् विशुद्धिकी अधिकतासे उस वज्रदन्त चक्रवर्तीको देशावधिज्ञान प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् उसने दिग्विजय किया। इधर श्रीमतीने मौन धारण कर लिया। तब पण्डिताने उससे एकान्तमें इस मौनके कारणको पूछा। उत्तरमें श्रीमतीने कहा कि देवोंके आगमनको देखकर मुझे पूर्वभवोंका स्मरण हुआ है। इसीसे मैंने मौनका आश्रय लिया है। तब पण्डिता बोली कि तो फिर तुम उन भवोंका वृत्तान्त मुझे सुनाओ। इसपर उसने अपने पूर्व भवोंका वृत्तान्त इस प्रकारसे कहा— हे पण्डिते! धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मेरु सम्बन्धी अपरविदेहमें एक गन्धिला देश है। उसमें एक पाटली नामका गाँव है। वहाँपर एक नागदत्त नामका वैश्य रहता था। उसकी पत्नीका नाम वसुमती था। इनके नन्दी, नन्दिमित्र, नन्दिसेन, वरसेन और जयसेन नामके पाँच पुत्र और मदनकान्ता व श्रीकान्ता नामकी दो पुत्रियाँ थीं। इनके पश्चात् जब मैं आठवीं पुत्री माताके गर्भमें आयी तब पिताका मरण हो गया। तत्पश्चात् मेरा जन्म होनेपर वे सब भाई और दोनों बहिनें भी मर गईं। इसके पश्चात् कुछ ही दिनोंमें

१. श श्रीमतिर्मूर्छिता। २. ब पूर्वभर्त्तान्। ३. ज प श मौनस्थिता। ४ फ मृत.। ५. प भ्रातरो भगिन्यो श भ्रातरो भगिनो।

निर्नामिका चारणचरिताटवीं प्रविश्य तन्मध्यस्थमम्बरतिलकगिरिं चटितवती । तत्र पञ्चशतचारणैः स्थितं पिहितास्रवयोगिनमपश्यम् । तं नत्वापृच्छं केन पापेनाहम् ईदृग्विधा जातेति। स आह— अत्रैव पलालकूटग्रामे ग्रामकूटकदेविलवसुमत्योः सुता नागश्रीः । सा स्वक्रीडाप्रदेशनिकटस्थवटतरुकोटरस्थं समाधिगुप्तमुनिं परमागमघोषं सोढुमशक्ता तन्निवारणार्थं[1] कुथितसारमेयकलेवरं तद्वटतले चिक्षेप । मुनिना दृष्ट्वोक्तं हे पुत्रि, आत्मनोऽनन्तं दुःखं कृतं त्वयेति । तदनु सा तदपसार्य मुनिपादयोर्लग्ना नाथ, क्षमस्व क्षमस्वेति[2] । आयुरन्ते मृत्वा त्वं जातासि । तदुपशमपरिणामेन मनुष्यत्वं लब्धं त्वयेति निरूपिते स्वयोग्यानि व्रतानि अग्रहीषम्, कनकावलिमुक्तावलिप्रभृत्युपवासविधानमकार्षम्, आयुरन्ते तनुं त्यक्त्वा श्रीप्रभविमाने ललिताङ्गदेवस्य स्वयंप्रभाख्या देवी जाताहम् । मे यदा षण्मासायुरवस्थितं तदा ललिताङ्गस्तस्मात्प्रच्युतः क्वोत्पन्न इति न जाने । इह यदि तमेव वरं लभेयं[3] तदा भोगानुपभुञ्जीय, नान्यथा इति कृतप्रतिज्ञा तद्विमानस्थे स्वस्य तस्य च रूपे पटे विलिख्य[4] विलोकयन्ती तस्थौ । वज्रदन्तचक्री षट्खण्डधरां प्रसाध्यागत्य पुरं स्वभवनं प्रविष्टः । तदागमनदिने

मेरी माताकी माता और फिर थोड़े ही वर्षोंमें माता भी कूचकर गई । तब निर्नामिका नामकी एक मैं ही शेष रही । एक समय मैं चारणचरित नामके वनमें प्रविष्ट होकर उसके बीचमें स्थित अम्बरतिलक पर्वतके ऊपर चढ़कर गई । वहाँ मैंने पाँच-सौ चारण ऋषियोंके साथ विराजमान पिहितास्रव मुनिको देखा । उनको नमस्कार करके मैंने पूछा कि मैं किस पापके कारण इस प्रकारकी हुई हूँ ? मुनि बोले— इसी देशके भीतर पलालकूट नामके गाँवमें एक देविल नामका ग्रामकूट (गाँवका मुखिया) रहता था । उसकी स्त्रीका नाम वसुमती था । इनके एक नागश्री नामकी पुत्री थी । एक बार नागश्रीने अपने क्रीड़ास्थानके पासमें स्थित वटवृक्षके खोतेमें विराजमान समाधिगुप्त मुनिको देखा । वे उस समय परमागमका पाठ कर रहे थे । नागश्रीको यह सहन नहीं हुआ। इसलिए उसे रोकनेके लिए उसने एक कुत्तेके सड़-गले दुर्गन्धित शरीरको उस वटवृक्षके नीचे डाल दिया। उसको देखकर मुनिने कहा कि हे पुत्री ! ऐसा करके तूने अपने लिए अनन्त दुःखका भाजन बना लिया है। यह सुनकर नागश्रीने वहाँसे उक्त कुत्तेके मृत शरीरको हटा दिया। तत्पश्चात् उसने मुनिके पाँवोंमें गिरकर इसके लिए बार-बार क्षमा प्रार्थना की। वही आयुके अन्तमें मरकर तू उत्पन्न हुई है। पीछे शान्त परिणाम हो जानेसे तूने मनुष्य पर्यायको प्राप्त कर लिया है । इस प्रकार मुनिके कहनेपर मैंने (निर्नामिकाने) अपने योग्य व्रतोंको ग्रहण कर लिया । साथ ही मैंने कनकावली और मुक्तावली आदि उपवासोंको भी किया । इस प्रकारसे आयुके अन्तमें शरीरको छोड़कर मैं श्रीप्रभ विमानमें ललितांग देवकी स्वयंप्रभा नामकी देवी हुई थी । जब मेरी आयु छह महीने शेष रही थी तब ललितांग वहाँसे च्युत हो गया । वह कहाँपर उत्पन्न हुआ है, यह मैं नहीं जानती हूँ । इस जन्ममें यदि वही वर प्राप्त हो जाता है तो मैं भोगोंका उपभोग करूँगी, अन्यथा नहीं। इस प्रकारसे प्रतिज्ञा करके वह श्रीमती श्रीप्रभ विमानमें स्थित रहनेके समयके अपने और ललितांग देवके चित्रोंको पटपर लिखकर उन्हें देखती हुई समय बिताने लगी ।

उधर वज्रदन्त चक्रवर्ती छह खण्ड स्वरूप पृथिवीको स्वाधीन करके अपने नगरमें आया

---

१ श तन्निवार्णार्थं । २. ब नाथ क्षमस्वेति । ३. ब-प्रतिपाठोऽयम् । श लभते । ४. ब-प्रतिपाठोऽयम् । श विलेख्य ।

पण्डिता पटमादाय जगाम। चक्रिणा सहागतेषु क्षत्रियेषु कोऽप्यमुं विलोक्य जातिस्मरः स्यादिति धिया सर्वजनसेव्यमहापूत[1]जिनालयस्य कस्मिन् प्रदेशे तमवलम्ब्य स्वयं तिरोहिता-वलोकयन्ती तस्थौ। इतः श्रीमती पितरं नत्वा तन्निकटे उपविष्टा। तां म्लानाननामवलोक्य चक्री बभाण हे पुत्रि, तवेश्वरेण[2] ते मेलापको भविष्यति, त्वं चिन्तां मा कुरु। कथं ज्ञायत इति चेत्तव मम चैक एव पिहितास्रवो गुरुः संजातः। कथमित्युक्ते चक्री तद्वृत्तान्तमाह—

अहं पूर्वं पञ्चमे भवे अत्रैव पुण्डरीकिण्यामर्धचक्रिणः पुत्रश्चन्द्रकीर्तिरभवम्, सखा जयकीर्तिः। उभौ श्रावकव्रतेनैव प्रीतिवर्धनोद्याने चन्द्रसेनाचार्यान्ते संन्यासेन कालं कृत्वा माहेन्द्रे[3] जातौ। ततोऽवतीर्य पुष्करार्धपूर्वमन्दरपूर्वविदेहमङ्गलावतीविषये रत्नसंचय-पुरेशश्रीधरमनोहर्योश्चन्द्रकीर्तिचर आगत्य श्रीवर्माभिधो बलदेवः[4] पुत्रोऽजनि। इतरस्तस्यैव श्रीमत्या देव्या विभीषणाख्यः सुतो वासुदेवोऽभूत्। तौ स्वपदे निधाय श्रीधरः सुधर्ममुनि-निकटे दीक्षितः मुक्तिमवाप। मनोहरी पुत्रमोहेन न[5] दीक्षिता, समाधिना ईशाने श्रीप्रभविमाने ललिताङ्गदेवो जातः। इतो बलदेवनारायणौ राज्यं कुर्वन्तौ स्थितौ। मृते वासुदेवे बलो ग्रहिलोऽजनि। जननीचरललिताङ्गदेवेन संबोधितः सन् स्वतनयं भूपालं स्वपदे नियुज्य दश-

---

और भवनमें प्रविष्ट हुआ। जिस दिन वह चक्रवर्ती वापिस आया उसी दिन पण्डिता उस चित्र-पटको लेकर गई। चक्रवर्तीके साथमें आये हुए राजाओंमें-से शायद इसे देखकर किसीको जाति-स्मरण हो जाय, इस विचारसे वह पण्डिता समस्त जनोंसे आराधनीय महापूत नामक जिनालयमें पहुँची। वह वहाँ उस चित्रपटको एक स्थानमें टाँगकर गुप्तस्वरूपसे उसे देखती हुई वहींपर स्थित हो गई। इधर श्रीमती पिताको नमस्कार करके उसके पासमें आ बैठी। उसके मलिन मुखको देखकर चक्रवर्ती बोला कि हे पुत्री! तेरे पतिका मिलाप अवश्य होगा, तू इसके लिए चिन्ता मत कर। यह आपको कैसे ज्ञात हुआ, इस प्रकार पुत्रीके पूछनेपर वज्रदन्तने कहा कि तेरे और मेरे भी गुरु वही एक पिहितास्रव रहे हैं। तब उसने फिरसे भी पूछा कि यह किस प्रकारसे? इसपर चक्रवर्तीने उस वृत्तान्तको इस प्रकारसे कहा—

मैं इस भवके पूर्व पाँचवें भवमें इसी पुण्डरीकिणी नगरीमें अर्धचक्रीका पुत्र चन्द्रकीर्ति था। मेरे मित्रका नाम जयकीर्ति था। हम दोनों श्रावकके व्रतोंका पालन करते हुए प्रीतिवर्धन नामक उद्यानके भीतर चन्द्रसेन आचार्यके समीपमें संन्यासके साथ मरणको प्राप्त होकर माहेन्द्र स्वर्गमें देव हुए। फिर वहाँसे च्युत होकर चन्द्रकीर्तिका जीव पुष्करार्द्ध द्वीपके पूर्व मन्दर सम्बन्धी पूर्वविदेहमें मंगलावती देशके भीतर जो रत्नसंचयपुर नामका नगर है उसके राजा श्रीधर और रानी मनोहरीके श्रीवर्मा नामका पुत्र हुआ, जो कि बलभद्र था। दूसरा (जयकीर्तिका जीव) उसीकी दूसरी रानी श्रीमतीके विभीषण नामका पुत्र हुआ, जो कि वासुदेव (नारायण) था। श्रीधर राजाने इन दोनोंको अपने पदपर प्रतिष्ठित करके दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तपश्चरण करके मुक्तिको प्राप्त हुआ। मनोहरीने पुत्रके प्रेमवश दीक्षा नहीं ली, वह समाधिके साथ मरणको प्राप्त होकर ईशान कल्पके अन्तर्गत श्रीप्रभ विमानमें देव हुई। इधर बलदेव और नारायण दोनों राज्य करते हुए स्थित रहे। आयुके अन्तमें जब नारायणकी मृत्यु हुई तब बलदेव बहुत व्याकुल हुआ। उस समय वह उन्मत्तके समान व्यवहार करने लगा। तब भूतपूर्व उसकी माताके जीव ललितांग देवने आकर उसे सम्बो-

---

१. ब महापूर्णजिना°। २. ब-प्रतिपाठोऽयम् [illegible] तावद्वरेण। ३. ज फ श माहेंद्रो ब महेंद्रे। ४. ज प बलदेवो। ५. श 'न' नास्ति।

सहस्रराजभिः युगंधरान्तिके[1] प्रव्रज्याच्युतेन्द्रो जातस्तेन कृतोपकारस्मरणार्थं स ललिताङ्गदेवः प्रीतिवर्धनविमानेन स्वकल्पं नीत्वा पूजितः। स ललिताङ्गः ततश्च्युत्वात्रैव द्वीपे मङ्गलावतीविषये[2] विजयार्धोत्तरश्रेण्यां गन्धर्वपुरेशवासवप्रभावत्योः सुतो महीधरो जातस्तं राज्ये निधाय वासवो बहुमिररिंजयान्ते दीक्षितः क्रमेण मुक्तिमगमत्। प्रभावती पद्मावतीक्षान्तिकाभ्यासे प्रव्रज्याच्युते प्रतीन्द्रोऽभूत्। पुष्करार्धे पश्चिममन्दरपूर्वविदेहे वत्सकावतीविषये[3] प्रभाकरीपुर्यां विनयंधरभट्टारकस्य कैवल्योत्पत्तौ सर्वे देवास्तत्पूजार्थमागताः, महीधरोऽपि तन्मन्दरस्थजिनालयपूजार्थं गतोऽच्युतेन्द्रेण तं दृष्ट्वोक्तं हे महीधर, मां जानासि। नेत्युक्ते त्वं यदा मनोहरी जातासि तदा ते पुत्रः श्रीवर्माहम्। त्वं च ललिताङ्गो भूत्वा मां संबोधितवांस्ततोऽहमच्युतेन्द्रोऽभवम्। त्वं तत्र नीत्वा पूजितोऽसि। सोऽहमच्युतेन्द्र इति। ततो महीधरो जातिस्मरो भूत्वा स्वसुतं महीकम्पं स्वपदे निधाय जगन्नन्दनान्तिके दीक्षितः प्राणतेन्द्रोऽभूत्। ततः आगत्य धातकीखण्डे पूर्वमन्दरापरविदेहगन्धिलविषये[4] ऽयोध्याधिपजयवर्मसुप्रभयोः पुत्रोऽजितंजयोऽभूत्[5]। तं राज्ये निधाय जयवर्माऽभिनन्दनान्तिके प्रव्रज्य मुक्तिमाप। सुप्रभा सुदर्शनार्जिकान्ते तपसाच्युते देवोऽभूत्। अजितंजयोऽभिनन्दनकेवलिनं

षित किया। इससे प्रबोधको प्राप्त होकर उसने अपने पुत्र भूपालको राजाके पदपर प्रतिष्ठित करते हुए युगंधर तीर्थंकरके निकटमें दस हजार राजाओंके साथ दीक्षा ले ली। अन्तमें वह शरीरको छोड़कर अच्युत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। उसे जब ललितांगके द्वारा किये गये उपकारका स्मरण हुआ तब वह ईशान कल्पमें जाकर उस ललितांग देवको प्रीतिवर्धन विमानसे अपने कल्पमें ले आया। वहाँ उसने उसकी पूजा की। वह ललितांग देव वहाँसे च्युत होकर इसी जम्बूद्वीपके भीतर मंगलावती देशमें स्थित विजयार्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणिगत गन्धर्वपुरके राजा वासव और रानी प्रभावतीके महीधर नामका पुत्र हुआ। उसको राज्य देकर वासव राजाने अरिंजय मुनिके समीपमें दीक्षा ले ली। वह क्रमसे मुक्तिको प्राप्त हुआ। प्रभावती रानी पद्मावती आर्यिकाके निकटमें दीक्षित होकर अच्युत कल्पमें प्रतीन्द्र हुई। पुष्करार्धद्वीपके पश्चिम मेरु सम्बन्धी पूर्वविदेहमें जो वत्सकावती देश है उसके भीतर स्थित प्रभाकरी पुरीमें विनयंधर भट्टारकके केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर सब देव उनकी पूजाके लिए आये। महीधर भी उस मेरु पर्वतके ऊपर स्थित जिनालयोंकी पूजाके लिए गया था। उसको देखकर अच्युतेन्द्रने पूछा कि हे महीधर! तुम क्या मुझे जानते हो? महीधरने उत्तर दिया कि नहीं। इसपर अच्युतेन्द्रने कहा कि जब तुम महीधर हुए थे तब तुम्हारा पुत्र मैं श्रीवर्मा था। तुमने ललितांग होकर मुझे सम्बोधित किया था। इससे मैं अच्युतेन्द्र हुआ हूँ। मैंने अच्युत कल्पमें ले जाकर तुम्हारी पूजा की थी। मैं वही अच्युतेन्द्र हूँ। इस पूर्व वृत्तान्तको सुनकर महीधरको जातिस्मरण हो गया। तब उसने अपने पुत्र महीकम्पको राज्य देकर जगन्नन्दन नामक मुनिराजके समीपमें दीक्षा ले ली। वह मरकर प्राणतेन्द्र हुआ। वहाँसे च्युत होकर वह धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मेरु सम्बन्धी अपरविदेहगत गन्धिला देशमें जो अयोध्यापुरी है उसके राजा जयवर्मा और रानी सुप्रभाके अजितंजय नामका पुत्र हुआ। उसको राज्य देकर वह जयवर्मा अभिनन्दन मुनिके पासमें दीक्षित हो गया। अन्तमें वह मुक्तिको प्राप्त हुआ। रानी

१. ब युगंधरीतिके। २. ज ब श विषय। ३ ज प ब श विषय। ४. ज प ब श विषया°। ५. ब °यो भवत्।

पूजयित्वा पिहितपापास्रवोऽभूदिति पिहितास्रवाभिधोऽभूत् सकलचक्री च। तेनैवाच्युतेन्द्रेण संबोधितः सन् स्वसुतं स्वपदे व्यवस्थाप्य विंशतिसहस्रराजपुत्रैर्मन्दरधैर्यान्तिके दीक्षितश्चारणोऽजनि। पञ्चशतचारणैरम्बरतिलकगिरौ स्थितस्त्वया निर्नामिकया वन्दितः। सोऽच्युतेन्द्र आगत्य यशोधरतीर्थकृद्वसुमत्योरहं जातो ललिताङ्गो भूत्वा मां बलदेवं संबोधितवानिति पिहितास्रवो ममापि गुरुः। श्रीप्रभविमाने यो यो ललिताङ्गः समुपजातः स स मयाच्युतेन्द्रेण तत्र नीत्वा पूजितः इति। त्वदीयं ललिताङ्गमभ्यन्तरीकृत्य द्वाविंशतिललिताङ्गाः पूजिताः। त्वमपि जानासि। किं च पिहितास्रवभट्टारकस्य केवलनिर्वाणपूजे[1] [पूजने] त्वया मया ललिताङ्गादिसर्वैः सुरैरम्बरतिलकगिरौ विहिते अपरमपि साभिज्ञानम्। त्वदीयो ललिताङ्गस्त्वं[2] स्वयंप्रभा ब्रह्मेन्द्रो लान्तवेन्द्रोऽहमच्युतेन्द्र इत्यस्माभिः सर्वैः संभूय युगंधरतीर्थकृच्चरितं तद्गणधरः[3] पृष्टः। स आह—

जम्बूद्वीपपूर्वविदेहे[4] वत्सकावतीविषये[5] सुसीमानगरेशाजितंजयस्य प्रधानममितगतिर्भार्या सत्यभामा पुत्रौ प्रहसितविकसितौ शास्त्रमदोद्धतौ। तत्पुरमागतं मतिसागरमुनिं वन्दितुं गतो राजा। तौ तेन सह गत्वा[6] मुनिना वादं चक्रतुः। पराजितौ भूत्वा तत्र दीक्षितौ।

सुप्रभा सुदर्शना आर्यिकाके समीपमें दीक्षित होकर तपके प्रभावसे अच्युत स्वर्गमें देव हुई। अजितंजय अभिनन्दन केवलीकी पूजा करके पापास्रवसे रहित हुआ। इसलिए उसका नाम पिहितास्रव हुआ, वह क्रमसे सकल चक्रवर्ती हुआ। तत्पश्चात् उसी अच्युतेन्द्रसे सम्बोधित होकर उसने अपने पुत्रको राज्य देकर बीस हजार राजकुमारोंके साथ मन्दरधैर्य (मन्दरस्थविर) नामक मुनिराजके समीपमें दीक्षा ले ली। वह चारण ऋद्धिका धारी हो गया। जब वह पाँच सौ चारणमुनियोंके साथ अम्बरतिलक पर्वतके ऊपर स्थित था तब तूने निर्नामिकाके भवमें उसकी वंदना की थी। वह अच्युतेन्द्र वहाँसे आकर यशोधर तीर्थंकर और वसुमतीका पुत्र मैं हुआ हूँ। पिहितास्रवने ललितांगके भवमें मुझ बलदेवको सम्बोधित किया था, इसलिए वह पिहितास्रव जैसे तेरा गुरु है वैसे ही मेरा भी गुरु हुआ। उस श्रीप्रभ विमानमें जो जो ललितांग देव हुआ उस उसकी मैंने अच्युतेन्द्रके रूपमें वहाँ ले जाकर पूजा की थी। तेरे ललितांगको गर्भित करके मैंने बाईस ललितांगोंकी पूजा की है। यह तू भी जानती है। और क्या तुझे यह स्मरण है कि जब पिहितास्रव भट्टारकको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तब तूने, मैंने और ललितांग आदि सब देवोंने अम्बरतिलक पर्वतके ऊपर उनकी पूजा की थी। यह अन्य भी एक अभिज्ञान (चिह्न) है— उस समय तेरा ललितांग, तू स्वयंप्रभा, ब्रह्मेन्द्र, लान्तवेन्द्र और मैं अच्युतेन्द्र; इस प्रकार हम सबने मिलकर युगंधर तीर्थंकरके चरित्रके विषयमें उनके गणधरसे पूछा था, जिसके उत्तरमें उन्होंने यह कहा था—

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें वत्सकावती देश है। उसके अन्तर्गत सुसीमा नगरीमें अजितंजय राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम सत्यभामा था। इनके प्रहसित और विकसित नामके दो पुत्र थे, जो शास्त्र विषयक ज्ञानके मदमें चूर रहते थे। राजाके मन्त्रीका नाम अमितगति था। एक समय राजा नगरमें आये हुए मतिसागर नामक मुनिकी वंदना करनेके लिए गया। उसके साथ जाकर उन दोनों पुत्रोंने मुनिसे शास्त्रार्थ किया, जिसमें वे पराजित हुए। इससे विरक्त

१. श पूज। २. श ललितांगस्त्वं। ३. फ तद्गुणधरः। ४. अ प श विदेह°। ५. अ प श विषय°। ६. अ प ब गतराजेन गत्वा श गतो राजा तेन सह गत्वा।

समाधिना महाशुक्रं गतौ। तस्माच्चुत्वार्य धातकीखण्डापरमन्दरपूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिणीपुरेशधनंजयस्य द्वे देव्यौ जयावतीजयसेने। तयोः क्रमेण महाबलातिबलौ सुतौ बलदेववासुदेवौ जातौ। तौ[1] राजानौ कृत्वा धनंजयस्तपसा मोक्षं ययौ। तौ महामण्डलिकार्धचक्रिणौ भूत्वा सुखेन तस्थतुः। अतिबले मृते महाबलः समाधिगुप्तमुनिसमीपे तपसा प्राणते पुष्पचूडाख्यो[2] देवो जज्ञे। ततः समेत्य धातकीखण्डपूर्वमन्दरपूर्वविदेहे[3] वत्सकावतीविषये[4] प्रभावतीपुरीशमहासेनवसुंधर्योः[6] सुतो जयसेनो भूत्वा राज्ये स्थितः सकलचक्रवर्ती जज्ञे बहुकालं राज्यं विधाय सीमंधरान्तिके तपसा षोडशभावनाः संभाव्य प्रायोपगमनेनोपरिमग्रैवेयकं गतः। ततः आगत्य पुष्करार्धपश्चिममन्दरपूर्वविदेहे[3] मङ्गलावतीविषये[4] रत्नसंचयपुरेशाजितंजयवसुमत्योर्गर्भावतरणादिकल्याणपुरःसरमयं युगंधरस्वामी जातः। इति निरूपितं स्मरसि नो वा। श्रीमती बभाण[5] स्मरामि सर्वम्, किं तु मद्वल्लभः क्वोत्पन्न इति प्रतिपाद्यतामित्युक्ते उत्पलखेटपुरेशवज्रबाहु-मद्भगिनीवसुंधर्योः[6] पुत्रो वज्रजङ्घनामा जातः। वज्रबाहुरपि गमावलोकनार्थं प्रातरत्रागमिष्यति, वज्रजङ्घोऽप्यागमिष्यति। स पण्डितया

होकर उन दोनोंने वहींपर दीक्षा ले ली। वे दोनों आयुके अन्तमें समाधिपूर्वक शरीरको छोड़कर महाशुक्र कल्पमें देव हुए। तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर वे धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वविदेहमें जो पुष्कलावती देश है उसके अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुरके राजा धनञ्जयकी जयावती और जयसेना नामकी दो रानियोंके क्रमशः महाबल और अतिबल नामके पुत्र हुए। वे क्रमसे बलदेव और नारायण पदके धारक थे। राजा धनञ्जयने उन्हें राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्तमें वह तपके प्रभावसे मुक्तिको प्राप्त हुआ। वे दोनों मण्डलीक और अर्धचक्री होकर सुखपूर्वक स्थित रहे। पश्चात् अतिबलका मरण हो जानेपर महाबलने समाधिगुप्त मुनिके पासमें दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तपके प्रभावसे प्राणत स्वर्गमें पुष्पचूड नामका देव हुआ। तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मन्दर सम्बन्धी पूर्व विदेहमें जो वत्सकावती देश है उसमें स्थित प्रभावती पुरके राजा महासेन और रानी वसुंधरीके जयसेन नामक पुत्र हुआ। वह क्रमशः राजा और फिर सकलचक्रवर्ती हुआ। बहुत समय तक राज्य करनेके पश्चात् उसने सीमंधर स्वामीके निकटमें दीक्षित होकर दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिंतन किया। अन्तमें वह प्रायोपगमन संन्यासपूर्वक उपरिम ग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे च्युत होकर पुष्करार्धद्वीपके पश्चिम मन्दर सम्बन्धी पूर्वविदेहमें जो मंगलावती देश है उसके अन्तर्गत रत्नसंचय पुरके राजा अजितंजय और रानी वसुमतीके गर्भावतरण आदि कल्याणकोंके साथ ये युगंधर स्वामी हुए हैं। इस प्रकार जो उक्त गणधरने उस समय कहा था उसका तुझे स्मरण आता है कि नहीं? इसके उत्तरमें श्रीमतीने कहा कि इस सबका मुझको स्मरण है। परन्तु मेरा वह प्रियतम कहाँपर उत्पन्न हुआ है, यह मुझे बतलाइये। इस प्रकार श्रीमतीके पूछनेपर वज्रदन्तने कहा कि वह उत्पलखेट पुरके राजा वज्रबाहु और मेरी बहिन (रानी) बसुंधरीके वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ है। वज्रबाहु भी मुझसे मिलनेके लिए यहाँ कल प्रातःकालमें आवेगा। साथमें वज्रजंघ भी आवेगा। उसे

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श जातौ ततौ तौ। २. फ पुष्पचूलाख्यो। ३. ज प ब श विदेह°। ४. ज प ब श विषय°। ५. श श्रीमतिर्बभाण। ६. ज प श वसुंदर्योः।

नीतं पटं विलोक्य जातिस्मरो भूत्वा पण्डितायाः पूर्वभववृत्तान्तं प्रतिपादयिष्यति। पण्डितापीमां शुद्धिं गृहीत्वागमिष्यतीति। त्वं कन्यामाटं गच्छात्मानं भूषयेति प्रतिपाद्य कन्या विसर्जिता। द्वितीयदिने वासवदुर्दन्ता[र्दान्ता]ख्यौ[1] खेचरौ तं जिनगेहमागतौ। विचित्र-चित्रपटमालोक्य[2] वासवो जनविस्मयोत्पादनार्थं मायया मूर्च्छितोऽभूत्। जनेन किमित्युक्ते उन्मूर्च्छितः सन् स्वमूर्च्छाकारणमाह—अच्युतेऽहं देवोऽभवमियं[3] मम देवी, तस्मादागत्य कोत्पन्नेति न जाने, एतद्दर्शनेन पूर्वभवं स्मृत्वा मूर्च्छितोऽभवम्[4]। पण्डिताच्युतस्वर्गनाम-ग्रहणे उपहास्यं कृत्वा 'याहि, ते वल्लभेयं न भवत्यन्यामवलोकयस्व' इति। तावद्वज्रबाहुरागत्य बहिः शिबिरं विमुच्य स्थितः। वज्रजङ्घस्तं जिनालयं द्रष्टुमियाय। तं पटं ददर्श, मूर्च्छितो जातिस्मरो बभूव। पण्डिताया हृदि स्थितमब्रवीत्। सापि तत्स्वरूपं तस्य निवेद्यागत्य श्रीमत्याः कुमारवृत्तान्तमकथयत्[5]। वज्रदन्तचक्री संमुखं गत्वा वज्रबाहुं महाविभूत्या पुरं प्रवेशितवान्। प्राघूर्णकक्रियानन्तरं वज्रजङ्घश्रीमत्योर्विवाहं चकार। वज्रजङ्घानुजामनुंधरीं श्रीमत्यग्रजायामिततेजसे ययाचे चक्री। वज्रबाहुस्तयोर्विवाहं कृतवान् इति। परस्परस्नेहेन कियन्ति दिनानि तत्र स्थित्वा वज्रबाहुः पुत्रेण स्नुषया पण्डितया च स्वपुरं जगाम। कियत्सु

पण्डिताके द्वारा ले जाये गये चित्रपटको देखकर जातिस्मरण हो जावेगा। तब वह पण्डितासे अपने पूर्व भवोंके वृत्तान्तको कहेगा। पण्डिता भी उसकी इस खोजको लेकर वापिस आ जावेगी। तू कन्यागृहमें जाकर अपनेको सुसज्जित कर। यह कहकर वज्रदन्तने उसे वहाँसे विदा कर दिया।

दूसरे दिन वासव और दुर्दान्त नामके दो विद्याधर उस महापूत जिनालयमें पहुँचे। उनमें वासव उस विचत्र चित्रपटको देखकर लोगोंको आश्चर्यचकित करनेके लिए कपटपूर्वक मूर्छित हो गया। जब उसकी मूर्छा दूर हुई तब लोगोंने उससे इसका कारण पूछा। तब उसने अपनी मूर्छाका कारण इस प्रकार बतलाया— मैं अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था। यह मेरी देवी है। वह उस स्वर्गसे आकर कहाँपर उत्पन्न हुई है, यह मैं नहीं जानता हूँ। इसको देखकर पूर्वभवका स्मरण हो जानेके कारण मुझे मूर्छा आ गई थी। अच्युत स्वर्गका नाम लेनेपर पण्डिताने उसकी हँसी करते हुए कहा कि जा, यह तेरी प्रियतमा नहीं है; अन्य किसी स्त्रीको देख। इसी समय वज्रबाहुने आकर नगरके बाहर पड़ाव डाला। उसका पुत्र वज्रजंघ उस जिनालयका दर्शन करनेके लिए गया। उसने जैसे ही उस चित्रपटको देखा वैसे ही उसे जातिस्मरण हो जानेसे मूर्छा आ गई। पण्डिताने उससे इस सम्बन्धमें जो कुछ भी पूछा उसका उसने ठीक-ठीक उत्तर दिया। तब पण्डिताने भी उससे श्रीमतीके वृत्तान्तको कह दिया। तत्पश्चात् पण्डिताने वापिस आकर श्रीमतीसे वज्रजंघके वृत्तान्तको सुना दिया। फिर वज्रदन्त चक्रवर्ती वज्रबाहुके सम्मुख जाकर उसे बड़ी विभूतिके साथ नगरके भीतर ले आया। उसने वज्रबाहुका खूब अतिथि-सत्कार किया। तत्पश्चात् उसने वज्रजंघके साथ श्रीमतीका विवाह कर दिया। फिर वज्रदन्तने श्रीमतीके बड़े भाई अमिततेजके लिए वज्रबाहुसे वज्रजंघकी छोटी बहिन अनुन्धरीको माँगा। तदनुसार वज्रबाहुने अमिततेजके साथ अनुन्धरीका विवाह कर दिया। इस प्रकार वज्रबाहु परस्पर स्नेहके साथ कुछ दिन वहाँपर रहकर पुत्र, पुत्रवधू और पण्डिता-

---

१. ज प दुर्दन्ताख्यौ ब दुर्दान्ताख्यौ। २. ब पटं विलोक्य। ३. ब देवोऽभूवं इयं। ४. ब मूर्छितो भूवं। ५. श °माकथयत्।

दिनेषु पण्डितां पुण्डरीकिण्यां प्रस्थाप्य सुखेन तस्थौ। श्रीमती वीरबाहुप्रभृतीनि पुत्रयुगलानि एकपञ्चाशल्लेभे[1]। तेषां विवाहादिकं कृत्वा वज्रबाहुस्तिष्ठन् एकदा मेघं विलीनं विलोक्य वज्रजङ्घाय राज्यं दत्वा सर्वैर्नप्तृभिः[2] पञ्चशतक्षत्रियैश्च दमधरान्तिके दीक्षितो मोक्षं गतः। इतो वज्रदन्तचक्रधरोऽन्येद्युरेकदास्थाने आसितः। तस्मै[3] कमलमुकुलं[4] वनपालकेन दत्तम्। तत्र पुष्पमध्ये मृतषट्पदविलोकनाच्चक्री वैराग्यं जगामामिततेजआदिपुत्रसहस्रेण राज्य-निवृत्तौ कृतायाममिततेजसः पुत्राय वज्रजङ्घभागिनेयाय पुण्डरीकाख्याय राज्यं दत्त्वा सहस्रपुत्रैर्विंशतिसहस्रमुकुटबद्धैः षष्टिसहस्रस्त्रीभिर्यशोधरभट्टारकपादमूले दीक्षितो मोक्षं गतः। अन्ये स्वयोग्यां गतिं ययुः। इतः प्रत्यन्तवासिनः पुण्डरीक-बालकमगणयन्तस्तद्देशस्य बाधां कर्तुं लग्नाः। तन्निवारणार्थं लक्ष्मीमती वज्रजङ्घस्य लेखार्थं विजयार्धगन्धर्वपुरेशयो-[5]श्चिन्तागतिमनोगत्याख्ययोर्वियच्चरयोर्हस्तेऽप्रापयत्[6]। तमवधार्य तत्तपोग्रहणे विस्मयं कृत्वा वज्रजङ्घस्तदैव चातुरङ्गेण निर्गतः। पुण्डरीकिण्यां गच्छन् [7]सर्पसरस्तटे विमुच्य स्थितः। तत्र चर्यामार्गेणागतौ दमवरसागरसेनाख्यौ चारणौ संस्थाप्य श्रीमतीवज्रजङ्घौ

के साथ अपने नगरको चला गया। तत्पश्चात् कुछ ही दिनोंमें वज्रबाहुने पण्डिताको पुण्डरीकिणी नगरीमें वापिस भेज दिया। इस प्रकार वह सुखपूर्वक कालयापन करने लगा। समयानुसार श्रीमतीको वीरबाहु आदि इक्यावन युगल पुत्र (१०२) प्राप्त हुए। उनके विवाह आदिको करके वज्रबाहु सुखपूर्वक स्थित था। एक दिन उसे देखते-देखते नष्ट हुए मेघको देखकर भोगोंसे वैराग्य हो गया। तब उसने वज्रजंघके लिए राज्य देकर समस्त नातियों और पाँच सौ क्षत्रियोंके साथ दमधर मुनिके पासमें दीक्षा ग्रहण कर ली। वह कर्मोंको नष्ट करके मुक्तिको प्राप्त हुआ।

इधर एक दिन वज्रदन्त चक्रवर्ती सभाभवनमें स्थित था, तब वनपालने आकर उसे कुछ विकसित एक कमलकी कलीको दिया। उसमें मरे हुए भ्रमरको देखकर वज्रदन्त चक्रवर्तीको वैराग्य हो गया। तब उसने पुत्रोंको राज्य देना चाहा। किन्तु उसके अमिततेज आदि हजार पुत्रोंमें-से किसीने भी राज्यको लेना स्वीकार नहीं किया। तब उसने अमिततेजके पुत्र पुण्डरीक (अपने नाती) को, जो कि वज्रजंघका भानजा था, राज्य देकर एक हजार पुत्रों, बीस हजार मुकुटबद्धों और साठ हजार स्त्रियोंके साथ यशोधर भट्टारकके चरणसांनिध्यमें दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्तमें वह मोक्षको प्राप्त हुआ। अन्य जन अपने-अपने पुण्यके योग्य गतिको प्राप्त हुए। इधर अनार्य देश-वासी (अथवा समीपवर्ती) शत्रु पुण्डरीक बालकको कुछ भी न समझकर उसके देशमें उपद्रव करने लगे। उसको रोकनेके लिए लक्ष्मीमतीने विजयार्ध पर्वतस्थ गन्धर्वपुरके राजा चिन्तागति और मनोगति नामके दो विद्याधरोंके हाथमें एक लेख (पत्र) देकर वज्रजंघके लिये भेजा। उक्त लेखको पढ़कर जब वज्रजंघको वज्रदन्त चक्रवर्तीके दीक्षा ग्रहण कर लेनेका समाचार ज्ञात हुआ तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ। तब वह चतुरंग सेनाके साथ उसी समय निकल पड़ा। वह पुण्डरीकिणी पुरीको जाता हुआ मार्गमें सर्प सरोवरके किनारे डेरा डालकर स्थित हुआ। उस समय वहाँ दमवर और सागरसेन नामके दो चारणमुनि चर्यामार्गसे आहारके निमित्त

१. क एकपंचाशल्लेभे ५१ (पश्चात् संशोधितोऽयं पाठस्तत्र)। २. ब सर्वैर्नृप्रभृत्यभिः श सर्वैर्नृप्तृभिः। ३. क आसीनस्तस्मै। ४. श कमलं मुकुलं। ५. श पुरेशयोश्चिन्ता°। ६. प क ब श °यापयत्। ७. ज क सर्प° प श सर्प्प°।

दानमदाताम् पञ्चाश्चर्याणि लेभाते[1]। तदा तदरण्यवासिनो व्याघ्र-वराह-वानर-नकुलाः समागत्य मुनी नत्वा समीपे तस्थुः। वज्रजङ्घः तौ नत्वा पप्रच्छ — एते मे मन्त्रि-पुरोहित-सेनापति-राजश्रेष्ठिनः क्रमेण मतिवरानन्दाकम्पन-धनमित्रनामानः। एतेषामुपरि स्नेहस्य कारणं किमेतेषां व्याघ्रादीनां गतेरुपशमस्य च हेतुः कः, भवतोरुपरि मे मोहकारणं किम्, इत्युक्ते दमवर आह—

जम्बूद्वीपपूर्वविदेहवत्सकावतीविषये[2] प्रभाकरीपुर्यां राजातिगृद्धो महालोभी[3] स्वनगरनिकटस्थाद्रौ बहुद्रव्यं दध्रे, रौद्रध्यानेन मृत्वा पङ्कप्रभां गतः, ततः आगत्य तत्रत्ये व्याघ्रोऽभूत्। तदा तत्पुरे प्रीतिवर्धनो राजा प्रत्यन्तवासिनामुपरि गच्छन् पुरबाह्ये विमुच्य स्थितः। तदा तत्पुरबाह्ये मासोपवासी पिहितास्रवमुनिर्वृक्षकोटरे तस्थौ। तत्पारणाहे तं राजानं कश्चिन्नैमित्तको विज्ञप्तवान्—देव, यद्ययं मुनिस्तव गृहे पारणां करिष्यति तव महानर्थलाभो भविष्यति। ततो राजा नगरमार्गे कर्दमं कृत्वोपरि पुष्पाणि विकारितवान्। मुनिर्नगरं प्रवेष्टुं नायातीति तच्छिबिरे चर्यां प्रविष्टः। राजा तं व्यवस्थाप्य नैरन्तर्यानन्तरं पञ्चाश्चर्याणि प्राप्तवान्। तदा मुनिर्बभाषेऽस्मिन् नगे बहुद्रव्यं रक्षन् व्याघ्र आस्ते। स

आये। तब श्रीमती और वज्रजंघने उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। इससे वहाँ पञ्चाश्चर्य हुए। उस समय उस वनमें निवास करनेवाले व्याघ्र, शूकर, बन्दर और नेवला ये चार पशु आये और उन दोनों मुनियोंको नमस्कार कर उनके समीपमें बैठ गये। पश्चात् वज्रजंघने मुनियोंको नमस्कार करके पूछा कि मतिवर, आनन्द, अकम्पन और धनमित्र नामके जो ये मेरे मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और राजसेठ हैं इनके ऊपर मेरे स्नेहका कारण क्या है; इन व्याघ्र आदिकोंके क्रूरताको छोड़कर शान्त हो जानेका कारण क्या है; तथा आप दोनोंके ऊपर मेरे अनुरागका भी कारण क्या है? इन प्रश्नोंका उत्तर देते हुए दमवर मुनि बोले—

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें वत्सकावती देशके भीतर प्रभाकरी नामकी एक नगरी है। वहाँका राजा अतिगृद्ध बहुत लोभी था। उसने अपने नगरके समीपमें स्थित एक पर्वतके ऊपर बहुत-सा द्रव्य गाड़ रक्खा था। वह रौद्र ध्यानसे मरकर पङ्कप्रभा पृथिवी (चौथे नरक) में गया। फिर वह वहाँसे निकलकर उसी पर्वतके ऊपर व्याघ्र हुआ। उस समय उस नगरका राजा प्रीतिवर्धन अनार्य देशवासियों (शत्रुओं) के ऊपर आक्रमण करनेके लिए जा रहा था। वह नगरके बाहिर पड़ाव डालकर स्थित हुआ। उसी समय एक मासका उपवास करनेवाले पिहितास्रव मुनि उस नगरके बाहिर एक वृक्षके खोतेमें स्थित थे। जब उनका उपवास पूरा होकर पारणाका दिन उपस्थित हुआ तब किसी ज्योतिषीने आकर उस राजासे प्रार्थना की कि हे राजन्! यदि ये मुनि आपके घरपर पारणा करेंगे तो आपको महान् धनका लाभ होगा। यह ज्ञात करके प्रीतिवर्धनने नगरके मार्गमें कीचड़ कराकर उसके ऊपर फूलोंको बिखरवा दिया। उक्त कीचड़ और फूलोंके कारण मुनिका नगरके भीतर जाना असम्भव हो गया था, अतएव वे प्रीतिवर्धन राजाके डेरेपर चर्याके लिए आ पहुँचे, राजाने उन्हें निरन्तराय आहार दिया। आहार हो जानेके पश्चात् उसके डेरेपर पञ्चाश्चर्य हुए। उस समय मुनि पिहितास्रवने कहा कि इस पर्वतके ऊपर बहुत-सा द्रव्य है। उसकी रक्षा व्याघ्र कर

---

१. प लेभे क ब लेभेते। २. ज प ब श विषय°। ३. ज महाबलोभी।

त्वदीयप्रयाणभेरीरवमाकर्ण्य जातिस्मरोऽभूत्। स क इत्युक्ते प्राक्तनीं कथां कथयामास। स व्याघ्रः संन्यासं गृहीत्वा तिष्ठति, द्रव्यं ते दर्शयिष्यति। राजा श्रुत्वा संतुतोष, मुनिं नत्वा तत्र जगाम। तं शार्दूलं संबोधितवांस्तेन दर्शितं द्रविणं च जग्राह। व्याघ्रोऽष्टादशदिनैरीशाने दिवाकरप्रभविमाने दिवाकरप्रभदेवोऽजनि। प्रीतिवर्धनकृतदानानुमोदजनितपुण्येन तन्मन्त्रिपुरोहितसेनापतयो जम्बूद्वीपोत्तरकुरुषु जाताः प्रीतिवर्धनस्तन्मुनिनिकटे तपसा निर्वृतः[1]। मन्त्रिचरार्य ईशाने काञ्चनविमाने कनकप्रभो देवो जातः। सेनापत्यार्यस्तत्रैव प्रभंकरविमाने प्रभाकरदेवोऽभूत्। पुरोहितार्यो रुचितविमाने प्रभञ्जनदेवो जातः। ते[2] चत्वारोऽपि देवास्त्वं यदा ललिताङ्गो जातोऽसि तदा त्वदीया परिवारदेवा जाता। स दिवाकरप्रभदेवस्तत आगत्य मतिसागरश्रीमत्योरयं मतिवरोऽभूत्। स प्रभाकरदेवोऽवतीर्यापराजितार्यवेगयोरकम्पनोऽयं जातः। स कनकप्रभदेवोऽवतीर्य श्रुतकीर्तिर[कीर्त्य]नन्तमत्योरा[3]नन्दोऽयं जातवान्। स प्रभञ्जन आगत्य धनदेवधनदत्तयोर्धनमित्रोऽयमजनि। त्वमतोऽष्टमभवेऽत्रैव भरते यदादितीर्थंकरो भविष्यसि तदायं मतिवरो भरतः अयमकम्पनो बाहुबली अयमानन्दो वृषभसेनः, अयं धनमित्रोऽनन्तवीर्य इति चत्वारस्तव पुत्राश्चरमाङ्गा भविष्यन्ति।

रहा है। उसे तुम्हारे प्रस्थान कालीन भेरीके शब्दको सुनकर जातिस्मरण हो गया है। वह कौन है, इसका सम्बन्ध बतलानेके लिए उन्होंने पूर्वोक्त कथा कही। वह व्याघ्र इस समय संन्यास लेकर स्थित है। वह तुम्हें उस सब धनको दिखला देगा। यह सुनकर प्रीतिवर्धन राजाको बहुत सन्तोष हुआ। वह उन मुनिको नमस्कार करके उस पर्वतके ऊपर गया। वहाँ उसने उक्त व्याघ्रको सम्बोधित किया। तब व्याघ्रने उस धनको दिखला दिया, जिसे प्रीतिवर्धन राजाने ग्रहण कर लिया। व्याघ्र अठारह दिनोंमें मरकर ईशान स्वर्गके अन्तर्गत दिवाकरप्रभ विमानमें दिवाकरप्रभ देव हुआ। प्रीतिवर्धन राजाके द्वारा किये गये आहारदानकी अनुमोदना करनेसे जो पुण्य प्राप्त हुआ उसके प्रभावसे उसके मन्त्री, पुरोहित और सेनापति ये तीनों जम्बूद्वीपके उत्तरकुरुमें आर्य हुए। राजा प्रीतिवर्धन उक्त मुनिराजके समीपमें दीक्षित होकर तपके प्रभावसे मुक्तिको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् प्रीतिवर्धनके मन्त्रीका जीव वह आर्य ईशान कल्पके अन्तर्गत काञ्चन विमानमें कनकप्रभ नामका देव हुआ। सेनापतिका जीव आर्य उसी स्वर्गके भीतर प्रभंकर विमानमें प्रभाकर देव हुआ। पुरोहितका जीव आर्य रुचित विमानमें प्रभंजन देव हुआ। जब तुम ललिताङ्ग देव थे, तब ये चारों ही देव तुम्हारे परिवारके देव थे। पश्चात् वह दिवाकरप्रभ देव स्वर्गसे च्युत होकर मतिसागर और श्रीमतीके यह तुम्हारा मन्त्री मतिवर हुआ है। वह प्रभाकर देव वहाँसे च्युत होकर अपराजित और आर्यवेगाके यह अकम्पन सेनापति हुआ है। वह कनकप्रभ देव वहाँसे च्युत होकर श्रुतकीर्ति और अनन्तमतीके यह आनन्द पुरोहित हुआ है। वह प्रभंजन देव वहाँसे आकर धनदेव और धनदत्ताके यह धनमित्र सेठ हुआ है। तुम (वज्रजंघ) इस भवसे आठवें भवमें इसी भरत क्षेत्रके भीतर जब प्रथम तीर्थंकर होओगे तब यह मतिवर भरत, यह अकम्पन बाहुबली, यह आनन्द वृषभसेन और यह धनमित्र अनन्तवीर्य; इन नामोंसे प्रसिद्ध तुम्हारे चरमशरीरी चार पुत्र होवेंगे।

---

१. ज प श निवृत्तः। २. प श 'ते' नास्ति ब 'स'। ३. श श्रुतकीर्तिरनंतरमत्यो'।

इदानीं व्याघ्रवराहादीनां भवानाहात्रैव विषये हस्तिनापुरे वैश्यधनदत्तधनमत्योः सुत उग्रसेनश्चोरिकायां तलवरैर्हस्तपादप्रहारैर्हतः सन् क्रोधकषायेन मृत्वायं व्याघ्रोऽभवत्। अत्रैव विषये विजयपुरे वणिक्-आनन्दवसन्तसेनयोः[1] सुतो हरिकान्तो महामानी कमपि न नमति। कैश्चित् धृत्वा मातापित्रोः पादयोः [2]पातितोऽभिमानेन शिलायां स्वशिर आहत्य मृतोऽयं वराहो जातः। अत्रैव विषये धान्यपुरे वणिक्-धनदत्तवसुदत्तयोः सूनुर्नागदत्तो मायावी स्वभगिन्या आभरणानि वेश्यानिमित्तं नीत्वानयामीत्युक्त्वा[3] स्थितो मृत्वायं वानरोऽजनि। अत्रैव विषये सुप्रतिष्ठपुरे कश्चित्पूरिकादिविक्रयी महालोभी वणिग्भूत्। तेनैकदा राज्ञा कार्यमाणचैत्यालयनिमित्तं मृत्तिकाकृष्णीभूताः सुवर्णेष्टका[4] नीयमानाः कस्मैचिद्वाहकाय पूरिका दत्त्वैकेष्टिका[5] पादप्रक्षालनार्थं गृहीता। सुवर्णमयीं तां ज्ञात्वा प्रतिदिनं तद्धस्ते पूरिकाभिरेकैकां गृह्णाति। एकदा स्वतनयाय इष्टकाग्रहणं[6] निरूप्य ग्रामान्तरं गतः। सा पुत्रेण न गृहीता। स लोभी स्वगृहमाजगामेष्टिका[7] न गृहीतेति पुत्रं यष्टिभिर्जघान, स्वपादयोरुपरि शिलां चिक्षेप, मोटितौ पादौ। तद्वेदनया मृत्वायं नकुलो जातः। इमे भव्यता-

---

अब व्याघ्र और शूकर आदिके भव कहे जाते हैं—इसी देशके भीतर हस्तिनापुरमें वैश्य धनदत्त और धनमतीके एक उग्रसेन नामका पुत्र था। वह चोरीमें पकड़ा गया था। उसे कोतवालोंने लातों और घूँसोंसे खूब मारा। इस प्रकारसे वह क्रोधके वशीभूत होकर मरा और यह व्याघ्र हुआ है।

इसी देशके भीतर विजयपुरमें वैश्य आनन्द और वसन्तसेनाके हरिकान्त नामका एक पुत्र था जो बड़ा अभिमानी था। वह किसीको नमस्कार नहीं करता था। कुछ लोगोंने पकड़कर उसे माता-पिताके चरणोंमें डाल दिया। तब उसने अभिमानसे अपने शिरको पत्थरपर पटक लिया। इस प्रकारसे वह मरकर यह शूकर हुआ है।

इसी देशके भीतर धान्यपुरमें वैश्य धनदत्त और वसुदत्ताके एक नागदत्त नामका पुत्र था, जो बहुत कपटी था। वह वेश्याके निमित्त अपनी बहिनके आभूषणोंको ले गया था। जब वह उन्हें मांगती तो 'लाता हूँ' कहकर रह जाता। वह मरकर यह बन्दर हुआ है।

इसी देशके भीतर सुप्रतिष्ठपुरमें कोई पूरी आदिका बेचनेवाला वैश्य (हलवाई) रहता था। वह बहुत लोभी था। वहाँ राजा सुवर्णमय ईंटोंके द्वारा एक चैत्यालय बनवा रहा था ये ईंटे बाह्यमें मिट्टीके समान काली दिखती थीं, पर थीं वे सोनेकीं। एक दिन उन ईंटोंको ले जाते हुए किसी मज़दूरको देखकर उक्त हलवाईने उसे पूरियाँ दीं और पाँव धोनेके निमित्त एक ईंट ले ली। फिर वह उसे सुवर्णकी जानकर उक्त मज़दूरके हाथमें प्रतिदिन पूरियाँ देता और एक एक ईंट मँगा लेता था। एक दिन वह अपने पुत्रसे ईंटको ले लेनेके लिये कहकर किसी दूसरे गाँवको गया था। परन्तु पुत्रने उस ईंटको नहीं लिया था। जब वह लोभी घर वापिस आया और उसे ज्ञात हुआ कि लड़केने ईंट नहीं ली है तो इससे क्रोधित होकर उसने पुत्रको लाठियोंके द्वारा मार डाला तथा स्वयं अपने पाँवोंके ऊपर एक भारी पत्थरको पटक लिया। इससे उसके पाँव मुड़ गये। इस प्रकार वह बहुत कष्टसे मरा और यह नेवला हुआ है। ये चारों अपने भव्यत्व गुणके

---

१. ज ब वणिक्सानंद° प वणिकराआनंद°। २. ब पतितो। ३. ज नीत्वानेनयामो° ब नीत्वा न आमामो°। ४. ब °भूता सुवर्णेका। ५. श °केष्टिका ब° कष्टका। ६. ब तदिष्टका°। ७. ब °मेष्टका।

वशेनोपशान्ता जाताः। एतद्दानानुमोदेन त्वया सहोभयगतिसौख्यमनुभूय[1] त्वं यदा तीर्थंकरो भविष्यसि तदैते ते पुत्रा[2] अनन्ताच्युतवीरसुवीराख्याश्चरमाङ्गा[3] स्युरिति। आवां तवान्त्यपुत्र-युग्मभित्यावयोरुपरि युवयोर्मोहो वर्तते इति निरूप्य गतौ मुनी।

वज्रजङ्घः पुण्डरीकस्य राज्यं स्थिरीकृत्य स्वपुरे बहुकालं राज्यं कुर्वन् तस्थौ। एकस्यां रात्रौ शय्यागृहाधिकारी सूर्यकान्तधूपघटे कालागरुं निक्षिप्य गवाक्षमुद्घाटयितुं विस्मृतस्तद्धूमेन मम्रतुः श्रीमतीवज्रजङ्घौ मुनिदानफलेनात्रैवोत्तरकुरुषु दम्पती जातौ। व्याघ्रादयोऽपि तद्दानानुमोदजनितपुण्येन तच्छय्यागृहे तेनैव धूमेन मृत्वा तत्रैवार्या[4] जाताः। इतस्तच्छरीरसंस्कारं कृत्वा तत्सुतं वज्रबाहुं तत्पदे व्यवस्थाप्य मतिवरादयस्त-पसाऽधोग्रैवेयके जाताः। इतो भोगभूमौ तौ दम्पती सूर्यप्रभाख्यकल्पामरदर्शनेन जाति-स्मरौ जातौ। तदैव तत्र चारणावतीर्यौ। तौ नत्वा वज्रजङ्घार्यो बभाण— भवतोरुपरि किं मे मोहो वर्तते। तत्र प्रीतिंकरश्चारण आह — यदा त्वं महाबलो जातोऽसि तदा ते मन्त्री स्वयंबुद्धस्तपसा सौधर्मे जातः। ततः आगत्यात्रैव पूर्वविदेहे पुण्डरीकिणीशप्रियसेनसुन्दर्योः प्रीतिंकरोऽहं जातो मदनुजोऽयं प्रीतिदेवस्तपसा चारणावधिबोधौ च भूत्वा त्वां

प्रभावसे इस समय शान्तिको प्राप्त हुए हैं। इस आहार दानकी अनुमोदनासे ये चारों तुम्हारे साथ दोनों गतियोंके सुखको भोगकर जब तुम तीर्थंकर होओगे तब ये तुम्हारे अनन्त, अच्युत, वीर और सुवीर नामके चरमशरीरी पुत्र होवेंगे। हम दोनों चूँकि तुम्हारे अन्तिम पुत्रयुगल हैं, इसलिए हम दोनोंके ऊपर भी तुम दोनोंको मोह है। इस प्रकारसे उक्त वृत्तान्तको कहकर वे दोनों मुनि-राज चले गये।

वज्रजंघ पुण्डरीकके राज्यको स्थिर करके अपने नगरमें वापिस आ गया। उसने बहुत समय तक राज्य किया। एक दिन रातमें शयनागारकी व्यवस्था करनेवाला सेवक सूर्यकान्त मणि-मय धूपघटमें कालागरुको डालकर खिड़कीको खोलना भूल गया। उसके धुएँसे उस शयना-गारमें सोये हुए श्रीमती और वज्रजंघ मर गये। वे मुनिदानके प्रभावसे इसी जम्बूद्वीपके उत्तरकुरु-में आर्य दम्पती (पति-पत्नी) हुए। उधर वे व्याघ्र आदि भी उपर्युक्त शयनागारमें उसी धुएँके द्वारा मरकर उस मुनिदानकी अनुमोदना करनेसे प्राप्त हुए पुण्यके प्रभावसे उसी उत्तरकुरुमें आर्य हुए। इधर मतिवर आदिने वज्रजंघ और श्रीमतीके शरीरका अग्नि-संस्कार करके वज्रजंघके पुत्र वज्रबाहुको राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् वे जिनदीक्षा लेकर तपके प्रभावसे अधोग्रैवेयकमें देव हुए। इधर भोगभूमिमें उस युगल (वज्रजंघ और श्रीमतीके जीव) को सूर्यप्रभ नामक कल्पवासी देवके देखनेसे जातिस्मरण हो गया। उसी समय वहाँ दो चारण मुनि आकाश मार्गसे नीचे आये। उनको नमस्कार करके वज्रजंघ आर्य बोला कि आप दोनोंके ऊपर मुझे मोह क्यों हो रहा है? इसके उत्तरमें उनमें-से प्रीतिंकर मुनि बोले कि जब तुम महाबल हुए थे तब तुम्हारा मन्त्री स्वयंबुद्ध तपके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ था। फिर वहाँसे आकर इसी पूर्व विदेहमें पुण्डरीकिणी पुरके राजा प्रियसेन और रानी सुन्दरीके मैं प्रीतिंकर हुआ हूँ? यह प्रीतिदेव नामका मेरा छोटा भाई है। तपके प्रभावसे हम दोनोंको चारण ऋद्धि और अवधि-

---

१. फ उभयसौख्य°। २. प ब तदैते। पुत्रा फ तदैव ते पुत्रा श तदैति पुत्रा। ३. श °च्युतवीरार-क्षाख्यचरमाङ्गा°। ४. ज अत्रैवार्या।

सम्यक्त्वं ग्राहयितुमागतौ। तदनु तान् षडपि सम्यक्त्वं ग्राहयित्वा गतौ यती। त्रिपल्यावसाने षडपि शरीरत्यागं कृत्वा ईशाने श्रीप्रभविमाने[1] वज्रजङ्घार्यः श्रीधरो देवो जातः, श्रीमत्यार्या स्वयंप्रभविमाने स्वयंप्रभदेवः, व्याघ्रार्यश्चित्राङ्गदविमाने चित्राङ्गदेवः, वराहार्यो नन्दविमाने मणिकुण्डलदेवः, वानरार्यो नन्द्यावर्तविमाने मनोहरदेवः, नकुलार्यः प्रभाकरविमाने मनोरथदेवो जात इति संबन्धः।

एकदा श्रीप्रभाचले प्रीतिंकरमुनेः कैवल्योत्पत्तौ श्रीधरदेवादयस्तं वन्दितुमाजग्मुः। वन्दित्वा श्रीधरोऽपृच्छत् महामत्यादयः क्वोत्पन्ना इति। केवली बभाण—द्वौ निगोदं प्रविष्टौ, शतमतिः शर्करायामजनि। ततः श्रीधरस्तं तत्र गत्वा संबोधितवान्। स नारकस्तस्मान्निःसृत्य पुष्करार्धपूर्वविदेहे[2] मङ्गलावतीविषये[3] रत्नसंचयपुरेशमहीधरसुन्दर्योः सूनुर्जयसेनोऽभूत्। स च विवाहे तिष्ठन् तेनैव श्रीधरदेवेन संबोध्य प्रव्राजितः समाधिना ब्रह्मेन्द्रो जातः। श्रीधरदेव आगत्यात्रैव पूर्वविदेहे[4] वत्सकावतीविषये[5] सुसीमानगरेशसुदृष्टिसुन्दर्योः पुत्रः सुविधिर्जातः। तदा तत्र सकलचक्री अभयघोषस्तत्सुतां[6] मनोरमां परिणीतवान्। स स्वयंप्रभदेव आगत्य तस्य नन्दनः[7] केशवो बभूव। तद्विषय एव मण्डलिकविभीषणप्रियदत्तयोः स

ज्ञान प्राप्त हुआ है। हम तुम्हें सम्यग्दर्शन ग्रहण करानेके लिये यहाँपर आये हैं। तत्पश्चात् वे दोनों मुनिराज उन छहोंको सम्यग्दर्शन ग्रहण कराकर वापिस चले गये। तीन पल्य-प्रमाण आयुके अन्तमें मरणको प्राप्त होकर उन छहोंमें वज्रजंघ आर्यका जीव ईशान स्वर्गके भीतर श्रीप्रभ विमानमें श्रीधर देव, श्रीमती आर्याका जीव स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ देव, व्याघ्र आर्यका जीव चित्राङ्गद विमानमें चित्राङ्ग देव, शूकर आर्यका जीव नन्द विमानमें मणिकुण्डल देव, वानर आर्यका जीव नन्द्यावर्त विमानमें मनोहर देव और नेवला आर्यका जीव प्रभाकर विमानमें मनोरथ देव हुआ। इस प्रकार इन सबका परस्पर सम्बन्ध जानना चाहिये।

एक समय श्रीप्रभ पर्वतके ऊपर प्रीतिंकर मुनिके लिए केवलज्ञानके प्राप्त होनेपर वे श्रीधर आदि देव उनकी वन्दनाके लिये आये। वन्दना करनेके पश्चात् श्रीधर देवने केवलीसे पूछा कि महाबलके मंत्री महामति आदि कहाँपर उत्पन्न हुए हैं? इसपर केवलीने कहा कि उनमें-से दो (महामति और संभिन्नमति) तो निगोद अवस्थाको प्राप्त हुए हैं और एक शतमति शर्कराप्रभा पृथिवी (दूसरा नरक)में नारकी हुआ है। तब श्रीधरदेवने वहाँ जाकर उसको सम्बोधित किया। वह नारकी उक्त पृथिवीसे निकल कर पुष्करार्ध द्वीपके पूर्व विदेहमें जो मंगलावती देश है उसके अन्तर्गत रत्नसंचयपुरके राजा महीधर और रानी सुन्दरीके जयसेन नामका पुत्र हुआ है। वह अपने विवाहके लिए उद्यत ही हुआ था कि इतनेमें उसी श्रीधर देवने आकर उसको फिरसे सम्बोधित किया। इससे प्रबुद्ध होकर उसने दीक्षा ले ली। पश्चात् वह समाधिपूर्वक शरीरको छोड़कर ब्रह्मेन्द्र हुआ। वह श्रीधरदेव स्वर्गसे च्युत होकर पूर्व विदेहके भीतर वत्सकावती देशमें स्थित सुसीमा नगरीके राजा सुदृष्टि और रानी सुन्दरीके सुविधि नामका पुत्र हुआ। उस समय वहाँ अभयघोष नामका सकल चक्रवर्ती था। सुविधिने उक्त चक्रवर्तीकी पुत्री मनोरमाके साथ विवाह कर लिया। वह स्वयंप्रभदेव (श्रीमतीका जीव) स्वर्गसे आकर उस सुविधिके केशव नामका

---

१. ब 'श्रीप्रभविमाने' नास्ति। २. ज प ब श विदेह°। ३. ज प ब श विषय°। ४. ज प ब श विदेह°। ५. ज प ब श विषय°। ६. ब अभयघोषसुतां। ७. ब आगत्य वरदत्तस्तस्यां नंदनः।

चित्राङ्गद आगत्य वरदत्तनामा पुत्रोऽजनि[1]। स मणिकुण्डलः समेत्य तत्रैव विषये मण्डलिकनन्दिसेनानन्तमत्योरपत्यं वरसेनोऽभूत्[2]। तत्रैव विषये मण्डलिकरतिसेनचन्द्रमत्योः स मनोहरदेव आगत्य चित्राङ्गदनामा सुतो जज्ञे। तद्विषय एवं मण्डलिकप्रभञ्जनचित्रमालयोः स मनोरथोऽवतीर्य शान्तमदननामा पुत्रोऽभूत्। वरदत्तादयश्चत्वारोऽपि सुविधेर्मित्राणि भूताः।

एकदाभयघोषचक्री सुविध्यादिराजभिर्विमलवाहनं जिनं वन्दितुमियाय। तद्विभूतिदर्शनेन संसारसुखविरक्तो भूत्वा पञ्चसहस्रस्वपुत्रैर्दशसहस्रस्त्रीभिरष्टादशसहस्रक्षत्रियैर्दीक्षितो मुक्तिमुपजगाम। सुविध्यादयः षडपि विशिष्टाणुव्रतधारिणो[3] जाताः। स्वायुरन्ते सुविधिः संन्यासेन मृतः सन्नच्युतेन्द्रो जज्ञे। केशवादयः पञ्चापि दीक्षिताः। केशवोऽच्युते प्रतीन्द्रोऽजनि। इतरे तत्रैव सामानिका जज्ञिरे। ततोऽच्युतेन्द्र आगत्यात्रैव पूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये[4] पुण्डरीकिणीशतीर्थंकरकुमारवज्रसेनश्रीकान्तयोरपत्यं वज्रनाभिर्जातः। स प्रतीन्द्रोऽवतीर्य तत्रैव कुबेरदत्तराजश्रेष्ठ्यनन्तमत्योरपत्यं धनदेवोऽजनि। वरदत्तचरादिसामानिका आगत्य तयोरेव वज्रसेनश्रीकान्तयोरपत्यानि विजय-वैजयन्त-जयन्तापराजिता[5] जज्ञिरे। तथा

पुत्र हुआ। वह चित्रांगद (व्याघ्रका जीव) देव उसी देशके मण्डलीक राजा विभीषण और प्रियदत्ताके वरदत्त नामका पुत्र हुआ। वह मणिकुण्डल देव (शूकरका जीव) स्वर्गसे च्युत होकर उसी देशके मण्डलीक राजा नन्दिसेन और रानी अनन्तमतीके वरसेन नामका पुत्र हुआ। वह मनोहर (बंदरका जीव) देव वहाँसे आकर उसी देशके मण्डलीक राजा रतिसेन और रानी चन्द्रमतीके चित्रांगद नामका पुत्र हुआ। वह मनोरथ देव (नेवलेका जीव) स्वर्गसे अवतीर्ण होकर उसी देशके मण्डलीक राजा प्रभंजन और रानी चित्रमालाके शान्तमदन नामका पुत्र हुआ। वे वरदत्त आदि चारों ही सुविधिके मित्र थे।

एक समय अभयघोष चक्रवर्ती सुविधि आदि राजाओंके साथ विमलवाहन जिनेन्द्रकी वन्दना करनेके लिए गया। वह उनकी विभूतिको देखकर संसारके सुखसे विरक्त हो गया। तब उसने पाँच अपने हज़ार पुत्रों, दस हजार स्त्रियों और अठारह हजार अन्य राजाओंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्तमें वह तपश्चरण करके मुक्तिको प्राप्त हुआ। उन सुविधि आदि छहोंने विशिष्ट अणुव्रतोंको धारण कर लिया था। उनमें सुविधि अपनी आयुके अन्तमें संन्यासके साथ मरणको प्राप्त होकर अच्युतेन्द्र हुआ। शेष केशव आदि पाँचों दीक्षित हो गये थे। उनमें केशव तो अच्युत कल्पमें प्रतीन्द्र हुआ और शेष चार वहींपर सामानिक देव उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् वह अच्युतेन्द्र उक्त कल्पसे आकर इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें जो पुष्कलावती देश है उसके भीतर स्थित पुण्डरीकिणी नगरीके राजा तीर्थंकरकुमार वज्रसेन और रानी श्रीकान्ताके वज्रनाभि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह प्रतीन्द्र भी स्वर्गसे अवतीर्ण होकर उसी नगरीमें राजसेठ कुबेरदत्त और अनन्तमतीके धनदेव नामका पुत्र हुआ। वरदत्त आदि जो सामानिक देव हुए थे वे भी स्वर्गसे च्युत होकर राजा वज्रसेन और रानी श्रीकान्ता इन्हीं दोनोंके विजय, वैजयन्त,

१. ब समेत्य। २. ब °नामा नंदनोऽभूत्। ३. ज प श विशिष्टाणुव्रत°। ४. ब प ब श विषय°। ५. फ ब श वैजयन्तापराजिता।

ग्रैवेयकादागत्य मतिवरचराद्यहमिन्द्रास्तयोरेवापत्यानि बाहुमहाबाहुपीठमहापीठा अजनिषत। वज्रसेनो वज्रनाभेः[1] स्वपदं वितीर्य सहस्रराजतनयैराम्रवने[2] परिनिष्क्रमणकल्याणमवाप।

एकदा वज्रनाभिरास्थाने स्थितो द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां विज्ञप्तः। कथम्। ते जनकः केवली जातः, आयुधागारे चक्रमुत्पन्नमिति च। ततः केवलिपूजां विधाय साधितषट्खण्डो[3] बभूव। स धनदेवो गृहपतिरत्नं बभूव। वज्रनाभिश्चक्री विजयादीनात्मसमानान्[4] कृत्वा बहुकालं राज्यं कृत्वा स्वतनयवज्रदत्ताय राज्यं दत्त्वा पञ्चसहस्रस्वपुत्रैर्विजयादिभिर्भ्रातृभिर्[5] धनदेवेन च षोडशसहस्रमुकुटबद्धैः[6] पञ्चाशत्सहस्रवनिताभिः स्वजनकान्ते दीक्षितः। षोडशभावनाभिस्तीर्थकरत्वं समुपार्ज्य श्रीप्रभाचले प्रायोपगमनविधिना[7] तनुं विहाय सर्वार्थसिद्धिं जगाम। विजयादयोऽपि ते दशापि तत्र सुखेन तस्थुः।

तदेवं[8] भरतक्षेत्रं जघन्यभोगभूमिरूपेण वर्तते[9]। किमस्यैकरूपं प्रवर्तनं नास्ति। नास्ति। कथमित्युक्ते[10] ब्रवीमि— अस्मिन् भरते उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ कालौ वर्तेते। तयोश्च प्रत्येकं षट् कालाः स्युः। तत्रापीयमवसर्पिणी। अस्यां चाद्यः सुषमसुषमश्चतस्रः[11] कोटीकोट्यः

जयन्त और अपराजित नामके पुत्र उत्पन्न हुए। मतिवर आदि जो ग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए थे वे भी वहाँसे आकर उन्हीं दोनोंके बाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ नामके पुत्र उत्पन्न हुए। वज्रसेन वज्रनाभिको अपना पद देकर आम्रवनमें एक हजार राजकुमारोंके साथ दीक्षित होता हुआ दीक्षाकल्याणकको प्राप्त हुआ।

एक दिन जब वज्रनाभि सभाभवनमें स्थित था तब दो पुरुषोंने आकर क्रमसे निवेदन किया कि तुम्हारे पिताको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है तथा आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है। इस शुभ समाचारको सुनकर वज्रनाभिने पहिले केवलीकी पूजा की और तत्पश्चात् छह खण्डस्वरूप पृथिवीको जीत कर उसे अपने स्वाधीन किया। तब वह धनदेव उस वज्रनाभि चक्रवर्तीका गृहपतिरत्न हुआ। वज्रनाभि चक्रवर्तीने उन विजय आदि भ्राताओंको अपने समान करके बहुत काल तक राज्य किया। तत्पश्चात् वह अपने पुत्र वज्रदत्तको राज्य देकर अन्य पाँच हजार पुत्रों, विजयादि भाइयों, धनदेव, सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं और पचास हजार स्त्रियोंके साथ अपने पिता (वज्रसेन तीर्थंकर) के पास दीक्षित हो गया। तत्पश्चात् उसने दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंके द्वारा तीर्थंकर नामकर्मको बाँधकर प्रायोपगमन संन्यासको ग्रहण कर लिया। इस प्रकारसे वह शरीरको छोड़कर सर्वार्थसिद्धि विमानको प्राप्त हुआ। विजय आदि वे दश जीव भी वहींपर (सर्वार्थसिद्धिमें) सुखसे स्थित हुए।

उस समय इस भरत क्षेत्रमें जघन्य भोगभूमि जैसी प्रवृत्ति चल रही थी। क्या भरत क्षेत्रके भीतर एक-सी प्रवृत्ति नहीं रहती है, ऐसा प्रश्न उपस्थित होनेपर उसका उत्तर यहाँ 'नहीं' के रूपमें देकर उसका स्पष्टीकरण इस प्रकारसे किया गया है— इस भरत क्षेत्रमें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दो काल प्रवर्तमान रहते हैं। उनमेंसे एक-एकके छह विभाग हैं। उनमें भी इस समय यह अवसर्पिणी काल चालू है। इस अवसर्पिणीके प्रथम विभागका नाम सुखमसुखमा है।

---

१. ब वज्रनाभये। २. ज प तनयैः रंभावनं फ तनयैराम्रवनो श तनयैः रंभावनो। ३. ब °खंडोभूत्। ४. ब °मात्मसमान्। ५. ब विजयादिभ्रातृभि°। ६. श षोडशमुकुट°। ७. ब प्रायोपगमरणविधिना। ८. ब तदहं भरत°। ९. ब वर्तते। १०. प प्रवर्तनं नास्ति कथ°। ११. ज प श सुखमसुखमश्चतस्रः को° ब सुखमसुखमः कालश्चतारिकोडाकोडिसागरतस्रः को°।

सागरोपमप्रमितः। तत्कालादौ मनुष्याः षट्सहस्रधनुरुत्सेधाः त्रिपल्योपमजीवनाः[1] बालार्कनिभतेजसः पानकाङ्ग-तूर्याङ्ग-भूषणाङ्ग-ज्योतिरङ्ग-गृहाङ्ग-भाजनाङ्ग-दीपाङ्ग-माल्याङ्ग-भोजनाङ्ग-वस्त्राङ्गाश्चेति[2] दशविधकल्पवृक्षफलोपभोगिनः त्रिदिनान्तरितबदर[3]प्रमाणाहाराः विगतभ्रातृभगिनीसंकल्पाः युग्मोत्पत्तिकाः परस्परं स्त्रीपुरुषभावजनितसांसारिकसौख्याः उत्पन्नदिनादेकविंशतिदिनजनितयौवनाः व्याधिजरेष्टवियोगानिष्टसंयोगादिक्लेशविवर्जिताः। स्त्रियो नवमासायुषि गर्भधारिण्यः प्रसूत्यनन्तरं जृम्भं[5] कृत्वा त्यक्तशरीरभारा देवगतिं यान्ति, पुरुषाश्च क्षुतानन्तरं तथा दिवं गच्छन्ति।

अनन्तरं सुषमो[6] द्वितीयः कालः त्रिकोटीकोटयः सागरोपमप्रमितः[7]। तदादौ चतुःसहस्रधनुरुच्छ्रितिः[8] द्विपल्योपममायुः पूर्णेन्दुवर्ण[9]पञ्चत्रिंशद्दिनजनितयौवनाः[10] द्विदिनान्तरिताक्षप्रमाणाहाराश्च भवन्ति जनाः[11]। शेषं पूर्ववत्। अनन्तरं सुषमदुःषमो द्विकोटीकोटीसागरोपमप्रमाणस्तृतीयः[12] कालः। तदादौ द्विसहस्रदण्डोत्सेधः[13] प्रियङ्गुश्यामवर्णः[14]

उसका प्रमाण चार कोड़ाकोड़ि सागरोपम है। इस कालके प्रारम्भमें मनुष्योंके शरीरकी ऊँचाई छह हजार धनुष (तीन कोस) और आयु तीन पल्योपम प्रमाण होती है। उनके शरीरकी कान्ति उदयको प्राप्त होते हुए नवीन सूर्यके समान होती है। वे पानकांग, तूर्यांग, भूषणांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भाजनांग, दीपांग, माल्यांग, भोजनांग और वस्त्रांग इन दस प्रकारके कल्पवृक्षोंके फलको भोगते हैं। वे तीन दिनके अन्तरसे बेरके बराबर आहारको ग्रहण किया करते हैं। युगलस्वरूपसे उत्पन्न होनेवाले उनमें भाई-बहिनकी कल्पना न होकर पति-पत्नी जैसा व्यवहार होता है। जन्म-दिनसे लेकर इक्कीस दिनोंमें वे यौवन अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। उन्हें व्याधि, जरा, इष्टवियोग और अनिष्टसंयोगादिका क्लेश कभी नहीं होता है। वहाँ जब नौ महिना प्रमाण आयु शेष रह जाती है तब स्त्रियाँ गर्भको धारण करती और प्रसूतिके पश्चात् जंभाई लेकर शरीरको छोड़ती हुई देवगतिको प्राप्त होती है। पुरुष भी उसी समय छींक लेकर मरणको प्राप्त होते हुए स्त्रियोंके ही समान स्वर्ग (देवगति) को प्राप्त होते हैं।

तत्पश्चात् सुखमा नामका दूसरा काल प्रविष्ट होता है। उसका प्रमाण तीन कोड़ाकोड़ि सागरोपम है। उसके प्रारम्भमें शरीरकी ऊँचाई चार हजार धनुष (दो कोस) और आयु दो पल्योपम प्रमाण होती है। उस समयके नर-नारी पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान कान्तिवाले होते हैं। वे जन्म-दिनसे लेकर पैंतीस दिनोंमें यौवन अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। उनका भोजन दो दिनके अन्तरसे बहेड़ेके बराबर होता है। शेष वर्णन पूर्वोक्त सुखमसुखमाके समान है। इसके पश्चात् सुखमदुखमा नामका तीसरा काल प्रविष्ट होता है। इसका प्रमाण दो कोड़ाकोड़ि सागरोपम है। इसके प्रारम्भमें शरीरकी ऊँचाई दो हजार धनुष (एक कोस) और वर्ण प्रियंगुके

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श °पमजिविना। २. ब गृहागमाल्यागभाजनागभोजनागदीपांगवस्त्रांगश्चेति। ३. वदरि। ४. ज प श वियोगाद्यनिष्ट°। ६. ब जंभां। ५. ज प श सुखमो ब सुषुमो। ७. ब °कोटीकोटिसागरोप°। ८. ब धनुरुत्सून°। ९. ब वर्णः। १०. ब यौवन°। ११. ब प्रमाणाहरश्च भवति जनः। १२. ब कोटीकोट्यसागरो°। १३. फ दण्डोत्सेधाः। १४. फ वर्णाः।

एकपल्यायुः [1]एकोनपञ्चाशद्दिनजनितयौवनः[2] दिनान्तरितामलकप्रमाणाहारश्च भवति जनः[3]। अन्यत्पूर्ववत्। द्वाचत्वारिंशत्सहस्रवर्षैर्न्यूनैककोटीकोटीसागरोपमप्रमितश्चतुर्थकालो दुःषमसुषमनामा[4]। तदादौ पञ्चशतचापोत्सेधः पूर्वकोटिरायुः प्रतिदिनभोजी पञ्चवर्णयुतश्च जनो भवति। एकविंशतिसहस्रवर्षप्रमितो दुःषमनामा पञ्चमकालः। तदादौ सप्तहस्तोत्सेधः [5]विंशत्युत्तरशतवर्षायुः प्रतिदिनमनियतभोजी मिश्रवर्णश्च जनः स्यात्। ततोऽतिदुःषम[6]नामा षष्ठः कालः तन्मान एव। तदा जना नग्ना मत्स्याद्याहारा धूम्रश्यामा द्विहस्तोत्सेधाः [7]विंशतिवर्षायुषश्च स्युः। तदन्ते एककरोत्सेधः पञ्चदशाब्दायुश्च स्याज्जनः। यद् द्वितीयकालस्यादौ वर्तनं तत्प्रथमकालस्यान्ते। एवं यदुत्तरोत्तरकालादौ[9] वर्तनं तत्पूर्वपूर्वस्यान्ते द्रष्टव्यम्।

तत्र तृतीयकालस्यान्तिमपल्याष्टमभागेऽवशिष्टे कुलकराः स्युः चतुर्दश। तथाहि— प्रतिश्रुतिनामा [10]प्रथमकुलकरो जातः स्वयंप्रभादेवीपतिः, अष्टशताधिकसहस्रदण्डोत्सेधः, पल्यदशमभागायुः, कनकवर्णः। तत्काले ज्योतिरङ्गकल्पद्रुमभङ्गात् चन्द्रार्कदर्शनाद्भीतिं गतं

समान होता है। आयु उस कालमें एक पल्योपम प्रमाण होती है। उस कालमें मनुष्य उनचास दिनोंमें यौवन अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। आहार उनका एक दिनके अन्तरसे आँवलेके बराबर होता है। शेष वर्णन पूर्वके समान है। दुखमसुखमा नामका चौथा काल ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ि सागरोपम प्रमाण है। उसके प्रारम्भमें मनुष्य पाँच सौ धनुष ऊँचे, एक पूर्वकोटि प्रमाण आयुके भोक्ता, प्रतिदिन भोजन करनेवाले और पांचों वर्णोंवाले होते हैं। दुखमा नामक पाँचवें कालका प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष है। उसके प्रारम्भमें मनुष्य सात हाथ ऊँचे, एक सौ बीस वर्ष प्रमाण आयुके भोक्ता, प्रतिदिन अनियमित (अनेक बार) भोजन करनेवाले और मिश्र वर्णसे सहित होते हैं। तत्पश्चात् अतिदुखमा नामका छठा काल प्रविष्ट होता है। उसका प्रमाण भी पाँचवें कालके समान इक्कीस हजार वर्ष है। उस समय मनुष्य नग्न रहकर मछली आदिकोंका आहार करनेवाले, धुएँके समान श्यामवर्ण, दो हाथ ऊँचे और बीस वर्ष प्रमाण आयुके भोक्ता होते हैं। इस कालके अन्तमें मनुष्योंके शरीरकी ऊँचाई एक हाथ प्रमाण और आयु पन्द्रह वर्ष प्रमाण रह जाती है। जो प्रवृत्ति – उत्सेध व आयु आदिका प्रमाण— द्वितीय (आगेके) कालके प्रारम्भमें होता है वही प्रथम कालके अन्तमें होता है। इस प्रकारसे जो आगे-आगेके कालके प्रारम्भमें प्रवृत्ति होती है वही पूर्व पूर्व कालके अन्तमें होती है, यह जान लेना चाहिए।

उनमेंसे तृतीय कालमें जब पल्यका अन्तिम आठवाँ भाग शेष रह जाता है तब चौदह कुलकर उत्पन्न होते हैं। वे इस प्रकारसे— सर्वप्रथम प्रतिश्रुति नामका पहिला कुलकर हुआ। उसकी देवीका नाम स्वयंप्रभा था। उसके शरीरकी ऊँचाई एक हजार-आठ सौ धनुष और आयु पल्यके दसवें भाग ($\frac{1}{10}$) प्रमाण थी। उसके शरीरका वर्ण सुवर्णके समान था। उसके समयमें ज्योतिरंग कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जानेसे चन्द्र और सूर्य देखनेमें आने लगे थे। उनके

१. ब एकोनपंचा॰। २. ज फ यौवनाः प यौवना। ३. फ ॰हारश्च भवंति जनाः। ४ ज प ब श दुःखमसुखम॰। ५. ज प ब श दुःखम॰। ६. प श हस्तोत्सेधविंश॰। ७. ज ब श ॰दुःखम॰ प ॰दुखम॰। ८. श पंचविंशति। ९. प फ यदुत्तरकालादौ श यदुत्तरकादौ। १०. श 'प्रथम' नास्ति।

अथ प्रतिबोधितवान् हा-नीत्या शिक्षितवांश्च । अनन्तरं पल्योपमाशीत्येकभागे गते सन्मतिनामा द्वितीयः कुलकरोऽभूत् यशस्वतीपतिः, त्रिशताधिकसहस्रदण्डोत्सेधः, पल्यशतैकभागायुः स्वर्णाभः[1] निवारिततारकादिदर्शनजनितप्रजाभयः, तथैव शिक्षितवांश्च । ततः पल्याष्टशतैकभागे गते क्षेमंकरो जातः सुनन्दाप्रियः, अष्टशतदण्डोत्सेधः, पल्यसहस्रैकभागायुः, निवारितव्यालजनितभयः[2], कनककान्तिः प्रवर्तितहा-नीतिश्च । अनन्तरं पल्याष्टसहस्रैकभागे व्यतिक्रान्ते क्षेमंधरोऽजनि विमलाकान्तः, पञ्चसप्तत्यधिकसप्तशतधनुरुत्सेधः, पल्यदशसहस्रैकभागायुः, कनकाभः, दीपादिप्रज्वालनेन निरस्तान्धकारः, तथैव निवारितप्रजादोषः । ततः पल्याशीतिसहस्रैकभागेऽतीते सीमंकरोऽभूत् मनोहरीदेवीवल्लभः, सार्धसप्तशतशरासनोत्सेधः, पल्यलक्षैकभागायुः, हिरण्यच्छविः, कृतकल्पद्रुममर्यादः, तथैव प्रवर्तितनीतिः । अनन्तरं

देखनेसे आर्योंके हृदयमें भयका संचार हुआ तब उनको भयभीत देखकर प्रतिश्रुति कुलकरने समझाया कि ये सूर्य-चन्द्र प्रतिदिन ही उदित होते हैं, परन्तु अभी तक ज्योतिरंग कल्पवृक्षोंके प्रकाशमें वे दीखते नहीं थे । अब चूँकि वे ज्योतिरंग कल्पवृक्ष प्रायः नष्ट हो चुके हैं, अतएव ये देखनेमें आने लगे हैं । इनसे डरनेका कोई कारण नहीं है । इस कुलकरने उन्हें 'हा' नीतिका अनुसरण कर शिक्षा (दण्ड) दी थी । इसके पश्चात् पल्यका अस्सीवाँ भाग ($\frac{१}{८०}$) बीतनेपर सन्मति नामका दूसरा कुलकर उत्पन्न हुआ । इसकी देवीका नाम यशस्वती था । उसके शरीरकी ऊँचाई एक हजार तीन सौ धनुष, और आयु पल्यके सौवें भाग ($\frac{१}{१००}$) प्रमाण और वर्ण सुवर्णके समान था । ज्योतिरंग कल्पवृक्षोंके सर्वथा नष्ट हो जानेपर जब आर्योंके लिए ताराओं आदिको देखकर भय उत्पन्न हुआ तब उनके उस भयको इस कुलकरने दूर किया था । प्रजाजनको इसने भी 'हा' इस नीतिका ही अनुसरण करके शिक्षा दी थी । इसके पश्चात् पल्यका आठ सौवाँ भाग ($\frac{१}{८००}$) बीत जानेपर क्षेमंकर नामका तीसरा कुलकर उत्पन्न हुआ । इसकी प्रियाका नाम सुनन्दा था । उसके शरीरकी ऊँचाई आठ सौ धनुष, वर्ण सुवर्णके समान और आयु पल्यके हजारवें भाग ($\frac{१}{१०००}$) प्रमाण थी । इसके समयमें सर्पादिकोंका स्वभाव क्रूर हो गया था, अतएव प्रजाजन उनसे भयभीत होने लगे थे । क्षेमंकरने संबोधित करके उनके इस भयको दूर किया था । इसने भी 'हा' इसी दण्डनीतिकी प्रवृत्ति चालू रक्खी थी । इसके पश्चात् पल्यका आठ हजारवाँ भाग ($\frac{१}{८०००}$) बीतनेपर क्षेमंधर नामका चौथा कुलकर उत्पन्न हुआ । इसकी प्रियाका नाम विमला था । उसके शरीरकी ऊँचाई सात सौ पचहत्तर धनुष, वर्ण सुवर्णके समान और आयु पल्यके दस हजारवें भाग ($\frac{१}{१००००}$) प्रमाण थी । इसने प्रजाजनके लिए दीपक आदिको जलाकर अन्धकारके नष्ट करनेका उपदेश दिया था । प्रजाके दोषको दूर करनेके लिए इसने भी 'हा' इसी नीतिका आलम्बन लिया था । इसके पश्चात् पल्यका अस्सी हजारवाँ भाग ($\frac{१}{८००००}$) बीतनेपर सीमंकर नामका पाँचवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ । इसकी प्रियाका नाम मनोहरी था । उसके शरीरकी ऊँचाई साढ़े सात सौ धनुष, वर्ण सुवर्णके समान और आयु पल्यके लाखवें भाग ($\frac{१}{१०००००}$) प्रमाण थी । इसने कल्पवृक्षोंकी मर्यादा करके प्रजाजनके कल्पवृक्षों सम्बन्धी विवादको दूर किया था । दण्डनीति इसके समयमें भी 'हा' यही चालू रही ।

---

१. ज श स्वर्णाभनि° प स्वर्णाभर्णानि° ब सुर्णाभः नि° । २. ब व्यालमृगजनितभयः ।

पल्याष्टलक्षैकभागे गते सीमंधरो जातो यशोधारिणीपतिः, पञ्चविंशत्यधिकसप्तशतबाणासनोत्सेधः, पल्यदशलक्षैकभागायुः, हाटकाभः, सीमाव्याजे कृतशासनः[1], प्रदर्शितहा-मानीतिः। अनन्तरं पल्याशीतिलक्षैकभागे गते विमलवाहनो जातः सुमतिदेव्याः पतिः, सप्तशतदण्डोत्सेधः, पल्यकोट्येकभागजीवितः[2], हेमकान्तिः, कृतवाहनारोहणोपदेशः, प्रवर्तितहा-मानीतिश्च। अनन्तरं पल्याष्टकोट्येकभागेऽतीते चक्षुष्मानजनि धारिणीपतिः, पञ्चसप्तत्यधिकषट्शतचापोत्सेधः, पल्यदशकोट्येकभागजीवितः, प्रियङ्गुवर्णः, कृतोत्पन्नशिशुदर्शनभयापहारस्तथैव शिक्षितजनश्च। अनन्तरं पल्याशीतिकोट्येकभागेऽतीते यशस्वी जातः[3] कान्तमालाप्रियः, सार्धषट्शतचापोत्सेधः[4], पल्यशतकोट्येकभागजीवित[2], प्रियङ्गुवर्णः, कृतसंज्ञाव्यवहारः, तथैव शिक्षितजनश्च। अनन्तरं पल्याष्टशतकोट्येकभागेऽतिक्रान्ते जातोऽभिचन्द्रः

इसके पश्चात् पल्यका आठ लाखवाँ भाग (१/८०००००) बीत जानेपर सीमंधर नामका छठा कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी प्रियाका नाम यशोधारिणी था। इसके शरीरकी ऊँचाई सात सौ पच्चीस धनुष, वर्ण सुवर्णके समान और आयु पल्यके दस लाखवें भाग (१/१००००००) प्रमाण थी। उसने सीमाके व्याजमें शासन किया, अर्थात् उसके समयमें जब कल्पवृक्ष अतिशय विरल होकर थोड़ा फल देने लगे तब उसने उनको अन्य वृक्षादिकोंसे चिह्नित करके प्रजाजनके झगड़ेको दूर किया था। इसने अपराधको नष्ट करनेके लिए 'हा' के साथ 'मा' नीति (खेद है, अब ऐसा न कहना) का भी आश्रय लिया था। इसके पश्चात् पल्यका अस्सी लाखवाँ भाग (१/८००००००) बीत जानेपर विमलवाहन नामका सातवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। उसकी देवीका नाम सुमति था। उसके शरीरकी ऊँचाई सात सौ धनुष, वर्ण सुवर्ण जैसा और आयु पल्यके करोड़वें भाग (१/१००००००००) प्रमाण थी। उसने हाथी आदि वाहनोंके ऊपर सवारी करनेका उपदेश दिया था। दण्डनीति इसने भी 'हा-मा' स्वरूप ही चालू रखी थी। इसके पश्चात् पल्यका आठ करोड़वाँ भाग (१/८००००००००) बीत जानेपर चक्षुष्मान् नामका आठवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी प्रियतमाका नाम धारिणी था। उसके शरीरकी ऊँचाई छह सौ पचत्तर धनुष, वर्ण प्रियंगुके समान और आयु पल्यके दस करोड़वें भाग (१/१०००००००००) प्रमाण थी। इसके समयमें आर्योंको सन्तानके उत्पन्न होनेपर उसका मुख देखनेको मिलने लगा था। उसको देखकर उन्हें भय उत्पन्न हुआ। तब चक्षुष्मानूने संबोधित करके उनके इस भयको नष्ट किया था। इसने भी प्रजाजनको शिक्षा देनेके लिये 'हा-मा' नीतिका ही उपयोग किया था। पश्चात् पल्यका अस्सी करोड़वाँ भाग बीत जानेपर (१/८०००००००००) यशस्वी नामका नौवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। उसकी प्रियाका नाम कान्तमाला था। उसके शरीरकी उँचाई साढ़े छह सौ धनुष, वर्ण प्रियंगु जैसा और आयु पल्यके सौ करोड़वें भाग (१/१००००००००००) थी। उसने व्यवहारके लिए बालकोंके नाम रखनेका उपदेश दिया था। आर्योंको शिक्षा देनेके लिये वह भी 'हा-मा' इस नीतिका ही उपयोग किया करता था। इसके पश्चात् पल्यका आठ सौ करोड़वाँ भाग बीत जानेपर अभिचन्द्र नामका

---

१. ब सीमान्याजेकृतशासनप्र° श सीमाध्याजेकृतसाशनः। २. ब जीवनः। ३. श यशस्वीकामजातः। ४. श सार्द्धषट्चापो°। ५. फ °क्रांतेऽभिचंन्द्रो जातः।

श्रीमतीपतिः, पञ्चविंशत्यधिकषट्शतबाणासनोत्सेधः, पल्यकोटिसहस्रैकभागजीवितः, सुवर्णवर्णश्चन्द्रादिप्रदर्शनेन बालक्रीडाकृतोपदेशः, प्रकाशितहा-मा-नीतिश्च। ततः पल्याष्टसहस्रकोट्येकभागे गते चन्द्राभोऽभूत् प्रभावतीपतिः, चन्द्रवर्णः, षट्शतधनुरुत्सेधः, पल्यकोटिदशसहस्रैकभागायुः, [1]कृतपितापुत्रादिव्यवहारः, हा-मा-धिक्नीत्या कृतजनदोषनिराकरणः। अनन्तरं पल्याशीतिसहस्रकोट्येकभागे[2]ऽतिक्रान्ते जातो मरुद्देव अनुपमापतिः, पञ्चसप्तत्यधिकपञ्चशतचापोत्सेधः, पल्यकोटिलक्षैकभागायुः, कनकाभः। तदा वृष्टौ सत्यां नद्यनद्युपसमुद्रादिके जाते प्रदर्शिततत्तरणोपायः[3], तथैव कृतप्रजादोषनिराकरणः। अनन्तरं पल्याष्टकलक्षकोट्येकभागेऽतिक्रान्ते प्रसेनजिज्जातः। स च प्रस्वेदलवार्द्रिताङ्गः, सार्धपञ्चशतधनुरुत्सेधः, पल्यकोटिदशलक्षैकभागायुः, प्रियङ्गुकान्तिः। तस्य तत्पित्रा अमितमतिनामवरकन्यया[4] विवाहः कृतः। तदुक्तम्—

> प्रसेनजितमायोज्य प्रस्वेदलवभूषितम्।
> विवाहविधिना धीरः प्रधानविधिकन्यया[5] ॥१॥ इति।

दसवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। उसकी देवीका नाम श्रीमती था। इसके शरीरकी उँचाई छह सौ पच्चीस धनुष, वर्ण सुवर्ण जैसा तथा आयु पल्यके हजार करोड़वें भाग प्रमाण थी। इसने चन्द्र आदिको दिखलाकर बालकोंके खिलानेका उपदेश दिया था तथा शिक्षा देनेके लिये 'हा-मा' इस नीतिका ही उपयोग किया था। उसके पश्चात् पल्यका आठ हजार करोड़वाँ भाग बीत जानेपर चन्द्राभ नामका ग्यारहवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ, उसकी देवीका नाम प्रभावती था। उसकी शरीर-कान्ति चन्द्रमाके समान, उँचाई छह सौ धनुष और आयु पल्यके दस हजार करोड़वें भाग प्रमाण थी। इसने आर्योंमें पिता और पुत्र आदिके व्यवहारको प्रचलित किया था। यह आर्योंके द्वारा किये गये अपराधको नष्ट करनेके लिये 'हा-मा' के साथ 'धिक्' का भी उपयोग करने लगा था। इसके पश्चात् पल्यका अस्सी हजार करोड़वाँ भाग बीत जानेपर मरुद्देव नामका बारहवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ था। उसकी प्रियाका नाम अनुपमा था। उसके शरीरकी उँचाई पाँच सौ पचत्तर धनुष, कान्ति सुवर्णके समान और आयु पल्यके एक लाख करोड़वें भाग प्रमाण थी। उसके समयमें वर्षा प्रारम्भ हो गई थी। इसलिये नद, नदी एवं उपसमुद्र आदि भी उत्पन्न हो गये थे। मरुद्देवने उनमें पार होनेका उपाय बतलाया था। उसने भी 'हा-मा-धिक्' नीतिके अनुसार प्रजाके दोषोंको दूर किया था। इसके पश्चात् पल्यका आठ लाख करोड़वाँ भाग बीत जानेपर प्रसेनजित् नामका तेरहवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। पसीनेकी बूँदोंसे भीगे हुए शरीरको धारण करनेवाला वह साढ़े पाँच सौ धनुष ऊँचा था। उसकी आयु पल्यके दस लाख करोड़वें भाग प्रमाण और शरीरकी कान्ति प्रियंगुके समान थी। उसके पिताने उसका विवाह अमितमति नामकी उत्तम कन्याके साथ किया था। कहा भी है। (ह० पु० ७-१६७)—

धीर मरुद्देव कुलकर पसीनेके कणोंसे विभूषित अपने पुत्र प्रसेनजित्के विवाहका आयोजन प्रधान कुलकी कन्याके साथ करके [आयुके पूर्ण हो जानेपर मरणको प्राप्त हुआ] ॥१॥

---

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श कृतः पिता°। २. ब पल्याशीतिकोट्येकभागे। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श प्रदर्शितनरणो°। ४. फ अमितगतिनाप्रवरकन्यया° (पश्चात् संशोधितः) ब अमितमतिः। नामः वरवरकन्याया। ५. ह० पु० (७-१६७) प्रधानकुलकन्यया।

स चैक एवोत्पन्नस्ततःप्रभृतियुग्मोत्पत्तिनियमाभावः। तदुक्तम्—

एकमेवासृजत् पुत्रं प्रसेनजितमत्र सः।
युग्मसृष्टेरिहैवोर्ध्वमितोऽभ्युपनिनीषया[1] ॥२॥ इति।

स च स्नानादिकृतोपदेशः तथैव शिक्षितजनः। अनन्तरं पल्याशीतिलक्षकोटयेक-भागे व्यतिक्रान्तेऽभून्नाभिराजो मरुदेवीकान्तः, पञ्चविंशत्युत्तरपञ्चशतचापोत्सेधः, पूर्व-कोटिरायुः, सुवर्णकान्तिः तथैव शिक्षितप्रजः। तदा सर्वे कल्पपादपा[2] गताः। नाभिराजस्य प्रासाद[3] एवोद्धृतः[4]। तदैवोत्पन्नशिशुनालनिकर्तनेन[5] नाभिः प्रसिद्धिं गतः। स नाभिराजो मरुदेव्या सह[6] सुखेन तस्थौ।

इतः सर्वार्थसिद्धौ वज्रनाभिचराहमिन्द्रस्य षण्मासायुः स्थित यदा तदा कल्पलोके घण्टानादो ज्योतिषां सिंहनादो भवनेषु शङ्खनादो व्यन्तराणां भेरीरवोऽभूत्। सर्वेषां सुराणां हरिविष्टराणि प्रकम्पितानि मुकुटाश्च नम्रीभूताः। तदा सर्वेऽपि स्वबोधेन बुबुधिरे भरते [7]मरुदेवीगर्भे आदितीर्थकरोऽवतरिष्यतीति। चतुर्णिकायदेवैरागत्य तत्कारणेन [8]शचीपति-स्तत्पित्रोः स्थित्यर्थं विनीताखण्डमध्यप्रदेशे अयोध्याभिधं सर्वरत्नमयं पुरमकार्षीत्। तौ द्वौ[9]

वह प्रसेनजित् भी युगलके रूपमें उत्पन्न न होकर अकेला ही उत्पन्न हुआ था। उस समयसे युगलस्वरूपमें उत्पन्न होनेका कोई नियम नहीं रहा। कहा भी है—

इसके आगे यहाँ युगलस्वरूप सृष्टिको नष्ट करनेकी ही इच्छासे मानो मरुदेवने प्रसेनजित् नामके एक मात्र पुत्रको ही उत्पन्न किया था ॥२॥

प्रसेनजित्ने प्रजाजनको स्नान आदिका उपदेश किया था। पूर्वके अनुसार इसने भी प्रजाजनोंको शिक्षा देनेमें 'हा-मा-धिक्' इसी नीतिका उपयोग किया था। इसके पश्चात् पल्यका अस्सी लाख करोड़वाँ भाग बीत जानेपर नाभिराज नामका चौदहवाँ कुलकर उत्पन्न हुआ। इसकी पत्नीका नाम मरुदेवी था। उसके शरीरकी उँचाई पाँच सौ पच्चीस धनुष, कान्ति सुवर्णके समान और आयु एक पूर्वकोटि प्रमाण थी। नाभिराजने भी प्रजाको पूर्वके समान 'हा-मा-धिक्' नीतके ही अनुसार शिक्षित किया था। उस समय कल्पवृक्ष सब ही नष्ट हो चुके थे, केवल नाभिराजका प्रासाद ही शेष रहा था। उस समय उत्पन्न हुए बालकोंके नालके काटनेका उपदेश करनेसे वह 'नाभि' इस नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ। वह नाभिराज मरुदेवीके साथ सुखसे स्थित था।

इधर सर्वार्थसिद्धिमें जब भूतपूर्व वज्रनाभिके जीव उस अहमिन्द्रकी आयु छह मास शेष रह गई तब कल्पलोक (स्वर्ग) में घण्टेका शब्द, ज्योतिषी देवोंमें सिंहनाद, भवनवासियोंमें शंखका शब्द और व्यन्तर देवोंके यहाँ भेरीका शब्द हुआ। उस समय सब ही देवोंके सिंहासन कम्पित हुए और मुकुट झुक गये। इससे उन सभीने अपने अवधिज्ञानसे यह जान लिया कि भरत क्षेत्रमें मरुदेवीके गर्भमें आदि जिनेन्द्र अवतार लेनेवाले हैं। इसी कारण चारों निकायोंके देवोंके साथ आकर इन्द्रने भगवान्के माता-पिता (मरुदेवी और नाभिराज) के रहनेके लिये विनीता खण्डके मध्य भागमें अयोध्या नामके नगरकी रचना की, जो सर्वरत्नमय था। तत्पश्चात्

---

१. ब °वोर्द्ध्वमितोत्पपतिनीषया। ह. पु. °तो व्यपनिनीषया। २. श कल्याणपादपा। ३. ज प श प्रसाद। ४. प फ श एवोद्धृतः। ५. श नालिनि°। ६. ब 'सह' नास्ति। ७. ज प आ मरुद्देवी°। ८. ब °णेन च सचीपति°। ९. ब 'द्वौ' नास्ति।

तत्र विभूत्या व्यवस्थाप्य स्वं यक्षं धनदं न्ययोजयत् प्रतिदिनं त्रिसंध्यं तद्गृहे पञ्चाश्चर्यकरणे। पद्मादिसरोनिवासिन्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्याख्या देव्यस्तीर्थकृन्मातुः शृङ्गारकृतौ, रुचकगिरिनिवासिन्यो विजया[1] वैजयन्ता जयन्ता अपराजिता नन्दा नन्दोत्तरा आनन्दा नन्दिवर्धना चेत्यष्टौ[2] पूर्णकुम्भाधाने, सुप्रतिष्ठा सुप्रणिधा सुप्रबोधा[3] यशोधरा लक्ष्मीमती कीर्तिमती वसुंधरा चित्रा[4] चेत्यष्टौ[5] दर्पणधारणे, इला सुरा पृथ्वी पद्मावती काञ्चना नवमी सीता भद्रा चेत्यष्टौ[6] गानेऽलम्बुषामित्रकेशीपुण्डरीकावारुणीदर्पणाश्रीह्रीधृतयश्चेत्यष्टौ चामरधारणे, चित्राकाञ्चनचित्राशिरःसूत्रामाणयश्चेति[7] चतस्रो दीपोज्ज्वालनेन, रुचकारुचकाशारुचकान्तिरुचकप्रभाश्चेति चतस्रस्तीर्थकृज्जातोत्सवकर्मणि रसवतीकरणे ताम्बूलदाने [8]शय्यासनाधिकारे, [9]अन्यनगनिवासिन्यः सुमाला-मालिनी-सुवर्णदेवी-सुवर्णचित्रा-पुष्पचूला-चूलावती-सुरा-त्रिशिरसादयो देव्यो यथानियोगं न्ययोजयत्[10]। एवं सुखेन षण्मासेषु गतेषु मरुदेवी[11] पुष्पवती जज्ञे, अनेकतीर्थोदककृतचतुर्थस्नाना स्वभर्त्रा सुप्ता गजेन्द्रादिषोडशस्वप्नानपश्यत्, राज्ञो निरूपिते तेन तत्फले कथिते संतुष्टा सुखेन तस्थौ। आषाढकृष्णद्वितीयायां सोऽहमिन्द्रस्तद्गर्भेऽवतीर्णो देवाः संभूय समागत्य गर्भावतरणकल्याणं कृत्वा स्वर्लोकं जग्मुः[12]। अमरीकृत-

इन्द्रने नाभिराज और मरुदेवी इन दोनोंको विभूतिके साथ उस नगरके भीतर प्रतिष्ठित किया। साथ ही उसने उनके घरपर प्रतिदिन तीनों संध्याकालोंमें पंचाश्चर्य करनेके लिये अपने यक्ष कुबेरको नियुक्त कर दिया। उसने पद्म और महापद्म आदि तालाबोंमें निवास करनेवाली श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी देवियोंको तीर्थंकरकी माताके शृङ्गारकार्यमें; रुचक पर्वतपर रहनेवाली विजया, वैजयन्ता, जयन्ता, अपराजिता, नन्दा, नन्दोत्तरा, आनन्दा और नन्दिवर्धना इन आठ देवियोंको पूर्ण कलशके धारण करनेमें; सुप्रतिष्ठा, सुप्रणिधा, सुप्रबोधा, यशोधरा, लक्ष्मीमती, कीर्तिमती, वसुंधरा और चित्रा इन आठ देवियोंको दर्पणके धारण करनेमें; इला, सुरा, पृथ्वी, पद्मावती, कांचना, नवमी, सीता और भद्रा इन आठ देवियोंको गानमें; अलंबुषा, मित्रकेशी, पुण्डरीका, वारुणी, दर्पणा, श्री, ह्री और धृति इन आठ देवियोंको चँवर धारण करनेमें; चित्रा, कांचनचित्रा, शिरःसूत्रा और माणि इन चार देवियोंको दीपक जलानेमें; रुचका, रुचकाशा, रुचकान्ति और रुचकप्रभा इन चार देवियोंको तीर्थंकरका जन्मोत्सव कर्म करने, रसोई करने, पान देने एवं शय्या व आसनके अधिकारमें; तथा अन्य पर्वतोंपर रहनेवाली सुमाला, मालिनी, सुवर्णदेवी, सुवर्णचित्रा, पुष्पचूला, चूलावती, सुरा और त्रिशिरसा आदि देवियोंको भी नियोगके अनुसार कार्योंमें नियुक्त किया। इस प्रकार सुखपूर्वक छह महिनोंके बीत जानेपर मरुदेवी पुष्पवती हुई। उस समय उसने अनेक तीर्थोंके जलसे चतुर्थ स्नान किया। वह जब पतिके साथ शय्यापर सोयी हुई थी तब उसने हाथी आदि सोलह स्वप्नोंको देखा। इनके फलके विषयमें उसने राजासे पूछा। तदनुसार नाभिराजने उसके लिये उन स्वप्नोंका फल बतलाया, जिसे सुनकर वह बहुत सन्तुष्ट हुई। इस प्रकार सुखसे स्थित होनेपर आषाढ़ कृष्णा द्वितीयाके दिन वह अहमिन्द्र देव उसके गर्भमें अवतीर्ण हुआ। तब देवोंने

१. ब विजय। २. फ ब °वर्धनाश्चेत्यष्टौ। ३. ब 'प्रबोधा' नास्ति। ४. ब लक्ष्मीमती वसुंधरा कीर्तिमती, वसुंधरी चित्रा। ५. फ चित्राश्चेत्यष्टौ। ६. फ भद्रादचेत्यष्टौ। ७. ब °चित्रात्रिशिरःस्तत्रामानयश्चेति। ८. ज प श सह्यासना°। ९. प फ श अन्यनाग° ब अन्यानग°। १०. फ श न्ययोजयन्। ११. ज प श मरुद्देवी। १२. ब ययुः।

शुश्रूषया सुखेन नवमासावसाने चैत्रकृष्णनवम्यां त्रिलोकगुरुमसूत मरुदेवी[1]। तदैव सौधर्मादयः स्ववाहनाधिरूढाः समागुः, तदम्बिकाग्रे मायाशिशुं[2] कृत्वा तं कुमारं सुराद्री[3]-मेरौ पाण्डुकवने ईशानकोणस्थपाण्डुकशिलायां निन्युः। तं [4]तत्रोपवेश्याष्टयोजनोत्सेधैरनेककोटीघटैः सौधर्म-ईशानौ क्षीराब्धिक्षीरेण जन्माभिषवं चक्रतुः। अनन्तरं विभूष्यानीय मातापित्रोः समर्प्य तदग्रे शक्रो ननर्ति (?) स्म[5]। ततो वृषो धर्मस्तेन भातीति तं वृषभनामानं कृत्वा देवाः स्वर्लोकं जग्मुः। स वृषभनाथो निःस्वेदत्व-निर्मलत्व-शुभ्ररुधिरत्व-प्रथमसंहननत्व-प्रथमसंस्थानत्व-सुरूपत्व-सुगन्धत्व-सुलक्षणत्वानन्तवीर्यत्व-प्रियहितवादित्वाख्यसहजदशातिशययुतत्रिज्ञानधारी ववृधे।

एकदा नाभिराजो ग्रासाभावादुपक्षीणशक्तिकाः प्रजा गृहीत्वागत्य तं नत्वा विज्ञप्तवान्– हे नाथ, यथा प्रजानां ग्रासो भवति तथा कुर्विति। ततो देवः स्वयंभूतपुण्ड्रेक्षुदण्डान् यन्त्रेण निपीड्य रसपानोपायं कथितवान्। तथा कृते संतृप्ताभिः प्रजाभिरागत्य तस्य प्रणम्योक्तं देव,

---

आकर गर्भकल्याणका महोत्सव किया। तत्पश्चात् वे वापिस स्वर्गलोक चले गये। मरुदेवी उन देवियोंके द्वारा की जानेवाली सेवाके साथ नौ मास सुखपूर्वक रही। अन्तमें चैत्रकृष्णा नवमीके दिन उसने तीन लोकके प्रभु भगवान् आदिनाथको उत्पन्न किया। इसको जानकर सौधर्म इन्द्र आदि अपने अपने वाहनोंपर चढ़कर उसी समय अयोध्या नगरीमें आ पहुँचे। वे देवेन्द्र भगवान्‌की माताके आगे मायामयी बालकको करके तीर्थंकर कुमारको मेरुपर्वतके ऊपर स्थित पाण्डुकवनके भीतर ईशान कोणस्थ पाण्डुक शिलाके ऊपर ले गये। उसके ऊपर भगवान्‌को विराजमान करके सौधर्म और ईशान इन्द्रने क्षीरसमुद्रके दूधसे आठ योजन ऊँचे अनेक करोड़ कलशोंके द्वारा जन्माभिषेक किया। तत्पश्चात् तीर्थंकर कुमारको वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके सौधर्म इन्द्रने माता पिताको समर्पित किया और वह उनके आगे नृत्य करने लगा। वे भगवान् चूँकि वृष (धर्म) से शोभायमान थे, इसीलिये उनका नाम वृषभ रखकर वे सब देव स्वर्गलोकको चले गये। वे वृषभनाथ भगवान् निःस्वेदत्व (पसीना न आना), निर्मलता, शुभ्ररुधिरत्व (रक्तकी धवलता), वज्रर्षभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान, सुरूपता (अनुपम रूप), सुगन्धित शरीर, सुलक्षणत्व (एक हजार आठ उत्तम लक्षणोंका धारण करना), अनन्तवीर्यता (शारीरिक बलकी असाधारणता) और हित मित मधुर भाषण; इन स्वाभाविक दस अतिशयोंको जन्मसे ही धारण करते थे। साथ ही वे मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानोंको भी जन्मसे ही धारण करते थे। वे क्रमशः वृद्धिको प्राप्त हुए।

एक दिन भूखसे व्याकुल दुर्बल प्रजाजन नाभिराजके पास आये। तब नाभिराज उन सबको लेकर भगवान् वृषभनाथके पास पहुँचे। उनने नमस्कारपूर्वक भगवान्‌से प्रार्थना की कि हे नाथ! जिस प्रकारसे प्रजाजनोंकी भूख आदिकी बाधा दूर हो, ऐसा कोई उपाय बतलाइये। तब वृषभदेवने उन्हें भूखकीबाधाको नष्ट करनेके लिए यह उपाय बतलाया कि गन्ना और ईखके दण्ड जो स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं उनको कोल्हूमें पेलकर रस निकालो और उसका पान करो। तदनुसार प्रवृत्ति करनेपर प्रजाको बहुत सन्तोष हुआ। तब प्रजाजनोंने आकर प्रणाम करते हुए भगवान्‌से कहा कि आपका वंश

---

१. श मरुद्देवी। २. फ श मायामयी शिशुं। ३. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श सुरेन्द्रे.। ४. श तत्रोपविश्याष्ट°। ५. ब शक्रे ननर्त्ति स्म।

त्वदीयो वंश इक्ष्वाकुवंशो भवत्विति। तथा भवत्विति स्वाम्यभ्युपजगाम। स सुवर्णवर्णो वृषभध्वजलाञ्छितः पञ्चशतदण्डोन्नतश्चतुरशीतिलक्षपूर्वायुर्यावत् सुखमास्ते तावत्तद्यौवना-मभिवीक्ष्य[1][2] शक्रादिभिर्विज्ञप्तो देव, स्वस्य विवाहोऽभ्युपगन्तव्यः। स्वामी चारित्रमोहोदयेनाभ्युप-जगाम। ततः कच्छ-महाकच्छतनुजाभ्यां यशस्वती-सुनन्दाभ्यां विवाहं स्थापितः। ततस्ताभ्यां सुखेन तस्थौ। यो निधिरक्षको व्याघ्रो दिवाकरप्रभदेवो मतिवरोऽधोग्रैवेयकजो बाहुः सर्वार्थसिद्धिजः स आगत्य यशस्वत्या भरतनामा पुत्रो जातः। मन्त्री आर्यः कनकप्रभदेवः आनन्दो ग्रैवेयकजः पीठः सर्वार्थसिद्धिजो भरतानुजो वृषभसेनोऽभूत्। यः पुरोहित आर्यः प्रभञ्जनदेवो धनमित्रोऽधोग्रैवेयकजः महापीठः सर्वार्थसिद्धिजो वृषभसेनानुजोऽनन्तवीर्योऽ-जनि। यो व्याघ्रो भोगभूमिजश्चित्राङ्गददेवो वरदत्तोऽच्युतकल्पजो विजयः सर्वार्थसिद्धिज सोऽपि भरतानुजोऽनन्तोऽभूत्। यो वराह आर्यो मणिकुण्डलदेवो वरसेनोऽच्युतस्वर्गजो वैजयन्तः सर्वार्थसिद्धिजः सोऽपि भरतानुजोऽच्युतोऽजनि। यो मर्कटचरार्यो मनोहरदेव-श्चित्राङ्गदोऽच्युतस्वर्गजो जयन्तः सर्वार्थसिद्धिजः सोऽपि तदनुजो वीरो बभूव। यो नकुलार्यो[3] मनोरथदेवः शान्तमदनाच्युतकल्पजोऽपराजितः[4] सर्वार्थसिद्धिजः सोऽपि तदनुजः सुवीरो[5]

'इक्ष्वाकु' इस सार्थक नामसे प्रसिद्ध हो। इस बातको भगवान्‌ने 'तथा भवतु' कहकर स्वीकार कर लिया। भगवान्‌का वर्ण सुवर्ण जैसा था। उनका चिह्न बैलका था। वे पाँच सौ धनुष ऊँचे और चौरासी लाख वर्ष पूर्व प्रमाण आयुके धारक थे। इस प्रकार वे भगवान् सुखपूर्वक स्थित थे। इस बीचमें उनकी यौवन अवस्थाको देखकर इन्द्रादिकोंने प्रार्थना की कि हे देव! अपना विवाह स्वीकार कीजिये। इसपर भगवान्‌ने चारित्रमोहके वशीभूत होकर उसे स्वीकार कर लिया। तब कच्छ और महाकच्छ राजाओंकी यशस्वती और सुनन्दा नामकी पुत्रियोंके साथ उनका विवाह करा दिया। वे उन दोनोंके साथ सुखसे काल व्यतीत करने लगे। खजानेका रक्षक जो अतिगृद्ध राजका जीव व्याघ्र हुआ और फिर क्रमशः दिवाकरप्रभ देव, मतिवर मन्त्री, अधोग्रैवेयक-का अहमिन्द्र, बाहु (वज्रनाभिका अनुज) व सर्वार्थसिद्धमें अहमिन्द्र हुआ था वह आकर यशस्वतीके भरत नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा प्रीतिवर्धनके मन्त्रीका जीव जो क्रमसे आर्य (भोगभूमिज), कनकप्रभ देव, आनन्द पुरोहित, ग्रैवेयकका अहमिन्द्र, पीठ और फिर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह भरतका लघुभ्राता वृषभसेन हुआ। जो पुरोहितका जीव आर्य, प्रभंजन देव, धनमित्र, अधोग्रैवेयकका अहमिन्द्र, महापीठ और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह वृषभसेनका लघुभ्राता अनन्तवीर्य हुआ। जो व्याघ्रका जीव भोगभूमिज, चित्रांगद देव, वरदत्त, अच्युत कल्पका देव, विजय और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह भी भरतका लघुभ्राता अनन्त हुआ। जो शूकरका जीव आर्य, मणिकुण्डल देव, वरसेन, अच्युत कल्पका देव, वैजयन्त और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह भी भरतका लघुभ्राता अच्युत हुआ। जो बन्दरका जीव आर्य, मनोहर देव, चित्रांगद, अच्युत स्वर्गका देव, जयन्त और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह भी उसका लघुभ्राता वीर हुआ। जो नेवलाका जीव भोगभूमिमें आर्य, मनोरथ देव, शान्तमदन, अच्युत कल्पमें देव, अपराजितका देव और अन्तमें सर्वार्थसिद्धिका

---

१. ब– प्रतिपाठोऽयम्। श तावत्तद्यौवन°। २. ब °मवीक्ष्य। ३. ब अतोऽग्रेऽग्रिम 'सोऽपि तदनुजः' पर्यन्तः पाठ. स्खलितोऽस्ति। ४. श कल्पयोऽपराजितः। ५. श वीरो ब सुवरो।

जातः। इत्यादिभरतानुजा नवनवतिकुमारा जज्ञिरे[1]। ततो ब्राह्मी कुमारी च। यः सेनापतिरार्यः प्रभाकरदेवोऽकम्पनोऽधोग्रैवेयकजः सुबाहुः सर्वार्थसिद्धिजः सोऽवतीर्य नन्दानन्दनो बाहुबली जज्ञे। पूर्वं वज्रजङ्घानुजा पुण्डरीकस्य माता सा उभयगतिसुखमनुभूय बाहुबलिनोऽनुजा सुन्दरी बभूव। एवमेकोत्तरशतपुत्रा द्वे पुत्र्यौ वृषभस्य जाते।

एकदा पुत्र्यावुभयपार्श्वयोरुपवेश्यैकस्या[2] दक्षिणपाणिना अकारादिवर्णान्, अपरस्या वामहस्तेनैकं दहमित्याद्यङ्कांश्च[3] दर्शितवान्। भरतादीन् सर्वकलाकुशलान् कृत्वा सुखेनातिष्ठत्।

पुनरेकदा नाभिराजः प्रजा गृहीत्वा विज्ञप्तवान्—देव, इक्षुरसपानेन बुभुक्षा न याति, स्वामिन्नपरोपायं कथय। ततः स्वामी अष्टादशकोटीकोटीसागरोपमकालं[4] नष्टं कर्मभूमिवर्तनां ग्रामादिरूपां क्षत्रियादिवर्णरूपां सस्यादिजीवनोपायरूपां दर्शितवांश्च। तदा 'स्वामिना क्रियते स्म' इति कृतयुगमुच्यते इति सकलसृष्टौ कृतायां विंशतिलक्षपूर्वकुमारकालेऽतिक्रान्ते शक्रादिभिः संभूयाषाढकृष्णप्रतिपदि तस्य राज्यपट्टो बद्धः। स च सोमप्रभाख्यक्षत्रियकुमाराय राज्याभिषेकं कृत्वा राज्यपट्टं[5] बबन्ध[6] ते वंशः कुरुवंशो भवत्विति हस्तिनापुरं[7] ददौ। अकम्प-

देव हुआ था वह भी भरतका लघुभ्राता सुवीर हुआ। इनको आदि लेकर निन्यानवे पुत्र भरतके लघुभ्राता हुए। इसके पश्चात् भगवान् ऋषभदेवके ब्राह्मी नामकी पुत्री भी उत्पन्न हुई। जो सेनापतिका जीव भोगभूमिका आर्य, प्रभाकर देव, अकम्पन, अधोग्रैवेयकका देव, सुबाहु और फिर सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र हुआ था वह भी वहाँसे च्युत होकर नन्दा रानीका पुत्र बाहुबली उत्पन्न हुआ। पूर्वमें वज्रजंघकी छोटी बहिन जो पुण्डरीककी माता थी वह दोनों गतियोंके सुखको भोगकर बाहुबलीकी सुन्दरी नामकी छोटी बहिन उत्पन्न हुई। इस प्रकार वृषभनाथके एक सौ एक पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

एक समय भगवान् वृषभदेवने उन दोनों पुत्रियोंको अपने दोनों ओर बैठाकर उनमेंसे एकके लिए दाहिने हाथसे लिखकर अकारादि वर्णोंको तथा दूसरीके लिए बायें हाथसे लिखकर इकाई और दहाई आदि अंकोंको दिखलाया। साथ ही उन्होंने भरत आदि पुत्रोंको भी समस्त कलाओंमें निपुण कर दिया। इस प्रकार वे भगवान् सुखसे स्थित हुए।

फिर किसी एक समय नाभिराज प्रजाको साथ लेकर भगवान् ऋषभदेवके पास आये। उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि हे देव! केवल ईखके रससे भूखकी पीड़ा शान्त नहीं होती है अतएव हे स्वामिन्! उक्त पीड़ाको शान्त करनेके लिए दूसरा भी कोई उपाय बतलाइये। इसपर ऋषभदेवने जिस कर्मभूमि व्यवस्थाके नष्ट होनेके पश्चात् अठारह कोड़ाकोड़ि सागरोपम काल बीत चुका था उसकी प्रवृत्तिको बतलाते हुए ग्राम-नगर आदिकी रचना; क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णोंकी व्यवस्था, तथा जीवनके साधनभूत धान्य आदिकी उत्पत्तिका भी उपदेश दिया। उस समय ऋषभदेवने चूँकि युग (सृष्टि)की रचनाका उपदेश किया था, इसीलिए वे 'कृतयुग' अर्थात् युगके प्रवर्तक कहे जाते हैं। इस प्रकार समस्त सृष्टिकी रचनामें उनका बीस लाख पूर्व प्रमाण कुमार-काल बीत चुका था। उस समय इन्द्रादिकोंने एकत्रित होकर आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदाके दिन उन्हें राज्यपट्ट बाँधा था। तब उन्होंने सोमप्रभ नामक क्षत्रियकुमारके लिए राज्याभिषेक करके राज्य-पट्टको बाँधा तथा 'तुम्हारा वंश कुरुवंश हो' यह कहते हुए उसे हस्तिनापुर दिया इसके साथ

१. फ श जज्ञिरे। २. श °रुपवेश्यैकस्या। ३. श °मित्याद्यंकं च। ४. ज अष्टादशकोटीसा°। ५. श राज्यपदं। ६. ज प बबन्धः। ७. फ हस्तिनामपुरं।

नाय राज्यपट्टं[1] बद्ध्वा त्वद्वंशोऽग्रवंशो भवत्विति वाणारसीं [वाराणसीं] दत्तवानित्यादि-राजवंशांश्चकार, हा-मा-धिक्-नीत्या प्रजाः शिक्षयंस्त्रिषष्टिपूर्वाणि राज्यं कुर्वन् स्थितः।

एकदा शक्रस्तद्वैराग्योत्पादनायान्तर्मुहूर्तावशेषायुषं स्वनर्तकीं नीलंजसां तदग्रे नर्तयति स्म। नृत्यरङ्ग[2] एवादृशीभूतायास्तस्या मृतिमवगम्यातिवैराग्यं जगाम। लौकान्तिकसुराः समागत्य देव, समीचीनं कृतमिति बभणुः। स्वामी भरताय अयोध्यापुरम्, बाहुबलिने पौदनपुरमदत्त, वृषभसेनाय [3]पुरिमतालपुरमुद्वृत्त[4]कुमारेभ्यः काश्मीरदेशं दत्त्वा मङ्गलमज्जना-नन्तरं मङ्गलभूषणालंकृतो भूत्वा सुरनिर्मितां सुदर्शनशिबिकामारुह्य भूचरादिततदुद्धरणक्रमेण गत्वा सुरनिर्मितं मण्डपं प्रविश्य षण्मासोपवासप्रत्याख्यानपूर्वकं पूर्वाभिमुखमुपविश्य कच्छादिचतुःसहस्रैः क्षत्रियैः 'नमः सिद्धेभ्यः' इत्युक्त्वा पञ्चमुष्टिभिः स्वकुन्तलानुत्पाट्य[5] चैत्रकृष्णनवम्यां निर्ग्रन्थो भूत्वा षण्मासान् प्रतिमायोगेन तस्थौ। तन्निष्क्रमणभूः प्रयागाख्यं[6] तीर्थमभूत्। देवाः परिनिष्क्रमणकल्याणपूजां विधाय तत्केशान् क्षीरसमुद्रे निक्षिप्य स्वर्लोकं ययुः। नाथः षण्मासप्रतिमायोगेनास्थात्। मासद्वयानन्तरं कच्छादयो जलं पातुं फलादिकं

ही उन्होंने अकम्पनके लिए राज्यपट्ट बाँधकर 'तुम्हारा वंश उग्रवंश हो' यह कहते हुए उसे वाराणसीको दे दिया। उन्होंने 'हा-मा और धिक्'की नीतिसे प्रजाको शिक्षा देते हुए तिरेसठ लाख पूर्व तक राज्य किया।

एक समय इन्द्रने भगवान्को विरक्त करनेके लिए अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष आयुवाली अपनी नीलंजसा नामकी नर्तकीको उनके आगे नृत्य करनेके लिए नियुक्त किया। वह नृत्य करते करते रंगभूमिमें ही अदृश्य हो गई। इस प्रकार उसके मरणको जानकर वे भगवान् अतिशय विरक्त हुए। उस समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनके वैराग्यकी प्रशंसा करते हुए कहा कि हे देव ! आपने यह बहुत ही उत्तम कार्य किया है। तब ऋषभदेवने भरतके लिए अयोध्यापुर, बाहु-बलीके लिए पौदनपुर, वृषभसेनके लिए पुरिमतालपुर और शेष कुमारोंके लिए काश्मीर देश दिया। फिर वे मंगलस्नानके पश्चात् मंगलभूषणोंसे अलंकृत होकर देवोंके द्वारा रची गई सुदर्शन नामकी पालकीपर आरूढ हुए। उस पालकीको यथाक्रमसे भूमिगोचरी आदि (विद्याधर और देव) ले गये। इस प्रकार जाकर वे भगवान् देवनिर्मित मण्डपके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ वे पूर्वाभिमुख स्थित होकर व छह महिनेके उपवासका नियम लेकर चैत्र कृष्णा नवमीके दिन 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहते हुए निर्ग्रन्थ (समस्त परिग्रहसे रहित दिगम्बर) हो गये— उन्होंने दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके साथ कच्छादिक अन्य चार हजार क्षत्रियोंने भी जिनदीक्षा ले ली। दीक्षा लेते समय उन्होंने पाँच मुष्टियोंसे अपने बालोंका लोच किया व प्रतिमायोगसे स्थित हो गये। इस प्रकार वे छह महीने तक प्रतिमायोगसे स्थित रहे। उनका वह दीक्षास्थान 'प्रयाग' तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस समय समस्त देवोंने आकर उनके दीक्षाकल्याणककी पूजा की। पश्चात् वे सब देव उनके बालोंको क्षीरसमुद्रमें प्रवाहित करके स्वर्गलोकको वापिस चले गये। भगवान् तो छह महिने तक बराबर प्रतिमायोगसे स्थित रहे। किन्तु कच्छादिक राजा दो महिनेके पश्चात् प्यास

---

१. श पट्टं। २. श नृत्य एव रंग। ३. श पुरिमसार°। ४. ज °मुद्वृत फ °मुद्घृत° ब मुद्वृत°। ५. ब सुकुंतलान् उत्पाटय श स्वकुलंतनुत्पाटय। ६. ब –प्रतिपाठोऽयम्। श प्र गाख्यं।

खादितुं लग्नाः। वनदेवताभिर्निवारितास्ततो भौतिकादिनानावेषधारिणो जज्ञिरे।

ततः कियद्दिनेषु कच्छ-महाकच्छात्मजौ नमि-विनमी तत्पादयोर्लग्नौ 'नाथावाभ्यां कमपि देशं देहि' इति। तदा तदुपसर्गनिवारणार्थमागत्य धरणेन्द्रस्तयोर्बभाण—नाथो युवाभ्यां विजयार्धराज्यं दापितवान्, आगच्छतं[१] मया तत्रेति तत्र नीत्वा तौ राजानौ चकार इति। स्वामी प्रतिज्ञावसाने हस्तावुद्धृत्य यं नगरादिकं चर्यार्थं प्रविशति तत्पतयः कन्यादिकं ददति स्म, न च विधिना ग्रासम्। भरतराजोऽपि गत्वा तत्पादयोः पपात बभाण च— स्वामिन्, किमित्येवं तिष्ठसि स्वपुरमागत्य पूर्ववद्राज्यं कुरु। तदा तन्मौनमालोक्य भरतोऽपि विषण्णचित्तः स्वपुरमितः। नाथः षण्मासालाभे सति वैशाखशुक्लद्वितीयायाम् अपराह्णे[२] हस्तिनापुर[३]-बहिरुद्याने प्रतिमायोगेन स्थितः। तद्रात्रिपश्चिमयामे सोमप्रभभ्राता श्रेयान् कल्पतरुस्य-गृहप्रवेशादिनानाशुभस्वप्नानपश्यत्। सोमप्रभाय निरूपिते सोऽब्रोचत्-कोऽपि महात्मा ते गृहं प्रविश्यति[४]। ततस्तृतीयायां मध्याह्ने जनाश्चर्यमुत्पादयन् चर्यार्थं राजभवनसंमुखमागच्छन्तं विलोक्य सिद्धार्थद्वारपालकः सोमप्रभायाकथयत्'स्वामी आगच्छन्नास्ते'[५] इति, श्रुत्वा सोमप्रभ-श्रेयांसौ संमुखमागतौ। तं वीक्ष्य पूर्वभवस्मरणवशेन तन्मार्गं परिज्ञाय श्रेयान् स्थापयामास।

और भूखसे पीड़ित होकर जल पीने और फल आदिके खानेमें संलग्न हो गये। यह देखकर वन-देवताओंने उन्हें दिगम्बर वेषमें स्थित रहकर उसके प्रतिकूल आचरण (फलादिभक्षण) करनेसे रोक दिया। तब वे भौतिक आदि अनेक वेषोंके धारक हो गये।

तत्पश्चात् कुछ दिनोंमें कच्छ और महाकच्छके पुत्र नमि और विनमिने आकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम करते हुए प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! हम दोनोंको कोई भी देश प्रदान कीजिए। तब उनके इस उपसर्गको दूर करनेके लिए वहाँ धरणेन्द्र आया। उसने उन दोनों कुमारोंसे कहा कि स्वामीने तुम दोनोंके लिए विजयार्धका राज्य दिया है, तुम मेरे साथ वहाँ चलो। इस प्रकार उन दोनोंको वहाँ ले जाकर उसने उन्हें राजा बना दिया। प्रतिज्ञाके अन्तमें भगवान् हाथोंको उठाकर आहारके लिए जिस नगर आदिमें प्रविष्ट होते उनके अधिपति उन्हें कन्या आदि देनेको उद्यत होते, परन्तु विधिपूर्वक भोजन कोई नहीं देता था। राजा भरत भी गया और उनके चरणोंमें गिरकर बोला कि हे स्वामिन्! आप इस प्रकारसे क्यों स्थित हैं, अपने नगरमें आकर पहिलेके समान राज्य कीजिए। परन्तु जब भगवान्‌ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब उनके मौनको देखकर उसे बहुत खेद हुआ। अन्तमें वह अपने नगरमें वापिस चला गया। इस प्रकार वे भगवान् आहारके लिए छह महिने तक घूमे। परन्तु उन्हें विधिपूर्वक वह प्राप्त नहीं हुआ। तत्पश्चात् वे वैशाख शुक्ला द्वितीयाके दिन अपराह्ण कालमें हस्तिनापुर नगरके बाहरी उद्यानमें प्रतिमायोगसे स्थित हुए। उसी दिन रात्रिके पिछले प्रहरमें सोमप्रभ राजाके भाई श्रेयांसने अपने घरमें कल्पवृक्षके प्रवेश आदि रूप अनेक शुभ स्वप्न देखे। तत्पश्चात् उसने इन स्वप्नोंका वृत्तान्त सोमप्रभसे कहा। उत्तरमें सोमप्रभने कहा कि तुम्हारे घरमें कोई महात्मा प्रवेश करेगा। पश्चात् तृतीयाके दिन मध्याह्न कालमें वे भगवान् लोगोंको आश्चर्यान्वित करते हुए आहारके लिए राजभवनके सम्मुख आये। उन्हें देखकर सिद्धार्थ द्वारपालने सोमप्रभसे कहा कि हे राजन्! ऋषभदेव स्वामी राजभवनकी ओर आ रहे हैं। यह सुनकर सोमप्रभ और श्रेयांस दोनों भाई भगवान्‌के संमुख आये। उन्हें देखते ही श्रेयांसको

१. श आगच्छंतं। २ फ अपराह्ने। ३. फ हस्तिनागपुर। ४. ब प्रवेश्यति। ५. श संमुखमास्ते।

ततो नवविधपुण्य-सप्तगुणयुक्तो भूत्वा [1]पुरुपरमेश्वरायाहारदानमदत्त । नाथोऽञ्जलित्रयमिक्षुरसं गृहीत्वाक्षयदानमभणत्, तदा पञ्चाश्चर्याणि जातानि। सा तृतीया अक्षयतृतीया जाता। श्रीवृषभनाथः श्रेयसा चर्यां कारित इति भरतः श्रुत्वा संतोषेण श्रेयसः समीपं जगाम । ताभ्यां पुरं राजभवनं च प्रवेशितः[2] सिंहासने उपवेशितः । तदनु भरतोऽप्राक्षीत् कथं त्वया स्वामि-नश्चित्तं विबुद्धम् । श्रेयानाह— अतः पूर्वमष्टमभवे स्वामी वज्रजङ्घो नाम राजाभूदहं तदा तस्य श्रीमती नाम देवी । तदावाभ्यां सर्पसरोवरतटे चारणयुगलाय दानं दत्तम् । तत्फलेन स राजा भोगभूमिजः, श्रीधरदेवः, सुविधिनरेन्द्रोऽच्युतो वज्रनाभिश्चक्री, सर्वार्थसिद्धिजः, इदानीं वृषभनाथोऽजनि । श्रीमती आर्या, स्वयंप्रभदेवः, केशवः[3], प्रतीन्द्रः धनदेवः, सर्वार्थ-सिद्धिजः, इदानीमहं श्रेयान् जातो मुनिस्वरूपदर्शनेन जातिस्मरोऽभूवमिति तन्मार्गं बुद्धवानिति[4] कथिते भरतः संतुष्टः तं प्रशंस्य कतिपयदिनैः स्वपुरमागतः ।

इतो वृषभनाथो वर्षसहस्रं तपश्चरणं चकार । पुरिमतालपुरोद्याने वटवृक्षतले ध्यान-विशेषेण घातिकर्मक्षयेण फाल्गुनकृष्णैकादश्यां कैवल्योऽभूत्। तदा[5] स्फटिकमहीधरोद्भूत-

---

जातिस्मरण हो गया । इससे उसने आहारकी विधिको जानकर भगवान्का पड़िगाहन किया । तत्पश्चात् उसने दाताके सात गुणोंसे संयुक्त होकर आदिनाथ भगवान्को नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया । भगवान्ने तीन अंजुलि प्रमाण ईखके रसको लेकर इस दानको अक्षयदान बतलाया । उस समय श्रेयांसके घरपर पंचाश्चर्य हुए । तबसे वह तृतीया अक्षयतृतीयाके नामसे प्रसिद्ध हुई । श्रेयांसने श्री ऋषभदेवको आहार कराया है, यह जानकर भरतको बहुत सन्तोष हुआ । इससे वह श्रेयांसके समीप गया । तब सोमप्रभ और श्रेयांस दोनोंने उसे नगरमें ले जाकर राजभवनके भीतर प्रविष्ट कराते हुए सिंहासनपर बैठाया । उस समय भरतने श्रेयांससे पूछा कि तुमने भगवान्के अभिप्रायको कैसे जाना ? श्रेयांस बोला— इस भवसे पहिले आठवें भवमें भगवान् वज्रजंघ नामके राजा और मैं उनकी श्रीमती नामकी पत्नी था। उस भवमें हम दोनोंने सर्पसरोवरके किनारे दो चारण मुनियोंके लिए आहार दिया था । उससे उत्पन्न हुए पुण्यके प्रभावसे वह राजा क्रमसे भोगभूमिका आर्य, श्रीधर देव, सुविधि राजा, अच्युत इन्द्र, वज्रनाभि चक्रवर्ती, सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र और इस समय ऋषभनाथ हुआ है । तथा वह श्रीमतीका जीव क्रमसे आर्या, स्वयंप्रभ देव, सुविधिका पुत्र केशव, अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र, धनदेव, सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र और फिर वहाँसे च्युत होकर इस समय मैं श्रेयांस राजा हुआ हूँ। मुझे मुनिके स्वरूपको देखकर जातिस्मरण हो गया था । इससे मैंने श्रीमतीके भवमें दिए गये आहारदानका स्मरण हो जानेसे उसकी विधिको जान लिया था । इस वृत्तान्तको सुनकर भरतको बहुत सन्तोष हुआ । तब उसने श्रेयांसकी बहुत प्रशंसा की । फिर वह कुछ दिनोंमें अपने नगरमें वापिस आ गया ।

यहाँ वृषभनाथने एक हजार वर्ष तक तपश्चरण किया। पश्चात् जब वे पुरिमतालपुरके उद्यानमें वट वृक्षके नीचे ध्यानविशेष (शुक्ल ध्यान) में स्थित थे तब उन्हें घातिया कर्मोंके क्षीण हो जानेसे फाल्गुन कृष्णा एकादशीके दिन केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उस समय वे भगवान् स्फटिक मणिमय

---

१. श गुणभूत्वा गुरुपरमे° । २. फ प्रावेशितः । ३. श 'केशवः' नास्ति । ४. ब तन्मार्गमबुद्धो इति । ५. ज कैवल्यंऽभूत्तदा ब केवलाभूत्तदा ।

कोटयादित्यबिम्बवद्विस्फुरायमानशरीरः[1] पञ्चसहस्रधनुराकाशे स्थितः। धनद आसनकम्पनेन विबुध्यागत्यैकादशभूमिकोपेतं तत्समवसरणं चकार। काश्च ता भूमिका इति[2] उल्लेखमात्रेण कथयामि। क्षितेः[3] पञ्चसहस्रदण्डान्तराले चतुर्दिशासु प्रत्येकं विंशतिसहस्रसोपानयुक्तां सद्वृत्तां हरिनीलशिलां चकार। तस्या उपरि सर्वरत्नमयचतुर्गोपुरयुक्तः शालोऽस्थात्। तदन्तर्भूमौ पञ्च-पञ्चप्रासादान्तरिता जिनालयास्तस्थुः। ततः सुवर्णमयी चतुर्गोपुरयुता वेदी स्थिता। ततोऽन्तर्जलखातिकास्थात्। ततोऽपि तथा हैमी वेदिका, ततोऽन्तर्वल्लीवनम्, ततोऽन्तस्तथा तपनीयशालस्ततोऽन्तरुपवनम्, ततोऽन्तः सुवर्णमयी वेदी, ततोऽन्तर्ध्वजास्ततोऽन्तो रजतमयशालस्ततोऽन्तःसुरद्रुमास्ततोऽन्तर्हैमी वेदी ततोऽन्तर्भवनानि, ततोऽन्तर्विहायःस्फाटिकस्य शालः, ततोऽन्तर्द्वादशकोष्ठकाः, ततोऽन्तर्विहायःस्फाटिकवेदी, ततोऽन्तः पीठत्रयम् तत उपरि सिंहासनत्रयम्, तस्योपरि केवली तच्चतुरङ्गुलान्तरेणास्पृशन्नुपविशति, शालं प्रति वेदीं प्रति दिशासु चत्वारि गोपुराणि, तानि प्रत्येकमष्टमङ्गल-नवनिधि-शततोरणै[4]र्युतानि भवन्ति। बाह्यशालस्थगोपुरं सुवर्णमयं ततः षड् रूप्यमयानि। ततो रत्नमिश्रितरूप्यमये[5] द्वे गोपुरे। बाह्यगोपुरत्रये ज्योतिष्का, द्वयोर्यक्षाः[6] द्वयोर्नागाः, द्वयोः कल्पवासिनस्तिष्ठन्ति। बाह्यगोपुरा-

---

पर्वतके ऊपर उदित हुए करोड़ सूर्योंके बिम्बके समान तेजपुंजको धारण करनेवाले शरीरसे संयुक्त होकर पृथिवीसे पाँच हजार धनुष ऊपर जाकर आकाशमें स्थित हुए। उस समय कुबेरका आसन कम्पित हुआ। इससे उसने भगवान्‌के केवलज्ञानकी उत्पत्तिको जानकर ग्यारह भूमियोंसे संयुक्त उनके समवसरणकी रचना की। वे ग्यारह भूमियाँ कौन-सी हैं, इसका यहाँ उल्लेख मात्र किया जाता है। उसने पृथिवीसे पाँच हजार धनुषके अन्तरालमें चारों दिशाओंमें-से प्रत्येक दिशामें बीस हजार सीढ़ियोंसे सहित एक गोल इन्द्रनीलमणिमय शिलाका निर्माण किया। उसके ऊपर चार गोपुर-द्वारोंसे संयुक्त एक सर्वरत्नमय कोट था। उसके मध्यकी भूमिमें पाँच पाँच प्रासादोंसे व्यवहित जिनालय स्थित थे। उसके आगे चार गोपुरद्वारोंसे संयुक्त एक सुवर्णमयी वेदिका थी। उसके आगे जलसे परिपूर्ण खातिका स्थित थी। इसके आगे भी उसी प्रकारकी सुवर्णमय वेदिका, उसके आगे लतावन, उसके आगे एक वैसा ही सुवर्णमय कोट, उसके आगे उपवन, उसके आगे सुवर्णमयी वेदिका, उसके आगे ध्वजायें, उसके आगे चाँदीका कोट, उसके आगे कल्प-वृक्ष, उसके आगे सुवर्णमयी वेदी, उसके आगे भवन, उसके आगे आकाशस्फटिकमणिका कोट, उसके आगे बारह कोठे और उसके आगे आकाशस्फटिकमणिमयी वेदी स्थित थी। इस वेदीके भीतर तीन पीठ व अन्तिम पीठके ऊपर तीन सिंहासन स्थित थे। सिंहासनके ऊपर चार अंगुलके अन्तरालसे उस सिंहासनको न छूते हुए केवली भगवान् विराजमान थे। प्रत्येक शाल और वेदीकी पूर्वादिक दिशाओंमें चार-चार गोपुरद्वार थे। उनमेंसे प्रत्येक गोपुरद्वार आठ मंगलद्रव्यों, नौ निधियों और सौ तोरणोंसे सहित थे। सबसे बाहिरके कोटमें स्थित गोपुरद्वार सुवर्णमय और इससे आगेके छह रजतमय थे। आगेके दो गोपुरद्वार रत्नोंसे मिश्रित चाँदीके थे। बाहिरी तीन गोपुरद्वारोंपर रक्षक स्वरूपसे ज्योतिष्क देव, आगेके दो गोपुरद्वारोंपर यक्ष, आगेके दो गोपुर-द्वारोंपर नागकुमार देव और अन्तिम दो गोपुरद्वारोंपर कल्पवासी देव स्थित रहते हैं। बाह्य

---

१. श °स्फुरायमानपञ्च°। २. ब इत्युक्ते उल्लेख°। ३. श कथयामीक्षते। ४. ज निधिशततोरण°। ५. श मिश्रत°। ६. श ज्योतिकादयो अक्षाः।

दन्तर्मार्गे [1]मानस्तम्भोऽस्थात्। द्वितीय-तृतीयगोपुराभ्यां अन्तर्मार्गे खं स्थितम्। चतुर्थगोपुरादन्तर्मार्गस्य पार्श्वयोर्नृत्यशाले धूपघटाभ्यां युते स्थिते। ततः खम्, ततो यथोक्ते शाले, ततः स्तूपा नव, ततः खमिति। चतुर्दिशास्वेवं ज्ञातव्यमन्यत्सर्वं समवसरणग्रन्थे बोद्धव्यमिति। परमेश्वरस्य चक्रेश्वरी यक्षी[2] गोमुखो यक्षो बभूव।

गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षता गगनगमनमप्राणिवधता[3] भुक्त्यभावता उपसर्गाभावता चतुरास्यता सर्वविद्येश्वरता अच्छायता[4] अपक्ष्मस्पन्दता समप्रसिद्धनखकेशताश्चेति दशघातिक्षयजा अतिशयाः। [5]सर्वार्धमागधीभाषा सर्वजनमैत्री सर्वर्तुकफलदाङ्घ्रिपयुता समा मही तथा रत्नमयी च विहारानुकूलो मारुतः मरुत्कुमाराणां धूल्याद्युपशान्तिनयनं[6] तडित्कुमाराणां गन्धोदकवर्षणं पुरः पृष्ठतश्च पादन्यासे सप्तसप्तकमलकरणं पृथिव्या हर्षः जनमोदनं गगननिर्मलता सुराणां परस्पराह्वानं धर्मचक्रम् अष्टमङ्गलानीति चतुर्दश देवोपनीता अतिशयाः। देहजा दश, घातिक्षयजा दश, देवोपनीता चतुर्दश इति चतुस्त्रिंशदतिशयाः। सिंहासन-छत्रत्रय-

---

गोपुरद्वारके आगे मार्गके मध्यमें मानस्तम्भ स्थित था। दूसरे और तीसरे गोपुरद्वारोंके आगे मार्गके मध्यमें केवल आकाश स्थित था— वहाँ अन्य कुछ नहीं था। चतुर्थ गोपुरद्वारके आगे मार्गके मध्यमें दोनों ओर दो दो धूपघटोंसे संयुक्त दो नृत्यशालाएँ थीं। उनके आगे आकाश, उससे आगे पूर्वोक्त शालोंके समान दो शाल (कोट), आगे नौ स्तूप और फिर आगे केवल आकाश था। यह क्रम चारों दिशाओंमें-से प्रत्येक दिशामें जानना चाहिये। अन्य सब वर्णन समवसरणग्रन्थसे जानना चाहिये। भगवान् आदिनाथके चक्रेश्वरी यक्षी और गोमुख नामका यक्ष था।

१ चार सौ कोशके भीतर सुभिक्षता, २ आकाशमें गमन, ३ प्राणिहिंसाका अभाव, ४ भोजनका अभाव, ५ उपसर्गका अभाव, ६ चार मुखोंका होना, ७ समस्त विद्याओंका आधिपत्य, ८ शरीरकी छायाका अभाव, ९ पलकोंका न झपकना और १० नख व केशोंका समान रहना— उनकी वृद्धि न होना; ये दश अतिशय तीर्थंकर केवलीके घातिया कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होते हैं।

१ सर्व अर्धमागधी भाषा, २ सब जनोंमें मित्रभाव, ३ वृक्षोंका सब ऋतुओंके फलफूलोंसे संयुक्त हो जाना, ४ पृथिवीका सम व रत्नमय होना, ५ विहारके अनुकूल वायुका संचार, ६ वायुकुमार देवोंके द्वारा धूलि और कण्टक आदिका दूर करना, ७ विद्युत्कुमार देवोंके द्वारा गन्धोदककी वर्षा करना, ८ पादनिक्षेप करते समय आगे पीछे सात सात कमलोंका निर्माण करना, ९ पृथिवीका हर्षित होना, १० जनोंका हर्षित होना, ११ आकाशका निर्मल हो जाना, १२ देवोंका एक दूसरेका बुलाना, १३ धर्मचक्र और १४ आठ मंगल द्रव्य; ये चौदह तीर्थंकर केवलीके देवोपनीत अतिशय प्रगट होते हैं। इस प्रकार भगवान् आदिनाथके उस समय दस शारीरिक, दस घातिया कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए और चौदह देवोपनीत; ऐसे चौंतीस अतिशय

---

१. प श अतोऽग्रे 'मानस्तम्भोऽस्थात् द्वितीयतृतीयगोपुराभ्यां अन्तमर्गि' इत्येतावानयं पाठः पुनरपि लिखतोऽस्ति। २. श यक्षा। ३. ब °गमनताऽप्राणिवधता श गमनाप्राणिवधता। ४. ब अछायता श आछायता। ५. श सर्वार्थअर्द्ध°। ६. धूलाद्यूप°।

दुन्दुभि-पुष्पवृष्टि-चामर-प्रभावलय-भाषाशोकाख्याष्टभिः प्रातिहार्यैर्युतो बभूव। देवाः समागत्य समभ्यर्च्य यथास्वमुपविष्टाः। तत्पुरेशवृषभसेनो विभूत्यागत्य संसारभूधरवज्रपातं समभ्यर्च्य स्तुत्वा स्वतनयानन्तसेनाय राज्यं दत्त्वा प्रव्रज्य प्रथमगणधरोऽभूत्।

इतोऽयोध्यायां सामन्तादिवृतो भरत आस्थाने आसितस्त्रिभिः पुरुषैरागत्य विज्ञप्तः 'अनन्तसुन्दरी देवी पुत्रं प्रसूता, आयुधागारे चक्रं समुत्पन्नम्, आदिदेवो ज्ञानातिशयं प्राप्तः' इति। तत्र संतानवृद्धी राज्याभिवृद्धिश्च धर्मजनितेति विचार्य पुरन्दरलीलया वन्दितुं गतः, त्रिलोकेश्वरचूडामणि-विचित्ररत्नरश्मिविधृतेन्द्रचापश्री-श्रीपादद्वयमभ्यर्च्य स्तुत्वा गणधरादीनभिवन्द्य स्वकोष्ठे[1] उपविष्टः। सोमप्रभ-श्रेयांसौ जयाय राज्यं दत्त्वा भरतानुजोऽनन्तवीर्योऽपि प्रव्रज्य गणधरा[2] बभूवुः। ब्राह्मी-सुन्दर्यौ कुमार्यावेव[3] बहुनारीभिर्दीक्षिते आर्याणां मुख्ये जाते। भरतराजो दिव्यध्वनिश्रवणामृतरसास्वादसंतुष्ट आगत्य पुत्रजातकर्म चक्रपूजां च कृतवान्, सुमुहूर्ते विजयप्रयाणभेरीनादपूरिताखिलाशावदनः षडङ्गबलपदघातोत्थधूलीपटल-

---

प्रगट हुए थे। इसके अतिरिक्त वे भगवान् सिंहासन, तीन छत्र, दुन्दुभी, पुष्पवृष्टि, चामर, भामण्डल, दिव्यध्वनि और अशोक वृक्ष; इन आठ प्रातिहार्योंसे सहित हुए थे। उस समय सब प्रकारके देव आये और भगवान्की पूजा करके यथायोग्य स्थानपर बैठ गये। उस समय उस पुर (पुरिमतालपुर) का स्वामी वृषभसेन विभूतिके साथ भगवान् वृषभदेवके समवसरणमें आया। उसने वहाँ संसाररूप पर्वतको नष्ट करनेके लिये वज्रपातके समान उन जिनेन्द्रकी पूजा व स्तुति करके अपने अनन्तसेन नामक पुत्रके लिये राज्य दे दिया और स्वयं दीक्षा ले ली। वह आदिनाथ जिनेन्द्रका प्रथम गणधर हुआ।

इधर भरत अयोध्यापुरीमें सामन्त आदिसे वेष्टित होकर सभाभवनमें बैठा हुआ था। उस समय तीन पुरुषोंने आकर महाराज भरतके लिये क्रमशः 'अनन्त सुन्दरी रानीके पुत्र उत्पन्न हुआ है, आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, तथा आदिनाथ भगवान्को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है' ये तीन शुभ समाचार सुनाये। इसपर भरतने विचार किया कि सन्तानकी वृद्धि और राज्यकी वृद्धि धर्मके प्रभावसे हुई है। इसीलिये वह सर्वप्रथम इन्द्रके समान ठाट-बाटसे जिनेन्द्रकी वंदना करनेके लिये गया। उसने समवसरणमें जाकर तीनों लोकोंके स्वामियोंके—इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्तीके– चूड़ामणिके समान तथा अनेक प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे इन्द्रधनुषकी शोभाको उत्पन्न करनेवाले श्री आदिनाथ जिनेन्द्रके चरणोंकी पूजा और स्तुति की। फिर वह गणधरादिकोंकी वन्दना करके अपने कोठेमें बैठ गया।

राजा सोमप्रभ और श्रेयांस जयके लिये राज्य देकर दीक्षित हो गये। भरतके छोटे भाई अनन्तवीर्यने भी जिनदीक्षा ले ली। ये तीनों भी भगवान् आदिनाथके गणधर हुए। ब्राह्मी और सुन्दरी नामकी दोनों पुत्रियाँ भी कुमारी अवस्थामें ही अन्य बहुत-सी स्त्रियोंके साथ दीक्षित हो गयीं। वे दोनों आर्यिकाओंमें प्रमुख हुईं।

महाराज भरत दिव्यध्वनिके सुननेरूप अमृत-रसके आस्वादनसे सन्तुष्ट होकर अयोध्यामें वापिस आये। उस समय उन्होंने पुत्रजन्मका उत्सव मनाते हुए चक्ररत्नकी पूजा भी की। तत्पश्चात् उन्होंने शुभ मुहूर्तमें दिग्विजयके लिये प्रयाण करते हुए जो भेरीका शब्द कराया उससे

१. फ स्वकोष्ठके। २ फ ब गणधरो। ३. श कुमारार्यावेव।

पटलिताधित्यमण्डलो गत्वा गङ्गातीरे निवेशितशिबिरः स्थितः। स तत्तीरेण गत्वा गङ्गा-सागरसंगमे आवासितः[1]। ततः समुद्राभ्यन्तरावासिमागधद्वीपाधिप-मागधामरसाधनोपायः क इति सचिन्तो यावदास्ते तावत्पश्चिमरात्रियामे स्वप्नं दृष्टवान्। कथम्। रथमारुह्य सागरं प्रविशन् द्वादशयोजनानि गत्वा रथः स्थास्यति, ततस्तदावासं प्रति बाणं विसर्जयेति। प्रातस्तथा कृते स शरं नामाङ्कितमवलोक्य कृताक्षेपः मन्त्रिभिरुपशान्ति नीतः उपायनपुरस्सरमागत्य चक्रिणं दृष्टवान्। तेनापि भृत्यत्वं संप्राप्य प्रेषितः। ततो लवणोदध्युपसमुद्रयोर्मध्यस्थितोपवनेन पश्चिमं गत्वा वैजयन्तगोपुरं प्रविश्य वरतनुद्वीपाधिपं वरतनुं तथैव साधयित्वा ततः पश्चिमं गत्वा सिन्धुसागरसंगमे विमुच्य प्रभासद्वीपाधिपं प्रभासं तथा साधयित्वा ततः सिन्धुतटीमाश्रित्योत्तरं गत्वा विजयार्धस्यानतिदूरे विमुच्य स्थितश्चक्री। कृतकमालविजयार्धौ साधयित्वा सेनापतिः स्वबलं पश्चिमम्लेच्छखण्डं प्रतिस्थाप्य स्वयमश्वरत्नमारुह्य पश्चिमाभिमुखं कृत्वा दण्डरत्नेन तमिस्रगुहाद्वारमाताड्य कशयाश्वं प्रताड्य पश्चिमम्लेच्छखण्डं गतः। इत उद्घाटिते द्वारे ततो महोष्माणो निर्गताः षण्मासैरुपशान्ति गताः[2]। तदनु

समस्त दिङ्मण्डल शब्दायमान हो उठा। तब गमन करती हुई छह प्रकारकी सेनाके पाँवोंके घातसे जो धूलिका पटल उठा था उससे सूर्यमण्डल भी ढक गया था। इस प्रकारसे गमन करते हुए उन भरत महाराजका कटक गंगा नदीके किनारे ठहर गया। पश्चात् वे उस गंगाके किनारेसे गये व जहाँ वह समुद्रमें गिरती है वहाँ पहुँचकर स्थित हो गये। वहाँपर उन्हें समुद्रके भीतर अवस्थित मागध द्वीपके स्वामी मागध देवके जीतनेकी चिन्ता उत्पन्न हुई। वे इसके लिये कुछ उपाय खोज रहे थे। इस बीच रात्रिके पिछले पहरमें उन्होंने स्वप्नमें देखा कि कोई उनसे कह रहा है कि रथपर चढ़कर समुद्रके भीतर प्रवेश करो, वहाँ बारह योजन जानेपर रथ ठहर जावेगा, तब वहाँसे उस मागध देवके निवासस्थानकी ओर बाणको छोड़ो। फिर प्रातःकाल होनेपर महाराज भरत पूर्वोक्त स्वप्नके अनुसार रथमें बैठकर बारह योजन समुद्रके भीतर गये और जहाँ वह अवस्थित हुआ वहींसे उन्होंने बाण छोड़ दिया। उस नामांकित बाणको देखकर मागध देवने क्रोधावेशमें महाराज भरतकी निन्दा की। परन्तु मन्त्रियोंने समझा-बुझाकर उसे शान्त कर दिया। तब वह भेंटके साथ आकर चक्रवर्तीसे मिला। चक्रवर्ती भरतने भी उसे सेवक बनाकर अपने स्थानको वापिस भेज दिया। तत्पश्चात् भरत चक्रवर्ती लवणसमुद्र और उपसमुद्रके मध्यमें स्थित उपवनके सहारे पश्चिमकी ओर जाकर वैजयन्त गोपुरद्वारके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँसे उन्होंने मागध देवके समान वरतनु द्वीपके स्वामी वरतनु देवको वशमें किया। फिर वे पश्चिमकी ओर जाकर सिन्धु नदी और समुद्रके संगमपर पड़ाव डालकर स्थित हुए। यहाँसे उन्होंने प्रभास द्वीपके स्वामी प्रभास देवको भी उसी प्रकारसे सिद्ध किया। तत्पश्चात् वे सिन्धु नदीके सहारे चलकर उत्तरकी ओर गये और विजयार्धके पास पड़ाव डालकर स्थित हुए।

उधर सेनापतिने कृतकमाल और विजयार्ध इन दो देवोंको जीतकर अपनी सेनाको पश्चिम म्लेच्छखण्डकी ओर भेजा और स्वयंने अश्वरत्नपर चढ़कर व उसके मुखको पश्चिमकी ओर करके दण्डरत्नसे तमिस्रगुफाके द्वारको ताड़ित किया। तत्पश्चात् वह शीघ्रतापूर्वक लगामसे घोड़ेको ताड़ित कर पश्चिम म्लेच्छखण्डकी ओर चल दिया। इधर द्वारके खुल जानेपर उससे निकली हुई

---

१. ज आवसितः। २. श गताः।

पश्चिमम्लेच्छखण्डराजानो युद्धे जित्वा सेनापतिना आनीय तस्य दर्शिताः। चक्रिणा तथैव मुक्ताः। गुहाभ्यन्तरेण काकिणीरत्नलिखितचन्द्रार्कप्रकाशेनोत्तरमध्यम्लेच्छखण्डं प्रविश्य चर्मरत्नस्योपरि शिबिरं विमुच्य उपरिच्छत्ररत्नं धृतम्[1]। उभयमपि मिलित्वा कुक्कुटाण्डाकारेण[2] स्थितम्। सेनापतिना सह चिलातावर्तप्रभृतिम्लेच्छराजानो युद्धं कृतवन्तः, नष्ट्वा स्वकुलदेवता-मेघकुमारान् शरणं प्रविष्टाः। तैरागत्य चक्रवर्तिन उपसर्गः कृतः। तद्भेदयितुमशक्ता गत्वा सेनापतिना युद्धवन्तः। तेन सर्वे महा-आहवे निर्जिताः, तेषां राज्यचिह्नानि गृहीत्वा मेघनादः कृतः, ततश्चक्रवर्तिना मेघेश्वर इति जयस्य नाम कृतम्। त्रीण्यप्युत्तराणि म्लेच्छखण्डानि साधयित्वा विद्याधरानपि। तदा नमि विनमी स्वपुत्रीं सुभद्रां[3] दत्त्वा भृत्यौ जातौ। हिमवत्कुमारमपि साधयित्वा वृषभगिरौ नाम[4] निक्षिप्य नाटयमालं[5] साधयित्वा काण्डप्रपातगुहाद्वारमुद्घाटय तस्मान्निर्गत्यार्यखण्डे प्रविष्टः। ततः पूर्वं म्लेच्छखण्डं साधयित्वा कैलासे वृषभजिनं स्तुत्वा षष्टिसहस्राब्दैरयोध्यां प्राप्तः।

पुरप्रवेशे क्रियमाणे चक्रं न प्रविशति। किमिति पृष्टे प्रधानैरुक्तं तव भ्रातरो माद्यापि

भाषण गर्मी छह महीनोंमें शान्त हुई। इस बीचमें सेनापतिने युद्धमें पश्चिम म्लेच्छखण्डके राजाओंको जीत लिया और तब उन्हें लाकर चक्रवर्तीके सामने उपस्थित कर दिया। भरत चक्रवर्तीने उन्हें सेवक बनाकर उसी प्रकारसे छोड़ दिया। फिर उसने काकिणी रत्नके द्वारा लिखे गये चन्द्र और सूर्योंके प्रकाशकी सहायतासे उत्तरके मध्यम म्लेच्छखण्डके भीतर प्रवेश किया। वहाँ उसने समस्त सेनाका डेरा चर्म रत्नके ऊपर डाला और फिर उसके ऊपर छत्र रत्नको धारण किया। इस प्रकार दोनोंके मिलनेपर उसका आकार मुर्गीके अण्डेके समान हो गया। वहाँपर चिलात और आवर्त आदि म्लेच्छ राजाओंने सेनापतिके साथ खूब युद्ध किया। अन्तमें वे रणभूमिसे भाग कर अपने कुलदेवतास्वरूप मेघकुमार देवोंकी शरणमें पहुँचे। तब उक्त देवताओंने आकर चक्रवर्तीकी सेनाके ऊपर बहुत उपसर्ग किया। परन्तु जब वे उस चर्म रत्न और छत्र रत्नके भेदनेमें समर्थ नहीं हुए तब वे सेनापतिके साथ युद्ध करनेमें तत्पर हुए। उसने उन सबको महायुद्धमें जीत लिया। तब उसने उनके राज्यचिह्नोंको छीनकर मेघ जैसा गर्जन किया। इससे चक्रवर्तीने जयकुमारका नाम मेघेश्वर प्रसिद्ध किया। इस प्रकारसे उसने तीनों उत्तर म्लेच्छखण्डोंको जीतकर तत्पश्चात् विजयार्ध पर्वतस्थ विद्याधरोंको भी वशमें कर लिया। तब नमि और विनमि अपनी पुत्री सुभद्राको देकर सेवक हो गये। इसके पश्चात् भरत चक्रवर्तीने हिमवत्कुमार देवको भी जीतकर वृषभगिरि पर्वतके ऊपर अपना नाम लिखा। फिर उसने नाट्यमाल देवको वशमें करके काण्डप्रपात (खण्डप्रपात) गुफाके द्वारको खोला और उसमेंसे निकलकर आर्यखण्डमें आ गया। पश्चात् पूर्व म्लेच्छखण्डको जीतकर वह कैलाश पर्वतके ऊपर गया। वहाँ उसने ऋषभ जिनेन्द्रकी स्तुति की। इस प्रकार दिग्विजय करके वह साठ हजार वर्षोंमें अयोध्या वापिस आया।

महाराज भरत चक्रवर्ती जब नगरके भीतर प्रवेश करने लगे तब उनका चक्ररत्न वहीं रुक गया। भरतके द्वारा इसका कारण पूछे जानेपर मन्त्रियोंने कहा कि आपके भाई आज भी आपकी

१. ब धृत्वा। २. ज फ कुक्कुटांडाकारेण। ३. ब विनमी स्वभाग्नेयाय स्वभद्रां। ४. ब नामं। ५. श नाटयमालां।

सेवां मन्यन्ते इति न प्रविशतीति। श्रुत्वा बहिरावास्य तदन्तिकं राजादेशाः प्रेषिताः। बाहुबलिनं विनान्ये तामवधार्य पितृसमीपे दीक्षिताः। बाहुबलिनोक्तं मम बाणदर्भशय्यायां शयितश्चेत्करुणया किंचिद्दीयते, नान्यथा। ततो युद्धार्थी निर्गत्य स्वदेशसीम्नि स्थितः। इतरोऽपि रुषागतः। अभ्यर्णयोः सैन्ययोः प्रधानैर्दृष्टि-जल-मल्लयुद्धानि कारितौ। बाहुबली युद्धत्रयेऽपि चक्रिणं जित्वा तं प्रणम्य क्षमितव्यं विधाय स्वनन्दनं महाबलिनं तस्य समर्प्य स्वयं भरतेन निवार्यमाणोऽपि कैलासे वृषभसमीपं गत्वा दीक्षितः। कतिपयदिनैः सकलागमं परिज्ञायैकविहारी जातोऽटव्यां प्रतिमायोगे स्थितः। वल्ली वल्मीकादिभिर्वेष्टितं तं वीक्ष्य वल्यादिकं विद्याधर्योऽपसारितवन्त्यस्तद्योगसंवत्सरावसाने भरतो वृषभजिनसमवसृतिं गच्छन्नद्राक्षीज्जिनं नत्वा पृष्टवान् 'बाहुबलिमुनेः केवलं किमिति नोत्पद्यते' इति। जिन आह—'अहो, त्यक्तायामपि चक्रिणोऽवनौ तिष्ठामीति तन्मनसो मनाग् मानकषायो न गच्छतीति केवलं नोत्पद्यते। श्रुत्वा चक्री तत्र जगाम, तत्पादयोर्लग्नोऽनेकविनयालापैस्तत्कषायमपसारयांचकार। ततस्तदैव स केवली बभूव स्वयोग्यसमवसरणादिविभूतिभाक्।

सेवाको स्वीकार नहीं करते हैं, इसीलिये यह चक्ररत्न नगरके भीतर प्रविष्ट नहीं हो रहा है। यह सुनकर भरत चक्रवर्तीने सेनाको नगरके बाहिर ठहरा दिया और भाइयोंके समीपमें दूतोंको भेज दिया। तब बाहुबलीको छोड़कर शेष भाइयोंने भरतकी आज्ञाके विषयमें विचार करके पिता (आदिनाथ भगवान्) के समीपमें दीक्षा धारण कर ली। परन्तु बाहुबलीने दूतसे कह दिया कि यदि भरत मेरे बाणोंरूप दर्भों (कुशों-कासों) की शय्यापर सोता है तो मैं दयासे कुछ दे सकता हूँ, अन्यथा नहीं। तत्पश्चात् वह युद्धकी अभिलाषासे निकल कर अपने देशकी सीमापर स्थित हो गया। उधर भरत भी बाहुबलके उत्तरसे क्रोधको प्राप्त होकर युद्ध करनेके लिये आ गया। इस प्रकार दोनों सेनाओंके सम्मुख होनेपर मन्त्रियोंने उन दोनोंके बीचमें दृष्टियुद्ध, जल युद्ध और मल्लयुद्ध इस प्रकारके युद्धोंको निर्धारित किया। सो बाहुबलीने इन तीनों ही युद्धोंमें चक्रवर्ती भरतको पराजित कर दिया। फिर भी उसने भरतको नमस्कार करके उससे क्षमा करायी। इस घटनासे बाहुबलीको वैराग्य हो चुका था। इससे उसने अपने पुत्र महाबलीको भरतके आधीन करके स्वयं उसके द्वारा रोके जानेपर भी कैलास पर्वतके ऊपर जाकर ऋषभ जिनेन्द्रके समीपमें दीक्षा ग्रहण कर ली। वह कुछ ही दिनोंमें समस्त आगममें पारंगत होकर एकविहारी हो गया। वह किसी वनमें जब प्रतिमायोगसे स्थित हुआ तब उसका शरीर बेलों और बांबियोंसे घिर गया। उसकी इस अवस्थाको देखकर कभी-कभी विद्याधरियाँ उन बेलों आदिको हटा दिया करती थीं। इस प्रकारसे पूरा एक वर्ष बीत गया। अन्तमें जब भरतने ऋषभ जिनेन्द्रके समवसरणमें जाते हुए बाहुबलीको ऐसे कठिन प्रतिमायोगमें स्थित देखा। तब उसने जिनेन्द्रको नमस्कार करके पूछा कि बाहुबली मुनिको अब तक केवलज्ञान क्यों नहीं उत्पन्न हुआ है ? इस प्रश्नको सुनकर जिन भगवान्ने उत्तर दिया कि यद्यपि बाहुबलीने पृथिवीका परित्याग कर दिया है, फिर भी 'मैं भरत चक्रवर्तीकी पृथ्वीपर स्थित हूँ' यह किंचित् मानकषाय उसके मनमें अभी तक बनी हुई है। वह कषाय जब तक नष्ट नहीं होती है तब तक उसे केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। यह सुनकर भरत चक्रवर्ती बाहुबली मुनिके समीप गये और उनके चरणोंमें गिर गये। फिर उन्होंने विनयसे परिपूर्ण सम्भाषणके द्वारा बाहुबलीकी उस कषायको दूर कर दिया। तत्पश्चात् बाहुबली मुनिको उसी

भरतो महाबलिनं पौदनेशं कृत्वायोध्यायामष्टादशकोटिवाजिभिः चतुरशीतिलक्षमातङ्गैस्तत्प्रमाणै रथैः चतुरशीतिकोटिपदातिभिः द्वात्रिंशत्सहस्रमुकुटबद्धैस्तत्प्रमाणाङ्गरक्षक-यक्षनायकैः आर्यखण्डस्थभूभुजां पुत्र्यो द्वात्रिंशत्सहस्रास्तत्प्रमाणा विद्याधरराजपुत्र्यः तत्प्रमाणा म्लेच्छराजसुता इति षण्णवतिसहस्रान्तःपुरेण सार्धं [सार्ध] त्रिकोटिबन्धुभिर्युतस्य सार्धं [सार्ध] त्रिकोटयो धेनवः षष्ट्युत्तरत्रिशतं[1] शरीरवैद्याः [2]कल्याणमित्रामृतगर्भसुधाकल्पसंज्ञकाहारपानकखाद्यस्वाद्यकरा[3] महानसिकास्तत्प्रमाणा एव । सुदर्शनं चक्रं सुनन्दः खड्गो दण्डरत्नं चेमानि त्रीणि तदस्त्रगेहे[4] जातानि । निधयो नव । ते किंनामानः किमाकाराः किंप्रमाणाः[5] किंप्रदा इति चेत्, शकटाकृतयश्चतुरक्षाष्टचक्रका अष्टयोजनोत्सेधा नवयोजनविस्तारा द्वादशयोजनायामाः प्रत्येकं सहस्रयक्षरक्षिता[6]श्चतुर्दशरत्नान्यपि । अभिलषितपुस्तकप्रदः कालनिधिः, स्वर्णादिपञ्चलोहदो महाकालो निधिः, व्रीह्यादिधान्यशुंठ्याद्यौषधद्रव्यप्रदः सुरभिमाल्यादिदश्च[7] पाण्डुकनिधिः, कवचखड्गादिसकलशस्त्रदो माणवको[8] निधिः, भाजनशयनासनवस्तुदो नैसर्पो निधिः, सकलरत्नदः सर्वरत्ननिधिः, सकलवाद्यदः शङ्खनिधिः, समस्तवस्त्रदः पद्मनिधिः, समस्तभूषणदः पिङ्गलनिधिः,

समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिसके प्रभावसे समवसरणादि विभूति भी उन्हें प्राप्त हो गई ।

भरतने महाबलीको पोदनपुरका राजा बनाया । तत्पश्चात् वह अयोध्यामें सुखपूर्वक स्थित हुआ । उसके पास चक्रवर्तीकी विभूतिमें अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, चौरासी करोड़ पदाति, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा, उतने ही अंगरक्षक श्रेष्ठ यक्ष; आर्यखण्डमें स्थित राजाओंकी पुत्रियाँ बत्तीस हजार, इतनी ही विद्याधर राजाओंकी पुत्रियाँ व उतनी ही म्लेच्छ राजाओंकी पुत्रियाँ, इस प्रकार समस्त छयानबै हजार अन्तःपुरकी स्त्रियाँ; साढ़े तीन करोड़ कुटुम्बी जन, साढ़े तीन करोड़ गायें, तीन सौ साठ शरीरशास्त्रके जानकर वैद्य; तथा कल्याणमित्र, अमृतगर्भ और अमृतकल्प नामके आहार, पानक, खाद्य व स्वाद्य इन भोजनविशेषोंको तैयार करनेवाले उतने ही रसोइये थे । उसके चौदह रत्नोंमेंसे सुदर्शन चक्र, सुनन्द खड्ग और दण्ड रत्न ये तीन रत्न उसकी आयुधशालामें उत्पन्न हुए थे । जिनका आकार गाड़ीके समान होता है, जिनके चार अक्ष (धुरी) व आठ पहिये होते हैं; जो आठ योजन ऊँची, नौ योजन विस्तृत व बारह योजन आयत होती हैं, तथा जो प्रत्येक एक हजार यक्षोंसे रक्षित होती हैं; ऐसी नौ निधियाँ थीं । इन नौ निधियोंके साथ उसके चौदह रत्न भी थे । उक्त नौ निधियोंमें, १ कालनिधि अभिलषित पुस्तकोंको देनेवाली, २ महाकालनिधि सुवर्ण आदि पाँच प्रकारके लोह (धातुओं) को देनेवाली, ३ पाण्डुकनिधि व्रीहि आदि धान्यविशेषों, सोंठ आदि औषध द्रव्यों तथा सुगन्धित माला आदिको देनेवाली, ४ माणवकनिधि कवच एवं खड्ग आदि समस्त शस्त्रोंको देनेवाली, ५ नैसर्पनिधि भाजन, शय्या एवं आसनरूप वस्तुओंको देनेवाली, ६ सर्वरत्ननिधि समस्त रत्नोंको देनेवाली, ७ शंखनिधि समस्त बाजोंको देनेवाली, ८ पद्मनिधि समस्त वस्त्रोंको देनेवाली और ९ पिंगलनिधि समस्त आभूषणोंको देनेवाली थी । इन निधियोंके समान जिन

१. ब -प्रतिपाठोऽयम् । श षष्ट्युत्तरशतं । २. ज कल्याणामित्रा° श कल्याणनाम्निता° । ३. श स्वादकरा । ४ प तदत्र गेहे । ५. ज किमाकारः किंप्रमाणः । ६. श यक्षरता° । ७. ज सुरभिमाल्यादिदो ब ब 'सुरभि' इत्यादिपाठो नास्ति । ८. ज श मांणको ।

एते नव निधयः। चर्मच्छत्ररत्ने[1] चूडामण्याख्यं मणिरत्नं चिन्तामण्याख्यं काकिणीरत्नम् एतानि श्रीगृहजानि। अयोध्याभिधं सेनापतिरत्नम् अजितंजयाख्यमश्वरत्नम्, विजयार्धपर्वताभिधं गजरत्नम्, भद्रतुण्डाख्यं स्थपतिरत्नमिमानि रत्नानि स्वपुरजानि। बुद्धिसमुद्राख्यं पुरोहितरत्नं कामवृष्ट्यभिधं गृहपतिरत्नं सुभद्रा स्त्रीरत्नमिमानि विजयार्धजानि। वज्रतुण्डा शक्तिः सिंहाटकः कुन्तः लोहवाहिनी शस्त्री मनोजवः कणयः [पः] भूतमुखं खेटं वज्रकाण्डं धनुः अमोघाख्याः शराः अभेद्यं कवचं द्वादशयोजननादा जनानन्दाख्या द्वादशभेर्यः जयघोषसंज्ञाः पटहा द्वादश गम्भीरावर्ताख्याः शङ्खाश्चतुर्विंशतिः वीराङ्गदौ कटकौ द्वासप्ततिः सहस्र-संख्यानि पुराणि षण्णवतिकोटिग्रामाः पञ्चनवतिसहस्रद्रोणाः चतुरशीतिसहस्राणि पत्त-नानि षोडशसहस्राणि खेटकानि अन्तर्द्वीपाः षट्पञ्चाशत् षोडशसहस्राणि संवाहनानि एक-कोटी स्थाल्यः कुक्षिनिवासाः सप्तशताः अष्टशतकक्षाः नन्दभ्रमणश्चमूनिवासः क्षितिसारसाल-वेष्टितं निवासगृहं वैजयन्ती सिंहद्वारं सर्वतोभद्रम् आस्थानमण्डपो दिक्स्वस्तिकः गिरिकूटं दिगवलोकनगृहं वर्धमानमीक्षणागारं घर्मान्तकं धारागृहं वर्षाकालगृहं गृहकूटं शय्यागृहं पुष्करावती कुबेरकान्तं भाण्डागारं सुवर्णधाराख्यं कोष्ठागारं सुररम्यं वस्त्रगृहं मेघाख्यं मज्जनगृहम् अवतंसो हारः तडित्प्रभे कुण्डले पादुके विषमोचके अनुत्तरं सिंहासनम् अतुला-ख्यानि द्वात्रिंशच्चामराणि गृहसिंहवाहिनी शय्या रविप्रभं छत्रं नभोवलम्बा द्वाचत्वारिंशत्

चौदह रत्नोंकी भी रक्षा वे यक्ष करते थे उनमें-से सुदर्शन चक्र, सुनन्द खड्ग और दण्ड इन तीन रत्नोंका निर्देश ऊपर किया जा चुका है। चर्म, छत्र, चूड़ामणि नामका मणिरत्न और चिन्तामणि नामका काकिणीरत्न, ये चार रत्न श्रीगृहमें उत्पन्न हुआ करते हैं। अयोध्य नामका सेनापतिरत्न अजितंजय नामका अश्वरत्न, विजयार्धपर्वत नामका गजरत्न और भद्रतुण्ड नामका स्थपतिरत्न, ये चार रत्न अपने नगरमें उत्पन्न होते हैं। बुद्धिसमुद्र नामका पुरोहितरत्न, कामवृष्टि नामका गृहपतिरत्न और सुभद्रा नामका स्त्रीरत्न, ये तीन विजयार्ध पर्वतपर उत्पन्न होते हैं। वज्रतुण्डा शक्ति, सिंहाटक भाला, लोहवाहिनी छुरी, मनोजव (मनोवेग) कणप (शस्त्रविशेष), भूतमुख नामका खेट (शस्त्रविशेष), वज्रकाण्ड नामका धनुष, अमोघ नामके बाण, अभेद्य कवच, बारह योजन पर्यन्त शब्दको पहुँचानेवाली जनानन्दा नामकी बारह भेरियाँ, जयघोष नामके बारह पटह (नगाड़ा), गम्भीरावर्त नामके चौबीस शंख, वीरांगद नामके दो कड़े, बहत्तर हजार पुर, छयानबै करोड़ गाँव, पंचानबै हजार द्रोण, चौरासी हजार पत्तन, सोलह हजार खेटक (खेड़े), छप्पन अन्तर्द्वीप, सोलह हजार संवाहन, एक करोड़ थाली, सात सौ कुक्षिनिवास, आठ सौ कक्षायें, नन्दभ्रमण (नन्द्यावर्त) नामका सेनानिवास, क्षितिसार कोटसे घिरा हुआ वैजयन्ती नामका निवास-गृह, सर्वतोभद्र नामका सिंहद्वार, दिक्स्वस्तिक नामका सभामण्डप, गिरिकूट नामका दिगवलोकन- (दिशाओंका दर्शक) गृह, वर्धमान नामका प्रेक्षागृह, गर्मीकी बाधाको नष्ट करनेवाला धारागृह, [वर्षाकालके लिए उपयोगी] गृहकूट नामका वर्षाकालगृह, पुष्करावती (पुष्करावर्त) नामका शय-नागार, कुबेरकान्त नामका भांडागार, सुवर्णधार (वसुधारक) नामका कोष्ठागार (कोठार), सुररम्य वस्त्रगृह, मेघ नामका स्नानगृह, अवतंस नामका हार, बिजली जैसी कान्तिवाले तडित्प्रभ नामके दो कुण्डल, विषमोचक खड़ाऊँ, अनुत्तर सिंहासन, अतुल (अनुपम) नामके बत्तीस चामर,

१. फ निधयः चक्रखड्गदण्डरत्नानि चर्मछत्ररत्ने।

पताका द्वात्रिंशत्सहस्रनाटयशाला तदन्तिकेऽष्टादशसहस्रम्लेच्छराजानः एकलक्षकोटि-हलानि अजितंजयो रथोऽभूदित्यादिनानाविभूत्यालंकृतो भरतः सुखेनास्थात् ।

एकदा [स] सत्पात्राय सुवर्णादि दातुमना बभूव। महर्षयःस्वर्णादिकं न गृह्णन्ति,गृहस्थेषु पात्रपरीक्षार्थं राजाङ्गणं धान्यादिप्ररोहैः पुष्पादिभिश्च संछन्नं कृत्वा त्रिवर्णजान् नरानाह्वाय-यति स्म। तत्रातिजैनास्तत्प्ररोहादीनामुपरि नागताः, बहिरेव स्थिताः। चक्री पप्रच्छ—एतेऽन्तः किमिति[1] न प्रविशन्ति। ततः केनचित्तन्निकटं गत्वोक्तं[2] 'किमिति राजगेहं न प्रविशथ' इति[3]। ऊचुस्ते मार्गशुद्धिर्नास्तीति। श्रुत्वा तेन चक्री पुनर्विज्ञप्तो देवैवं वदन्ति। ततो मार्गशुद्धिं विधायान्तः प्रवेश्य तेषां व्रतदाढर्यं विलोक्य जहर्ष। तदनु 'यूयं रत्नत्रयाराधकाः' इति भणित्वा रत्नत्रयाराधकत्वद्योतकं यज्ञोपवीतं तत्कण्ठे[4] चिक्षेप। 'ब्रह्मा आदिदेवो येषां ते ब्राह्मणाः' इति व्युत्पत्त्या ब्राह्मणान् कृत्वा तेषां ग्रामादिकमदत्त।

एकदा चक्री जिनं पप्रच्छ—ब्राह्मणा अग्रे कीदृशाः स्युः। स्वामी बभाण—शीतल भट्टारकजिनान्तरे जैनद्वेष्या[6] स्युः। श्रुत्वा चक्री स्वप्रतिष्ठां[7] पुनर्नाशयितुमनुचितमिति विषण्णो-

---

गृहसिंहवाहिनी नामकी शय्या, रविप्रभ (सूर्यप्रभ) छत्र, आकाशमें फहरानेवाली बयालीस पताकायें बत्तीस हजार नाट्यशालायें, उसके समीपमें अठारह हजार म्लेच्छ राजा, एक लाख करोड़ हल और अजितंजय नामका रथ था। इस तरह अनेक प्रकारकी विभूतिसे सुशोभित वह भरतचक्रवर्ती सुखसे कालयापन कर रहा था।

एक समय महाराज भरतके मनमें किसी उत्तम पात्रके लिए स्वर्णादिके देनेकी इच्छा हुई। उस समय उन्होंने विचार किया कि महर्षि तो सुवर्णादिको ग्रहण करते नहीं है, अत एव किन्हीं गृहस्थोंको ही उसे देना चाहिए। इस विचारसे उन्होंने उन गृहस्थोंमें से योग्य गृहस्थोंकी परीक्षा करनेके लिए राजांगणको धान्य आदिके अंकुरों और फूलों आदिसे आच्छादित कराकर तीनों वर्णोंके मनुष्योंको बुलाया। तब उनमेंसे जो अतिशय जिनभक्त थे—अहिंसाव्रतका पालन करते थे—वे उन अंकुरों आदिके ऊपरसे नहीं आये, किन्तु बाहिर ही स्थित रहे। तब चक्रवर्तीने पूछा कि ये लोग भीतर प्रवेश क्यों नहीं कर रहे हैं? इसपर किसी राजपुरुषने उनके पास जाकर पूछा कि आप लोग राजभवनके भीतर क्यों नहीं प्रविष्ट हो रहे हैं? इसके उत्तरमें वे बोले कि मार्ग शुद्ध न होनेसे हम लोग भीतर नहीं आ सकते हैं। यह सुनकर उक्त राजकर्मचारीने चक्रवर्तीसे निवेदन किया कि वे लोग मार्ग शुद्ध न होनेसे भवनके भीतर नहीं आ रहे हैं। तब भरतने मार्गको शुद्ध कराकर उन्हें भवनके भीतर प्रविष्ट कराया। इस प्रकार उनके व्रतकी दृढ़ताको देख-कर भरतको बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् उसने 'आप लोग रत्नत्रयके आराधक हैं' यह कहते हुए उनके कण्ठमें रत्नत्रयकी आराधकताका सूचक यज्ञोपवीत डाल दिया। फिर उसने 'ब्रह्मा अर्थात् आदिनाथ जिनेन्द्र जिनके देव हैं वे ब्राह्मण हैं' इस निरुक्तिके अनुसार उन्हें ब्राह्मण बना-कर उनके लिए गाँव आदिको दिया।

एक बार भरत चक्रवर्तीने जिन भगवान्‌से पूछा कि मेरे द्वारा स्थापित ये ब्राह्मण भविष्यमें कैसे होंगे? जिन भगवान् बोले— शीतलनाथ तीर्थंकरके पश्चात् ये जैन धर्मके द्वेषी बन जावेंगे।

---

१. श ब किं न। २. श गत्वोक्तमिति। ३. ब प्रविशतेति। ४. ब तत्कंधे। ५. ब आदिदेवो देवता येषां। ६. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श जिनान्तरे द्वैष्यः। ७. श चक्री प्रतिष्टा।

ऽभूत्। कैलासेऽतीतानागतवर्तमानचतुर्विंशतितीर्थकृज्जिनालयान् मणिसुवर्णमयान् कारयित्वा तत्र नामवर्णोत्सेधयक्षयक्षीलाञ्छनान्विताः प्रतिमाः[2] स्थापितवान्। अयोध्यामागत्य द्वारे द्वारे चतुर्विंशतितीर्थकरप्रतिमाः प्रतिष्ठापितवान्। ता वन्दनमाला[3] जाताः। बाह्यालीदेशे मन्दरस्योपरि पञ्चपरमेष्ठिप्रतिमाः प्रतिष्ठाप्याश्वमनुचटित्वा[4] प्रदक्षिणीकरणे 'जय अरिहंत'[5] इति पुष्पाणि निक्षिपति। स कालेन जनेन खन्तः[6] (?) कृतः। एवं धर्मैकमूर्तिर्भूत्वा सुखेन राज्यं कुर्वन् तस्थौ।

इतो वृषभेश्वरः वृषभसेन १ कुम्भ २ दृढरथ ३ शतधनुः ४ देवशर्म ५ धनदेव[7] ६ नन्दन ७ सोमदत्त ८ सुरदत्त ९ वायुशर्म १० यशोबाहु ११ देवमार्ग १२ देवाग्नि १३ अग्निदेव १४ अग्निगुप्त १५ चित्राग्नि १६ हलधर १७ महोधर १८ महेन्द्र १९ वासुदेव २० वसुंधर २१ अचल २२ मेरुधर २३ मेरुभूति २४ सर्वयशः २५ सर्वयज्ञ २६ सर्वगुप्त २७ सर्वप्रिय २८ सर्वदेव २९ सर्वविजय ३० विजयगुप्त ३१ जयमित्र ३२ विजयी ३३ अपराजित ३४ वसुमित्र ३५ विश्वसेन ३६ सुषेण ३७ सत्यदेव ३८ देवसत्य ३९ सत्यगुप्त ४० सत्यमित्र ४१ शर्मद ४२ विनीत ४३ संवर ४४ मुनिगुप्त ४५ मुनिदत्त ४६ मुनियज्ञ ४७ मुनिदेव ४८ गुप्तयज्ञ ४९ मित्रयज्ञ ५० स्वयंभू ५१ भगदेव ५२ भगदत्त ५३ भगफल्गु ५४ मित्रफल्गु ५५ प्रजापति ५६

इस बातको सुनकर भरत चक्रवर्तीको बहुत खेद हुआ। उसने अपने द्वारा ही प्रतिष्ठित किये हुए उनको नष्ट करना उचित नहीं समझा। उस समय उसने कैलास पर्वतके ऊपर अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालोंके चौबीस तीर्थंकरोंके मणि व सुवर्णमय जिनभवनोंको बनवाकर उनमें इन तीर्थंकरोंके नाम, वर्ण, शरीरकी उँचाई, यक्ष-यक्षी और चिह्नोंसे सहित प्रतिमाओंको स्थापित कराया। फिर उसने अयोध्यामें आकर प्रत्येक द्वारपर चौबीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओंको प्रतिष्ठित कराया। वे सब प्रतिमायें वन्दनमाला बन गईं थीं। इसके साथ ही उसने बाह्य वीथी-प्रदेशमें मन्दरके ऊपर पाँचों परमेष्ठियोंकी प्रतिमाओंको प्रतिष्ठित कराया। पश्चात् घोड़ेके ऊपर चढ़कर प्रदक्षिणा करते समय उसने 'जय अरहन्त' कहते हुए पुष्पोंकी वर्षा की। तदनुसार उक्त वन्दनमालाकी पद्धति लोगोंमें अब तक प्रचलित है [भरतने वन्दनाके लिये जो वह माला निर्मित करायी थी वह वन्दनमाला कहलायी, जो आज भी पृथिवीपर वन्दनमालाके नामसे रूढ है]। इस प्रकार वह भरत चक्रवर्ती धर्मकी अनुपम मूर्ति होकर सुखसे राज्य करता हुआ स्थित था।

भगवान् वृषभेश्वरने १ वृषभसेन २ कुम्भ ३ दृढरथ ४ शतधनु ५ देवशर्मा ६ धनदेव ७ नन्दन ८ सोमदत्त ९ सुरदत्त १० वायुशर्मा ११ यशोबाहु १२ देवमार्ग १३ देवाग्नि १४ अग्निदेव १५ अग्निगुप्त १६ चित्राग्नि १७ हलधर १८ महीधर १९ महेन्द्र २० वासुदेव २१ वसुंधर २२ अचल २३ मेरुधर २४ मेरुभूति २५ सर्वयश २६ सर्वयज्ञ २७ सर्वगुप्त २८ सर्वप्रिय २९ सर्वदेव ३० सर्वविजय ३१ विजयगुप्त ३२ जयमित्र ३३ विजयी ३४ अपराजित ३५ वसुमित्र ३६ विश्वसेन ३७ सुषेण ३८ सत्यदेव ३९ देवसत्य ४० सत्यगुप्त ४१ सत्यमित्र ४२ शर्मद ४३ विनीत ४४ संवर ४५ मुनिगुप्त ४६ मुनिदत्त ४७ मुनियज्ञ ४८ मुनिदेव ४९ गुप्तयज्ञ ५० मित्रयज्ञ ५१ स्वयंभू

---

१. श 'यक्ष' नास्ति। २. श अतोऽग्रेऽग्रिम 'प्रतिमाः' पदपर्यन्तः पाठः स्खलितो जातः। ३. फ तावद्वन्दनमा। ४. ब °प्याश्वान् चटित्वा। ५. ब अरहंत। ६. श जनेर्नरवंतः ब जनेन रेवंतः। ७. ब देवशर्मः धनदेवः श देवसर्म्म धनदेवः।

सर्वसह[1] ५७ वरुण ५८ धनपाल ५९ मेघवाहन ६० तेजोराशि ६१ महावीर ६२ महारथ ६३ विशाल ६४ महोज्ज्वल[2] ६५ सुविशाल ६६ वज्र ६७ वज्रशाल ६८ चन्द्रचूड ६९ मेघेश्वर ७० महारथ[3] ७१ कच्छ ७२ महाकच्छ ७३ नमि ७४ विनमि[4] ७५ बल ७६ अतिबल ७७ वज्रबल ७८ नन्दि ७९ महाभोग ८० नन्दिमित्र ८१ महानुभाव ८२ कामदेव ८३ अनुपमाख्यै ८४ श्चतुरशीति-गणधरैः, सार्धसप्तशताधिकचतुःसहस्रपूर्वधरैः, सार्धशताधिकचतुःसहस्रैः शिष्यकैः[5], नव-सहस्रावधिज्ञानिभिः, विंशतिसहस्रकेवलिभिः, विंशतिसहस्र-षट्शताधिकैर्वैक्रियिकर्द्धिप्राप्तैः, सार्धसप्तशताधिकद्वादशसहस्रविपुलमतिभिः, तावद्भिरेव वादिभिः, सार्धत्रिलक्षार्यिकाभिः, त्रिलक्षश्रावकैः, पञ्चलक्षश्राविकाभिः, असंख्यातदेव-देवीभिः, बहुकोटितिर्यग्भिश्च सहस्रवर्ष-शून्यैकलक्षपूर्वाणां विहृत्य कैलाशे योगनिरोधं कर्तुमारब्धवान् ।

इतश्चक्री स्वप्ने मेरुं सिद्धशिलापर्यन्तं प्रवृद्धं ददर्शान्येऽपि तत्कुमारा अर्ककीर्त्यादयः सूर्यादिकमुपरि गच्छन्तं लुलोकिरे । प्रातः पृष्टेन पुरोहितेनोक्तम्—एते स्वप्ना आदिजिनमुक्तिं सूचयन्ति । तत् श्रुत्वा भरतादयः कैलाशं गत्वा वृषभं समभ्यर्च्यानम्य तन्मौनं विलोक्य विषण्णा बभूवुः । चतुर्दश दिनानि तत्र पूजादिकं कुर्वन्तः स्थिताः । स्वामी चतुर्दशदिनैर्योग-निरोधं कृत्वा माघकृष्णचतुर्दश्यां निर्वृत्तः । भरतः शोकं कुर्वन् वृषभसेनादिभिः संबोधितः

भग ५२ भगदेव ५३ भगदत्त ५४ फल्गु ५५ मित्रफल्गु ५६ प्रजापति ५७ सर्वसह ५८ वरुण ५९ धनपाल ६० मेघवाहन ६१ तेजोराशि ६२ महावीर ६३ महारथ ६४ विशाल ६५ महोज्ज्वल ६६ सुविशाल ६७ वज्र ६८ वज्रशाल ६९ चन्द्रचूड ७० मेघेश्वर ७१ महारथ ७२ कच्छ ७३ महाकच्छ ७४ नमि ७५ विनमि ७६ बल ७७ अतिबल ७८ वज्रबल ७९ नन्दी ८० महा-भोग ८१ नन्दिमित्र ८२ महानुभाव ८३ कामदेव और ८४ अनुपम नामके चौरासी गणधरों, चार हजार साढ़े सात सौ (४७५०) पूर्वधरों, चार हजार डेढ़ सौ (४१५०) शिक्षकों, नौ हजार (९०००) अवधिज्ञानियों, बीस हजार (२००००) केवलियों, बीस हजार छह सौ (२०६००) विक्रियाऋद्धिधारकों, बारह हजार साढ़े सात सौ (१२७५०) विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानियों, उतने (१२७५०) ही वादियों, साढ़े तीन लाख (३५००००) आर्यिकाओं, तीन लाख (३०००००) श्रावकों, पाँच लाख (५०००००) श्राविकाओं, असंख्यात देव-देवियों और बहुत करोड़ तिर्यञ्चोंके साथ एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक विहार करके कैलाश पर्वतके ऊपर योगनिरोध करना प्रारम्भ किया ।

इधर चक्रवर्ती भरतने स्वप्नमें मेरुको सिद्धशिला पर्यन्त बढ़ते हुए देखा तथा अन्य अर्क-कीर्ति आदि उसके पुत्रोंने भी सूर्यादिको ऊपर जाते हुए देखा । प्रातः कालके होनेपर उसने पुरोहितसे इन स्वप्नोंका फल पूछा । पुरोहितने कहा कि ये स्वप्न आदिनाथ भगवान्की मुक्तिको सूचित करते हैं । यह सुनकर भरतादिक कैलाश पर्वतके ऊपर गये । वहाँ उन सबने वृषभ जिनेन्द्रकी पूजा व नमस्कार करके जब उन्हें मौनपूर्वक स्थित देखा तब वे खेदखिन्न हुए । वे चौदह दिन तक भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा आदि करते हुए वहींपर स्थित रहे । आदिनाथ जिनेन्द्रने चौदह दिनमें योगनिरोध करके माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन मुक्ति प्राप्त की । उस समय भरतको बहुत

१. श सर्वस । २. प श महाज्ज्वल ब महोज्वाल । ३. श महारव । ४. श निमि ७४ विनिमि । ५. ज प शैष्यकैः ब शैक्षकैः ।

परमनिर्वाणकल्याणपूजां कृत्वा स्वपुरमागतः। इन्द्रादयोऽपि स्वर्लोकं गताः। वृषभसेनादयो यथाक्रमेण मोक्षं गताः। ब्राह्मी सुन्दरी अच्युतं गते। अन्ये स्व-स्वपुण्यानुरूपां गतिं ययुः। भरतः पञ्चलक्षनवनवतिसहस्रनवशतनवनवतिपूर्वाणि त्र्यशीतिलक्षनवनवतिसहस्रनवशतनवनवतिपूर्वाङ्गाणि त्र्यशीतिलक्षैकोनचत्वारिंशत्सहस्रवर्षाणि राज्यं कुर्वन् तस्थौ। स्वशिरसि पलितमालोक्य स्वसुतायार्ककीर्तये राज्यं वितीर्य कैलाशे आष्टाह्निकीं पूजां विधाय परिजनं व्याघोट्यास्मद्गुरुरेव गुरुरिति मनसि धृत्वा स्वयमेव बहुभिर्दीक्षितः, तदैव केवली जज्ञे, भव्यपुण्यप्रेरणयैकलक्षपूर्वाणि विहृत्य कैलाशे निर्वृतः। तस्य सप्तसप्ततिलक्षपूर्वाणि कुमारकालः, मण्डलिककालः सहस्रवर्षाणि, विजयकालः षष्टिसहस्रवर्षाणि, राज्यकालः पञ्चलक्षनवनवतिसहस्रनवशतनवनवतिपूर्वाणि त्र्यशीतिलक्षनवनवतिसहस्रनवशतनवनवतिपूर्वाङ्गाणि त्र्यशीतिलक्षैकोनचत्वारिंशत्सहस्रवर्षाणि, संयमकालो लक्षपूर्वाणीति। भरतस्यायुश्चतुरशीतिलक्षपूर्वाणि। देवादयस्तन्निर्वाणपूजां विधाय स्वस्थानं गताः। इति व्याघ्रादयोऽपि दानानुमोदेनैवंविधा जाताः, किं ये स्वयं सत्पात्रदानं कुर्वन्ति ते न स्युरित्यादिपुराणसंक्षेपकथा। विस्तरतो महापुराणे ज्ञातव्यमिति ॥२॥

शोक हुआ। तब उसने वृषभसेनादिकोंसे सम्बोधित होकर उत्कृष्ट निर्वाणकल्याणककी पूजा की। फिर वह अपने नगरमें वापिस आया। इन्द्रादिक भी स्वर्गलोकको चले गये। तत्पश्चात् वृषभसेन गणधर आदि भी यथाक्रमसे मोक्षको प्राप्त हुए। ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों अच्युत कल्पको प्राप्त हुईं। अन्य सब अपने-अपने पुण्यके अनुसार गतिको प्राप्त हुए। भरत चक्रवर्ती पाँच लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्व, तेरासी लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्वांङ्ग और तेरासी लाख उनतालीस हजार वर्ष तक राज्य करता हुआ स्थित रहा। तत्पश्चात् उसने एक समय अपने शिरके ऊपर श्वेत बालको देखकर अपने पुत्र अर्ककीर्तिको राज्य दे दिया और कैलाश पर्वतपर जाकर अष्टाह्निकी पूजा की। फिर उसने कुटुम्बी जनको वापिस करके 'हमारा गुरु (पिता) ही गुरु है' ऐसा मनमें स्थिर किया और स्वयं ही बहुतोंके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वह उसी समय केवली हो गया। वे भरत केवली भव्य जीवोंके पुण्यकी प्रेरणासे एक लाख पूर्व तक विहार करके कैलाश पर्वतसे मुक्तिको प्राप्त हुए। भरत चक्रवर्तीका कुमारकाल सतत्तर लाख पूर्व, मण्डलीककाल एक हजार वर्ष, दिग्विजयकाल साठ हजार वर्ष; राज्यकाल पाँच लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्व, तेरासी लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्वाङ्ग और तेरासी लाख उनतालीस हजार वर्ष; तथा संयमकाल एक लाख पूर्व प्रमाण था। भरतकी आयु चौरासी लाख पूर्व (कुमारकाल ७७०००००पूर्व + मण्डलीककाल १००० वर्ष + दिग्विजयकाल ६०००० वर्ष + राज्यकाल ५९९९९९ पूर्व८३९९९९९ पूर्वाङ्गव ८३३९००० वर्ष + संयमकाल १००००० पूर्व = ८४००००० पूर्व) प्रमाण थी। भरतके मुक्त हो जानेपर देवादिकोंने उनके निर्वाणकी पूजा की। फिर वे अपने स्थानको चले गये। इस प्रकार व्याघ्र आदि भी जब दानकी अनुमोदनासे इस प्रकारकी विभूतिको प्राप्त हुए हैं तब जो स्वयं सत्पात्रदान करते हैं वे क्या ऐसी विभूतिको नहीं प्राप्त होवेंगे ? अवश्य होवेंगे। इस प्रकार यह आदिपुराणकी संक्षिप्त कथा है। विस्तारसे उसे महापुराणसे जानना चाहिए ॥ २ ॥

१. ज लक्षैकान्नचत्वारिं॰ प श लक्षैकोनचत्वारिं॰। २. श प्रेरणायैक॰। ३. ज परतः स्यायुषः श्चतु॰ ब भारतस्य आयुश्चतु॰।

[४४-४५]

किं भाषे दानजातं सुखगुणदफलं लोके च दवतु
र्यन्मोदात्सारसौख्यं दिवि भुवि विमलं पारापतयुगम् ।
सेवित्वा मुक्तिलाभं सुखगुणनिलयं जात्यादिरहितं
तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥३॥

जातः श्रेष्ठी कुबेरो नव-सुनिधिपतिः कान्तोत्तरपदः
पूर्वं श्रीशक्तिसेनः सकृदपि सुगुणः ख्यातः सुददिता ।
किं भाषे दानसौख्यं ददत्गुणवतो जीवस्य विमलं
तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥४॥

अनयोर्वृत्तयोः कथे सुलोचनाचरित्रे जातेति[2] तदतिसंक्षेपेण निगद्यते—अत्रैवार्यखण्डे कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनापुरे राजा जयो. देवी सुलोचना । तौ दम्पती एकदास्थाने आसितौ । तत्र राजा खे गच्छद्विद्याधरयुगं विलोक्य हा प्रभावतीति विजल्पन् मूर्छितोऽभूत्तद्देवी सुलोचनापि पारापतयुगं दृष्ट्वा हा रतिवरेति भणित्वा मूर्च्छिता जाता । शीतक्रियया परिजनेनोन्मूर्छितावन्योन्यमुखमवलोकयन्तौ तस्थतुः । तदा जनकौतुकमभूत् । तदा सुलोचना बभाण—

लोकमें जिस दानसे उत्पन्न हुए पुण्यके फलसे दाताको सुख और अनेक उत्तम गुणोंकी प्राप्ति होती है उस दानके फलके विषयमें भला क्या कहा जाय ? अर्थात् उसका फल वचनके अगोचर है । उस दानकी अनुमोदनासे कबूतर और कबूतरी स्वर्गमें व पृथ्वीपर भी उत्तम सुखको भोगकर अन्तमें उस मोक्षको प्राप्त हुए हैं, जो उत्तम सुख एवं अनेक गुणोंका स्थानभूत तथा जन्म मरणादिके दुखसे रहित है । इसलिए निर्मल गुणोंके समूहसे सहित भव्य जीवोंका कर्तव्य है कि वे उत्तम मुनिके लिए दान देवें ॥३॥

पूर्वमें जिस शक्तिसेनने एक बार ही मुनिके लिए आहारदान दिया था वह उत्तम गुणोंसे सुशोभित एवं नवनिधियोंका स्वामी प्रसिद्ध कुबेरकान्त सेठ हुआ है । दाताके सात गुणोंसे संयुक्त जीवको दानके प्रभावसे जो निर्मल सुख प्राप्त होता है उसके विषयमें क्या कहा जाय ? अर्थात् वह अनुपम सुखको देनेवाला है । इसीलिए निर्मल गुणोंके समूहसे सहित भव्य जीवोंको मुनि आदि उत्तम पात्रके लिए दान अवश्य देना चाहिए ॥४॥

इन दोनों पद्योंकी कथाएँ सुलोचनाचरित्रमें आयी हैं । उन्हें यहाँ अतिशय संक्षेपसे कहा जाता है— इसी आर्य-खण्डमें कुरुजांगल देशके भीतर हस्तिनापुरमें जयकुमार राजा राज्य करता था । रानीका नाम सुलोचना था । एक दिन वे दोनों पति-पत्नी सभाभवनमें बैठे हुए थे । वहाँ जयकुमार आकाशमें जाते हुए विद्याधरयुगलको देखकर 'हा प्रभावती' कहता हुआ मूर्छित हो गया । उधर रानी सुलोचना भी एक कबूतरयुगलको देखकर 'हा रतिवर' यह कहती हुई मूर्छित हो गई । सेवक जनके द्वारा शीतलोपचार करनेपर जब उनकी वह मूर्छा दूर हुई तब वे दोनों एक दूसरेका मुख देखते हुए स्थित रहे । इस घटनाको देखकर दर्शक जनको बहुत आश्चर्य हुआ । पश्चात् सुलोचना बोली कि हे नाथ ! मैं रतिवरका स्मरण करके मूर्छित हो गई

१. प ब ददितुं । २. ज प ब जात इति ।

हे नाथाहं रतिवरं स्मृत्वा मूर्छिताभूवम् , स रतिवरः क्व[1] इति जातोऽस्ति[2]। स अजल्पाहमेव। ततो बभाण राजा— देवि, प्रभावतीं[3] बुध्यसे। देव्यहमेवेत्यब्रूत। तया जयोऽवोचत्— प्रिये, आवयोर्भवानेतेषां कथय। तदाकथयत् सा। कथमित्युक्ते अत्रैव पूर्वविदेहपुष्कलावतीविषये मृणालपुरे राजा सुकेतुः तत्र वैश्यः श्रीदत्तो भार्या विमला, पुत्री रतिकान्ता[4], विमलायाः भ्राता रतिवर्मा, वनिता कनकश्रीः, पुत्रो भवदेवः दीर्घग्रीव इति जनेनोष्ट्रग्रीव इत्युच्यते। स स्वमामं रतिकान्तां याचितवान्। मातुलोऽभणत्— त्वं व्यवसायहीन इति न ददामि। उष्ट्रग्रीवोऽवोचत्— यावदहं द्वीपान्तराद् द्रव्यं समुपार्ज्यागच्छामि तावत् रतिकान्ता कस्यापि न दातव्या। द्वादश वर्षाणि कालावधिं दत्त्वा द्वीपान्तरं गतः। कालावध्यतिक्रमेऽशोकदेवजिनदत्तयोः पुत्राय सुकान्ताय दत्ता। स आगतः सन् तद्वृत्तान्तमवगम्य तन्मारणार्थं भृत्यान् संगृहीतवान्। रात्रौ तद्गृहे वेष्टिते सुकान्तः सवनितः पलायितः।

[5]शोभानगरेशप्रजापालो वनिता देवश्रीः, भृत्यः शक्तिसेनः सहस्रभटः। स राज्ञा उत्कृष्टः

थी। वह रतिवर कहाँपर उत्पन्न हुआ है ? यह सुनकर जयकुमार बोला कि वह रतिवर मैं ही हूँ। तत्पश्चात् राजा जयकुमारने भी पूछा कि हे देवि ! क्या तुम प्रभावतीको जानती हो ! इसके उत्तरमें रानी सुलोचनाने कहा कि वह प्रभावती मैं ही हूँ। तब जयकुमारने उससे कहा कि हे प्रिये ! हम दोनोंके पूर्व भवोंका वृत्तान्त इन सबको सुना दो। तत्पश्चात् उसने उन पूर्व भवोंको इस प्रकारसे कहना प्रारम्भ किया— इसी जम्बूद्वीपमें पूर्व विदेहके अन्तर्गत पुष्कलावती देशमें स्थित मृणालपुरमें सुकेतु राजा राज्य करता था। वहाँ श्रीदत्त नामका एक वैश्य था। उसकी पत्नीका नाम विमला था। इन दोनोंके एक रतिकान्ता नामकी पुत्री थी। विमलाके एक रतिवर्मा नामका भाई था। उसकी पत्नीका नाम कनकश्री था। इन दोनोंके एक भवदेव नामका पुत्र था। उसकी गर्दन लम्बी थी, इसलिए लोग उसको उष्ट्रग्रीव (ऊँट जैसी लम्बी गर्दनवाला) कहा करते थे। उसने अपने मामा (श्रीदत्त) से अपने लिए रतिकान्ताको माँगा। इसपर मामाने कहा कि तुम उद्योगहीन हो—कुछ भी व्यापारादि काम नहीं करते हो—इस कारण मैं तुम्हारे लिए पुत्री नहीं दूँगा। तब उष्ट्रग्रीवने कहा कि मैं धनके उपार्जनके लिए द्वीपान्तरको जाता हूँ। जब तक मैं वहाँसे वापिस नहीं आऊँ तब तक तुम रतिकान्ताको अन्य किसीके लिए नहीं देना। इस प्रकार कहकर और बारह वर्षकी कालमर्यादा करके वह द्वीपान्तरको चला गया। परन्तु जब निर्धारित कालकी मर्यादा समाप्त हो गई और उष्ट्रग्रीव वापिस नहीं आया तब श्रीदत्तने उस रतिकान्ताका विवाह अशोकदेव और जिनदत्ताके पुत्र सुकान्तके साथ कर दिया। इधर जब उष्ट्रग्रीव वापिस आया और उसने इस वृत्तान्तको सुना तब उसने सुकान्तकी हत्या करनेके लिए सेवकोंको इकट्ठा किया। उन सबने जाकर रातमें सुकान्तके घरको घेर लिया। तब सुकान्त किसी प्रकारसे रतिकान्ताके साथ उस घरसे निकलकर भाग गया।

इधर शोभानगरमें प्रजापाल राजा राज्य करता था। रानीका नाम देवश्री था। प्रजापालके एक शक्तिसेन नामका सेवक था जो हजार योद्धाओंके बराबर बलशाली था। राजाने उसे ऊँचा पद

१. अ श 'क'। २. ब ज्ञातोसि। ३. ब प्रभावति। ४. श रभिकान्ता। ५. श शोभानगरेश°।

कृतः प्रजा[1]बाधानिवारणार्थं धन्नगाटव्यां रम्यातटसरस्तटे[2] स्थानान्तरे व्यवस्थापितः। सुकान्तस्तं शरणं प्रविष्टः। उग्रग्रीवः तत्पृष्ठतः प्राप्य तच्छिबिराद् बहिः स्थित्वोक्तवान्— मदीयोऽरिरत्र प्रविष्टो हे शिबिरस्थाः समर्पयध्वम्, नो चेत् यूयं जानीथ। तदा सहस्रभटः सचापो निर्गत्योक्तवान्— अहं सहस्रभटो मां शरणं प्रविष्टं[3] याचसे, किं त्वत्सामर्थ्यम्। सोऽवोचदहं कोटीभटः। सहस्रभटो बभाण— सहस्रभटः कोटिभटेन सह युद्ध्वा मृतः[4] इति ख्यातिं[5] करोमि, संनद्धो भव। उग्रग्रीवस्ततोऽपससार। सुकान्तरतिकान्ते[6] तन्निकटे तत्रैव स्थिते।

एकदा अमितगतिनाम्नो[7] जङ्घाचारणान् स्थापितवान् शक्तिसेनः पञ्चाश्चर्याण्यवाप। तत्सरोऽन्यस्मिन् तटे विमुच्य स्थितो मेरुदत्तश्रेष्ठी तं दानपतिं द्रष्टुमागतः। तेन भोक्तुं प्रार्थितः स बभाण—भोक्ष्ये[8]ऽहं यदि मे भणितं करोषि[9]। ततो ते[ततस्ते]नाभाणि अहं करिष्ये ऽभणत्[भणतु]। श्रेष्ठी बभाण— त्वयैवं भणितव्यमेतद्दानप्रभावेण भाविभवे तव पुत्रो भविष्यामीति। शक्तिसेन उवाच— किमिदं तवोचितम्। स बभाणोचितम्। तदा तेनेदं निदानमकारि। तद्वनिताटवीश्रीस्तयाप्येतद्दानानुमोदजनितपुण्येनैव तद्वनिता[10] भविष्यामीति निदान-

प्रदान कर उत्कृष्ट करते हुए प्रजाकी बाधाको दूर करनेके लिये धन्नगा नामकी अटवी (वन) में रम्यातट सरोवरके किनारे स्थानान्तरित किया था। वह सुकान्त वहाँसे भागकर इसकी शरणमें आया था। उधर उग्रग्रीव भी उसका पीछा करके वहाँ आया और शक्तिसेनके शिबिर (छावनी) के बाहर स्थित हो गया। वह बोला कि हे शिबिरमें स्थित सैनिको ! आपके शिबिरमें मेरा शत्रु प्रविष्ट हुआ है। उसे मुझे समर्पित कर दीजिए। यदि आप उसे मेरे लिए समर्पित नहीं करते हैं तो फिर आप जानें। यह सुनकर सहस्रभट धनुषके साथ बाहर निकला और बोला कि मैं सहस्रभट हूँ, तुममें कितना बल है जो तुम मेरी शरणमें आये हुए अपने शत्रुको माँग रहे हो। इसके उत्तरमें जब उग्रग्रीवने यह कहा कि मैं कोटिभट हूँ तब वह सहस्रभट बोला कि तो फिर तैयार हो जा, मैं 'सहस्रभट कोटिभटके साथ युद्ध करके मर गया [कोटिभट सहस्रभटके साथ युद्ध करके मर गया]' इस प्रसिद्धिको करता हूँ। तत्पश्चात् उग्रग्रीव वहाँसे भाग गया। सुकान्त और रतिकान्ता दोनों वहींपर सहस्रभटके समीपमें स्थित रहे।

एक समय शक्तिसेनने अमितगति नामके जंघाचारण मुनिका पड़िगाहन किया—उन्हें आहार दिया। इससे उसके यहाँ पंचाश्चर्य हुए। उसी सरोवरके दूसरे किनारेपर पड़ाव डालकर एक मेरुदत्त नामका सेठ स्थित था। वह उस प्रशस्त दाताको देखनेके लिये वहाँ आया। तब शक्तिसेनने उससे अपने यहाँ भोजन करनेकी प्रार्थना की। इसपर मेरुदत्तने कहा यदि तुम मेरा कहना करते हो तो मैं तुम्हारे यहाँ भोजन कर लूँगा। उत्तरमें शक्तिसेनने कहा कि मैं आपका कहना करूँगा, कहिये। यह सुनकर सेठ बोला कि तुम यों कहो कि मैं इस दानके प्रभावसे आगामी भवमें तुम्हारा पुत्र होऊँगा। इसपर शक्तिसेन बोला कि क्या तुम्हारे लिए यह उचित है ? मेरुदत्तने उत्तरमें कहा कि हाँ, यह उचित है। तदनुसार तब शक्तिसेनने वैसा निदान कर लिया। उसकी स्त्री जो अटवीश्री थी उसने भी 'इस दानकी अनुमोदनासे उत्पन्न हुए पुण्यके

१. ब राजो दुष्टः कृत प्रजा° श राज उत्कृष्टः कृतः प्रजा°। २. ब धन्नाटव्या रम्यां तटे सरस्तटे। ३. श प्रविष्टः। ४. [कोटिभट सहस्रभटेन सह युद्ध्वा मृतः]। ५. प ख्यातं। ६. श स्वकांत। ७. ब °नाम्ने। ८. श प्रार्थितः भोक्षे। ९. श करोति। १०. ब पुण्येनैतद्वनिता।

मकारि । श्रेष्ठिवनिताधारिण्या[ण्य]प्येतद्दानानुमतजनितपुण्यप्रभावेन मेरुदत्तस्यैव भार्या भवेयमिति निदानमकार्षीत् । इति निदाने सति श्रेष्ठी बुभुजे । कालान्तरे मृत्वा तत्रैव विषये पुण्डरीकिणीपुरे प्रजापालो नरेशः, कनकमाला देवी, तन्नन्दनो लोकपालः । तत्प्रजापालराजस्य कुबेरमित्रनाम-राजश्रेष्ठी बभूव । धारिणी तच्छ्रेष्ठिनी धनवती जाता । स शक्तिसेनस्तयोः सुतः कुबेरकान्तनामाजनि । साटवीश्रीः कुबेरमित्रभगिन्याः कुबेरमित्रायाः समुद्रदत्त-वनितायाः[1] प्रियदत्ताभिधा सुता बभूव । सहस्रभटमरणमाकर्ण्य स उष्ट्रग्रीवः सुकान्तरति-कान्तयोर्गृहं ज्वालयामास । तत्पौरैः सोऽपि तत्रैव विनिक्षिप्तः । दम्पती[2] रतिवररतिवेगाख्यं कुबेरमित्रश्रेष्ठिगृहे कपोतमिथुनमभूत् । उष्ट्रग्रीवः पुण्डरीकिणीसमीपजम्बूग्रामे मार्जारो ऽजनि । तत्पारापतयुगं कुबेरकान्तकुमारस्यातिप्रियं जातम् । तेनैव सार्धं पपाठ ।

एकदा श्रेष्ठिभवनपश्चिमदेशवर्त्युद्यानं सुदर्शनाख्यश्चारणः समागतः । तं कपोतयुगेन सह गत्वा श्रेष्ठिपुत्रो ववन्दे । धर्मश्रुतेरनन्तरमेकपत्नीव्रतमाददौ । तन्न कोऽपि वेत्ति । तद्विवाह-निमित्तं श्रेष्ठी गुणवती-यशोव [म] त्याख्ये राज्ञः कुमार्यौ, प्रियदत्तामन्येषामपि इभ्यानां पञ्चो-त्तरशतकन्याः; एवमष्टोत्तरशतकुमार्यो[3] याचिताः प्राप्ताश्च । विवाहोद्यमे क्रियमाणे कपोताभ्यां

प्रभावसे मैं उसीकी पत्नी होऊँगी' ऐसा निदान कर लिया । सेठकी पत्नी धारिणीने भी 'इस दानकी अनुमोदनासे उत्पन्न पुण्यके प्रभावसे मैं मेरुदत्तकी ही पत्नी होऊँगी' ऐसा निदान कर लिया । तब वैसा निदान कर लेनेपर मेरुदत्त सेठने शक्तिसेनके यहाँ भोजन कर लिया । फिर वह (मेरुदत्त) कुछ समयके पश्चात् मरकर उसी देशके भीतर पुण्डरीकिणी पुरमें प्रजापाल राजाके यहाँ कुबेरमित्र नामका राजसेठ हुआ । उपर्युक्त प्रजापाल राजाकी पत्नीका नाम कनकमाला और पुत्रका नाम लोकपाल था । धारिणी मरकर कुबेरमित्र राजसेठकी धनवती नामकी पत्नी हुई । वह शक्तिसेन मरकर उन दोनोंके कुबेरकान्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । और वह शक्तिसेनकी पत्नी अटवीश्री कुबेरमित्रकी बहिन और समुद्रदत्तकी पत्नी कुबेरमित्राके प्रियदत्ता नामकी पुत्री उत्पन्न हुई । उधर उष्ट्रग्रीवको जैसे ही सहस्रभटके मरनेका समाचार मिला वैसे ही उसने सुकान्त और रतिकान्तके घरको अग्निसे प्रज्वलित करके भस्मसात् कर दिया । यह देखकर उस नगरके निवा-सियोंने उसे भी उसी अग्निमें फेंक दिया । तब सुकान्त और रतिकान्ता दोनों इस प्रकारसे मरकर कुबेरमित्र सेठके घरपर रतिवर और रतिवेगा नामका कबूतरयुगल (कबूतर-कबूतरी) हुआ । और वह उष्ट्रग्रीव मरकर पुण्डरीकिणी पुरके समीपमें स्थित जम्बूगाँवमें बिलाव हुआ । वह कबूतरयुगल कुबेरकान्त कुमारके लिये अतिशय प्यारा हुआ, वह उसीके साथ पढ़ने लगा— कुबेरकान्तके पास सीखने लगा ।

एक समय सेठके भवनमें पिछले भागमें स्थित उद्यानमें एक सुदर्शन नामके चारण मुनि आये । कुबेरकान्तने उस कबूतरयुगलके साथ जाकर उन मुनिराजकी वन्दना की । तत्पश्चात् उसने उनसे धर्मश्रवण करके एकपत्नीव्रतको ग्रहण किया । परन्तु इस बातको कोई जानता नहीं था । इसीलिये कुबेरमित्रने उसके विवाहके लिये गुणवती और यशोमती (यशस्वती) नामकी दो राजकुमारियों, अपनी भानजी (समुद्रदत्तकी पुत्री) प्रियदत्ता और अन्य धनिकोंकी एक सौ पाँच; इस प्रकार एक सौ आठ कन्याओंकी याचना की जो उसे प्राप्त भी हो गईं । तत्पश्चात् वह

---

१. प समुद्रदत्तेभ्यवनि° ब समुद्रदत्तस्यः वनि° श समुद्रदत्तसवनि° । २. श दम्पति । ३. श कुमार्या ।

लिखित्वा दर्शितं कुमारस्यैकपत्नीव्रतमिति। तदनु मातापितृभ्यां पृष्टेनो [नौ]मिति[1] भणितम्। ततः श्रेष्ठी विषण्णोऽभूत्। सर्वासु मध्ये का प्रिया भविष्यतीति परीक्षानिमित्तं तत्पुरबहिःस्थ-शिवंकरोद्यानमध्यवर्तिजगत्पालचक्रेश्वरकारितजिनालये पूजां कारितवान्, तद्दिनेऽष्टोत्तर-शतकुमारीणां गुणवती यशोमती[2]प्रभृतीनामुपवासं कर्तुं च निरूपितवान्। तदा राजादीनां कौतुकोत्पादकमभिषेकादिकं चकार जागरणं च। प्रातरष्टोत्तरशतस्वर्णपात्रेषु पायसं परि-विष्टम्। तस्योपरि सुवर्णवर्तुलेषु भृत्वा घृतं निधायैकस्मिन् वर्तुलके रत्नं निक्षिप्तम्। तत्प्रमाण-भाजनेषु वस्त्राभरणविलेपनादिकं निधाय तानि सर्वाणि भाजनानि यक्षाग्रे निधाय श्रेष्ठी कन्यानामग्रतैकैकपायसभाजनं वस्त्रादिभाजनं गृहीत्वा[3] गच्छथ, सुदर्शनसरस्तटे भुक्त्वा शृङ्गारं कृत्वागच्छथेति। ताः सर्वाः कुबेरकान्तायासक्तास्तन्नाम्ना[4] बुभुजिरे शृङ्गारं चक्रुः, समागत्य स्व-स्वपितृसमीपे उपविविशुः। तदा श्रेष्ठी बभाणैकस्मिन् वर्तुलके रत्नं स्थितम्, तत्कस्या हस्तमागतम्। प्रियदत्तयोक्तम्— माम, मद्धस्तमागतं गृहाण। ततः स श्रेष्ठी बुबुधे इयमस्य प्रिया स्यादिति। देव, मत्पुत्रस्यैकपत्नीव्रतमिति स्वस्य स्वस्य कुमार्यो यस्मै-कस्मै-चिद्दीयन्तामिति। राज्ञोक्तमस्य पुण्यमूलैरेकपत्नीव्रतकारणं नास्तीति नानाप्रकारैर्नि-

उसके विवाहकी तैयारी भी करने लगा। यह देखकर उस कबूतरयुगलने लिखकर दिखलाया कि कुमार कुबेरकान्तके एकपत्नीव्रत है। तत्पश्चात् जब माता-पिताने इस सम्बन्धमें उससे पूछा तब उसने इसका 'हाँ'में उत्तर दिया। इससे सेठको बहुत खेद हुआ। फिर उसने इन एक सौ आठ कन्याओंमें कुबेरकान्तको अतिशय प्रिय कौन होगी, इसकी परीक्षा करनेके लिये उस नगरके बाहरी भागमें शिवंकर उद्यानके भीतर जो जगत्पाल चक्रवर्तीके द्वारा निर्मापित चैत्यालय स्थित था उसमें जाकर पूजा करायी। उसने उस दिन गुणवती और यशोमती आदि उन एक सौ आठ कन्याओंके लिये उपवास करनेके लिये भी कहा। उस समय उसने राजा आदिको आश्चर्यान्वित करनेवाला अभिषेक आदि कराया और जागरण भी कराया। प्रातःकाल हो जानेपर फिर उसने एक सौ आठ सुवर्णपात्रोंमें खीरको परोसा और उसके ऊपर सुवर्णकी कटोरियोंमें भरकर घीको रक्खा। उनमेंसे एक कटोरीमें उसने एक रत्नको रख दिया। तत्पश्चात् कुबेरमित्रने उतने (१०८) ही पात्रोंमें वस्त्र, आभरण और विलेपन आदिको रखकर उन सब पात्रोंको यक्षके आगे रख दिया और उन सब कन्याओंसे कहा कि तुम सब एक एक खीरके पात्र और एक एक वस्त्रादिके पात्रको लेकर जाओ तथा सुदर्शन तालाबके किनारेपर भोजन करके व वस्त्राभरणोंसे विभूषित होकर वापिस आओ। वे सब कुबेरकान्तमें आसक्त थीं, इसलिये उन सबने उसके नामसे भोजन व शृंगार किया। तत्पश्चात् वे वहाँसे वापिस आकर अपने अपने पिताके समीपमें बैठ गईं। उस समय कुबेरमित्र सेठने उनसे पूछा कि एक घीके पात्रमें एक रत्न था, वह किसके हाथमें आया है? यह सुनकर प्रियदत्ताने उत्तर दिया कि हे मामा! वह रत्न मेरे हाथमें आया है। वह यह है, इसे ले लीजिये। तब सेठने जान लिया कि यह कुबेरकान्तकी प्रिया होगी। तत्पश्चात् कुबेरमित्र सेठने राजाको लक्ष्य करके कहा कि हे देव! मेरे पुत्रके एकपत्नीव्रत है, अत एव आप अपनी अपनी पुत्रियोंको

१. श पृष्टेतनोमिति। २. ब यशोवती। ३. ब पायसभाजनं च गृहीत्वा। ४. ज तन्नात्मा प तन्नाम्ना।

वारितोऽपि तद्व्रतं न त्यक्तवान् । तदा कन्या अब्रुवत[1] देवास्मिन् भवेऽयमेव भर्ता[2], नान्य इत्यस्माकं प्रतिज्ञेति अमितमत्यनन्तमत्यार्यिकाभ्यासे प्रियदत्तां विनान्या दीक्षिता । राजादयस्तास्तां वन्दनादिकं कृत्वा पुरं प्रविविशुः । कुबेरकान्तप्रियदत्तयोर्विवाहोऽभूत् । पूर्वभवमुनिदानफलेन तदुद्यानवृक्षाः सर्वेऽपि कल्पवृक्षा बभूवुः, गृहे नव निधानानि च । तन्नाद्भुतम्, धर्मफलेन विभूतय इति । एवं कुबेरकान्तः[3] सुखेन तस्थौ ।

प्रजापालः किंचिद्वैराग्यहेतुमवाप्य लोकपालं स्वपदे निधाय श्रेष्ठिनः समर्प्य दशसहस्रक्षत्रियादिभिरमितगतिचारणान्तिके दीक्षितो मुक्तिमवाप । इतः श्रेष्ठी लोकपालस्य यथेष्टं प्रवर्तितुं न प्रयच्छतीति सर्वेषां यूनां मन्त्रिणां तस्योपरि द्वेषो बभूव । तै राज्ञः पुटपुटिकां या ददाति[4] बकुलमाला विलासिनी सा विशिष्टभूषणादिकं दत्त्वा प्रार्थिता— ईषन्निद्रावस्थायां राजा यथा शृणोति तथा त्वं बभाण 'श्रेष्ठी वयोवृद्धो[5] गुणाधिकस्तं त्वत्सिंहासनाध उपवेशितुमनुचितम्'[6] इति । तया प्रस्तावं ज्ञात्वा तथा भणिते राज्ञा स्वप्नमेव मत्वा प्रातरागतः श्रेष्ठी भणितो यदाहमाह्वयामि तदागच्छेति । ततः कुबेरमित्रः स्वगृह एव स्थितः । इतो राजा

जिस किसी भी कुमारको दे दीजिये । इसपर राजाने कहा कि इस पुण्यमूर्तिके एकपत्नीव्रत लेनेका कोई कारण नहीं है । इसीलिये उसने अनेक प्रकारसे कुबेरकान्तको उक्त एकपत्नीव्रतसे विमुख करनेका प्रयत्न किया, परन्तु उसने उस व्रतको नहीं छोड़ा । तब उन कन्याओंने कहा कि हे देव ! इस भवमें हमारा पति यही है, और दूसरा कोई नहीं; यह हम लोगोंकी प्रतिज्ञा है । ऐसा कहते हुए उनमेंसे एक प्रियदत्ताको छोड़कर शेष सबने अमितमती और अनन्तमती आर्यिकाओंके समीपमें जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली । तब राजा आदि उन सबकी बन्दना आदि करके नगरमें प्रविष्ट हुए । इस प्रकार कुबेरकान्त और प्रियदत्ताका विवाह हो गया । पूर्व भवमें मुनिराजके लिये दिये गये उस दानके प्रभावसे उसके उद्यानके सब ही वृक्ष कल्पवृक्ष हो गये तथा घरमें नौ निधियाँ भी प्रादुर्भूत हुईं । सो यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि, धर्मके फलसे अनेक प्रकारकी विभूतियाँ हुआ ही करती हैं । इस प्रकारसे वह कुबेरकान्त सुखसे स्थित हुआ ।

प्रजापाल राजाने किसी वैराग्यके निमित्तको पाकर लोकपालको अपने पदके ऊपर प्रतिष्ठित कर दिया और उसे सेठको समर्पित करते हुए दस हजार क्षत्रियों (राजाओं) आदिके साथ अमितगति चारण मुनिराजके पासमें दीक्षा ले ली । वह तपश्चरण करके मुक्तिको प्राप्त हुआ । इधर कुबेरमित्र सेठ लोकपालको इच्छानुसार नहीं प्रवर्तने देता था, इसलिए सब युवक मन्त्रियोंका सेठके ऊपर द्वेषभाव हो गया । तब उन सबने जो बकुलमाला नामकी वेश्या राजाके लिए पुटपुटिका (?) दिया करती थी उसको विशिष्ट भूषण आदि देकर कहा कि रातमें जब राजा कुछ निद्रित अवस्थामें हो तब तुम जिस प्रकारसे वह सुन सके उस प्रकारसे यह कहना कि सेठ तुमसे अवस्थामें वृद्ध और गुणोंमें अधिक है, इसलिए उसको अपने सिंहासनके नीचे बैठाना योग्य नहीं है । तदनुसार उसने प्रस्तावको जानकर उसी प्रकारसे कह दिया । राजाने इसे स्वप्न ही माना । प्रातः काल होनेपर जब सेठ आया तब राजाने उससे कहा कि जब मैं आपको बुलाऊँ तब आया कीजिये । तब उसके कथनानुसार सेठ कुबेरमित्र अपने घरपर ही रहने लगा । इधर राजा

---

१. ब अब्रुता । २. श भवेयम भर्त्ता । ३. श कुबेरकान्तः एवं । ४. ब पुटपुटिकायां ददाति । ५. ज वयोवृद्धौ । ६. ब सिंहासना अध उप° ।

नववयोभिः प्रधानैर्यथेष्टमटितुं लग्नः। एकस्यां रात्रौ राज्ञः शिरः प्रणयकलहेन वसुमत्या राज्ञ्या पादेनाहतम्। राजा प्रातरास्थाने मन्त्रिणोऽपृच्छत्— मच्छिरो येन पादेनाहतं तत्पादस्य किं कर्तव्यम्। सर्वैः संभूयोक्तम् 'स पादः छेदनीयः' इति। श्रुत्वा नृपो विषण्णोऽभूत्, श्रेष्ठिनमाहूय तच्छास्ति पृष्टवान्। सोऽब्रोचत्— गुरुपादश्चेत्पूजनीयो वनितापादश्चेन्नूपुरादिनालंकरणीयो बालकपादश्चेत्स बालो मोदकादिना प्रीणनीय इति। श्रुत्वा नृपः संतुतोष। तस्य प्रतिदिनमागन्तुं निरूपितवान्। एवं स श्रेष्ठी राजमान्यः सुखेन स्थितः।

एकस्मिन् दिने श्रेष्ठिनः केशान् विरलयन्ती[3] धनवती पलितमालोक्य श्रेष्ठिनोऽदर्शयत्। स च तद्दर्शनेन वैराग्यं जगाम। कुबेरकान्तं लोकपालस्य समर्प्य बहुभिर्वरधर्मभट्टारकान्ते तपसा निर्वृतः[4]।

इतः कुबेरकान्तप्रियदत्तयोः पुत्राः कुबेरदत्त-कुबेरमित्र-कुबेरदेव-कुबेरप्रिय-कुबेरकन्दाः पञ्च जज्ञिरे। एकस्मिन् दिने कुबेरकान्तश्रेष्ठी [5]तानेवामितगतिजङ्घाचारणान् स्थापितवान्, पञ्चाश्चर्याण्यवाप। तत्पुष्पवृष्ट्यादिकं दृष्ट्वा तौ कपोतावानन्दं कुर्वन्ताववलोक्य कुबेरकान्तोऽब्रूत 'हे रतिवररतिवेगे, एतत्पुण्यसहस्रैकभागो भवद्भ्यां दत्तः' इति। तदा तौ तुष्टौ

नवीन अवस्थावाले मन्त्रियोंके साथ घूमने-फिरनेमें लग गया। एक दिन रातमें वसुमती रानीने प्रणयकलहमें राजाके शिरको पैरसे ताड़ित किया। तब राजाने सबेरे सभागृहमें आकर मन्त्रियोंसे पूछा कि जिस पैरसे मेरे शिरमें ठोकर मारी गई है उस पैरके विषयमें क्या किया जाय? उत्तरमें सब मन्त्रियोंने मिलकर कहा कि उस पैरको छेद डालना चाहिये। यह उत्तर सुनकर राजाको बहुत विषाद हुआ। तत्पश्चात् राजाने सेठ कुबेरमित्रको बुलाकर उससे भी उपर्युक्त अपराधविषयक दण्डके सम्बन्धमें पूछा। सेठने उत्तरमें कहा कि आपके शिरको ताड़ित करनेवाला वह पैर यदि गुरुका है तब तो वह पूजनेके योग्य है, यदि वह पत्नीका है तो नूपुर (पैजन) आदिके द्वारा अलंकृत करनेके योग्य है, और यदि वह बालकका है तो फिर उस बालकको लड्डू आदि देकर प्रसन्न करना चाहिये। सेठके इस उत्तरको सुनकर राजाको बहुत सन्तोष हुआ। अब उसने सेठको प्रतिदिन सभागृहमें आनेके लिए कह दिया। इस प्रकारसे वह कुबेरमित्र सेठ राजासे सम्मानित होकर सुखसे रहने लगा।

एक दिन सेठकी पत्नी धनवतीने उसके बालोंको विखेरते हुए एक श्वेत बालको देखकर उसे सेठको दिखलाया। उसे देखकर सेठ कुबेरमित्रको वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब उसने अपने पुत्र कुबेरकान्तको लोकपालके लिये समर्पित करके वरधर्म भट्टारकके पासमें बहुतोंके साथ दीक्षा धारण कर ली। अन्तमें वह तपश्चरण करके मुक्तिको प्राप्त हुआ।

इधर कुबेरकान्त और प्रियदत्ताके कुबेरदत्त, कुबेरमित्र, कुबेरदेव, कुबेरप्रिय और कुबेरकन्द नामके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। एक दिन कुबेरकान्त सेठने उन्हीं अमितगति नामके जंघाचारण मुनिका आहारार्थ पड़िगाहन किया। उनका निरन्तराय आहार हो जानेपर उसके यहाँ पंचाश्चर्य हुए। उन पुष्पवृष्टि आदिरूप पंचाश्चर्योंको देखकर पूर्वोक्त कबूतरयुगलको बहुत आनन्द हुआ। उनके आनन्दको देखकर कुबेरकान्तने उनसे कहा कि हे रतिवर और रतिवेगे! इस आहारदानसे जो मुझे पुण्य प्राप्त हुआ है उसका हजारवाँ भाग मैं आप दोनोंको देता हूँ।

१. फ राज्ञः प्रणय°। २. ब सर्व्वै भूयोक्तं स। ३. श विरलंती। ४. फ निर्वृत्तः। ५. ज तामेवा°।

तत्पादयोर्लग्नौ । स तयोर्योग्यान्याभरणानि कारयति स्म । एकदा तैर्विभूषितौ[1] विमलजला-नदीतीरे वालुकानामुपरि क्रीडन्तौ स्थितौ । तदा दिव्यविमानेन खे गच्छत् विद्याधरयुगल-मालोक्य श्रेष्ठिदत्तपुण्यफलेन भाविभवे ईदृशौ खेचरौ भविष्याव इति कृतनिदानावेकदा जम्बूग्रामे चैत्यालयाग्रे जननिक्षिप्ताक्षतान् भक्षयन्तौ अतिष्ठताम् । तेन बिडालेन रतिवरो गले धृतः । तं मार्जारं रतिवेगा मस्तके चञ्च्वा हन्ति स्म । तदा स रतिवरं विमुच्य रतिवेगां धृतवान् । सा जनेन मोचिता । तौ कण्ठगतासू वसतिं [2]प्रवेश्यार्यिकास्ताभ्यां पञ्चनमस्कारान् ददुः । रतिवरो मृत्वा तद्विषयविजयार्धदक्षिणश्रेणौ सुसीमानगराधिपादित्यगतिशशि-प्रभयोः हिरण्यवर्मनामा पुत्रोऽभूदतिरूपवान् । रतिवेगा चितनुर्भूत्वा तद्गिरेरुत्तरश्रेण्यां [3]भोगपुरपतिवायुरथस्वयंप्रभयोः प्रभावती सुता जाता सहस्रकुमारीणां ज्यायसी । ते हिरण्य-वर्मप्रभावत्यौ साधितसकलविद्ये प्राप्तयौवने जाते । एकदा वायुरथ उवाच 'पुत्रि, सकलविद्या-धरयुवसु ते को[4] वियच्चरः प्रतिभाति, तेन[5] ते विवाहं करिष्यामि' इति । प्रभावती[6] न्यगदत् यो मां गतियुद्धे जयति सः, नान्यः । तद्भगिनीभिरप्येतस्या वरोऽस्माकं वरो नो चेत्तप इत्युक्तम् ।

इससे सन्तुष्ट होकर वे दोनों उसके पैरोंमें गिर गये । उसने उन दोनोंको योग्य आभरणोंसे विभूषित किया । वे दोनों उन आभरणोंसे विभूषित होकर किसी एक दिन विमलजला नदीके किनारे बालुकाके ऊपर क्रीड़ा कर रहे थे । उस समय वहाँसे एक विद्याधरयुगल (विद्याधर व उसकी पत्नी) दिव्य विमानसे आकाशमें जा रहा था । उसको देखकर कबूतरयुगलने यह निदान किया कि सेठके द्वारा दिये गये पुण्यके प्रसादसे हम दोनों आगेके भवमें इस प्रकारके विद्याधर होंगे । तत्पश्चात् वे दोनों एक दिन जम्बूग्राममें स्थित चैत्यालयके आगे जनोंके द्वारा फेंके गये चावलोंको चुगते हुए स्थित थे । उसी समय उस बिलावने आकर रतिवरका गला पकड़ लिया । तब उस बिलावको देखकर रतिवेगाने अपनी चोंचसे उसके मस्तकके ऊपर प्रहार किया । इससे क्रोधित होकर उस बिलावने रतिवरको छोड़कर उस रतिवेगाको पकड़ लिया । परन्तु लोगोंने देखकर उसे उस बिलावके पंजेसे छुड़ा दिया । इस प्रकारसे मरणासन्न अवस्थामें उन दोनोंको चैत्यालयके भीतर प्रविष्ट कराकर आर्यिकाने पञ्चनमस्कार मन्त्रको दिया । उसके प्रभावसे रतिवर मृत्युके पश्चात् उसी देशमें स्थित विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें सुसीमा नगरके स्वामी आदित्यगति और शशिप्रभाके हिरण्यवर्मा नामका अतिशय रूपवान् पुत्र हुआ । और वह रतिवेगा कबूतरी शरीरको छोड़कर उसी विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें स्थित भोगपुरके राजा वायुरथ और रानी स्वयंप्रभाके प्रभावती नामकी पुत्री उत्पन्न हुई । वह उनकी एक हजार कुमारियोंमें सबसे बड़ी थी । हिरण्यवर्मा और प्रभावती ये दोनों समस्त विद्याओंको सिद्ध करके यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए । एक समय वायुरथ उस प्रभावतीको युवती देखकर बोला कि हे पुत्रि ! समस्त विद्याधर युवकोंमें-से कौन-सा विद्याधर युवक तेरे लिए योग्य प्रतिभासित होता है, उसके साथ मैं तेरा विवाह कर दूँगा । इसके उत्तरमें प्रभावती बोली कि जो मुझे गतियुद्धमें जीत लेगा वह मुझे योग्य प्रतीत होता है, दूसरा नहीं । उसकी बहिनोंने भी कहा कि इसका जो पति होगा वही हम सबका भी पति होगा, और यदि यह सम्भव नहीं हुआ तो हम तपको स्वीकार करेंगी । इसपर

१ फ तौ विंभूपितौ । २. ब -प्रतिपाठोऽयम् । श प्रविश्यार्यिका° । ३. ज प श भोगपतिपुरवायु° । ४. ब युवसु तेपु को । ५ श 'तेन' नास्ति । ६. श प्रभावंती ।

तदा वायुरथः सुराद्रिनिकटे सकलविद्याधरान् मेलितवान् तत्स्वयंवरार्थम्। पाण्डुकवने स्थित्वा मुक्तां रत्नमालां सौमनसवने संस्थित्वा[1] मोचनानन्तरं मेरुं त्रिःपरीत्य यः प्रथमं रत्नमालां गृह्णाति स जयतीति घोषयित्वा प्रभावत्या तदा तस्मिन् गतियुद्धे बहवः खेचरा जिताः। तदनु हिरण्यवर्मणा सा जिता, ततस्तया तस्य माला निक्षिप्ता। जगदाश्चर्यमभूत्। हिरण्यवर्मा प्रभावत्यादिसहस्रकुमारीरवृणीत, जगदाश्चर्यविभूत्या सुखेनातिष्ठत्।

आदित्यगतिस्तस्मै स्वपदं वितीर्य निष्क्रान्तो मुक्तिमितः। हिरण्यवर्माभयश्रेण्यौ साधयित्वा विद्याधराधिपो भूत्वा महाविभूत्या प्रभावत्या समं सुखमन्वभूत्। दानानुमोदजनितपुण्यफलेन प्रभावती सुवर्णवर्मादिकान् पुत्रानलभत। बहुकालं राज्यं कृत्वा कदाचित्पुण्डरीकिण्यां जिनगृहवन्दनार्थं हिरण्यवर्मप्रभावत्यौ गते। तत्पुरदर्शनेनैव जातिस्मरं अजनिष्टाम्। स्वपुरं गत्वा सुवर्णवर्मणे राज्यं दत्त्वा हिरण्यवर्मा गुणधरचारणान्तिके[2] बहुभिर्दीक्षितश्चारणोऽजनि सकलश्रुतधरश्च। प्रभावती बह्वीभिः सुशीलार्जिकाभ्यासे[3] दीक्षिता। एकदा गुणधरमुनिः ससमुदायः शिवंकरोद्यानवनेऽवतीर्णवान्। तत्र पुण्डरीकिण्यां गुणपालो नृपो वनिता कुबेरकान्तश्रेष्ठिपुत्री[4] कुबेरश्रीः[5]। स राजा सपरिजनो वन्दितुं[6] निर्गतो वन्दित्वा

वायुरथने उसके स्वयंवरके लिये सुराद्रि (मेरु) के निकट समस्त विद्याधरोंको आमन्त्रित किया। उसने घोषणा की कि पाण्डुक वनमें स्थित होकर छोड़ी गई रत्नमालाको सौमनस वनमें स्थित होकर जो छोड़नेके पश्चात् मेरुकी तीन प्रदक्षिणा करके उस रत्नमालाको सबसे पहिले ग्रहण कर लेता है वह विजयी होगा। तदनुसार प्रभावतीने उस समय उस गतियुद्धमें बहुत-से विद्याधरोंको पराजित कर दिया। तत्पश्चात् हिरण्यवर्माने उसे इस युद्धमें जीत लिया। तब उसने हिरण्यवर्माके गलेमें वरमाला डाल दी। यह देखकर सब लोगोंको बहुत आश्चर्य हुआ। इस प्रकारसे हिरण्यवर्माने उन प्रभावती आदि एक हजार कुमारिकाओंको वरण कर लिया। फिर वह संसारको आश्चर्यान्वित करनेवाली विभूतिके साथ सुखसे स्थित हुआ।

आदित्यगति उसके लिये राज्य देकर दीक्षित हो गया और मुक्तिको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् हिरण्यवर्मा दोनों ही श्रेणियोंको स्वाधीन करके समस्त विद्याधरोंका स्वामी हो गया। वह महती विभूतिसे संयुक्त होकर प्रभावतीके साथ सुखका अनुभव करने लगा। प्रभावतीने उस दानकी अनुमोदनासे प्राप्त हुए पुण्यके प्रभावसे सुवर्णवर्मा आदि पुत्रोंको प्राप्त किया। इस प्रकार हिरण्यवर्माने बहुत समय तक राज्य किया। किसी समय वह हिरण्यवर्मा और प्रभावती दोनों जिनगृहकी वंदना करनेके लिये पुण्डरीकिणी पुरीको गये। उस पुरीके देखनेसे ही उन दोनोंको जातिस्मरण हो गया। तब वह हिरण्यवर्मा अपने नगरमें वापिस गया और सुवर्णवर्माको राज्य देकर गुणधर नामक चारणमुनिके निकटमें बहुतोंके साथ दीक्षित हो गया। वह चारण ऋद्धिसे संयुक्त होकर समस्त श्रुतका धारक हुआ। उधर प्रभावतीने भी बहुत-सी स्त्रियोंके साथ सुशीला आर्यिकाके समीपमें दीक्षा ले ली। एक दिन गुणधर मुनि संघके साथ शिवंकर उद्यान-वनमें आये। वहाँ पुण्डरीकिणी पुरीमें गुणपाल नामका राजा राज्य करता था। रानीका नाम कुबेरश्री था जो कुबेरकान्त सेठकी पुत्री थी। वह राजा सेवक जनोंके साथ सपरिवार मुनिकी वंदनाके लिये

---

१. श श्रेष्ठी। २. ब वने समं स्थित्वा। २. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श गुणधरचरणांतिके। ३. ब सुशीलार्यिकाभ्यासे। ४. श श्रेष्ठीपुत्री। ५. ज श कुबेरश्री। ६. श 'वन्दितुं' नास्ति।

धर्ममाकर्ण्य हिरण्यवर्ममुने रूपातिशयमालोक्याचार्यमनुप्राक्षीत्[1]--अयं कः किमिति दीक्षितवान्। स निरूपितवान्--कुबेरकान्तं श्रेष्ठिगृहे यः स्थितो रतिवराख्यः कपोतः स मुनिदानानुमोदअर्जितपुण्यफलेन विद्याधरचक्री हिरण्यवर्मायं जातः। इमां पुण्डरीकिणीं विलोक्य जातिस्मरो भूत्वा दीक्षितः इति। श्रुत्वा राजा धर्मफलेऽतिश्रद्धापरोऽजनि, तथान्येऽपि। तदा सा सुशीलार्जिकापि[3] स्वसमूहेन तद्वनैकस्मिन् प्रदेशे स्थिता। तामपि वन्दित्वा राजा पुरं प्रविष्टः।

सा प्रियदत्ता मुनिसमूहं वन्दित्वागत्यार्यिकासमूहमवन्दत। तदा प्रभावती तां ज्ञात्वा पृच्छति स्म प्रियवचनेन हे प्रियदत्ते, सुखेन स्थितासि। प्रियदत्ताभणत्--हे आर्ये, कथं मां जानासि। प्रभावती स्वस्वरूपं प्रतिपाद्य पुनः पृच्छति स्म कुबेरकान्तः श्रेष्ठी कास्ते। प्रियदत्ता कथयति स्म--हे प्रभावति, एकदा मया दिव्यरूपार्जिका चर्यां[4] कारयित्वा पृष्टा--विशिष्टरूपा का त्वम्, तारुण्ये किं दीक्षितासि। सा निरूपयति स्म--विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां गन्धारपुरेशगन्धराजमेघमालयोः सुताहं रतिमाला, तत्रैव मेघपुरेशरतिवर्मणः प्रियाभूवम्। एकदा मद्वल्लभो मयात्र जिनालयान् वन्दितुमागतस्तदा मया ते पतिर्दृष्टः। तदनु मया मत्पतिः पृष्टः कोयमिति।

निकला। वंदना करनेके पश्चात् धर्मश्रवण करके जब उसने हिरण्यवर्मा मुनिके अतिशय सुन्दर रूपको देखा तब आचार्यसे पूछा यह कौन है और किस कारणसे दीक्षित हुआ है ? इसके उत्तरमें आचार्य बोले कि कुबेरकान्त सेठके घरपर जो रतिवर नामका कबूतर था वह मुनिदानकी अनुमोदनासे उत्पन्न हुए पुण्यके फलसे यह विद्याधरोंका चक्रवर्ती हिरण्यवर्मा हुआ है। इसने पुण्डरीकिणी पुरीको देखकर जातिस्मरण हो जानेके कारण दीक्षा ग्रहण कर ली है। इस वृतान्तको सुनकर वह राजा धर्मके फलके विषयमें दृढ़श्रद्धालु हो गया। इसी प्रकार अन्य जनोंकी भी उस धर्मके विषयमें अतिशय श्रद्धा हो गई। उस समय वह सुशीला आर्यिका भी अपने संघके साथ उसी वनके भीतर एक स्थानमें स्थित थी। उसकी भी वंदना करके वह गुणपाल राजा अपने नगरके भीतर प्रविष्ट हुआ।

कुबेरकान्त सेठकी पत्नी प्रियदत्ता भी उस मुनिसंघकी वंदना करनेके लिये गई थी। उसने मुनिसंघकी वंदना करके उस आर्यिकासंघकी भी वंदनाकी। उस समय प्रभावतीने देखकर प्रियवचनोंके द्वारा उससे पूछा कि हे प्रियदत्ता ! तुम सुखसे तो हो। तब प्रियदत्ता बोली कि हे आर्ये ! आप मुझे कैसे जानती हैं ? इसपर प्रभावतीने वह सब पूर्वोक्त वृत्तान्त कह दिया। तत्पश्चात् उसने पूछा कि कुबेरकान्त सेठ कहाँपर हैं ? उत्तरमें प्रियदत्ता बोली--हे प्रभावती ! एक समय मैंने अतिशय दिव्य रूपको धारण करनेवाली एक आर्यिकाको आहार कराकर उनसे पूछा कि ऐसे अनुपम रूपकी धारक तुम कौन हो और इस यौवन अवस्थामें किस कारण दीक्षित हुई हो ? तब वह मेरे प्रश्नके उत्तरमें बोली--विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक गन्धारपुर है। वहाँपर एक गन्धराज नामका राजा राज्य करता है। रानीका नाम मेघमाला है। मैं इन्हीं दोनोंकी पुत्री हूँ। मेरा नाम रतिमाला है। उसी पर्वतके ऊपर स्थित मेघपुरके राजा रतिवर्माके साथ मेरा विवाह हुआ था। एक दिन मेरा पति मेरे साथ यहाँ जिनालयोंकी वंदना करनेके लिये आया था। उस समय मैंने तुम्हारे पति (कुबेरकान्त) को देखा। तत्पश्चात् मैंने अपने पतिसे

---

१. ब °र्यमप्राक्षीत्। २. श कुबेरकान्ति। ३. ब सुशीलार्यिकापि। ४. ब °रूपार्यिकाचर्यां।

रतिवर्मणोक्तं मन्मित्रं कुबेरकान्तश्रेष्ठीति। तदन्वहं तस्यासक्ता जाता। तत्संयोगार्थं जिनपूजानन्तरं वने क्रीडनावसरेऽहं मायया हा नाथ, मां सर्पोऽखाददिति विजल्प्य मूर्च्छया पतिता। तदा स विह्वलो भूत्वा स्वयं निर्विषां कर्तुं लग्नो न चोत्थिताहम्। तदा कुबेरकान्तसमीपमानीयोक्तवान्— मित्रेमां निर्विषां कुरु। तदा कुबेरकान्तो मत्पतिं[1]कांचिन्मूलिकामानेतुं मेरुं प्रस्थापितवान्, स्वयं मामभिमन्त्रयितुं लग्नः। एकान्ते[2]तमेकमवलोक्योक्तं मया— श्रेष्ठिन् न मे[3]सर्पो लग्नः, तवानुरक्ताहम्[4], त्वया मेलनोपायमकरवम्, त्वत्संभोगदानेन मां रक्ष। कुबेरकान्तोऽभणद् भगिनि, षण्ढकोऽहमिति[5] त्वं शीलवती भवेति भणित्वा गतः। आगतेन मत्पतिनाहं स्वपुरं गता। पुनरेकदा पुत्रेण सह रथमारुह्य जिनालयं गच्छन्तीं त्वामलोके[6]। तदा स्वपतिमहमपृच्छमियं केति। सोऽवोचन्मम मित्रवल्लभा प्रियदत्ता। मयोक्तम्— ते सखा नपुंसकः, कथं तस्यापत्यम्। रतिवर्माभणत्तस्यैकपत्नीव्रतमिति वनिताभिर्द्वेषेण तथा षण्ढः भण्यते[7]। तदाहमात्मनिन्दां कृत्वा स्वपुरं गता। एकदा वर्षवर्धनदिनरात्रौ पौरस्य महारागेण प्रवर्तमानेऽहं स्वदुश्चेष्टितं स्मृत्वा विषण्णा स्थिता। भर्त्रा कारणे पृष्टे मया यथावन्निरूपिते सोऽब्रूत— संसारिणां दुःपरिणतिर्भवति,

पूछा कि यह कौन है। इसपर रतिवर्माने कहा कि यह मेरा मित्र कुबेरकान्त सेठ है। तत्पश्चात् मैं उसके विषयमें आसक्त हो गई। फिर उसके साथ मिलापकी अभिलाषासे जिनपूजाके पश्चात् वनमें क्रीड़ाके अवसरपर मैंने कपटपूर्वक पतिसे कहा कि हे नाथ! मुझे सर्पने काट लिया है। यह कहकर मैं मूर्छासे गिर गई। तब मेरा पति व्याकुल होकर स्वयं ही मुझे निर्विष करनेमें उद्यत हुआ। परन्तु मैं नहीं उठी। तब वह मुझे कुबेरकान्तके पास लाकर उससे बोला कि हे मित्र! इसे सर्पके विषसे मुक्त करो। तब कुबेरकान्तने मेरे पतिको किसी जड़ीको लानेके लिये मेरु पर्वतके ऊपर भेजा और स्वयं मेरे ऊपर मन्त्रका प्रयोग करने लगा। जब मैंने उसे एकान्तमें अकेला पाया तब मैंने उससे कहा कि हे सेठ! मुझे सर्पने नहीं काटा है। किन्तु मैं तुम्हारे विषयमें अनुरक्त हुई हूँ। इसीलिये मैंने तुम्हारा संयोग प्राप्त करनेके लिये यह उपाय रचा है। तुम मुझे अपना संभोग देकर मेरी रक्षा करो। इसपर कुबेरकान्त बोला कि हे बहिन! मैं तो नपुंसक हूँ, इसलिये तू शीलवती रह— उसको भंग करनेका विचार मत कर। ऐसा कहकर वह चला गया। इसके पश्चात् जब मेरा पति वापिस आया तब मैं उसके साथ अपने नगरमें वापिस चली गई। तत्पश्चात् एक समय मैंने पुत्रके साथ रथपर चढ़कर जिनालयको जाती हुई तुम्हें देखा। उस समय मैंने पतिसे पूछा कि यह कौन स्त्री है? तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरे मित्रकी पत्नी प्रियदत्ता है। इसपर मैंने कहा कि तुम्हारा मित्र तो नपुंसक है, फिर उसके पुत्र कैसे हो सकता है। यह सुनकर रतिवर्माने कहा कि उसके एकपत्नीव्रत है, इसीलिये स्त्रियाँ उसे द्वेषबुद्धि वश नपुंसक कहा करती हैं। यह सुनकर मैं आत्मनिन्दा करती हुई अपने नगरको गई। एक समय बाढ दिवसकी रातमें पुरवासी जनकी अतिशय रागपूर्ण प्रवृत्तिके होनेपर मुझे अपनी दुष्ट प्रवृत्तिका स्मरण हो आया। इससे मुझे बहुत विषाद हुआ। तब मेरी उस खिन्न अवस्थाको देखकर पतिने इसका कारण पूछा। उस समय मैंने उससे अपने पूर्व वृत्तान्तको ज्योंका-त्यों कह दिया।

१. श कांचिनमूलिका°। २. ब तमेवमवलो°। ३. प श्रेष्ठिन् मे। ४. ब लग्नस्तावरक्ताहं। ५. ज प षंढकोह° ब पंडुकोह°। ६. ब °मलोकये। ७. ज प ब तथा भण्यते।

किमद्भुतम् , संक्लेशं मा कुरु । मयोक्तं प्रातरवश्यं मया तपो गृह्यते । तेनोक्तं किं नष्टम् , ममापि गृह्यते । ततोऽपरदिने पुत्रं राज्ये नियुज्य द्वौ बहुभिर्दीक्षितौ इति तपोहेतुः । तदा श्रेष्ठ्यपवरकान्तः शृण्वन् स्थितो निर्गत्य तां नत्वा स्वसुतं कुबेरप्रियं गुणपालनृपस्य समर्प्य कुबेरदत्तादिचतुर्भिः पुत्रैरन्यैश्च दीक्षितो मुक्तिमगमदिति निरूप्य तां प्रणम्य पुरं प्रविष्टा ।

तदा स मार्जारो मृत्वा तत्र पुरे तलवरनायकभृत्यो विद्युद्वेगनामा भूत्वा स्थितः । स स्ववनितया प्रियदत्तया[१] समं गतायाः किमिति कालक्षेपोऽभूदिति रुष्टः, तया स्वरूपे निरूपिते स जातिस्मरो जज्ञे । तौ स्ववैरिणौ ज्ञात्वा प्रिये, मे तौ दर्शयेति तया तत्र गत्वा तावद्वलोकितवान्[२] दिवा । रात्रावुच्चाय नीत्वा पितृवने एकत्र बन्धयित्वा ज्वलच्चितायाम-चिक्षिपदवदच्च सोऽहं भवदत्तो येन युवां पूर्वं शोभानगरे दग्ध्वा मारितौ, जम्बूग्रामे भक्षयित्वा मारिताविति । तदा तौ तपस्विनौ समचित्तं विभाव्य तनुं विहाय हिरण्यवर्मा

इसपर मेरे पति रतिवर्माने कहा कि संसारी प्राणियोंकी ऐसी दुष्प्रवृत्ति हुआ ही करती है, इसमें आश्चर्य क्या है ? तुम व्यर्थमें संक्लेश न करो । तब मैंने पतिसे अपना निश्चय प्रगट किया कि मैं सबेरे अवश्य ही तपको ग्रहण करूँगी । इसपर उसने कहा कि क्या हानि है, मैं भी तेरे साथ तपको ग्रहण कर लूँगा । तत्पश्चात् दूसरे दिन पुत्रको राज्यकार्यमें नियुक्त करके हम दोनोंने बहुतों-के साथ दीक्षा ग्रहण ली है । यही मेरे दीक्षा लेनेका कारण है । इस प्रकार प्रियदत्ता जब प्रभावतीसे सुरूपा आर्यिकाका वृत्तान्त कह रही थी तब सेठ कुबेरकान्त (मेरा पति) अन्तर्गृहके भीतर यह सब सुनता हुआ स्थित था । सो वहाँसे निकलकर उसने उस आर्यिकाको नमस्कार किया और फिर अपने पुत्र कुबेरप्रियको गुणपाल राजाके लिये समर्पित करके कुबेरदत्त आदि अपने चार पुत्रों तथा अन्य बहुत-से जनोंके साथ दीक्षा धारण कर ली । वह मुक्तिको प्राप्त हो चुका है । इस प्रकार अपने पति कुबेरकान्तके वृत्तान्तको कहकर और फिर आर्यिका प्रभावतीको नमस्कार करके प्रियदत्ता अपने नगरके भीतर प्रविष्ट हुई ।

उस समय वह बिलाव मरकर उसी पुरमें प्रमुख कोतवालका विद्युद्वेग नामका अनुचर होकर स्थित था । एक दिन उसकी स्त्री प्रियदत्ताके साथ गई थी । उसे वापिस आनेमें कुछ विलम्ब हो गया । तब विद्युद्वेगने रुष्ट होकर उससे विलम्बका कारण पूछा । इसपर उसकी स्त्रीने आर्यिकाके पास सुने हुए हिरण्यवर्मा और प्रभावती आदिके सब वृत्तान्तको कह दिया । उसे सुनकर विद्युद्वेगको जातिस्मरण हो गया । इससे उसने हिरण्यवर्मा और प्रभावतीको अपने पूर्व भवका शत्रु जान लिया । तब उसने अपनी स्त्रीसे कहा हे प्रिये ! वे दोनों (हिरण्यवर्मा और प्रभावती) कहाँ हैं, मुझे दिखलाओ । इस प्रकार वह स्त्रीके साथ जाकर उन्हें दिनमें देख आया । पश्चात् रातमें वह उन दोनोंको उठाकर श्मशानमें ले गया । वहाँ उसने उन्हें इकट्ठा बाँधकर जलती हुई चितामें पटक दिया । फिर वह बोला कि मैं वही भवदत्त हूँ जिसने कि पूर्व जन्ममें तुम दोनोंको शोभानगरमें जलाकर मार डाला था तथा जम्बूग्राममें भी मारकर खा लिया था । उस समय उन दोनों तपस्वियोंने इस भयानक उपसर्गको सहन करते हुए समताभावपूर्वक शरीरको छोड़

१. ब -प्रतिपाठोऽयम् । श प्रियदत्ताया । २. ब तावलोकितवान् ।

मुनिः सौधर्मे कनकविमाने सौधर्मेन्द्रस्यान्तः पारिषदः[1] कनकप्रभनामा देवो जातः, प्रभावती कनकप्रभदेवस्य कनकप्रभाख्या देवी जाता। तत्र तौ सुखेन स्थितौ। ततोऽवतीर्य स देवोऽयं मेघेश्वरोऽभूत्, सा देवी आगत्याहं सुलोचना जातेति सकृन्मुनिदानेन शक्तिसेनस्तथाविधोऽभूत्, पारापतौ तदनुमोदमात्रेण तथाविधौ जज्ञाते किं यस्त्रिशुद्धया तद्ददाति सततं[2] स तथाविधो न स्यादिति ॥३-४॥

[४६]

किं न प्राप्नोति देही जगति खलु सुखं दाता बुधयुतो
रूढः श्रेष्ठी सुकेतुर्जितभयकुपितोऽजैषीत् स[3] भुवने ।
दानाद्देवोपसर्गं तदनु सुतपसा मोक्षं समगमत्
तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥५॥

अस्य कथा— अत्रैव द्वीपे पूर्वविदेहे पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिण्यां राजा वसुपालस्तत्रातीव जैनो वैश्यः सुकेतुः भार्या धारिणी। स एकदा व्यवहारार्थं द्वीपान्तरं गच्छन् शिवंकरोद्याने नागदत्तश्रेष्ठिकारितनागभवननिकटे विमुच्य स्थितः मध्याह्नकाले तन्निमित्तं[4]

दिया। इस प्रकारसे मरणको प्राप्त होकर हिरण्यवर्मा मुनि सौधर्म स्वर्गके भीतर कनक विमानमें सौधर्मेन्द्रकी अभ्यन्तर परिषद्का कनकप्रभ नामका पारिषद देव हुआ और वह प्रभावती वहींपर उस कनकप्रभ देवकी कनकप्रभा नामकी देवी हुई। इस प्रकार वे दोनों उस स्वर्गमें सुखपूर्वक स्थित हुए। तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर वह देव तो यह मेघेश्वर (जयकुमार) हुआ है और वह देवी आकर मैं सुलोचना हुई हूँ। इस प्रकार एक बार मुनिके लिए आहारदान देनेके कारण जब वह शक्तिसेन इस प्रकारकी विभूतिसे संयुक्त हुआ है तथा वे दोनों कबूतर व कबूतरी भी उक्त दानकी अनुमोदना करने मात्रसे ही ऐसी विभूतिसे युक्त हुए हैं तब फिर भला जो मन, वचन व कायकी शुद्धिपूर्वक उत्तम पात्रके लिए आहारादि निरन्तर देता है वह वैसी विभूतिसे संयुक्त नहीं होगा क्या ? अवश्य होगा ॥४॥

सत्पात्रदान करनेवाला दाता मनुष्य विद्वानोंसे संयुक्त होकर कौन-से सुखको नहीं प्राप्त होता है ? अर्थात् वह सब प्रकारके सुखको प्राप्त होता है। देखो, लोकमें सुप्रसिद्ध उस सुकेतु सेठने भय और क्रोधको जीतकर देवकृत उपसर्गको भी जीता और फिर अन्तमें वह उत्तम तपश्चरण करके मोक्षको भी प्राप्त हुआ। इसलिए निर्मल गुणोंके समूहसे संयुक्त भव्य जीवोंका कर्तव्य है कि वे उत्तम मुनिके लिए दान देवें ॥५॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी द्वीपके भीतर पूर्व विदेहमें स्थित पुष्कलावती देशके अन्तर्गत पुण्डरीकिणी नगर है। वहाँ वसुपाल नामका राजा राज्य करता था। वहींपर दृढ़तापूर्वक जैन धर्मका पालन करनेवाला एक सुकेतु नामका वैश्य रहता था। उसकी पत्नीका नाम धारिणी था। एक समय वह व्यवहारके लिए—व्यापारके लिए—द्वीपान्तरको जाते हुए नागदत्त सेठके द्वारा बनवाये गये नागभवनके समीपमें स्थित शिवंकर उद्यानके भीतर पड़ाव डालकर ठहर

---

१. प श परिषदः ब परिषद॰। २. श सततं फ एतत्पदमेव तत्र नास्ति। ३. ब ॰तो जैर्यत्स। ४. ब तं निमित्तं।

धारिणी गृहाद्रसवतीं तत्र निनाय। सोऽतिथिसंविभागव्रतयुत इति यतिमार्गान्वेषणं कुर्वन् तस्थौ। तदा गुणसागरमुनिः प्रतिज्ञावसाने तत्र चर्यार्थमागतः[1]। स यथोक्तवृत्त्या स्थापयामास, नैरन्तर्यानन्तरं पञ्चाश्चर्याणि लेभे। तत्र तदधिकपरिणामवशेन सार्धत्रिकोटिरत्नानि[2] तदावासाग्रे गलितानि। तानि नागदत्तो मम नागभवनाग्रे गलितानीति संजग्राह[3]। ततः पुनः तत्रैवागत्य स्थितानि। पुनः संगृहीतवान्, पुनर्गतानि। ततो रुष्टो नागदत्त इमानि स्फोटयिष्यामीत्येकेन रत्नेन शिलां जघान। ततस्तद्व्याघुट्यागत्य तल्ललाटे लग्नम्। ततो देवैरुपहास्येन मणिनागदत्त इत्युक्तः। ततः कोपेन गत्वा स वसुपालं विज्ञप्तवान्— देव मया भवन्नाम्ना नागभवनं कारितम्, तदग्रे रत्नवृष्टिर्जाता, तानि त्वया स्वभाण्डागारे स्थापनीयानि। राजाब्रूत—मम कारणं नास्ति। तदा स तत्पादयोर्लग्नस्तदुपरोधेन नृपस्तथा चकार। तानि तत्रैव गत्वा स्थितानि। तदा राजा विचारयामास किमिति रत्नवृष्टिर्बभूव। कश्चिदब्रूत— सुकेतुश्रेष्ठिकृतगुणसागरमुनिदानप्रभावेनेमानि गलितानि। श्रुत्वा राजा मया अपरीक्षितं कृतमिति कृतपश्चात्तापः सुकेतुमाह्वाययति स्म[5]। तदनु सुकेतुः पञ्चरत्नानि कल्पतरुकुसुमानि च गृहीत्वा जगाम राजानं ददर्श। राजाब्रूत— यन्मयापरीक्षितं कृतं तत्क्षमित्वा स्वगृहे सुखेन

गया। मध्याह्नके समयमें उसकी पत्नी धारिणी उसके लिए घरसे भोजन लायी। सेठ अतिथिसंविभाग व्रतका धारी था। इसलिए वह चर्याके लिए मुनिकी प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय एक गुणसागर नामके मुनि अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करके वहाँ चर्याके लिए आये। सेठने यथोक्त विधिसे पड़िगाहन करके उन्हें आहार दिया। उनका निरन्तराय आहार हो जानेपर वहाँ पंचाश्चर्य हुए। सेठके अतिशय निर्मल परिणामोंके कारण उसके निवासस्थानके आगे साढ़े तीन करोड़ रत्न गिरे। उन्हें नागदत्तने यह कहकर कि 'ये मेरे नागभवनके आगे गिरे हैं' ग्रहण कर लिया। परन्तु वे रत्न फिरसे भी वहीं आकर स्थित हो गये। तब नागदत्तने उन्हें फिरसे उठा लिया। परन्तु वे फिर भी न रह सके और वहीं जा पहुँचे। यह देखकर नागदत्तको क्रोध आ गया। तब उसने उनको फोड़ डालनेके विचारसे एक रत्नको शिलाके ऊपर पटक दिया। परन्तु वह उस शिलासे टकराकर वापिस आया और नागदत्तके मस्तकमें लग गया। यह दृश्य देखकर देवोंने उसका उपहास करते हुए मणिनागदत्त नाम रख दिया। तत्पश्चात् नागदत्तने क्रोधके साथ वसुपाल राजाके पास जाकर उससे प्रार्थना की कि हे देव! मैंने आपके नामसे जो नागभवन बनवाया है उसके आगे रत्नोंकी वर्षा हुई है। उन रत्नोंको मँगवाकर आप अपने भाण्डागारमें रखवालें। इसपर राजाने कहा कि मेरे लिए उन्हें भाण्डागारमें रखवा लेनेका कोई कारण नहीं है। यह उत्तर सुनकर नागदत्त राजाके पैरोंमें गिर पड़ा। तब उसके अतिशय आग्रहसे राजाने वैसा ही किया। परन्तु वे रत्न फिर उसी स्थानपर वापिस जाकर स्थित हो गये। तब राजाने विचार किया कि रत्नवृष्टि किस कारणसे हुई है। इसपर किसीने कहा कि सुकेतु सेठने गुणसागर मुनिके लिए आहार दिया है, उसके प्रभावसे ये रत्न बरसे हैं। यह सुनकर राजाने कहा कि मैंने यह बिना विचारे कार्य किया है। इससे उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। तब उसने सुकेतु सेठको बुलाया। तदनुसार सुकेतुने पाँच रत्न और कल्पवृक्षके फूलोंको ले जाकर राजाका दर्शन किया। राजा उससे बोला कि मैंने जो अज्ञानता वश यह कार्य किया है उसके लिए मुझे क्षमा करो और अपने घरपर सुखसे रहो। यह

---

१. ब चर्यार्थं गतः। २ ब °त्रिकोटीनि रत्नानि। ३. ब- प्रतिपाठोऽयम्। श स जग्राह। ४. श स्तदपराधे नृप। ५. ब °माह्वायति स्म।

तिष्ठ। श्रेष्ठी बभाण— ममापि त्वं स्वामी, न किं रत्नानाम्। यदि प्रयोजनमस्ति तर्हि गृहाण। नृप उवाच— त्वद्गृहे स्थितानि किं मदीयानि न भवन्ति, यदा प्रयोजनं तदानयिष्यामि। श्रेष्ठी महाप्रसाद इति भणित्वा इदानीं किं द्वीपान्तरगमनेनेति स्वगृहं प्रविश्य सुखेन तस्थौ। राजा यः सुकेतुं शंसति तस्य प्रसन्नो भवति। मणिनागदत्तस्तु तं द्वेष्टि।

एकदास्थानमध्ये राजा सुकेतुं प्रशशंस। तदसहमानो जिनदेवश्रेष्ठी बभाण देव, किमस्य रूपं गुणमैश्वर्यं वा त्वया स्तूयते। यदि रूपगुणैस्तर्हि स्तूयताम्, यदि श्रियं तर्ह्यनेन मां धनवादं कारयित्वा यो जयति स स्तूयताम्। तदा सुकेतुरब्रूत—किमैश्वर्यगर्वेण, तूष्णीं तिष्ठ। जिनदेव उवाच— पुरुषेण काचित् ख्यातिः कर्तव्या, मया प्रार्थितोऽसि सर्वथा मया सह वादं कुरु। सुकेतुरभणज्जैनस्य नोचितम्। तथापि जिनदेव आग्रहं न [ना] त्याक्षीत्[1]। तदनु तदुपरोधेनाभ्युपजगाम सुकेतुः। तदनु 'यो जयति स इतरस्याः श्रियः स्वामी भवति' इति प्रतिज्ञापत्रं विलिख्य राजहस्ते दत्त्वोभौ स्वगृहे जग्मतुः, स्वद्रव्यं चतुष्पथे राशीकारयामासतुः। राजादिभिस्तौ परीक्ष्य सुकेतवे जयपत्रं दत्तम्। तदा जिनदेवोऽभणत् मया

सुनकर सेठ बोला कि तुम इन रत्नोंके ही स्वामी नहीं हो, बल्कि मेरे भी स्वामी हो। यदि आवश्यकता हो तो उनको ले लीजिए। इसपर राजाने सेठसे कहा कि क्या तुम्हारे घरमें स्थित रहकर वे रत्न मेरे नहीं हो सकते हैं? जब मुझे आवश्यकता होगी उन्हें मँगा लूँगा। इसपर सेठने कहा कि यह आपकी महती कृपा है। तत्पश्चात् अब द्वीपान्तर जानेसे कुछ प्रयोजन नहीं रहा, यह सोचकर वह सुकेतु सेठ अपने घरमें प्रविष्ट होकर वहाँ ही सुखपूर्वक स्थित हो गया। अब जो भी मनुष्य सेठ सुकेतुकी प्रशंसा करता उसपर राजा प्रसन्न रहता। परन्तु मणिनागदत्त उस सेठसे द्वेष करता था।

एक समय राजाने राजसभाके बीचमें सेठ सुकेतुकी प्रशंसा की। उसे जिनदेव सेठ सहन नहीं कर सका। वह बोला— हे देव! आप क्या सुकेतुके रूपकी प्रशंसा करते हैं, या गुणकी प्रशंसा करते हैं, या लक्ष्मीकी प्रशंसा करते हैं? यदि आप रूप और गुणोंके कारण उसकी प्रशंसा करते हैं तो भले ही करिये, परन्तु यदि लक्ष्मीके आश्रयसे उनकी प्रशंसा करते हैं तो मेरे साथ उसका धनवाद कराकर—मेरे और उसके बीच धनकी परीक्षा कराकर—जिसकी उसमें विजय हो उसकी प्रशंसा कीजिए। इस धन-विषयक विवादको देखकर सुकेतुने जिनदेवसे कहा कि तुम लक्ष्मीका अभिमान क्यों करते हो, चुप बैठो न। इसपर जिनदेवने कहा कि मनुष्यको किसी न किसी प्रकारसे कुछ कीर्ति अवश्य कमानी चाहिए। इसीलिए मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम सब ही प्रकारसे मेरे साथ धनके सम्बन्धमें वाद करो। यह सुनकर सुकेतुने कहा कि किसी भी जैन व्यक्तिके लिए ऐसा करना योग्य नहीं है। परन्तु फिर भी जिनदेवने अपने दुराग्रहको नहीं छोड़ा। तब उसके अतिशय आग्रहसे सुकेतुको उसे स्वीकार करना पड़ा। तत्पश्चात् उन दोनोंने यह प्रतिज्ञापत्र लिखकर राजाके हाथमें दे दिया कि हम दोनोंमेंसे इस विवादमें जो भी विजयी होगा वह दूसरेकी भी समस्त सम्पत्तिका स्वामी होगा। फिर उन दोनोंने अपने अपने घरसे धनको लाकर चौराहेपर ढेर कर दिया। तत्पश्चात् राजा आदिने उस धनके विषयमें उन दोनोंकी परीक्षा करके सुकेतुके लिए विजयपत्र प्रदान किया। तब जिनदेव बोला कि वास्तवमें विजय मेरी

१. श न त्याक्षीत्।

जितम् । कथमित्युक्ते सुकेतुं सखायं[1] प्राप्यानन्तसंसारकारकं महामोहरिपुमजयमिति । तदनु सुकेतुना निवार्यमाणोऽप्यदीक्षत[2] । सुकेतुस्तल्लक्ष्मीं तत्पुत्राय दत्त्वा दानादिकं कुर्वन् सुखेन तस्थौ ।

तत्प्रभां[3] द्रष्टुमशक्तो मणिनागदत्तः स्वनागालये तपश्चरणपूर्वकं नागानाराध । पूर्वमर्जुनाख्यं मातङ्गं संबोधयन्तीर्यक्षीर्दृष्ट्वा कामज्वरेण मृतस्तत्पुत्रस्तन्नागालये उत्पलदेवो जातः, इत्युपवासकथाकथने[4] कथितम् । स[5] प्रसन्नो भूत्वोक्तवान्— हे नागदत्त, किं कायक्लेशं करोषि । स उवाच— त्वामाराधयामि । किमिति । यया श्रिया सुकेतुं वादं कृत्वा जयामि तां मे देहि । देवो बभाण— त्वं पुण्यहीनस्ते श्रियं[6] दातुं न शक्नोमि । वणिगवोचत्- पुण्यहीन इति त्वामाराधितवान्, अन्यथा किं तवाराधनया । सुरोऽब्रूत लक्ष्मीं विहायान्यं ते[7] [न्यस्ते] भणितं करोमि । तर्हि सुकेतुं मारय । निर्दोषं मारयितुं नायाति, कमपि[8] दोषं तस्मिन् व्यवस्थाप्य मारयामि । केनाप्युपायेन मारय, तेन मृतेनालम् । देवोऽभणत्—

हुई है। कारण यह कि मैंने सुकेतु जैसे मित्रको पाकर अनन्त संसारके कारणभूत मोहरूपी महान् शत्रुको जीत लिया है। तत्पश्चात् उसने सुकेतुके रोकनेपर भी दीक्षा ग्रहण कर ली। तब सुकेतुने जिनदेवकी समस्त सम्पत्ति उसके पुत्रके लिए दे दी और वह स्वयं दानादि कार्योंको करता हुआ सुखसे स्थित हुआ।

इधर मणिनागदत्त सुकेतुके प्रभावको नहीं देख सकता था। इसलिए उसने अपने नागभवनमें जाकर तपश्चरणपूर्वक नागोंकी आराधना की। पहिले किसी अर्जुन नामके चाण्डालको सम्बोधित करती हुई यक्षियोंको देखकर नागदत्तका पुत्र (भवदत्त) कामज्वरसे पीड़ित होता हुआ मर गया था और उसी नागभवनमें उत्पल देव हुआ था, यह उपवासफलकी कथा (५-८, ४१) में वर्णित है। उस समय उक्त उत्पल देव प्रसन्न होकर बोला कि हे नागदत्त ! यह कायक्लेश तुम किस-लिए कर रहे हो ? नागदत्त बोला कि यह सब तुम्हारी आराधना-प्रसन्नता-के लिए कर रहा हूँ। तत्पश्चात् उन दोनोंमें इस प्रकारसे वार्तालाप हुआ—

उत्पल—मेरी आराधना तुम किसलिए कर रहे हो ?

नागदत्त—जिस लक्ष्मीके द्वारा मैं सुकेतुसे विवाद करके उसे परास्त कर सकूँ उस लक्ष्मी-को तुम मुझे प्रदान करो।

उत्पल—तुम पुण्यसे रहित हो, इसलिए मैं तुम्हें वैसी लक्ष्मी देनेके लिए समर्थ नहीं हूँ।

नागदत्त—पुण्यहीन हूँ, इसीलिए तो मैंने तुम्हारी आराधना की है। अन्यथा, तुम्हारी आराधनासे मुझे प्रयोजन ही क्या था।

उत्पल—लक्ष्मी देनेकी बातको छोड़कर और जो कुछ भी तुम कहोगे उसे मैं पूरा करूँगा।

नागदत्त—तो फिर तुम सुकेतुको मार डालो।

उत्पल—सुकेतु निर्दोष है, अतः वह मारनेमें नहीं आ सकता है; इसलिए उसके विषयमें कुछ दोषारोपण करके उसे मार डालता हूँ।

---

१. ज सहायं। २. फ ब °प्यदीक्षित। ३. [तत्प्रभावं]। ४. ज °वासकथने। ५. श 'स' नास्ति। ६. श हीनस्ते तव श्रियं। ७. ब °न्यंस्ते। ८. श किमपि।

तदाहं मर्कटवेषमादधे, मां शृङ्खलया बद्ध्वा सुकेतुनिकटं नय। स यदा 'किमित्ययं वानर आनीतः' इति पृच्छति तदा त्वमेवं भण "अहं वनं गतस्तत्रामुं वानरमपश्यम्। 'किमव-लोकसे' इति स्पष्टमब्रूत। मयोक्तम्—वानरो मनुष्य इव ब्रूषे। अयमब्रूत—नाहं वानरः। किं तर्हि। पुण्यदेवता। मे विरूपकः स्वभावोऽस्ति। स क इत्युक्ते यो मे स्वामी स्यात्तेन दत्तं प्रेषणं सर्वं करोमि। प्रेषणं न ददाति चेन्मारयामीति कमपि नाश्रयामि, वने तिष्ठामीत्यनेन भणिते मया त्वदन्तिकमानीतो यदि प्रेषणं दातुं शक्तोऽसि तर्हि स्वीकुरु, नोचेन्मुञ्चामि" इति। तत्र नीत्वा तथोक्तवान् नागदत्तस्तं सुकेतुः स्वीचकार।

स प्रेषणं याचितवान्। सुकेतुरभणत् अस्मात्पुराद् बहिरनेकजिनालययुतं रत्नमयं पुरं कुरु। करोमि, मां मुञ्च। मुक्तः श्रेष्ठिना स बहिर्गत्वा जनकौतुकं तथाविधं पुरं कृत्वा पुनरागत्य प्रेषणं ययाचे। श्रेष्ठी बभाण-यावदहं राजसमीपं गत्वागच्छामि तावत्तिष्ठात्रैवेति निरूप्य राजसमीपं गत्वोक्तवान् श्रेष्ठी—देव, मया बहिः पुरं कारितम्, तत्र त्वं राज्यं कुरु। राजा न्यगदत्—त्वत्पुण्योदयेन तत्पुरं जातम्, तत्र त्वमेव राज्यं कुरु। 'प्रसादः' इति

नागदत्त—किसी भी उपायसे उसे तुम मार डालो, उसका मर जाना ही मेरे लिए पर्याप्त है।

उत्पल—तो फिर मैं बन्दरके वेषको ग्रहण कर लेता हूँ, तुम मुझे उस वेषमें साँकलसे बाँधकर सुकेतुके पास ले चलना। जब वह तुमसे पूछे कि इस बन्दरको यहाँ किस लिए लाये हो, तब तुम इस प्रकार उत्तर देना— मैं वनमें गया था। वहाँ मैंने जैसे ही इस बन्दरको देखा वैसे ही इसने मुझसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि तुम क्या देखते हो। इसपर मैंने कहा कि बन्दर होकर तुम मनुष्यके समान बोलते हो। तब यह बोला कि मैं बन्दर नहीं हूँ, किन्तु पुण्यदेवता हूँ। मेरा स्वभाव विपरीत है। वह यह कि जो भी मेरा स्वामी होता है उसके द्वारा दी गई समस्त आज्ञाको मैं शिरोधार्य करता हूँ। परन्तु यदि वह आज्ञा नहीं देता है तो फिर मैं उसे मार डालता हूँ। इसीलिए मैं किसीके आश्रित नहीं रह पाता हूँ, वनमें रहता हूँ। इसके इस प्रकार कहनेपर मैं इसे तुम्हारे पास ले आया हूँ। यदि तुम इसे आज्ञा देनेमें समर्थ हो तो ग्रहण कर लो, अन्यथा छोड़ देता हूँ। इस प्रकार उस उत्पलके कहे अनुसार नागदत्त उसे बन्दरके वेषमें सुकेतुके पास ले गया और फिर उसने सेठसे वैसा ही सब कह दिया। तब सुकेतुने उसे स्वीकार कर लिया।

तब वहाँ स्थित होकर उत्पलने उस बन्दरके वेषमें सेठसे आज्ञा माँगी। इसपर सेठने कहा कि इस नगरके बाहर अनेक जिनालयोंसे संयुक्त रत्नमय नगरका निर्माण करो। यह आज्ञा पाकर उसने कहा कि ठीक है मैं वैसा करता हूँ, मुझे छोड़ दीजिये। इसपर सेठने उसे छोड़ दिया। तब उसने बाहर जाकर लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले वैसे ही नगरका निर्माण कर दिया। वहाँसे वापस आकर उसने पुनः सेठसे आज्ञा माँगी। तब सेठने कहा कि जब तक मैं राजाके पास जाकर वापस नहीं आता हूँ तब तक यहींपर बैठो। यह कहकर सेठ राजाके पास गया और उससे बोला कि हे देव! मैंने इस नगरके बाहर एक अन्य नगरका निर्माण कराया है, आप वहाँ-पर रहकर राज्य करें। इसपर राजाने कहा कि तुम्हारे पुण्यके उदयसे ही उस नगरकी रचना हुई है, इसलिये वहाँपर तुम ही राज्य करो। तब सेठ 'यह आपकी बड़ी कृपा है' कहकर अपने

भणित्वा श्रेष्ठी स्वगृहमागतः। वानरोऽवत स्वामिन्, प्रेषणं देहि। श्रेष्ठी बभाण— सर्वं नगरमाहूय तेन मां[1] तत्पुरं प्रवेशय। वानरः तथा तं प्रवेशयामास। श्रेष्ठी धारिण्या सह राजभवने भद्रासने उपविवेशौ[2]। पुनर्वानरः प्रेषणं ययाचे। श्रेष्ठी बभाण—महागङ्गोदकमानीय धारिणीसहितस्य मे राज्याभिषेकं कृत्वा राज्यपट्टं बध्ना [नी] हि। स तथा चकार, पुनः प्रेषणं ययाचे। तदा श्रेष्ठ्यवोचन्नागदत्तप्रभृति [3]सर्वजनानां गृहाणि दत्त्वा गृहेष्वक्षयं धन-धान्यादिकं कृत्वागच्छ। स तथा कृत्वागतः, पुनः प्रेषणं ययाचे। श्रेष्ठ्यब्रूत— मे राजभवनाग्रे महास्तम्भं कृत्वा तन्मूले तन्मानां[4] शृङ्खलां कृत्वा शृङ्खलाग्रे कुण्डलिकां निक्षिप्य तत्र स्वशिरः प्रच्छुत्य[5] तच्चटनोत्तरणं कुर्वन् तिष्ठ यावदहं 'पूर्यते' इति भणामि। स द्वि-त्रि-दिनानि तथा कुर्वन् तस्थौ। श्रेष्ठी 'पूर्यते' इति यदा न भणति तदा नष्ट्वा गतः। सुकेतुर्बहुकालं राज्यं कृत्वा स्वशिरः पलितमालोक्य स्वपुत्रं तत्र व्यवस्थाप्य वसुपालादात्मानं मोचयित्वा मणिनागदत्तादिभिर्बहुभिर्भीमभट्टारकान्ते प्रव्रज्य मोक्षं गतः। धारिणी तपसाच्युते देवो जातः। मणिनागदत्तादयो यथायोग्यां गतिं ययुः। तत्पुरं तन्निर्गमनदिने प्यादृश्यं जातम्

घरपर वापस आ गया। उस समय उस बन्दरने सेठसे कहा कि हे स्वामिन्! अब मुझे अन्य आज्ञा दीजिये। तदनुसार सेठने उसे आज्ञा दी कि समस्त नगरको बुलाकर उसके साथ तुम मुझे उसे नवनिर्मित नगरके भीतर ले चलो। तब बन्दर उसी प्रकारसे उसे उस नगरके भीतर ले गया। नगरमें प्रविष्ट होकर सुकेतु सेठ अपनी पत्नी धारिणीके साथ राजभवनमें गया और भद्रासनपर बैठ गया। इसके पश्चात् बन्दरने फिरसे आज्ञा माँगी। इसपर सेठने कहा कि महा गंगाके जलको लाकर धारिणीके साथ मेरा राज्याभिषेक करो और राज्यपट्ट बाँधो। तदनुसार उस बन्दरने वैसा ही किया। तत्पश्चात् उसने सेठसे अन्य आज्ञा माँगी। इसपर सेठने आज्ञा दी कि नागदत्त आदि समस्त मनुष्योंको घर देकर और उन सब घरोंमें अक्षय धन-धान्यादिको करके वापस आओ। तदनुसार बन्दर वह सब करके वापस आ गया। वापस आनेपर उसने फिरसे अन्य आज्ञा माँगी। इसपर सेठने कहा कि मेरे राजभवनके सामने एक बड़े खम्भेको बनाकर उसके मूलमें उसके ही बराबर साँकल बनाओ और फिर उस साँकलके अन्तमें कुण्डलिका (गोल कड़ा) को बनाकर उसमें अपने शिरको फँसा दो तथा बार-बार तब तक चढ़ो उतरो जब तक मैं 'बस, रहने दो' न कह दूँ। तदनुसार बन्दरने दो तीन दिन तक वैसा ही किया। परन्तु सेठने जब 'बस, रहने दो' नहीं कहा तब वह बन्दर वेषधारी उत्पन्न देव भागकर चला गया।

पश्चात् सुकेतुने बहुत समय तक राज्य किया। एक समय उसे अपने सिरके ऊपर श्वेत बालको देखकर भोगोंसे विरक्ति हो गई। तब उसने अपने पुत्रको राज्य देकर वसुपाल राजासे विदा ली और मणिनागदत्त आदि बहुत जनोंके साथ भीम भट्टारकके समीपमें दीक्षा ले ली। अन्तमें वह तप करके मुक्तिको प्राप्त हुआ। उसकी पत्नी धारिणी तपके प्रभावसे अच्युत कल्पमें देव हो गई। मणिनागदत्त आदि यथायोग्य गतिको प्राप्त हुए। जिस दिन सेठ सुकेतु उस नगरसे बाहर निकला उसी दिन वह नगर अदृश्य हो गया। इस प्रकार जब सुकेतु सेठ

---

१. ब नगरं ।। हूय तेन नगरजनेन सह मां। २. ब उपवेशा। ३. ब श सर्वे। ४. ब सन्मानं। ५. ब पपत्य।

इति। एवं सकृद्दानेन सुकेतुर्देवानामपि दुर्जयो भवे मुक्तिं च लेभे किमन्यो न स्यादिति ॥५॥

[४७]

[1]श्रीमानारम्भकाख्यो द्विजकुलविमलश्चारुप्रवचनो
दत्त्वा[2]दानं विनूनं सुखममलमलं [3]दैवं नृभवजम्।
भुक्त्वाभूच्चक्रवर्ती जितरिपुगणकः ख्यातो हि सगरः
तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥६॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डे पद्मपुरे विप्रः शङ्खदारुकस्तदपत्यमारम्भको महाविद्वान् बहूनध्यापयन् स्थितो भद्रमिथ्यादृष्टिः। स एकदा चर्यार्थमागतं महामुनिं स्थापयामास। तद्दानजनितपुण्येन भोगभूमौ जातः, ततः स्वर्गे उत्पन्नस्ततः आगत्य धातकीखण्डे चक्रपुरेश-हरिवर्मगान्धार्योः पुत्रो व्रतकीर्तिर्जातः, तपसा दिविजः, तस्मादागत्य जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहे मङ्गलावतीविषये[4]रत्नसंचयपुराधिपाभयघोष-चन्द्राननयोरपत्यं पयोबलो भूत्वा तपसा प्राणते संजातः। ततश्च्युत्वास्मिन् भरते पृथ्वीपुरेश्वरजयंधर-विजययोरपत्यं जयकीर्तिर्भूत्वा तप-[5]सानुत्तरे स जातः। ततः आगत्यात्रैवायोध्यायां राजा जितशत्रुरजितनाथस्य पिता, तद्भ्राता विजयसागरो भार्या विजयसेना, तयोः सगरनामा पुत्रोऽजनि द्वितीयः सकलचक्रवर्ती,

---

एक ही बार मुनिको दान देनेके कारण देवोंसे भी अजेय होकर मोक्षको प्राप्त हुआ है तब निरन्तर दान देनेवाला भव्य जीव क्या अनुपम सुखका भोक्ता न होगा ? अवश्य होगा ॥५॥

निर्मल ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होकर मधुर भाषण करनेवाला श्रीमान् आरम्भक नामका ब्राह्मण मुनिके लिये दिये गये दानके प्रभावसे देव और मनुष्य भव सम्बन्धी महान् निर्मल सुखका भोक्ता हुआ और तत्पश्चात् वह समस्त शत्रुसमूहको जीतनेवाला सगर नामसे प्रसिद्ध द्वितीय चक्रवर्ती हुआ। इसलिये निर्मल गुणसमूहके धारक भव्य जीवोंको मुनिके लिये दान देना चाहिये ॥६॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्यखण्डके भीतर पद्मपुरमें एक शंखदारुक नामका ब्राह्मण रहता था। उसके एक आरम्भक नामका पुत्र था जो बहुत विद्वान् था। वह भद्रमिथ्यादृष्टि बहुत-से शिष्योंको पढ़ाता हुआ कालयापन कर रहा था। एक समय उसने चर्याके लिए आये हुए महामुनिको विधिपूर्वक आहार दिया। उस दानसे उत्पन्न हुए पुण्यके प्रभावसे वह भोगभूमिमें और तत्पश्चात् स्वर्गमें उत्पन्न हुआ। इसके बाद वह स्वर्गसे च्युत होकर धातकीखण्ड-द्वीपके अन्तर्गत चक्रपुरके राजा हरिवर्मा और रानी गान्धारीके व्रतकीर्ति नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर वह तपके प्रभावसे स्वर्गमें देव हुआ। वहाँसे आकर वह जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्वविदेहके अन्तर्गत मंगलावती देशमें स्थित रत्नसंचयपुरके राजा अभयघोष और रानी चन्द्राननाके पयोबल नामका पुत्र हुआ। तत्पश्चात् वह तपको स्वीकार करके उसके प्रभावसे प्राणत स्वर्गमें देव हुआ। फिर वहाँसे च्युत होकर इस भरत क्षेत्रमें पृथिवीपुरके राजा जयंधर और रानी विजयाके जयकीर्ति नामका पुत्र हुआ। तत्पश्चात् मुनि होकर वह तपके प्रभावसे अनुत्तरमें अहमिन्द्र हुआ। फिर वहाँसे च्युत होकर अयोध्या नगरीमें राजा जितशत्रु—अजितनाथ तीर्थंकरके पिता—के भाई विजयसागर और विजयसेनाके सगर नामका पुत्र हुआ। वह द्वितीय चक्रवर्ती था। सगर चक्र-

---

१. श श्रीमन्नारंभ°। २. प दत्वाद्दाना°, ब श दत्वा दाना°। ३. अ सुखममलं देवं। ४. ज प श विषय°। ५. ब °नुत्तरे संभूय तत आ°।

भरतवत् राज्यं कुर्वन् तस्थौ। तस्य षष्टिसहस्राः[1] पुत्रा जाताः। ते प्रतिदिनं चक्रिणं प्रेषणं याचन्ते स्म। चक्री मे दुःसाध्यं नास्तीति तदुपरोधेन कैलाशस्य परितो जलखातिकां[2] खनन्त्विति प्रेषणमदत्त। चक्रवर्तिप्रेषणात्कैलाशस्य परितो खातिकां दण्डरत्नेन खनित्वा तद्ज्येष्ठपुत्रो जाह्नवी [जह्नुः] तस्य पुत्रो भागीरथः अपरोऽपि कश्चन भीमरथः, उभौ दण्डरत्नं गृहीत्वा गङ्गाजलानयनार्थं जग्मतुः। अत्र प्रस्तावे दण्डरत्नरभसा[3] क्रुद्धधरणेन्द्रेणेतरे मारिताः।

पूर्वं कश्चन सगरप्रतिपादितपञ्चनमस्कारवशात् सौधर्मे संपन्नस्तेन[4] चासनकम्पात् ज्ञात्वागत्य विप्रवेषेण प्रतिबोधितः सन् भागीरथाय राज्यं समर्प्य प्रव्रज्य मोक्षं गतः सगरः। भागीरथेनैकदा धर्माचार्या अभिवन्द्य पृष्टाः[5] मम पितृभिः कथं समुदायकर्मोपार्जितमिति। ऊचुस्ते–अवन्तीग्रामे कुटुम्बिनः षष्टिसहस्रा जाताः[6]। एकः कुम्भकारः। मुनिनिन्दां कुर्वन्तः कुम्भकारेण निवारितास्ते कुम्भकारे ग्रामान्तरे गते सर्वे भिल्लैर्मारिताः सन्तः शङ्खा बभूवुस्ततः कपर्दिका इत्यादि भवान्तरं भ्रमित्वा पश्चादयोध्याबाह्ये गिंजाइका[7] जाताः। स कुम्भकारः

वर्तीने भरत चक्रवर्तीके समान बहुत समय तक राज्य किया। उसके साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे प्रतिदिन चक्रवर्तीसे आदेश माँगते थे। परन्तु वह चक्रवर्ती कहता कि मेरे लिए दुःसाध्य कुछ भी नहीं है—सब कुछ सुलभ है, अतएव तुम लोगोंको आज्ञा देनेका कुछ काम नहीं है। परन्तु जब उन पुत्रोंने इसके लिये बहुत आग्रह किया तब उसने उन्हें कैलाश पर्वतके चारों ओर जलसे परिपूर्ण खाईके खोदनेकी आज्ञा दी। तब चक्रवर्तीकी आज्ञानुसार उन सबने कैलाश पर्वतके चारों ओर दण्ड-रत्नसे खाईको खोद दिया। तत्पश्चात् सगर चक्रवर्तीका जह्नु नामका जो ज्येष्ठ पुत्र था उसका पुत्र भागीरथ और दूसरा कोई भीमरथ ये दोनों दण्ड-रत्नको लेकर गंगा-जल लेनेके लिए गये। इस बीचमें उस दण्ड-रत्नके वेगसे क्रोधको प्राप्त हुए धरणेन्द्रने अन्य सब पुत्रोंको मार डाला।

पूर्वमें कोई सगर चक्रवर्तीके द्वारा दिये पंचनमस्कार मन्त्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ था। उसका उस समय आसन कम्पित हुआ। इससे वह चक्रवर्तीके पुत्रोंके मरणको जानकर ब्राह्मणके वेषमें उस सगर चक्रवर्तीको सम्बोधित करनेके लिए आया। तदनुसार उससे सम्बोधित होकर सगर चक्रवर्तीने भागीरथके लिए राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तपश्चरण करके मुक्तिको प्राप्त हुआ।

एक समय भागीरथने धर्माचार्यकी वन्दना करके उनसे पूछा कि मेरे पिताओं (पिता व पितृव्यों) ने किस प्रकारके समुदायकर्मको उपार्जित किया था ? इसके उत्तरमें वे बोले— अवन्ती ग्राममें साठ हजार कुटुम्बी (कृषक) उत्पन्न हुए थे। वहाँ एक कुम्हार भी था। एक समय उन सबने मिलकर मुनिकी निन्दा की। उस कुम्हारने उन्हें मुनिनिन्दासे रोका था। कुम्हारके किसी अन्य गाँवमें जानेपर उन सबको भीलोंने मार डाला था। इस प्रकारसे मृत्युको प्राप्त होकर वे शंख और कौड़ी आदि अनेक भवोंमें परिभ्रमण करके तत्पश्चात् अयोध्याके बाहर

---

१. ब श °सहस्राः। २. श खातिका। ३. फ रसभात्। ४. क सौधर्म संपन्न°। ५. ब °प्रतिपाठोऽयम्। श °चार्योभिवंद्य पृष्टो। ६. ब °सहस्रजाताः। ७. ब बाह्ये गंजायिकः श बाह्ये गिंजाइका।

किन्नरो भूत्वा तस्मादागत्यायोध्यायां मण्डलेश्वरो जातः। तद्गजपादेन हताः समस्तास्तापसत्वं प्राप्य ततो ज्योतिर्लोके उत्पद्य तस्मादागत्य चक्रवर्तिनोऽपत्यानि बभूवुः। स मण्डलेश्वरस्तपसा स्वर्गे जातः, तस्मादागत्य त्वं जातोऽसि। श्रुत्वा स्वपुत्राय राज्यं दत्त्वा भागीरथो मुनिरभूत् मोक्षं च गतः इति मिथ्यादृष्टिरपि विप्रः सकृन्मुनिदानेनैवंविधोऽभूत् सद्दृष्टिर्दानपतिः किं न स्यादिति ॥ ६ ॥

[४८]

भुक्त्वा भो भोगभूमौ सुरकुजजनितं सौख्यं च दिविजं
दत्तादाहारदानात् द्विजवरतनयौ मूर्खावपि[2] ततः।
जातौ सुग्रीवबन्धू[3] नलतदनुजकौ रामस्य सचिवौ
तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥ ७ ॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डे किष्किन्धपर्वतस्थकिष्किन्धपुरे[4] राजा कपिकुलभवः सुग्रीवः, तद्भ्रातरौ नल-नीलौ। ते सुग्रीवादयो रामस्य भृत्याः। रामरावणयोः सीतानिमित्तं युद्धे सति नल-नीलाभ्यां रामसेनापतिभ्यां रावणस्य सेनापती हस्त-प्रहस्तौ हतौ। तौ[5] ताभ्यां

गिंजाई (एक प्रकार क्षुद्र बरसाती कीड़े) हुए। और वह कुम्हार किंनर होकर वहाँसे आया और उसी अयोध्यामें मण्डलेश्वर हुआ। उसके हाथीके पैरके नीचे दबकर वे सब गिंजाईकी पर्यायसे मुक्त होकर तापस हुए। तत्पश्चात् वे ज्योतिर्लोकमें उत्पन्न होकर वहाँसे च्युत हुए और अब सगर चक्रवर्तीके पुत्र हुए हैं। वह मण्डलेश्वर मरकर तपके प्रभावसे स्वर्गमें गया और फिर वहाँसे आकर तुम हुए हो। इस सब पूर्व वृत्तान्तको सुनकर भागीरथ अपने पुत्रको राज्य देकर मुनि हो गया और मोक्षको प्राप्त हुआ। इस प्रकार वह (आरम्भक) मिथ्यादृष्टि भी ब्राह्मण एक बार मुनिके लिए दान देकर जब चक्रवर्तीकी विभूतिको प्राप्त हुआ और अन्तमें मोक्ष भी गया है तब भला सम्यग्दृष्टि भव्य जीव उस दानके प्रभावसे क्या वैसी विभूतिको नहीं प्राप्त होगा? अवश्य प्राप्त होगा ॥६॥

ब्राह्मणके दो मूर्ख पुत्र मुनिके लिए दिये गये आहारदानके प्रभावसे भोगभूमिमें कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न सुखको और तत्पश्चात् स्वर्गके सुखको भोगकर सुग्रीवके नल और उसके छोटे भाई (नील) के रूपमें बन्धु हुए हैं जो रामचन्द्रके मन्त्री थे। इसीलिए उत्तम गुणोंके समूहसे संयुक्त भव्य जीवोंको मुनिके लिये दान देना चाहिये ॥७॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्यखण्डके भीतर किष्किन्ध पर्वतके ऊपर स्थित किष्किन्धपुरमें वानरवंशी सुग्रीव नामका राजा राज्य करता था। उसके नल और नील नामके दो भाई थे। वे सुग्रीव आदि रामचन्द्रके सेवक थे। जब सीताहरणके कारण रामचन्द्र और रावणके बीचमें युद्ध प्रारम्भ हुआ था तब नल और नीलने रामचन्द्रके सेनापति होकर रावणके सेनापति हस्त और प्रहस्तको मार डाला था। उन्होंने उन्हें इस भवके विरोधसे मार डाला था

---

१. ब दत्त्वाहार°। २. श मूर्खावपि। ३. फ बन्धौ। ४. ज प श किष्किंधपर्वतस्थकिष्किंधपुरे ब किष्कंधपर्वतस्थकिष्कंधपुरे। ५. ब प्रतिपाठोऽयम्। श हस्तप्रहस्तौ तौ।

तन्नृपविरोधवशेन जन्मान्तरविरोधवशेन वा हतावित्युक्ते[1] जन्मान्तरविरोधवशेनेत्याह। तथाहि— अत्रैव भरते कुशस्थलग्रामे जातौ मूर्खविप्रौ इन्धक-पल्लवनामानौ जातौ। जैनसंसर्गात् मुनिकृताहारदानौ अपरभ्रातृकुटुम्बियुगलेन सह कृतारम्भौ सिद्धादायदाने कलहे ताभ्यां मारितौ मध्यमभोगभूमौ जातौ। ततः स्वर्गे जातौ, तस्मादागत्य नल-नीलौ जातौ। इतरौ कालञ्जरारण्ये शशादित्यादि, परिभ्रम्य तापसत्वेन ज्योतिर्लोके उत्पद्य तस्मादागत्य विजयार्धदक्षिणश्रेण्यामग्निकुमाराश्विन्योर्हस्त-प्रहस्तौ[2] जाताविति सम्यक्त्वविवर्जितौ मूर्खावप्युभयगतिसुखमनुभूय सकृन्मुनिदानफलेन चरमदेहिनौ महाविभूतियुक्तौ बभूवतुः, सद्दृष्टयो दानपतयः किं तथाविधा न स्युरिति ॥ ७ ॥

[४९]

विप्रौ यौ दत्तदानौ शममरकुजजं दैवं च पृथु तत्[3]
संजातौ चारुकीर्ती जित[4]सकलरिपू वीरौ[5] सुविदितौ।
सेवित्वा रामपुत्रौ तदनु लव-कुशौ मुक्ताखिलमतौ[6]
तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥ ८ ॥

अथवा जन्मान्तरके विरोधसे, इन प्रश्नके उत्तरमें यहाँ जन्मान्तर विरोधको कारण बतलाया है जो इस प्रकार है— इसी भरतक्षेत्रके भीतर कुशस्थल ग्राममें इन्धक और पल्लव नामके दो मूर्ख ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। उन दोनोंने किसी जैनके संसर्गसे मुनिके लिए आहार दान दिया था। वहींपर दो अन्य भी कृषक बन्धु थे। उनके साथ इन्धक और पल्लवने खेतीका आरम्भ किया। उसमें राजाके लिये कर (टैक्स) देनेके विषयमें परस्पर झगड़ा हो गया, जिसमें उन दोनों कुटुम्बी भाइयोंने इन दोनोंको (इन्धक-पल्लवको) मार डाला। इस प्रकारसे मरकर वे मुनिदानके प्रभावसे मध्यम भोगभूमिमें उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् वे स्वर्ग गये और फिर वहाँसे आकर नल और नील उत्पन्न हुए। उधर वे दोनों कृषक भाई कालंजर वनमें खरगोश आदिके भवोंमें परिभ्रमण करते हुए तापस होकर ज्योतिर्लोकमें उत्पन्न हुए और फिर वहाँसे च्युत होकर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें अग्निकुमार और अश्विनीके हस्त व प्रहस्त नामके पुत्र हुए। इस प्रकार सम्यक्त्वसे रहित और मूर्ख भी वे दोनों ब्राह्मण एक बार मुनिदानके प्रभावसे दोनों गतियोंके सुखको भोगकर महाविभूतिसे संयुक्त चरमशरीरी होते हुए जब मुक्तिको प्राप्त हुए हैं तब क्या उस मुनिदानके प्रभावसे सम्यग्दृष्टि जीव वैसी विभूतिसे संयुक्त न होंगे ? अवश्य होंगे ॥ ७ ॥

जिन दो ब्राह्मणोंने मुनिके लिए दान दिया था वे भोगभूमिमें कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न सुखको तथा देवगतिके विपुल सुखको भोगकर तत्पश्चात् लव व कुश नामसे प्रसिद्ध रामचन्द्रके दो वीर पुत्र हुए। समस्त शत्रुओंको जीत लेनेके कारण उनकी पृथिवीपर निर्मल कीर्ति फैली। इसीलिए निर्मल गुणोंके समूहसे संयुक्त भव्य जीवोंको निरन्तर उत्तम मुनिके लिए दान देना चाहिये ॥८॥

---

१. ब हताविमुक्ते। २. श °श्विन्योर्हस्त°। ३. फ पृथु तं। ४. फ ब कीर्तिजित°। ५. फ °रिपुर्वीरौ। ६. श मुक्ताखिलमतो।

अस्य कथा— अत्रैवायोध्यायां राजानौ बल-नारायणौ रामलक्ष्मणौ। रामस्य देवी सीता। तस्या गर्भसंभूतौ सत्यां पूर्वं यदा पितृवचनपालनार्थं भरताय राज्यं दत्त्वा वनप्रवेशं कृतवन्तौ तदा सा रावणेन चोरयित्वा नीता। रामलक्ष्मणाभ्यां तं निहत्य सानीता। रावणस्य गृहे स्थिता सीता रामस्य स्वगृहे [1]निधातुमनुचितमिति प्रजाभिरुक्ते रामेणाटव्यां त्याजिता। तत्र हस्तिधरणार्थं[2] [3]समागतपुण्डरीकिणीपुरेशवज्रजङ्घेन जैनीति भगिनीभावेन स्वपुरं नीता। तत्र लवाङ्कुशाख्ययोः पुत्रयोर्युगमसूत। तौ वज्रजङ्घकृतविवाहौ निजभुजप्रतापेन साधितनानाभूभुजौ प्रत्येकं महामण्डलेश्वरपदव्यालंकृतौ। नारदात् पिता-[4]पितृव्यावधिगम्यायोध्यामागत्य तौ युद्धे [5]जिग्यतुस्तदा सकौतुकाभ्यां पिता-पितृव्याभ्यां नारदात् पुत्राविति प्रबुध्य पुरं प्रवेशितौ युवराजभूतौ सुखमासतुः। विभीषणादिप्रधानवचनेन रामेण सीताया अग्निप्रवेशे दिव्यो दत्तः। सा तेन विशुद्धा भूत्वा तत्रैव महेन्द्रोद्यानस्थसकलभूषणमुनिसमवसरणे पृथ्वीमतिक्षान्तिकाभ्यासे दीक्षिता। रामः सपरिवारस्तां [6]निवर्तयितुं

इसकी कथा इस प्रकार है— यहाँ ही अयोध्यापुरीमें राम और लक्ष्मण नामके दो राजा राज्य करते थे। वे दोनों क्रमसे बलभद्र और नारायण पदके धारक थे। रामचन्द्रकी पत्नीका नाम सीता था। उसके गर्भाधान होनेके पूर्व जब राम और लक्ष्मण पिताके वचनकी रक्षा करनेके लिए भरतको राज्य देकर वनको गये थे तब रावण उस सीताको चुराकर ले गया था। उस समय राम और लक्ष्मण रावणको मारकर सीताको वापिस ले आये थे। इसकी निन्दा करते हुए प्रजाजन यह कह रहे थे कि सीता जब रावणके घरमें रह चुकी है तब राजा रामचन्द्रके लिए उसे वापस लाकर अपने घरमें रखना योग्य नहीं था। इस निन्दाको सुनकर रामचन्द्रने उसे त्यागकर वनमें भिजवा दिया। उस समय वह गर्भवती थी। उक्त वनमें जब पुण्डरीकिणीपुरका राजा वज्रजंघ हाथीको पकड़नेके लिए पहुँचा तब उसने वहाँ सीताको देखा। सीता चूँकि जैन धर्मका पालन करनेवाली थी, अतएव वज्रजंघ उसे धर्मबहिन समझकर अपने नगरमें ले आया। वहाँपर उसने लव और अंकुश नामके युगल पुत्रोंको उत्पन्न किया। ये दोनों पुत्र जब वृद्धिको प्राप्त हो गये तब वज्रजंघने उनका विवाह कर दिया। उन दोनोंने अपने बाहुबलसे अनेक राजाओंको जीत लिया था। इससे वे दोनों 'महामण्डलेश्वर'के पदसे विभूषित हुए। पश्चात् वे नारदसे अपने पिता रामचन्द्र और चाचा लक्ष्मणका परिचय पाकर अयोध्या आये। वहाँ उन्होंने पिता और चाचासे युद्ध करके उसमें विजय प्राप्त की। उनके पराक्रमको देखकर रामचन्द्र और लक्ष्मणको बहुत आश्चर्य हुआ। परन्तु जब नारदने उन्हें यह बतलाया कि ये तुम्हारे ही पुत्र हैं तब वे दोनों लव और अंकुशको नगरके भीतर ले गये। वहाँ वे युवराज होकर सुखपूर्वक रहने लगे।

पश्चात् विभीषण आदि प्रधान पुरुषोंके कहनेसे रामचन्द्रने सीताको अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनेके लिये अग्निप्रवेश विषयक दिव्य शुद्धिका आदेश दिया। तदनुसार सीताने अग्निप्रवेश करके अपनी निर्दोषता प्रगट कर दी। तत्पश्चात् उसने वहींपर महेन्द्र उद्यानके भीतर स्थित सकलभूषण मुनिके समवसरणमें पृथ्वीमति आर्यिकाके समीपमें दीक्षा ले ली। तब राम

१. ज निस्थातु° प श निनातु°। २. श हस्तिधारणार्थं। ३. प श समागतं। ४. ज पितृव्याव-गगम्या° फ ब पितापितृव्यावगम्या°। ५. श जिग्यतु°। ६. ब निवर्तियितुं।

समवसृतिं अगाम जिनदर्शनेन गलितमोहस्तं समर्च्य[1] स्वकोष्ठे उपविष्टः ।

तदा बिभीषणो रामादीनामतीतभवानपृच्छत्, लवाङ्कुशयोः पुण्यातिशयहेतुमप्राक्षीत् । केवली कथितवांस्तावत् लवाङ्कुशयोर्भवान् । तथाहि—अत्रैवार्यखण्डे काकन्द्यां राजा रतिवर्धन-सुदर्शनयोरपत्ये प्रीतिंकर-हितंकरौ जातौ । राजपुरोहितः सर्वगुप्तः, भार्या विजयावली । स एकदा राज्ञा धृत्वा निगले[2] निक्षिप्तः । विज्ञापननिमित्तमागतया विजयावल्या राजरूपं दृष्ट्वोक्तम् 'मामिच्छ' । तेनोक्तम् 'भगिनी त्वम्' । मनसि कुपिता गता । कतिपयदिनेषु सर्वगुप्तं मुक्त्वा तस्मै पूर्वं पदं दत्तम् । तया कथितम् 'मे शीलं खण्डयितुं लग्नो राजा' इति । ततोऽपकारद्वयमव-धार्य सर्वं आत्मनि मेलयित्वा रात्रौ राजभवने वेष्टिते त्रयोऽपि मध्येऽन्तःपुरं कृत्वा खड्ग-बलेन निर्गताः, [3]काशिपुराधिपकाशिपुना[4] संगृहीताः । कियत्काले गते तेन प्रेषितबलेन सह स्वपुरमागत्य युद्धे तं बन्धयित्वा स्वीकृतं राज्यं रतिवर्धनेन । प्रजापालनं विधाय त्रिभिरपि तपो गृहीतम् । पुत्रौ दुर्धरानुष्ठानेनोपरिमग्रैवेयकं[5] गतौ, तस्मादागत्य शाल्मलीपुरे विप्ररामदेवस्य-

---

उसे लौटानेके लिए परिवारके साथ समवसरणमें गये । परन्तु सकलभूषण जिनके दर्शनमात्रसे उनका वह सीताविषयक मोह दूर हो गया और तब वे जिन देवकी पूजा करके अपने कोठेमें बैठ गये ।

उस समय विभीषणने केवली जिनसे रामादिकोंके पूर्व भवों तथा लव और अंकुशके पुण्यातिशयके कारणको पूछा । तदनुसार केवलीने प्रथमतः लव और अंकुशके पुण्यातिशयका कारण इस प्रकार बतलाया— इसी आर्यखण्डके भीतर काकन्दी नगरीमें राजा रतिवर्धन और रानी सुदर्शनाके प्रीतिंकर और हितंकर नामके दो पुत्र थे । उक्त राजाके पुरोहितका नाम सर्वगुप्त और उसकी पत्नीका नाम विजयावली था । एक समय राजाने उस पुरोहितको पकड़वा कर बन्धन-में डाल दिया । तब राजासे प्रार्थना करनेके लिए पुरोहितकी पत्नी विजयावली उसके पास आयी । परन्तु वह राजाकी सुन्दरताको देखकर मुग्ध होती हुई उससे बोली कि मुझे स्वीकार करो । यह सुनकर राजाने कहा कि तुम मेरी बहिन हो, तुम्हें मैं कैसे स्वीकार करूँ ? इसपर वह मनमें क्रोधित होकर वापस चली गई । कुछ दिनोंके पश्चात् राजाने सर्वगुप्तको छोड़कर उसके लिये पहिलेका पद दे दिया । तब विजयावलीने पतिसे कहा कि राजा उस समय मेरा शील भंग करने-को उद्यत हो गया था । यह सुनकर पुरोहितने विचार किया कि राजाने प्रथम तो मुझे बन्धनमें डाला और फिर पत्नीके शीलको भंग करना चाहा, इस प्रकार इसने दो अपराध किये हैं । यह सोचकर उसने सबको अपनी ओर मिलाकर उनकी सहायतासे रातमें राजभवनको घेर लिया । तब राजा और उसके दोनों पुत्र ये तीनों बीचमें अन्तःपुरको करके तलवारके बलसे बाहर निकल गये । तब उनका काशिपुरके राजा काशिपुने स्वागत किया । तत्पश्चात् कुछ कालके बीत जानेपर राजा काशिपुरके द्वारा भेजे गये सैन्यके साथ अपने नगरमें आकर रतिवर्धनने युद्धमें उस सर्वगुप्त पुरोहितको बाँध लिया और अपने राज्यको वापस प्राप्त कर लिया । फिर वह कुछ समय तक राज्य करके दोनों पुत्रोंके साथ दीक्षित हो गया । उनमेंसे दोनों पुत्र दुर्धर तप करके उपरिम ग्रैवेयकमें गये । वहाँसे च्युत होकर वे दोनों शाल्मलीपुरमें ब्राह्मण रामदेवके वसुदेव

---

१. ब °स्तमभ्यर्च्य । २. ब निगलो । ३. प श काशिपुराधिपं । ४. अ प काशिपुना सं° ब काशिपुनामं सं° । ५. ब °नोपरित[म]ग्रै° ।

पत्ये वसुदेव-सुदेवौ जातौ, पात्रदानेन भोगभूमौ संपन्नौ, तस्मादीशानं गतौ, ततः आगत्य लवाङ्कुशौ जातौ, इति सकृदपि सत्पात्रदानेन वसुदेव-सुदेवौ द्विजावेवंविधौ चरमदेहिनौ जातौ संदृष्टि-सच्छीलस्तथाविधः किं न स्यादिति ॥८॥

[५०]

आसीद्यो धारणाख्यः क्षितिभृदनुपमश्चन्द्राख्यनगरे
दत्त्वा दानं मुनिभ्यस्तदमलफलतो देवादिकुरुषु ।
भुक्त्वानूनं च सौख्यं नृ-सुरगतिभवं जातो दशरथ-
स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥९॥

अस्य कथा— अत्रैवायोध्यायां राजा दशरथः। स चैकदा महेन्द्रोद्यानमागतं सर्वभूतहितशरण्यं मुनिं समभ्यर्च्य नत्वोपविश्य स्वातीतभवान् पृच्छति स्म। मुनिराह— अत्रैवार्यखण्डे कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनापुरे राजा उपास्तिः मुनिदाननिषेधात्तिर्यग्गतौ असंख्यातभवान् परिभ्रम्य चन्द्रपुरेशचन्द्रधारिण्योः पुत्रो[2] धारणो जातो मुनिदानाद्धातकीखण्डपूर्वमन्दरदेवकुरुषूत्पन्नः, ततः स्वर्गं, ततो जम्बूद्वीपपूर्वविदेहपुष्कलावत्यां पुण्डरीकिण्यधीशाभयघोष-वसुंधर्योः पुत्रो नन्दिवर्धनो जातः, तपसा ब्रह्मे समुत्पन्नस्तत आगत्य जम्बूद्वीपापर-

---

और सुदेव नामके पुत्र हुए। तत्पश्चात् मृत्युको प्राप्त होकर वे पात्रदानके प्रभावसे भोगभूमिको प्राप्त हुए। वहाँसे फिर ईशान स्वर्गमें गये और फिर उससे च्युत होकर लव एवं अंकुश हुए। इस प्रकार एक बार सत्पात्र दानके प्रभावसे वे वसुदेव और सुदेव ब्राह्मण जब इस प्रकारके चरमशरीरी हुए हैं तब भला सुशील सम्यग्दृष्टि जीव क्या उक्त सत्पात्रदानके प्रभावसे वैसा नहीं होगा? अवश्य होगा ॥ ८ ॥

चन्द्र नामके नगरमें जो धारण नामका अनुपम राजा था वह मुनियोंके लिए दान देकर उससे उत्पन्न हुए निर्मल पुण्यके प्रभावसे देवकुरुमें उत्पन्न हुआ और तत्पश्चात् मनुष्यगति और देवगतिके महान् सुखको भोगकर दशरथ राजा हुआ है। इसलिए निर्मल गुणोंके समूहसे युक्त भव्य जीवोंको निरन्तर मुनिके लिये दान देना चाहिये ॥९॥

इसकी कथा इस प्रकार है— यहींपर अयोध्या नगरीमें दशरथ नामका राजा राज्य करता था। एक समय उसने महेन्द्र उद्यानमें आये हुए सर्वभूत-हितशरण्य मुनिकी पूजा की और तत्पश्चात् नमस्कारपूर्वक बैठते हुए उसने उनसे अपने पूर्वभवोंको पूछा। मुनि बोले— इसी आर्यखण्डमें कुरुजांगल देशके अन्तर्गत हस्तिनापुरमें उपास्ति नामका राजा राज्य करता था। वह मुनिदानका निषेध करनेके कारण तिर्यंचगतिमें गया और वहाँ असंख्यात भवोंमें घूमा। पश्चात् वहाँसे निकलकर वह चन्द्रपुरके राजा चन्द्र और रानी धारिणीके धारण नामका पुत्र हुआ। फिर वह मुनिके लिये दान देनेसे धातकीखण्ड द्वीपके भीतर पूर्व मेरु सम्बन्धी देवकुरु (उत्तम भोगभूमि)में उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वहाँसे वह स्वर्गमें गया और फिर वहाँसे भी च्युत होकर जम्बूद्वीपके भीतर पूर्वविदेहके अन्तर्गत पुष्कलावती देशमें स्थित पुण्डरीकिणी पुरके राजा अभयघोष और वसुन्धरीके नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ। इस पर्यायमें उसने दीक्षा लेकर तपश्चरण किया और उसके प्रभावसे ब्रह्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ। पश्चात् वहाँसे च्युत होकर वह जम्बूद्वीपके

---

१. ब संदृष्टिस्सच्छील°। २. श पुरेशधारिण्योः चन्द्रपुत्रो।

विदेहविजयार्धशशिपुरे रत्नमालेरपत्यं सूर्यो[1] जातः।

एकदा रत्नमालिः सिंहपुराधिपवज्रलोचनस्योपरि चटितः। अत्र प्रस्तावे देवेनैकेन निषिद्धः। किमिति पृष्टे देवोऽवोचत्— अस्मिन् विजयार्धे गान्धारनगरीशश्रीभूतेः पुत्रः सुभूतिरभूत्। मन्त्री उभयमन्युः संजातः। राज्ञा कमलगर्भभट्टारकसकाशे गृहीतानि व्रतानि मन्त्रिणा नाशितानि। मन्त्री मृत्वा हस्ती संजातः। स च राज्ञा पट्टवर्धनः कृतः। स हस्ती च कमलगर्भमुनेर्दर्शनेन जातिस्मरो भूत्वा व्रतान्यादाय सुभूति-योजनगन्धयोः पुत्रोऽरिंदमोऽभूत्। तन्मुनिसमीपे तपसाहं शतारे जातः। श्रीभूतिर्मृत्वा मन्दरारण्ये मृगो जातः। काम्भोजविषये भिल्लः कलिंजमो भूत्वा शर्करायामुत्पन्नो मया संबोधितः सन्निदानीं रत्नमालिर्जातोऽसीति। श्रुत्वानन्दाय राज्यं दत्त्वा रत्नतिलकमुनिनिकटे सूर्यजेन[2] सह प्रवव्राज[3]। शुक्र उत्पद्य तस्मादागत्य सूर्यजचरस्त्वम्, इतरो जनकः, अरिंदमचरः शतारादागत्य कनकः संजातः। सोऽभयघोषस्तपसा ग्रैवेयके उत्पद्य तस्मादागत्य वयं संजाता इति निरूपिते निशम्य मुनिं वन्दित्वा स्वपुरं प्रविष्टः। अपराजितादिपट्टमहादेवीभी रामादिपुत्रैरन्यैश्च बन्धुभिर्महाविभूत्या राज्यं कुर्वन्

अपरविदेहमें स्थित विजयार्ध पर्वतके ऊपर शशिपुरके राजा रत्नमालिके सूर्य (सूर्यज) नामका पुत्र हुआ।

एक समय रत्नमालिने सिंहपुरके राजा वज्रलोचनके ऊपर चढ़ाई की। किन्तु इस बीचमें उसे एक देवने ऐसा करनेसे रोक दिया। इसका कारण पूछनेपर वह देव बोला— इस विजयार्ध पर्वतके ऊपर स्थित गान्धारपुरके राजा श्रीभूतिके एक सुभूति नामका पुत्र था। उस राजाके मन्त्रीका नाम उभयमन्यु था। राजा श्रीभूतिने कमलगर्भ भट्टारकके समीपमें व्रतोंको ग्रहण किया था। किन्तु उस मन्त्रीके प्रभावमें आकर वह उनका पालन नहीं कर सका और वे यों ही नष्ट हो गये। इस पापके प्रभावसे वह मन्त्री मरकर हाथी हुआ। उसे राजाने पट्टवर्धन (मुख्य हाथी) बनाया। उक्त हाथीको कमलगर्भ मुनिके दर्शनसे जातिस्मरण हो गया। तब उसने व्रतोंको ग्रहण कर लिया। वह मरकर राजा सुभूति और रानी योजनगन्धीके अरिन्दम नामका पुत्र हुआ। उसने उन मुनिके समीपमें दीक्षा ले ली। इस प्रकार तपके प्रभावसे वह मरकर शतार स्वर्गमें देव हुआ, जो मैं हूँ। उधर वह श्रीभूति राजा मरकर मन्दरारण्यमें मृग हुआ। तत्पश्चात् वह काम्भोज देशमें कलिंजम भील हुआ। वह समयानुसार मरकर शर्कराप्रभा पृथिवी (दूसरा नरक) में नारकी उत्पन्न हुआ। उसे मैंने आकर प्रबोधित किया। इससे वह प्रबुद्ध होकर उक्त पृथिवीसे निकला और तुम रत्नमालि हुए हो। इस प्रकार उक्त देवसे अपने पूर्वभवोंका वृत्तान्त सुनकर वह रत्नमालि आनन्दके लिए राज्य देकर सूर्यज पुत्रके साथ रत्नतिलक मुनिके समीपमें दीक्षित हो गया। वह मरकर तपके प्रभावसे शुक्र कल्पमें देव उत्पन्न हुआ। साथमें वह सूर्यज भी उसी कल्पमें देव हुआ। इसके पश्चात् सूर्यजका जीव उक्त कल्पसे आकर तुम और दूसरा (रत्नमालि) जनक हुआ है। अरिन्दमका जीव, जो शतार स्वर्गमें देव हुआ था, वहाँसे आकर जनकका भाई कनक हुआ है। वह अभयघोष तपके प्रभावसे ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ और फिर वहाँसे च्युत होकर हम (सर्वभूतहितशरण्य) हुए हैं। इस प्रकार उन सर्वभूतहितशरण्य मुनिके द्वारा प्ररूपित अपने पूर्वभवोंको सुनकर राजा दशरथ उन्हें नमस्कार करके अपने नगरमें वापिस आ गया और अपराजिता आदि पट्ट-

---

१. ज प ब श सूर्ययो। २. प सूर्ययेण। ३. ज प्रवव्राजे।

स्थितः इति मिथ्यादृष्टिरपि धारणो राजा सत्पात्रदानफलेनैवंविधोऽभूदन्यः सद्दृष्टिस्ततः किं न स्यादिति ॥९॥

[५१]

नानाकल्पांघ्रिपैर्यं समलसुखदैश्छन्ना[1] सुकुरवो
जातस्तेषु प्रभूतः सुगुणगणयुतो दानात् सुविमलात् ।
मृत्वा विद्युत्प्रपाताच्छयनतलगतो भामण्डलनृप-
स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥१०॥

अस्य कथा— अत्रैव विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां रथनूपुरे सीतादेवीभ्राता विद्याधरचक्री प्रभामण्डलो राजा सुखेन राज्यं कुर्वंस्तस्थौ । इतोऽयोध्यायामिभ्यकदम्बकाम्बिकयोः पुत्राव-शोकतिलकौ जातौ । सीतात्यजनमाकर्ण्य पितापुत्राः द्युतिभट्टारकनिकटे दीक्षिताः, सर्वागम-धराश्च भूत्वा त्रयोऽपि ताम्रचूडपुरे[2] चैत्यालयवन्दनार्थं गच्छन्तः पञ्चाशद्योजन[3]विस्तृत सीतार्णवाटवीमध्ये आसन्नप्रावृषि गृहीतयोगाः स्वेच्छाविहारं गच्छता प्रभामण्डलेन सोप-सर्गा दृष्टाः, तदनु समीपे ग्रामादीन् कृत्वा तेभ्य आहारदानं दत्तम् । तेन पुण्यसंग्रहं[4] कृत्वा बहुकालं राज्यं कुर्वन् तस्थौ, एकस्यां रात्रौ स्वशयनतले सुन्दरमालादेव्या सुप्तो विद्युता

रानियों, रामादि पुत्रों एवं अन्य बन्धुजनोंके साथ महाविभूतिसे परिपूर्ण राज्यका उपभोग करता हुआ स्थित हो गया । इस प्रकार मिथ्यादृष्टि भी वह धारण राजा सत्पात्रदानके फलसे जब ऐसा वैभव-शाली हुआ है तब क्या उसके प्रभावसे सम्यग्दृष्टि जीव वैसा न होगा ? अवश्य होगा ॥९॥

अनेक उत्तम गुणोंसे संयुक्त भामण्डल राजा शय्यातलपर स्थित होते हुए (सुप्त अवस्थामें) बिजलीके गिरनेसे मृत्युको प्राप्त होकर निर्मल दानके प्रभावसे उन कुरुओं (उत्तम भोगभूमि) में उत्पन्न हुआ जो कि अत्यन्त निर्मल सुख देनेवाले अनेक कल्पवृक्षोंसे व्याप्त हैं । इसलिये निर्मल गुणोंके समूहसे संयुक्त भव्य जीवोंको निरन्तर उत्तम मुनिके लिये दान देना चाहिये ॥१०॥

इसकी कथा इस प्रकार है— यहींपर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें स्थित रथनूपुर नगरमें सीता देवीका भाई व विद्याधरोंका चक्रवर्ती प्रभामण्डल राजा राज्य करता हुआ स्थित था । इधर अयोध्या पुरीमें धनी (सेठ) कदम्बक और अम्बिका (उसकी पत्नी) के अशोक और तिलक नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । पिता कदम्बक और वे दोनों पुत्र सीताके परित्यागकी वार्ताको सुनकर द्युतिभट्टारकके निकटमें दीक्षित हो गये । ये तीनों समस्त श्रुतके पारगामी होकर ताम्रचूड पुरमें स्थित चैत्यालयकी वन्दना करनेके लिये जा रहे थे । मार्गमें पचास योजन विस्तार्ण सीतार्णव नामक वनके मध्यमें पहुँचनेपर वर्षाकाल (चातुर्मास) का समय निकट आ गया । इसलिए उन तीनों मुनियोंने उसी वनके मध्यमें वर्षायोगको ग्रहण कर लिया । उस समय प्रभामण्डल इच्छानु-सार घूमता हुआ वहाँसे निकला । वह मुनियोंके इस उपसर्गको देखकर वहींपर निर्मापित ग्रामा-दिकोंमें स्थित होता हुआ उन्हें आहार देने लगा । इससे उसने बहुत पुण्यका संचय किया । तत्पश्चात् उसने बहुत समय तक राज्य किया । एक दिन रातमें वह अपनी शय्याके ऊपर सुन्दरमाला देवीके साथ सो रहा था । इसी समय अकस्मात् बिजली गिरी और उससे उसकी

---

१. फ ब सुखदैश्च्युत्वा श सुखदैश्छन्नो । २. फ ताम्रचूलपुर° ब ताम्रचूलपुरे । ३. श पञ्चाशत्-योजन । ४. ब तेन इति पुण्य° ।

मृत्वोत्तमभोगभूमावुत्पन्नः, इति रागी सम्यक्त्वहीनोऽपि मुनिदानफलेनोत्तमभोगभूमिजोऽभूत् सद्दृष्टिः किं न स्यादिति ॥१०॥

[५२]

देवी विष्णोः सुसीमा कथमपि भुवने क्रूरस्य तनुजा
जाता यक्षादिदेवी वरगुणमुनये भक्तिप्रगुणतः ।
दत्त्वा[1] दानात् सुभोगान् कुरुषु दिवि भुवि प्रभुज्य [2]विदितं-
स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥११॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डे सुराष्ट्रदेशे [3]द्वारावतीनगर्यां राजानौ पद्म-कृष्णौ बलनारायणौ । तत्र कृष्णस्याष्टौ पट्टमहादेव्यः । ताश्च का इत्युक्ते सत्यभामा रुक्मिणी जाम्बवती लक्ष्मणा सुसीमा गौरी पद्मावती गान्धारी च । तौ नृपावूर्जयन्तगिरिस्थं श्रीनेमिजिनं वन्दितुमाटतुस्तं समभ्यर्च्य वन्दित्वा स्वकोष्ठे उपविष्टौ धर्ममाकर्णयन्तौ तस्थतुः । तदा यथावसरे सुसीमादेवी वरदत्तगणधरं नत्वा स्वातीत-भाविभवांश्च पृष्टवती । स आह— धातकीखण्डे पूर्वमन्दर-पूर्वविदेहे[4]मङ्गलावतीविषये[5]रत्नसंचयपुरेशो विश्वसेनो देवी अनुंधरी, अमात्यः सुमतिः । राजा अयोध्याधिपपद्मसेनेन युधि निहतः । सुमतिना अनुंधरी प्रतिबोध्य व्रतं ग्राहिता

मृत्यु हो गई । तब वह उपर्युक्त मुनिदानके प्रभावसे उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार विषयानुरागी व सम्यक्त्वसे रहित होकर भी वह प्रभामण्डल मुनिदानके फलसे जब उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ तब भला सम्यग्दृष्टि जीव उस दानके फलसे कौन-सी विभूतिको प्राप्त नहीं होगा ? वह तो मोक्षसुखको भी प्राप्त कर सकता है ॥१०॥

लोकमें क्रूर यक्षिल ग्रामकूटकी लड़की यक्षदेवी किसी प्रकार उत्तम गुणोंसे संयुक्त मुनिके लिये अतिशय भक्तिपूर्वक आहारदान देकर उस दानके प्रभावसे कुरुओं (उत्तम भोगभूमि) में, स्वर्गमें और पृथिवीपर उत्तम भोगोंको भोगकर कृष्णकी सुसीमा नामकी पट्टरानी हुई; यह सबको विदित है । इसीलिये उत्तम गुणोंसे युक्त भव्य जीवोंको उत्तम मुनिके लिये दान देना चाहिये ॥११॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्यखण्डके भीतर सुराष्ट्र देशके अन्तर्गत द्वारावती नगरीमें पद्म और कृष्ण नामके क्रमशः बलदेव और नारायण राजा राज्य करते थे । उनमें कृष्णके सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती और गान्धारी नामकी आठ पट्टरानियाँ थीं । वे दोनों राजा ऊर्जयन्त पर्वतके ऊपर विराजमान श्री नेमि जिनेन्द्रकी वन्दनाके लिये गये । वहाँपर उनकी पूजा और वन्दना करनेके पश्चात् वे दोनों अपने कोठेमें बैठकर धर्म-श्रवण करने लगे । उस समय अवसर पाकर सुसीमा रानीने वरदत्त गणधरको नमस्कार करते हुए उनसे अपने पूर्व व भावी भवोंको पूछा । गणधर बोले— धातकीखण्ड द्वीपके भीतर पूर्वमेरु सम्बन्धी पूर्वविदेहमें मंगलावती नामका देश है । उसके अन्तर्गत रत्नसंचयपुरमें विश्वसेन नामका राजा राज्य करता था । रानीका नाम अनुन्धरी और मन्त्रीका नाम सुमति था । विश्वसेन राजा युद्धमें अयोध्याके राजा पद्मसेनके द्वारा मारा गया । तब मन्त्री सुमतिने अनुन्धरीको सम्बोधित

१. ज प दत्ता श दाआ । २. प फ श विदितं तस्मा॰ । ३. फ द्वारवती । ४. फ विदेहे । ५. फ विषये ।

आयुरन्ते विजयद्वारवासिविजय-यक्षस्य देवी ज्वलनवेगा बभूव। ततो बहु भ्रमित्वा जम्बूद्वीप-पूर्वविदेहे[1]रम्यावतीविषये[2]शालिग्रामे ग्रामकूटकयक्षिलदेवसेनयोर्यक्षदेवी[3] जाता। सा एकदा पूजोपकरणेन यक्षं पूजयितुं गता। तत्र धर्मसेनमुनिनिकटे धर्ममाकर्ण्य मुनिभ्य आहारदान-मदत्त। विमलाचलमेकदा सखीभिः सह क्रीडितुं गता। अकालवृष्टिभयात् गुहां प्रविष्टा सिंहेन भक्षिता, मृता हरिवर्षे जाता, ततो ज्योतिर्लोके[4], ततो जम्बूद्वीपपूर्वविदेहपुष्कलावती-विषयवीतशोकपुरेशाशोकश्रीमत्योः श्रीकान्ता जाता, कन्यैव जिनदत्तार्यिकान्ते दीक्षया दीक्षिता माहेन्द्रस्य प्रिया भूत्वा त्वं जातासि। इह तपसा कल्पवासिदेवो भूत्वागत्य मण्डलेश्वरो भविष्यसि, तपसा मुक्तश्च। हृष्टा सा श्रुत्वा। इति विवेकविकलापि कुटुम्बिनी दानफलेनैवंविधा जातान्यः किं न स्यादिति ॥११॥

[५३]

गान्धारी विष्णुजाया सुर-नरभवजं भुक्त्वा वरसुखं
दत्तान्ना[5] शुद्धभावाच्चिरविगतभवे याभून्नृपवधूः।

करके उसे व्रत ग्रहण करा दिये। वह आयुके अन्तमें मरकर विजयद्वारके ऊपर स्थित विजय यक्षकी ज्वलनवेगा नामकी देवी उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् वह अनेक योनियोंमें परिभ्रमण करके जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें रम्यावती देशके अन्तर्गत शालिग्राममें ग्रामकूट (ग्रामप्रमुख) यक्षिल और देवसेना दम्पतीके यक्षदेवी नामकी पुत्री हुई। एक दिन वह पूजाके उपकरण लेकर यक्षकी पूजाके लिये गई थी। वहाँ उसने धर्मसेन मुनिके निकटमें धर्मश्रवण करके मुनियोंके लिये आहारदान दिया। एक समय वह सखियोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिये विमल पर्वतपर गई। वहाँ असामयिक वर्षाके भयसे वह एक गुफाके भीतर प्रविष्ट हुई, जहाँ उसे सिंहने खा डाला। इस प्रकारसे मरणको प्राप्त होकर वह हरिवर्ष क्षेत्र (मध्यम भोगभूमि) में उत्पन्न हुई। पश्चात् वहाँसे वह ज्योतिर्लोकमें गई और फिर वहाँसे च्युत होकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें पुष्कलावती देशके अन्तर्गत वीत-शोकपुरके राजा अशोक और रानी श्रीमतीके श्रीकान्ता नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। रानी श्रीमतीके श्रीकान्ता नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। उसने कुमारी अवस्थामें ही जिनदत्ता आर्यिकाके समीपमें दीक्षा ग्रहण कर ली। उसके प्रभावसे वह शरीरको छोड़कर माहेन्द्र इन्द्रकी वल्लभा हुई। तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर तुम (सुसीमा) उत्पन्न हुई हो। यहाँपर तुम तपको स्वीकार करके उसके प्रभावसे कल्पवासी देव होओगी और फिर वहाँसे च्युत होनेपर मण्डलेश्वर होकर तपश्चरणके प्रभावसे मुक्तिको भी प्राप्त करोगी। इस प्रकार वरदत्त गणधरके द्वारा निरूपित अपने भवोंको सुनकर सुसीमाको बहुत हर्ष हुआ। इस प्रकार विवेकसे रहित भी वह कुटुम्बिनी (कृषक-स्त्री) जब दानके फलसे इस प्रकारकी विभूतिसे युक्त हुई है तब भला अन्य विवेकी भव्य जीव क्या उसके फलसे वैसी विभूतिसे संयुक्त न होगा? अवश्य होगा ॥११॥

जिसने कुछ भवोंके पूर्वमें रुद्रदास राजाकी पत्नी होकर शुद्ध भावसे मुनिके लिए आहार दिया था वह देव और मनुष्य भवके उत्तम सुखको भोगकर कृष्णकी पत्नी गान्धारी हुई।

---

१. क विदेहे। २. क विषये। ३. क ब यक्षा देवी। ४. ज प ज्योतिर्लोके ब यीतिर्लोके। ५. क दत्तान्नं।

लोके दानाद्धि भावे किमहमनुपमं सौख्यं तनुभृतां
तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥१२॥

अस्य कथा— अथ गान्धारी तत्र तमेव तथा स्वभवसंबन्धं पृच्छति स्म । स आह— अत्रैवायोध्याधिपरुद्रदासस्य प्रिया विनयश्रीर्वरभट्टारकदानप्रभावेनोत्तरकुरुषूत्पन्ना, ततश्चन्द्रस्य देवी जाता । ततोऽत्रैव विजयार्धोत्तरश्रेणौ गगनवल्लभपुरेशविद्युद्वेगविद्युन्मत्योर्विनयश्रीर्जाता, नित्यालोकपुरेशमहेन्द्रविक्रमेण परिणीता । महेन्द्रविक्रमश्चारणान्ते धर्मश्रुतेरनन्तरं हरिवाहनं राज्यस्थं कृत्वा निष्क्रान्तः । विनयश्रीस्तपसा सौधर्मेन्द्रस्य देवी भूत्वा त्वं जातासि, तथैव सेत्स्यसि । श्रुत्वा सापि हृष्टा । एवं विवेकरहिता स्त्री बाला सकृत्कृतमुनिदानफलेनैवंविधा बभूवान्यः किं न स्यादिति ॥१२॥

[५४]

गौरी श्रीविष्णुभार्याजनि जनविदिता विख्यातविभवा
पूर्वं या वैश्यपुत्री दिविज-नृभवजं सौख्यं ह्यनुपमम् ।
भुक्त्वा दानस्य सुफलात्तदनु बहुगुणा सुधर्मैविमला
तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥१३॥

लोकमें प्राणियोंको दानके प्रभावसे जो अनुपम सुख प्राप्त होता है उसके विषयमें मैं क्या कहूँ ? इसलिए निर्मल गुणोंके समूहसे संयुक्त भव्य जीवोंको उत्तम मुनिके लिए दान देना चाहिए ॥१२॥

इसकी कथा इस प्रकार है— पूर्व कथानकमें जिस प्रकार वरदत्त गणधरसे सुसीमाने अपने भवोंको पूछा था उसी प्रकार गान्धारीने भी उनसे अपने पूर्व व भावी भवोंके सम्बन्धमें प्रश्न किया । तदनुसार गणधर बोले— यहींपर अयोध्या नगरीके राजा रुद्रदासके विनयश्री नामकी पत्नी थी । वह उत्तम मुनिदान— पतिके साथ श्रीधर मुनिके लिए दिये गये आहारदान—के प्रभावसे उत्तरकुरुमें उत्पन्न होकर तत्पश्चात् ज्योतिर्लोकमें चन्द्रकी देवी हुई । फिर वहाँसे च्युत होकर वह यहींपर विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणिमें गगनवल्लभपुरके राजा विद्युद्वेग और रानी विद्युन्मतिके विनयश्री नामकी पुत्री उत्पन्न हुई । उसका विवाह नित्यालोकपुरके राजा महेन्द्रविक्रमके साथ हुआ । महेन्द्रविक्रमने चारणमुनिसे धर्मश्रवण करके हरिवाहन पुत्रको राज्य दिया और स्वयं दीक्षा ले ली । वह विनयश्री तप (सर्वभद्र उपवास) को स्वीकार कर उसके प्रभावसे सौधर्म इन्द्रकी देवी हुई और फिर वहाँसे च्युत होकर यहाँ तुम उत्पन्न हुई हो । सुसीमाके समान तुम भी तीसरे भवमें मोक्षको प्राप्त करोगी । इन उपर्युक्त भवोंको सुनकर गान्धारीको भी बहुत हर्ष हुआ । इस प्रकार जब विवेकसे रहित बाला स्त्री एक बार मुनिको दान देकर उसके फलसे ऐसी विभूतिको प्राप्त हुई है तब भला दूसरा विवेकी जीव क्या उसके फलसे अनुपम विभूतिका भोक्ता न होगा ? अवश्य होगा ॥१२॥

जो पहले वैश्यकी पुत्री (नन्दा) थी वह दानके उत्तम फलसे देवगति और मनुष्यभवके अनुपम सुखको भोगकर तत्पश्चात् निर्मल धर्मको प्राप्त करके बहुत गुणों एवं प्रसिद्ध विभूतिसे सुशोभित होती हुई श्रीकृष्णकी पत्नी गौरी हुई है, इस बातको सब ही जन जानते हैं । इसलिए निर्मल गुणसमूहसे संयुक्त भव्य जीवोंको उत्तम मुनिके लिए दान देना चाहिए ॥१३॥

---

१. क किमिह । २. ब नुभवं सौख्यं । ३. ब दानस्य फला°।

अस्य कथा— अथ गौरी तत्र तमेव तथा स्वभवानपृच्छत् । स आह— अत्रैवेभपुरे इभ्यधनदेवस्य वल्लभा यशस्विनी[1] खे चारणान्[2] दृष्ट्वा जातिस्मरा[3] जाता । कथम् । धातकीखण्डपूर्वमन्दरापरविदेहारिष्टपुरे आनन्दश्रेष्ठिनः पत्नी नन्दा अमितगति-सागरचन्द्रमुनिदानेन देवकुरुषु जाता । तत ईशानेन्द्रस्य देव्यभूवम्, ततोऽहमिति निरूपितं सखीनाम् । ततः सुभद्राचार्यान्ते गृहीतप्रोषधफलेन सौधर्मेन्द्रस्य प्रिया जाता । ततः कौशाम्ब्यां इभ्यसमुद्रदत्तसुमित्रयोरपत्यं धर्ममतिर्जाता[4] जिनमतिक्षान्तिकान्ते[5] तपसा शुक्रेन्द्रस्य प्रिया भूत्वा त्वं जातासि । तथापि तथैव मुक्तिः । श्रुत्वा हृष्टा सा । एवं विवेकविकलापि स्त्री तथाविधा जातान्यः किं न स्यादिति ॥ १३ ॥

[५५]

दत्त्वा दानं मुनिभ्यो नृसुरगतिभवं भूपालतनुजा
सेवित्वा सारसौख्यं तदमलफलतो विष्णोः सुवनिता ।
जाता पद्मावती सा जिनपदकमले भृङ्गी ह्यमलिना
तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥ १४ ॥

इसकी कथा इस प्रकार है— सुसीमा और गान्धारीके समान जब गौरीने भी उन वरदत्त गणधरसे अपने भवोंको पूछा तब वे बोले— यहींपर इभ (इभ्य) पुरमें स्थित सेठ धनदेवके यशस्विनी नामकी पत्नी थी । एक दिन उसे आकाशमें जाते हुए चारणमुनिको देखकर जातिस्मरण हो गया । तब उसने अपनी सखियोंको बतलाया कि धातकीखण्ड द्वीपमें स्थित पूर्वमेरु सम्बन्धी अपरविदेहके भीतर अरिष्टपुरमें एक आनन्द नामका सेठ रहता था । उसकी पत्नीका नाम नन्दा था । वह अमितगति और सागरचन्द्र मुनियोंको दान देनेसे देवकुरुमें उत्पन्न हुई । वहाँ उत्तम भोगभूमिके सुखको भोगकर तत्पश्चात् ईशान इन्द्रकी देवी हुई । तत्पश्चात् वहांसे च्युत होकर यहाँ मैं उत्पन्न हुई हूँ । यह कहकर उसने (यशस्विनीने) सुभद्राचार्यके निकटमें प्रोषधव्रतको ग्रहण कर लिया । उसके प्रभावसे वह मरणको प्राप्त होकर सौधर्म इन्द्रकी वल्लभा हुई । वहाँसे च्युत होकर वह कौशाम्बी पुरीमें सेठ समुद्रदत्त और सुमित्राके धर्ममति नामकी पुत्री हुई । उसने जिनमति आर्यिकाके समीपमें जिनगुण नामक तपको ग्रहण किया । उसके प्रभावसे वह शुक्र-इन्द्रकी वल्लभा हुई और फिर वहाँसे च्युत होकर तुम उत्पन्न हुई हो । तुम भी सुसीमा और गान्धारीके समान तीसरे भवमें मुक्तिको प्राप्त करोगी । उपर्युक्त भवोंके वृत्तान्तको सुनकर गौरीको अपार हर्ष हुआ । इस प्रकार विवेकसे रहित भी वह स्त्री जब इस प्रकारकी विभूतिको प्राप्त हुई है तब दूसरा विवेकी जीव वैसा क्यों न होगा ? अवश्य होगा ॥१३॥

अपराजित राजाकी पुत्री विनयश्री मुनियोंके लिये दान देकर उसके निर्मल फलसे मनुष्य और देवगतिके श्रेष्ठ सुखका अनुभव करती हुई पद्मावती नामकी कृष्णकी पत्नी हुई जो जिन भगवान्के चरण-कमलोंमें भ्रमरीके समान अनुराग रखती थी । इसलिए निर्मल गुणसमूहसे संयुक्त भव्य जीवोंको उत्तम मुनिके लिये दान देना चाहिये ॥१४॥

---

१. प यशश्विनी ब यसस्विनी श यशस्वनी । २. फ ब खेचराणां । ३. प ब श जातिस्मरो । ४. फ धर्ममती जाता । ५. ज प °कंतिकान्ते ।

अस्य कथा— पद्मावत्या तत्र तथैव स्वभवसंबन्धं[1] पृष्टः सन्नाह-अत्रैवावन्तिषूज्जयिनी-शापराजितविजययोर्विनयश्रीर्जाता, हस्तिशीर्षपुरेश-हरिषेणेन परिणीता, वरदत्तमुनये दत्त-आहारदाना कतिपयदिनैः शय्यागृहे पत्या सह कालागरुप्रवरधूमेन मृता, हैमवते जाता। ततश्चन्द्रस्य देवी बभूव। ततो मगधदेश-शाल्मलीखण्डग्रामे ग्रामकूटकदेविल-जयदेव्योः[2] पद्मा जाता, वरधर्मयोगिसकाशे [3]अज्ञातवृक्षफलाभक्षणगृहीतव्रता, एकदा [4]चण्डदा[बा]णभिल्लेन तद्ग्रामजनो[5] बन्दिग्राहं गृहीत्वा स्वपल्लीं नीतः। सोऽपि[6] राजगृहेशसिंहरथेन हतः। तत्रत्या जनाः पलाय्याटवीं प्रविष्टाः[7], किंपाकफलभक्षणान्मृताः। सा [8]व्रतप्रभावेन जीविता स्वग्रामम् आगत्य बहुकालेन मृता, हैमवते जाता, ततः स्वयंप्रभाचलनिवासिस्वयंप्रभदेवस्य देवी जाता, ततो भरते जयन्तपुरेशश्रीधर-श्रीमत्योर्विमलश्रीर्जाता, भद्रिलपुरेशमेघवाहनाय दत्ता। मेघघोषं सुतं प्राप्य पद्मावतीक्षान्तिकाभ्यासे तपसा सहस्रारेन्द्रस्य देवी भूत्वा त्वं जातासि, तथैव सेत्स्यसीति। निशम्य सापि हृष्टा। इति विवेकविकला मिथ्यादृष्टिरपि स्त्री सत्पात्र-

---

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी प्रकारसे पद्मावतीने भी उनसे अपने भव पूछे। तदनुसार वरदत्त गणधरने उसके भव इस प्रकार बतलाये— यहींपर अवन्ति देशमें स्थित उज्जयिनी पुरीके राजा अपराजित और रानी विजयाके एक विनयश्री नामकी पुत्री थी जो हस्तिशीर्ष पुरके राजा हरिषेणको दी गई थी। उसने वरदत्त मुनिके लिये आहारदान दिया था। कुछ दिनोंके पश्चात् वह रात्रिमें पतिके साथ शयनागारमें सो रही थी। वहाँ वह कालागरुके धुएँसे पतिके साथ मरणको प्राप्त होकर हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) में उत्पन्न हुई। फिर वह आयुके अन्तमें मरणको प्राप्त होकर चन्द्रकी देवी हुई। वहाँसे च्युत होकर मगध देशके अन्तर्गत शाल्मलीखण्ड ग्राममें गाँवके मुखिया देविल और जयदेवीके पद्मा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। उसने वरधर्म मुनिके समीपमें अनजान वृक्षके फलोंके न खानेका नियम लिया था। एक समय चण्डदा(बा)ण भीलने उस गाँवके मनुष्योंको पकड़वा कर अपनी भील बस्तीमें बुलाया। तब उन सबके साथ पद्मा भी पहुँची। उस भीलको राजगृहके राजा सिंहरथने मार डाला। तब उक्त भीलके द्वारा बन्धनबद्ध किये गये वे सब भागकर एक वनके भीतर प्रविष्ट हुए और वहाँ किंपाक फलोंके खानेसे मर गये। परन्तु पद्मा अज्ञात-फल-अभक्षण व्रतके प्रभावसे जीवित रहकर अपने गाँवमें वापस आ गई। वहाँ वह बहुत काल तक रही, तत्पश्चात् मृत्युको प्राप्त होकर हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) में उत्पन्न हुई। फिर वहाँसे निकलकर स्वयंप्रभ पर्वतके ऊपर स्थित स्वयंप्रभ-देवकी देवी हुई। तत्पश्चात् वहाँसे भी च्युत होकर भरतक्षेत्रके भीतर जयन्तपुरके राजा श्रीधर और रानी श्रीमतीके विमलश्री नामकी पुत्री हुई जो भद्रिलपुरके राजा मेघवाहनके लिए दे दी गई। उसे मेघघोष नामका पुत्र प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् वह पद्मावती आर्यिकाके निकटमें दीक्षित होकर तपके प्रभावसे सहस्रार-इन्द्रकी देवी हुई और फिर वहाँसे च्युत होकर तुम हुई हो। सुसीमा आदिके समान तुम भी तीसरे भवमें सिद्धिको प्राप्त करोगी। इस प्रकार अपने भवोंको सुनकर वह पद्मावती भी हर्षको प्राप्त हुई। जब विवेकसे रहित मिथ्यादृष्टि भी स्त्री सत्पात्र–

---

१. ब °संबंधः। २. ब देविलविजयदेव्योः। ३. श अज्ञातवृष°। ४. फ चण्डदान। ५. फ तद्ग्राम-जनो। ६. ब– प्रतिपाठोऽयम्। श सापि। ७. ब पल्याज्याटवीं प्रविष्टः। ८. ब भक्षणान्मूर्छिता व्रत°।

दानेन तथाविधा जातान्यः किं न स्यादिति ॥१४॥

[५६]

यद्धस्ते शातकुम्भं पतितमपि मली संभूतममलं
संजातः सोऽपि दानाद् दिवि मणिभवने देवीसुरमणः।
तस्मादासीत् स धन्यः सुगुणनिधिपतिर्वैश्यो विमलधी-
स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥ १५ ॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डेऽवन्तीविषये उज्जयिन्यां राजावनिपालस्तत्रैभ्यो वैश्यो धनपालो भार्या प्रभावती। तस्या देवदत्तादयः पुत्राः सप्त। ते च केचिद्क्षराभ्यासं केचिद्-व्यवहारं कुर्वन्तस्तस्थुः। अन्यदा प्रभावती चतुर्थस्नानं कृत्वा पत्यां[2] सुप्ता रात्रिपश्चिमयामे धवलोत्तुङ्गवृषभ-कल्पवृक्ष-चन्द्रादीनां स्वप्ने स्व-गृहप्रवेशमपश्यत्। प्रभाते भर्तुर्निरूपिते सोऽवोचत्— ते वैश्यकुलप्रधानं त्यागी स्वकीर्त्या धवलीकृतजगत्त्रयः पुत्रो भविष्यतीति। श्रुत्वा साति हृष्टा, गर्भचिह्ने सति नवमासावसाने पुत्रमसूत। तन्नालं पूरितम्। खनने द्रव्यपूर्णः कटाहो निर्जगाम, तन्मज्जनार्थं खननप्रदेशेऽपि। धनपालेन तत्स्वरूपमवनिपालो विज्ञप्तो बभाण 'त्वत्पुत्रपुण्येन निर्गतं यद् द्रव्यं तस्य स एव स्वामी' इति। तदनु श्रेष्ठी संतुष्टो गृहमागत्य

दानसे वैसी विभूतिको प्राप्त हुई है तब क्या अन्य विवेकी भव्य जीव उसके प्रभावसे वैसी विभूतिको नहीं प्राप्त होगा ? अवश्य होगा ॥१४॥

जिसके हाथमेंसे गिरा हुआ निर्मल सोना भी मलिन हो गया वह (अकृतपुण्य) भी मुनि-दानके प्रभावसे स्वर्गके भीतर मणिमय भवनमें उत्पन्न होकर देवियोंके मध्यमें रमनेवाला देव हुआ और फिर वहाँसे च्युत होकर उत्तम गुणोंसे संयुक्त निर्मल बुद्धिका धारक धन्यकुमार वैश्य हुआ। इसीलिये निर्मल गुणोंके समूहसे संयुक्त भव्य जीवोंको उत्तम मुनिके लिये दान देना चाहिये ॥१५॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्य खण्डके भीतर अवन्ती देशमें उज्जयिनी नामकी नगरी है। वहाँ अवनिपाल नामका राजा राज्य करता था। वहींपर धनपाल नामका एक धनी वैश्य था। उसकी पत्नीका नाम प्रभावती था। उसके देवदत्त आदि सात पुत्र थे। उनमें कुछ तो शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और कुछ व्यवसाय करते थे। एक समय प्रभावती चतुर्थ-स्नान करके पतिके साथ सोई हुई थी। उस समय उसने रात्रिके पिछले प्रहरमें स्वप्नमें उन्नत श्वेत बैल, कल्पवृक्ष और चन्द्र आदिकोंको अपने घरमें प्रवेश करते हुए देखा। प्रभात हो जानेपर उसने उक्त स्वप्नोंका वृत्तान्त पतिसे कहा। तब उसने बतलाया कि तुम्हारे वैश्य कुलमें प्रधान, दानी एवं अपनी कीर्तिसे तीनों लोकोंको धवलित करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर प्रभावतीको बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् उसके गर्भके चिह्न दिखने लगे। इसके बाद उसके नौ महीनेके अन्तमें पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके नालको गाड़नेके लिये जहाँ भूमि खोदी गई थी वहाँ धनसे परिपूर्ण एक कड़ाही निकली। इसी प्रकार उसको नहलानेके लिये खोदे गये स्थानमें भी धन प्राप्त हुआ। इसका समाचार धनपालने अवनिपाल राजाको दिया। इसपर राजाने कहा कि यह तुम्हारे पुत्रके पुण्यसे प्राप्त हुआ है, इसलिए उसका स्वामी तुम्हारा वह पुत्र ही है। इससे सन्तुष्ट होकर सेठ घर वापस

---

१. ब -प्रतिपाठोऽयम्। श पुत्राः सप्तति के०। २. ब पतिना।

महोत्साहेन तज्जातकर्म चकार। दशमदिने तत्रत्यविश्वजिनालयेष्वभिषेकादिकं कृत्वा दीनानाथान् स्वर्णादिदानेन प्रीणयित्वा तस्मिन्नुत्पन्ने स्ववर्ग्या धन्या जाता इति तस्य धन्यकुमार इति नाम कृतम्। स धन्यकुमारः स्वबालक्रीडया बन्धून् संतोषयामास। जैनोपाध्यायान्तिकेऽखिलकलाकुशलो जज्ञे। तस्यागभोगादिकं विलोक्य देवदत्तादयो बभणुः 'वयमुपार्जका अयं भक्षकः' इति। तत् श्रुत्वा प्रभावत्या श्रेष्ठी भणितो धन्यकुमारं व्यवहारकरणे योजय। ततः श्रेष्ठिनोत्तममुहूर्ते शतद्रव्यं तत्पोत्ये[1] निक्षिप्यापणे उपवेशितः, उक्तं च तस्यैतद् द्रव्यं[2] दत्त्वा किंचिद् ग्राह्यम्, तदपि दत्त्वा किंचिद् ग्राह्यम्, तदपि दत्त्वा किंचिदिति यावद् भोजनकालो भवति तावदित्थं व्यवहारं कृत्वा पश्चाद् गृहीतं वस्तु षण्ठस्य हस्ते दत्त्वा भोक्तुमागच्छेति निरूप्य श्रेष्ठी गृहं गतः। इतो धन्यकुमारोऽङ्गरक्षकयुतो यावदापणे आस्ते तावच्चतुर्बलीवर्दयुतं काष्ठभृतं शकटं कोऽपि विक्रयितुमानीतवान्। तेन द्रव्येण तत् संजग्राह[3] कुमारस्तदपि दत्त्वा मेषं गृहीतवान्, तमपि दत्त्वा मञ्चकपादकान् जग्राह। ततो गृहमाययौ। तदागमने माता 'पुत्रः प्रथमदिने व्यवहारं कृत्वा समागतः' इति महाप्रभावनां चकार। तां दृष्ट्वा ज्येष्ठपुत्रा ऊचुः— अयं प्रथमदिन एव शतद्रव्यं विनाश्यागतः। तथापि माताऽस्यैवंविधां[4] प्रभावनां करोत्यस्मात्तु

आया। फिर उसने अतिशय उत्साहके साथ पुत्रका जन्मोत्सव मनाया। पश्चात् दसवें दिन उसने वहाँके समस्त जिनालयोंमें अभिषेक आदि कराकर दीन और अनाथ जनोंको सुवर्ण आदिका दान दिया। उसके उत्पन्न होनेपर चूँकि सजातीय जन धन्य हुए थे अतएव उसका नाम धन्यकुमार रखा गया। वह धन्यकुमार अपनी बाल-लीलासे बन्धुजनोंको सन्तुष्ट करने लगा। पश्चात् वह जैन उपाध्यायके समीपमें पढ़ करके समस्त कलाओंमें कुशल हो गया। उसके दान और भोग आदिको देखकर देवदत्त आदि कहने लगे कि हम लोग तो कमाते हैं और यह धन्यकुमार उस द्रव्यको यों ही उड़ाता-खाता है। यह सुनकर प्रभावतीने सेठसे कहा कि धन्यकुमारको किसी व्यापार कार्यमें लगाओ। तब सेठने शुभ मुहूर्तमें उसके कपड़ेमें सौ मुद्राएँ रखकर उसे दूकानपर बैठाते हुए कहा कि इस धनको देकर उसके बदलेमें किसी दूसरी वस्तुको लेना, फिर उसको भी देकर अन्य वस्तुको लेना, तत्पश्चात् उसको भी देकर और किसी वस्तुको लेना; इस प्रकारका व्यवहार तब तक करना जब तक कि भोजनका समय न हो जावे। इस प्रकारसे व्यवहार करके अन्तमें जो वस्तु प्राप्त हो उसे भृत्यके हाथमें देकर भोजनके लिए आ जाना। इस प्रकार कहकर सेठ घर चला गया। इधर धन्यकुमार अंगरक्षकोंसे संयुक्त होकर दूकानपर बैठा था कि उस समय कोई चार बैलोंसे संयुक्त लकड़ियोंसे भरी हुई गाड़ीको बेचनेके लिये लाया। तब धन्यकुमारने उन सौ मुद्राओंको देकर उस गाड़ीको खरीद लिया। फिर उसको देकर उसने बदलेमें एक मेंढ़ाको ले लिया। तत्पश्चात् उसको भी देकर उसने खाटके चार पायोंको खरीद लिया। फिर वह घर आ गया। उसके घर वापस आनेपर माताने यह विचार करके कि 'पुत्र पहले दिन व्यवसाय करके आया है' उसकी बहुत प्रभावना की। उसको उत्सव मनाते हुए देखकर ज्येष्ठ पुत्रोंने कहा कि यह पहले दिन ही सौ मुद्राओंको नष्ट करके आया है फिर भी माँ इसकी इस प्रकारसे प्रभा-

१ ब तत्पोत्ते। २ ज तस्यैव द्रव्यं फ तस्मै तद् द्रव्यं। ३. ज तत् संजग्राह ब तत्त संजग्राह। ४. फ माता तस्यैवंविधां।

महाद्रव्यं समुपार्ज्यागतेषु संमुखमपि[1] नालोकते। अहो चित्रम्[2]। तद्वचनमाकर्ण्य माता मनसि निधाय धन्यकुमारादिभ्यो भोजनं दत्त्वा स्वयमपि भुक्त्वा काष्ठपात्रीभृतजले तान् मञ्चकपादान् प्रक्षालयन्ती तस्थौ। ते च पुष्कलीभूताः प्रक्षालनावसरे तज्झम्पनेऽपसृते[3] ततो गलितानि रत्नानि, भूर्जपत्रं[4] च निर्गतं। तानि स्वपुत्राणां दर्शयति स्म। ततस्ते गलितगर्वा बभूवुः। तैं[5] कस्य मञ्चकस्य पादास्तत्पत्रं केन कथं लिखितमित्युक्ते[6] आह— पूर्वं तत्पुरे वसुमित्रनामा श्रेष्ठी बभूवातिपुण्यवान्। तत्पुण्येन तद्गृहे नवनिधानानि जातानि। तेनैकदा तत्रोद्यानमागतोऽवधिज्ञानी मुनिः पृष्टोऽस्मन्नवनिधीनाम् अग्रे कः स्वामी स्यात्। तैरुक्तम्— धनपालश्रेष्ठिनः पुत्रो धन्यकुमारः स्वामी भवेत्। तत् श्रुत्वा वसुमित्रः स्वगृहमेत्यैतत्पत्रं लिखितवान्। कथम्। श्रीमन्महामण्डलेश्वरावनिपालराज्ये यो भविष्यति धन्यकुमारो वैश्यकुलतिलकः[7] स मद्गृहे एतदन्तःप्रदेशस्थनवनिधीन्[8] गृहीत्वा सुखेन तिष्ठतु। मङ्गलं महाश्रीरिति। एतद्रत्नैः समं मञ्चकपादेषु निक्षिप्य श्रेष्ठी सुखेन स्थितः, स्वायुरन्ते संन्यासेन दिवं ययौ। तस्मिन् गते तद्गृहस्था जना सर्वेऽपि मरकेण मृताः। पश्चाद्यो मृतः स तेनैव मञ्चकेन मातङ्गैः संस्कारयितुं नीतः। तत्पादांश्चाण्डालहस्तेन धन्यकुमारो जग्राह, तत्पत्रं वाचितवान्[10]।

बना कर रही है। और इधर हम बहुत-सा धन कमाकर लाते हैं फिर भी वह हमारी ओर देखती भी नहीं है; यह कैसी विचित्र बात है। उनके इस उलाहनेको सुनकर माताने उसे मनमें रखते हुए धन्यकुमार आदिको भोजन कराया और तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन किया। बादमें उसने एक लकड़ीके पात्रमें पानी भरकर उन खाटके पायोंको धोना प्रारम्भ किया। इस क्रियासे वे निर्मल हो गये। धोनेके समयमें मलके दूर हो जानेपर उनसे रत्न गिरे और साथ ही एक भोजपत्र भी निकला। प्रभावतीने इन सबको उन पुत्रोंके लिये दिखलाया। इससे उनका अभिमान नष्ट हो गया। वे पाये किसकी खाटके थे और वह पत्र किसने व कैसे लिखा था, इसका वृत्तान्त इस प्रकार है—

पहिले उस नगरमें एक अतिशय पुण्यवान् वसुमित्र नामका सेठ रहता था। उसके पुण्योदयसे उसके घरमें नौ निधियाँ उत्पन्न हुई थीं। एक दिन उसके उद्यानमें एक अवधिज्ञानी मुनि आये थे। तब सेठ वसुमित्रने उनसे पूछा था कि हमारी इन नौ निधियोंका स्वामी आगे कौन होगा। इसके उत्तरमें उन्होंने यह कहा था कि उनका स्वामी धनपाल सेठका पुत्र धन्यकुमार होगा। इस उत्तरको सुनकर वसुमित्र सेठने घर आकर यह पत्र लिखा था— श्रीमान् महामण्डलेश्वर अवनिपाल राजाके राज्यमें वैश्यकुलमें श्रेष्ठ जो कोई धन्यकुमार नामका उत्तम पुरुष होगा वह मेरे घरके भीतर अमुक-अमुक स्थानमें स्थित नौ निधियोंको लेकर सुखसे स्थित हो। महती लक्ष्मीसे युक्त उसका कल्याण हो। तत्पश्चात् वह रत्नोंके साथ इस पत्रको खाटके पायोंमें रखकर सुखसे स्थित हो गया। फिर वह आयुके अन्तमें संन्यासके साथ मरणको प्राप्त होकर स्वर्गमें गया। उसके मरनेके पश्चात् उस घरके सब ही मनुष्य मरी रोग (प्लेग) से मर गये उनमें जो सबके पीछे मरा उसे अग्निसंस्कारके लिये चाण्डाल उसी खाटसे स्मशानमें ले गये। उसके पायोंको

१. फ ब सन्मुखमपि। २. ब °लोकते हो विचित्रं। ३. ब तज्झंपनोपमृते। ४. ज प श कूचिपत्रं। ५. ब तं। ६. श °मित्युक्तो। ७. फ वैश्यकुले तिलकः। ८. ब प्रदेशस्था नवनिधीन्। ९. ब तत्पादांश्चंडालहस्ते धन्य°। १०. ब तत्पत्रं च वाचितवान् श तत्रत्यं वाचितवान्।

ततस्तद्गृहं राजपार्श्वे महाग्रहेण याचितं प्राप्य प्रविश्य निधीन् गृहीत्वा त्यागादिकं कुर्वन् राजमान्यः स्वकीर्त्या व्यापितजगत्त्रयः सुखेन स्थितः।

तद्रूपाद्यतिशयमालोक्य कश्चिदिभ्यो धनपालस्यावदत्— मत्पुत्रीं धन्यकुमाराय दास्यामि। धनपालोऽब्रूत— ज्येष्ठाय प्रयच्छ। स बभाण— न, यदाकदाचिद्धन्यायैव दास्यामि, नान्यस्मै। तदवधार्य ते[1] ज्येष्ठभ्रातरस्तं द्वेष्टुं लग्नाः। स न जानाति। एकदा तैरुद्यानस्थां महावापिकां क्रीडितुं[2] नीतः। स तत्तटे उपविश्य तत्क्रीडामवलोकयंस्तस्थौ। आगत्यैकेन वापिकायां निर्लोठितः 'णमो[3] अरिहंताणं' इति विजल्पन् पपात। ते तस्योपरि पाषाणादिकं निक्षिप्य 'मृतः' इति संतोषेण जग्मुः। इतः स कुमारः पुण्यदेवताभिस्तज्जलनिर्गमरन्ध्रेण निःसारितः, पुराद्बहिः निर्जगाम, तदसहिष्णुत्वमवगम्य देशान्तरं चचाल। गच्छन्नेकस्मिन् क्षेत्रे हलं खेटयन्तं कृषीवलं लुलोके, [4]चिन्तयांचकार— सर्वाणि विज्ञानानि मयाभ्यस्तानि, इदमपूर्वम्, तन्निकटं गत्वा विलोकयन् तस्थौ। पामरस्तद्रूपं विलोक्य विस्मयं जगामोक्तवांश्च— भो प्रभोऽहं[5] शुद्धः कुटुम्बी, मया दध्योदन आनीतोऽस्ति, भोक्ष्यसे। कुमारोऽब्रूत– भोक्ष्ये।

चाण्डालके हाथसे धन्यकुमारने लिया। तत्पश्चात् वह उस पत्रको पढ़कर राजाके पास गया। वहाँ उसने आग्रहपूर्वक राजासे वसुमित्र सेठके घरको माँगा। तदनुसार वह उसकी स्वीकृति पाकर सेठ वसुमित्रके उस घरमें गया और उन निधियोंको प्राप्त करके दानादि सत्कार्योंमें प्रवृत्त हुआ। इससे उसने राजमान्य होकर अपनी कीर्तिसे तीनों लोकोंको व्याप्त कर दिया। इस प्रकार वह सुखसे कालयापन करने लगा।

धन्यकुमारकी लोकातिशायिनी सुन्दरता आदिको देखकर कोई धनिक धनपालके पास आया व उससे बोला कि मैं अपनी पुत्री धन्यकुमारके लिए दूँगा। इसपर धनपालने कहा कि तुम उसे मेरे बड़े पुत्रके लिए दे दो। यह सुनकर आगन्तुक सेठने कहा कि नहीं, जिस किसी भी समय-में सम्भव हुआ मैं अपनी उस पुत्रीको धन्यकुमारके लिए ही दूँगा, अन्य किसी भी कुमारके लिए मैं उसे नहीं देना चाहता हूँ। उसके इस निश्चयको देखकर धन्यकुमारके वे सब बड़े भाई उससे द्वेष करने लगे। परन्तु यह धन्यकुमारको ज्ञात नहीं हुआ। एक समय वे सब उसे उद्यानके भीतर स्थित बावड़ीमें क्रीड़ा करनेके लिए ले गये। धन्यकुमार वहाँ बावड़ीके किनारे बैठकर उनकी क्रीड़ाको देखने लगा। इसी बीच किसीने आकर उसे बावड़ीमें ढकेल दिया। तब वह 'णमो अरिहंताणं' कहता हुआ उस बावड़ीमें जा गिरा। तत्पश्चात् उन सबने उसके ऊपर पत्थर आदि फेंके। अन्तमें वे उसे मर गया जानकर सन्तोषके साथ घर चले गये। इधर पुण्य देवताओंने उसे जलके निकलनेकी नाली द्वारा उस बावड़ीसे बाहर निकाल दिया। तब उसने नगरके बाहर जाकर अपने उन भाइयोंकी असहनशीलतापर विचार किया। अन्तमें वह अब यहाँ अपना रहना उचित न समझकर देशान्तरको चला गया। मार्गमें जाते हुए उसने एक खेतपर हलसे भूमिको जोतते हुए किसानको देखा। उसे देखकर धन्यकुमारने विचार किया कि मैंने सब विज्ञानोंका अभ्यास किया है, परन्तु यह तो मुझे अपूर्व ही दिखता है। यही विचार करता हुआ वह उस किसानके पास गया और उसकी भूमि जोतनेकी क्रियाको देखने लगा। उसके सुन्दर रूपको देखकर किसानको बहुत आश्चर्य हुआ। वह धन्यकुमारसे बोला कि हे महाशय! मैं शुद्ध किसान हूँ। मैं घरसे

१. ब 'ते' नास्ति। २. क्रीडतुं। ३. ज ब श नमो। ४. श लुलोके ददर्श चिन्त°। ५. क प्रभोऽहं श भोऽहं।

कुटुम्बी तं हलसंनिधौ निधाय पात्रपत्रिकार्थं पत्राण्यानेतुं ययौ। तस्मिन् गते कुमारो हलमुष्टिं धृत्वा बलीवर्दौ खेटयति स्म। तदा हलमुखेन भूमेरीषद्विदारणे सति स्वर्णभृतः ताम्रकलशो निर्गतः। तं दृष्ट्वा पूर्यते मे एतद्विज्ञानाभ्यासेनायं यद्यमुं पश्येत्तर्हि मेऽनर्थं कुर्यादिति मत्वा मृत्तिकया तं तथैव पिधाय तूष्णीं स्थितः। कुटुम्बी पत्राण्यानीय गर्तस्थं नीरकलशं दध्योदनं चाकृष्य तत्पादौ प्रक्षाल्य पत्राणि च, तेषु तस्य भोक्तुं परिविवेष। स भुक्त्वा राजगृहमार्गं पृष्ट्वा तेन ययौ। स पामरः कर्षंस्तं ददर्श, विस्मयं ययौ। अहो तस्येदं द्रव्यं मम ग्रहीतुमनुचितम् इति तत्समर्पणार्थं तत्पृष्ठे लग्नः। कुमारस्तदागमं विलोक्य तरोरध उपविष्टः। स आगत्य तं ननामोवाच— हे नाथ, स्वद्रव्यं विहाय किमित्यागतोऽसि। वैश्योऽब्रूताहं किं द्रव्येणागतः, एवमेवागतस्त्वया दत्तो ग्रासो मे द्रव्यं कथं संजातम्। उवाच पामरो मे पितामहः पिताहं चेदं क्षेत्रमाकार्षीमः[1], कदाचिन्न निर्गतम्, त्वय्यागते निर्गतमिति त्वदीयं तत्। कुमारोऽभणत्— भवतु मदीयम्, मया तुभ्यं दत्तम्, यत्नेन भुनग्धि त्वम्। तदा 'प्रसादः' इति भणित्वा नाथैतस्मिन् ग्रामे एतन्नामाहं पामरो यदा मया प्रयोजनं स्यात्तदा मे

दही और भात लाया हूँ, खाओगे क्या ? यह सुनकर कुमार बोला कि खा लूँगा। तब वह किसान कुमारको हलके पास बैठाकर पत्तलके लिए पत्तोंको लेने चला गया। उसके चले जानेपर कुमारने हलके मुठियेको पकड़कर दोनों बैलोंको हाँक दिया। उस समय हलके अग्रभाग (फाल) से भूमिके कुछ विदीर्ण होनेपर सोनेसे भरा हुआ एक ताँबेका घड़ा निकला। उसे देखकर कुमारने विचार किया कि मेरे इस नवीन विज्ञानके अभ्याससे वश हो, यदि वह किसान इसे देख लेता है तो मेरा अनर्थ कर डालेगा। ऐसा सोचता हुआ वह उसे मिट्टीसे उसी प्रकार ढककर चुपचाप बैठ गया। इतनेमें किसान पत्तोंको लेकर वापस आ गया। तब उसने गड्ढेमें रखे हुए पानीके घड़ेको तथा दही-भातको उठाया और फिर उसके पाँवों व पत्तोंको धोकर उन पत्तोंमें उसे परोस दिया। इस प्रकार कुमारने भोजन करके उससे राजगृहके मार्गको पूछा और उसी मार्गसे आगे चल पड़ा। उधर किसानने जब फिर जोतना शुरू किया तब उसे उस घड़ेको देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। तब उसने विचार किया कि यह द्रव्य तो उस कुमारका है, उसका ग्रहण करना मेरे लिये योग्य नहीं है। बस यही सोचकर वह किसान उस सुवर्णसे भरे हुए घड़ेको देनेके लिए कुमारके पीछे लग गया। धन्यकुमारने जब उसको अपने पीछे आते हुए देखा तब वह एक वृक्षके नीचे बैठ गया। किसानने आकर नमस्कार करते हुए उससे कहा कि हे नाथ ! आप अपने धनको छोड़कर क्यों चले आये हैं ? यह सुनकर वैश्य (धन्यकुमार) बोला कि क्या मैं धनके साथ आया था ? नहीं, मैं तो यों ही आया था। तुमने मुझे भोजन दिया। इससे वह द्रव्य मेरा कैसे हो गया ? इसपर किसानने कहा कि मेरे आजा, पिता और मैं स्वयं इस खेतको जोतते आ रहे हैं; किन्तु हमें यहाँ कभी भी द्रव्य नहीं प्राप्त हुआ है। किन्तु आज तुम्हारे आनेपर वह द्रव्य वहाँ निकला है, इसलिए यह तुम्हारा ही है। यह सुनकर कुमारने कहा कि अच्छा उसे मेरा ही धन समझो 'परन्तु मैं उसे तुम्हारे लिये देता हूँ, तुम उसका प्रयत्नपूर्वक उपभोग करो। इसपर किसानने 'यह आपकी कृपा है' कहकर उसे स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् किसान बोला कि हे स्वामिन् ! मैं अमुक गाँवमें रहनेवाला अमुक नामका किसान हूँ, जब

---

१. ब क्षेत्रमार्षीम:।

ज्ञापनीय इति विज्ञाप्य व्याघुटितः ।

कुमारोऽग्रे गच्छन्नेकस्मिन् प्रदेशेऽवधिबोधयतिमपश्यत्, तं ननाम, धर्मश्रुतेरनन्तरं पृच्छति स्म 'मे भ्रातरो मे किमिति द्विषन्ति, माता स्निह्यति, केन पुण्यफलेनाहमेवंविधो जातः' इति । स आह परमेश्वरः— अत्रैव मगधदेशे भोगवतीग्रामे ग्रामपतिः कामवृष्टिः, भार्या मृष्टदाना, तत्कर्मकर एकः सुकृतपुण्यः । मृष्टदानाया गर्भसंभूतौ कामवृष्टिर्मृतो यथा यथा गर्भो वर्धते तथा तथा ये केचन प्रयोजका गोत्रजनास्ते मृताः । प्रसूत्यनन्तरं मातुर्माता ममार । ग्रामाधिपः सुकृतपुण्यो बभूव । मृष्टदाना स्वतनयस्याकृतपुण्य इति नाम विधायातिदुःखेन परगृहे पेषणं कृत्वा तं पालयन्ती तस्थौ । अत्र कुमारः पुनस्तं पप्रच्छ 'केन पापफलेन स तथाविधो जातः' इति । स आहात्रैव भूतिलकनगरेऽतीवेश्वरो जैनो वैश्यो धनपतिः । सोऽतिविशिष्टं जिनगेहं कारयति स्म, तत्र बहूनि मणिकनकमयान्युपकरणानि कारितवान् । तद्रत्नादिप्रतिमानां प्रसिद्धिमाकर्ण्य कश्चिद् व्यसनी पुमान् मायया ब्रह्मचारी भूत्वातिकायक्लेशादिना देशमध्ये महाक्षोभं कुर्वन् क्रमेण भूतिलकं प्राप्तो धनपतिना महासंभ्रमेण स्वजिनगृहमानीतस्तं महाग्रहेण जिनालयस्योपकरणरक्षकं कृत्वा श्रेष्ठी द्वीपान्तरं गतः । इतस्तदुपकरणं तेन सर्वं भक्षितम् । व्यसनेन जिनप्रतिमाविलोपनोपार्जितपापेन कुष्ठ-

---

मेरे द्वारा आपका कुछ प्रयोजन सिद्ध होता हो तब मुझे आज्ञा दीजिए । इस प्रकारसे प्रार्थना करके वह किसान वापस चला गया ।

तत्पश्चात् कुमारने आगे जाते हुए एक स्थानमें किसी अवधिज्ञानी मुनिको देखकर उन्हें नमस्कार किया । फिर उसने धर्मश्रवण करनेके बाद उनसे पूछा कि मेरे भाई मुझसे किस कारणसे द्वेष रखते हैं और माता क्यों स्नेह करती है ? इसके अतिरिक्त मैं जो इस प्रकारकी विभूतिको पा रहा हूँ, वह किस पुण्यके फलसे पा रहा हूँ ? इसपर मुनि बोले— यहाँपर ही मगध देशके भीतर एक भोगवती नामका गाँव है । उसमें एक कामवृष्टि नामका ग्रामपति (गाँवका स्वामी — जमींदार) रहता था । उसकी पत्नीका नाम मृष्टदाना था । कामवृष्टिके एक सुकृतपुण्य नामका सेवक था । मृष्टदानाके गर्भ रहनेपर कामवृष्टिकी मृत्यु हो गई । जैसे जैसे उसका गर्भ बढ़ता गया वैसे वैसे उसके जो सहायक कुटुम्बी जन थे वे भी मरते गये । प्रसूतिके पश्चात् माताकी-माता (नानी) भी मर गई । तब गाँवका स्वामी सुकृतपुण्य हो गया था । उस समय मृष्टदाना अपने नवजात बालकका नाम अकृतपुण्य रखकर दूसरोंके घर पीसने आदिका कार्य करती हुई उसका पालन करने लगी । इस अवसरपर धन्यकुमारने पुनः उनसे पूछा कि वह अकृतपुण्य बालक किस पाप कर्मके फलसे वैसा हुआ था ? इसके उत्तरमें वे मुनिराज इस प्रकार बोले— यहाँपर भूतिलक नामके नगरमें जैन धर्मका परिपालक अतिशय संपत्तिशाली एक धनपति नामका वैश्य रहता था । उसने एक अतिशय विशेषतासे परिपूर्ण एक जिनभवन बनवाकर उसमें बहुत-से मणिमय एवं सुवर्णमय छत्र-चामर आदि उपकरणोंको करवाया । उसमें जो रत्नमय सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान की गई थीं उनकी ख्यातिको सुनकर कोई दुर्व्यसनी मनुष्य कपटसे ब्रह्मचारी बन गया । उसके अतिशय कायक्लेश आदिको देखकर देशके भीतर जनताको बहुत क्षोभ (आश्चर्य) हुआ । वह क्रमसे परिभ्रमण करता हुआ भूतिलक नगरमें आया । तब धनपति सेठ आदर पूर्वक उसे अपने जिनालयमें ले गया । तत्पश्चात् उक्त सेठ आग्रहके साथ उसे जिनालयके उपकरणोंका रक्षक बनाकर दूसरे द्वीपको चला गया । इस बीचमें उसने जिनालयके सब उपकरणोंको खा डाला । तत्पश्चात् दुर्व्यसन और

गलितसर्वशरीरो मुमूर्षुर्यावदास्ते[1] तावत् श्रेष्ठी समागतः, तं विलोक्यायं किमित्यागतो न मृत इति तस्योपरि रौद्रध्यानेन युतो मृत्वा सप्तमावनिं जगाम। ततः स्वयंभूरमणोदधौ महामत्स्यो जज्ञे। ततः पुनः सप्तमपृथ्वीं गतः, इति षट्षष्ठिसागरोपमकालं नरकदुःखमनुभूय ततस्त्रस-स्थावरादिषु भ्रमित्वाकृतपुण्योऽभूत्।

सोऽकृतपुण्य एकदा सुकृतपुण्यस्य चणकक्षेत्रं जगामोवाच— हे सुकृतपुण्याहं ते चणकानुत्पाटयिष्यामि, मह्यं किं दास्यसि। तदा तं विलोक्य सुकृतपुण्य एतत्पितुः प्रसादेनाहमेवंविधो जातोऽस्य मे प्रेषणकारणमभूद्विधिवशादिति दुःखी भूत्वा स्वपोतान्निष्कानाकृष्य तस्य दत्तवान्। ते तद्धस्ते पतिता अङ्गारा अजनिषत। तदाकृतपुण्यो बभाण— सर्वेभ्यश्चणकान्[2] प्रयच्छसि, मह्यमङ्गारकान्। तदनु सुकृतपुण्य उवाच— मदीयानङ्गारान् प्रयच्छ, यावन्नेतुं शक्तोऽसि तावन्तश्चणकान् नय, इत्युक्ते स स्ववस्त्रे पोटलं बन्धयित्वा चणकान् नीतवान्। ते च सच्छिद्रवस्त्रेऽर्धा उद्धरितास्[3]तानवलोक्य मात्रोदितम्— कस्मादिमानानीतवान्। तेन स्वरूपे निरूपिते सा 'मद्भृत्यस्य भृत्यत्वं ते जातम्' इति दुःखिता जज्ञे। ततस्तानेव पाथेयं कृत्वा मातापुत्रौ तस्मान्निर्गत्यावन्तीविषये सीसवाकग्रामे बलभद्रग्रामपतिगृहं प्राप्य

जिनप्रतिमाओंकी चोरीसे उपार्जित पापके प्रभावसे उसका समस्त शरीर कोढ़से गलने लगा। इससे वह मरणासन्न हो गया। इसी अवसरपर वह धनपति सेठ भी द्वीपान्तरसे वापस आ गया। उसे देखकर वह मरणोन्मुख कपटी ब्रह्मचारी उसके सम्बन्धमें विचार करने लगा कि यह क्यों यहाँ आ गया, वहींपर क्यों न मर गया। इस प्रकार रौद्र ध्यानके साथ मरकर वह सातवें नरकमें गया। वहाँसे निकलकर वह स्वयम्भुरमण समुद्रके भीतर महामत्स्य उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वह फिरसे भी उसी सातवें नरकमें जा पहुँचा। इस प्रकार वह छ्यासठ सागरोपम काल तक नरकके दुखको भोगकर तत्पश्चात् त्रस व स्थावर आदि पर्यायोंमें परिभ्रमण करता हुआ अन्तमें अकृतपुण्य हुआ।

एक समय वह अकृतपुण्य सुकृतपुण्यके चनोंके खेतपर जाकर उससे बोला कि हे सुकृतपुण्य! मैं तुम्हारी चनोंकी फसलको काट देता हूँ, तुम मुझे क्या दोगे? उस समय उसको देखकर सुकृतपुण्यने विचार किया कि जिसके पिताके प्रसादसे मैं इस प्रकारका गाँवका प्रमुख हुआ हूँ वही भाग्यवश इस समय मेरी आज्ञाका कारण बन गया है— मुझसे अपेक्षा कर रहा है। इस प्रकारसे दुखी होकर सुकृतपुण्यने अपनी थैलीसे दीनारोंको निकाल कर उसके लिये दिया। परन्तु वे उसके हाथमें पहुँचते ही अंगार बन गईं। तब अकृतपुण्य उससे बोला कि तुम सबके लिये तो चने देते हो और मेरे लिये अंगारे। इसपर सुकृतपुण्य बोला कि मेरे अंगारोंको मुझे वापस दे दो और जितने तुमसे ले जाते बने उतने चने तुम ले जाओ। सुकृतपुण्यके इस प्रकार कहनेपर वह अपने वस्त्रमें पोटली बाँधकर चनोंको घरपर ले गया। परन्तु वे छेदयुक्त वस्त्रसे गिरकर आधे ही शेष रह गये थे। उनको देखकर माताने अकृतपुण्यसे पूछा कि तू इन चनोंको कहाँसे लाया है? इसपर अकृतपुण्यने उसे बतला दिया कि मैं इन चनोंको सुकृतपुण्यके पाससे लाया हूँ। यह सुनकर उसकी माताने कहा कि जो सुकृतपुण्य किसी समय मेरा सेवक था उसीकी दासता आज तेरे लिये करनी पड़ी। ऐसा विचार करते हुए उस समय उसे बहुत दुःख हुआ। तत्पश्चात् वह उन्हीं चनोंको पाथेय (मार्गमें खानेके योग्य नाश्ता) बनाकर पुत्रके साथ उस नगरसे निकल पड़ी और

---

१. क शरीरमुमूर्षुर्यावि॰। २. ब °श्चणकादिकान्। ३. ब वस्त्रे वर्द्धा ओद्धरिता॰।

उपविष्टौ । स तां विलोक्य मातः, कस्मादागतासीति पप्रच्छ । सा कथमपि न निरूपितवती, तदा महाग्रहेण पृष्टवान् । तदा तया स्वरूपं कथितम् । स बभाण—त्वं मद्गृहे पचनं कुरु, पुत्रोऽयं ते मद्वत्सकान् पालयतु । युवाभ्यां [1]ग्रासावासादिकमहं दास्यामि । तयाभ्युपगतम् । स्वगृहनिकटे तृणकुटीं कृत्वा दत्ता । तावुभौ तत्प्रेषणं कृत्वा तेन दत्तग्रासादिकं सेवित्वा तस्थतुः । तदा बलभद्रस्य सप्त पुत्रास्तान् पायसं भुञ्जानान् प्रतिदिनमालोक्याकृतपुण्यः पायसं स्वमातरं याचते । तदा तं तत्पुत्रास्ताडयन्ति । स तन्मारणाभावं करोति । तस्य पायस-वाञ्छया मुखादिकं शोफयुतं जज्ञे । तं शोफयुतं दृष्ट्वा स पामराधिपः पप्रच्छ— हे ऽकृतपुण्य, किमिति शोफोऽभूत् । सोऽवोचत्[2]— पायसाप्राप्तेः । तदा स कियद्दुग्धं [3]तण्डुलघृतादिक-मदत्तोक्तवांश्चाम्ब, पायसं पक्त्वाद्य स्वगृहेऽकृतपुण्यस्य भोक्तुं प्रयच्छ । एवं करोमीति दुग्धा-दिकं गृहीत्वा स्वगृहं गत्वोक्तवती— पुत्राद्य पायसं भोक्तुं तुभ्यं दास्यामः, [4]अरण्याच्छीघ्रमा-गच्छ । एवं करोमीति भणित्वा वत्सान् गृहीत्वाटवीं ययौ । इतस्तया पायसादिकं पक्वम्[5] । मध्याह्ने स गृहमागतः । तं गृहपालकं धृत्वा जलार्थं गच्छन्ती पुत्रस्य बभाण— यः कोऽपि

अवन्ती देशके अन्तर्गत सीसवाक गाँवमें जा पहुँची । उस गाँवके स्वामीका नाम बलभद्र था । वहाँ जाकर वे दोनों उसके घर पहुँचे व वहींपर बैठ गये । उसको देखकर बलभद्रने पूछा कि हे माता ! तुम कहाँसे आ रही हो ? परन्तु जब वह किसी प्रकारसे भी उत्तर न दे सकी तब उसने उससे बहुत आग्रहके साथ पूछा । इसपर उसने अपनी सच्ची परिस्थिति उसे बतला दी । उसे सुन-कर वह बोला कि तुम मेरे घरपर भोजन बनानेका काम करो और यह तुम्हारा पुत्र मेरे बछड़ोंका पालन करे । ऐसा करनेपर मैं तुम दोनोंके लिये भोजन और रहनेके लिये स्थान आदि दूँगा । इसे उसने स्वीकार कर लिया । तब बलभद्रने अपने घरके पास एक घासकी झोंपड़ी बनवाकर उसको रहनेके लिए दे दी । इस प्रकार वे दोनों उसकी सेवा करके उसके द्वारा दिये गये भोजन आदि-का उपभोग करते हुए वहाँ रहने लगे । उस समय बलभद्रके सात पुत्र थे । उनको प्रतिदिन खीर खाते हुए देखकर अकृतपुण्य अपनी मातासे खीर माँगा करता था । तब बलभद्रके पुत्र उसे मारा करते थे । जब बलभद्र उन्हें मारते देखता तब वह उन्हें उसके मारनेसे रोकता था । खीर खानेकी इच्छा पूर्ण न होने [व उनके द्वारा मार खानेसे] उसका मुख आदि सूज गया था । उसकी ऐसी अवस्था देखकर बलभद्रने पूछा कि हे अकृतपुण्य ! तेरा मुख आदि क्यों सूज रहा है ? इसपर उसने उत्तर दिया कि खीरके न मिलनेसे मैं खिन्न रहा करता हूँ । तब उसने कुछ दूध, चावल और घी आदिको देकर मृष्टदानासे कहा कि हे माता ! तुम आज घरपर खीर बनाकर अकृतपुण्यको खानेके लिये दो । तब 'ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगी' कहकर वह उन चावल आदि-को लेकर घर चली गई । वहाँ उसने अकृतपुण्यसे कहा कि हे पुत्र ! आज मैं तेरे लिये खीर खानेको दूँगी, तू जंगलसे जल्दी वापस आ जाना । तब वह 'अच्छा, मैं आज जल्दी आ जाऊँगा' यह कहता हुआ बछड़ोंको लेकर जंगलमें चला गया । इधर मृष्टदानाने खीर आदिको बनाकर तैयार कर लिया । दोपहरको अकृतपुण्य घर वापस आ गया । तब मृष्टदाना उसे घरकी देख-भाल रखनेके लिये कहकर पानी लेनेके लिये चली गई । जाते-जाते वह अकृतपुण्यसे यह

---

१. श ग्रास° । २. फ सावोचत् । ३. प फ ब तंदुल । ४. ब दास्याम्यरण्या° । ५. ब पक्वं ।

भिक्षुक आगच्छति तं गन्तुं मा प्रयच्छ[1], तस्य ग्रासं दत्वा भोक्ष्यावः,[2] इति निरूप्य सा गता।

तावन्मासोपवासस्य पारणाह्ने सुव्रतमुनिस्तद्ग्रामपतिगृहं चर्यार्थमागतस्तं विलोक्याकृतपुण्योऽयं महाभिक्षुको वस्त्राद्यभावात्, तस्मादस्य गन्तुं न ददामि, तस्य संमुखं गत्वोक्तवान्—हे पितामह, मदीयमात्रा पायसं पक्वम्, तुभ्यमपि भोक्तुं दीयते, तिष्ठ यावन्मन्माता-गच्छति। मुनिः स्थातुं मे मार्गो न भवतीति भणित्वा गच्छंस्तेन पादयोर्धृतः, पितामहात्यपूर्वं पायसं भुक्त्वा गच्छ, तव किं नष्टमिति[3] भणन् धृत्वा स्थितः। तावन्मृष्टदाना समागत्य घटमुत्तार्योत्तरीयं स्कन्धे निक्षिप्य हे परमेश्वर, तिष्ठेति यथावत्स्थापितवती। बलभद्रगृहादुष्णोदकं भाजनं चानीयातिविशुद्धचेतसा दानमदत्त। अकृतपुण्योऽपि तद्भोजने जहर्ष, 'अयं देवोऽद्य मे गृहेऽभुक्तेति धन्योऽहम्' भणन्नवलोकयन् तस्थौ। मुनिरक्षीणमहानसर्द्धिप्राप्त इति सा रसवती चक्रधरस्कन्धावारेऽपि भुक्ते तद्दिने न क्षीयते। पुत्रं भोजयित्वा तया सकुटुम्बो बलभद्रो भोजितो विश्वतद्ग्रामजनाय भाजनानि[4] पूरयित्वा रसवतीं ददौ मृष्टदाना।

स वत्सपालो द्वितीयदिने उद्वृत्तं पायसं भुक्त्वाटवीं ययौ। तत्रैकस्मिन् वृक्षतले

भी कहती गई कि इस बीचमें जो कोई भिक्षुक (साधु) आवे उसे जाने न देना, उसके लिये भोजन कराकर तत्पश्चात् हम दोनों खावेंगे।

इतनेमें ही मासोपवासके समाप्त होनेपर पारणाके दिन सुव्रत नामके मुनि उस बलभद्रके घरपर चर्याके लिये आये। उन्हें देखकर अकृतपुण्यने विचार किया कि यह तो भिक्षुक ही नहीं, महाभिक्षुक (अतिशय दरिद्र) है, क्योंकि, इसके पास तो वस्त्र आदि भी नहीं है। इसलिये मैं इसे नहीं जाने देता हूँ। इस विचारके साथ वह उनके सामने गया और बोला कि बाबा, मेरी माँने खीर पकायी है, वह तुम्हारे लिए भी खानेको देगी। इसलिये जब तक मेरी माता नहीं आ जाती है तब तक तुम यहींपर ठहरो। परन्तु फिर भी जब मुनि 'मेरे लिए ठहरनेका मार्ग नहीं है' यह कहकर आगे जाने लगे तब उसने उनके दोनों पाँव पकड़ लिये। वह बोला कि बाबा! अतिशय अपूर्व खीरको खाकर जाओ न, इसमें तुम्हारा क्या नष्ट होता है। यह कहकर वह उन्हें पकड़े ही रहा। इतनेमें मृष्टदाना भी आ गई। वह घड़ेको उतारकर उत्तरीय वस्त्रको कन्धेके ऊपर डालती हुई बोली— हे परमेश्वर! ठहरिये, इस प्रकार उसने उनका विधिपूर्वक पड़िगाहन किया और फिर बलभद्रके घरसे उष्ण जल एवं पात्रको लाकर अतिशय निर्मल परिणामोंके साथ उन्हें आहारदान दिया। उनके आहारके समय अकृतपुण्यको भी बहुत हर्ष हुआ। यह देव मेरे घरपर भोजन कर रहा है, इसलिए मैं धन्य हूँ; यह कहकर वह उनके आहारको देखता हुआ स्थित रहा। वे मुनि अक्षीणमहानस ऋद्धिके धारक थे, इसलिए यदि उस रसोईका उपभोग चन्द्रवर्तीका कटक भी करता तो भी वह उस दिन समाप्त नहीं हो सकती थी। मुनिके आहारके पश्चात् मृष्टदानाने अपने पुत्रको भोजन कराया और तत्पश्चात् कुटुम्बके साथ बलभद्रको भी भोजन कराया। फिर भी जब वह रसोई समाप्त नहीं हुई तब उसने पात्रोंकी पूर्ति करके समस्त गाँवकी जनताके लिये भोजन दिया।

दूसरे दिन वह बछड़ोंका रक्षक (अकृतपुण्य) बची हुई खीरको खाकर जंगलमें गया।

---

१. श मा मयछ। २. प ब श भोक्षाव। ३. प किं तिष्टमिति श किं न तिष्टमिति। ४. ब भोजनानि।

सुष्वाप। वत्साः स्वयं गृहमागताः। तानवलोक्य पुत्रो नागत इति मृष्टदाना रोदिति स्म। तदुपरोधेन बलभद्रो द्वि-त्रैर्भृत्यैस्तं गवेषयितुं निर्जगाम। वत्सपालो गृहमागच्छन् तं विलोक्य भयेन गिरिं चटितः, इतरो व्याघुटितः। स वत्सपालस्तत्र गुहाद्वारि स्थितः। तत्र[1] स एव सुव्रतमुनिर्वन्दितुमागतश्रावकाणां व्रतस्वरूपं तत्फलं च कथयंस्तस्थौ। वत्सपालो बहिः शृण्वन् स्थितः। तस्य व्रते महती श्रद्धा बभूव। मुनिं नत्वा श्रावकाः 'णमो अरहंताणं' भणित्वा निर्गताः। सोऽपि 'णमो[2] अरहंताणं' भणन् तत्पृष्ठे दूरं दूरं गच्छन् व्याघ्रेण धृतः 'णमो[3] अरहंताणं' वदन् मृतः, सौधर्मे महर्द्धिको देवो जज्ञे, भवप्रत्ययबोधेन स्वस्य दानादि-फलं ज्ञात्वा करणीयं च कृत्वा सुखेन तस्थौ। इतः प्रभाते बलभद्रेण तन्माता तद्गिरिं गत्वा तत्कलेवरं दृष्ट्वातिशोकं चकार। स सुरः संबोधयामास। तदनु सा जन्मान्तरेऽयं मत्पुत्रो भव-त्विति दीक्षिता, समाधिना तत्र कल्पे देवी जाता। बलभद्रस्तपसा तत्कल्पे सुरो जज्ञे। तत्र दिव्यसुखमनुभूय बलभद्रचरः सुर आगत्य धनपालोऽभूत्, मृष्टदानाचरी प्रभावती जाता। पूर्वं ये च[4] बलभद्रदेहजास्ते सांप्रतं देवदत्तादयोऽभूवन्। वत्सपालचरस्त्वं जातोऽसि पूर्वं

वहाँ जाकर वह एक वृक्षके नीचे सो गया। इस बीचमें बछड़े स्वयं घर आ गये। उनको देखकर साथमें पुत्रके न आनेसे मृष्टदाना रोने लगी। तब उसके आग्रहसे बलभद्र दो तीन सेवकोंके साथ उसे खोजनेके लिये गया। इधर अकृतपुण्य घरकी ओर ही आ रहा था। वह बलभद्रको आता हुआ देखकर भयके कारण पहाड़के ऊपर चढ़ गया। उधर अकृतपुण्यके न मिलनेसे वह बलभद्र घरपर वापस आ गया। वह अकृतपुण्य पहाड़के ऊपर जाकर एक गुफाके द्वारपर स्थित हो गया। उस गुफाके भीतर वे ही सुव्रत मुनि वन्दनाके लिए आये हुए श्रावकोंको व्रतोंके स्वरूप और उनके फलका निरूपण कर रहे थे। अकृतपुण्य उसको सुनते हुए बाहर ही स्थित रहा। तब उसकी व्रतके विषयमें गाढ़ श्रद्धा हो गई। श्रावक जन धर्मश्रवण करनेके पश्चात् मुनिको नमस्कार करके 'णमो अरहंताणं' कहते हुए उस गुफासे निकल गये। उधर वह अकृतपुण्य भी 'णमो अरहंताणं' कहता हुआ उनके पीछे दूर दूरसे जा रहा था। इसी बीचमें उसके ऊपर एक व्याघ्रने आक्रमण कर दिया। तब वह 'णमो अरहंताणं' कहता हुआ मरा व सौधर्म स्वर्गमें महर्द्धिक देव उत्पन्न हुआ। वहाँ वह भवप्रत्यय अवधिज्ञानके द्वारा अपने दान आदिके फलको जानकर कर्तव्य कार्यको करता हुआ सुखपूर्वक स्थित हुआ। इधर सबेरा हो जानेपर उसकी माता (मृष्टदाना) बलभद्रके साथ उस पहाड़-के ऊपर गई। वहाँपर उसके निर्जीव शरीरको देखकर उसे बहुत शोक हुआ। उस समय उसे उसी देवने आकर सम्बोधित किया। तत्पश्चात् मृष्टदानाने 'जन्मान्तरमें भी यह मेरा पुत्र हो' इस प्रकारके निदानके साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वह तपके प्रभावसे उसी कल्पमें देवी हुई। बलभद्र भी तपको ग्रहणकर उसके प्रभावसे उसी कल्पमें देव उत्पन्न हुआ। वहाँपर दिव्य सुखको भोगकर बलभद्रका जीव वह देव वहाँसे च्युत होकर धनपाल हुआ है और वह देवी—जो पूर्वभवमें मृष्टदाना थी—वहाँसे आकर प्रभावती हुई है। पूर्वमें जो बलभद्रके पुत्र थे वे इस समय देवदत्त आदि हुए हैं। और अकृतपुण्यका जीव, जो सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ था, वह वहाँसे

१. ब 'तत्र स एव सुव्रत मुनि' इत्यादि 'तस्थौ' पर्यन्तः पाठः स्खलितोऽस्ति। २. फ अरिहंताणं। ३. प फ अरिहंताणं। ४. ज पूर्वमेव बल° प फ श पूर्वजे च बल°।

तन्मारणमतिं त्वं कृतवान् इति[1] त्वां ते द्विषन्ति इति। निशम्य मुनिं नत्वा ययौ, क्रमेण राजगृहं प्राप्तस्तद्बहिरनेकशुष्कवृक्षसंकीर्णं वनं प्रविष्टः। तद्वनस्वामी वैश्यपुत्रो[2] राजकीय-मालाकारिणामधिनायकः कुसुमदत्तः पूर्वं तद्वनं शुष्कमित्युद्विग्नस्तच्छेदनमना अवधिबोधं मुनिं पृच्छति स्म— शुष्कं वनं पुनरुद्भविष्यति नो वा। तेनावादि— कश्चित्पुण्यपुरुष आगत्य तत्र प्रवेक्ष्यति, तस्तदैव पुण्यफलाढ्यं भविष्यति। तत्प्रभृति स कुसुमदत्तस्तत्पालयंस्तस्थौ। धन्यकुमारस्तत्प्रविष्टस्तदा शुष्कसरस्यादिकं स्वच्छजलपूर्णं महीरुहादयः पुष्पादियुताश्च अभिरे। स एकस्मिन् सरसि जिनं स्मृत्वा जलं पीत्वैकस्मिन् वृक्षतले उपविवेश। स तदाश्चर्यं[3] दृष्ट्वा कुसुमदत्तो मुनीन् मनसि नत्वागत्य तद्वनं प्रविश्य तं विलोक्य नत्वा 'कस्मादा-गतोऽसि' इति पप्रच्छ। स बभाणाहं वैश्यात्मजो देशान्तरी। इतर उवाचाहमपि वैश्यो जैनो मे त्वं प्राघूर्णको भव। सोऽभ्युपजगाम। तदा कुसुमदत्तोऽतिसंभ्रमेण स्वगृहं निनायोक्तवांश्च 'मद्भगिनीपुत्रोऽयम्'। तदा तद्वनिता मज्जामातृको भविष्यतीति मज्जन-भोजनादिनाति-समाधानं तस्य चकार। तत्पुत्री पुष्पावती, सात्यासक्ता बभूवैकदा तदग्रे पुष्पाणि सूत्रं च

आकर तुम उत्पन्न हुए हो। पूर्व भवमें चूँकि तुम उनके मारनेका विचार रखते थे, इसीलिये तुमसे इस समय द्वेष करते हैं। इस प्रकार उन अवधिज्ञानी मुनिराजसे अपने पूर्व भवोंके वृत्तान्तको सुनकर धन्यकुमारने उन्हें नमस्कार किया और वहाँसे आगे चल दिया।

वह क्रमसे आगे चलकर राजगृह नगरमें पहुँचा। वहाँ वह नगरके बाहर अनेक सूखे वृक्षोंसे व्याप्त एक वनके भीतर प्रविष्ट हुआ। उस वनका स्वामी एक कुसुमदत्त नामका वैश्यपुत्र था जो राजाके मालियोंका नेता था। पूर्वमें जब यह वन सूख गया था तब उसने खिन्न होकर उसे काट डालनेका विचार किया था। उस समय उसने किसी अवधिज्ञानी मुनिसे पूछा था कि यह मेरा सूखा हुआ वन क्या कभी फिरसे हरा-भरा हो सकेगा? इसके उत्तरमें मुनिने बतलाया था कि जब कोई पुण्यशाली पुरुष आकर उसके भीतर प्रवेश करेगा उसी समय वह वन पवित्र फलोंसे परिपूर्ण हो जावेगा। उसी समयसे वह कुसुमदत्त उसका संरक्षण करता हुआ वहाँ स्थित था। इस समय जैसे ही धन्यकुमार आकर उसके भीतर प्रविष्ट हुआ वैसे ही सब सूखे तालाब आदि निर्मल जलसे तथा वृक्ष आदि पुष्पों आदिसे परिपूर्ण हो गये। धन्यकुमारने वहाँ जिन भगवानूका स्मरण करते हुए एक तालाबपर जाकर जल पिया और फिर वह वहींपर एक वृक्षके नीचे बैठ गया। वह कुसुमदत्त इस आश्चर्यजनक घटनाको देखकर उन मुनिराजको मन-ही-मन नमस्कार करता हुआ आया और उस वनके भीतर प्रविष्ट हुआ। उसने धन्यकुमारको देखकर उसे नमस्कार करते हुए पूछा कि तुम कहाँसे आये हो? धन्यकुमारने उत्तर दिया कि मैं एक वैश्यपुत्र हूँ और देशान्तरमें भ्रमण कर रहा हूँ। यह सुनकर कुसुमदत्तने कहा कि मैं भी वैश्य हूँ और जैन हूँ, तुम मेरे अतिथि होओ। धन्यकुमारने इस बातको स्वीकार कर लिया। तब कुसुमकान्तने उसे शीघ्रतासे घर ले जाकर कहा कि यह मेरा भगिनीपुत्र (भागिनेय—भानजा) है। यह सुनकर कुसुमदत्तकी स्त्रीने यह मेरा जामाता होगा, ऐसा सोचकर उसके स्नान एवं भोजन आदिकी समुचित व सन्तोषजनक व्यवस्था की। उसके पुष्पावती नामकी एक

---

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श पूर्व त्वन्मारणमति त्व कृतवंतः इति। २. प श पुत्रौ। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श तत्साश्चर्यं।

न्यधत्त[1]। सोऽतिविशिष्टां मालां सृजति स्म। तदा, तत्र श्रेणिको राजा, देवी चेलनी, पुत्री गुणवती। तन्निमित्तं पुष्पावती प्रतिदिनं मालां नयति, तदा तेन सृष्टां मालां निनाय। तदा कुमार्यवोचत्— हे पुष्पावति, द्वि-त्रीणि दिनानि किमिति नागतासि। सावोचत्— मे पितुर्भगिनीपुत्रः समागतः, तत्संभ्रमेण स्थिता। तां मालामवलोक्य हृष्टा गुणवती बभाषे— केनेयं ग्रथिता मालातिविशिष्टा। तया स्वरूपं निरूपितम्। तदा कुमारी 'ते वरोऽत्युत्कृष्टो जातः' इति संतुतोष।

एकदा धन्यकुमारः कस्यचिदिभ्यस्यापण्यं चित्रविचित्रं दृष्ट्वा तत्रोपविष्टस्तदा तस्य महान् लाभो[2]ऽजनि। स तत्स्वरूपं विबुध्य मत्पुत्रीं तुभ्यं ददामीति बभाण। अन्यदा शालिभद्रो नाम प्रसिद्धो वैश्यस्तदापणे कुमार उपविष्टस्तदा तस्यापि महान् लाभोऽभूदिति सोऽप्यवोचत् मद्भगिनीं सुभद्रां तुभ्यं दास्यामीति। अन्यदा राजश्रेष्ठी श्रीकीर्तिः पुरमध्ये घोषणां कारितवान् 'यो वैश्यात्मजः काकिण्या एकस्मिन् दिने सहस्रसुवर्णं प्रयच्छति तस्मै मत्पुत्रीं धनवतीं दास्यामि' इति। सा घोषणा धन्यकुमारेण धृता। अध्यक्षेण समं तत्काकिणीं गृहीत्वा तया मालालम्बनतृणानि जग्राह। तानि स मालाकारेभ्योऽदत्त, ततः पुष्पाणि जग्राह, तैरतिविशिष्टा

पुत्री थी, जो धन्यकुमारको देखकर उसके विषयमें अतिशय आसक्त हो गई थी। एक समय उसने धन्यकुमारके आगे कुछ फूलों और धागेको लाकर रक्खा। धन्यकुमारने उनकी एक अतिशय सुन्दर माला बना दी। उस समय राजगृह नगरमें श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम चेलनी था। उनके एक गुणवती नामकी पुत्री थी। उसके लिये पुष्पावती प्रतिदिन माला ले जाया करती थी। उस दिन पुष्पावती धन्यकुमारके द्वारा बनायी हुई मालाको ले गई। उस समय गुणवतीने उससे पूछा कि हे पुष्पावती! तुम दो तीन दिन क्यों नहीं आयीं? इसपर पुष्पावतीने कहा कि मेरे पिताका भानजा आया है, उसकी पाहुनगतिमें घरपर ही रही। उस मालाको देखकर हर्षको प्राप्त होती हुई गुणवतीने पुनः उससे पूछा कि इस अनुपम मालाको किसने गूँथा है? तब उसने सब यथार्थ स्थिति उसे बतला दी। इसपर गुणवतीने 'तेरे लिये उत्तम वर प्राप्त हुआ है' यह कहते हुए सन्तोष प्रगट किया।

एक समय धन्यकुमार किसी धनिक सेठकी चित्र-विचित्र (सुसज्जित) दूकानको देखकर वहाँपर बैठ गया। उस समय सेठको बहुत लाभ हुआ। सेठने यह समझ लिया कि इसके आनेसे ही मुझे वह महान् लाभ हुआ है। इसीलिए उसने धन्यकुमारसे कहा कि मैं तुम्हारे लिए अपनी पुत्री देता हूँ। दूसरे दिन वह कुमार शालिभद्र नामक प्रसिद्ध वैश्यकी दूकानपर जा बैठा। उसको भी उस समय उसी प्रकारसे महान् लाभ हुआ। तब उसने भी धन्यकुमारसे कहा कि मैं तुम्हारे लिये अपनी बहिन सुभद्राको दूँगा। एक समय राजसेठ श्रीकीर्तिने नगरके मध्यमें यह घोषणा करायी कि जो वैश्यपुत्र एक कौड़ीके द्वारा एक दिनमें हज़ार दीनारोंको प्राप्त करके मुझे देगा उसके लिये मैं अपनी पुत्री धनवतीको दे दूँगा। उस घोषणाको धन्यकुमारने स्वीकार कर लिया। तब वह अध्यक्षके साथ जाकर उस कौड़ीको ले आया। उससे उसने मालाओंके रखनेके साधनभूत तृणोंको खरीदकर उन्हें मालियोंके लिये दे दिया और उनके बदलेमें उनसे फूलोंको ले लिया।

---

१. फ ब सूत्रं निधत्त। २. श महल्लाभो।

मालाः चकार। ता उद्यानक्रीडार्थं गच्छतां राजकुमाराणामदर्शयत्। तैर्मौल्ये पृष्टे दीनारसहस्रं निरूपितवान्। तैरर्थिभिर्दत्तम्। स च श्रेष्ठिनोऽदत्त। स पुत्रीदानमभ्युपजगाम।

तत्ख्यातिमाकर्ण्य तं च विलोक्य गुणवत्यत्यासक्ता तच्चिन्तया क्षीणविग्रहा जज्ञे। अन्यदा कुमारो द्यूते प्रधानादिपुत्रान् विश्वान् जिगाय। तदा[1] तत्र नृपपुत्रोऽभयकुमारो विज्ञानमदगर्वितः, तमपि चन्द्रकवेध्यं विद्ध्वा जिगाय। धन्यकुमारः। ततः सर्वेऽपि तं द्विषन्ति, तस्य वधं चिन्तयन्ति। इतो गुणवत्याः कार्श्यस्य कारणमवधार्य श्रेणिकोऽभयकुमारादिभिरालोचितवान् 'किं तस्मै कन्या दातुमुचितं न वा' इति। अभयकुमारोऽब्रूत— नोचितमज्ञातकुलत्वात्। राजाबोचत्— तर्हि कुमारी मरिष्यति। तत्सुत उवाच— यावत्स जीवति तावत् कुमार्या दुःखं तिष्ठति[2]। तं च निरपराधिनं[3] मारयितुं नायाति[4], किंतूपायेन मारणीयः। स चोपायो तिष्ठते— नगराद् बहिः[5] राक्षसभवनमस्ति, तत् प्रविष्टा[6] पूर्वं बहवो मृताः। अतः 'तद्यः प्रवेक्ष्यति तस्य अर्धराज्यं[7] गुणवतीं पुत्रीं च दास्यामि' इति पुरे घोषणा क्रियताम्। तां धृत्वा गर्वितः स एव प्रविश्य मरिष्यति। राज्ञा तथा कृते सर्वैर्निषिद्धोऽपि तद् विवेश। स राक्षस-

---

फिर उन फूलोंसे धन्यकुमारने अतिशय श्रेष्ठ मालाएँ बनाकर उन्हें वनक्रीड़ाके लिये जाते हुए राजकुमारोंको दिखलाया। उनको देखकर राजकुमारोंने उनका मूल्य पूछा। धन्यकुमारने उनका मूल्य एक हज़ार दीनार बतलाया। तदनुसार उतना मूल्य देकर राजकुमारोंने उन मालाओंको ख़रीद लिया। इस प्रकारसे प्राप्त हुई उन दीनारोंको ले जाकर धन्यकुमारने राजसेठ श्रीकीर्तिको दे दिया। तब श्रीकीर्तिने कृत प्रतिज्ञाके अनुसार उसके लिये अपनी पुत्रीको देना स्वीकार कर लिया।

धन्यकुमारकी कीर्तिको सुनकर और उसे देखकर गुणवती उसके विषयमें अतिशय आसक्त होनेके कारण शरीरसे कृश होने लगी। एक बार धन्यकुमारने द्यूतक्रीड़ामें सब ही मन्त्रियों आदिके पुत्रोंको जीत लिया था। तथा वहाँ जो श्रेणिक राजाका पुत्र अभयकुमार अपने विशिष्ट ज्ञानके मदसे उन्मत्त था उसे भी उसने चन्द्रकवेध्यको वेधकर जीत लिया था। इसीलिये वे सब वैरभावके वशीभूत होकर उसके मार डालनेके विचारमें रहते थे। इधर गुणवतीके दुर्बल होनेके कारणको जानकर राजा श्रेणिकने अभयकुमार आदिके साथ विचार किया कि क्या धन्यकुमारके लिए पुत्री गुणवतीको देना योग्य है या नहीं। उस समय अभयकुमारने कहा कि उसके लिए गुणवतीको देना योग्य नहीं है, क्योंकि, उसके कुलके विषयमें कुछ ज्ञात नहीं है। इसपर श्रेणिकने कहा कि वसी अवस्थामें तो पुत्री मर जावेगी। यह सुनकर अभयकुमारने कहा कि जब तक वह जीता है तब तक कुमारीका दुःख अवस्थित रहेगा, उसके मर जानेपर वह उस दुःखसे मुक्त हो सकती है। परन्तु वह निरपराध है, अतः ऐसी अवस्थामें वह मारनेमें नहीं आता। इसलिए उसे उपायसे मारना उचित होगा। और वह उपाय यह है— नगरके बाहर जो राक्षसभवन है उसमें प्रविष्ट होकर पूर्व समयमें बहुत-से मनुष्य मरणको प्राप्त हो चुके हैं। इसलिए 'जो कोई उस राक्षसभवनमें प्रवेश करेगा उसके लिये मैं आधा राज्य और गुणवती पुत्रीको दूँगा' ऐसी आप नगरमें घोषणा करा दीजिये। उस घोषणाको स्वीकार करके वही अभिमानी उसके भीतर प्रवेश करेगा और मर जावेगा। तदनुसार राजाके द्वारा घोषणा करानेपर सब जनोंके रोकनेपर भी धन्य-

---

१. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श जिगाय धन्यकुमारस्तदा। २. ब °कुमार्यं दुःखेन तिष्ठति। ३. प फ श निरपराधितं। ४ ब न याति। ५. ब चोपायो तो नगद्बही रा°। ६. श प्रविष्ट्वा। ७. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श °ति तस्मादर्धराज्यं।

स्तद्दर्शनेनोपशान्ति ययौ, संमुखमागत्य तं नत्वा दिव्यासने उपवेशयांचकारोक्तवान्— स्वामिन्नियन्तं कालं त्वद्भाण्डागारिको भूत्वाऽमुं प्रासादमिदं द्रव्यं च रक्षन् स्थितस्त्वमागतोऽसि, सर्वं स्वीकुर्विति। सर्वं समर्प्य त्वद्भृत्योऽहं स्मरणे आगच्छामीति विज्ञाप्यादृशो बभूव। कुमारो रात्रौ तत्रैवास्थात्। गुणवत्यादयः तद्गतिरेवास्माकं गतिरिति प्रतिज्ञया तस्थुः। प्रातस्तस्मान्निर्गत्य पुराभिमुखमागच्छन्तं कुमारं विलोक्य राज्ञः पौराणां च कौतुकमासीत्। राजाभयकुमारादिभिरर्धपथमाययौ, स्वराजभवनं प्रवेश्य 'किंकुलो भवान्' इति पप्रच्छ। कुमारोऽभूत— उज्जयिन्यां वैश्यात्मजोऽहं तीर्थयात्रिकः। ततो नृपो गुणवत्यादिभिः षोडशकन्याभिस्तस्य विवाहं चकार अर्धराज्यं च ददौ। धन्यकुमारस्तत्प्रासादस्य समन्तात्[1] पुरं कृत्वा तत्प्रासादे राज्यं कुर्वन् तस्थौ।

इतः उज्जयिन्यां कुमारादर्शने राजादीनां दुःखमभूत्। मातापित्रोः किं प्रष्टव्यम्[2]। तौ सपुत्रौ तन्निधिरक्षकदेवताभिः रात्रौ[3] निर्धाटितौ। गत्वा पूर्वस्मिन् गृहे स्थितौ। पुरजनानां कौतुकं जातमहो वज्रहृदयोऽयं तथाविधे पुत्रे गते जीवति इति। कतिपयदिनैर्ग्रासाभावाद्धन-

---

कुमार जाकर उस राक्षसभवनके भीतर प्रविष्ट हुआ। परन्तु उसको देखते ही राक्षस शान्त हो गया। तब उसने धन्यकुमारके सामने उपस्थित होकर उसे नमस्कार किया और दिव्य आसनके ऊपर बैठाया। फिर वह धन्यकुमारसे बोला कि हे स्वामिन्! मैं इतने समय तक आपका भण्डारी होकर इस भवनकी और इस धनकी रक्षा करता हुआ यहाँ स्थित था। अब चूँकि आप आ गये हैं, अतएव इस सबको स्वीकार कीजिये। इस प्रकार कहकर उसने उस सब धनको धन्यकुमारके लिये समर्पित कर दिया। अन्तमें वह यह निवेदन करके कि 'मैं आपका सेवक हूँ, आप जब मेरा स्मरण करेंगे तब मैं आकर उपस्थित हो जाऊँगा' यह कहते हुए अदृश्य हो गया। धन्यकुमार रातमें वहींपर रहा। गुणवती आदि उन कन्याओंने उस समय यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जो अवस्था धन्यकुमारकी होगी वही अवस्था हमारी भी होगी। उधर प्रातःकालके हो जानेपर धन्यकुमार उस राक्षस भवनसे निकलकर नगरकी ओर आ रहा था। उसे देखकर राजा और नगर-निवासियोंको बहुत आश्चर्य हुआ। तब राजा श्रेणिक अभयकुमार आदिकोंके साथ उसके स्वागतार्थ आधे मार्ग तक आया। तत्पश्चात् श्रेणिकने उसे अपने राजभवनके भीतर ले जाकर उससे अपने कुलके सम्बन्धमें पूछा। उत्तरमें कुमारने कहा कि मैं उज्जयिनीका रहनेवाला एक वैश्यपुत्र हूँ और तीर्थयात्रामें प्रवृत्त हूँ। तब राजाने गुणवती आदि सोलह कन्याओंके साथ उसका विवाह कर दिया और साथमें आधा राज्य भी दे दिया। तब धन्यकुमार उस भवनके चारों ओर नगरकी रचना कराकर राज्य करता हुआ वहाँ उस भवनमें स्थित हुआ।

इधर उज्जयिनीमें धन्यकुमारके अदृश्य हो जानेपर— उसके देशान्तर चले जानेपर—राजा आदिकोंको बहुत दुःख हुआ। माता और पिताकी अवस्थाका तो पूछना ही क्या है? उन निधियोंकी रक्षा करनेवाले देवोंने पुत्रोंके साथ उन दोनोंको रातमें बाहर निकाल दिया। तब वे वहाँसे जाकर अपने पहलेके घरमें रहने लगे। उस समय नगर-निवासियोंको बहुत आश्चर्य हुआ। वे विचार करने लगे कि देखो यह धन्यकुमारका पिता (धनपाल) कितना कठोर हृदय है जो वैसे प्रभावशाली पुत्रके चले जानेपर भी जीवित है। कुछ ही दिनोंके पश्चात् धनपालके लिए भोजन

---

१. क तत्प्रासादसमन्तात्। २. प क ब पृष्टव्यम्। ३. श देवताभि रात्रौ।

पालो राजगृहपुरस्थस्वभगिनीपुत्रशालिभद्रान्तिके किमप्यपेक्ष्य राजगृहमितो धन्यकुमारप्रासादाग्रे स्थित्वा स[1] शालिभद्रस्य गृहं पृच्छंस्तस्थौ। आस्थानस्थो धन्यकुमारो राजा तं विलोक्य परिज्ञाय तन्निकटं जगाम, तत्पादयोः पपात। तदा सर्वेऽपि लोकाः किमिदमाश्चर्यमित्यवलोकयन्तस्तस्थुः। तदा धनपालोऽब्रूत— भो नराधीशाप्रतिहतप्रतापो भूत्वा चिरं पृथ्वीं पाहि। अहं[2] मन्दभाग्यो वैश्यस्त्वं पृथिवीपतिः इति त्वमेव मे नमस्कारार्हः इति[3]। धन्यकुमारोऽवोचत्— त्वं मत्पिताहं त्वत्पुत्रो धन्यकुमारो [रः], ततस्त्वमेव नमस्कारार्हः। तदा परस्परं कण्ठमाश्लिष्य रुदितौ, प्रधानैर्निवारितौ राजभवनं प्रविष्टौ। धन्यकुमारः कथितात्मवृत्तः स्वमात्रादेः स्थितिं पृष्टवान्। पिता बभाण— सर्वे जीवेन सन्ति, किंतु तन्नास्ति यद्भुज्यते। तदा धन्यकुमारः सर्वेषां यानादिकं[4] प्रस्थापितवान्। तदा प्रभावत्यादयो विभूत्या तत्र ययुः। तदागमनमाकर्ण्य धन्यकुमारोऽतिविभूत्यार्धपथं निर्ययौ, मातरं ननाम, भ्रातॄनपि। ते लज्जया अधोमुखा अभूवंस्तदा धन्यकुमारोऽब्रूत— हे भ्रातरो भवत्प्रसादेन मे राज्यं जातमिति यूयं निःशल्या भवन्तु[5]। तदा ते आत्मानं निनिन्दुस्ततो धन्यकुमारः सर्वान् पुरं प्रवेश्य तेभ्यो यथायोग्यं ग्रामादिकं दत्त्वा सुखेन तस्थौ।

भी दुर्लभ हो गया। तब वह राजगृह नगरमें स्थित अपने भानजे शालिभद्रके पासमें कुछ अपेक्षा करके राजगृह नगरकी ओर गया। वहाँ पहुँचकर वह धन्यकुमारके भवनके सामने स्थित होकर शालिभद्रके घरका पता पूछने लगा। उस समय धन्यकुमार राजा सभाभवनमें बैठा हुआ था। वह पिताको देखकर व पहिचान करके उसके पासमें गया और पाँवोंमें गिर गया। तब सभाभवनमें स्थित सब ही जन इस घटनाको आश्चर्यपूर्वक देखने लगे। उस समय धनपाल बोला कि हे राजन्! तुम अखण्ड प्रतापके धारी होकर चिर काल तक पृथिवीका पालन करो। मैं एक पुण्यहीन वैश्य हूँ और तुम राजा हो। इस कारण मेरे लिए नमस्कारके योग्य तुम ही हो। इसपर धन्यकुमार बोला कि तुम मेरे पिता हो और मैं तुम्हारा पुत्र धन्यकुमार हूँ। इसलिए तुम ही मेरे द्वारा नमस्कार करनेके योग्य हो। उस समय वे दोनों एक दूसरेके गले लगकर रो पड़े। तब मन्त्रीगण उन दोनोंको किसी प्रकारसे शान्त करके राजभवनके भीतर ले गये। वहाँ धन्यकुमारने अपना सब वृत्तान्त कहकर पितासे अपनी माता आदिकी कुशलताका समाचार पूछा। उत्तरमें पिताने कहा कि जीते तो वे सब हैं, परन्तु अब वह नहीं रहा है जो खाया जाय— उस जीवनके आधारभूत भोजनका मिलना सबके लिये दुर्लभ हो गया है। यह जानकर धन्यकुमारने सबको ले आनेके लिये सवारी आदिको भेज दिया। तब प्रभावती आदि सब ही कुटुम्बी जन विभूतिके साथ वहाँ जा पहुँचे। उनके आनेके समाचारको जानकर धन्यकुमार महती विभूतिके साथ उन सबको लेनेके लिए आधे मार्ग तक गया। वहाँ पहुँचकर उसने पहिले माताको और तत्पश्चात् भाइयोंको भी प्रणाम किया। उस समय उन सबने लज्जासे अपना मुख नीचे कर लिया। तब धन्यकुमार बोला कि हे भाइयो! आप लोगोंकी कृपासे मुझे राज्यकी प्राप्ति हुई है। इससे आप सब निश्चिन्त होकर रहें। इस स्थितिको देखकर धन्यकुमारके उन भाइयोंको अपने कृत्यके ऊपर बहुत पश्चात्ताप हुआ। तत्पश्चात् धन्यकुमारने सबको नगरके भीतर ले जाकर उनके लिये यथायोग्य

---

१. ब सा। २. ब पृथ्वीपति अहं। ३. प नमस्कारा इति ब नमस्कारार्हं इति। ४. ब जनादिकं श यानादिकं। ५. श भवन्त।

एकदा सुभद्रायाः मुखं विरूपकं विलोक्य पप्रच्छ— प्रिये, किं ते मुखस्य वैरूप्यं प्रवर्तते। तयाभाणि—मे भ्राता शालिभद्रो गृहे वैराग्यं भावयन्नास्ते इति मे दुःखं प्रवर्तते। तदा धन्य-कुमारोऽवोचत्— हे प्रियेऽहं तं संबोधयामि, त्वं दुःखं त्यज। तदा तद्गृहमियाय बभाषे च— शालक, सांप्रतं किमिति मे गृहं नागच्छसि। स उवाचाहं तपोऽभ्यासं कुर्वंस्तिष्ठामीति नागच्छामि। धन्यो बभाण— यदि त्वं तपोऽर्थी किमभ्यासेन। वृषभादयस्तदन्तरेणैव तपो जगृहुः। त्वमभ्यासं कुर्वन् तिष्ठाहं तपो गृह्णामीति तस्मान्निर्गत्य स्वगृहमागत्य धनपालाख्यं स्वज्येष्ठपुत्रं स्वपदे निधाय श्रेणिकादिभिः क्षमितव्यं विधाय [1]मातापिताभ्रातृशालिभद्रादिभिः श्रीवर्धमानसमवसरणे दीक्षां बभार, सकलागमधरो भूत्वा बहुकालं तपो विधायावसाने नवमासान् सल्लेखनां कृत्वा प्रायोपगमनविधिना तनुं तत्याज, सर्वार्थसिद्धिं ययौ। धनपाला-द्यो यथायोग्यां गतिं ययुः। इति वत्सपालोऽपि सकृन्मुनिदानानुमोदफलेनैवंविधो जातोऽन्यः किं न स्यादिति ॥१५॥

[५७]

यासोत्सोमामरस्य द्विजकुलविदिता नारी पतिरता
दत्त्वान्नं भर्तृभीतापि सुगुणमुनये भक्त्या जिनपतेः।

गाँव आदि दिये। इस प्रकार वह सुखसे कालयापन करने लगा।

एक समय धन्यकुमारने सुभद्राके मुखको मलिन देखकर उससे पूछा कि प्रिये! तेरा मुख मलिन क्यों हो रहा है? इसपर उसने कहा कि मेरा भाई शालिभद्र घरमें स्थित रहकर वैराग्यका चिन्तन कर रहा है। इससे मैं दुःखी हूँ। यह सुनकर धन्यकुमारने कहा कि हे प्रिये! मैं जाकर उसको सम्बोधित करता हूँ, तुम दुःखका परित्याग करो। यह कहकर धन्यकुमार उसके घर जाकर बोला कि हे साले शालिभद्र! आजकल तुम मेरे घरपर क्यों नहीं आते हो? उत्तरमें शालिभद्र बोला कि मैं तपका अभ्यास कर रहा हूँ, इसलिए तुम्हारे घर नहीं पहुँच पाता हूँ। इसपर धन्यकुमार-ने कहा कि यदि तुम तपको ग्रहण करना चाहते हो तो फिर उसके अभ्याससे क्या प्रयोजन है? देखो! वृषभादि तीर्थंकरोंने अभ्यासके बिना ही उस तपको स्वीकार किया था। तुम उसका अभ्यास करते हुए यहींपर स्थित रहो और मैं जाकर उस तपको ग्रहण कर लेता हूँ। ऐसा कहता हुआ धन्यकुमार उसके घरसे निकलकर अपने घर आया। वहाँ उसने धनपाल नामके अपने ज्येष्ठ पुत्रको राज्य देकर श्रेणिक आदि जनोंसे क्षमा माँगी और फिर माता, पिता, भाइयों एवं शालिभद्र आदिके साथ श्री वर्धमान जिनेन्द्रके समवसरणमें जाकर दीक्षा धारण कर ली। उसने समस्त आगममें पारंगत होकर बहुत समय तक तपश्चरण किया। अन्तमें उसने नौ महीने तक सल्लेखना करके प्रायोपगमन संन्यासकी विधिसे शरीरको छोड़ दिया। इस प्रकार मरणको प्राप्त होकर वह सर्वार्थ-सिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ। धनपाल आदि भी यथायोग्य गतिको प्राप्त हुए। इस प्रकार बछड़ोंको चरानेवाला वह अकृतपुण्य भी जब एक बार मुनिदानकी अनुमोदना करनेसे ऐसी विभूतिको प्राप्त हुआ है तब क्या दूसरा विवेकी प्राणी वैसी विभूतिको नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा ॥१५॥

ब्राह्मण कुलमें प्रसिद्ध व पतिमें अनुरक्त जिस सोमदेवकी स्त्रीने पतिसे भयभीत होकर भी जिनेन्द्रकी भक्तिके वश उत्तम गुणोंके धारक मुनिके लिए आहार दिया था वह उसके प्रभावसे

[1] श मातापित्राभ्रातृ।

नेमेर्यक्षी[1] बभूव प्रबलगुणगणा रोगादिरहिता
तस्माद् दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये ॥१६॥

अस्य कथा— अत्रैवार्यखण्डे सुराष्ट्रविषये गिरिनगरे राजा भूपालस्तत्र विप्रः सोमशर्मा भार्या अग्निला, पुत्रौ सप्तवर्षपञ्चवर्षवयोयुतौ[2] शुभंकर-प्रभंकरनामानौ। ते सोमशर्मादयः सुखेन तस्थुः। एकदा सोमशर्मणो गृहे श्राद्धदिनमागतम्। तद्दिने तेन बहवो विप्राः आमन्त्रिताः। ते च पिण्डदानं[3] कर्तुं जलाश्रयं ययुः। इतो मध्याह्ने ऊर्जयन्तगिरिनिवासी वरदत्तनामा महामुनिर्मासोपवासपारणायां गिरिनगरं चर्यार्थं प्रविष्टो न केनापि[4] दृष्टोऽग्निलया दृष्टो जैनीजनसंसर्गात्तन्मार्गं प्रविबुध्य सा संमुखं गत्वा तत्पादयोः पपात बभाषे च— स्वामिन्नहं ब्राह्मणी, तथापि मन्मातापितृवर्गौ जैनौ[5] इति मे व्रतशुद्धिर्विद्यते, ततो भाण्डभाजनशुद्धिरप्यस्ति। तस्मान्मे कृपां कृत्वा मे गृहे तिष्ठ परमेश्वर, इति यथोक्तवृत्त्या स्थापयामास। वरदत्तमुनिस्तु कृपाबहुलत्वात् तद्भक्तिं विलोक्य जहर्ष स्थितवांश्च। ततोऽग्निलानन्देन नवविधपुण्यसप्तगुणान्विता तस्मै आहारदानं[6] चकार भर्तृभयव्यप्रापि। तदवसरे देवगतावायुर्बबन्ध। मुनिर्नैरन्तर्यानन्तरं गृहान्निर्गच्छन् पिण्डप्रदानादिकं निष्ठाप्य तद्गृहं प्रविशद्भिर्विप्रैर्दृष्टः।

भगवान् नेमि जिनेन्द्रकी यक्षी हुई। वह उत्तम गुणोंके समूहसे युक्त होकर रोगादिसे रहित थी। इसलिए निर्मल गुणसमूहके धारक भव्य जीवोंको उत्तम मुनिके लिए दान देना चाहिये ॥१६॥

इसकी कथा इस प्रकार है— इसी आर्यखण्डमें सुराष्ट्र देशके अन्तर्गत गिरिनगरमें भूपाल नामका राजा राज्य करता था। उसके यहाँ एक सोमशर्मा नामका पुरोहित था। उसकी स्त्रीका नाम अग्निला था। इनके शुभंकर और प्रभंकर नामके दो पुत्र थे जो क्रमसे सात व पाँच वर्षकी अवस्थावाले थे। वे सब सोमशर्मा आदि सुखसे कालयापन कर रहे थे। एक समय सोमशर्माके घर श्राद्धका दिन आकर उपस्थित हुआ। उस दिन सोमशर्माने बहुत से ब्राह्मणोंको भोजनके लिए निमन्त्रित किया। वे सब पिण्डदान करनेके लिए जलाशयके ऊपर गये। इधर मध्याह्नके समयमें ऊर्जयन्त पर्वतके ऊपर रहनेवाले वरदत्त नामके महामुनि एक महीनेके उपवासको समाप्त करके पारणाके दिन आहारके लिए गिरिनगरके भीतर प्रविष्ट हुए। परन्तु उन्हें किसीने नहीं देखा। वे अग्निलाको दिखायी दिये। वह जैनोंके संसर्गमें रहनेसे आहारदानकी विधिको जानती थी। इसलिए वह सन्मुख जाकर उनके पाँवोंमें गिर गई और बोली कि हे स्वामिन्! मैं यद्यपि ब्राह्मणी हूँ, फिर भी मेरे माता-पिता आदि सब जैन हैं। इसलिए मेरे व्रतशुद्धि है और इसीसे द्रव्यशुद्धि व पात्रशुद्धि भी है। अतएव हे परमेश्वर! मेरे ऊपर कृपा करके मेरे घर ठहरिये। इस प्रकार उसने शास्त्रोक्त विधिसे उनका पड़िगाहन किया। वरदत्त मुनि दयालु थे, इसलिए वे उसकी भक्तिको देखकर सहर्ष वहाँ ठहर गये। तब सानन्द अग्निलाने पतिकी ओरसे भयभीत होनेपर भी उन्हें सात गुणोंसे युक्त होकर नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान किया। इस अवसरपर उसने देवायुको बाँध लिया। मुनिराज आहार लेकर उसके घरसे निकल ही रहे थे कि इतनेमें पिण्डदानादिको समाप्त कर वे ब्राह्मण जलाशयसे आये और सोमशर्माके घरके भीतर प्रविष्ट हुए। उन सबने जाते

---

१. श ते मे यक्षी। २. श वयोयुयुतौ। ३. ब पिंड प्रदानं। ४. फ नैकोनापि श नेकेनापि। ५. ब वर्गौ जैना। ६. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श तस्मादाहारदानं।

तद्दर्शनेन सर्वेऽपि कोपाग्निना प्रज्वलिता ऊचुः सोमशर्मन्[1] [न्] त्वद्गृहरसवती क्षपणकेनोच्छिष्टा कृतेति विप्राणां भोक्तुमनुचितेति व्याघुटिताः। तदा सोमशर्मा स्वामिनोऽहं[2] श्रीमान् यथेष्टं प्रायश्चित्तं दत्त्वा श्राद्धकार्यं क्रियतामिति भणित्वा तत्पादेषु पपात। तमतिभक्तं श्रीमन्तं च दृष्ट्वा केचिद् द्विजा ऊचुः— विप्रवचनेन तावत्सर्वंशुद्धमित्यस्य प्रायश्चित्तं दत्त्वा भोक्तुमुचितम्। नो चेत् श्लोकम्—

> अजाश्वा मुखतो मेध्या गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः।
> ब्राह्मणाः पादतो मेध्या स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः॥

इति स्मृतिवचनादस्य प्रायश्चित्तं दत्त्वाजाश्वमुखस्पर्शेण रसवतीं विशोध्य भोक्तव्यमिति। कैश्चिदवाद्यन्यस्य दोषस्य प्रायश्चित्तमस्त्यस्य दोषस्य यद्यस्ति तर्हि निरूप्यतामिति परस्परं विवादं कृत्वा पादेषु पतितं तं निर्लोठ्य स्व-स्वगृहं जग्मुस्ते। सोमशर्मा गृहं प्रविश्याग्निलां मस्तककेशेषु धृत्वा मे विप्रोत्तमस्यैतस्या जैनात्मजायाः पापिष्ठायाः परिणयनेन[3] एतद्बहु न[4] भवतीति भणित्वा दण्डैर्दण्डैर्घोरं जघान, मूर्च्छाप्राप्तां तत्याज, अतिदुःखी बभूव तस्थौ[5]। सा चेतनामवाप्य लघुपुत्रस्य हस्तं धृत्वा बृहत्पुत्रं पृष्ठतो निधाय तन्मुनेरूर्जयन्ते स्थितिं जनात्

हुए उन मुनिराजको देख लिया। तब उनके देखनेसे कुपित होकर सब ही ब्राह्मण बोले कि हे सोमशर्मा! तुम्हारे घरकी रसोईको नङ्गे साधुने जूठा कर दिया है, इसलिए वह ब्राह्मणोंके खाने योग्य नहीं रही। इस प्रकार कहकर वे सब वापस जाने लगे। तब वह सोमशर्मा बोला कि हे स्वामिनो! मैं धनवान् हूँ, इसलिए आप लोग मुझे इच्छानुसार प्रायश्चित्त देकर श्राद्ध कार्यको पूरा कीजिये। इस प्रकार कहता हुआ वह उनके पाँवोंमें गिर गया। तब उसको अतिशय भक्त एवं धनवान् देखकर कुछ ब्राह्मण बोले कि ब्राह्मणके कहनेसे सब शुद्ध होता है। इसलिए उसे प्रायश्चित्त देकर भोजन कर लेना उचित है। यदि इसपर विश्वास न हो तो इस श्लोकको देख लिजिये—

बकरे और घोड़े मुखसे पवित्र हैं, गायें पिछले भाग (पूँछ) से पवित्र हैं, ब्राह्मण पाँवोंसे पवित्र हैं, और स्त्रियाँ सब शरीरसे पवित्र हैं ॥१७॥

इस स्मृति वचनके अनुसार इसको प्रायश्चित्त देकर बकरे और घोड़के मुखके स्पर्शसे रसोईको शुद्ध कराकर भोजन कर लेना चाहिये। यह सुनकर कुछ ब्राह्मण बोले कि अन्य दोषोंका प्रायश्चित्त है, परन्तु यदि इस दोषका प्रायश्चित्त है तो उसे दिखलाया जाय। इस प्रकारसे वे आपसमें विवाद करते हुए पाँवोंमें पड़े हुए उस सोमशर्मासे रूठकर अपने-अपने घर चले गये। तब सोमशर्मा घरके भीतर जाकर अग्निलाके शिरके बालोंको खींचता हुआ बोला कि मुझ जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिए इस अतिशय पापिनी जैन लड़कीके साथ विवाह करनेसे यह कुछ बहुत नहीं है— इससे भी यह अधिक अनिष्ट कर सकती है, ऐसा कहते हुए उसने उसे दण्डोंसे मारना प्रारम्भ किया। इस प्रकारसे मारते हुए उसने उसे तब ही छोड़ा जब कि वह उसकी भयानक मारसे मूर्छित हो गई। उपर्युक्त घटनासे वह बहुत दुःखी रहा। उधर जब अग्निलाकी मूर्छा दूर हुई तब उसने लोगोंसे यह पूछा कि वे मुनि कहाँपर स्थित हैं। इस प्रकारसे जब उसे यह ज्ञात हुआ कि

---

१. अ प क श सोमशर्मण ब सोमशर्म्मं। २. ब समपि भवत्तं। ३. ब परिणयने। ४. फ ब एतद्बहुनं। ५. ब दुःखी भूत्वा तस्थौ।

परिज्ञाय तं गिरिं गच्छन्ती मार्गे भिल्लीं विलोक्याग्निला 'हेऽम्ब ऊर्जयन्तगिरेर्मार्गः कः' इति पप्रच्छ। भिल्ली बभाण— मातस्तत्र ते किं प्रयोजनम्। तयोक्तम्[1]— किमनेन विचारणेन, तन्मार्गं कथय। पुलिन्दी बभाण— त्वमेकाकिनी बालाभ्यामनेकव्याघ्रादिप्रचरितं गिरिं कथं प्रवेक्ष्यसि। सा बभाण— मदीयो गुरुस्तत्र तिष्ठति, तत्प्रभावेन सर्वं मे सुस्थम्, तन्मार्गं कथय। तया तन्मार्गः[2] कथितः। तेन गत्वा तं गिरिमवाप। तत्र कमपि पुलिन्दं मुनिस्थितस्थानं[3] पप्रच्छ। स सबालां तां विलोक्य कृपावशेन तद्गिरिकटिस्थगुहास्थं[4] तं मुनिं दर्शयति स्म। सा तं नत्वा समीपे उपविश्योवाच— स्वामिन्, स्त्रीजन्मातिकष्टमतोऽस्य विनाशकं मे तपो देहि। मुनिर्बभाण— मातस्त्वं रोषेणागतासीत्यव्यक्तापत्यमातेति[5] तपो न प्रकल्पते[6], अत्र स्थातुमपि, लोकापवादभयात्ततो गत्वा एकस्मिन् तरुतले यावत्त्वदीयः कोऽपि समागच्छति तावत्तिष्ठ। सा 'प्रसादः' इति भणित्वा तस्मान्निर्गत्योच्चैःप्रदेशस्थतरुतले[7] उपविष्टा। तत्र पुत्रौ जलं ययाचते[8]। तदा शुष्को तटाको[9]ऽग्निलापुण्यप्रभावेनात्यन्तमृष्टनिर्मलोदकपूर्णो बभूव। ततो[10]

वे मुनि ऊर्जयन्त पर्वतके ऊपर विराजमान हैं तब वह छोटे लड़केका हाथ पकड़ करके और बड़े लड़केको पीछे करके उस ऊर्जयन्त पर्वतकी ओर चल पड़ी। मार्गमें जाते हुए उसे एक भील स्त्री दिखी। उससे उसने पूछा कि हे माता! ऊर्जयन्त पर्वतका रास्ता कौन-सा है? इसपर उस भील स्त्रीने अग्निलासे पूछा कि हे माता! तुम्हें उस पर्वतसे क्या प्रयोजन है? इसके उत्तरमें अग्निलाने कहा कि इस सबका विचार करनेसे तुम्हें क्या लाभ है, तुम तो केवल मुझे उस पर्वतका मार्ग बतला दो। इसपर उस भील स्त्रीने कहा कि तुम अकेली हो और तुम्हारे साथ ये दो बालक हैं, उधर वह पर्वत व्याघ्रादि हिंसक जीवोंसे परिपूर्ण है। उसके भीतर तुम कैसे प्रवेश कर सकोगी? यह सुनकर अग्निला बोली कि मेरे गुरुदेव वहाँपर विराजमान हैं, उनके प्रभावसे मेरे लिए सब कुछ भला होगा। तुम मुझे वहाँका मार्ग बतला दो। इसपर उसने अग्निलाको वहाँका मार्ग बतला दिया। तब वह उस मार्गसे जाकर ऊर्जयन्त पर्वतपर पहुँच गई। वहाँ जाकर उसने किसी भीलसे उन मुनिके रहनेका स्थान पूछा। भीलने उसके साथ बच्चोंको देखकर दयालुतावश उसे उस पर्वतके कटिभागमें स्थित एक गुफाके भीतर विराजमान उन मुनिको दिखला दिया। तब वह उनको नमस्कार करके पासमें बैठ गई और बोली कि हे स्वामिन्! यह स्त्रीकी पर्याय बहुत कष्टमय है, इसलिये मुझे इस पर्यायसे छुटकारा दिला देनेवाले तपको दीजिये। यह सुनकर मुनि बोले कि हे माता! तुम क्रोधके वश होकर आयी हो व इन अल्पवयस्क अबोध बालकोंकी माता हो, इसलिए तुम्हें दीक्षा देना योग्य नहीं है। इसके अतिरिक्त लोकनिन्दाके भयसे तुम्हारा यहाँ स्थित रहना भी योग्य नहीं है। इसलिए जब तक तुम्हारा कोई सम्बन्धी नहीं आता है तब तकके लिये यहाँसे जाकर किसी एक वृक्षके नीचे ठहर जाओ। इसपर वह उन मुनिका आभार मानती हुई वहाँसे निकलकर किसी ऊँचे प्रदेशमें स्थित एक वृक्षके नीचे बैठ गई। वहाँपर दोनों पुत्रोंने उससे जल माँगा। उस समय जो तालाब सूखा पड़ा था वह अग्निलाके पुण्यके प्रभावसे अतिशय पवित्र

१. श प्रयोजनं तयोजनं तयोक्तं। २. ब तन्मार्गं। ३. श स्थिर्ति स्थानं। ४. श तद्गिरिनिकटिनीस्थं°। ५. ब सीत्यव्यक्तपतत्यमातेति। ६. ब प्रकल्प्यते। ७. प °च्चैप्रदेशस्थाम्रातरु° फ °च्चैप्रदेशस्थं तरु° ज श °च्चैप्रदेशस्थाम्रतरु°। ८. ब याचते। ९. फ टंको। १०. श पूर्णो ब ततो।

जलं पायितौ। ततः कियद्वेलायामम्ब, बुभुक्षितावित्युक्तवन्तौ। तदा स एव वृक्षः कल्पवृक्षोऽभूत्। ततो यथेष्टं वस्तु भुक्तवन्तौ पुत्रौ। सा तत् कौतुकं वीक्ष्य धर्मफलेऽतिहृष्टा जज्ञे, सुखेन स्थिता तत्र।

इतो गिरिनगरं तद्दिन एव राजभवनमन्तःपुरगृहाणि सोमशर्मगृहं विहायान्यत्सर्वं भस्मीबभूव। सर्वेऽपि जनाः पलाय्य पुराद् बहिस्तस्थुः ऊचुश्चाग्निज्वालामध्यस्थमपि सोमशर्मणो गृहमुद्वृत्तमहो। तत्र योऽभुक्त[1] स क्षपणको न भवति। किं तर्हि। कोऽपि देवताविशेषोऽन्यथा किं तद्गृहमुद्व्रियते[2]। ततस्तद्भुक्तशेषा रसवती पवित्रेति पूर्वं ये आमन्त्रिता अन्ये च विप्राः सोमशर्मान्तिकमागत्योचुः — त्वं पुण्यवान्, क्षपणकवेषेण कश्चिद्देवता भुक्तवानित्यतस्त्वद्गृहरसवती पवित्रास्मभ्यं भोक्तुं प्रयच्छ। ततस्तेन ते विप्रा अन्येऽपि स्वगृहं नीता यथेष्टं भोजिताः। स मुनिः परमेश्वरोऽक्षीणमहानसर्द्धिप्राप्त इति तस्य क्षीररसदधिनी[3] विहायान्या सर्वापि[4] रसवती परिविष्टेति तद्दिनेऽक्षया बभूव। सर्वेऽपि पौरजनास्तेन भोजिताः। सर्वजनकौतुकमासीत्। सर्वेऽपि मुनिदानरता जज्ञिरे।

निर्मल जलसे परिपूर्ण हो गया। तब उसने उस तालाबसे दोनों बालकोंको जल पिलाया। तत्पश्चात् कुछ समयके बीतनेपर दोनों बालक बोले कि माँ! हम दोनों भूखे हैं। उस समय वही वृक्ष उनके लिए कल्पवृक्ष बन गया। तब दोनों बालकोंने इच्छानुसार भोज्य वस्तुओंका उपभोग किया। इस आश्चर्यको देखकर अग्निला धर्मके फलके विषयमें अतिशय हर्षको प्राप्त हुई। इस प्रकारसे वह वहाँ सुखसे स्थित थी।

इधर उसी दिन राजभवन, अन्तःपुरगृह (स्त्रियोंके रहनेके घर) और सोमशर्माके घरको छोड़कर शेष सारा गिरिनगर अग्निमें जलकर भस्म हो गया। उस समय सब ही जन भागकर नगरके बाहर स्थित होते हुए बोले कि आश्चर्यकी बात है कि अग्निकी ज्वालाके बीचमें पड़ करके भी सोमशर्माका घर बच गया है— वह नहीं जला है। उसके घरपर जिसने भोजन किया था वह नग्न साधु नहीं, किन्तु कोई विशिष्ट देव था। यदि ऐसा न होता तो वह सोमशर्माका घर भस्म होनेसे क्यों बचा रहता? इसलिये उसके भोजन कर लेनेपर शेष रही रसोई पवित्र है। ऐसा विचार करते हुए उनमें-से जिन ब्राह्मणोंको पहले निमन्त्रित किया गया था वे तथा दूसरे भी ब्राह्मण सोमशर्माके घर आकर बोले कि हे सोमशर्मा! तुम पुण्यशाली पुरुष हो, तुम्हारे यहाँ नग्न साधुके वेषमें किसी देवताने भोजन किया है। इसलिए तुम्हारे घरकी रसोई पवित्र है। तुम उसे हमें खानेके लिए दो। तब सोमशर्माने उन सबको तथा और दूसरे ब्राह्मणोंको भी अपने घर ले जाकर उन्हें इच्छानुसार भोजन कराया। वे मुनि परमेश्वर अक्षीणमहानस ऋद्धिके धारक थे, इसीलिए उस दिन उनके लिए दूध और दहीको छोड़कर शेष जो सब रसोई परोसी गई थी वह सब अक्षय हो गयी थी— चक्रवर्तीके विशाल कटकके द्वारा भी भोजन कर लेनेपर वह नष्ट नहीं हो सकती थी। उस दिन सोमशर्माने सब ही नगरनिवासियोंको भोजन कराया। इस घटनासे उस समय सब ही जनोंको आश्चर्य हुआ। इससे सब ही जन मुनिदानमें अनुराग करने लगे।

---

१. ज यो भुक्त ब भुक्तः। २. फ °मुद्ध्रियते ब °मुद्वृयते। ३. ब-प्रतिपाठोऽयम्। ज क्षीररसदधिना प फ श क्षीररसदधिनी। ४. श विहायात्या सर्वापि।

द्वितीयदिने सोमशर्मा[1] हा, मया पापकर्मणा महासती पुण्यमूर्तिर्निरपराधा संताडिता क गतेति[2] गवेषयांचक्रे, अपश्यन् महाविप्रलाप कृतवान् । तदा केनापि कथितम् 'ते वनिता ऊर्जयन्तं गता' इति । तदनु कतिपयजनैरूर्जयन्तमागतस्तदागमनं विलोक्याग्निला पुनरयं मे किंचिद् दुःखं दास्यतीति मत्वा पुत्रौ तत्रैव निधाय स्वयं[3] तद्दर्यां पपात । यावत्स तत्र न प्राप्नोति तावत्सा मृत्वा व्यन्तरलोके दिव्यप्र[प्रा]सादोपपादभवन[4]स्थपल्यङ्कस्योपरि स्थितहंसतूलिकयोर्मध्ये[5] ऽन्तर्मुहूर्ते नवयौवनसंपन्ना धातुरहितसुगन्धामलदेहा सहजवस्त्रालङ्कारमाल्यविभूषिताणिमाद्यष्टगुणपुष्टा जैनजनवात्सल्यपरा[6] सकलद्वीपस्थात्यन्तरम्यनद्यद्रितरुप्रदेशादिषु[7] क्रीडनशीलानेकपरिवारदेवीयुता श्रीमन्नेमिजिनशासनरक्षकाम्बिकाभिधा यक्षी भूत्वा भवप्रत्ययावधिबोधेन देवगत्युत्पत्तिकारणं बिबुध्य धर्मानन्दमूर्तिर्जनमनोहररूपाग्निलारूपेण तत्तनयान्तिके तस्थौ । तदा स आगत्य निजवनितां मत्वोक्तवान् — प्रिये, यन्मया पापिष्ठेनापरीक्ष्य कृतं तत्सर्वं क्षमस्वागच्छ गृहम् । सा बभाण — तव वनिताहं न भवामि, सा तत्र तिष्ठतीति तत्कलेवरं दर्शयति स्म स तद् दृष्ट्वाप्यश्रद्दधंस्त्वमेव मे वनितेति तद्दुःखं दधानमना यावदति-

दूसरे दिन सोमशर्माको अपने उस दुष्कृत्यके ऊपर बहुत पश्चात्ताप हुआ । वह विचार करने लगा कि हाय ! मुझ पापीने उस पवित्रमूर्ति महासतीको बिना किसी प्रकारके अपराधके ही मारा है, न जाने वह अब कहाँ चली गई है । इस प्रकारसे पश्चात्ताप करता हुआ वह उसे खोजने लगा लगा । किन्तु जब वह उसे कहीं नहीं दिखी तब वह अतिशय करुणापूर्ण आक्रन्दन करने लगा । उस समय किसीने उससे कहा कि तुम्हारी स्त्री ऊर्जयन्त पर्वतपर गई है । तब वह कुछ जनोंके साथ ऊर्जयन्त पर्वतपर आया । उसे आता हुआ देखकर अग्निलाने सोचा कि अब यह मुझे फिरसे भी कुछ दुःख देगा । बस, यही सोचकर उसने उन दोनों पुत्रोंको तो वहीं छोड़ा और आप स्वयं उस पर्वतकी दरी (?) में जा गिरी । सोमशर्मा उसके पास पहुँच भी नहीं पाया था कि इस बीचमें वह मर गई और व्यन्तर लोकमें दिव्य प्रासादके भीतर उपपाद भवनमें स्थित शय्याके ऊपर यक्षी उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर ही नवीन यौवनसे सम्पन्न हो गई । सात धातुओंसे रहित होकर सुगन्धित व निर्मल शरीरको धारण करनेवाली वह यक्षी स्वाभाविक वस्त्राभरणोंके साथ मालासे विभूषित, अणिमा महिमादि आठ गुणों (ऋद्धियों) से परिपूर्ण, जैन जनोंसे अनुराग करनेवाली; समस्त द्वीपोंमें स्थित अतिशय रमणीय नदी, पर्वत एवं वृक्ष आदि प्रदेशोंमें स्वभावतः क्रीड़ा करनेमें तत्पर, तथा अनेक परिवार देवियोंसे सहित होकर श्री नेमि जिनेन्द्रकी शासनरक्षक देवी हुई । नाम उसका अम्बिका था । उसने वहाँ जैसे ही भवप्रत्यय अवधिज्ञानसे अपने देवगतिमें उत्पन्न होनेके कारणको ज्ञात किया वैसे ही वह धर्मके विषयमें अतिशय आनन्दित होती हुई जनके मनको आकर्षित करनेवाले वेषको धारण करके अग्निलाके रूपमें आयी और अपने दोनों बच्चोंके पासमें स्थित हो गई । उस समय सोमशर्मा वहाँ आया और अपनी स्त्री समझकर उससे बोला कि हे प्रिये ! मुझ पापीने जो बिना विचारे तुझे कष्ट पहुँचाया है उसके लिए तू क्षमा कर और अब अपने घरपर चल । इसपर वह बोली कि मैं तुम्हारी स्त्री नहीं हूँ, वह तो वहाँपर स्थित है । यह कहते हुए उसने उसके निर्जीव शरीरको उसे दिखला दिया । परन्तु उसने उसे देखकर भी विश्वास नहीं

१ श प्रतिपाठोऽयम् । श सोमशर्म्मणा । २ ज महा । ३ प श गते गवे° । ४ ज निधायेयं स्वयं । ५ ज प ब° प्रसादो पपातभवन° । ६ श हंसभूलकयोर्मध्ये । ७ ज जैनवात्सल्यपरा श जैनवाच्छल्यपरा । ८. श प्रदेशादिषु । ९ ज श रक्षकावायिका° प रक्षकावीप[2]का[°] ।

निकटमागच्छति तावत्सा दिव्यदेहा गगनेऽस्थाद्वदच्च 'कथमहं त्वद्वनिता'। तदा सोऽतिविस्मयं जगाम, पप्रच्छ 'देवि, का त्वम्' इति। तदा तयात्मवृत्तरूपं निरूप्योक्तमिमौ पुत्रौ गृहीत्वा गृहं गच्छ, सुखेन तिष्ठ। सोऽब्रवीदिदानीं मे गृहेण प्रयोजनं[1] नास्ति। त्वद्गतिरेव मे गतिरित्यहमपि तत्र पतित्वा मरिष्यामि। सावोचदेवं सति बालावपि मरिष्यतस्ततस्त्वमिमौ गृहीत्वा गृहं याहि। तदा सोऽहमेव[2] जानामीति भणित्वा स्वगृहं जगाम। सगोत्रजानां तौ समर्प्य जिनधर्मप्रभावनां कृत्वा बहून् द्विजादिकान् स्ववनितात्रिदशगतिप्राप्तिनिरूपणेनाणुव्रत-महाव्रताभिमुखान् कृत्वा स्वयं गत्वाज्ञानित्वात्[3] तद्दर्यां पपात ममाराम्बिकायाः सिंहो वाहनो[4] देवो जज्ञे। तौ शुभंकर-प्रभंकरौ[5] महाजैनौ भूत्वा बहुकालं चतुर्विधगृहस्थधर्मं प्रतिपाल्य श्रीनेमिजिनसमवसरणे दीक्षितौ, विशिष्टतपोविधानेन केवलिनौ भूत्वा विहृत्य मोक्षमुपजग्मतुः। इति पराधीनापि भर्तृभीत्या व्यग्रधीरपि ब्राह्मणी सकृन्मुनिदानेन देवी बभूवान्यः स्वतन्त्रः सर्वदा तद्दानशीलः किं न स्यादिति ॥१६॥

किया। वह बोला कि तुम ही मेरी स्त्री हो। यह कहते हुए वह उसके वस्त्रको पकड़नेके विचारसे जैसे ही उसके बहुत निकटमें आया वैसे ही वह यक्षी दिव्य शरीरके साथ ऊपर आकाशमें जाकर स्थित हो गई और बोली कि मैं कैसे तुम्हारी स्त्री हूँ। इस दृश्यको देखकर सोमशर्माको बहुत आश्चर्य हुआ। तब उसने उससे पूछा कि हे देवी! तो फिर तुम कौन हो? इसपर उसने अपना पूर्व वृत्तान्त कह दिया। अन्तमें उसने कहा कि अब तुम इन दोनों पुत्रोंको लेकर घर जाओ और सुखसे स्थित रहो। यह सुनकर वह बोला कि अब मुझे घर जानेसे कुछ प्रयोजन नहीं रहा है। जो अवस्था तेरी हुई है वही अवस्था मेरी भी होनी चाहिये, मैं भी वहाँ गिरकर मरूँगा। इसपर यक्षी बोली कि ऐसा करनेपर ये दोनों बालक भी मर जावेंगे। इसलिए तुम इन दोनों बालकोंको लेकर घर जाओ। तब वह 'यह तो मैं भी जानता हूँ' कहकर अपने घर चला गया। वहाँ जाकर उसने उन दोनों बालकोंको अपने कुटुम्बी जनोंके लिए समर्पित करके जैन धर्मकी बहुत प्रभावना की। साथ ही उसने धर्मके प्रभावसे अपनी स्त्रीके यक्षी हो जानेके वृत्तान्तको सुनाकर बहुत-से ब्राह्मणादिकोंको अणुव्रत और महाव्रत ग्रहण करनेके सन्मुख कर दिया। किन्तु वह स्वयं उसी ऊर्जयन्त पर्वतके ऊपर जाकर अज्ञानतावश उसी दरीमें जा गिरा और इस प्रकारसे मरकर उस अम्बिका देवीका वाहन देव सिंह हुआ। तत्पश्चात् वे दोनों शुभंकर और प्रभंकर नामके पुत्र दृढ़ जैनी हुए। उस समय उन दोनोंने बहुत काल तक चार प्रकारके गृहस्थधर्मका परिपालन करके भगवान् नेमि जिनेन्द्रके समवसरणमें दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार विशिष्ट तप करनेसे उन्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गई। तब वे केवलीके रूपमें विहार करके मोक्षको प्राप्त हुए। इस प्रकार पराधीन और पतिके भयसे विकल भी वह ब्राह्मणी जब एक बार ही मुनिको दान देकर उसके प्रभावसे देवी हुई है तब भला स्वतन्त्र और निरन्तर दान देनेवाला दूसरा भव्य जीव क्या अपूर्व वैभवको नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा ॥१६॥

---

१. श मे गृहेण मे प्रयोजनं। २. ब °हमेवं। ३. ब गत्वाजानित्वात् श गत्वाज्ञानत्वम्। ४. प ममाराम्बिकयाः सिंहो वाहनो ब ममार अंबिका स्वापिकायाः सिंहवाहनो श ममाराम्बिकायाः सिंहोवाहनो। ५. ब-प्रतिपाठोऽयम्। श शुभंकरविभंकरौ।

श्रीमन्तश्चारुगोत्रा जितरिपुगणकाः शक्तितेजोऽधिकाश्च
भूत्वा ते मारसौम्या[1] वरयुवतिगणा ज्ञानविज्ञानदक्षाः[2]।
पद्यैर्द्विज्ञानसंख्यैर्[3]ददितृफलकथां भावयन्त्यर्थतो[4] ये
भुक्त्वा संसारसौख्यं जगति सुविदितं मुक्तिलाभं लभन्ते ॥१६॥
इति पुण्यास्रवाभिधाने ग्रन्थे केशवनन्दिदिव्यमुनिशिष्यरामचन्द्रमुमुक्षुविरचिते
दानफलव्यावर्णनाः षोडशवृत्ताः समाप्ताः ॥६॥

यो भव्याब्जदिवाकरो यमकरो मारेभपञ्चाननो
नानादुःखविधायिकर्मकुभृतो वज्रायते दिव्यधीः।
यो योगीन्द्रनरेन्द्रवन्दितपदो विद्यार्णवोत्तीर्णवान्
ख्यातः केशवनन्दिदेवयतिपः श्रीकुन्दकुन्दान्वयः ॥१॥
शिष्योऽभूत्तस्य भव्यः सकलजनहितो रामचन्द्रो मुमुक्षु-
र्ज्ञात्वा शब्दापशब्दान्[5] सुविशदयशसः पद्मनन्द्याह्वयाद्वै।
वन्द्याद् वादीभसिंहात् परमयतिपतेः सोऽव्यधाद्भव्यहेतो-
र्ग्रन्थं पुण्यास्रवाख्यं गिरिसमितिमितैः ५७ [6]दिव्यपद्यैः कथार्थैः ॥२॥

जो भव्य जीव ज्ञानकी द्विगुणी संख्या [(५ + ३) × २] रूप सोलह पद्योंके द्वारा दानके फलकी कथाका परमार्थसे विचार करते हैं वे संसारमें लक्ष्मीवान्, कुलीन, शत्रुसमूहके विजेता, अधिक बलशाली, तेजस्वी, कामदेवके समान सुन्दर, उत्तम युवतियोंके समूहसे वेष्टित तथा ज्ञान-विज्ञानमें दक्ष होकर प्रसिद्ध संसारके सुखको भोगते हैं और तत्पश्चात् अन्तमें मुक्तिको भी प्राप्त करते हैं ॥१६॥

इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनिके शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु द्वारा विरचित पुण्यास्रव नामक ग्रन्थमें दानके फलको बतलानेवाले सोलह पद्य समाप्त हुए ॥६॥

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्दकी वंशपरम्परामें दिव्य बुद्धिके धारक जो केशवनन्दी देव नामके प्रसिद्ध यतीन्द्र हुए हैं वे भव्य जीवोंरूप कमलोंके विकसित करनेके लिए सूर्य समान, संयमके परिपालक, कामदेवरूप हाथीके नष्ट करनेमें सिंहके समान पराक्रमी और अनेक दुःखोंको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी पर्वतके भेदनेके लिए कठोर वज्रके समान थे। बड़े-बड़े ऋषि और राजा-महाराजा उनके चरणोंकी वन्दना करते थे। वे विद्यारूप समुद्रके पार पहुँच चुके थे अर्थात् समस्त विद्याओंमें निष्णात थे ॥१॥

उनका भव्य शिष्य समस्त जनोंके हितका अभिलाषी रामचन्द्र मुमुक्षु हुआ। उसने पद्मनन्दी नामक श्रेष्ठ मुनीन्द्रके पासमें शब्द और अपशब्दों (अशुद्ध पदों)को जानकर— व्याकरण शास्त्रका अध्ययन करके—कथाके अभिप्रायको प्रगट करनेवाले गिरि (७) और समिति (५) के बराबर संख्यावाले अर्थात् सत्तावन पद्योंके द्वारा भव्य जीवोंके निमित्त इस पुण्यास्रव नामक ग्रन्थको रचा

---

१. प ब श मारसाम्या। २. ब श ज्ञानदक्षाः। ३. ज °ज्ञास°। ४. ब °यंत्यर्थिनो। ५. श °र्ज्ञात्वा शब्दान्। ६. ब °मितो दिव्य°। ज ५७ संख्येयं पूर्वं लिखिता पश्चाच्च निष्काषिता सा।

सार्धैश्चतुः ४५०० सहस्त्रैर्यो[1] मितः पुण्यास्रवाह्वयः[2] ।
ग्रन्थः स्थेयान् [तु][3] सतां चित्ते चन्द्रादिवत्सदाम्बरे ॥३॥
कुन्दकुन्दान्वये ख्याते ख्यातो [4]देशिगणाग्रणीः ।
अभूत्[5] संघाधिपः श्रीमान् पद्मनन्दी त्रिरात्निकः ॥४॥
वृषभाधिरूढो[6] गणपो गणोद्यतो
विनायकानन्दितचित्तवृत्तिकः ।
उमासमालिङ्गितईश्वरोपम—
स्ततोऽप्यभूत् माघ[ध]वनन्दिपण्डितः ॥५॥
सिद्धान्तशास्त्रार्णवपारदृश्वा मासोपवासी गुणरत्नभूषः ।
शब्दादिवार्थो विबुधप्रधानो जातस्ततः श्रीवसुनन्दिसूरिः ॥६॥
दिनपतिरिव नित्यं भव्यपद्माधिबोधी[7]
सुरगिरिरिव देवैः सर्वदा सेव्यपादः ।
जलनिधिरिव शश्वत् सर्वसत्त्वानुकम्पी
गणभृदजनि शिष्यो मौलिनामा तदीयः ॥७॥

है । वे पद्मनन्दी मुनीन्द्र फैली हुई अतिशय निर्मल कीर्तिसे विभूषित, वंदनीय एवं वादीरूप हाथियोंको परास्त करनेके लिए सिंहके समान थे ॥२॥

साढ़े चार हजार ४५०० श्लोकों प्रमाण यह पुण्यास्रव ग्रन्थ सत्पुरुषोंके हृदयमें निरन्तर इस प्रकारसे स्थिर रहे जिस प्रकार कि आकाशमें चन्द्र आदि निरन्तर स्थिर रहते हैं ॥३॥

सुप्रसिद्ध आचार्य कुन्दकुन्दकी वंशपरम्परामें प्रसिद्ध श्रीमान् पद्मनन्दी त्रिरात्रिक (?) हुए । वे देशिगणमें मुख्य और संघके स्वामी थे ॥४॥

उनके पश्चात् वे माघ[ध]वनन्दी पण्डित हुए जो महादेवकी उपमाको धारण करते थे— जिस प्रकार महादेव वृषभाधिरूढ़ अर्थात् बैलके ऊपर सवार हैं उसी प्रकार ये भी वृषभाधिरूढ़ —श्रेष्ठ धर्ममें निरत—थे, महादेव यदि प्रमथादि गणोंके स्वामी होनेसे गणप (गणाधिपति) हैं तो ये भी मुनिसंघके नायक होनेसे गणप (संघके स्वामी) थे, महादेव जहाँ उन प्रमथादि गणोंके विषयमें उद्यत रहते हैं वहाँ ये भी संघके विषयमें उद्यत (प्रयत्नशील) रहते थे, जिस प्रकार महादेव-की चित्तवृत्तिको विनायक (गणेशजी) आनन्दित करते हैं उसी प्रकार इनकी चित्तवृत्तिको भी विनायक (विघ्न) आनन्दित करते थे — विघ्नोंके उपस्थित होनेपर वे हर्षके साथ उनके दूर करनेमें प्रयत्नशील रहते थे, तथा महादेव जैसे उमा (पार्वती) से आलिंगित थे वैसे ही ये भी उमा (कीर्ति)से आलिंगित थे । इस प्रकार वे सर्वथा महादेवके समान थे ॥५॥

उक्त माधवनन्दीसे सिद्धान्तशास्त्ररूपी समुद्रके पारंगत, महीने-महीनेका उपवास करनेवाले, गुणरूप रत्नोंसे विभूषित तथा पण्डितोंमें प्रधान श्री वसुनन्दी सूरि इस प्रकारसे प्रादुर्भूत हुए जिस प्रकार कि शब्दसे अर्थ प्रादुर्भूत होता है ॥६॥

वसुनन्दीके शिष्य मौलि नामक गणी (आचार्य) हुए । वे निरन्तर भव्य जीवोंरूप कमलोंके प्रफुल्लित करनेमें सूर्यके समान तत्पर रहते थे, देव जिस प्रकार मेरु पर्वतके पादों (सानुओं) की

१. ज प फ श °श्चतुःसहस्त्रैर्यो । २. ज प ब श पुण्याश्रवाह्वयः । ३. प स्तेयान् । ४. ब देविगणा° । ५. फ अभूव । ६. श वृषभादिरूढो । ७. फ ब पद्माब्धिबोधी ।

कलाविलासः परिपूर्णवृत्तो दिगम्बरालङ्कृतिहेतुभूत.[1] ।
श्रीनन्दिसूरिर्मुनिवृन्दवन्द्यस्तस्मादभूच्चन्द्रसमानकीर्तिः ॥८॥
चार्वाकबौद्धजिनसांख्यशिवद्विजानां
वाग्मित्ववादिगमकत्वकवित्ववित्तः[2] ।
साहित्यतर्कपरमागमभेदभिन्नः
श्रीनन्दिसूरिगगनाङ्गणपूर्णचन्द्रः ॥९॥

॥ समाप्तोऽयं पुण्यास्रवाभिधो ग्रन्थः[4] ॥

सेवा किया करते है उसी प्रकार वे (देव) इनके भी पादों (चरणों) की सेवा किया करते थे, तथा वे समुद्रके समान निरन्तर समस्त प्राणियोंके ऊपर दयार्द्र रहते थे ॥७॥

उनके शिष्य मुनिसमूहके द्वारा वंदनीय श्रीनन्दी सूरि आविर्भूत हुए। उनकी कीर्ति चन्द्रके समान थी—चन्द्र जहाँ सोलह कलाओंसे विलसित होता है वहाँ वे श्रीनन्दी बहत्तर कलाओंसे विलसित थे, जैसे पूर्णिमाका चन्द्र परिपूर्ण व वृत्त (गोल) होता है वैसे ही वे भी परिपूर्ण वृत्त (चारित्र) से सुशोभित—महाव्रतोंके धारक—थे, तथा चन्द्रमा यदि दिगम्बरकी—दिशाओं व आकाशकी—शोभाका हेतुभूत है तो वे भी दिगम्बरों (मुनिजनों) की शोभाके हेतुभूत—उन सबमें श्रेष्ठ—थे ॥८॥

चार्वाक, बौद्ध, जैन, सांख्य और शिवभक्त ब्राह्मणोंको वाग्मित्व, वादित्व, गमकत्व और कवित्वरूप धन जैसे, तथा साहित्य, तर्क (न्याय) और परमागमके भेदसे भेदको प्राप्त वे श्रीनन्दी सूरिरूप आकाशके मध्यमें पूर्ण चन्द्रमाके समान थे (?) ॥९॥

इस प्रकार पुण्यास्रव नामका यह ग्रन्थ समाप्त हुआ

---

१. प °लंतिहेतु° श लंक्षतिहेतु° । २. ब-प्रतिपाठोऽयम् । श कवित्वचित्तः । ३. श गणनांगण ।
४. श अतोऽग्रे 'द्वितीयसूत्रेण सह प्रमाणमनुष्टुभां' इत्यधिकः पाठ उपलभ्यते ।

१. कथासूचक पद्यानुक्रमणिका

२. उद्धृत-पद्यानुक्रमणिका

३. ग्रन्थगत शब्दानुक्रमणिकायें

१. व्यक्तिनाम-सूची

२. भौगोलिक शब्द-सूची

३. कुछ जैनधर्म-संमत विशेष शब्द

४. व्रतविधान

५. वंश-नाम

६. जातिविशेष

७. सम्प्रदायभेद

८. भोजनविशेष व भोज्यवस्तु

९. रोगविशेष

१०. औषधविशेष

११. विद्या-मन्त्र

१२. ग्रन्थोल्लेख

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध पाठ
३	११	त्रिभुमर्चयामि
५	७	उपाविश्य
९	४	चारित्रे चलो
१०	३	मार्गशिर
११	२	संबरैर्विकच
११	११	कुटकपुष्पकैर्यजे
१२	१४	प्राप्नुयादित्युक्ते
१५	६	रामेणोक्तम्
१५	१०	स्तम्भमुन्मूल्य
१८	३	त्रिरात्राष्टादश
१८	६	भक्षितो
१९	३	अमररमणाभ्यां
१९	१४	पृथिवीमत्यार्यिकानिकटे
२०	५	लभते
२०	१२	तेरपुरे
२१	९	धनमित्रयोः
२५	९	पुत्रोऽपि
२६	३	तन्मुकुटे
२९	७	पुण्डरीकिणीपुरे
२९	१०	श्रुत्वा
२९	१२	अधिकविशुद्धि
३०	१५	चिलातीपुत्रादिभिः
३२	२८	हलका फाल
३६	५	नैरुक्तस्तत्र
३८	६	वालुकामध्ये
३८	१०	शकटीनामक्षेषु
४१	११	तया भोगाननुभवन्
४६	७	विहरन्नोऽत्राजग्मिम
४६	१३	कयाचिद्देवतयोक्तं
४७	११	केशान् विरलयन्त्या
४७	३६	श केशान् देव्या
४९	१०	प्रेषितः
४९	१३	श्रेष्ठी निजपुत्र
५१	३	अङ्कुशघातादि
५२	२	सोमशर्मणो गृहद्वारे
५२	१०	'न'
५४	७	'न'
५४	७	द्वारावत्यां
५५	५	'न'
५५	१०	दीक्षां
५८	४	सुधर्मनामा मुनिर्ध्याननिमास्थात्
६०	६	-मपसार्य भुक्त्वा मातरं
६०	९	हे मातः,
६१	२	नाभ्युपगच्छति
६२	६	दृष्टिश्चैत्यालयाद्
६३	१	: २-१,१०]
६३	१२	वैश्यौ सुदत्तसूरदत्तौ
६४	१	[२-२,११ :
६६	६	राजादिभिर्गच्छद्भिश्चारुदत्तो
६६	९	प्रभावेण
६८	१०	कृत्वार्धरात्रौ
७१	८	तद्द्रव्येण
७८	१४	तमःप्रभाया
७९	१७	प्रभंकरीके
८१	१६	पञ्चनमस्कारान् दत्ता
८१	१६	मृणालपुरेशशम्भोर्मन्त्रिश्रीभूति
८४	६	ब्रुवाणो
८४	१३	धात्रीवाहनो
८७	६	सुकान्तनामानं
८९	३	म्रियते
९२	३१-३२	अनन्तबुद्धि
१०५	१	३. श्रुतोपयोगफलम् ३
१०७	१	३. श्रुतोपयोगफलम् ४
१०७	१०	ब्राह्मणकन्याभिः
१०९	१	३. श्रुतोपयोगफलम् ४
१०९	४	मत्सेवा कर्तव्या,

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध पाठ
१११	१	३. श्रुतोपयोगफलम् ४
१११	१०	सर्वानपि उपदेशयोक्तवती चतुर्थक-
११२	६	पश्चिमोद्यानस्थं
११५	५	समर्घ्य याव·
१२२	४	'सुमतिवर्धनो
१२३	६	[ग्य]
१२३	१३	विलोक्यातिहृष्टो
१२४	७	युष्माकमारत्युद्धरणे
१२४	७	लवण[४]
१२५	७	प्रारब्धा।
१२६	४	मुनिमपश्यन्तो तेनैव
१२६	८	पादुका आस्वादयन्त्या गत्वा
१३०	१२	चतुर्दश्यामुपवासोऽहिंसाव्रतं चागृह्णाम्
१३५	९	गच्छतस्तस्यापरमार्गं
१४२	५	राज्ञस्तं
१४२	७	संदेह
१५२	१०	च स्वकोष्ठे
१५५	२	उद्यायनमुनिनिर्वाणं
१५५	३५	उन्हें बन जानेसे
१५९	६	तत्रोत्क्षिप्य
१६४	११	[°माकृष्य]
१६४	१४	नागकुमारस्यादेशं
१६६	१०	पृथ्वीं
१६९	८	श्वशुरस्य
१७१	४	देवदत्ताख्यवेश्या-
१७१	८	स्वभवनाद्बहिः
१७३	१	: ५-१,३४]
१७४	१२	पृष्टवान्
१७९	५	बहिर्दुर्लङ्घ्यपुरं
१७९	१९	अलंघ्य पुरको
१८२	८	स्थिताः
१८३	८	पञ्चम्युपवासं
१८३	९	प्रकारैरुपवासस्त्याजितः
१८७	११	सापत्नेन
१८८	६	बभूव
१८८	७	प्रभावत्यभिधा प्रसिद्धा
१८९	१२	द्वादशवर्षैर्बन्धूनां
१९२	२	कदाचिद्बलात्कारेण

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध पाठ
१९४	४	तदप्राप्त्या
१९४	१०	काम्पिल्ले
१९६	५	राजस्य[१]
१९६	१२	श्रीपञ्चम्या[२]
१९६	१३	कोटरं स्थितं
१९६	३७	१ ब राजस्यु। २ ज प
१९८	२	शुक्रमहाशुक्रे देवौ
१९८	३	परकृतोपवासानुमोदेन
१९८	१६	लब्धो
२००	४	तस्य माला
२०१	४	निवृत्तिरिति
२०२	५	स्वभगिनी
२०३	३६	[तदृजुभावं]
२०४	९	प्रवणार्थं [प्रवयणार्थं]
२०६	२	कोऽयं मुनि
२०७	७-८	पञ्चसंख्या-
२०८	२	ऽभून्मार्जारोऽहिनकुलेन
२०९	१३	द्वितीयनरकं
२११	३	पुत्रं समित्रं
२११	११	गगनवल्लभयोस्तनुजा
२१२	२	कीर्तिमाकर्ण्य
२१२	६	श्रुत्वार्ककीर्तिर्गजं ·
२१३	८	तदार्जिका
२१३	१०	रोहिणीविधानप्रभवपुण्येन शोकं न जानाति
२१४	११	वीतशोकं स्वपदे
२१७	५	श्रुतकेवलिभूत
२१७	७	बन्धु-सुबन्धु
२१७	१०	ऽभूत
२१७	११	प्रमाणं द्रव्यं
२१८	९	शकटालस्तदुल्लङ्घ्य
२२०	१०	शिशिष्येऽस्य
२२२	१३	कुर्वंस्तत्क्षपकं
२२४	३	मुनिरब्रवीत् अग्रेदुःख
२२५	६	भविष्यति
२२५	२४	श्रावकका वचन
२२६	१०	कुर्वन्

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध पाठ
२२६	२२	आहार ग्रहणके
२२७	९	तथा स्कन्धे
२२९	३	प्रतिवन्दनां
२२९	८	उभयप्रकारयोर्मध्ये
२२९	१३	पुर
२३०	३	लम्बनेनैव
२३०	३	निर्ग्रन्थाजनिषतेति (?)
२३०	११	द्वारवत्यां
२३२	१०	द्रक्ष्यथ
२३३	७	विशुद्धया
२३४	७	समागतस्ता.
२३४	८	चुकोपो[पा]ऽयं
२३४	१०	बहवो [बह्व्यो] हि
२३४	३५	३ ब °ता। ४ ज चुकुपायं प ब श चुकुपोयं,
२३६	५	मंदिग्धचित्ता
२३६	८	विचार्य गर्दभा-
२३६	१०	चर्यार्थमागतौ, राज्ञा स्या-
२३६	१२	एकदानन्तमतीविलासिनी
२३६	१४	मन्दरस्योत्तमभोग
२३७	२	तत्रैवार्यो
२३८	१२	अस्य कथा आदिपुराणे
२३९	५	दृष्टानुभुक्त[भूत]कथा
२४०	५	छिद्रित
२४०	१२	दृष्टानुभुक्त [भूत] कथामवधारयन्तु
२४२	१२	सन् समचित्तेन
२४३	९	मौनकारणं
२४५	३	जिनालयस्यैकस्मिन्
२४६	२७-२८	तुम मनोहरी हुए
२४७	८	जानामि।
२५२	२	स्वमाकर्ण्य
२५२	४	शार्दूलं
२५७	१३	कोटीकोटय:
२६१	८	पल्यागीति
२६३	२	प्रभृति युग्मोत्पत्ति
२६३	१०	स्थितं यदा
२६६	३	तावत्तद्यौवन-
२६६	४	स्वस्य विवाहो
२६६	२२	राजाका जीव
२६८	२	त्वद्वंश उग्रवंशो
२६८	३	शिक्षयंस्त्रिषष्टिलक्षपूर्वाणि
२६८	३४	१. श पटं बद्ध्वा त्वद्वंशोग्रवंशो। २
२७०	७	सर्पसरोवरतटे
२७०	१३	कृष्णैकादश्यां
२७१	१४	ज्योतिष्का:,
२७६	८	वल्ल्यादिकं
२७८	८	सहस्र
२७९	८	श्रुत्वा
२७९	१२	शीतल-
२८३	३	ददतु-
२८५	१४	पुण्यैनैतद्वनिता[10]
२८५	३७	१० श पुण्येनैव तद्वनिता
२८६	१५	मैं इसकी पत्नी
२८८	३	दीक्षिता:।
२९२	५	श्रुत्वा
२९४	७	स्वजनितायाः प्रियदत्तया
२९५	२	सौधर्मेन्द्रस्यान्त:पारिषद्य:
२९९	११	बभाण– यावदहं
३०५	१०	पुत्राविति
३१४	२	सन्नाह– अत्रैवा-
३१५	१३	सातिहृष्टा
३१६	९	वण्ठस्य
३१७	१४	मातङ्गैः संस्कारयितुं
३१८	११	क्षेत्रे हलं
३२५	१४	इसलिए वे तुमसे
३२७	६	जिगाय धन्यकुमारः
३३२	२२	देख लीजिये
३३३	९-१०	स्थातुमपि लोकापवाद
३३४	१०	गृहरसवती
३३५	५	किंचिद्दुःखं दास्यतीति
३३५	१०	विबुध्य
३३५	१३	तद्वस्त्रं

JĪVARĀJA JAINA GRANTHAMĀLĀ

General Editors :

DR. A. N. UPADHYE & DR. H. L. JAIN

1. *Tiloyapaṇṇatti* of Yativṛṣabha (Part I, chapters 1-4) : An Ancient Prākrit Text dealing with Jaina Cosmography, Dogmatics etc. Prākrit Text authentically edited for the first time with the Various Readings, Preface and Hindī Paraphrase of Pt. BALACHANDRA by Drs. A. N. UPADHYE AND H. L. JAIN Published by Jaina Saṁskṛti Saṁrakṣaka Saṁgha, Sholapur (India). Double Crown pp. 6-38 532. Sholapur 1943. Second Edition, Sholapur 1956. Price, Rs. 16-00.

1. *Tiloyapaṇṇatti* of Yativṛṣabha (Part II, Chapters 5-9) : As above, with Introductions in English and Hindi, with an alphabetical Index of Gāthās, with other Indices (of Names of works mentioned, of Geographical Terms, of Proper Names, of Technical Terms, of Differences in Tradition of Karaṇasūtras and of Technical Terms, compared) and Tables (of Nāraka-Jīva, Bhavana-vāsī Deva, Kulakaras, Bhāvana Indras, Six Kulaparvatas, Seven Kṣetras, Twentyfour Tīrthakaras , Age of the Śalākāpuruṣas, Twelve Cakravartins, Nine Nārāyaṇas, Nine Pratiśatrus, Nine Baladevas, Eleven Rudras, Twentyeight Nakṣatras, Eleven Kalpātīta, Twelve Indras, Twelve Kalpas and Twenty Prarūpaṇās). Double Crown pp. 6-14-108-529 to 1032, Sholapur, 1951. Price Rs. 16-00.

2. *Yaśastilaka and Indian Culture*, or Somadeva's Yaśastilaka and Aspects of Jainism and Indian Thought and Culture in the Tenth Century, by Professor K. K. HANDIQUI, Vice-Chancellor, Gauhati Univerity, Assam, with Four Appendices, Index of Geographical Names and General Index. Published by J. S. S. Sangha, Sholapur. Double Crown pp. 8-540. Sholapur 1949. Price Rs. 16-00.

3. *Pāṇḍavapurāṇam* of Śubhacandra : A Sanskrit Text dealing with the Pāṇḍava Tale. Authentically edited with Various Readings, Hindī Paraphrase, Introduction in Hindī etc. by Pt. JINADAS. Published by J. S. S. Sangha, Sholapur. Double Crown pp. 4-40-8-520. Sholapur 1945. Price Rs. 12-00.

4. *Prākṛta-śabdānuśāsanam* of Trivikrama with his own commentary : Critically Edited with Various Readings, an Introduction and Seven Appendices (1. Trivikrama's Sūtras ; 2. Alphabetical Index of the Sūtras ; 3. Metrical Version of the Sūtrapāṭha ; 4. Index of Apabhraṁśa Stanzas ; 5. Index of Deśya words ; 6. Index of Dhātvādeśas, Sanskrit to Prākrit and vice versa ; 7. Bharata's Verses on Prākrit) by Dr. P. L. VAIDYA, Director, Mithilā Institute, Darbhanga. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur. Demy pp. 44-478. Sholapur 1954. Price Rs. 10-00.

5. *Siddhānta-sārasaṁgraha* of Narendrasena : A Sanskrit Text dealing with Seven Tattvas of Jainism. Authentically Edited for the first time with Various Readings and Hindi Translation by Pt. JINADAS P. PHADKULE. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur. Double Crown pp. about 300. Sholapur 1957. Price Rs. 10-00.

6. *Jainism in South India and Hyderabad Epigraphs* : A learned and well-documented Dissertation on the career of Jainism in the South, especially in the areas in which Kannada, Tamil and Telugu Languages are spoken, by P. B. DESAI, M. A., Assistant Superintendent for Epigraphy, Ootacamund. Some Kannaḍa Inscriptions from the areas of the former Hyderabad State and round about are edited here for the first time both in Roman and Devanāgarī characters, along with their critical study in English and Sārānuvāda in Hindi. Equipped with a List of Inscriptions edited, a General Index and a number of illustrations. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur. Sholapur 1957. Double Crown pp. 16-456. Price Rs. 16-00.

7. *Jambūdīvapaṇṇatti-Saṁgaha* of Padmanandi : A Prākrit Text dealing with Jaina Geography, Authentically edited for the first time by Drs A. N. UPADHYE and H. L. JAINA, with the Hindī Anuvāda of Pt. BALACHANDRA. The Introduction institutes a careful study of the Text and its allied works. There is an Essay in Hindī on the Mathematics of the Tiloyapaṇṇatti by Prof. LAKSHMICHANDA JAIN, Jabalpur. Equipped with an Index of Gāthās, of Geographical Terms and of Technical Terms, and with additional Variants of Amera Ms. Published by the J S. S. Sangha, Sholapur. Double Crown pp. about 300. Sholapur 1957. Price Rs. 16.

8. *Bhaṭṭāraka-saṁpradāya* : A History of the Bhaṭṭāraka Pīṭhas especially of Western India, Gujarat, Rajasthan and Madhya Pradesh, based on Epigraphical, Literary and Traditional sources, extensively reproduced and suitably interpreted, by Prof. V. JOHRAPURKAR, M. A., Nagpur. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur, Demy pp. 14-29-326, Sholapur 1960. Price Rs. 8/-

9. *Prābhṛtādisaṁgraha* : This is a presentation of topic-wise discussions compiled from the works of Kundakunda, the *Samayasāra* being fully given. Edited with Introduction and Translation in Hindi by Pt. KAILASHCHANDRA SHASTRI, Varanasi. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur. Demy pp. 10-106-10-288. Sholapur 1960. Price Rs. 6 0/-.

10. *Pañcaviṁśati* of Padmanandi : (c. 1136 A. D.). This is a collection of 26 Prakaraṇas (24 in Sanskrit and 2 in Prākrit) small and big, dealing with various religious topics : religious, spiritual, ethical, didactic, hymnal and ritualistic. The text along with an anonymous commentary critically edited by Dr. A. N. UPADHYE and Dr. H. L. JAIN with the Hindi Anuvāda of Pt. BALACHAND SHASTRI. The edition is equipped with a detailed Introduction shedding

light on the various aspects of the work and personality of the author both in English and Hindi. There are useful Indices. Printed in the N. S. Press, Bombay. Double Crown pp. 8-64-284. Sholapur 1962. Price Rs. 10/-

11. *Ātmānuśāsana* of Guṇabhadra (middle of the 9th century A. D.). This is a religio-didactic anthology in elegant Sanskrit verses composed by Guṇabhadra, the pupil of Jinasena, the teacher of Rāṣṭrakūṭa Amoghavarṣa. The Text is critically edited along with the Sanskrit commentary of Prabhācandra and a new Hindi Anuvāda by Dr. A. N. UPADHYE, Dr. H. L. JAIN and Pt. BALACHANDRA SHASTRI. The edition is equipped with Introductions in English and Hindi and some useful Indices. Demy pp. 8-112-260, Sholapur 1961. Price Rs. 5/-

12. *Gaṇitasārasaṁgraha* of Mahāvīrācārya (c. 9th century A. D.) : This is an important treatise in Sanskrit on early Indian mathematics composed in an elegant style with a practical approach Edited with Hindi Translation by Prof. L. C. Jain M. Sc. Jabalpur. Double Crown pp. 16+34+282+86, Sholapur 1963, Price, Rs. 12/-

13. *Lokavibhāga* of Siṁhasūri : A Sanskrit digest of a missing ancient Prākrit text dealing with Jaina cosmography. Edited for the first time with Hindi Translation by Pt. BALACHANDRA SHASTRI. Double Crown pp. 8-52-256, Sholapur 1962. Price Rs. 10/-

14. *Puṇyāsrava-kathākośa* of Rāmacandra : It is a collection of religious stories in simple and popular Sanskrit. The text authentically edited with the Hindi Anuvāda by Dr. A. N. UPADHYE and Dr. H. L. JAIN and Pt. BALACANDRA SHASTRI.

15. *Jainism in Rajasthan* : This is a dissertation on Jainas and Jainism in Rajasthan and round about area from early times to the present day, based on epigraphical, literary and traditional sources by Dr. KAILASHCHANDRA JAIN, Ajmer. Double Crown pp. 8+284, Sholapur 1963, Price Rs. 11/-

16. *Viśvatattva-Prakāśa* of Bhāvasena (14th century A. D.) : It is a treatise on Nyāya. Edited with Hindi Summary and Introduction in which is given an authentic Review of Jaina Nyāya literature by Dr. V. P. Johrapurkar, Nagpur. Demy pp. 16+112+372, Sholapur 1964. Price Rs. 12/-

WORKS IN PREPARATION

Subhāṣita-saṁdoha, Dharma-parīkṣā, Jñānārṇava, Dharmaratnākara, Tīrthavandanamālā, Candraprabhacarita etc. For copies write to :

Jaina Saṁskṛti-Saṁrakshaka Sangha
SANTOSH BHAVAN, Phaltan Gali,
Sholapur (C. Rly.) : India.